सच्चिदानन्दाय नमः

योगवासिष्ठभाषा ।

भाग २ रा.

जिसमें

६ ठा निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध है ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन.

निज "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७२ शके १८३७.

1915

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालेन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें अपने लिये मुद्रितकर वहीं प्रकाशित किया।

Vishva Bharati Institute
R
Acc. No 99
LADNUN (Raj.)

॥ श्रीः ॥

" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखानेकी परमोपयोगी
स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें।

यह विषय आज २५।३० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि,इस छापाखानाकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दरप्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं। सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, साम्प्रदायिक, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दीभाषाके प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहतेहैं। शुद्धता, स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्द की बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुतही सस्तेरक्खे गये हैं और कमीशन भी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभवहै। संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करनाचाहिये. ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है)॥ भेजकर 'सूचीपत्र' मँगा देखो ॥

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS,
SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS
BOMBAY.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना खेतवाडी—मुम्बई.

योगवासिष्ठ-

निर्वाणप्रकरणकी अनुक्रमणिका ६.

उत्तरार्द्ध ।

उत्तरार्धकी अनुक्रमणिका।

इति योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका समाप्त ॥

श्रीः ।

विक्रय्य-वेदान्तग्रन्थाः ।

नाम	की रु. आ.
ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) शांकरभाष्यसहित, इसमे शांकरभाष्यकी गोविन्दराजकृत **रत्नप्रभा**, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पतिमिश्रकृत **भामती**, आनन्दगिरिकृत **न्यायनिर्णय** यह तीनों टीकाये सयुक्त है.	१०-०
ब्रह्मसूत्र-(शारीरक) "वेदान्तदर्शन" प्रभुदयालकृत वेदान्ततत्त्वप्रकाश भाषाभाष्य समेत । मुमुक्षुओको अतिसुगमतासे सुबोध ज्ञानोपयोगी बहुत सरल भाषामे है.	४-०
ब्रह्मसूत्र-माध्वभाष्य श्रीमदानन्दतीर्थविरचित । जयतीर्थ मुनिविरचित **तत्त्वप्रकाशिकाटीका** सहित	५-०
ब्रह्मसूत्र-(वेदान्तदर्शन) भाष्यानुसार सरल भाषाटीकामे है	१-४
भगवद्गीता-चिद्घनानन्दी "गूढार्थदीपिका" के भाषाटीका । श्रीमत्परमहस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी **चिद्घनानन्दगिरिजी** महोदयने सर्व सासारिक लोगोके उपकारार्थ "श्रीमच्छंकरभाष्य" के अनुसार पदच्छेद-अन्वयाक-तथा-पदार्थसहित निर्माण किया है । यह मुमुक्षुगणोको अतिसरल सुबोधयुक्त है तथा विलायती कपडेकी मनोहर जिल्दबँधी है.....	६-०
भगवद्गीता-आनन्दगिरिकृत भाषाटीकासहित । जिसमे अन्वय करके भावार्थ स्पष्ट कियागयाहै.	२-०
भगवद्गीता-सान्वय व्रजभाषा दोहासहित । अत्युत्तम ग्लेज कागज ...	१-४
" तथा रफ कागज.	१-०
भगवद्गीता-वैष्णव हरिदासजीकृत भाषार्थ तथा दोहा चौपाइयोंमे (परमानन्दप्रकाशिका.)	१-०
भगवद्गीता-(अमृततरगिणी भाषाटीका) रघुनाथप्रसादकृत बडा अक्षर.	१-०
भगवद्गीता-अमृततरगिणी-दोहासहित भाषाटीका पाकिटबुक....	०-१०
भगवद्गीता-श्रीधरीटीका सहित ग्लेज कागज	१-०
" तथा रफ कागज.	०-१४
भगवद्गीता-विशिष्टाद्वैतमतानुयायी तत्त्वार्थसुदर्शनी टीका **भाषाभाष्य** सहित पञ्चनदीय प० सुदर्शनाचार्य शास्त्रिप्रणीत.	२-८

नाम	की रु आ
भगवद्गीता–श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृत मधुसूदनीटीका सहित.	२–८
भगवद्गीता–रामानुजभाष्य (विशिष्टाद्वैतपर)	१–८
भगवद्गीता–सदानन्दस्वामिकृत श्लोकवद्धभावप्रकाशटीकासमेत.	३–०
भगवद्गीता–वडा अक्षर १६ पेजी गुटका रेशमी	०–१२
भगवद्गीता–बालबोधिनी टीकासमेत.	१–०
भगवद्गीता–वडे अक्षरकी १२ पेजी खुली.	०–१२
भगवद्गीता–गुटका–रेशमी जिल्द विष्णुसहस्रनाम सहित.	०–८
भगवद्गीता--गुटका पाकिट बुक् (६४ पेंजी)	०--५
भगवद्गीता–गुटका महीन अक्षर (तावीजी.)	०–२॥
भगवद्गीतादि पंचरत्न–इसमे–गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष है मोटा अक्षर रेशमी गुटका.	१–०
भगवद्गीता--अक्षर वडा खुलापत्रा छोटी सची.	१–०
भगवद्गीता--अक्षर वडा खुलापत्रा लम्बी सची.	१–०
भगवद्गीतादि पंचरत्न–भाषाटीकासमेत वडा अक्षर.....	२–०
भगवद्गीतादि पंचरत्न–भाषाटीकासमेत छोटा अक्षर गुटका.	१–०
भगवद्गीतादि पंचरत्न–द्वादशरत्न । इसमे गीतामाहात्म्य, गीतार्थसंग्रह, गीता, अच्युताष्टक, विष्णुसहस्रनाम, शापमोचन, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, अष्टादशश्लोकी गीता, सप्तश्लोकी गीता और चतुःश्लोकी भागवत है.	०–८
भगवद्गीतादि पञ्चरत्न--एकादशरत्न । इसमे--गीतामाहात्म्य, गीतार्थसंग्रह, गीतामंगलाचरण, गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, अष्टादशश्लोकी गीता, सप्तश्लोकी गीता, चतुःश्लोकी भागवतादि हे अक्षर वडा है.	०--१२
भगवद्गीतादि पञ्चरत्न--नवरत्न । इसमे–गीतामंगल, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, चतुःश्लोकी भागवत, सप्तश्लोकी गीता, आचार्यकृत अष्टपदी, विष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्र सहित. (पाकिटबुक) ...	०–७
भगवद्गीता–सरल गुजराती अर्थ सहित विलायती कपडेकी सुनहरी जिल्द	०–४
" तथा बायडिंग पुट्ठेकी जिल्द	०–३

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.
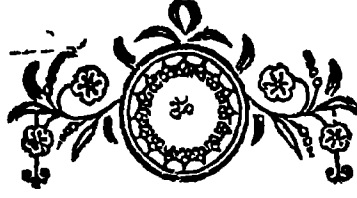
परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

षष्ठं निर्वाणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

(पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः १.

दिवसरात्रिव्यापारवर्णनम् ।

वाल्मीकि रुवाच ॥ हे भारद्वाज! उपशमप्रकरणके अनंतर तू निर्वाणप्रकरण सुन, जिसके जाननेकरि तू निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा, बडे उत्तम वचन मुनिनायकने रामजी प्रति कहे हैं, सो रामजी कैसे हैं, जो मुनीश्वरने वाक्य अर्थ कहा है, तिसविषे सब ओरते मनको खैंचिकरि जिसने स्थापित किया है, अरु और भी जो राजालोक हैं, सो सब निस्पंद हो रहे हैं, मानो कागजके ऊपर मूर्तियां लिख छोडी हैं, ऐसे होकरि वसिष्ठजीके वचनोंको विचारते हैं, अरु जेते राजकुमार हैं, सो विचारते हैं अरु कंठोंको हिलाते हैं, शिर अरु भुजाको फेरते हैं, अरु विस्मयको प्राप्त हुवे हैं, तिसकरि प्रसन्नताको प्राप्त हुवे हैं, यह जगत् सत्य जानकर विचरते थे सो हैही नहीं, ऐसे आश्चर्यविषे आश्चर्यको प्राप्त हुवे हैं, तब दिनका चतुर्थ भाग अन्त रहा, अरु सूर्य अस्त हुआ मानो वसिष्ठजीके वचन सुनिकरि इसको फल लगा है, सब तेज क्षीण होगया है, अरु शीतलता आनि प्राप्त भई है, अरु स्वर्गते जो सिद्ध देवता आये थे, तिनके गलेविषे मंदार आदिक वृक्षोंके फूल थे, पवनके चलनेकरि सब स्थान सुगंधित होत भये, अरु भ्रमर फूलोंपर गुंजारव शब्द करें हैं, अरु झरोंखोंके मार्गसों सूर्यकी किरणें आवें हैं, तिनकरि कमलफूल सूर्यमुखी राजा अरु देवताओंके शीश ऊपर थे, सो सूखके

जलने लगे, जैसे मनसों जगत्की सत्ता निवर्त्त होवै; अरु वृत्ति सकुचती जाती है, तैसे सूखते जाते हैं अरु बालक जो सभाविषे बैठे थे, अरु पिंजरोंविषे पक्षी खेलनेको बैठे थे तिनके भोजनका समय हुआ बालकोंके भोजननिमित्त माता उठी, अरु चौथे प्रहर राजाकी नौबत, नगारे, भेरी, शहनाई बाजने लगीं, वसिष्ठजी जो बडे ऊंचे स्वरसे कथा करते थे, तिनका शब्द नगारे वाजित्रोंकरि आच्छादि गया, जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जता है, अरु मोर तूष्णीं होजाते हैं तैसे वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये. ऐसा शब्द हुआ जिसकरि आकाश पृथ्वी सब दिशा भर रहीं, पिंजरेविषे पक्षी भडभड शब्द करने लगे, पंखोंको पसारकरि जैसे भूकम्प हुएते लोक कम्पते शब्द करते हैं, तैसे पक्षी भडकने लगे, बालक थे सो माताकी त्वचासे मिल गये, बडा शब्द हुआ, तिसके अनन्तर मुनिशार्दूल वसिष्ठजी सबके मध्यविषे बोले ॥ हे निःपाप रघुनाथ ! मैं तेरे चित्तरूपी पक्षीके फँसावने निमित्त अपने वाक्रूपी जाल पसारी है, तिसते अपने चित्तको वश करिकै आत्मपदविषे जोड ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तुझको उपदेश किया है, तिसका जो सार है, तिसविषे दुर्बुद्धिको त्यागिकरि चित्तको लगाव, जैसे हंस जलको त्यागिकरि दूधको पान करता है, तैसे सब उपदेश आदिते लेकरि अन्तपर्यंत वारंवार विचारकरि सारको अंगीकार कर; इसप्रकार संसारसमुद्रते पार उतारिकरि परमपदको प्राप्त होवैगा अन्यथा न होवैगा॥ हे रामजी ! जब इन वचनोंको अंगीकार करैगा, तब संसारसमुद्रको तर जावैगा, अरु जो अंगीकार न करैगा, तौ नीचगतिको प्राप्त होवैगा, जैसे विंध्याचल पर्वतकी खातविषे हस्ती गिरा कष्ट पाता है, तैसे संसारविषे कष्ट पावैगा ॥ हे रामजी ! ये जो मेरे वचन हैं, इनको ग्रहण न करैगा, तो अधको गिरैगा, जैसे पंथी हाथविषे दीपक त्यागिकरि रात्रिकेविषे टोहेपर गिरता है, तैसे गिरैगा, अरु जो असंग होकरि व्यवहारविषे विचरैगा, तौ आत्मसिद्धताको प्राप्त होवैगा, यह जो मैं तुझको तत्त्वज्ञान अरु मनोनाश अरु वासनाक्षय कहेहैं, यह अभ्यासकरि सिद्धताको प्राप्त होवैगा, यह शास्त्रका सिद्धांत है ॥ हे सभा ! हे महाराजो राम लक्ष्मण भूपति ! जो कछु मैंने तुमको कहा है तिसको तुम विचारौ, अरु और जो कछु कहना है, सो प्रातःकाल

कहौंगा ॥ वाल्मीकि रुवाच ॥ हे साधो ! इसप्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब सब सभा उठ खड़ी हुई, अरु वसिष्ठके वचनोंको पाइकरि सब खिल आये, जैसे सूर्यको पाइकरि कमल खिलि आता है, तैसे सब खिलि आये, अरु वसिष्ठ विश्वामित्र दोनों इकट्ठे उठे, वसिष्ठजी विश्वामित्रको अपने आश्रमको ले गये, अरु आकाशचारी जो देवता थे, अरु सिद्ध थे, सो वसिष्ठजीको नमस्कार करिकै अपने अपने स्थानोंको गये, राजा दशरथ अर्घ्य पाद्य करि वसिष्ठजीको पूजतभये, पूजाकरि अपने अंतःपुर-विषे गये, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि वसिष्ठजीको पूजते भये, पूजाकरि अपने अंतःपुरविषे गये, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि अपने अपने स्थानोंको गये, राजकुमार अपने मंडलको गये, मुनीश्वर वनको गये, राम लक्ष्मण शत्रुघ्न वसिष्ठजीके आश्रमको गये, पूजाकरिकै बहुरि अपने गृहमें आये, तब श्रोता अपने अपने स्थानको जाइकरि स्नानसंध्यादिक कर्म करते भये, बहुरि पितृदेवताको पूजते भये, बहुरि ब्राह्मणते लेकरि भृत्यपर्यंत सबको भोजन कराइकरि अपने मित्र भाइयोंके साथ भोजन किया, बहुरि यथाशक्ति अपने वर्णाश्रमके धर्मको साधते भये, तब सूर्य भगवान् अस्त हुए, दिनकी क्रिया निवर्त्त हो गई, रात्र आनि प्राप्त भई निशाचर आय विचरने लगे, तब भूचर अरु राजर्षिब्रह्मर्षि राजपुत्र जेते कछु श्रोते थे सो रात्रिको एकांत बैठकरि अपनी शय्या बिछाइकरि विचारते भये, राजकुमार राजा अपने स्थानोंपर बैठे, ब्राह्मण तपस्वी सो कुशादिक बिछाइकरि विचारते भये, कि संसारके तरणेका उपाय क्या कहै हैं, वसिष्ठजीने वचन कहे हैं, तिनविषेभले प्रकारचित्तकोएकाग्रकरते भये, एक प्रहार भले प्रकार विचारकरि निद्राको प्राप्त भये, जैसे सूर्य उदय हुए पद्मिनियां मूँदि जाती हैं, तैसे सुषुप्तिको प्राप्त भये, अरु राम लक्ष्मण शत्रुघ्न तीनप्रहर वसिष्ठजीके उपदेशको विचारते रहे, अर्ध प्रहर सोए, बहुरि उठे, इसप्रकार सब विचारपूर्वक रात्रिको चितायुक्त भये प्रातःकाल होनेपर आया, सूर्यके प्रकाशकरि चंद्रमाकी कांति जाती रही चंद्रमुखी कमल मूँद गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे दिवसरा-त्रिव्यापारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः २.

विश्रामदृढीकरणवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! इसप्रकार रात्रि व्यतीत भई, तमका पटल निवर्त हुआ, तब राम लक्ष्मण शत्रुघ्न उठिकरि स्नान करते भये; संध्यादिक कर्म किये, बहुरि वसिष्ठजीके आश्रमको गये, तहां जाय स्थित भये, बहुरि वसिष्ठजी संध्यादिक करिकै अग्निहोत्र करने लगे, जब करि चुके तब रामादिक वसिष्ठजीको अर्घ्य पाद्यकरि पूजत भये, चरणोंपर भले प्रकार मस्तक राखा, जब रामजी गये थे, तब वसिष्ठजीके द्वारेपर मौन था, एक घडीविषे कई अनेक सहस्र जीव आनि प्राप्त भये, राजकुमार ब्राह्मण, मुनीश्वर, हस्ती, घोडा, रथ बहुतसेना आय प्राप्त भई, तब वसिष्ठजी रामादिकको साथ लेकरि राजा दशरथके गृहविषे आये, तब राजा दशरथ तिनके लेनेको आगे आया, अरु वसिष्ठजीका आदरसे पूजन करत भया, औरलोकोंने भी बहुत पूजन किया, इसप्रकार सभाविषे आय प्राप्त हुए, तब नभचर अरु भूचर जेते कछु श्रोता थे, सो सब आय प्राप्त हुए, सभाविषे आइकरि नमस्कार करिके बैठ गये, जेते कछु सभाके लोक थे सो निस्पंद एकाग्र होइकरि स्थित भये, जैसे निस्पंद वायुकरि कमलोंकी पंक्ति अचल होती है, तैसे स्थित भये, भाटजन जो स्तुति करनेवाले थे, सो एक ओर स्थित भये, तब सूर्यकी किरणें झरोंखेके मार्ग आय प्राप्त भई, मानो किरणैं भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करने आई हैं, तब वसिष्ठजीकी ओर रामजी देखते भये, जैसे स्वामिकार्तिक शंकरकी ओर देखैं, जैसे कच बृहस्पतिकी ओर देखैं, जैसे प्रह्लाद शुक्रकी ओर देखैं तैसे वसिष्ठजीकी ओर रामजी देखते भये, जैसे भ्रमर भ्रमता भ्रमता आकाशमार्गते कमलपर आय बैठता है, तैसे रामजीकी दृष्टि औरको देखते देखते वसिष्ठजीपर आयस्थित भई, अरु वसिष्ठजी रामजीकीओरदेखत भये देखिकरि बोलत भये॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रघुनंदन ! मैं जो तुमको उपदेश किया है, सो तुम कछु स्मरण किया, जो यह वचन कहे हैं, कैसे कहे हैं, जो परमार्थ बोधका कारण

आनंदरूप महागंभीर कहेहैं, अब और भी बोधका कारण अरु अज्ञानरूप शत्रुके नाश करता इंदुप्रमाण वचन हैं, तिनको सुन, आत्मसिद्धांत निरंतर शास्त्र तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी! वैराग्य, अरु अभ्यास, अरु तत्त्वका विचार, इन करिकै संसारसमुद्रको तरता है, सम्यक् तत्त्वके बोधकरि दुर्बोध निवर्त हो जाता है, तब वासनाका आवेश नष्ट हो जाता है, अरु निर्दुःख पदको प्राप्त हो जाता है. कैसा पद है, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, सोई ब्रह्म जगत्‌रूप होइकरि स्थित भयाहै, अरु भ्रमकरिकै द्वैतकी नाईं, भासताहै, जो सब भावकरिकै अविच्छिन्न है, सर्वत्र ब्रह्म है, इसप्रकार मत्स्वरूप जानिकारि शांतिमान् होहु॥ हे रामजी! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, न कछु चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है, यह सब कलना ब्रह्मविषे भ्रमकरिकै पडी फुरती है, जो स्पंद फुरणा दृश्य है, अरु चित्त है, सो कलनारूप संभ्रम है, ब्रह्मते इतर पदार्थ कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! स्वर्ग पाताल भूमिविषे सदाशिवते आदि अरु तृणपर्यंत जो कछु दृश्य है, सो सब परब्रह्म है, चिद्रूपते अन्य कछु नहीं, उदासीन अरु मित्र बांधव आदिते लेकरि सब ब्रह्म है, जबलग अज्ञानकलनाकरि जगत्‌विषे स्थितबुद्धि है, अरु ब्रह्मभाव नानात्व है, तबलग चित्तादि कलना होती है, अरु जबलग देहविषे अहंभाव है, अरु अनात्मदृश्यविषे ममत्व है, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है, जबलग संतजन अरु सच्छास्त्रोंकरि ऊंचे पदको नहीं प्राप्त भया, अरु मूर्खता क्षीण नहीं भई, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है ॥ हे रामजी! जबलग देहाभिमान शिथिलताको नहीं प्राप्त भया, अरु ससारकी भावना नहीं मिटी, अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै स्थिति नहीं पाई, जबलग चित्तादिक प्रकट हैं, जबलग अज्ञानकरिकै अंध है, जबलग विषयोंकी आशाके आवेशकरि मूर्छित है, जबलग मोहमूर्छाते उठा नहीं तबलग चित्तादिक कलना होती है ॥ हे रामजी! जबलग आशारूपी विषकी गंध हृदयरूपी वनविषे होती है, तबलग विचाररूपी चकोर तहां नहीं प्राप्त होता, भोगवासना नहीं मिटतीहै, जब भोगोंकी आशा मिटजावै, अरु सत्य शीत-

लता, संतुष्टता हृदयविषे आय प्राप्त होवै, तब चित्तरूपी भ्रम निवृत्त हो जाताहै, जब मोह अरु तृष्णा निवर्त्त करिये अरु नित्य संवित् होवै, तब चित्त शांत भूमिकाको प्राप्त होता है॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी स्थिति स्वरूपविषे भई है, सो आपको देहते दूर देखता है, तिस सम्यक्दर्शीके चित्तकी भूमिका कहीहै, जब अनंत चैतन्य तत्त्वकी भावना होतीहै, अरु दृश्यको त्यागिकरि आत्मरूपविषे प्राप्त होताहै तब वह पुरुष सब जगत्को अपना अंगही देखताहै. अर्थ यह कि, अपना सब स्वरूप देखताहै, ऐसे जो आत्मरूप देखताहै, तिसको जीवत्वादिक भ्रम कहा है, जब अज्ञान-भ्रम निवृत्त होता है, तब परम अद्वैतपद उदय होता है जैसे रात्रिके क्षीण हुए सूर्य उदय होताहै, तैसे मोहके निवर्त हुए आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होताहै, तब चित्त नष्ट होजाताहै, जैसे सूखा पत्र अग्निविषे दग्ध हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष है, अरु परावरदर्शी है, सर्वत्र ब्रह्म जिसको दृष्ट आया है तिसका चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है, सो चित्त सत्य कहाता है, अरु तिसविषे वासना भी दृष्ट नहीं आती है, सो चेतन मन है, वह चित्त सत्यपदको प्राप्त भया है यह जगत् ज्ञानवान्को लीलामात्र भासता है, अरु अंतरते शांतरूप है, नित्यतृप्त है, सर्वदा उसको आत्मज्योति भासतीहै, विवेककरिकै उसके चित्तसों जगत्की सत्ता निवर्त हो गई है, अरु स्वरूपविषे स्थिति पाईहै, सो चित्त-सत्ता कहाती है बहुरि वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टआता है, अरु मोहको नहीं प्राप्त होता, जैसे भूना बीज उगता नहीं, तैसे ज्ञानीको चेष्टा जन्मका कारण नहीं, अरु जो अज्ञानी है, तिसकी वासना मोहसंयुक्त है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानी वासना करिकै बहुरि बहुरि जन्म लेता है, अरु जिस चित्तसों आसक्ति निवर्त भई है, सो तिसकी वासना जन्मका कारण नहीं वह चित्तसत्ता कहाती है॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंने पानेयोग्य पद पाया है, अरु ज्ञानाग्नि करिकै चित्तको दग्ध किया है, सो बहुरि जन्म नहीं लेता, जेता कछु जगत् है, सो तिसको सब ब्रह्मरूप है, जैसे वृक्ष अरु तरु नाममात्र हैं, वस्तुते

एकही है, तैसे ब्रह्म अरु जगत् नाममात्र दो हैं, वस्तुते एकही है, जैसे जलविषे तरंग अरु बद्बुदे जलरूप हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, चेतन आत्मारूपी मिर्च है, अरु जगतरूपी तीक्ष्णताहै ॥ हे रामजी ! ऐसा ब्रह्म तू है, अरु जो तू कहै मैं चित्त नहीं, तौ कछु माना जाता है, क्यों, जो तू कहै, मैं जड हौं, तौ तू आकाशवत् हुआ, तेरे विषे कलनाका उल्लेख कैसे होवै, अरु जो चेतन है तौ शोक किसका करता है, अरु जो चिन्मय है तौ निरायास आदि अंतते रहित हुआ, सब तूही है, अपने स्वरूपको स्मरण करौ, तब शांतिको प्राप्त होवोगे जो सब भावविषे स्थित है, अरु सबको उदय करनेहारा है, सो तूही है, शांतरूप है, तू चैतन्य ब्रह्मरूप है ॥ हे रामजी ! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है, तिसके उदरविषे वासनारूपी फुरणा कहां होवै ? वह तौ महाघनरूप है ॥ हे रामजी ! जो तू है, सो सोई है, उस अरु तेरेविषे भेद कछु नहीं, सोई सत् अरु असत्रूप होकरि भासता है, सब पदार्थ जिसके अंतर हैं, अरु नानात्व जिसविषे कछु नहीं, अहं त्वं अज्ञ तज्ज्ञ जिसविषे कलना कछु नहीं, ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है, तिसको नमस्कार है ॥ हे रामजी ! तेरी जय होवै, कैसा है तू आदि अरु अन्तते रहित विशाल है, अरु शिलाके अंतर्वत् चिद्घनस्वरूप है, आकाशवत् निर्मल है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, तैसे तेरेविषे जगत् है, सो लीलामात्र है, तू अपने घनस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

ब्रह्मैकप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे निःपाप रामजी ! जिस चेतनरूपी समुद्रविषे जगतरूपी तरंग फुरते हैं, अरु लीन हो जाते हैं, ऐसा अनंत आत्मा है सो तू भवकी भावनाते मुक्त है, अरु भाव अभावते रहित है, ऐसा जो चिदात्मा तेरा स्वरूप है, सो सर्व जगत् वहीरूप है, तब वासनादिक

आवरण कहां है, जीव अरु वासना सब आत्माका किंचन है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, तब अपर कथा प्रसंग कैसे होवै ॥ हे रामजी ! महासरल गम्भीर प्रकाशरूप जो चैतन्य समुद्र है, सो तेरा रूपहै, अरु रामरूपी एक तरंग फुरि आया है, सो समुद्र तू है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सोई जगत्रूप होकारि व्यापारी भासता है, जैसे अग्नितै उष्णता भिन्न नहीं अरु जैसे फूलते सुगन्धी भिन्न नहीं जैसे कज्जलते कृष्णता भिन्न नहीं, अरु बर्फते शुक्लता भिन्न नहीं, जैसे गुडते मधुरता भिन्न नहीं, अरु जैसे सूर्यते प्रकाश भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मते अनुभव भिन्न नहीं, नित्यरूप है, अनुभवते अहं भिन्न नहीं, अहंते जीव भिन्न नहीं, जीवते मन भिन्न नहीं, मनते इंद्रियां भिन्न नहीं, इंद्रियोंते देह भिन्न नहीं, अरु देहते जगत् भिन्न नहीं. इसप्रकार महाचक्र प्रवृत्तकी नाईं हुआ है, सो कछु प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवृत्त्या है, न चिरकालका प्रवृत्त्या है, न कोऊ ऊन है न अधिक है, सर्व एक अखंड सत्ता परमात्मतत्त्व है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, वही सत्ता वज्रभूत होकारि स्थित है, वही पूर्ण होकारि स्थित है, इतर द्वैतकलपना कछु नहीं ऐसे अपने स्वरूपविषे जो पुरुष स्थित है, सो जीवन्मुक्त है, ऐसा जो ज्ञानवान् है, सो मन इंद्रियां शरीरकी चेष्टा भी कर्ता है, अरु उसको कर्तव्यका लेप कछु नहीं लगता ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को न कछु त्यागने योग्य रहता है, न ग्रहण करने योग्य रहता है, सर्व पदार्थते निर्लेप रहता है, जबलग इसकी ग्रहणत्यागकी बुद्धि होती है, तबलग संसारके सुखदुःखका भागी होता है, इस हेयोपादेयका जिसको अभाव है, सो सुखदुःखका भागी नहीं होता ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत् कछु नहीं, जैसे घट मठकी उपाधि कारि आकाश नानाप्रकार भासता है, जैसे समुद्र तरंगकारि अनेकरूप भासता है, अरु नानात्वभावको प्राप्त नहीं होता. तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु नानात्वको नहीं प्राप्त होता, ऐसे स्वरूपको जानिकारि तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! अन्तर प्रकाशकी नाईं निर्मल स्थित

होहु, अरु बाह्यते अपने वर्णाश्रमका व्यवहार करौ, काष्ठ पत्थरकी नाईं अंतर हर्षशोकते रहित स्थित होहु, संवित्मात्र आत्माको जो अपना रूप देखता है, सोई सम्यक्दर्शी है, तिसका अज्ञान अरु मोह नष्ट होजाता है, जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षको काटता है, तैसे आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानको काटता है, मित्रता वैर हर्ष शोक राग द्वेष आदिक जो विकार हैं, सो चित्तविषे रहते हैं, सो चित्त उसका नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है, अरु सोता कदाचित् नहीं, जिसका अनात्मविषे अहंभाव निवृत्त भया है अरु बुद्धि जिसकी लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष इस लोकको मारै तौ भी उसने कोई नहीं मारा अरु न वह बंधायमान होता है॥ हे रामजी! जो वस्तु होवै नहीं अरु भासै, तिसको मायामात्र जानिये उसको जानेते नष्ट होजावैगी जैसे तेलविना दीपक शांत हो जाता है, तैसे ज्ञानकरि वासना क्षय हो जाती है, चित्त अचित्त हो जाताहै, जिसको सुखदुःखविषे ग्रहण त्याग नहीं सो जीवन्मुक्त आत्मस्थित है॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः॥ ३॥

चतुर्थः सर्गः ४.

चित्तभावाभाववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, इंद्रियादिक जो दृश्य है, सो सब अचिंत्य चिन्मात्र है, जीव भी अभिन्नरूप है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं, तैसे चिन्मात्र अरु जीवादिक अभिन्न हैं, जबलग चित्त अज्ञानमें होता है, तबलग जगत्का कारण होता है, जब अज्ञान नष्ट होता है, तब चित्तादिकका अभाव हो जाता है, अध्यात्मविद्या जो वेदांतशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि नष्ट हो जाता है, जैसे अग्निके तेजकरि शीतका अभाव हो जाता है, तैसे अध्यात्मविद्याके अभ्यास विचारते अज्ञान नष्ट हो जाता है जबलग अज्ञानका कारण तृष्णा उपशमको प्राप्त नहीं भई, तबलग अज्ञान है, जब

तृष्णा नाश होवै तब जानिये कि अज्ञानका अभाव भया है ॥ हे रामजी ! तृष्णारूपी विषूचिका रोग है, तिसके नाश करनेका मंत्र अध्यात्मशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि तृष्णा क्षीण हो जाती है. जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे आत्म अभ्यासकरि चित्त शांत हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे विचारकरि मूर्खता नष्ट हो जाती है, जब चित्त अचित्तताको प्राप्त होता है, तब वासनाभ्रम क्षीण हो जाता है जैसे तागेसाथ मोती परोये होते हैं, तागेके टूटेते मोती भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे अज्ञानके नष्ट हुवे मन-आदिक सब नष्ट हो जातेहैं. अरु जो पुरुष आध्यत्मशास्त्रके अर्थको नहीं धारते, अरु प्रीति नहीं करते, सो पापी कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवैंगे ॥ हे कमलनयन ! तेरेविषे जो कछु मूर्खता चंचलता थी सो नष्ट होगई है, जैसे पवनके ठहरेते जल अचल होता है, तैसे तू स्थिरताको प्राप्त भया है, भावअभावरहित परम आकाशवत् निर्मलपदको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! ऐसे मैं मानता हौं, कि मेरे वचनोंकरि तू बोधको प्राप्त हुआ है, अरु विस्तृत अज्ञानरूपी निद्राते जागा है, सामान्य जीव भी हमारी वाणीकरि जाग पड़ते हैं, तू तौ अति उदारबुद्धि है, तेरे जागनेविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! जब गुरु दृढ़ होता है, अरु शिष्य शुद्ध पात्र होता तब गुरुके वचन उसके अंतर प्रवेश करते हैं, सो मैं गुरु भी समर्थ हौं जो मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है, अरु सच्छास्त्रके अनुसार मैं वचन कहे हैं, अरु तेरा हृदय भी शुद्ध है, तिसविषे प्रवेशकरि गये हैं, जैसे तृप्त पृथ्वीके क्षेत्रविषे जल प्रवेशकरि जाताहै, तैसे तेरेविषे वचनोंने प्रवेश कियाहै ॥ हे राघव ! हम महानुभाव रघुवंशकुलके बड़े गुरुके गुरु हैं, हमारे वचन तुमको धारणे आतेहैं,अरु खेदते रहित होकरि अपने प्रकृत आचारको करौ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इसप्रकार मुनीश्वरने जब कहा तब सूर्य अस्त होने लगा, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै अपने स्थानको गई, रात्रिके व्यतीत हुए सूर्यकी किरणोंसाथ बहुरि आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावाभाववर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.
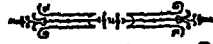
राघवविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! मैं परम स्वस्थताको प्राप्त भया हौं, अब अपने आपविषे स्थित हौं, अरु तुम्हारे वचनोंकी भावनाकरि जगत्-जाल स्थित हुवे भी मुझको शांत होगई है, अरु आत्मानंदकरि तृप्त भया हौं. जैसे बडी वर्षाकरि पृथ्वी तृप्त होती है, तैसे मैं तृप्त सम शीतल भया हौं, अरु प्रसन्नताको पाइकरि स्थित हौं, अरु सर्व ओरते केवल आत्मरूप मुझको भासता है, नानात्वका अभाव भया है, जैसे कुहिडते रहित दिशा अरु आकाश निर्मल भासता है, तैसे सम्यक्ज्ञान करि मुझको शुद्ध आत्मा भासता है, अरु मोह निवृत्त हो गया है, मोह-रूपी जंगलविषे तृष्णारूपी मृग था, अरु रागद्वेष आदिक धूर कुहिड़ थी, सो सब निवृत्त हो गई हैं, ज्ञानरूपी वर्षाकरि सब शांत हो गयेहैं, अब मैं आत्मानंदको प्राप्त भया हौं जो आदिअंतते रहित हैं, अरु अमृत है, अमृतका स्वाद भी तिसके आगे तुच्छ भासता है, ऐसे अपने आनंद स्वभावको प्राप्त भया हौं, मैं राम हौं. अर्थ यह कि, सबविषे रमणेहारा हौं, मेरा मुझको नमस्कार है, अब मैं सर्व संदेहते रहित हौं, सब संशय अरु विकार मेरे नष्ट भये हैं, जैसे प्रातःकालकरि निशाचर वैताल आदिक निवृत्त हो जाते हैं, तैसे मेरे रागद्वेषादिक विकारका अभाव भया है, निर्मल विस्तीर्ण हिमकी नाईं हृदयकमलविषे स्थित हौं, जैसे भँवरा फिरता फिरता कमलविषे आय स्थित होता है, तैसे मैं आत्म-रूपी सारविषे स्थित हौं; अविद्यारूपी कलंक आत्माको कहां था, मैं तौ निश्चय करि निर्मलताको प्राप्त भया हौं, जैसे सूर्यके उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, तैसे मेरे संशय अरु अविद्या नाश भई है, सर्व आत्मा भासता है, अरु कलना कोई नहीं, भावित आकार अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, पूर्व प्रकृतिको देखिके हँसता हौं, कि क्या जानता था, अरु क्या करता था, मैं तौ नित्य शुद्ध ज्योंका त्यों आदिअंतते रहित हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तेरे वचनरूपी अमृतके समु-

द्रविषे मैं स्नान किया है, तिसकरि अजर अमर आनंदपदको प्राप्त भया हौं, अरु सूर्यते भी ऊंचे पदको प्राप्त भया हौं, अरु वीतशोक होकरि परमशुद्धता समता शीतलता अनुभव अद्वैतको प्राप्त भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राघवविश्रांतिवर्णनं नाम पंचमःसर्गः५॥

षष्ठः सर्गः ६.

अज्ञानमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो ! बहुरि भी मेरे परम वचन सुन, तेरे हितकी कामना करिकै मैं कहता हौं, अब आत्मपदको तू प्राप्त भया है, परंतु बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि सुन, जिसके श्रवणकरि अल्पबुद्धि भी आनंदपदको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जिसको अनात्मविषे आत्माभिमान है अरु आत्मज्ञान नहीं, तिसको इंद्रियांरूपी शत्रु दुःख देते हैं, जैसे निर्बल पुरुषको चोर दुःख देते हैं तैसे अज्ञानीको इंद्रियां दुःख देती हैं, अरु जिसको आत्मपदविषे स्थिति भई है, तिसको इंद्रियां दुःख नहीं देती, जैसे दृढ राजाके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तैसे ज्ञानवान्के इंद्रियगण मित्र होते हैं अरु जिस पुरुषको देहविषे स्थित बुद्धि है, अरु इंद्रियोंके विषयकी सेवना करते हैं, तिसको बड़े दुःख प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु शरीरका सम्बन्ध कछु नहीं, यह परस्पर विलक्षण स्वभाव है, तैसे तम अरु प्रकाश विलक्षण स्वभाव है, तैसे आत्मा अरु देहका परस्पर विलक्षण स्वभाव है, आत्मा सर्व विकारते रहित नित्य मुक्त है, अरु उदय अस्तते रहित सबसों निर्लेप है, सदा ज्योंका त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्रूप है, तिसका संबन्ध किससे होवै, देह जड अरु असत्य अज्ञानरूप तुच्छ विनाशी अकृतज्ञ है, तिसका संयोग किम भांति होवै, आत्मा चैतन्य ज्ञान सत् प्रकाशरूप है, तिसका देहसाथ कैसे संयोग होवै,अज्ञान करिकै देहअरु आत्माका संयोग भासताहै, सम्यक्ज्ञान करिकै संयोगका अभाव भासता है हे रामजी!यह मैं निपुण वचन कहेहैं,तिनका वारंवार अभ्यास करेते संसारमोहका अभावहो

जावैगा, जब संसारका कारण मोह निवृत्त हुआ, तब बहुरि सद्भाव न होवैगा, जबलग अज्ञानरूपी निद्राते दृढ होकरि नहीं जागता, तबलग बहुरि आवरण हो जाता है, जैसे निद्राके जागेते बहुरि निद्रा घेरि लेती है, जब दृढ़करि जागै तब बहुरि नहीं घेरती, तैसे दृढ़ अभ्यासकरि अज्ञाने निवृत्त हुआ बहुरि आवरण न होवैगा, ताते मोहदुःख निवृत्तिके अर्थ दृढ़ अभ्यास करहु॥ हे रामजी! आत्मा देहके गुणको अंगीकार नहीं करता, जब देहके गुण अंगीकार करै, तब आत्मा भी जड़ हो जावै, सो तौ सदा ज्ञानरूप है, अरु जो देह आत्माका गुण परमार्थते अंगीकार करै, तौ देह भी चेतन हो जावै, सो तौ जडरूप है, इसको अपना ज्ञान कछु नहीं, जब ज्योंका त्यों इसका ज्ञान होवै, तब शरीर तुच्छ जड़ भासै॥ हे रामजी! देह अरु आत्माका संयोग संबंध कछु नहीं, अरु समवाय संबंध भी नहीं, बहुरि इससे मिलिकरि वृथा दुःखोंको ग्रहण करना, इसते अपर मूर्खता क्या है, यही मूर्खता है, जब कछु भी इसका समान लक्षण होवै; तब संबंध भी होवै, जिनका समान लक्षण कछु न होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतन है, देह जड़ है, आत्मा सत्‌रूप है, देह असत्‌रूप है, आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है, आत्मा निराकार है, देह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है, देह स्थूल है, बहुरि आत्मा अरु देहका संबंध कैसे होवै, जब संयोग नहीं, तब दुःख किसका होवै; जैसे सूक्ष्म अरु स्थूलका संयोग नहीं होता, जैसे दिन अरु रात्रिका संयोग नहीं होता, जैसे ज्ञान अरु अज्ञानका संयोग नहीं होता, जैसे धूप अरु छायाका मिलाप नहीं होता, जैसे सत् अरु असत्‌का संयोग नहीं होता, तैसे आत्मा अरु देहका संयोग नहीं होता, अज्ञानकरिकै तत्त्वरूप मिले हुए भासते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे वायु अरु आकाशका संयोग नहीं होता, तैसे इनका संयोग नहीं होता; देहके सुखदुःखकरि आत्माको सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रम है, जरा मरण सुखदुःख भाव अभाव आत्माविषे रंचकमात्र भी नहीं, जब देहविषे अभिमान होता है, तब ऊंच नीच जन्मको पाता है, वास्तवते कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे विकार

कोई नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे होता है, अरु जलके हलनेकरि प्रतिबिंब चलता भासता है, तैसे देहके सुखदुःखकरि आत्माविषे सुखदुःख विकार मूर्ख देखते हैं, आत्मा सदा निर्लेप है अरु जब सम्यक् यथाभूत आत्मज्ञान होवै, तब देहविषे स्थित भी भ्रमको न प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब यथाभूत ज्ञान होता है, तब सत्को सत् जानता है, अरु असत्को असत् जानता है, जैसे दीपक हाथविषे होता है, तब सत् असत् पदार्थ भासते हैं, तैसे ज्ञानकरि सत् असत् यथार्थ जानता है, अरु अज्ञानकरि मोहविषे भ्रमता है, जैसे वायुकरि पत्र भ्रमता है; तैसे मोहरूपी वायुकरि अज्ञानी जीव भ्रमता है, स्वस्थ कदाचित् नहीं होता, जैसे यंत्रकी पूतली तागे करिकै चेष्टा करती है, तैसे अज्ञानी जीव प्राणोंरूपी तागेकारि चेष्टा करते हैं, जैसे नटुआ अनेक स्वांगको धारता है, तैसे कर्मकरि जीव अनेक शरीरको धारताहै; जैसे पेषणकी पुतली तृण काष्ठ फूलादिकको लेती त्यागती है, अरु नृत्य करती है, तैसे यह प्राणी चेष्टा करते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंधका ग्रहण करते हैं, जैसे पुतलियां जड़ हैं, तैसे यह जड है, अरु जो कहिये इनविषे प्राण है, तो जैसे लुहारकी खाल होती है, वह श्वासको लेती त्यागती है, तैसे यह जीव भी चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी ! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकरिकै मोह कृपणताको प्राप्त होते हैं. जैसे लुहारकी खाल वृथा श्वासको लेतीहै, तैसे इनकी चेष्टा व्यर्थ है, इनकी चेष्टा अरु बोलना अनर्थके निमित्त है. जैसे धनुष्यते जो बाण निकसताहै, सो हिंसाके निमित्त हैं, और कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा अरु बोलना अनर्थ दुःखके निमित्त है; सुखके निमित्त नहीं, तिसकी संगति भी कल्याणके निमित्त नहीं, जैसा जंगलका ठूंठा वृक्ष होता है, तिसके छाया अरु फलकी इच्छा करनी व्यर्थ है, तिसते कछु फल नहीं प्राप्त होता, अरु विश्रामके निमित्त छाया भी नहीं प्राप्त होती, तैसे अज्ञानी जीवकी संगतिते सुख नहीं प्राप्त होता, तिनको देना भी व्यर्थ है, जैसे चीकड़विषे घृत डाला व्यर्थ होता है तैसे मूर्खको दान दिया व्यर्थ होता है, अरु तिनकेसाथ

बोलना भी व्यर्थ है, जैसे यज्ञविषे श्वानको बुलाना निष्फल है तैसे उनके साथ बोलना निष्फल है ॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी जीव हैं, सो संसारविषे आते जाते जन्मते मरते हैं, शरीरविषे आस्था करते हैं अरु पुत्र दारा बांधव धनादिकविषे ममत्वबुद्धि करते हैं, इस मिथ्या दृष्टि-करिकै दुःख पाते हैं, मुक्ति कदाचित् नहीं होती. काहेते कि, अनात्मा-विषे आत्मबुद्धिको त्याग नहीं करते, अरु ममताबुद्धिविषे दृढ रहते हैं, इसीते मुक्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी हैं, सो असत् पदार्थको देखते हैं, अरु वस्तुरूपकी ओरते अंध हैं; इसकरि परमार्थ धनते विमुख रहते हैं, नरकका सार जो स्त्रियादिक हैं, तिनविषे प्रीति करते हैं, अरु तिनको देखिकरि प्रसन्न होते हैं, जो नरकका साधन हैं, जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होता है, तैसे स्त्रियादिकनको देखिकरि मूर्ख प्रसन्न होते हैं ॥ हे रामजी ! मूर्खके मारनेनिमित्त विषकी तिनके वल्ली है, अरु नेत्ररूप तिसके फूल हैं, होठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी तिनके गुच्छे हैं, अरु अज्ञानरूपी भँवरे तहां विराजमान होते हैं, अरु नाशको पाते हैं. अरु मतिरूपी तलाव है अरु हर्षरूपी तिसविषे कमल हैं, चित्तरूपी भँवरा तहां सदा रहता है, अरु अज्ञानरूपी नदी है, दुःखरूपी तिसविषे लहरी हैं, अरु तृष्णारूपी बुद्‌बुदे हैं, ऐसी जो नदी है, सो मरणरूपी वडवाग्निविषे जाय पड़ैगी ॥ हे रामजी ! जब जन्म लेता है, तब महागर्भ अग्निते जलता हुआ निकसता है, सो महामूर्ख अवस्था निरस कर दुःखी होता है, अरु जब यौवन अवस्थाको प्राप्त होता है; तब विषयको सेवता है, सो भी दुःखका कारण होते हैं, बहुरि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है, तब शरीर अशक्त होता है, अरु अंतरते तृष्णा पडी जलावती है, इस प्रकार जन्ममरण अवस्थाविषे पड़े भटकते हैं ॥ हे रामजी ! संसाररूपी कूप है, तिसविषे मोहरूपी घटमाला है, अरु तृष्णा वासनारूपी रसडीसे बाँधे हुये जीवरूपी टीड भ्रमते हैं, अरु ज्ञानवान्को संसार कोऊ दुःख नहीं देता गोपदकी नाईं तुच्छ होजाता है, अरु अज्ञानीको समुद्रवत् तरणा कठिन होता है, अपने अंतरही भ्रमको देखता है, निकसि नहीं सकता, थोडाभी उसको बहुत

हो जाता है, जैसे पक्षीको पिंजरेविषे बडा मार्ग होता है, अरु जैसे कोल्हूके बैलको घरहीविषे बड़ा मार्ग होता है, तैसे अज्ञानीको तुच्छ संसार बडा हो भासताहै ॥ हे रामजी ! जिस जगत्को रमणीय जानिकरि पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब पांचभौतिक पदार्थ हैं, मोह करिकै तिनको सुंदर जानता है, अरु तिनविषे प्रीति करता है, स्थिर जानता है, सो अनर्थके निमित्त होते हैं ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी चंद्रमा उदय हुआ है, तिस करि भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं, जन्मकी परंपरा रसको पावते अरु कर्मरूपी जलकरि सिंचते हैं, पुण्य अरु पापरूपी मंजरी होती है, अरु अज्ञानरूपी चंद्रमा है, अरु वासनारूपी अमृत है, आशारूपी चकोर तिसको देखिकरि प्रसन्न होता है, अरु आशारूपी कमलिनी है, अज्ञानीरूपी भँवरा तिसपर बैठिकरि प्रसन्न होता है, ताते सब जगत् विज्ञानकरिकै रमणीय भासताहै ॥ हे रामजी ! यह जगत् अज्ञानकरिकै स्थित है, तिस अज्ञानका प्रवाह सुन, अज्ञानरूपी चंद्रमा पूर्ण होकरि स्थित होताहै, तब कामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है, अरु अनेक तरंगको पसारता है, तिसके रसकरि तृष्णारूपी मंजरी पुष्ट होती है, अरु काम क्रोध लोभ मोहरूपी चकोर तिसको देखि प्रसन्न होते हैं, अरु देह अभिमानरूपी रात्रिके निवृत्त हुए अरु विवेकरूपी सूर्यके उदय हुए अज्ञानरूपी चंद्रमाका प्रकाश निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै यह जीव भ्रमते हैं, अरु चेष्टा इनकी विपर्यय होगई है, जो तुच्छ नीच दुःखरूप पदार्थ हैं, तिनको देखिकरि सुखदायक रमणीय जानते हैं, स्त्रीको देखि प्रसन्न होते हैं, कवीश्वर कहते हैं, इसके कपोल कमलवत् हैं, अरु नेत्र भँवरेवत् हैं, होठ हँसनेवाले हैं, अरु वल्लीकी नाईं इसकी भुजा हैं, अरु कंचनके कमलवत् स्तन हैं, उदर अरु वक्षस्थल बहुत सुंदर हैं औ जंघास्थल केलेके स्तंभवत्, इत्यादिक जिसकी स्तुति करते हैं, सो स्त्री रक्तमांसकी पूतली है, कपोल भी रक्तमांस हैं, होठ भी रक्तमांस हैं, भुजा विषके वृक्षके टासवत् हैं, स्तन भी रक्तमांस हैं, और भी संपूर्ण शरीर रक्तमांस अस्थिकरि पूर्ण एक बुत बनी है, इसको जो रमणीय जानते हैं, सो मूर्ख मोहकरि मोहित भये हैं, अपने नाशके निमित्त

इसकी इच्छा करते हैं, जैसे सर्पिणीसे कोऊ हित करैगा सो नाशको प्राप्त होवैगा; तैसे इससे हित किये नाश होवैगा, जैसे कदलीवनका हस्ती महाबली कामकरि नीच गतिको पाता है, अरु संकटमें पडता है, अंकुशको सहता है, अपमानको प्राप्त होताहै, सो एक हस्तिनीके हितकरि ऐसी गतिको प्राप्त होता है, तैसे यह जीव स्त्रीकी इच्छा करिकै अनेक दुःखको प्रात होते हैं, जैसे दीपकको रमणीय जानकरि तिसविषे पतंग प्रवेश करता, अरु नाशको प्रात होता है, तैसे यह जीव स्त्रीकी इच्छा करता है, तिसके संगकरि नाशको प्राप्त होता है, अरु लक्ष्मीका आश्रय करिकै जो सुखकी इच्छा करता है, सो भी सुखी न होवैगा, जैसे पहाड़ दूरते देखनेमात्र सुंदर भासता है तैसे यह भी देखनेमात्र सुंदर लगती है, और लक्ष्मीका आश्रय करिकै सुखकी इच्छा करै सो न होवैगा, अंत दुःखको प्राप्त होवैगा, जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ पापको करने लगता हैं, अरु दुःखका पात्र होता है, जब जाती है, तब दुःखको दे जाती है, तिसकरि जलता रहता है ॥ हे रामजी ! जगत्‌विषे जो सुखकी इच्छा करै, सो न होवैगा, प्रथम जन्म लेता है, तब भी दुःखसाथ जन्म लेता है, बहुरि जन्मकरि मूर्ख नीच बालक अवस्थाको प्राप्त होता है तिसविषे विचार कछु नहीं होता, तिसकरि दुःख पाता है, अरु शक्ति कछु नहीं होती, तिसकरि दुःख पाता है, जब यौवन अवस्थारूपी रात्रि आती है, तब तिसविषे काम क्रोध लोभ मोहरूपी निशाचर आय विचरते हैं, अरु तृष्णारूपी पिशाचिनी आय विचरती है, विवेकरूपी चंद्रमा उदय नहीं होता, तब अंधकारविषे सब क्रीडा करते हैं ॥ हे रामजी ! यौवनअवस्थारूपी वर्षाकाल है, तिस विषे बुद्धि आदिक नदियां मलिनभावको प्राप्त होती हैं, अरु कामरूपी मेघ गर्जता है, तृष्णारूपी मोरनी तिसको देखिकरि प्रसन्न होती है; अरु नृत्य करती है, अरु लोभरूपी दुजाग आवते हैं, अरु शब्द करते हैं, इत्यादिक अनर्थका बीज होताहै, बहुरि यौवन अवस्थारूपी चूहेको जरा-रूपी बिल्ली भोजनकरि लेती है, अंग महाजर्जरीभूत हो जाते हैं, शरीर

असक्त होजाता है, तृष्णा बढती जाती है, अंतरते पड़ा जलता है, बहुरि मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिणको भोजन करि लेता है, इसप्रकार उपजता अरु मरता है आशारूपी रसडीसे बांधा हुआ घटीयंत्रकी नाईं पडा भटकता है, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! ब्रह्मांड-रूपी एक वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसको पत्र लगे हैं, सो कर्मरूपी वायु-करि हलते हैं अरु अज्ञानरूपी तिसविषे जडता है, अरु चित्तरूपी ऊंचा वृक्ष है, तिसऊपर लोभादिक घूघू आय बैठते हैं अरु जगत्‌रूपी ताल है, तिसविषे शरीररूपी कमल हैं, तिनविषे जीवरूपी भँवरे आय बैठते हैं, अरु कालरूपी हस्ती आयकरि तिसको भोजनकरि जाता है ॥ हे रामजी ! यत्नरूपी जीर्ण पक्षी है आशारूपी फांसीसे बांधे हुए वासनारूपी शिक्षाविषे पड़े रहे हैं, रागद्वेषरूपी अग्निविषे पडेहुए कालरूपी पुरुषके मुखमें प्रवेश करतेहैं, अरु जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं, सो कोऊ दिन तिसकोजब कालरूपीव्याध जाल पसारैगा, तब फँसाय लेवैगा ॥ हे रामजी ! संसाररूपी तालहै, अरु जीवरूपी तिसविषे मच्छियांहैं, कालरूपी बगला तिनको भोजन पड़ा करता है, अरु कालरूपी कुंभार है, जन-रूपी मृत्तिकाके बासन करता है, बहुरि शीघ्रही फुटि जाते हैं, अरु जीवरूपी नदी है, कर्मरूपी तरंगको पसारती है, सो कालरूपी वडवा-ग्निमें जाइ पडती है, अरु जगद्रूपी हस्ती है जीवरूपी मोती तिसके मस्तकविषे है, तिस हस्तीको कालरूपी सिंह भोजन करि जाता है, सो कालरूपी भक्षक है, जिसने ब्रह्माहूको भोजन किया है, अरु करता है, तृप्त नहीं होता जैसे घृतकी आहुतिकरि अग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे काल जीवके भोजनकरि तृप्त कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! एक निमेषविषे जगत् उपजता है, अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है, सबके अभाव हुए जो शेष रहता है, सो रुद्र है, बहुरि निवृत्त हो जाता है, सबके पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञान करिकै भासता है, जन्म मरण बालक यौवन वृद्धादिक विकार अज्ञानकरि भासते हैं, अज्ञानके नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं, अरु जबलग आत्मविचार नहीं

उपजा, तबलगे अज्ञान रहता है, जब आत्मविचार उपजताहै, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, केवल ब्रह्मपद भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः॥६॥

सप्तमः सर्गः ७.

अविद्यालतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन है, सो चेतनरूपी पर्वतके शृंगऊपर स्थित है, तिसविषे अविद्यारूपी वल्ली बढी है, अरु विकासको प्राप्त भईहै, अरु सुख दुःख भाव अभाव अज्ञान इसके पत्र फूल फल हैं, जहां अविद्या सुखरूप होकरि स्थित होती हैं, तहां ऊंचे सुखको भोगावती है, तिसके सत्ताभावको प्राप्त होती है, अरु सुखरूप होकरि स्थित होतीहै, तहां दुःखरूप भासतीहै, सोई सुखदुःख इसके फलगुच्छे हैं, दिनरूपी फूल हैं, अरु रात्रिरूपी भँवरे हैं, जन्मरूपी अंकुरहैं, अरु भोगरूपी रसकरि पूर्णहै, जब विचाररूपी घुण अविद्यारूपी वृक्षको खाने लगताहै, तब नष्ट हो जाती है, जबलग विचाररूपी घुण नहीं लगा, तबलग दिन दिन बढ़ती जातीहै, अरु दृढ़ हो जाती है ॥ हे रामजी! अविद्यारूपी वल्लीहै, अरु मूल इसका संवित् फुरणाहै, तिसकरि पसरीहै, तारागण इसके किसी ओर फूल हैं, चंद्रमा सूर्य इसका प्रकाश है, अरु दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं, अरु शुभ कर्मरूपी स्वर्ग इसके फूल प्रकाशे हैं, अरु सुखदुःखरूपी फल लगतेहैं, जीवरूपी उसके पत्रहैं, अरु कालरूपी वायुकरि हलतेहैं, कई जीर्ण होकरि गिर पड़ते हैं, पृथ्वीरूपी त्वचा है, पर्वत घोडे हैं, मरणरूपी इसविषे छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, मोहरूपी कलियां हैं, महासुंदर गौर अंगहै, तिसकरि जीव मोहित होते हैं, जैसे स्त्रीको देखिकरि मोहित होते हैं, अरु सप्त समुद्रके जल करि सिंचती है, तिसकरि पुष्ट होती है, तिस वल्लीविषे एक विषकी भरी सर्पिणी रहती है, जो कोऊ उसके निकट जाता है तिसको काटती है, तब वह मूर्च्छाकरि गिर पड़ता है, संसाररूपी मूर्च्छाको देनेहारी तृष्णा-

रूपी सर्पिणी है, सो वल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती; जब विचाररूपी घुण इसको लगै, तब नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुझको भासताहै, सो अविद्यारूप है, कहूं अविद्या जलरूप हुई है, कहूं पहाड़, कहूं नाग, कहूं देवता, कहूं दैत्य, कहूं पृथ्वी हुई है, कहूं चंद्रमा, कहूं सूर्य, कहूं तारे, कहूं तम, कहूं प्रकाश, कहूं तेज, तमते रहित, कहूं पाप, कहूं पुण्य, कहूं स्थावर मूढरूप, कहूं अज्ञानकरि दीन होती है. कहूँ ज्ञानकरि आपही क्षीण हो जाती है, कहूं तप दान आदिककरि क्षीण होती है, पापादिककरि वृद्ध होती है, कहूँ सूर्यरूप होकरि प्रकाशती है, कहूं स्थानरूप होती है, कहूँ नरकविषे लीन है, कहूँ स्वर्गनिवासी है, कहूँ देवता होती है, कहूँ कृमि होती है, कहूँ विष्णुरूप होकरि स्थित भई है, कहूँ ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, कहूँ रुद्र है, कहूँ अग्निरूप कहूँ पृथ्वीरूप भई है ॥ कहूँ आकाशके काल भूत भविष्य वर्तमान भई है ॥ हे रामजी ! जो कछु देखनेमें आता है, सो सब इसकी महिमा है, ईश्वरते आदि तृणपर्यंत सब अविद्यारूप है, जो इस दृश्यजालते अतीत है, तिसको आत्मलाभ जान ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यालतावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अविद्यानिराकरणम् ।

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! हरि विष्णु अरु हर आदिक तौ शुद्ध आकार आकाश जाति हैं, इनको अविद्या तुम कैसे कहते हौ, यह सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम अविद्या अरु तत्त्व श्रवण कर, कि किसको कहतेहैं, जो अविद्यमान होवै, अरु विद्यमान भासै, सो अविद्या है, अरु जो सदा विद्यमानहै, तिसको तत्त्व कहते हैं॥हे रामजी! शुद्ध संवित् कलनाते रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है, सो तत्त्व है, तिसविषे जो अहं उल्लेखकारि संवेदन कलना पूर्णरूप फुरी है, सो चिन्मात्र संवित्का आभास है, सोई फुरिकारि सूक्ष्म स्थूल

मध्यभावको प्राप्तभईहै, स्थानभेदकरि बहुरि वही दृढ स्पंदकरि मनभावको प्राप्त भई है, अरु सात्त्विक राजस तामस तीनों उसके आकार हुएहैं, सो अविद्या त्रिगुण प्राकृत धर्मिणी होत भई है, अरु तीन गुण जो तुझको कहे हैं, सोभी एक एक गुण तीन प्रकार हुआ है, अविद्याके गुण नव प्रकारके भेदको प्राप्त भये हैं, जेता कछु तुझको दृश्य भासता है, सो अविद्याके नवगुणविषे ऋषीश्वर मुनीश्वर सिद्ध नाग विद्याधर देवता जो हैं, सो अविद्याका सात्त्विक भाग है, तिस सात्त्विकके विभागविषे नाग सात्त्विक तामस हैं, अरु विद्याधर सिद्ध देवता मुनीश्वर यह अविद्याके सात्त्विक भागविषे सात्त्विक राजस हैं, अरु हरिहरादिक सात्त्विक हैं॥ हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृत भागहै, तिसकरि तत्त्वज्ञ जो हुए हैं, सो मोहको नहीं प्राप्त होवैं, मुक्तिरूप होतेहैं, सो हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं, सदा मुक्तरूप होकरि जगत्‌विषे स्थित हैं, जबलग जगत्‌विषे हैं, तबलग जीवन्मुक्त हैं, जब विदेहमुक्त हुये तब परमेश्वरको प्राप्त होते हैं॥ हे रामजी! एक अविद्याके दो रूप हैं, एक अविद्यारूप बहुरि वही विद्यारूप होती है, जैसे बीज फलको प्राप्त होताहै, अरु फल बीजभावको प्राप्त होता है, जैसे जलविषे बुद्‌बुदा उठताहै, तैसे अविद्याते विद्या उपजती है अरु विद्याकरि अविद्या लीन होती है, जैसे काष्ठते अग्नि उपजिकरि काष्ठको दग्ध करती है, तैसे विद्या अविद्याते उपजिकरि अविद्याको नाश करती है, अरु वास्तवते सब चिदाकाश है, जैसे जलविषे तरंग कलनामात्र हैं, तैसे विद्या अविद्या भावनामात्र इसको त्यागिकरि शेष आत्मसत्ता रहती है; अविद्या अरु विद्या आपसमें प्रतियोगीहैं, जैसे तम अरु प्रकाश होताहै, ताते इन दोनोंको त्यागिकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, विद्या अरु अविद्या कल्पनामात्र हैं, विद्याके अभावका नाम अविद्या है, अरु अविद्याके अभावका नाम विद्या है, यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है, जब विद्या उपजती है, तब अविद्याका भास करती है, पाछे आप भी लीन हो जाती है, जैसे काष्ठते उपजी अग्नि काष्ठको जलायकरि आप भी शांत हो जाती है, तैसे अविद्याको नाश करिकै विद्या आप भी लीन हो जाती है, तिसते शेष रहता है, सो

अशब्द पद सर्वव्यापी है, जैसे वटबीजविषे पत्र टास फूल फल पाते हैं. तैसे सर्वविषे एक अनुस्यूत सत्ता व्यापीहै, सो ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्त है, सर्व शक्तिका स्पंद है, अरु आकाशते भी शून्य है, जैसे सूर्यकांतविषे अग्नि होता हैं, जैसे दूधविषे घृत होता है, तैसे सब जगत्‌विषे ब्रह्म व्यापि रहा है, जैसे दधिके मथेविना घृत नहीं निकसता, तैसे विचारविना आत्मा नहीं भासता, जेसे अग्निते चिणगारे निकसतेहैं, अरु सूर्यते किरणें निकसती हैं, तैसे यह जगत् आत्माका किंचनरूप है, जैसे घटके नाश हुए घटाकाश अविनाशी है, तैसे जगत्‌के अभावते भी आत्मा अविनाशी है ॥ हे रामजी ! जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै जड़ लोह चेष्टा करता है, परंतु चुंबक सदा अकर्ताही है, तैसे आत्माकी सत्ता करिकै जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं, चैतन्य होते हैं, परंतु आत्मा सदा कर्त्ता है, इस जगत्‌का बीज चेतन आत्मसत्ता है, तिसविषे संवित् संवेदन आदिक शब्द भी कल्पनामात्र हैं, जैसे जलको कहिये बहुत सुंदर चंचल है, सो जलही जल है, तैसे संवेदन आदिक सब चेतनरूप हैं, जहां न किंचन है, न अकिंचन है, सो तेरा स्वरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणेऽविद्यानिराकरणवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अविद्याचिकित्सावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो अधिभौतिकताको नहीं प्राप्त भया, सब चिदाकाशरूप है, तिसविषे कछु भाव अभावकी कल्पना नहीं, अरु जीवादिक भेद भी नहीं, हमको तौ भेदकल्पना कछु नहीं भासती जैसे जेवरीविषे सर्पका अभाव है, तैसे ब्रह्मविषे भेदकल्पनाका अभाव है ॥ हे रामजी ! आत्माके अज्ञान करिकै भेदकल्पना भासती है, आत्माके जानेते भेदकल्पना मिटि जाती है, सो सर्व संपदाका अंत है, अरु जब शुद्ध चेतनविषे चित्तका संबंध होता है, तब इसीका नाम अविद्या है, जो पुरुष

चित्तकी उपाधिते रहित चिन्मात्र है, सो शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता, अरु शरीरके उपजेते नहीं उपजता; शरीरके उपजने अरु विनशनेविषे सदा एकरस ज्योंका त्यों स्थित है, जैसे घटके उपजने अरु विनशनेविषे घटाकाश ज्योंका त्यों होता है, तैसे शरीरके भावअभावविषे आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे बालक दौड़ता है, तिसको सूर्य भी दौड़ता भासता है, अरु स्थित होनेविषे स्थित भासता है. परंतु सूर्य ज्योंका त्यों है, तैसे चित्तकी चंचलता करिकै मूर्ख आत्माको व्याकुल देखते हैं, अरु चित्तके अचलताविषे अचल देखते हैं, अरु चित्तके उपजनेविषे उपजता देखते हैं, परंतु आत्मा सदा ज्योंका त्यों है, जैसे बबोहा अपनी तंतुकरि आपही वेष्टित होता है, निकस नहीं सकता, तैसे यह जीव अपनी वासनाकरि आपही बंधमान होते हैं॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अत्यंत मूर्खताको प्राप्त होकरि जो स्थावर आदिक तनुको पाइकरि घन स्थित हुए हैं, तिनकी वासना कैसे होती है, सो कृपा करिकै कहौ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो स्थावर जीव हैं, सो अमन सत्ताको नहीं प्राप्त हुए, अरु केवल मन अवस्थाविषे भी तिष्ठते नहीं मध्य अवस्थाविषे हैं, उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है, सो केवल दुःखका कारण है, उनका मन नहीं नष्ट हुआ, सुषुप्ति अवस्थाविषे जड़रूप स्थित है, सो कालकरि जागहिंगे, अब उनकी सत्ता मूक जड होकरि स्थित है, सत्तामात्र स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे देव देवताविषे श्रेष्ठ ! जब उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकरि स्थावरविषे स्थित है, तब मुक्ति अवस्था तिनके निकट भई, यह सिद्ध हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मुक्ति कैसे निकट होती है, मुक्ति तब होती है, जब बुद्धिपूर्वक वस्तुको विचारै है, तब यथाभूत अर्थ दृष्टि आवै, जब सत्तासमानका बोध होवै, तब केवल आत्मपदको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब ज्योंका त्यों पदार्थ जानिकरि वासनाका त्याग करै, सो उत्तम है, तब सत्तासमान पद प्राप्त होवै, प्रथम अध्यात्मशास्त्रको विचारै तिसविषे जो सार है, तिसकी वारंवार भावना करै, तिसकरि जो प्राप्त होवै, सो सत्तासमान परब्रह्म कहाता है, स्थावरके अंतर वासना है, परंतु ब्रह्मदृष्टि नहीं आती, काहेते

जो उनकी सुषुप्त वासना है, जैसे बीजविषे अंकुर होताहै, बहुरि उगता है, तैसे उनको जन्म होवैंगे अरु वासना जागैगी, जो उनके अंतर जगत्की सत्यता है, अरु बाह्य नहीं दृष्टि आती, सो सुषुप्तवत् जडधर्म है, बहुरि अनंत जन्मके दुःख पावैंगे ॥ हे रामजी ! स्थावर जो अब जड धर्म सुषुप्त पदविषे स्थित है, सो वारंवार जन्मको पावैंगे जैसे बीजविषे पत्र टास फूल फल स्थित होते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे घटशक्ति स्थित होती है, तैसे स्थावरविषे वासना स्थित है, जहां वासनारूपी बीज है, सो सुषुप्तरूप कहाता है, सो सिद्धता जो मुक्ति है, तिसको नहीं प्राप्त करती, अरु जहां निर्बीज वासना है, सो तुरीया पद है, सिद्धताको प्राप्त करती है ॥ हे रामजी ! जब चित्तशक्ति वासनासाथ मिली होती हैं, तब स्थावर होती है, सो बहुरि जागती हैं, जैसे कोऊ कर्म करता सोय जाता है, सुषुप्तिते उठिकारि बहुरि वही कर्म करने लगता है, कर्मरूपी वासना तिसके अंतर रहती है, तैसे स्थावर वासना करिकै बहुरि जन्मको पावैंगे, जब वह वासना अंतरते दग्ध हो जावै, तब जन्मका कारण नहीं होती, अरु आत्मसत्ता समान करिकै घटपट आदिक सर्व पदार्थविषे स्थित है, जैसे वर्षाकालका मेघ एकही नानारूप होकारि स्थित होता है, तैसे आत्मसत्ता एकही सर्व पदार्थविषे स्थित होती हैं, ताते सर्व आत्माही व्यापि रहा है, ऐसी दृष्टिते जो रहित है, तिसको विपर्ययदृष्टि भ्रमदायक होती है, जब आत्मदृष्टि प्राप्त होतीहै, तब सर्व दुःख नाश हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! असम्यक् दृष्टिका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं, सो अविद्या जगत्का कारण है, तिसकारि सब पसारा होता है, तिसते रहित जब अपना स्वरूप भासै तब अविद्या नष्ट होती है, जैसे बर्फकी कणिका धूपकारि नाश होजाती है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकारि अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे स्वप्नते रहित जब अपना स्वरूप देखता है, तब बहुरि स्वप्नकी ओर नहीं जाता है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकारि संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब वस्तुको वस्तु जानता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे प्रकाशकारि अंधकार नष्ट हो जाता है, दीपकको हाथमें लेकारि देखिये तब अंध-

कारकी मूर्ति कछु दृष्ट नहीं आती, जैसे उष्णता करिकै घृतका लौदा गलि जाता है, तैसे आत्माके दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती, अरु वास्तवते अविद्या कछु वस्तु नहीं, अविचारते सिद्ध है, विचार कियेते लीन हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि तम लीन हो जाता है, तैसे विचार-करि अविद्या लीन हो जाती है; अज्ञानकरि अविद्याकी प्रतीति होती है जबलग आत्मतत्त्वको नहीं देखा, तबलग अविद्याकी प्रतीति होती है, जब आत्माको देखा, तब अभाव हो जाता है. प्रथम यह विचार करै, कि जो रक्त मांस अस्थिका यंत्र शरीर है; तिसविषे मैं क्या वस्तु हौं, सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है, तिसविषे जिसका अभाव होता है, सो असत्य है, अरु जिसका अभाव नहीं होता सो सत्य है, बहुरि अन्वय व्यतिरेककरि विचारै, जो कार्य कल्पितके होते भी होवै, अरु तिसके अभावविषे भी होवै, सो अन्वय सत्य है, जो देहादिक भावविषे भी आत्मा अधिष्ठान है, अरु इनके अभावविषे भी निरुपाधि सिद्ध है, सो सत्य है, अरु देहादिक व्यतिरेक असत्य हैं, ऐसे विचारकरि आत्म तत्त्वका अभ्यास करै, अरु असत् देहादिकते वैराग्य करै, तब निश्चय करिकै अविद्या लीन हो जाती है, काहेते जो वास्तव नहीं, असत्यरूप है, तिसके नष्ट हुए जो शेष रहै सो निष्किंचन किंचनरूप है, सो सत्य है, ब्रह्म निरंतर है, सो तत्त्व वस्तु उपादेय करने योग्य है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकरिकै अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे गन्नेका रस जिह्वामें लगता है, तब अवश्यही स्वाद आता है, तैसे आत्मविचारकरि अविद्या अवश्य नष्ट हो जाती है, अरु जब वास्तवते कहैं, तब अविद्या भी कछु भिन्न वस्तु नहीं सर्व एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है, घट पट रथ आदिक जेते कछु पदार्थ हैं, जिसको भिन्न भिन्न भासते हैं, तिसको अविद्या जान, अरु जिसको सर्वविषे एक ब्रह्मभावना है, तिसको विद्या जान, इस विद्याकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र-करणेऽविद्याचिकित्सावर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

जीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधके निमित्त मैं तुझको वारंवार सार कहता हौं, जो आत्मसाक्षात्कार भावना अभ्यासविना न होवैगा, यह जो अज्ञान अविद्या है, सो अनंत जन्मका दृढ भया है, सो अंतर बाहिर करिकै देखाई देता है, आत्मा सर्व इंद्रियते अगोचर है, जब मन सहित षट् इंद्रियका अभाव हो जावै, तब केवल शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जेती कछु वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्या है. काहेते कि, आत्मतत्त्वते इतर जानिकरि फुरती है, अरु जो अंतर्मुख आत्माकी ओर फुरती है, सो विद्या है, सो विद्या अविद्याको नाश करैगी अविद्याके दो रूप हैं, एक प्रधान रूप है, एक निकृष्ट रूप है, तिस अविद्याते विद्या उपजिकरि अविद्याको नाश करती है, बहुरि आप भी नाश हो जातीहै, जैसे बांसते अग्नि उपजतीहै, अरु बांसको जलायकरि आप भी शांत हो जाती है, तैसे जो अंतर्मुख है, सो प्रधानरूप विद्या है अरु जो बहिर्मुख है, सो अविद्या निकृष्टरूप है ताते अविद्याभागको नाश करहु ॥ हे रामजी ! अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो अभ्यासरूपी वृक्षका फूल है, चिरकाल जो अविद्याका दृढ़ अभ्यास हुआ है, तब अविद्या दृढ भई है, जब आत्मज्ञानके निमित्त यत्न करिकै दृढ अभ्यास करैगा, तब अविद्या नाश हो जावैगी ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष है, तिससाथ अविद्यारूपी बुरी लता दृढ़ हो रही है, तिसको ज्ञानरूपी खड्ग करिकै काटहु, अरु जो कछु अपना प्रकृति आचार है, तिसको करहु, तब तुझको दुःख कोऊ न होवैगा, जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकरि व्यवहारको करत भया है; तैसे आत्मज्ञानका दृढ अभ्यासकरि तू भी विचर॥ हे रामजी ! जैसे पवन निश्चयको धारिकरि कार्याकार्यविषे विचरताहै, अरु जैसे निश्चय विष्णुजीको स्वरूपविषे है, सब कार्य करताहै, अरु जैसे निश्चय सदाशिवको जो गौरी अर्धांगमें रहती है अरु कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्त होता,

सदा शांतरूप है, अरु जैसे निश्चय ब्रह्माको हैं, जो बाह्य राग द्वेष दृष्टि आता है, अरु अंतर रागद्वेष कछु नहीं जैसे निश्चय बृहस्पति देवताके गुरुका है, अरु जैसे निश्चय चंद्रमा अरु अग्निका है, जैसे निश्चय नारद, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, भृगु, शुकदेवका है, और भी ऋषीश्वर, मुनीश्वर ब्राह्मणका है, क्षत्रियादिकका ज्ञान-ज्ञेयका निश्चय है, सो तुझको प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जिस निश्चय करिकै बुद्धिमान् विशोक होकारि स्थित भये हैं, सो मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे संपूर्ण ज्ञानवान्का निश्चय है, अरु व्यवहारविषे सम रहेहैं, सो सुन, विस्ताररूप जेता कछु जगत्-जाल तुझको भासता है, सो निर्मल ब्रह्मसत्ता अपने महिमाविषे स्थित है, जैसे तरंग समुद्रविषे स्थित होते हैं, अरु नानाप्रकार उत्पन्न होते हैं, सो एक जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थजाल भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, जो ग्रहण करनेवाला है, सो भी ब्रह्म है, अरु जिसको भोजन करता है सो भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है यह निश्चय ज्ञानवा-न्को सदा रहता है, बहुरि कैसा है, ब्रह्मको ब्रह्म स्पर्श करता है, तब किसको स्पर्श किया ॥ हे रामजी ! जिनको सदा यही निश्चय रहता है, तिनको रागद्वेष कछु दुःख नहीं दे सकते, ब्रह्मही ब्रह्मविषे फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, इतर कछु नहीं. बहुरि रागद्वेषकलना कैसे होवै, ब्रह्मही ब्रह्मको चेतता है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, ब्रह्मही अहं अस्मि है, ब्रह्मही सम है, ब्रह्मही अंतर आत्मा है, घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही विस्तारको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्मही है, तब राग विराग कलना कैसे होवै, मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है, मारता भी ब्रह्म है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिकै भासता है, तैसे आत्माविषे सुखदुःख मिथ्या है, भोग भी ब्रह्म है, भोगनेवाला भी ब्रह्म है, भोक्ता देह भी ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्मही है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे शरीर उपजते अरु मिट

जाते हैं, सो ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! जलके तरंग जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, सो क्या हुआ, वह तौ जलही है, तैसे मृतक ब्रह्मने जो देह मृतक ब्रह्मको मारा, तब कौन मुआ, अरु किसने मारा, जैसे एक तरंग जलते उपजा, अरु दूसरे तरंगसाथ मिलि गया, दोनों इकट्ठे होकारि मिटि गये, सो जलही जल है, तहां मैं दूसरा कछु नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् है; सो आत्माही अपने आपविषे स्थित है, तेरा मेरा भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, जलविषे तरंग होते हैं, सो अभेदरूप हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थदर्शी हैं, तिनको सदा यही निश्चय रहता है अरु जिनको सम्यक्‌ज्ञान नहीं प्राप्त भया, तिनको विपर्ययरूप औरका और भासता है, वास्तवते सदा एकरूप है, परंतु ज्ञान अरु अज्ञानका भेद है, जैसे जेवरी एक होती है, परंतु जिसको सम्यक्‌ज्ञान होता है, तिसको जेवरी भी भासती है, अरु जिसको सम्यक्‌ज्ञान नहीं होता, तिसको सर्प हो भासता है, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिसको सब ब्रह्मसत्ता भासती है अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको जगत्‌रूप भासता है, तिसको नानाप्रकारका जगत् दुःखदायक होता है, अरु ज्ञानवान्‌को सुखरूप है, जैसे अंधको सर्व ओर अंधकार भासता है, अरु चक्षु-वान्‌को प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व जगत् आत्मस्वरूप है, परंतु ज्ञानीको आत्मसत्ता सुखरूप भासती है, अज्ञानीको दुःखदायक है, जैसे बालकको अपने पराछाईंविषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, अरु बुद्धिमान् निर्भय होता है, तैसे अज्ञानीको जगत् दुःखदायक है, ज्ञानीको सुखरूप है, अरु जब मेरा निश्चय पूछै, तब ऐसे है, मैं सर्व ब्रह्म हौं, नित्य शुद्ध सर्वविषे स्थित हौं, न कोऊ विनशता है, न उपजता है, जैसे जलविषे तरंग है सो न कछु उपजा है, न विनशता है, जलही जल है, तैसे भूत भी आत्मविषे है, जगत् भी आत्मरूप है, आत्मा ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, मृतरूप भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अनेकरूप होकारि भासता है, ब्रह्मते भिन्न कछु शरी-

रादिक सिद्ध नहीं होते, जैसे तरंग फेन बुद्बुदे जलरूप हैं, तैसे देहकलना इंद्रियां इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं; तैसे स्वर्णते भिन्न भूषण नहीं होता, स्वर्णही भूषणरूप होता है, तैसे ब्रह्मते व्यतिरेक जगत् नहीं होता, ब्रह्महो जगतरूप है; जो मूढ हैं, तिनको द्वैतकलना भासती है ॥ हे रामजी! मन बुद्धि अहंकार तन्मात्र इंद्रियां सब ब्रह्महीके नाम हैं, अपर सुख दुःख कछु नहीं, अहं ऐसा जो शब्द है, तिसविषे भिन्न भिन्न भावना करनी सो व्यर्थ है, अपना अनुभवही अन्यकी नाईं हो भासता है, जैसे पहाड़विषे शब्द करता है, तिसकरि प्रतिशब्दका भास होता है, सो अपनाही शब्द है, तिसविषे अपरकी कल्पना मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा देखता है, सो व्यर्थ है, सोई भासि आता है, जिसको असम्यक्ज्ञान होता है, तिसको ऐसे है ॥ हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्त है, तिसविषे जैसी भावना होती है, सोई भासि आती है, जिसको सम्यक्ज्ञान होता है, सो निरहंकार स्वप्रकाश सर्वशक्त देखता है, कर्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण यह जो षट् कारक बुद्धि हैं, सो सब सर्वत्र ब्रह्मही देखताहै, ब्रह्म अर्पण, ब्रह्म हवि, ब्रह्म अग्नि, ब्रह्म होत्र, ब्रह्म हुननेवाला ब्रह्महीफल देता है, ऐसे जाननेवालेका नाम ज्ञानीहै, ऐसे न जानेते अज्ञानी है, जाननेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ता है ॥ हे रामजी! जब चिरकालका बांधव होवै, अरु उसको देखिये तब जानिये जो बांधव है, अरु जो देखनेमें न आया, उसका अभ्यास दूर हो गया, तब बांधव भी अबांधवकी नाईं हो जाता है, तैसे अपना आप ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है, तब ऐसे भासि आता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु द्वैत कल्पना भी लीन हो जाती है, सर्व ब्रह्मही भासता है, जैसे जिसने अमृत पान किया है, सो अमृतमय होताहै, अरु जिसने नहीं पान किया सो अमृतमय नहीं होता, तैसे जिसने जाना कि, मैं ब्रह्म हौं, सो ब्रह्मही होता है, जिसने नहीं जाना तिसको नानात्वकल्पना जन्म मरण भासता है, अरु ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासता है ॥ हे रामजी! जिसको ब्रह्मभावनाका अभ्यास जागा है, सो अभ्यासके बलकारि शीघ्रही ब्रह्म होता है, ब्रह्मरूपी

बड़े दर्पणविषे जैसी कोऊ भावना करता है, तैसा रूप हो भासता है, मन भावनामात्र है, दुर्वासना करिकै इसका स्वरूप आवरण भया है, जब भावना नष्ट होती है, तब निष्कलंक आत्मतत्त्व भासता है जैसे शुद्ध वस्त्रऊपर केसरका रंग शीघ्रही चढ़ जाता है तैसे वासनाते रहित चित्तविषे ब्रह्मस्वरूप भासि आता है ॥ हे रामजी! आत्मा सर्व कलनाते रहित है अरु तीनों कालविषे नित्य शुद्ध सम शांतरूप है, जिसको ज्ञान होता है, सो ऐसे जानता है, कि मैं ब्रह्म हौं, सदाकाल सर्वविषे सर्व प्रकार, सर्व घटपटादिक जो जगज्जाल है, सो मैंही ब्रह्म आकाशवत् सर्वविषे व्यापि रहा हौं, न कोऊ मुझको दुःख है, न कर्म है, न किसीका त्याग करता हौं, न वांछा करता हौं सर्व कलनाते रहित निरामय हौं, मैंही रक्त हौं, मैंही पीत हौं, मैंही श्वेत हौं, मैंही श्याम हौं रक्त मांस अस्थिका वपु भी मैंही हौं, घटपटादिक जगत् भी मैंही हौं, तृण वल्ली फूल गुच्छे टास मैंही हौं, वन पर्वत समुद्र नदियां मैंही हौं, ग्रहण करना, त्याग करना, संकुचना, भूतशक्ति सब मैंही हौं, विस्तास्तारको प्राप्त मैंही भया हौं. वृक्ष, वल्ली, फूल, गुच्छे जिसके आश्रय फुरतेहैं, सो चिदात्मा मैंही हौं, सबविषे रसरूप मैंही हौं, जिसविषे यह सर्व है, जिसते यह सर्व है, सो सर्व है, जिसको सर्व है, ऐसा चिदात्मा ब्रह्म है, सो मैंही हौं ॥ चेतन आत्मा ब्रह्म सत्य अमृत ज्ञानरूप इत्यादिक जिसके नाम हैं, ऐसा सर्वशक्त चिन्मात्र चैत्यते रहित मैं, हौं, प्रकाशमात्र निर्मल सर्व भूतप्रकाशक मैंही हौं, मन बुद्धि इंद्रियोंका स्वामी मैं हौं, जेती कछु भेदकलना है, सो इनने करी थी अब इनकी कलनाको त्यागिकरि अपने प्रकाशविषे स्थित हौं, चेतन ब्रह्म निर्दोष हौं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब जगत्का कारण है, तिन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म निरामय मैंही हौं, अविनाशी हौं, निरंतर स्वच्छ आत्मा प्रकाशरूप मनके उत्थानते रहित मौनरूप मैं हौं, परम अमृत निरंतर सर्व भूतके सत्तारूप करिकै मैंही स्थित हौं, सदा अलेपक साक्षी सुषुप्तिकी नाईं हौं, द्वैतकलनाते रहित अक्षोभरूपानुभव मैंही हौं, शांतरूप सब जगत्विषे मैंही पसारि रहा हौं सर्व वासनाते

रहित अक्षोभरूप अनुभव मैंही हौं, सब स्वादका जिसकरि अनुभव होता है, सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैंही हौं, स्त्रीविषे आसक्त है चित्त जिसका, अरु चंद्रमाकी कांतिकरि मुदिता अधिक है जिसको, स्त्रीका स्पर्श अरु मुदिताका जिसकरि अनुभव होता है, ऐसा चेतन ब्रह्म मैंही हौं, पृथ्वीविषे स्थित जो पुरुषहै, तिसकी दृष्टि चंद्रमाके मंडलमें जाय लगती है तिसका अनुभव जिसविषे होता है सो मैंही हौं, सुख दुःखकी कलनाते रहित अमनसत्ता अनुभवरूप जो आत्मा है, सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैंही हौं. खजूर अरु निंब आदिकविषे स्वादरूप मैंही हौं, खेद अरु आनंद लाभ अलाभ मुझको तुल्य है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति साक्षी तुरीयारूप आदि अंतते रहित चेतन ब्रह्म निरामय मैंही हौं, जैसे क्षेत्रके गन्नेविषे एकही रस होताहै, तैसे अनेक मूर्तिविषे एक ब्रह्मसत्ता स्थित है, सो सत्य शुद्ध सम शांतरूप सर्वज्ञ है, प्रकृत जो सूक्ष्म तिसका प्रकाशक है, सूर्यकी नाईं सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैंही हौं, सब शरीरविषे व्यापि रहा हौं, जैसे मोतीविषे तंतु गुप्त होताहै, तिसविषे मोती परोये हैं, तैसे मोतीरूप शरीरविषे तंतुरूप गुप्त मैंही हौं, अरु जगतरूपी दूधविषे ब्रह्मरूपी घृत मैंही व्यापि रहा हौं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण बनते हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे स्थित हैं आत्माते इतर कछु नहीं पर्वत समुद्र नदीविषे सत्तारूप आत्माही है, सर्व संकल्पका फलदाता, अरु सर्वपदार्थका प्रकाशक आत्माही है, अरु सर्व पाने योग्य पदार्थका अंत है, तिस आत्माकी उपासना हम करते हैं, घट पट तट कंधविषे स्थित हैं, अरु जाग्रतविषे सुषुप्तरूप स्थित है, जिसविषे फुरणा कोई नहीं ऐसे चेतनरूप आत्माकी उपासना हम करतेहैं मधुरविषे जो मधुरता है, अरु तीक्ष्णविषे तीक्ष्णता है, अरु जगतविषे चलना शक्ति है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करतेहैं. जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया, तुरीयातीतविषे जो समतत्त्व है, तिसकी हम उपासना करते हैं, त्रिलोकीके देहरूपी जो मोती हैं, तिनविषे जो तंतुकी नाईं अनुस्यूत है, अरु पसारणे संकोचनेका कारण है, तिस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं जो षोडश कलासंयुक्त अरु षोडश कलाते रहित है, अरु

अकिंचन किंचनरूप है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, चेतनरूप अमृत है, जो क्षीरसमुद्रते निकसा है, चन्द्रमाके मंडलविषे रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है, जिसको पाइकारि कदाचित् मृतक न होवै तिस चेतन अमृतकी हम उपासना करते हैं ॥ जो अखंड प्रकाश है अरु सर्व भूतको सुंदर करता है, तिस चिदात्माको हम उपासते हैं. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जिसकरि प्रकाशते हैं, अरु आप इनते रहित है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, सर्व मैं हौं, अरु सर्व मैं नहीं, और भी कोई नहीं, इसप्रकार विदित जानकारि अपनेअद्वैत रूपविषे विगतज्वर होकारि स्थित होते हैं, यही निश्चय ज्ञानवान्का है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेश-
वर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो निष्पाप पुरुष हैं, तिनको यही निश्चय रहता है, जो सत्यरूप आत्मतत्त्व है, यह पूर्ण बोधवान्का निश्चय है, तिनको न किसीविषे राग होता है, न द्वेष होता है, जीना मरणा उसको सुखदुःख नहीं देता, एक समान रहता है, सो विष्णु नारायणका अंग है ॥ अर्थ यह कि, अभेद है, सदा अचल है, जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि नहीं चलायमान होता तैसे वह दुःखकारि नहीं चलायमान होता, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो वनविषे विचरते हैं, नगर द्वीप नानाप्रकारके स्थानविषे फिरते हैं, परंतु दुःखको नहीं प्राप्त होते, स्वर्गविषे फूलके वन बगीचेविषे फिरते हैं, कई पर्वतकी कंदराविषे रहते हैं, कई राज्य करते हैं, शत्रुको मारिकारि शिरके ऊपर झुलावते हैं, कई श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करते हैं, कई भोग भोगते हैं, कई विरक्त होकारि स्थित हैं, दानयज्ञादिक कर्म करते हैं, कई स्त्रीकेसाथ लीला करते हैं, कहूँ गीत सुनते हैं, कहूँ नंदनवनविषे गन्धर्व गायन

करते हैं, कई गृह विषे स्थित हैं, कई तीर्थ यज्ञ करते हैं, कई नौबत नगारे तुरीयां सुनते हैं, इत्यादिक नानाप्रकार कई स्थानविषे रहते हैं, परंतु आसक्त कोई नहीं होते, जैसे सुमेरु पर्वत तालविषे नहीं डूबता, तैसे ज्ञानवान् किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होते इष्टको पाय-कारि हर्षवान् नहीं होते, अनिष्टको पायकारि दुःखी नहीं होते, आपदा संपदाविषे तुल्य रहते हैं, प्रकृत आचार कर्मको करतेहैं, परंतु अंतर सर्व आरंभते रहित है ॥ हे राघव! इस दृष्टिको आश्रय कारिकै तुम भी विचरौ यह दृष्टि सर्व पापका नाश करती है, अहंकारते रहित होकारि जो इच्छा होवे सो करौ, जब यथाभूतदर्शी हुए तब निर्बंध हुए, जो कछु पतित प्रवाहकारि आय प्राप्त होवैं, तिसविषे सुमेरुकी नाईं तुम अचल रहौगे ॥ हे रामजी! यह सब जगत् चिन्मात्र है, न कछु सत्य है, न असत्य है, वही इसप्रकार होकारि भासता है, इस दृष्टिको आश्रय कारिकै अपर तुच्छ दृष्टिको त्यागहु ॥ हे रामजी! असंसक्तबुद्धि होकारि सर्व भावअभावविषे स्थित होकारि रागद्वेषते चलायमान नहीं होवैगा, अब सावधान होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बडा आश्चर्य है, मैं तुम्हारे प्रसादकारि जानने योग्य पद जाना है, अरु प्रबुद्ध हुआ हौं, जैसे सूर्यकी किरणों कारि कमल प्रफुल्लित होते हैं, जैसे शरत्काल-विषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे तुम्हारे वचनकारि मेरा संदेह नष्ट हुआ है. मान, मोह, मद, मत्सर सब नष्ट होगये हैं, मैं अब सर्व क्षोभते रहित शांतिको प्राप्त भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे षष्ठे निर्वा-णप्रकरणे जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

ज्ञानज्ञेयविचारवर्णनम्।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! सम्यक्ज्ञान विलासकारि वासना उदय होती है, सो जीवन्मुक्तिपदविषे किसप्रकार विश्रांति पाइये सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसार तरणेकी युक्ति है, सो योगनाम्नी है, सो

युक्ति दो प्रकारकी है; एक सम्यक् ज्ञानकरिकै अरु दूसरी प्राणके रोकने करिके ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इन दोनोंविषे सुगम कौन है, जिसकरि दुःख भी न प्राप्त होवै, अरु बहुरि क्षोभ भी न होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दोनोंप्रकार योगशब्दकरि कहाताहै तौ भी योगनाम प्राणके रोकनेका है, संसारके तरणेके योग अरु ज्ञान दोनों उपाय हैं, इन दोनोंका फल एकही सदाशिवने कहा है ॥ हे रामजी ! किसीको योग करना कठिन है, अरु ज्ञानका निश्चय सुगम है, किसीको ज्ञानका निश्चय कठिन है; अरु योग करना सुगम है, अरु जो मुझते पूछे तो दोनोंविषे ज्ञान सुगम है, इसविषे यत्न कष्ट थोड़ा है, जानने-योग्य पदार्थको जानेते बहुरि स्वप्नविषे भी भ्रम नहीं होता है, साक्षी-भूत होकरि दृष्ट देखता है, अरु जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं, तिनको भी यत्न कछु नहीं, स्वाभाविक चले जाते हैं, तिनकी एक युक्ति सम-झिकरि चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! दोनोंकी सिद्धता अभ्यास यत्नकरि होती है, अभ्यासविना कछु प्राप्त नहीं होती, सो ज्ञान तौ मैं तुझको कहा है, जो हृदयविषे विराजमान ज्ञेय है; तिसको जानना ज्ञान है, अरु जो प्राणअपानके रथ उपर आरूढ हैं, हृदयरूपी गुहा-विषे स्थित है ॥ हे रामजी ! तिस योगका भी क्रम सुन, जो परम सिद्धताके निमित्त है, प्राणवायु जो नासिका अरु मुखके मार्ग हो आती जाती है, तिसके रोकनेका क्रम कहता हौं तिसकरि चित्त उपशम हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानज्ञेयविचारवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

सुमेरुशिखरलीलावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके किसी कोणविषे यह जगत्‌रूपी स्पंद आभास फुरा है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंकरि मृगतृष्णाका जल फुरि आता है, तैसे जगत् ब्रह्मते फुरि आया है, तिस जगत्‌के कारणभावको सोई प्राप्त हुआ है,

अरु ब्रह्मके नाभिकमलते जिसकी उत्पत्ति है अरु पितामह नामकरि कहाता है, तिसका मानसी पुत्र श्रेष्ठ आचार है ॥ जिसका ऐसा जो मैं वसिष्ठ हौं, अरु नक्षत्र ताराचक्रविषे मेरा निवास है, युग युग प्रति मैं तहां रहता हौं, सो मैं जब नक्षत्रचक्रते उठा, तब इन्द्रकी सभाविषे आया, तहां ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे थे, जब नारद आदिकविषे चिरंजीवीका कथाप्रसंग चला तब तहां शातातप नाम एक ऋषीश्वर था, सो कैसा था? मन जो मान करनेके योग्य बुद्धिमान् था, सो कहत भया, कि हे साधो! सबविषे चिरंजीवी है सो एक है, सुमेरु पर्वतकी जो कंदरा है, तिसकी कोण पद्मराग नाम्नी जो कंदरा है, तिसके शिखरपर एक कल्पवृक्ष है, सो महासुन्दर अपनी शोभाकरि पूर्ण है, तिस वृक्षके दक्षिण दिशा टास है तहां पक्षी रहते हैं, तिन पक्षीविषे महा श्रीमान् एक कौवा रहता है, भुशुण्ड तिसका नाम है, सो कैसा है, वीतराग अरु बुद्धिमान् वह वहां रहताहै, उसका आलय कल्पवृक्षके टास ऊपर बना हुआ है, जैसे ब्रह्मा नाभिकमलविषे रहता है, तैसे वह आलयविषे रहता है जैसे ऐसा वह जिया है, तैसे न कोऊ जियाहै, न जीवैगा, उसकी बड़ी आयुर्बल है, अरु श्रीमान् महाबुद्धिमान् विश्रांतिमान् शांतरूप अरु कालका वेत्ता वह है ॥ हे साधो! बहुत जीना भी तिसका सफल है, अरु पुण्यवान् भी वही है, जिसको आत्मपदविषे विश्रांति भई है, अरु संसारकी आस्था जाती रही है, ऐसा जो पुरुष है सो वह है, ऐसे गुणकरि संपन्न तिसका नाम काकभुशुण्ड है, इसप्रकार जब उस देवताके देवने संपूर्ण सभाविषे कहा तब ऋषीश्वरने दूसरी वार पूछा, कि उसका वृत्तांत बहुरि कहौ, तब उसने बहुरि वर्णन किया, तिस कालमें सब आश्चर्यको प्राप्त हुए, जब ऐसे कथा वार्ता हो चुकी, तब सबही सभा उठि खडी हुई अपने अपने आश्रमको गये अरु मैं आश्चर्यवान् हुआ, कि ऐसे पक्षीको किसप्रकार देखिये, ऐसे विचार करिकै मैं सुमेरु पर्वतकी कंदराके सन्मुख हुआ अरु चला, तब एक क्षणविषे जाय प्राप्त भया, क्या देखा कि महाप्रकाशरूप कंदराका शिखर है, रत्नमणिकरि पूर्ण है, अरु गेरूकी नाईं रंग है, जैसे अग्निकी ज्वाला होती है, तैसे प्रकाशरूप है, मानो प्रलयकालमें

अग्निकी ज्वाला पडी जागती है, ऐसे मणि अरु रत्नका प्रकाश है, अरु बीज जो नीलमणि है, सो धूम्रके समान है, मानो धुआं पड़ा निकसता है, अरु सर्व रंगकी खान है, अरु जेते कछु संध्याके बादल लाल होते सो मानो इकट्ठे आनि हुए हैं, मानो योगीश्वरके ब्रह्मरंध्रते अग्नि निकसि इकट्ठी आय भई है, जठराग्नि इकट्ठी हुई है, मानो वडवाग्नि समुद्रते निकसिकरि मेघको ग्रहण करने निमित्त आनि स्थित भई है, महासुन्दर रचना बनी हुई है, फल अरु रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशमान है, ऊपर गंगाका प्रवाह चला जाता है, सो यज्ञोपवीतरूप हुआ है, गंधर्व गीत गाते हैं, देवीके रहनेके स्थान हैं, हर्ष उपजावनेको महासुंदर लीलाका स्थान विधाताने रचा है, तिसको मैं देखत भया ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने सुमेरुशिखरलीलावर्णनं नाम त्रयोदशः सर्ग ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४,

भुशुण्डदर्शनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे शिखरके ऊपर कल्पवृक्षको मैं देखत भया, जो महासुन्दर फूलकारि पूर्ण रत्न अरु मणिके गुच्छे लगे, स्वर्णकी बल्ली लगी हुई है, अरु तारेसों दूने फूल दृष्टि आते हैं, अरु मेघके बादलते दूने पत्र दृष्टि आते हैं, सूर्यकी किरणोंते दूने त्रिवर्ग भासते हैं, बिजलीकी नाईं चमत्कार है, अरु पत्रपर देवता किन्नर अरु विद्याधर देवी आय बैठते हैं, अप्सरा आय नृत्य करती हैं, अरु गायन करती हैं, जैसे भँवरे गुंजारव करते फिरते हैं ॥ हे रामजी ! तहां रत्नके गुच्छे निरंध्र, अरु कलियां फूल भी निरंध्र, पत्र फल भी निरंध्र, मणिके गुच्छे निरंध्र, सब निरंध्रही दृष्टि आवैं, अरु सब स्थान फूल फल गुच्छेकारि पूर्ण, अरु षट्ऋतुके फूल फल तहां मिलते हैं, महाविचित्र रचना बनी हुई है, तिसके एक टासपर पक्षी बैठे हैं, सिंह बैठे खाते हैं, कहूं फूल फलादिक खाते हैं, कहूं ब्रह्माजीके हंस बैठे हैं कहूं अग्निके वाहन तोते बैठे हैं, अरु कहूं अश्विनीकुमार अरु भगवतीके

मोर शिखावाले हैं, कहूं बगले, कहूं कबूतर, कहूँ गरुड बैठे हैं, अरु ऐसे शब्द करतेहैं, मानो ब्रह्मकमलते उपजा हुआ ओंकारका उच्चार करता है, कई ऐसे पक्षी हैं, कि तिनकी दो दो चोंच हैं, तहां मैं देखिकारि आगे दक्षिणकी कोणको गया, जहां उस वृक्षका टास था, तहां कौए अनेक बैठे हैं, जैसे महाप्रलयविषे मेघ लोकालोक पर्वतपर आय बैठते हैं, तैसे वहां कौए अचल आकार बैठेहैं. सोम, सूर्य, इंद्र, वरुण, कुबेर, इनकी यज्ञकी रक्षा वहांते लेनेहारे हैं, अरु पुण्यवान् स्त्रियोंको प्रसन्नता देनेहारे भर्ताके संदेश पहुँचानेवाले हैं, सो वहां बैठे हैं, तिनको मैं देखत भया तिनके मध्य महाश्रीमान् भुशुण्ड बैठा है, ऊंची ग्रीवा कियेहुए अरु बड़ी कांति है; जैसे नील मणि चमकती है, तैसे उसकी ग्रीवा चमकती है, अरु पूर्ण मन अरु मानी. अर्थ यह कि, मान करने योग्य है, अरु श्याम सब अंग सुंदरअरु प्राणस्पंदको जीतनेहारा नित्य अंतर्मुख अरु नितही सुखी चिरंजीवी पुरुष तहां बैठा है, जगत्‌विषे दीर्घ आयु, जगत्‌की आगमापायी, जिसने देखते देखते बहुत कल्पका स्मरण कियाहै अरु इंद्रकी कई परंपरा देखी हैं, लोकपाल वरुण कुबेर यमादिकके कई जन्म देखेहैं, देवता सिद्धके अनेक जन्म इस पुरुषने देखेहैं, प्रसन्न अरु गंभीर अंतःकरण जिसका, अरु सुंदर है वाणी जिसकी, अरु वक्रताते रहित निर्मम अरु निरहंकार सबको सुहृद् मित्र है, बडी कोटर हलवेकी नाईं है, जो पिता समान है, तिनको पुत्रकी नाईं है, अरु जो पुत्रके समान हैं, तिनको उपदेश करनेनिमित्त पिता अरु गुरुकी नाईं समर्थ होता है, अरु सर्वथा सर्व प्रकार सर्वकाल सबविषे समर्थ है, अरु प्रसन्न महामति हृदय पुंडरीक व्यवहारका वेत्ता है, गंभीर अरु शांतरूप महाज्ञातज्ञेय है, ऐसे पुरुषको मैं देखत भया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडदर्शनवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

भुशुण्डसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके अनंतर मैं आकाशमार्गते वहीं आया, महातेजवान् दीपकवत् प्रकाशवान् मेरा शरीर, जब मैं उतरा तब जेते कछु पक्षी बैठे थे सो जैसे वायुकरि कमलकी पंक्ति क्षोभको प्राप्त होती है, जैसे भूकंपकारि समुद्र क्षोभको प्राप्त होताहै, तैसे क्षोभको प्राप्त हुए, तिनके मध्य जो भुशुण्ड था, सो मुझको देखत भया, सो मैं कैसा था, जो अकस्मात् गया था तौ भी उसने मुझको जाना कि, यह वसिष्ठ है, ऐसे देखिकारि उठ खडा हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनीश्वर ! स्वस्थ तो हौ अरु कुशल तो है ? ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि संकल्पके हाथ रचे, तिसने मेरा अर्घ्य पाद्य किया, भावसंयुक्त पूजन करत भया, अरु टहलूको दूर कारिकै आपही वृक्षके बडे पत्र लिये तिनका आसन रचिकारि मुझको बैठाया, अरु कहत भया ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ अहो ! आश्चर्य है ! हे भगवन् ! तुमने बडी कृपाकारि दर्शन दिया है, चिरपर्यंत दर्शनरूपी अमृतकारि हम वृक्षसहित पूर्ण हो रहे हैं ॥ हे भगवन् ! मेरे पुण्य जो इकट्ठे हुए थे, सो इकट्ठे होकारि तुमको प्रसन्नताके निमित्त प्रेरि ले आयेहैं ॥ हे मुनीश्वर! देवता पूजने योग्यहैं, तिनकेभी तुम पूज्य हौ, सो तुम्हारा आना किसनिमित्त हुआ है, इस मोहरूप संसारते तुमही उबरे हो, अरु अखंड सत्ता समानविषे तुम स्थित हौ सदा पावन हौ, अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तुम्हारा आना किस निमित्त हुआ है, यह मुझको कहौ, आपका मनोरथ क्या है ? अर्थ यह कि, क्या इच्छा है, अरु तुम्हारे चरणके दर्शन करके मैं तौ सब कछु जानाहै, जिस निमित्त तुम्हारा आना हुआ है, स्वर्गकी सभाविषे चिरंजीवीका प्रसंग चला था, तब मैं शरणविषे आया था, तिसकारि तुम मुझको पवित्र करने आए हौ, यह तुम्हारे चरणके प्रताप कारिकै मैं जाना है, परंतु प्रभुके वचनरूपी अमृतके स्वादकी मुझको इच्छा है, इस निमित्त मैं प्रभुके मुखते श्रवण करौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिरंजीवी भुशुण्ड नाम पक्षीने

मुझको कहा. तब मैं कहत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीके महाराज ! जो कछु तुमने कहा है सो सत्य कहा है, मैं अभ्यागत तेरे आश्रम इस निमित्त आया हौं, कि चिरंजीवीकी कथा चली थी, सो तू मुझको शीतल चित्त दृष्टि आता है, अरु कुशलमूर्ति है, अरु संसाररूपी जालते निकसा हुआ दृष्ट आता है, ताते मेरे संशयको दूर करु कि किस कालविषे तू जन्मा है, अरु ज्ञातज्ञेय कैसे हुआ है, अरु तेरी आयु कितनी है. अरु कौन कौन वृत्तांत तेरा देखा हुआ स्मरण है, अरु किस कारण तहां निवास किया है ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु तुमने पूछा है, सो सर्वही कहता हौं, शनैः शनैः तुम श्रवण करो, तुम जो हौ सो साक्षात् प्रभु त्रिलोकीके पूज्य हौ, अरु त्रिकालदर्शी हौ, परंतु जो कछु तुमने आज्ञा करी है, सो मानने योग्य है. तुम सारखे महात्मा पुरुष मानने योग्य हैं, तुम सारखे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनके विद्यमान कहे हुए भी अपने विषे जो कछु तप्तता होती है, सो निवृत्त हो जाती है, जैसे मेघके आगे आये हुए सूर्यकी तप्तता मिटि जाती है, तैसे तुम्हारे आगे कहनेकरि तप्तता निवृत्त हो जाती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डसमागमवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

भुशुण्डोपाख्यानेऽस्ताचललाभवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहकर भुशुण्ड मुझको कहत भया, कैसा भुशुण्ड है, सर्वज्ञ अरु सुंदर अरु समतासंयुक्त है, सो स्निग्ध अरु गंभीर वाणीकारि कहत भया, जिसने ताकडीविषे ब्रह्मांड तोलि छोडा है, अरु जगत् जिसको तृणकी नाईं तुच्छ भासता है. काहेते कि, लोककी उत्पत्ति अरु प्रलय उसने बहुत देखी है, अरु चित्तकी वृत्ति किसीविषे लगाई नहीं जैसे क्षीरसमुद्रते निकसा मंदराचल परिपूर्ण [illegible] है, तैसे उसका मन शुद्ध है, जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वल है, तैसे वह आत्मपदविषे विश्राम पायकरि आनंदसों पूर्ण है, अरु जगतके उत्पत्ति विनाश जिसने

देखे हैं, ऐसा योगीश्वर मुझको मधुर अरु उचित आगम वाणी कहत भया भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इस जगत्विषे जो बडा है, सो सदाशिव सबका नायक देवताओंविषे देवताओंका देव है, अरु अर्धांगी भगवती गौरीको शरीरविषे धारीहै, महासुंदरमूर्ति त्रिनेत्र है, अरु बडी जटाहै. अरु मस्तकपर चंद्रमाहै अमृत जिसते स्रवताहै. अरु गंगा जिसकी जटाके चारों ओर चलतीहै, जैसे फूलमाला कंठविषे होतीहै, तैसे चलतीहै, अरु नीलकंठ है, कालकूट विषके पानकरि वह विभूषण हो गयाहै, अरु कंठविषे रुंडकी माला है, अरु सर्व ओरते भस्म लगी हुईहै, अरु दिशा जिसके वस्त्र हैं, अरु स्मशानविषे जिसका गृह है, अरु महाशांतरूप विचरताहै, अरु साथ जो सेना है, तिसके महाभयानक आकार हैं, किसीके तौ रुद्रकी नाईं तीन नेत्र हैं, अरु किसीका तोतेकी नाईं मुख है, किसीका ऊंटका मुख है, किसीका गर्दभका मुख है, किसीका बैलका मुख है, भूत विचरनेहारे हैं, कई जीवके अंतर प्रवेशकरिजानेहारे हैं, रक्तमांसका भोजन करनेवाले जिसके साथ फिरते हैं, कई पहाड़विषे रहते हैं, कई वनविषे, कई कंदराविषे, स्मशानविषे, इत्यादिकस्थानविषे उनका निवास होता है, अरु साथ देवियां भी ऐसी हैं, जिनकी महाभयानक चेष्टा आचार है, तिन देवियोंविषे जो मुख्य देवियां हैं, तिनका जिस जिस दिशाविषे निवासहै, सो सुनो, जया अरु विजया अरु जित अरु अपराजित वामदिशाकी ओर तुंबर रुद्रके आश्रित हैं, सिद्ध अरु सुखका अरु रक्तका अरु उतला भैरव रुद्रके आश्रित हैं, सो सर्व देवियोंके मध्य यह अष्ट नायका, और शत सहस्र देवियां हैं, रुद्राणी, वैष्णवी, अरु ब्रह्माणी, वाराही, वायवी अरु कौमारी, वासवी अरु सौरी, इत्यादिक शतसहस्र देवियां हैं, इनकेसाथ मिलीहुई, आकाशविषे उत्तम देव, किन्नर, गंधर्व, पुरुषासुर संभवतीहैं, तिनमेंसे मिलीहुई भूचर पृथ्वीविषे कोट है, नानाप्रकार रूप नाम, धारणेहारी हो पृथ्वीविषे जीवका भोजन करती हैं, किसीके वाहन ऊंट हैं, किसीके गर्दभ हैं, किसीके काक, किसीके वानर हैं, किसीके वाहन तोते इत्यादिक वाहन तिनके तीनों जगत्विषे रहते हैं, तिन देवियोंविषे कई पशुधर्मिणीहैं, जो क्षुद्रधमविषे

स्थित हैं, अरु कई विदितवेद जीवन्मुक्त पदविषे स्थित हैं, तिनके मध्यम नायक अलंबुसा देवी हैं, जैसे विष्णुका वाहन गरुड है, तैसे देवीका वाहन काक है, सो देवी अष्टसिद्धिके ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो देवियां एक कालमें समागम करत भईं, अरु विचार करत भईं, जगत्के पूज्य तुंबर अरु भैरवको पूजत भईं, अरु विचार किया कि, सदाशिव हमारेसाथ भावसंयुक्त नहीं बोलता, अरु हमको तुच्छ जानता है, हम इसको कछु अपना प्रभाव दिखावैं, प्रभाव दिखायेबिना कोऊ किसीको नहीं जानता, ऐसे विचार करिकै उमाको वश करि दुराय ले गईं, अरु वहां उत्साह किया । मद्य, मांसादिक भोजन करत भईं, अरु मायाके छल करिकै पार्वतीको मारिकरि चावलकी नाईं रांधा, अरु नृत्य करने लगी, उसके कछुक अंग रांधे हुए सदाशिवको आनि दिये, तब सदाशिवने जाना कि, मेरी प्यारी पार्वती इनने मारी है, ऐसे निश्चय करिकै कोपने लगा, तब उन देवियोंने अपनेअपने अंगते उसके अंग निकासे, सौरीने नेत्र निकासे, कौमारीने नासा निकासी, इसप्रकार अपने अपने अंगते निकासकरि तैसीही पार्वतीकी मूर्ति लाय दीनी, अरु नूतन विवाहकरि दिया तब सदाशिव प्रसन्न भया, सर्व ठौर उत्साह आनंद किया, तब सर्व देवियां अपने अपने स्थानको गईं, अरु चंद्रनाम काक जो अलंबुसा देवीका वाहन था, सो ब्रह्माणीकी हंसिनीसाथ क्रीडा करत भया, क्रम करिकै सबसे रमण क्रीडा करी, तब उन सबको गर्भ प्राप्त भये, अरु हंसिनियां ब्रह्माणीके पास गईं, तब ब्रह्माणीने कहा, अब तुमको मेरे उठावनेकी शक्ति नहीं, तुम गर्भवती भई हौं, जहां तुम्हारी इच्छा होवै तहां जाव, बहुरि फिरि आवना ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई, अरु नाभिसरोवर जो ब्रह्माजीका उत्पत्तिस्थान है, तहां जाय स्थित भईं, तिस तालके कमलपत्र उपर आय निवास किया, जब तहां केताक काल व्यतीत भया, तब उन हंसिनीने तीन तीन अंडे दिये, जैसे वल्लीते अंकुर उत्पन्न होता है, तैसे उनके एकविंशति अंड क्रमकरि उत्पन्न भये, तिनको फोडत भईं, जैसे ब्रह्मांड खपरको फोडिये, तीन अंडेते हमारे अंग उत्पन्न

भये हैं, क्रम करिकै हम बडे उडनेयोग्य हुए, तब माता हमको ब्रह्माणी-केपास ले गई, तिसके आगे हम मस्तक टेका तब ब्रह्माणी समाधिते उतरी थी, तब उसने देखि करि हमको कृपाकी वृत्ति धारी हमारे शीशपर हाथ रक्खा उसके हाथ रखनेसाथ हमारी अविद्या नष्ट हो गई, अरु हमारा मन तृप्त शांतरूप होगया, जीवन्मुक्तपदविषे हम स्थित भये, तब हमको यह वृत्ति फुरि आई कि किसीप्रकार एकांत ध्यानविषे स्थित होवैं, देवीने आज्ञा करी अब तुम जावहु, तब देवीजीकी आज्ञा करि हम पिताके पास आये, पिताने हमको कंठ लगाया, अरु मस्तक चूंबा, तब हम अलंबुसा देवीकी पूजा करत भये, तब पिताने हमसे कहा॥ हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जालविषे तौ नहीं फँसे, अरु जो तुम निकसे नहीं फँसे हौ, तब मैं भगवती देवीजीकी प्रार्थना करता हौं, वह भृत्यपर दयालु है, जैसे तुम प्राप्त होहुगे, तैसे तुमको प्राप्त करैगी॥ हे मुनीश्वर! तब हमने कहा॥ हे पिता! हम तौ ज्ञातज्ञेय हुए हैं, जो कछु जानने योग्य है सो जाना है अरु जो पाने योग्य है सो हम पाया है; ब्रह्माणी देवी-जीके प्रसाद करिके अब हमको एकांतस्थानकी इच्छा है, जहां एकांत होवै तहां जाय स्थित होवैं, तब चंद्रपिताने कहा॥ हे पुत्रो! एकांत स्थान सुन, निर्दोष महापावन सुंदर आलय बना हुआ है, निर्भय निर्मोह सर्व क्षोभते रहित जहां कोऊ दुःख नहीं, ऐसा एकांतस्थान है, अरु सर्व रत्नकी खानहै, अरु सर्व देवताओंका आश्रयरूपहै, सुमेरु जो पर्वत है, सूर्य चंद्रमा उसके दीपक हैं, चहूँफेर फिरते हैं, ब्रह्मांडरूपी मंडपका वह स्तंभ है, अरु स्वर्णका है, चंद्र सूर्य तिसके नेत्र हैं, अरु ताराकी कंठविषे मालाहै, दशोंदिशा तिसके वस्त्र, रत्नमणिका भूषण हैं, वृक्षवल्ली तिसके रोमावली हैं, त्रिलोकीविषे तिसकी पूजा है, षोडश सहस्र योजन पातालविषेहैं, तहां नाग दैत्य इसकी पूजा करतेहैं, अरु चौ-रासी सहस्र योजन ऊर्ध्वकोहै, तहां गंधर्व देवता किन्नर राक्षस मनुष्य इसकी पूजा करते हैं, ऐसा पर्वत जंबूद्वीपके एक स्थानविषे स्थितहै, चतुर्दश प्रका-रके भूतजात उसके आश्रय रहते हैं, बड़ा ऊंचा पर्वत है, तिसका पद्मराग नाम एक शिखर है, मानो सूर्य आय उदय हुआ है, ऐसा प्रकाशरूप है,

तिस शिखरके ऊपर एक बड़ा कल्पवृक्ष है, मानो जगत्रूपी शिखरका प्रतिबिंब आय पड़ा है, तिस कल्पवृक्षके दक्षिण दिशाकी ओर जो टास है, तिसके महारत्न गुच्छे हैं अरु स्वर्णके पत्र चंद्रमाके बिंबवत् जिसके फूल हैं, अरु सघन रमणीय गुच्छे लगे हैं, तहां एक आलय बना हुआ है, वहां मैं भी आगे रहि आया हौं, जब देवीजी समाधिविषे स्थित भई थी, तब मैं वहां आलय बनायकारि स्थित भया था, चिंतामणिकी उसको शलाका लगी है, महारत्नसे बना है, स्वर्णवत् कुटीर बनी है, तहां तुम जाय निवास करौ; आगे भी वहां कौवेके पुत्र रहते हैं उनका अंतर आत्मज्ञानकारि शीतल है, अरु बाह्यते फूलफलकारि शीतल है, तहां तुम भी जायकारि स्थित होहु, तुमको वहां भोग भी है, अरु मोक्ष भी है, खेदते रहित तहां जाय स्थित होहु ॥ हे वसिष्ठजी ! जब इस-प्रकार पितामहने हमको कहा, तब सबही पिताके चरण लगे, पिताने हमारा मस्तक चुंबन किया, तब हम विंध्याचल पर्वतते उडे, आकाश-मार्गको मेघके स्थान लंघे. नक्षत्रचक्र लंघे, लोकांतरके स्थान लंघि-कारि, ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त हुए, देवीजीको प्रणाम करत भये, भलीप्रकार उसने हमारे ऊपर कृपादृष्टि करी, दया अरु स्नेहसहित कंठ लगाय मस्तक चूमा हम भी मस्तक टेककारि सुमेरुको चले ॥ ॥ सूर्य चंद्रमाके लोकको लंघ गये, तारागण लोकपाल देवताके लोकस्था-नको लंघ गये, मेघपवनके स्थानको लंघिकारि सुमेरु पर्वतके कल्पवृक्षपर आनि स्थित भये ॥ हे मुनीश्वर ! जिसप्रकार हम उपजे हैं, अरु जिस-कारि ज्ञानको प्राप्त भएहैं, जिसप्रकार यहां आय स्थित भयेहैं, सो तुम्हारे आगे अखंडित कहा है, आगे तुमको जो कछु संशय होय सो पूछो ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्यानेऽस्ता-
चललाभो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

संतमाहात्म्यवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह चिरकालकी वार्त्ता तुमको कही है, बहुत कल्प व्यतीत भये हैं, वह सृष्टि इस सृष्टिते दूरि है, बहुत युग व्यतीत भये हैं, परंतु मैं तुमको अभ्यासके बलते वर्त्तमानकी नाईं सुनाया है ॥ हे मुनीश्वर ! मेरा कोऊ पुण्य था, सो फला है, जो तुम्हारा निर्विघ्न दर्शन हुआ है, यह जो आलय अरु शाखा हैं, अरु वृक्ष हैं, सो आज पावनताको प्राप्त हुवे हैं, जो तुम्हारा दर्शन हुआ है, अब जो कछु संशय रहता है सो पूछो, मैं कहौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकारि उसने मेरा भली प्रकार आदर सहित अर्घ्यपाद्यकारि पूजन किया, तब मैं उसको कहा ॥ हे पक्षियोंके ईश्वर ! तेरे वह भाई कहांहैं, जो तेरे समान तत्त्ववेत्ता थे, सो तौ दृष्टि नहीं आते, एकला तूही दृष्टि आताहै ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यहां मुझको बहुत काल व्यतीत भया है, युगकी पंक्ति व्यतीत भई है, जैसे सूर्यको कई दिन रात्रि व्यतीत हो जाते हैं, तैसे मुझको युग व्यतीत भये हैं, केताक काल वह भी रहे थे, समय पायकारि उनने शरीर त्यागि दिये, तृणकी नाईं त्यागिकारि शिव आत्मपदको प्राप्त हुये ॥ हे मुनीश्वर ! बडी आयुर्बल होवै, अथवा सिद्ध महंत होवै, बली होवै, अथवा ऐश्वर्यवान् होवै, काल सबको ग्रासि लेता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालका समय आता है, तब सूर्य, चंद्रमा, वायु, मेघ यह अपनी मर्यादा त्यागि देते हैं, तब बड़ा क्षोभ होता है, तुझको खेद किसी कारणते नहीं होता, सूर्यकी तप्तताकारि अस्ताचल उदयाचल आदिक पर्वत भस्म हो जाते हैं, तिस क्षोभविषे तू खेदवान् किसकारि नहीं होता ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक जीव जगत्विषे आधारकारि रहते हैं, एक निराधार रहते हैं, जिनको ऐश्वर्य सेनादिक पदार्थ होते हैं, सो आधारसहित हैं, अरु जो इन पदार्थते रहित हैं, सो निराधार हैं, सो दोनोंको हम तुच्छ देखते हैं, सत् कोऊ नहीं बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् बली भी हैं, परंतु सत्य कोऊ नहीं, तिनविषे

पक्षीकी जात महातुच्छ है, उजाड वनविषे उनका निवास है, वहांही इनका दाना पानी है, यह निरालंबहै, इनकी जीविका दैवने ऐसे बनाई है ॥ हे भगवन्! मैं तो सदा सुखीहौं, अपने आपविषेस्थित हौं, आत्मसंतोषकरि मैं तृप्त हौं, कदाचित् इस जगत्के क्षोभकरि मैं नहीं खेदको प्राप्त होता. स्वभावमात्रविषे संतुष्ट हौं, कष्ट चेष्टाते मुक्त हौं ॥ हे ब्राह्मण! अब हम केवल कालको व्यतीत करतेहैं, अपरजगत्के इष्ट अनिष्ट हमको चलाय नहीं सकते. न मरनेकी हमको इच्छाहै, न जीनेकी इच्छा है, काहेते कि जीना मरना शरीरकी अवस्था है आत्माकी अवस्था नहीं, हमको जीवनेविषे राग नहीं मरनेविषे दोष नहीं, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, तिसीविषे संतुष्ट है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसे ऐसे देखेहैं, सोबहुरि भस्म हो गयेहैं तिनकी अवस्थाको देखिकरि हमारे मनकी चपलता जाती रहीहै, अरु हम इस कल्पवृक्षपर बैठेहैं, कैसा कल्पवृक्षहै, रत्नकी वल्ली जिसको लगी है, तिसपर बैठिकरि मैं प्राण अपानकीगतिकोदेखता हौं, इनकी कलाकी जो सूक्ष्म गति है, तिसका मैं ज्ञाता हौं अरु दिनरात्रिका मुझको ज्ञान कछु नहीं, सत् बुद्धिकरिकै मैं कालको जानता हौं. अरु सार असारको भले प्रकार जानता हौं ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु विस्तार भासता है, सो सब झूठे हैं, सत् कछु नहीं, इसी कारणते हमको किसी दृश्य पदार्थकी इच्छा नहीं, परम उपशमपदविषे स्थित हौं, सब जगत् भी हमको शांतरूप है, जो कोऊ इस जगज्जालको आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता, यह जगत् सब चंचलरूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता. इसकी अवस्थाविषे हम पत्थरवत् अचल हैं, न किसीका हमको राग फुरता है, न दोष फुरता है, न कीसीकी इच्छा करै, सब जगत् हमको तुच्छ भासता है, यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रविषे जाय पडती हैं, अरु हम कांठेपर खडे हैं, कदाचित् नहीं डूबते, अपर जेते कछु जीवभूत हैं, सो पडे डूबते हैं, कई एक तुम सारखे निकसे हुएहैं, अरु तुम्हारी कृपा करिकै हम भी निर्विकारपदको प्राप्त हुए हैं ॥ हे मुनीश्वर! मैं निर्विकार हौं, सब जगत्के क्षोभते रहित हौं, आत्मपदको पायकरि उपशमरूप हौं ॥ हे मुनीश्वर! तुम्हारे दर्शन करिकै मैं अब पूर्ण आनंदको प्राप्त हुआ हौं,

संतकी संगति चंद्रमाकी चांदनीवत् शीतल है, अमृतकी नाई आनंदको देनेहारी है, ऐसा कौन है, जो संतके संगकारि आनंदको प्राप्त न होवे, सब आनंदको प्राप्त होते हैं, यह अर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! संतका संग चंद्रमाके अमृतते भी अधिक है. काहेते कि, वह शीतल गौण है, अंतरकी तप्तता नहीं मिटावती, अरु संतका संग अंतरकी तप्तता मिटाता है, वह अमृत क्षीरसमुद्रके मथनते क्षोभसाथ निकसा है, अरु संतका संग सुखसे प्राप्त होताहै, आत्मानंदको प्राप्त करता है, ताते यह परम उत्तम है, मैं तौ इसते परे अपर उत्तम नहीं मानता, संतका संग सबते उत्तम है, अरु संत भी वही है, जिनकी सर्व इच्छा आपातरमणीय निवृत्त भई है, अर्थ यह कि विचारविना दृश्य पदार्थ सुंदर भासता है, अरु नाशवंत है, जिनको ऐसे पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु सदा आत्मानंदकारि तृप्त हैं, अरु अद्वैत निष्ठाहै, द्वैतकलनाका जिनको अभाव भयाहै, सदा आत्मानंदविषे स्थितहैं, ऐसे पुरुष संत कहाते हैं तिन सन्तनकी संगति ऐसी है, जैसे चिंतामणि होताहै; जिसके पायेते सर्व दुःख नाश होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी कमलके भँवरे एक तुमही दृष्ट आते हौ, सब ज्ञानवानते उत्तम दृष्ट आये हौ, तुम्हारे वचन स्निग्ध अरु कोमल अरु आत्मरसकारि पूर्ण अरु हृदयगम्य अरु उचित हैं, अरु हृदय महागंभीर अरु उदार धैर्यवान् सदा आत्मानंदकारि तृप्त है, ताते तुम सबते उत्तम मुझको दृष्टि आये हो, तुम्हारे दर्शनकारि मेरे दुःख नष्ट भये हैं, आज मेरा जन्म सफल भया है, तुम सारखे संतका संग आत्मपदको प्राप्त करता है, अरु दुःखभयको नष्ट कारिकै निर्भयताको प्राप्त करता है ॥ इति श्रीयोग० निर्वाणप्र० संतमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

भुशुण्डोपाख्याने जीवितवृत्तान्तवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमने पूछा था कि, सूर्य वायु जलका क्षोभ होता है, तब तू खेदवान् किसकारि नहीं होता, तिसका

उत्तर श्रवण करहु, जब जगत्को क्षोभ होता है, तब मेरा यह कल्पवृक्ष स्थिर रहता है; क्षोभको नहीं प्राप्त होता ॥ हे मुनीश्वर ! यह मेरा वृक्ष सब लोकको अगम है, भूत नष्ट होते हैं, तब भी मैं इसकरि सुखी रहता हौं, जब हिरण्यकशिपु द्वीपसहित पृथ्वीको समेटिकारि पाताल लेगया था, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, जब देवताओंका अरु दैत्योंका युद्ध हुआ, तब अपर पर्वत सब चलायमान भये, अरु मेरा वृक्ष स्थिर रहा, अरु जब क्षीरसमुद्रके मथनेनिमित्त विष्णुजी सुमेरुको भुजासे उखाड़ने लगे तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, बहुरि मंदराचलको ले गये, तब क्षीरसमुद्रको मथने लगे, प्रलयकालका पवन अरु मेघका क्षोभ हुआ है, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, बहुरि एक दैत्य सुमेरुको आय पटकने लगा, उसने कछुक उखाडा परंतु मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया ॥ हे मुनीश्वर ! इत्यादिक बडे बडे उपद्रव आनि हुए हैं, प्रलयकालके मेघ अरु पवन अरु सूर्य तपैं हैं, तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु अरु मेघ आय क्षोभते हैं, तब तू विगतज्वर कैसे रहता है॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालके वायु मेघादिक क्षोभ करते हैं, तब मैं कृतघ्नकी नाईं अपने आलणेको त्यागि जाता हौं, सब क्षोभते रहित आकाशविषे जाय स्थिर होता हौं, अरु सब अंगको सकुचाय लेता हौं, जैसे वासनाको रोकेते मन सकुचि जाता है, तैसे मैं अंगको सकुचाय लेता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! जब प्रलयकालका सूर्य तपता था, तब मैं जलकी धारणाकरि जलरूप हो जाता था, अरु जब वायु चलता था, तब पर्वतकी धारणा बांधिकारि स्थित हो जाता था, जब बहुत तत्त्वोंका क्षोभ होता था, तब सबको त्यागिकारि ब्रह्मांड खपरके पार जो निर्मल परमपद है, तहां मैं जाय स्थित होता हौं, सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर हो जाता हौं, जब ब्रह्मा उपजि कारि बहुरि सृष्टिको रचता है, तब मैं सुमेरुके वृक्ष ऊपर इसी आलणेविषे स्थित होता हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीश्वर ! जैसे तुम अखंड स्थित होते हौ तैसे अपर योगीश्वर स्थित क्यों नहीं होते ? ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह परमा-

त्माकी नीति है, सो किसीसे लंघी नहीं जाती, उन योगेश्वरकी नीति इसप्रकार हुई है, अरु मेरा होना इसी प्रकार हुआ है, ईश्वरकी नीति अतुल है, उसविषे तुल्यता किसीको करी नहीं जाती, जहां जैसी नीति हुई है, तहां तैसीही है, अन्यथा किसीको नहीं होती, इसीप्रकार हमको भई है, जो कल्पकल्पविषे इसी पर्वतके वृक्ष ऊपर आलणा होता है, हम आय निवास करते हैं॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीके नायक ! तुम्हारी अत्यंत दीर्घ आयु, ज्ञानविज्ञानकरि संपन्न हौ, अरु योगीश्वर हौ, तुम अनेक आश्चर्य देखे हैं, तिनविषे जो स्मरणमें आता है, सो कहौ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एकवार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वीपर तृण अरु वृक्षही थे, अपर कछु न था बहुरि एक वार एकादश सहस्र वर्षपर्यंत भस्मही दृष्ट आवे जो वृक्ष तृण जलि गये, एक वार ऐसी सृष्टि हुई कि तिसविषे चंद्र सूर्य न उपजें, दिन अरु रात्रिकी गति कछु जानिये नहीं कछु कछु सुमेरुके रत्नोंका प्रकाश होवै एक कल्प ऐसा हुआ है, कि देवताओं अरु दैत्योंका युद्ध हुआ, दैत्योंकी जीत भई, सब देवता तिनने मनुष्यकी नाईं हत किये. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनोंही देवता रहे, अपर सब सृष्टि इनने जीती, बीस युगपर्यंत तिनहीकी आज्ञा वर्ती, बहुरि एक वार चित्तमें ऐसे आता है, कि दो युगपर्यंत पृथ्वीपर वृक्षही रहे, अपर सृष्टि कछु न भासै, बहुरि एक वार दो युगपर्यंत पृथ्वीके ऊपर पर्वतही सघन हो रहे, अपर कछु न भासै, अरु एक वार ऐसे हुआ, कि सब जलही हो गया, अपर कछु न भासै, एक सुमेरु पर्वत स्तंभेकी नाईं भासै, अरु एक वार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाते आया, अरु विंध्याचलपर्वत बढ़ा, सब ब्रह्मांड चूर्णकरि दिया, यह स्मरण आता है ॥ हे मुनीश्वर ! बहुत कछु स्मरण आता है, परंतु संक्षेपते सुनो, एक कालको सृष्टिविषे देवताही मनुष्य दैत्यादिक कछु न भासै, एक बार ऐसी सृष्टि हुई, कि ब्राह्मण मद्यपान करैं अरु शूद्र बडे हो बैठैं, अरु जीवविषे विपर्ययही धर्म होवें, अरु एक बार ऐसी सृष्टि स्मरणमें आती है, कि पृथ्वीविषे पर्वत कोई दृष्टि न आवैं, बड़ा उजाड़ही हो रहा, एक बार ऐसी सृष्टि हुई कि, सूर्य चंद्रमा नक्षत्र लोकपाल कोई न उपजे

एक सृष्टि ऐसी हुई जो सबही उपजै, एक सृष्टि ऐसी हुई कि तिसविषे स्वामिकार्तिक न उपजा, दैत्य बढ़ि गये, दैत्योंहीका राज्य हो गया, इत्यादिक मुझको बहुत स्मरण है, केताक कहौं, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, इंद्र, उपेंद्र, लोकपाल इनके बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं, जब हिरण्यकशिपुको हरिने मारा है, सो भी चित्त है, जो वेदको चुराय ले आया है, अरु क्षीरसमुद्र मथे हैं, सो भी बहुत स्मरणमें आते हैं, ऐसी सृष्टि भी देखी है, कि विष्णुजीका वाहन गरुड़ हुआ नहीं, अरु ब्रह्माजी हंसवाहनविना हुआ है, अरु रुद्र बैल वाहनविना हुआ है, इसते आदिलेकरि बहुत कछु देखा है, क्या क्या तुम्हारे आगे वर्णन करौं॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने जीवितवृत्तांतवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.
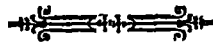
चिरातीतवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई तब तुम उत्पन्न हुए, भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इंद्र, मरीचि, उद्दालक, त्रित, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार भृगेश आदिक उपजें, बहुरि सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय, आदिक पर्वत उपजें अत्रि, व्यासदेव, वाल्मीकि इत्यादिक यह जो अल्पकालके उपजे हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम ब्रह्माके पुत्र हौ, तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं, कभी तुम आकाशते उपजे हौ, कबहूँ जलते उपजे हौ, कबहूँ पहाडते, कबहूं विनते, कबहूं अग्निते उपजे हौ ॥ हे मुनीश्वर ! मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्रविषे पायकारि जब मथने लगे तब देवता अरु दैत्य दोनों क्षोभवान् हुए, मंदराचल अधको चलने लगा, तब विष्णुजी कछुवाका रूप धर पर्वतको ठहरावत भये, अरु अमृतको निकासा सो मुझको द्वादशवार स्मरणमें आता है, अरु तीनवार हिरण्याक्ष पृथ्वीको पातालविषे

समेटि ले गया है, अरु षट्वार परशुराम रेणुका माताका पुत्र हुआ है, बहुतसृष्टिके पाछे हुआ है, जब दैत्य क्षत्रियके गृहविषे उपजने लगे तिस निमित्त विष्णुजी परशुरामका अवतार लेत भये बहुत काल युगके व्यतीत हो गए हैं ॥ हे मुनीश्वर ! एक सृष्टि ऐसी भई है, कि अगलेते विपर्यं-यरूप शास्त्र अरु पुराणके अर्थ अपर प्रकारके अरु एक कल्पविषे अपरही पाठ, अपरही युक्ति, अपरही अर्थ,काहेते जो युग युग प्रति अप-रही पुराण होते हैं कई देवता कहाते हैं कई ऋषीश्वर मुनीश्वर कहाते हैं, अपर कथा इतिहास बहुत स्मरणमें आते हैं, वाल्मीकिने द्वादशवार रामा-यण कीनी हैं, सो विस्मरण हो गया है, जगत्विषे दो वार महाभारत व्यासने किये हैं, अरु यह जो व्यासनामा जीव है,तिसने सप्तवार किया है ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार आख्यान कथा इतिहास शास्त्र जो जो हुए हैं, सो मुझको बहुत स्मरणमें आतेहैं ॥ हे साधो ! दैत्यनके मारनेनिमित्त विष्णुजीने युग युग प्रति अवतार धरे हैं, एकादश वार मुझको रामजी स्मरण आते हैं, अरु वसुदेवके गृहविषे पृथ्वीके भार उतारनेनिमित्त कृष्णजीने सोलह वार अवतार लिये हैं, सो मुझको स्मरण है, तीनवार नरसिंह अवतार धरिकारि हिरण्यकशिपुको मारा है ॥ हे मुनीश्वर ! इस-प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आतीं हैं, परंतु सबही भ्रममात्र है, कछु उपजती नहीं, जब आत्मतत्त्वविषे देखता हौं, तब सृष्टि कछु नहीं भासती, सब सत्तामात्र है, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकरि लीन हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे मनके फुरणेकारि कई सृष्टि उपजतीं हैं, अरु लीन हो जातीं हैं, तिस फुरणेकारि कई सृष्टि देखी हैं, कई सदृशही उपजतीं हैं, कईं अर्धसदृश कई विपर्ययरूप उपजतीं हैं॥ हे मुनीश्वर ! कई सृष्टिविषे उनही जैसे आकार अरु उनही जैसे कर्म आचार होते हैं, कई मन्वंतर मन्वंत-रप्रति अपरही अपर सृष्टि होतीं हैं, किसीविषे ऐसा होताहै,पुत्र पिता हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, बांधव अबांधव अरु अबांधव बांधव हो जाते हैं, इसप्रकार विपर्यय होते दृष्ट आये हैं; हेमलतावान् कबहूं इसही कल्पवृक्षपर आलय होता है, कबहूँ मंदराचलविषे, कबहूँ हिमालयपर्वतविषे, कबहू मालव पर्वतविषे हमारा आलय होता है, इसी

प्रकार वन वृक्ष वल्लीऊपर हो जाता है, कबहूँ इसी कल्पवृक्षऊपर हो जाता है; अब तो बहुत काल हुवा है, जो इसी कल्पवृक्ष पर होता है, अरु इसी आलयविषे हमारा निवास होता है, जब सृष्टि नाश हो जाती है, तब भी मेरा यही शरीर रहताहै, मैं आसन लगायकरि अपनी पुर्य-ष्टकको ब्रह्मसत्ताविषे स्थिति करता इसी कारणते मुझको बहुरि यही शरीर प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर। यह जगत् सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुरता है, तैसा आगे जगत् हो भासता है, यह जगत् सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है, तिस जगद्भ्रमविषे अनेक आश्चर्य दृष्ट आते हैं, पिता पुत्र हो जाता है, मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती हैं, पुरुष स्त्री हो जाता है, अनेकवार ऐसे होते हैं, कबहूँ कलियुगविषे सत्युग वर्त्तने लगता है, सत्ययुगविषे कलियुग वर्त्तने लगता है, द्वापरविषे त्रेता, त्रेताविषे द्वापर वर्त्तने लगता है, अदृश्यही वेदविद्याके अर्थ होतेहैं, नानाप्रकारके आश्चर्य भासते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! सहस्र चौकड़ी युगकी व्यतीत होती हैं, तब ब्रह्माजीका एक दिन होता है, सो दो दिन ब्रह्मा समाधिविषे जुड़ रहा, सृष्टि शून्यही रही, यह भी स्मरण आता है, अपर भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं, क्या क्या कहौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिरातीतवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

भुशुण्डोपाख्याने संकल्पनिराकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब भुशुण्डने कहा, तब मैं बहुरि जिज्ञासाके अर्थ पूंछत भया, कि हे पक्षियोंके ईश्वर ! तू चिर-पर्यंत जगतविषे व्यवहार करता रहा है तेरे शरीरको मृत्युने किसनि-मित्त ग्रास न किया ॥ भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तू सर्व जानता है, परंतु ब्रह्मजिज्ञासा करिकै पूँछता है, ताते जैसे भृत्य टहलुआ वेदार्थ [illegible] गुरुके आगे कहते हैं, तैसे मैं आज्ञा [illegible] कहता

हौं॥ हे मुनीश्वर! मृत्यु जिसको मारता है, अरु जिसको नहीं मारता, सो श्रवण करहु, दुःखरूपी जो मोती हैं, सो वासनारूपी तंतुसे परोए हैं, यह माला जिसके हृदयरूपी गलेविषे पड़ी हुई है, तिसको मृत्यु मारता है, अरु जिसके कंठविषे यह माला नहीं पडी, तिसको मृत्यु नहीं मारता, शरीररूपी वृक्ष है, अरु चित्तरूपी सर्प तिसविषे बैठा है, आशारूपी अग्नि जिस वृक्षको नहीं जलावता, सो मृत्युके वश नहीं होता, अरु रागद्वेषरूपी विषसों पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, अरु तृष्णाकारि चूर्ण होता है, लोभरूपी व्याधकारि नष्ट होता है, तिसको मृत्यु मारता है, अरु ग्रासि लेताहै, जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता, तिसको मृत्यु भी नहीं नाश करता॥ हे मुनीश्वर! शरीररूपी समुद्र है, क्रोधरूपी वडवाग्निकारि जलता है, जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता, तिसको मृत्यु भी नहीं मारता, जिसका मन परमपावन निर्मल पदविषे दृढ विश्रांत स्थित हुआ है, तिसको मृत्यु नाश नहीं करता है॥ हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिंता, चंचलता, प्रमाद, इत्यादिक दुःख जिसविषे होते हैं, तिसको मृत्यु मारता है, अरु जिसको काम, क्रोध, लोभादिक रोग (संसारबंधनका कारण) बांधि नहीं सकते, अरु जो इनकारि लेपायमान नहीं होता, तिसको आधिव्याधिरूपी मल स्पर्श नहीं करते, अरु जो लेता है, देता है, सब कार्य करता है, अरु चित्तविषे अनात्मअभिमान स्पर्श नहीं करता अरु जो पुरुष इष्टकी वांछा नहीं करता, अनिष्टविषे दोष नहीं करता, दोनोंकी प्राप्तिविषे सम रहता है, तिसको समाहितचित्त कहते हैं॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु ऐश्वर्यवान् सुंदर पदार्थ हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, चक्रवर्त्ती राजा अरु स्वर्गविषे गंधर्व विद्याधर किन्नर देवता तिनकी स्त्री गण अरु सुरकी सेना आदिक सब नाशरूप हैं. मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड, ताल, समुद्र, नदियां जेते कछु बडे पदार्थ हैं, सो सबही नाशरूपहैं, स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक, पाताललोक जेता कछु जगत् है, भोग हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, अरु अशुभहैं, कोऊ पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वीका राज्य श्रेष्ठ है, न देवताका रूप श्रेष्ठ है, न नागका पाताललोक श्रेष्ठ है, न कछु शास्त्रका

विचारणा श्रेष्ठ है, न काव्यका जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाके क्रम वर्णन करने श्रेष्ठ हैं, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढताकरि मरजाना श्रेष्ठ है, न नरकविषे पड़ना श्रेष्ठ है, न इस त्रिलोकीविषे अपर कोऊ पदार्थ श्रेष्ठ है. जहां संतका मन स्थित है, सोई श्रेष्ठ है, यह नानाप्रकारका जगत्क्रम चलरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मूढ होकरि चल पदार्थविषे नहीं रमते, वह बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने संकल्पनिराकरणं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

भुशुण्डोपाख्याने प्राणापानसमाधिवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! केवल एक आत्मदृष्टि सबते श्रेष्ठ है, जिसके पायेते सर्व दुःख नाश होते हैं, अरु परमपदको प्राप्त होते हैं, सो आत्मचिंतवन सर्व दुःखका नाश करता है, चिरकालके तीन तापकरि तपा जो जीव है, अरु जन्मके मार्गकरि थका हुआ है, तिसके श्रमको दूर करती है, अरु तप्तता मिटावती है, समस्त दुःखको जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्त करणेहारी है, तिसको नाश करती है जैसे अंधकारको प्रकाश नाश करता है, तैसे इसके अंतर शीतल प्रकाश उपजाती है ॥ हे भगवन् ! ऐसी जो आत्मचिंतवना है, सो सब संकल्पते रहित है सो तुमसारखेको सुगम प्राप्त है, अरु हमसारखेको कठिन है, काहेते जो सम सत्कलनाते अतीत है ॥ हे मुनीश्वर ! तिस आत्मचिंतनकी सखी अपर भी कोऊ इसको प्राप्त होवै, तौ इसका ताप मिटि जावै, अरु महाशीतल होवै, तिनाविषे मुझको एक सखी प्राप्त भई है, सब दुःखका नाश करती है, सब सौभाग्य देनेहारी, अरु जीनेका मूल है, ऐसी प्राणचिंता मुझको प्राप्त भई है ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार मुझको काकभुशुण्डने कहा, तब मैं जानता हुआ भी क्रीडाके निमित्त बहुरि पूछा, कि हे सर्व संशयके छेदनेहारे, चिरंजीवी पुरुष ! सत् कहौ, प्राणचिंता किसको कहते हैं ॥ भुशुण्ड

उवाच ॥ हे सर्ववेदांतके वेत्ता, सर्व संशयके नाशकर्त्ता! मुझको उपहासके निमित्त पूछता है, तू तौ सब कछु जानता है, परंतु तुमते शिक्षा मैं कहता हौं, गुरुके आगे कहनाभी कल्याणके निमित्त है, भुशुण्डको जीवनेका कारण अरु भुशुण्डको आत्मलाभ देनेहारी प्राणचिंता कहाती है ॥ हे भगवन्! इसी दृष्टिको आश्रय करिकै मैं परमपदको प्राप्त भया हौं, बंधन मुझको कहूं नहीं होता, बैठते, चलते, जागते, सोते, सब ठौर, सब अवस्थाविषे मेरा चित्त सावधान रहता है, इस कारणते बंधन कोऊ नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अरु अपानके संसरणेकी गति मैंने पाई है, तिस युक्तिकरि मुझको आत्मबोध हुआ है, तिस बोधकरि मेरे मदमोहादिक विकार नष्ट हो गये हैं, अरु शांतरूप होकरि स्थित भया हौं, हे मुनीश्वर! जिसको प्राण अपानकी गति प्राप्त भई, सो सब आरंभ कर्मको करै, अथवा सब आरंभका त्याग करै, परंतु सदा शांतरूप है, सुखसे तिसका काल व्यतीत होता है ॥ हे मुनीश्वर! प्राण जो उपजता है, सो हृदयकोटते उपजता है, उपजिकरि द्वादश अंगुलपर्यंत बाहिर जाता है, तहां जायकरि स्थित होता है, तिस ठौरते अपानरूप होकरि उदय होता है, सो अंतर आता है, हृदयविषे आईकरि स्थित होता है ॥ हे मुनीश्वर! बाह्य आकाशके सन्मुख जो प्राण जाता है, सो अग्निमुखवत् उष्ण होता है, अरु जो हृदयाकाशके सन्मुख आता है, सो शीतल नदीके प्रवाहवत् आता है, अपान चंद्रमारूप है, अरु बाहरते अंतर आता है, अरु जो अंतरत बाहर जाता है सो प्राण है, अग्नि उष्ण सूर्यरूप है, प्राणवायु हृदयाकाशको तपाता है, अरु अन्नको पचाता है; अरु अपने हृदयको शीतल करता है, चंद्रमाकी नाईं है ॥ हे मुनीश्वर! अपानरूपी चंद्रमा जब प्राणरूपी सूर्यविषे लीन होता है, तहां साठ तत्त्व हैं, तिनविषे मन स्थित हुआ बहुरि शोकको नहीं प्राप्त होता, अरु प्राणरूपी सूर्य जब अपानविषे चंद्रमाके घरविषे जाय लीन होता है, तिस अवस्थाविषे मन स्थित हुआ बहुरि जन्मका भागी नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! सूर्यरूप जो प्राण है, उसने अपने सूर्यभावको त्यागा, अरु अपानरूप चंद्रमाको जबलग नहीं प्राप्त भया, तिस

अवस्थाके देशकालको विचारै तब बहुरि शोकको नहीं प्राप्त होता, सब भ्रम नाश हो जाता है, अरु द्वादश अंगुलपर्यंत जो आकाश है, तिसते अपानरूपी चंद्रमा उपजिकारि हृदयविषे प्राणरूपी सूर्यमें लीन होता है, अरु सूर्यभावको जबलग नहीं प्राप्त होता, तिसके मध्यभाव अवस्थाविषे जिसका मन लगा है, सो परमपदको प्राप्त होता है, हृदयविषे चंद्रमा अरु सूर्यके अस्तभाव अरु उदयभावका यह ज्ञाता हुआ, अरु इसका आधारभूत जो आत्मा है तिसको जाना, तब मन बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो हृदयआकाशविषे सूर्य चंद्रमा उदय अरु अस्त होते हैं, तिनके प्रकाशकारि हृदयविषे भास्कर देव है, तिसको जो देखता है सोई देखता है, अरु बाहर जो सूर्य प्रकाशता है, कबहूं अंधकार होता है, तब प्रकाशके उदय हुए अरु तमके क्षीण हुये कछु सिद्धता नहीं होती. परंतु जब हृदयका तम दूर होता है, तब परम सिद्धताको प्राप्त होता है, बाहरके तम नष्ट हुए लोकको प्रकाश होता है, अरु हृदयके तम नष्ट हुए आत्मप्रकाश उदय होता है, अरु अज्ञान अंधकारका अभाव हो जाता है, परमपदको जानिकारि मुक्त होता है, प्राण अपानकी युक्ति जानेते तम नष्ट हो जाता है, ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चंद्रमा अरु सूर्य है, सो यत्नविना उदय अरु अस्त होते हैं, जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोटते उपजिकारि बाहरको गमन करता है, तब उसी क्षण अपानरूपी चंद्रमाविषे जाय लीन होता है, अपानरूपी चंद्रमा उदय हो जाता है, अरु जब अपानरूपी चंद्रमा हृदयकोटविषे प्राणवायुरूपी सूर्यविषे आनि स्थित होता है, तब उसी क्षणविषे प्राणरूपी सूर्य उदय होता है, प्राणके अस्त हुए अपान उदय होता है, अरु अपानके अस्त हुए प्राण उदय होता है, जैसे छायाके अस्त हुए धूप उदय होता है, अरु धूपके अस्त हुए छाया उदय होती है, तैसे प्राण अपानकी गति है ॥ हे मुनीश्वर! जब हृदयकोटते प्राण उदय होता है, तब प्राणका रेचक होने लगता है, अरु अपानका पूरक होने लगता है, जब जानिकारि अपानविषे स्थित हुआ, तब अपानका कुंभक होता है, तिस कुंभकविषे जब यह स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकारि नहीं तपता, जब अपानका रेचक होता है, तब प्राणका

पूरक होने लगता है, जब अपान जाय स्थित होता है, तब प्राणका कुंभक होता है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकरि तपायमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! प्राण अपानके अंतर जो शांतरूप आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब तपायमान नहीं होता, जब अपान आय स्थित होता है, अरु प्राण उदय नहीं भया, तिस अवस्थाविषे जो साक्षीभूत सत्ता है, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है तब बहुरि सो कठिन नहीं होता, जब अपानके स्थानविषे प्राण जाय स्थित होता है, अरु अपान जबलग उदय नहीं भया, तहां जो देश काल अवस्था है, तिसविषे मन स्थित होता है, तब मनका मनत्वभाव जाता है, बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर ! प्राण जो स्थित होता है अपानविषे, अरु अपान उदय नहीं भया, वह कुंभक है, अरु अपान आनि प्राणविषे स्थित भया है, प्राण जबलग उदय नहीं भया, वह जो कुंभक है, तिसविषे जो शांततत्त्व है, सो आत्माका स्वरूप है, सो शुद्ध है, परम चैतन्य है, जो तिसको प्राप्त होता है, सो बहुरि शोकवान् नहीं होता, जैसे पुष्पविषे गंधसे प्रयोजन होता है, तैसे प्राण अपानके अंतर जो अनुभवतत्त्व स्थित है, तिससे प्रयोजन है, सो न प्राण है, न अपान है, तिस अनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, प्राण अपानकोटविषे क्षयको प्राप्त होता है, अरु अपान प्राणकोटविषे क्षय होता है, तिस प्राण अपानके मध्यविषे चिदात्मा है तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! प्राणका जो प्राण है, अरु अपानका जो अपान है, जीवका जीव है; अरु देहका आधारभूत है; ऐसा चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं. जिसविषे सर्व हैं, जिसते यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है ऐसा जो चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है, अरु सर्व पावनका पावन है, अरु सर्व भाव अभाव पदार्थका आपका अपना आप है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जो पवन परस्पर हृदयविषे संपुटरूप है, तिसविषे स्थित जो साक्षीरूप है, अरु अंतर बाहर सब ठौर वही है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जब अपान अस्त होता है, अरु प्राण उपजा नहीं, तिस

क्षणाविषे कलंकते रहित है, तिस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं. जब प्राण अस्त होता है; अरु अपान उपजा नहीं, ऐसा जो नासिकाके अग्रविषे शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो सत्यता है, तिस चिद् सत्यताकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके उत्पत्तिका स्थान है, अंतर बाहर सर्व ओरते व्यापा है, सब योगकलाका आधारभूत है, तिस चिद्‌तत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके रथपर आरूढ है; अरु शक्तिका शक्तिरूप है; तिस चिद्‌तत्त्वकी हम उपासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जो संपूर्ण कला कलंकते रहित,अरु सर्व कला जिसके आश्रय हैं, ऐसा जो अनुभवतत्त्व है, सर्व देवता जिसकी शरणको प्राप्त होते हैं तिस आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्याने प्राणापानसमाधिवर्णनं नामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

चिरंजीविहेतुकथनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार मैं प्राणसमाधिको प्राप्त हुआ हौं, इस क्रम करिकै मैं आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं इस निर्मल दृष्टिको आश्रय करिकै स्थित हौं, एक निमेष भी चलायमान नहीं होता; सुमेरु पर्वतकी नाईं स्थित हौं, चलता हुआ भी स्थिर हौं, जाग्रत्‌विषे भी सुषुप्त हौं, स्वप्नविषे भी स्थित हौं, सर्वदा आत्मसमाधिविषे लगा रहता हौं, विक्षेप कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! नित्य अनित्य भावकारि जो जगत् स्थित है, तिसको त्यागिकरि मैं अंतर्मुख अपने आपविषे स्थित हौं, अरु प्राण अपानकी कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है, सो तिसका सदा ऐसेही प्रवाह चला जाता है, तिसविषेअयत्न-समाधि है, इसकरि मैं सदा सुखी रहता हौं, कष्ट कछु नहीं होता, अरु जिसको यह कला नहीं प्राप्त भई सो कष्ट पाता है ॥ हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जो जीव हैं, महाप्रलयपर्यंत संसारसमुद्रविषे डूबते हैं,

निकसकर बहुरि डूबते हैं, इसी प्रकार पड़े गोते खाते रहते हैं, अरु जिन पुरुषोंने पुरुषार्थकरि आत्मपद पाया है, सो सुखसे विचरते हैं॥ हे मुनीश्वर! भूतकालकी मुझको चिन्ता नहीं अरु भविष्यकालकी इच्छा नहीं, वर्तमानविषे यथाप्राप्त रागद्वेषते रहित होकरि विचरता हौं, सुषुप्तकी नाईं स्थित हौं, ताते केवल स्वरूपविषे स्थित हौं, भाव अभाव पदार्थते रहित अपने आपविषे स्थित हौं, इस कारणते चिरंजीवता हौं, अरु दुःखते रहित हौं, प्राण अपानकी कलाको सम करिकै स्वरूपविषे स्थित हौं, इस कारणते निर्दुःख जीवता हौं, आज यह कछु पाया है, अरु यह कल पाऊंगा, यह चिंता दूर भई है, इसकारणते निर्दुःख जीवता हौं, न किसीकी स्तुति करता हौं, न कदाचित् निंदा करता हौं, अरु सर्व आत्मस्वरूप देखता हौं, इस कारणते सुखी जीवता हौं, इष्टकी प्राप्तिविषे मैं हर्षवान् नहीं होता, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान् नहीं होता, इस कारणते निर्दुःख चिरंजीवता हौं, मैं परम त्याग किया है, सर्व आत्मभाव देखता हौं, जीवभाव दूरि हो गया है, इस कारणते अदुःख जीता हौं॥ हे मुनीश्वर! मनकी चपलता मिटि गई है, अरु रागद्वेष दूर हो गए हैं, मन शांतिको प्राप्त भया है, इस कारणते अरोग जीता हौं, काष्ठ अरु सुंदर स्त्री अरु पहाड़ तृण अग्नि स्वर्ण सर्वत्र समभाव देखता हौं, ताते निर्दुःख जीता हौं॥ अब हे मुनीश्वर! जरा मरणके दुःखविषे अरु राज्यलाभके सुखविषे शोकहर्षते रहित समभावविषे स्थित हौं, ताते निर्दुःख जीता हौं, यह मेरे बांधव हैं, यह अन्य हैं, यह मैं हौं, यह मेरा है, यह कलना मुझको कछु नहीं, ताते सुखी जीता हौं, आहार व्यवहार करता हौं, बैठता चलता सूंघता स्पर्श करता श्वास लेता हौं, परंतु यह जो अभिमान है, मैं देह हौं, इस अभिमानते रहित सुखी जीता हौं, इस संसारकी ओरते सुषुप्तरूप हौं, अरु इस संसारकी गतिको देख करि हँसता हौं, जो है, नहीं, यह आश्चर्य है, इस कारणते निर्दुःख जीता हौं॥ हे मुनीश्वर! सर्वदा काल सर्व प्रकार सर्व पदार्थविषे सम बुद्धि हौं, विषमता मुझको कछु नहीं भासती, न किसीकरि सुखी होता हौं न दुःखी होता हौं, जैसे हाथ प-

सारिये तौ भी शरीर है, अरु संकोचिये तौ भी शरीर है, इसप्रकार मैं सर्वात्मा आपको जाना है, तातें मुझको दुःख कोऊ नहीं, मेरी बोली अरु निश्चय स्निग्ध अरु कोमल सबको हृदयगम्य है, सर्वत्र जो ऐसे देखता हौं, इस कारणते निर्दुःख जीता हौं, चरणते आदि मस्तकपर्यंत देहविषे मुझको ममता नहीं, अहंकाररूपी चीकड़सों निकसा हौं, इस कारणते अरोग जीता हौं, कार्यकर्त्ता अरु भोजनकर्त्ता भी दृष्ट आता हौं, परंतु मेरे मनविषे निष्कर्मता दृढ़ है, इसकारणते निर्दुःख जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! समर्थताकरिकै कार्य करौं, तौ भी मुझको अभिमान नहीं अरु दरिद्री होऊं, तौ भी संपत्ति सुखकी इच्छा नहीं, किसीविषे आसक्त नहीं होता, इस कारणते अदुःख जीता हौं, इस असत्यरूप शरीरके नाश हुए अभिमान नाश नहीं होता, अरु भूतका समूह सब असत्यरूप है, आत्मा सत्यरूप है, ऐसे जानिकरि मैं स्थित हौं, इस कारणते सुखसों जीता हौं, आशारूपी फांसीते मुक्त चित्तकी वृत्ति समाहत हुई है, अनात्मविषे आत्मअभिमानकी वृत्ति नहीं फुरती, इस कारणते सुखी जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! मैं जगत्को असत्य जाना है, अरु आत्माको सत्य हाथाविषे बेलफलवत् प्रत्यक्ष जाना है, इस जगत्विषे सुषुप्त प्रबुद्ध हौं, तिस कारणते निर्दुःख जीता हौं, सुखको पायकरि सुखी नहीं होता, दुःखको पायकरि दुःखी नहीं होता, सर्वका परममित्र हौं, इस कारणते मैं निर्दुःख जीता हौं, आपदाविषे अचलचित्त हौं, संपदाविषे सब जगत्का मित्र हौं, भावअभावकरि ज्योंका त्यों हौं, इस कारणते सदा सुखी जीता हौं, न परिच्छिन्न अहं मैं हौं, न कोऊ अन्य है, न कोऊ मेरा है, न मैं किसीका हौं यह भावना मेरे चित्तविषे दृढ़ है, तिस कारणते सुखी जीता हौं, बहुरि कैसा हौं, मैंही जगत् हौं, मैंही आकाश हौं, देश काल क्रिया सब मैंही हौं, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, तातें अरोग जीता हौं घट भी चेतन है, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है, यह सब चेतनतत्त्व है, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, इस कारणते अदुःख जीता हौं ॥ हे मुनिशार्दूल ! यह सब मैं तुझको कहा

है, भुशुण्ड नाम काक त्रिलोकीरूपी कमलका भँवरा है, तिसने कहा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्याने चिरंजीविहेतुकथनं नाम द्वाविंशातितमः सर्गः॥ २२॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

भुशुण्डोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

भुशुण्ड उवाच॥ हे मुनीश्वर! जैसा मैं हौं, तैसा तुम्हारे आगे कहा है, सो तुम्हारी आज्ञाके सिद्धि अर्थ कहा है, नहीं तौ गुरुके आगे कहना भी ढिठाई है, तुम ज्ञानके पारगामी हौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे भगवन्! आश्चर्य है, आश्चर्यते आश्चर्य है, तुमने श्रवणका भूषण कहा है, आत्म उदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं, सो परम विस्मयके कारण हैं॥ हे भगवन्! तुम धन्य हौ! तुम महात्मा पुरुष हौ; चिरंजीविके मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हौ, आज हम भी धन्य हैं जो तुम्हारे सारिखे महापुरुषके मुखते आत्मउदित इसप्रकार सुना है, जैसे मैं पूँछा तैसे तुमने कहा॥ हे साधो! मैं सब भूमिलोक देखा है, अरु दिशागण देखे हैं, अकाशलोक देखा है, पाताललोक देखा है, त्रिलोकी देखी है, तुमसारखा कोऊ विरला है, जैसे बांस बहुत हैं, परंतु मोतीवाला कोई विरला होता है, तैसे तुमसारखे विरले हैं॥ हे साधो! आज हम पुण्यरूप हुए हैं, हमारी देह आज पवित्र हुईहै जो तुमसारिखे मुक्त आत्माका दर्शन हुआ है॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकर बहुरि कहा॥ हे साधो! अब हम जाते हैं, हमारे मध्याह्नका समय हुआ है, सप्तर्षिके मध्य जाते हैं, जब मैं ऐसे कहा तब कल्पलताते उठ खड़ा हुआ, अरु संकल्पके हाथ करिकै उसने स्वर्णका पात्र रचिकारि मोती रत्नसे भरकर, मुझको अर्घ्य पाद्य किया, पूजन करत भया, जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजा करता है, तैसे चरणते लेकारि मस्तकपर्यंत मेरा पूजन किया, अरु बहुत नम्र होकारि प्रणाम किया, अरु मैं उसको प्रणाम किया, इसप्रकार परस्पर नमस्कार करिकै मैं

वहांते उठि खडा हुआ,अरु आकाशमार्गको चला, जैसे पक्षी उड़ता है, तैसे मैं उड़ा वह भी मेरे साथ उड़ा, परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये, एक योजनपर्यंत चले गये, तब मैंने उससे कहा ॥ हे साधो ! तुम अब यहांहीते फिरौ, वारंवार कहिकरि उसको स्थित किया, मैं चला गया, जबलग मैं उसको दृष्ट आता रहा तबलग वह देखता रहा, जब मैं दृष्ट आनेते रहा तब वह अपने स्थानमें जाय बैठा मैं सप्तर्षिके मंडलविषे आय स्थित भया, अरुंधतीकरि पूजित हुआ ॥ हे रामजी ! यह भुशुण्डके वचन मैं तुझको आश्चर्यरूप सुनाये हैं, अब भी सुमेरुके शृंगऊपर उस कल्पवृक्षकी लताविषे कल्याणरूप सम स्थित है, अरु शांतिरूप है, मान्य करनेके योग्य है; अरु सदा समाधिवान् है, ऐसा पुरुष अबलग वहांही स्थित है ॥ हे रामजी ! यह हमारा अरु उसका समागम जब सत्ययुगके दो सौ वर्ष व्यतीत हुए थे तब हुआ था, अब सत्ययुग क्षीण हुआ है, त्रेतायुग वरता है, तिसविषे तुम उपजे हौ, हे रामजी ! अब भी अष्ट वर्ष व्यतीत हुए हैं, कि हमारा उसका मिलाप हुआ था, तिसी वृक्षलताके ऊपर है ॥ हे रामजी ! यह मैंने जो तुझको इतिहास कहा है, सो परम उत्तम है, इसको विचारैगा, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, अब यह मुनि वसिष्ठ अरु भुशुण्डकी कथा जो निर्मलबुद्धिसे विचारैगा, सो भवरूप संसारके भयते तरैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे अनघ ! यह मैं तुझको भुशुण्डका वृत्तांत सब कहा है, इस बोध करिकै भुशुण्ड महासंकटको तरा है, इस दशाको तुम भी आश्रय करिकै प्राणकी युक्तिका अभ्यास करौ,तब तुम भी भुशुण्डकी नाईं भवसमुद्रके पारको प्राप्त होहुगे, जैसे भुशुण्ड ज्ञानयोगकरि पाने योग्य पद

पाया है, तैसे तुम भी पावहु, जैसे प्राण अपानके अभ्यास करिकै भुशुण्ड परमतत्त्वको प्राप्त भया है, तैसे तुम भी अभ्यास करिकै प्राप्त होहु, विज्ञानदृष्टि जो तुझने श्रवण करी है, तिसकी ओर चित्तको लगायकरि आत्मपदको पावहु, बहुरि जैसे इच्छा होवै तैसे करो ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पृथ्वीविषे तुम्हारे ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके प्रकाशकरि मेरे हृदयसों अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है,अब प्रबुद्ध हुआ हौं, अपने आनंदरूपविषे स्थित भया हौं अरु जानने योग्य पदको जानत भया हौं मानो दूसरा वसिष्ठ भया हौं ॥ हे भगवन् ! यह जो भुशुण्डका चरित्र तुमने कहा है, सो परमविस्मयका कारण परमार्थबोधके निमित्त कहा है, तिसाविषे शरीररूपी गृह रक्त मांस अस्थिका किसने रचा है, अरु कहांते उपजा है, अरु कैसे स्थित हुआ है, अरु कौन इसविषे स्थित है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! परमार्थ तत्त्वके बोधनिमित्त अरु दुःखके निवृत्तिअर्थ यह मेरे वचन हैं, सो सुन, अस्थि इस शरीररूपी गृहका स्तंभ है, अरु नव इसके द्वारे हैं अरु रक्त मांससे यह लेपन किया है,सो किसने बनाया नहीं,आभासमात्र है,मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरिकै भासता है, तैसे असत्यरूप शरीर भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञान है तबलग देह सत्य भासता है, जब ज्ञान होता है,तब देह असत्यरूप भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थ सत्य भासते हैं, अरु जाग्रतकालविषे स्वप्न असत्य भासता है, तैसे अज्ञानकालविषे अज्ञानके पदार्थ देहादिक सत्य भासते हैं, अरु ज्ञानकालविषे असत्य हो जाते हैं, जैसे बुद्बुदा जलविषे जलके अज्ञानकरिकै सत्य भासता है, जलके जानेते बुद्बुदा असत्य भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी भासती है, तैसे आत्माविषे देह भासता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्र अज्ञानकरिकै भासता है, अहं त्वं आदिक कल्पना सब मननमात्र मनविषे फुरती है, तू कहता है, देह अस्थि मांसका गृह रचा है, सो अस्थिमांसकरि नहीं रचा संकल्पमात्र है, संकल्पकरि भासता है, संकल्पके अभाव हुए देह नहीं

पाता ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे जो देह धारिकरि दिशा तट पर्वत तू देखता फिरता है, जाग्रत्विषे वह तेरा देह कहां जाता है जो कछु देह सत्य होता तो जाग्रत्विषे भी रहता, अरु मनोराज्य करिके स्वर्गको जाता है, अरु सुमेरुविषे भ्रमता है, भूमिलोकविषे फिरता है, तब यह देह तेरा कहां होता है ॥ हे रामजी ! इन स्थानोंविषे जैसे मनका फुरणा देह होकरि भासता है, सो असत्यरूप है, तैसे यह शरीर मनके फुरणेमात्र है, ताते असत्य जानहु, यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है, इत्यादिक कल्पना मनकी रची हुई है, सबका बीज चित्त है ॥ हे रामजी ! इस जगत्को दीर्घ कालका स्वप्न जान, अथवा दीर्घ चित्तका भ्रम जान, अथवा दीर्घ मनोराज्य जान और वास्तवते जगत् कछु नहीं, जब अपने वास्तव परमात्मस्वरूको अभ्यासकरि जानता है, तब जगत् असत्यरूप भासता है ॥ हे रामजी ! मैंने पूर्व भी तुझको ब्रह्माजीके वचनोंकरि कहा है, कि जगत् सब मनका रचा हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, चिरकालका जो अभ्यास हो रहा है, तिसकरि सत भासता है, जब दृष्ट पुरुष प्रयत्नकरि आत्मअभ्यास होवै, तब असत्य भासै ॥ हे रामजी ! जो भावना इसके हृदयविषे दृढ होती है, तिसका अभाव भी सुगम नहीं होता, जब उसकी विपर्ययभावनाका अभ्यास करिए, तब उसका अभाव हो जाता है कि, यह मैं हौं यह और है, इत्यादिक कलना हृदयविषे दृढ हो रही है, जब इसकी विपर्ययभावना होवै, अरु आत्मभावना करिये, तब वह मिटि जावै, सर्व आत्माही भासै ॥ हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है, वहीरूप फल उसका हो जाता है, जैसे कामी पुरुषको सुंदर स्त्रीकी कामना रहती है, तैसे इसको आत्मपदकी चिंता रहै, तब वहीरूप होता है, जैसे कीट भृंगी हो जाता है, जैसे दिनविषे व्यापारका अभ्यास होता है रात्रिको स्वप्नविषे भी वही देखता है, तैसे जिसका इसको दृढ अभ्यास होता है, सोई अनुभव होता है, जैसे आकाशविषे सूर्य तपता है, अरु मरुस्थलविषे जल होकरि भासता है, सो जलका अभाव है, तैसे पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रमकरिकै भावते रहित भावरूप भासते हैं, जैसे नेत्र दूखने करिकै आकाशविषे तरुवरे मोरपुच्छवत् भासते हैं, तैसे अज्ञान

करिकै जगज्जाल भासते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब आभासरूप है, स्वरूपके प्रमादकरिकै भय अरु दुःखको प्राप्त होता है, जब स्वरूपको जानता है, तब भ्रमभयदुःखते रहित होता है, जैसे स्वप्नपुरविषे चित्तके भ्रम करिकै सिंहिणीते भय पाता है, जब जाग्रतस्वरूप चित्त आता है, तब सिंहका भय निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरिकै निर्भय होता है, जब वैराग्य अभ्यास करिकै निर्मल शुद्ध आत्मपदको प्राप्त होता है, तब बहुरि क्षोभको नहीं प्राप्त होता, रागद्वेषरूपी मल इसको नहीं स्पर्श करता, जैसे तांबा पारसके स्पर्श करिकै स्वर्ण होता है, तब तांबेभावको नहीं ग्रहण करता, तैसे बहुरि मलीन नहीं होता, अहं त्वं आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्रही है ॥ हे रामजी ! प्रथम सत्य असत्को जानै, असत्यका निरादर करै, अरु सत्का अभ्यास करै, तब चित्त सर्व कलनाते रहित होता है, अरु शांतपदको प्राप्त होता है, जो तत्त्वज्ञानकरि सम्यक्दर्शी हुआ है, तिसको जगत्के इष्ट पदार्थ पायेते हर्ष नहीं होता, अरु अनिष्टके पाएते शोक नहीं होता, न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदा करता है, अंतरते शीतल शांतरूप हो जाता है, जब कोऊ बांधव मृतक हो गया है, तब तिसकरि तपायमान क्यों होना, सो तौ मरणेकाही था, जब अपना मृत्यु आवै, तब अवश्य शरीर छूटना है, वृथा क्यों तपायमान होना, जब संपदा आनि प्राप्त होवै, तब उसकरि हर्षवान् नहीं होता, काहेते जो कछु भोगना था, हर्ष किसकरि होना, अरु दुःख आनि प्राप्त होवै, तब क्यों शोक करना, शरीरका व्यवहार सुखदुःख आता जाता है, यह अमिट है, जब अपना किया कर्म उत्पन्न होता है, तब भी शोक क्यों करना ॥ हे रामजी ! जो सत्य है सो असत्य नहीं, जो असत्य है, सो सत्य नहीं, बहुरि रागद्वेष किसनिमित्त करना जिसको ऐसा निश्चय हुआ है, कि न मैं हौं,न जगत है, न पृथ्वी है, तौ भी शोक किसका करना, अरु जब देहते अन्य हौं, चेतन हौं चेतनका तौ नाश नहीं, तब शोक किसनिमित्त करना ॥ हे रामजी ! दुःख तौ किसीप्रकार नहीं, जबलग विचार नहीं, तबलग दुःख होता है, विचार कियेते दुःख कोई नहीं, सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है, सो

सत्यको सत्य जानता है, असत्यको असत्य जानता है, इस कारणते दुःख नहीं पाता, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो अज्ञानकरिकै दुःख पाता है, जैसे दिनके अंतविषे मंडल शीतल हो जाता है, तैसे सम्यक्दर्शीका अंतर शीतल होता है, जिसको कर्तव्यविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, सो सम्यक्दर्शी है ॥ हे रामजी! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनको अंतरते आभासमात्र जान, अरु बाहर जैसे आचार होवै तैसे करु, अथवा तिसका भी त्याग करु, निराभास होकरि स्थित होहु, मैं चिदाकाश हौं, नित्य हौं, सर्वज्ञ हौं, अरु सर्वते रहित हौं, ऐसे अभ्यासकरि एकांत निर्मल आपको देखैगा, अथवा ऐसे धार कि, न मैं हौं न यह भोग हैं, न अर्थरूप जगत् आडंबर है, अथवा ऐसे धार कि, सर्व मैंही हौं, नित्य शुद्ध चिदात्मा हौं आकाशरूप हौं, मेरेते इतर कछु नहीं, मैंही अपने आपविषे स्थित हौं, इन दोनों पक्षविषे जो इच्छा होवै, सो धर, तुझको सिद्धताका कारण होवैगा, अरु जगत्को आभासमात्र जान, परंतु यह भी कलंकरूप है, इस चिंतनाको भी त्यागिकरि निराभास होहु, तू चिदाकाश नित्य है, सर्वव्यापी है, अरु सर्वते रहित है, आभासको त्यागिकरि निर्मल अद्वैत होय रहु, अथवा विधिनिषेध दोनों दृष्टिको आश्रय कर ॥ हे रामजी! क्रियाको करहु परंतु रागद्वेषते रहित होहु, जब रागद्वेषते रहित होवैगा, तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानंदको प्राप्त होवैगा, जो सर्वका अधिष्ठान है, तिसको पावैगा ॥ हे रामजी! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्निकरि जलता है; तिसको संतोष वैराग्य आदिक गुण नहीं प्राप्त होते, जैसे दग्ध भूतलके वनविषे हिरण नहीं प्रवेश करते तैसे रागद्वेषादिकवाले हृदयाविषे संतोषादिक नहीं प्रवेश करते ॥ हे रामजी! हृदयरूपी कल्पतरु है, जो ऐसा वृक्ष रागद्वेषादिक सर्पनते रहित है, तिसते कौनके पदार्थ है, जो न प्राप्त होवै, शुद्ध हृदयते सब कछु प्राप्त होता है, यह अर्थ है ॥ हे रामजी! जो बुद्धिवान् भी है, अरु शास्त्रका ज्ञाता भी है, परंतु रागद्वेषसंयुक्त है सो गीदडकी नाईं नीचे है तिसको धिक्कार है, जिन पदार्थनके पानेकेनिमित्त यह यत्न करते हैं सो तौ आते जाते हैं,

धनको इकट्ठा कोऊ करता है, कोऊ अपर ले जाता है भोक्ता कोऊ अपर है, तब राग द्वेष किसका करिये, जो कछु प्रारब्ध है, सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ क्या यत्न करिये, बांधव अरु वस्त्र आते हैं, बहुरि जाते भी हैं, जैसे समुद्रविषे झषका आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते, भावअभावरूप परमेश्वरकी माया है, संसारकी रचना स्वप्नकी नाईं है, तिसविषे जो आसक्त होते हैं, तिनको सर्पिणीवत् दंशती है, धन बांधव जगत् वास्तवते मिथ्याही अज्ञानकरिकै सत्य भासते हैं ॥ हे रामजी ! जो आदि न होवै, अंत भी न रहै, अरु मध्यविषे भासै, तिसको भी असत्य जानिये जैसे आकाशविषे फूल असत्य हैं, तैसे संसाररचना असत्य , जैसे संकल्प रचना असत्य है, जैसे गंधर्वनगर सुंदर भासता है, अरु नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नपुर दीर्घ कालका भासता है, सो भ्रमरूप है तैसे यह जगत् असत्यरूप भ्रममात्र है, संकल्परूप अभ्यासके वशते दृढताको प्राप्त भया है, कंध जो आकारवान् भासता है, सो आकारते रहित आकाशरूप है, अरु आत्मपद सुषुप्तिकी नाईं अद्वैतरूप है, तिस सुषुप्तरूप पदते जब गिरता है, तब दीर्घरूप स्वप्नको देखता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्राकारि अपने स्वभावते जो गिरा है सो संसाररूपी स्वप्नभ्रमको देखता है, जब अज्ञानरूपी निद्राका अभाव होवै, तब अपने आत्मराज्यपदको प्राप्त होता है, अरु निर्विकल्प मुदिता आत्मपदको प्राप्त होता है, जैसे सूर्यको देखिकारि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे ज्ञानकारि शुभ गुण फूलते हैं, आत्मारूपी सूर्य कैसा है सर्व दुःखते रहित है जो पुरुष निद्राविषे होता है सो सूक्ष्म वचनकारि नहीं जागता बड़े शब्द अरु जल डारनेकारि जागता है, सो मैं तुझको मेघकी नाईं गर्जिकारि वचनरूपी जलकी वर्षा करी है, ज्ञानरूपी शीतलतासहित वचनहै तिन वचनोंकरिकै अब तू ज्ञानरूपी जागृत् बोधको प्राप्त भया है, ऐसे ज्ञानरूपी जगत्को भ्रमरूप देखैगा ॥ हे रामजी ! तुझको न जन्म है, न मृत्यु है, न कोऊ दुःख है, न कोऊ भ्रम है, सर्व संकल्पते रहित आत्म-

पुरुष अपने आपविषे स्थित है, सम है, शांत है, सुषुप्तिकी नाईं तेरी वृत्ति है, अतिविस्तृत सम शुद्ध अपने स्वरूपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशोनाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः २५.

देहसत्ताविचारवर्णनम् ।

वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने वचन कहे, तब रामजी सम शांत चेतनतत्त्वविषे विश्रामको पावत भये, अरु परमानंदको प्राप्त भये, अरु अपर सभा जो बैठी थी, सो भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिकै सम आत्मसमाधिविषे स्थित हो रहे, बोलनेका व्यवहार शांत हो भया, पिंजरेमें पक्षी बोलते थे, सो भी शांत हो गए, वनके जो वानर थे, सो भी वचन सुनिकरि स्थिर हो रहे, सर्व ओरते शांति हो रही, जैसे अर्धरात्रिके समय भूमिलोक शांतरूप हो जाता है, तैसे सभाके लोक तूष्णीं हो रहे, अरु वचनोंको विचारने लगे कि, मुनीश्वरने क्या उपदेश किया है, एक घडीपर्यंत शांति हो रही, तिसके अनंतर बहुरि वसिष्ठजी बोले ॥ हे रामजी ! अब तू सम्यक् प्रबुद्ध हुआ है, अरु अपने आपविषे स्थित भया है, जो कछु जाना है, तिसके अभ्यासका त्याग नहीं करना, इसीविषे दृढ रहना ॥ हे रामजी ! संसाररूपी चक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, तिस चित्तनाभिके स्थिर हुए संसारचक्र भी स्थिर हो जाता है, इसी संसाररूपी चक्रका तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकता है तौ भी फुरणे लगता है, ताते दृढ प्रयत्न बल करिकै, इसको रोकिये, संतके संग अरु सच्छास्त्रके वचन युक्ति बुद्धिकरि रोकता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरि जो दैव कल्पा है, तिसका त्याग करि अपने पुरुषार्थको आश्रय करहु, इसकरि परम शांतपद प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदिलेकरि चींटीपर्यंत सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है, सो असत्यरूप है, भ्रमकरिकै सत्यकी नाईं भासता, है, तिसका त्याग करहु ॥ हे रामजी ! असत्यरूप पदार्थविषे जो रागद्वेष करते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनते चित्रका पुरुष

भी श्रेष्ठ है, जब इष्ट विषय प्राप्त होता है, तब हर्षकरि प्रफुल्लित होते हैं, अरु अनिष्ट प्राप्त होता है, तब द्वेष करते हैं,अरु चित्रके पुरुषको राग द्वेष किसीविषे नहीं, इस कारणते मैं कहता हौं, कि चित्रका पुरुष भी इनते श्रेष्ठ है, अरु यह आधि व्याधिकरि पड़े जलते हैं,वह सदा ज्योंका त्यों है, अरु चित्रका पुरुष तब नाश होवै, जब आधारभूतको नाश करिए, अधिष्ठानके नाशविना आधार भूतका नाश नहीं होता, अरु यह पुरुष अविनाशीके आधार है, तिसका नाश होता नहीं, अरु मूर्खता करिकै आपको नाश होता मानते हैं, रागद्वेषकरि संयुक्त है, ताते चित्रके पुरुषते भी तुच्छ है, अरु मनोराज्य संकल्परूप देह इस देहते श्रेष्ठ है, जेते कछु दुःख इसको होते हैं, सो बड़े कालपर्यंत रहते हैं, अरु मनोराज्यका दुःख हुआ बहुरि अपर संकल्पके आयेते उसका अभाव हो जाता है, ताते थोड़ा दुःख है, संकल्पदेहते भी स्थूलदेह तुच्छ है ॥ हे रामजी ! जो थोडे कालते देह हुई है, तिसविषे दुःख भी थोड़ा है, अरु जो दीर्घ संकल्परूपी देह है, सो दीर्घ दुःखको ग्रहण करता है, ताते महानीच है ॥ हे रामजी ! यह देह भी संकल्पमात्र है, सो न सत्यहै न असत्य है, तिसके भोगनिमित्त मूर्ख यत्न करते हैं, अरु क्लेश पातेहैं, अरु देह अभिमानकरिकै इसके सुखसाथ सुखी होते हैं, दुःखसाथ दुःखी होते हैं, इसके नष्ट हुए आपको नष्ट हुआ मानते हैं, परंतु देहके नष्ट हुए पुरुषका नाश तौ नहीं होता, जैसे मनोराज्यके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे दूसरे चंद्रमाके नाश हुए चंद्रमाका नाश नहीं होता, तैसे इस देहके नाश हुए देही पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे संकल्प पुरुषके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे स्वप्नभ्रमके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घन धूप करिकै रणाविषे जल भासता है, अरु भलीप्रकार जाय देखिये तव जलका अभाव हो जाता है, परंतु देखनेवालेका अभाव नहीं होता, तैसे संकल्पकरि रचा विनाशरूप जो देह है, तिसके नाश हुए तुम्हारा नाश तौ नहीं होता ॥ हे रामजी ! दीर्घकालका रचा जो स्वप्नमय देह है, तिसके दुःख अरु नाशकरि

आत्माको दुःख अरु नाश नहीं होता, चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती, अरु स्वरूपते चलायमान भी नहीं होती, न विकारको प्राप्त होती है, सर्वदा शुद्ध अच्युतरूप अपने आपविषे स्थित है, देहके नाश हुए तिसका नाश नहीं होता, अज्ञानका दृढ अभ्यास हुआ है, तब देहके धर्म अपनेविषे भासने लगे हैं, जब आत्माका दृढ़ अभ्यास होवै, तब देहाभिमान अरु देहके धर्म अभाव हो जावैं, जैसे चक्रके ऊपर कोऊ चढ़ता है, अरु भ्रमता है, जब उतरता है, तब केताक काल भ्रमता भासता है, जब चिरकाल व्यतीत होता है, तब स्थित हो जाता है, देह-रूपी चक्र इसको प्राप्त भया है, अज्ञानकरिकै भ्रमा हुआ आपको भ्रमता देखता है, जब अज्ञानका वेग निवृत्त होता है, तब भी कोई काल देह-भ्रम भासता है, तिसकरि जानता है, मेरा नाश होता है, मुझको दुःख होता है, इत्यादिक कल्पना अज्ञानकरि भासती हैं, तिस भ्रम दृष्टिको धैर्यकरिकै निवृत्त करता है, तब अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! जैसे भ्रमकरिकै जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे देहभासना असत्य है, जड है, न कर्मको करती है, न मुक्त होनेकी इच्छा करती है, अरु देव परमात्मा भी कछु करता नहीं वह सदा शुद्ध द्रष्टा प्रकाशक हैं, जैसे निर्वात दीप अपने आपविषे स्थित है, तैसे तू शुद्धस्वरूप अपने आपविषे स्थित होहु, जैसे सूर्य आकाशविषे स्थित होता है, अरु सर्व जगत्को प्रकाश करता है, तिसके आश्रय लोक चेष्टा करते हैं, परंतु सूर्य कछु नहीं करता, सबका साक्षीभूत है, तैसे आत्माके आश्रय देहा-दिककी चेष्टा होती है; परंतु आत्मा साक्षीरूप है, पापपुण्यते रहित है ॥ हे रामजी! यह देहरूपी शून्य गृह है, तिसविषे अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है, जैसे बालक परछाईंविषे वैताल कल्पता है, अरु भयको पाता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाच कल्पिकरि भयको पाता है, सो अहंकाररूपी पिशाच महानीच है, सर्व संतजनकरि निंद्य है, जब अहं-काररूपी वैताल निकसै, तब आनन्द होवै, देहरूपी शून्य गृहविषे इसका निवास है, जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है, तिसको यह नरक-विषे जाता है, ताते तुम उसका टहलुआ नहीं होना, इसके नाशका

उपाय करोगे, तब आनन्दको प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल है, जिसको स्पर्श करता है, तिसको अशुद्ध करता है. अर्थ यह कि, जिसका धैर्य अरु निश्चय विपर्ययकरि देता हैं, तिसकरि दुःखको प्राप्त करता है, अपने स्वरूपते गिराय देता है, जो बडे बडे साधु महंत हैं, सो भी इसके भयकरिकै समाधिविषे स्थित होते हैं, जो किसी प्रकार अहंकार अभाव होवै ॥ हे रामजी ! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है, तिसको आप जैसा करिलेता है, जैसा आप तुच्छ करता है, तैसा अपरको तुच्छ करताहै, अरु उजाडविषे रहता है, जहां संतसंग अरु सच्छास्त्रका विचार नहीं, अरु आत्मज्ञानका निवास नहीं, तहां शून्य उजाडरूपी देहमंदिरविषे रहता है, जो कोऊ ऐसे स्थान-विषे प्रवेश करता हैं, तिसको प्रवेशकरि जाता है ॥ हे रामजी ! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है तिसका धनकरि कल्याण नहीं होता; न बांधवमित्रकरि कल्याण होता है, अरु अहंकार पिशाचसे मिला हुआ जेती कछु क्रिया कर्म करता है, सो अपने नाशकेनिमित्त करता है, विषकी वल्लीको उपजावता अरु बढावता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विवेक अरु धैर्यते रहित है, तिसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाइ जाता है, सो कैसा है, सब रूप है जिसको स्पर्श करता है, तिसको शवकरिछांडता हैं, अरु जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो नरकरूपी अग्निविषे काष्ठकी नाईं जलैगा, अरु अहंकाररूपी सर्प है, जिस देहरूपी वृक्षके छिद्रविषे विषको धारे बैठा है, तिसके निकट जो जावैगा, तिसको मृतक करैगा, जो अहंममभावको प्राप्त होवैगा सो मृतक समान होवैगा जन्ममरणको पावैगा, अहंकाररूपी पिशाच जि-सको लगा है, तिसको मलिन करता है, स्वरूपते गिरायकरि संसार-रूपी गर्तविषे डारता है, अरु बडी आपदाको प्राप्त करता है, जेती आपदाको अहंकार प्राप्त करता है, सो बहुत वर्षपर्यंत करता रहे, तौ भी आपदाका वर्णन न करि सकौंगा ॥ हे रामजी ! यह जो अभिमान है, कि मैं हौं, मैं मरता हौं, मैं दग्ध होता हौं, मैं दुःखी हौं, मनुष्य हौं इत्यादि कल्पना जो मलिन उठती हैं, सो

अहंकाररूपी पिशाचकी शक्ति है, आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध चिदाकाश सर्वगत सच्चिदानंद है, सो सबका अपना आप है, अहंकारके वशते आपको परिच्छिन्न अलेप दुःखी मानता है, जैसे आकाश सर्वगत अलेप है, तैसे आत्मा सर्वविषे अलेपहै, अरु सर्वसाथ असबंध है, अहंकारके संबंधते रहितहै ॥ हे रामजी ! ग्रहण त्याग चलना बैठना इत्यादिक जेती कछु क्रिया होतीहै, सो देहरूपी यंत्र अरु वायुरूपी रसड़ीकरि अहंकाररूपी यंत्री करावता है, आत्मा सदा निर्लेप है. सबका अधिष्ठानरूप है, कारणकार्य भावते रहित है, जैसे वृक्षकी ऊँचाईका कारण आकाश है, अरु निर्लेप है, तैसे आत्मा सर्व चेष्टाका कारण अधिष्ठानहै, अरु निर्लेप है, जैसे आकाश अरु पृथ्वीका संबंध नहीं, तैसे आत्मा अरु अहंकारका संबंध नहीं, चित्तको जो आपजानतेहैं, सोमहामूर्ख हैं, आत्मा प्रकाशरूप है, नित्य सर्वगत है, विभु है, चित्त मूर्ख है, जड़ है, आवरण करताहै, हे रामजी ! आत्मा सर्वज्ञ है, चेतनरूपहै, चित्त मूढ है, अरु पत्थरवत् जड़ है, इसको दूरकरहु, इसकाअरु तेरा संबंध कछु नहीं, तुममोहको तरहु, देहरूपी शून्य गृहविषे चित्तरूपी वैतालका निवास है, जिसको अपने वश करता है, तिसको बांधव भी नहीं छुड़ाय सकते, अरु शास्त्र नहीं छुड़ाय सकते अरु जिसका देहाभिमान क्षीण होगया है, तिसको गुरु शास्त्र भी छुडानेको समर्थ होते हैं, जैसे अल्प चीकडते हरिणको काढि लेता है, तैसे गुरु शास्त्र निकासि लेते हैं ॥ हे रामजी ! जेते देहरूपी शून्य मंदिर हैं, तिन सबविषे अहंकाररूपी पिशाच रहताहै, कोऊ देहरूपी गृह अहंकार पिशाचविना भी है, अपर भयसाथ मिला हुआ है, जैसे पिशाच अपवित्र स्थानविषे रहता है, पवित्रस्थानविषे नहीं रहता, तैसे जहां संतोष, विचार, अभ्यास, सत्संगते रहित देह है, तिस स्थानविषे अहंकार निवास करता है ॥ अरु जहां संतोष, विचार, अभ्यास सत्संग, होता है, तहांते अभाव हो जाता है, जेते कछु शरीररूपी श्मशान हैं, सो चित्तरूपी वैतालकरि पूर्ण हैं, अरु अपरिमित मोहरूपी वैताल हैं, जगत्‌रूपी महावनविषे मोहको प्राप्त होतेहैं, जैसे बालक मोह पाता है ॥ हे रामजी ! तू आपकरि अपना उद्धार करु, सत्य विचारकरिकै धैर्यको प्राप्त होहु, यह जगत्‌रूपी पुरातन वन है, तिसविषे जीव-

रूपी मृग विचरते हैं, अरु भोगरूपी तृणको आश्रय करतेहैं, सो भोग-रूपी तृण कैसे हैं, देखनेमात्र सुंदर भासते हैं, परंतु तिनके नीचे गर्त है, जैसे गर्त ऊपर हरियावल तृण आच्छादन होते हैं, तिसको देखिकारि मृगके बालक भोजन करने लगते हैं, अरु गर्तविषे गिर पडते हैं, तैसे जीवरूपी मृगको रमणीय जानिकारि भोगने लगते हैं, तिनकी तृष्णा कारि नरक आदिक जन्मविषे गिरते हैं; अग्निकी नाईं जलते हैं ॥ हे रामजी ! तुम ऐसे नहीं होना, जो कोऊ भोगकी तृष्णा करैगा, सो नरक-रूपी गर्तविषे गिरेगा, ताते तुम मृगमतिको त्यागिकारि सिंहवृत्तिको धारहु, मोहरूपी हस्तिको सिंह होकारि अपने नखनसे विदारहु, भोगकी तृष्णाते रहित होना यह अर्थ है, भोगकी तृष्णावाले जीव जंबूद्वीपरू-पी जंगलविषे मृगकी नाईं भटकते हैं,तिनकी नाईं तुम नहीं विचरना॥ हे रामजी ! स्त्री जो रमणीय भासती हैं, तिनका स्पर्श अल्प काल-विषे शीतल सुखदायक भासता है, परंतु चीकडकी नाईं हैं, जैसे चीक-ड़का लेप भी शीतल भासता है, परंतु तुच्छ है, जैसे संढा चीकड दल-दलविषे फँसा हुआ निकसि नहीं सकता, तैसे यह भोगरूपी दलदलविषे फँसा हुआ निकसि नहीं सकता, ताते तू संतकी वृत्तिको ग्रहण कर,सो ग्रहण करना किसको कहते हैं, अरु त्याग करना किसको कहतेहैं, ऐसे विचारिकारि असत् वृत्तिका त्याग करौ.अरु आत्मतत्त्वको आश्रय करौ हे रामजी ! यह देह अपवित्रहै,अस्थिमांसरुधिरकारि पूर्ण है, अरु तुच्छ है, अरु दुष्ट इसका आचार है, देहके निमित्त भोगकी इच्छा करनी, इसकारि परमार्थ कछु सिद्ध नहीं होता, देह औरने रची है, और कारि चेष्टा करती है, औरने इसविषे प्रवेश किया है, दुःखको और ग्रहण करता है, जो दुःखका भागी होता है ॥ संकल्पने देह रची है, अरु प्राणकारि चेष्टा करता है, अहंकार पिशाचने इसविषे प्रवेश किया है, अरु गर्जता है, मनकी वृत्ति सुखदुःखको ग्रहण करती है, अरु दुःखी जीव होता है, ताते आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! परमार्थसत्ता एक है, अरु सर्वसमान है, इतर सत्ता तिसविषे कोई नहीं, जैसे पत्थर घन जड़ होता है, तिसविषे अपर कछु नहीं फुरता, तैसे सत्तामात्रते इतर अपर द्वैतसत्ता किसी पदार्थकी नहीं, जैसे पत्थर घनरूप है, तैसे परमात्मा घनरूप है,

अपर जड चेतन भिन्न कोई नहीं, यह मिथ्या संकल्पकी रचना है, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे सब कल्पना मनकी है, जैसे एक गन्नेके रसकरि गुड़ हो जाता है, कहूँ शक्कर खंड होती है, तैसे एक परमात्म सत्ता सर्व समान है, तिसविषे जडचेतनकी कल्पना मिथ्या है, जबलग सम्यक् दृष्टि नहीं प्राप्त भई, तबलग जडचेतनकी दृष्टि होती है, जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है, तब भेदकल्पना सब मिटि जाती है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, सो न सत्य होता है, न असत्य होता है, तैसे आत्माविषे जड चेतन सत्यअसत्य विलक्षण कल्पना है ॥ हे रामजी ! जो सत्य है, सो असत्य नहीं होता, अरु जो असत्य है, सो सत्य नहीं होता, आत्मा सदा सत्यरूप है, अरु अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैत एकका अभाव है, जैसे पत्थरविषे अन्य सत्ताका अभाव है, तैसे आत्माविषे द्वैतसत्ताका अभाव है, नानारूप भासता है, तौ भी द्वैत कछु नहीं, सदा अनुभवरूप है, विभागकल्पना तिसविषे कछु नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जेती कछु भेदकल्पना भासती है, सो चित्तकरि भासती है, जब चित्तका अभाव होता है, तब जडचेतनकी कल्पना मिटि जाती है, जैसे वंध्याके पुत्रको अभाव है, जैसे आकाशविषे वृक्षका अभाव है, तैसे आत्माविषे कल्पनाका अभावहै ॥ हे रामजी ! यह जो कल्पनाहै, कि यह चेतनहै, यह जड है यह उपजता है, यह मिटि जाता है, इत्यादिक सब कल्पना मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्माविषे कल्पना मिथ्या है, अरु गुरुशास्त्र भी जो आत्माको चेतन कहते हैं, अनात्माको जड कहतेहैं, सो भी बोधके निमित्त कहते हैं, दृष्टांत युक्ति करि दृश्यको आत्मस्वरूपविषे स्थित करते हैं, जब स्वरूपविषे दृढ़ स्थिति होवैगी तब जडचेतनकी भेदकल्पना जाती रहैगी, केवल अचैत्य चिन्मात्रसत्ता भासैगी, जो तत्त्व है, इसप्रकार गुरु भी जडचेतनके विभागका उपदेश करते हैं, तौ भी मूर्ख नहीं ग्रहण करि सकते, तौ जब प्रथमही अचैत्य चिन्मात्र अवाच्यपदका उपदेश करै, तब कैसे ग्रहण करै ॥ हे रामजी ! और आश्चर्य देख कि, चित्त और है, इंद्रिय

और हैं, देह और है, देहका कर्त्ता कोऊ दृष्टि नहीं आता, अरु अहंकार करिकै वेष्टित करी है, यह जीव ऐसे मूर्ख हैं, जो देहको अपना आप जानते हैं, अरु दुःखको प्राप्त होते हैं, अरु जो विचारवान् पुरुष हैं, आत्मपदविषे स्थित हुए हैं, तिन महानुभावोंको कोऊ क्रिया दुःख बंधन नहीं कर सकती, जैसे मंत्र जाननेवालेको सर्प दुःख दे नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्को कर्म बंधन नहीं करता॥ हे रामजी ! न तू शीशहै, न नेत्र है, न रक्त है, न मांस है, न अस्थि आदिक है, न मन है, न तू भूतजात है, तू चित्तते रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप है, शरीरसों ममता त्यागिकरि नित्य शुद्ध सर्वगत आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देहसत्ताविचारवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

वसिष्ठाश्रमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी दृष्टिको आश्रय कर अरु भेद कष्ट दृष्टिका त्याग कर, नाश कर, जब कष्टदृष्टि नष्ट होवैगी, तब आत्मानंद प्रगट होवैगा, जिस आनंदके पायेते अष्टसिद्धिका ऐश्वर्य भी अनिष्ट जानिकरि त्यागैगा, अब अपर दृष्टि सुन, कैसी दृष्टि है जो महामोहका नाश करती है, अरु जो आत्मपद पाना कठिन है, सो सुखेन प्राप्त होवैगा ॥ बहुरि कैसी दृष्टि है, जिसका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु दुःखते रहित आनंदरूप मैं शिवजीते श्रवण करी है, पूर्ण कैलासकी कंदराविषे संसारदुःखकी शांति अर्धचंद्रधारी सदाशिवने मुझको कही थी ॥ हे रामजी ! महाचंद्रमाकी नाईं शीतल अरु प्रकाश है जिसका, ऐसा जो हिमालय पर्वत, तिसकी कंदरा कैलास पर्वत तहां गौरीके रमणीय स्थान मंदिर हैं, तहां गंगाका प्रवाह झरणेते चला जाता है,अरु पक्षी शब्द करते हैं, अरु मंद मंद पवन सुखदायक चलता है, अरु कुबेरके मोर विचरते हैं, कलपवृक्ष लगे हुए हैं, महा उज्वल शीतल

सुंदर कंदरा है, मंदारवृक्ष, तमाल वृक्ष लगे हुए हैं, तिनकेसाथ फूल ऐसे हैं, मानो श्वेत मेघ हैं, तहां गंधर्व किन्नर आय गान करते हैं, देवताओंके रमणीय सुंदर स्थान हैं, तिस पर्वतके ऊपर सदाशिव विराजते हैं, त्रिनेत्र हैं, अरु हाथविषे त्रिशूल है, गणोंकरि वेष्टित हैं, अरु भगवती अर्धांगविषे विराजती है, ऐसा जो सर्व लोकका कारण ईश्वर है, सो तहां विराजता है, बहुरि कैसा है, कामदेवका गर्व नाश किया है; अरु षण्मुखसहित स्वामिकार्तिक पास प्राप्त है, अरु महाभयानक शून्य श्मशानोंविषे तिसका निवास है, तिस देवको मैं पूजत भया, तिस पर्वत ऊपर एक कालमें मैं तप करने लगा था, महापुण्यवान् एक कुटी बनाई, तिसविषे यथाशास्त्र पुण्यक्रियाकरि मैं तप करने लगा, एक कमंडलु पास राखा, वृक्षके फूल माला पूजनेनिमित्त रक्खे, जलपान करौं, फल भोजन करौं, बहुरि विद्यार्थी शिष्य साथ रहैं, तिनको पढ़ावौं, शास्त्रका अर्थ विचारौं, ब्रह्मविद्याके पुस्तकका समूह पड़ा हुआ आगे मृग अरु मृगके बालक विचरैं इसप्रकार हम कालको बितावैं, वेदका पढ़ना, ब्रह्मविद्याको विचारना, अरु शास्त्रअनुसार तप करना इन गणहूँ संयुक्त कैलास वनकुञ्जविषे हम विश्राम करैं ॥ तिसके अनंतर एक कालमें एक दिन श्रावण वदी अष्टमी अर्धरात्र व्यतीत भई है, तिस कालमें समाधिते उतरकर देखता भया, दशों दिशा काष्ठ मौनवत् शांतरूप हैं, अरु ऐसा तम है, जो शस्त्रहूकरि छेदनेवाला है, अरु मन्द मन्द पवन चलता है, उसके कणका गिरते हैं, मानो पवन हाँसी करता है, तिसी समय चंद्रमा आनि उदय हुआ, महाशीतल अमृतरूप किरणोंको प्रकाशता भया, औषधिनको रससे पुष्ट करता भया, चन्द्रमुखी कमल खिलि आये, चकोर अमृतकी किरणोंको पान करने लगे, मानो चंद्रमारूप हो गये हैं, प्रातःकालविषे मणितारेकी नाईं ऊपर आनि पडने लगी, अरु सप्तर्षि शीशपर आनि स्थित भये, मानो मेरे तपको देखने आये हैं, सप्तर्षिविषे पिछले जो तीन तारे हैं, तिनके मध्यविषे मेरा मंदिर है, तहां मैं सदा विराजता हौं, तब चंद्रमाकरि शीतल स्थान हो गये, पवनकरि फूल गिरे हैं, अरु चंद्रमाका प्रकाश महाशीतल है, तिसकरि स्थान शीतल होगये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र० वसिष्ठाश्रमवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

रुद्रवसिष्ठसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अर्धरात्रिके समय जब मैं समाधिते उतरा, तब मुझको तेज प्रकाश दृष्ट आने लगा, जैसे मंदराचल पर्वतके पायेते क्षीरसमुद्र उछलि आता है, मानो हिमालय पर्वत मूर्ति धारिकारि स्थित है, मानो माखनका पहाड़ पिंड आनि स्थित हुआ है, मानो सब शंखकी स्पष्टता आनि स्थित भई है, मानो मोतीका समूह इकट्ठा होकारि उडने लगा है, महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आवै, मानो गंगाका प्रवाह उछलने लगा है, परंतु तिस प्रकाशकी शीतलताने सब दिशा तट पूर्णकारि लिये हैं, तब मैं देखिकारि आश्चर्यमान हुआ अकाल प्रलय होने लगा है, तब बोध दृष्टिकारि विचारने लगा कि, यह क्या है? तब मैंने देखा कि, देवताओंके गुरु ईश्वर सदाशिव चंद्रकलाको धारे हुए चले आते हैं, अरु गौरी भगवतीके साथ हाथ ग्रहण किया है, अरु गणोंके समूहकारि वेष्टित हैं, कानोंविषे सर्प पड़े हुए हैं, कंठविषे रुंडकी माला है, शीशपर जटा है, तिसपर कदंब वृक्ष है, अरु तमाल वृक्षके फूल पड़े हुए हैं, ऐसे सदाशिव जो सबको फल देनेहारे हैं, तिनको मनकारिकै मैं देखत भया, अरु मनहीकारि मंदार वृक्षके पुष्प लेकारि अर्घ्य पाद्य करत भया, अरु मनहीकारि प्रणाम करत भया, अरु मनहींकारि प्रदक्षिणा देत भया, ऐसे करिकै मैं अपने आसनते उठि खड़ा हुआ, अपने शिष्यको जगावत भया, जगायकारि अर्घ्यपाद्य ले चला, जायकारि त्रिनेत्र शिवको पुष्पांजलि दिया, देकारि प्रदक्षिणाकारि प्रणाम किया, तब मुझको चंद्रधारी कृपादृष्टिकारि देखत भया, अरुसुंदर मधुरी वाणीकारि कहत भया, हृदयका तम नष्टकर्त्ता, शरन पड़ेको परम शांतिपद प्राप्तकर्त्ता ऐसे सदाशिवजी मुझको देखिकारि कहत भया ॥ ईश्वर उवाच॥ हे ब्राह्मण ! ले आउ अर्घ्य पाद्य, हम तेरे आश्रमविषे अतिथि आए हैं ॥ हे निष्पाप ! तुझको कल्याण तौ है ? क्यों कि, तू मुझको महाशांतरूप भासता है, अरु महासुंदर उज्ज्वल तपकी लक्ष्मीकारि तू शोभता

है, चलो हम तुम्हारे आश्रमको चलै हैं ॥ हे रामजी ! फूलके स्थान-विषे सदाशिव बैठे थे, सो ऐसे कहिकरि उठि खड़े हुए, तब इकट्ठे अपने आश्रमपरि कुटीविषे आनि स्थित हुए, तहां मैं बहुरि पुष्प अर्घ्यकरि चरणोंकी पूजा करी, बहुरि हाथकी पूजा करी, इसीप्रकार चरणोंते लेकारि शीशपर्यंत सर्व अंगकी पूजा करी, बहुरि तैसेही गौरी भगवतीका पूजन किया, सखियोंका पूजन किया, बहुरि गणोंका पूजन किया॥ हे रामजी ! इसप्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन करि-चुका, तब शशिकलधारी शीतल वाणीकरि मुझको कहत भया ॥ हे ब्राह्मण ! नानाप्रकारकी चिंतवनेहारी जो चित्तकी वृत्ति है, सो क्या तेरे स्वरूपविषे विश्रांतिको प्राप्त भई है, अरु क्या संवित्‌तेरी आत्मपदविषे स्थित भई है,अरु तुम्हारेशिष्यको कल्याण तौ है, अरु तुम्हारेपासजो हरिण विचरते हैं, यह सुखसे तो हैं, अरु क्या मंदारवृक्षतुमको पूजाके निमित्त फूल फल भलीप्रकार देते हैं, अरु मंदाकिनी जो गंगा है, सो क्या तुमको भलीप्रकार स्नान कराती है, अरु देहके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे तुम क्या खेदवान् नहीं होते अरुइस पर्वतविषेकुबेरके अनुचर यक्ष राक्षस रहते हैं, सो तुमको दुःख तौ नहींदेते, अरु मेरे गण जो चक्षु निशाचर हैं, वह भी तुमको कष्ट तौ नहीं देते ॥ हे रघुनंदन ! इसप्रकार जब देवेशने मुझसे वांछित प्रश्न कहे, तब मैं उनसे कहत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महेश्वर! जो कल्याणरूप तुझको सदा स्मरतेहैं, तिनको इस लोकविषे ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो पाना कठिन होवै, अरु भय भी किसीका नहीं, जिनका चित्त तुम्हारे स्मरणकरि आनंदसों सर्व ओरते पूर्ण भया है, सो जगत्‌विषे दीन नहीं होते, तेई देश तेई जनोंके चरण अरु दिशा पर्वत वंदना करने योग्य हैं, जहां एकांतबुद्धि बैठिकरि तुम्हारा स्मरण करतेहैं ॥ हे प्रभो ! तुम्हारास्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्षका फल है, अरु वर्त्तमान कर्मोंकारि सिंचता है, तुम मनके परममित्र हौ, सर्व आपदाका हरणेहारा तुम्हारा स्मरण है, सर्व संपदारूपी लताके बढावनेहारे तुम्हारा स्मरण वसंतऋतु है ॥ हे प्रभो ! बड़ी महिमा अरु बडेते बड़े कर्मोंके कारणका कारण तुम्हारा स्मरण है ॥ हे प्रभो ! विवे-

करूपी समुद्रविषे परमार्थरूपी रत्न है, अरु ज्ञानरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्यका समूह तुम्हारा स्मरण है, ज्ञान अमृतका कलश अरु धैर्यरूपी चाँदनीका चंद्रमा, अरु मोक्षका द्वार तुम्हारा शरण है ॥ हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी दीपक उत्तम है, चित्तका मंडप जो है संसार तिस सर्वको प्रकाशता है ॥ हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण उदार चिंतामणिकी नाईं सर्व आपदाको छेदनेहारा है, अरु बडे उत्तम पदको देनेहाराहै ॥ हे प्रभो ! तुम्हारा स्मरण एक क्षण भी चित्तविषे स्थितहोवै, तब सर्वदुःख अरु भयको नाश करता है, अरु वरदायक है, तिसकरि तुम्हारे नाईं सुखसों वसता हौं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब दिनका अंत हुआ, सर्व सभा उठी, परस्पर नमस्कार करिकै अपने स्थानोंको गये, सूर्यकी किरणोंसाथ बहुरि अपने अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रुद्रवसिष्ठसमागमवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मैंने कहा; तब गौरी भगवती जगन्माता जैसे माता पुत्रसे कहै, तैसे मुझसे कहत भई ॥ गौरी भगवत्युवाच ॥ हे वसिष्ठजी ! पतिव्रता जो अरुंधती है, सो कहां है, जो पतिव्रताविषे मुख्य है, तिसको लेआउ क्योंकि वह मेरी प्यारी सखीहै तिससे मैं कथा शब्दचर्चा करौंगी ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब मुझको पार्वतीने कहा; तब मैं शीघ्रही जायकरि अरुंधतीको ले आया, वे दोनों परस्पर कथा चर्चा वार्त्तासंवादविषे लगीं, अरु मैं विचारता भया कि, मुझको ईश्वर प्राप्त भया, अरु पूछनेका अवसर पाया है, ताते सर्वज्ञानके समुद्रको पूँछौं, संदेहको दूरिकरौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै गौरीशसे पूछत भया, तब जो कछु चंद्रकलाधारीनेमुझसे कहा है; सो मैं तुझको कहता हौं, सो सुन ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! भूत भविष्य

वर्तमान तीनों कालके ईश्वर, अरु सर्व कारणके कारण, तुम्हारे प्रसाद करिकै मैं कछु पूछनेको समर्थ हुआ हौं ॥ हे महादेव ! जो कछु मैं पूछता हौं, सो प्रसन्नबुद्धि होकरि तत्त्वते शीघ्रही उद्वेगको त्यागिकरि कहौ ॥ हे सर्वपापके नाशकरनेहारे, अरु सर्व कल्याणकी वृद्धि करनेहारे ! देव अर्चनका विधान मुझको कहौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! उत्तम जो देवअर्चन है, जिसके कियेते संसारसमुद्रको तरि जाइये, सो सुन ॥ हे ब्राह्मणविषे श्रेष्ठ ! पुंडरीकाक्ष जो विष्णु है, सो देव नहीं, अरु त्रिलोचन जो शिव है, सो भी देव नहीं कमलते उपजा जो ब्रह्मा है, सो भी देव नहीं, अरु सहस्रनेत्र इंद्र भी देव नहीं न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तू, न मैं हौं, न देह है, न चित्त है, न कलनारूपहै, अकृत्रिम अनादिअनंत संवित्रूप देव कहाता है, अपर आकारादिक परिच्छिन्नरूप हैं, सो वास्तवते कछु नहीं. एक अकृत्रिम अनादि अनंत चेतनरूप देव है, सो देव शब्दकरि कहाता है, तिसका जो पूजन है; सोई पूजन है, तिस देवको सर्वत्र जानना जिसते यह सर्व हुआ है, जो सत्ता शांत आत्मरूप है, सर्व ठौरविषे तिसको देखना यही उसका पूजन है, अरु जो तिस संवित्तत्त्वको नहीं जानते, तिनको आकारकी अर्चना कहीहै, जैसे जो पुरुष योजनपर्यंत नहीं चलि सकता, तिसको एक कोशका दो कोशका चलना भी भला है, तैसे जो पुरुष अकृत्रिम देवकी पूजा नहीं करि सकता, तिसको आकारका पूजना भी भला है ॥ हे ब्राह्मण ! जिसकी भावना कोऊ करता है, तिसके फलको तिसी अनुसार भोगता है, जो प्रच्छन्नकी उपासना करता है; तिसको फल भी प्रच्छन्न प्राप्त होता है, अरु जो अकृत्रिम आनंद अनन्त देवकी उपासना करताहै, तिसको वही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है ॥ हे साधो ! अकृत्रिम फलको त्यागिकरि कृत्रिमको चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कोऊ मंदार वृक्षके वनको त्यागिकरि करंजुएके वनको प्राप्त होवैं, तैसे वह करते हैं, सो देव कैसा है, अरु उसकी पूजा क्या है, अरु क्यों करि होती है. सो सुन, तीन फूल हैं, तिन फूलनसे तिसको पूजा होती है, एक बोध १, एक साम्य २, एक शम ३, यह तीनों पुष्प हैं, बोध नाम

सम्यक्ज्ञानका है कि, आत्मतत्त्वको ज्योंका त्यों जानना, अरु साम्य नाम है, जो सर्वविषे पूर्ण देखना. शमका अर्थ यह कि, चित्तको निवृत्त करना आत्मतत्त्वते इतर कछु न फुरै, इन तीनों फूलनसे शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है ॥ हे मुनीश्वर ! बोध, साम्य, शम, इन पुष्पनकारि आत्मादेवकी पूजा करते हैं, यही देवकी पूजा है, आकार अर्चनकारि अर्चा नहीं होती, जो आत्मसंवित् चिन्मात्र है, तिसको त्यागिकारि अपर जड़की जो अर्चना करते हैं, सो चिरपर्यंत क्लेशके भागी होते हैं ॥ हे ब्राह्मण ! जो ज्ञान ज्ञेय पुरुष हैं, सो आत्मध्यानतें इतर पूजन अर्चन बालककी क्रीडावत् मानते हैं, आत्माभगवान् एक देव है, सो शिव है, परम कारणरूप है, तिसका सर्वदाही ज्ञान अर्चनकारि पूजनहै, अपर पूजा कोई नहीं, चेतन आकाश अवयव स्वभाव एक आत्मदेवको तू जान, अपर पूज्य पूजक पूजा त्रिपुटीकारि आत्मदेवकी पूजा नहीं होती ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे भगवन् ! चेतन आकाशमात्र आत्माको जैसे यह जगत् है, अरु चेतनको जीव कहतेहैं, सो कहौ॥ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! चेतन आकाश प्रसिद्ध है, सर्व प्रकृतिते रहित है, जो महाकल्पविषे शेष रहता है, सो आपही किंचनरूप होताहै, तिस किंचनकारि यह जगत् होता है, जैसे स्वप्नविषे चिदात्माही सर्वगत जगत्रूप होकारि भासता है, तैसे जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूप है, आदि सर्गते लेकारि इसकालपर्यंत आत्माते इतरका अभाव है, जैसे स्वप्नविषे जो जगत् भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अपर इतर कल्पना कोई नहीं, चिन्मात्रही पहाड़रूप है, चिन्मात्रही जगत् है, चिन्मात्रही आकाश है, चिन्मात्रही सब जीव हैं, चिन्मात्रही सब भूत हैं, चिन्मात्रते इतर कछु नहीं, सृष्टिके आदि अरु अंतपर्यंत अपर जो कछु द्वैतकल्पना भासती है, सो भ्रममात्र है; जैसे स्वप्नविषे किसीके अंग काटे सो किसीके काटे तौ नहीं निद्रादोषकारि ऐसे भासते हैं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी भ्रममात्र है ॥ हे मुनीश्वर ! आकाश परमआकाश ब्रह्माकाश तीनों एकहीके पर्याय हैं, जैसे स्वप्नविषे संकल्पकारि मायामेंते अनुभव होता है, सो सब चिदाकाश है, तैसे यह जाग्रत् जगत् चिदाकाशरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे

आकाशते इतर कछु नहीं होता, तैसे जाग्रत् स्वप्नभी आत्मतत्त्व होकारि भासता है; आत्माते इतर दूजी वस्तु कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्नविषे चिदाकाशही घट पट आदिक होकारि भासता है, तैसे स्थितिप्रलयादि जगत् चिदात्माते इतर कछु नहीं, आत्माही ऐसे भासता है, जैसे शुद्ध संवित्मात्रते इतर स्वप्नविषे नगर नहीं पाता, तैसे जाग्रत्विषे अनुभवते इतर कछु नहीं पाता ॥ हे मुनीश्वर ! भावअभावरूप पदार्थ तीनों काल जगत् भासता है; सो सब चिदाकाशरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! यह देव मैं तुझको कहा है सो परमार्थते कहा है, तू मैं अरु सब भूतजाति जगत् सर्वका जो देव है सो चिदाकाश परमात्मा है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पपुरविषे चिदाकाशही शरीररूप हो भासता है, इतर कछु नहीं बना, तैसे यह सब चिदाकाशरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २९.

वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इसप्रकार यह सर्व विश्व केवल परमात्मारूप है परमात्माकाश ब्रह्मही एक देवकारि कहाता है, तिसहीका पूजन सार है, तिसहीते सर्व फल प्राप्त होते हैं, सो देव सर्वज्ञ है, अरु सब तिसविषे स्थित हैं, अकृत्रिम देव अज परमानंद अखंडरूप है, तिसको साधना कारिकै पाना है, तिसकारि परमसुखको प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर ! तू जागा हुआ है, तिस कारणते इसप्रकार देवअर्चना मैं तुझको कही है, अरु जो असम्यक्दर्शी बालक हैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त नहीं भई, केवल चित्त है, तिनको धूप दीप पुष्प कर्म आदिक अर्चना कहीहै, आकार कारिकै कल्पित देवकी मिथ्या कल्पना करी है ॥ हे मुनीश्वर ! अपने संकल्पकारि जो देव बनावते हैं, तिसको पुष्प धूप दीपादिककारि पूजते हैं, सो भावनामात्र है, तिसकारि तिनको संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है, सो बालक-

बुद्धिकी अर्चना है, जो तुमसारखे हैं, तिनको यही पूजा है, जो तुमको सर्व आत्मभावनाकरि कही है ॥ हे मुनीश्वर ! हमारे मतविषे तौ अपर देव कोई नहीं एकही परमात्मा देव तीनों भुवनविषेहै तिसते अपर देव कोई नहीं, सो शिव है, अरु सर्व पदते अतीत है, सर्व संकल्पते उल्लंघन वर्तता है, अरु सर्व संकल्पका अधिष्ठान वही है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, सर्व प्रकार शांतरूप है, एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है, तिसको देवकरि कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जो संवितसत्ता पंचभूतकलाते अतीत है, अरु सर्व भावके अंतर वही स्थित है, अरु सर्वको सत्ता देनेहारा देव है, अरु सर्वकी सत्ता हरनेहारा भी वही है ॥ हे ब्राह्मण ! जो ब्रह्म सत्य असत्यके मध्य अरु असत्य सत्यके पर कहाता है, सो देव परमात्मा है, परम स्वतः सत्ता स्वभावकरिकै सबको प्राप्त भया है, अरु महाचित्त करिकै कहाता है, सो परमात्मा देव सत्ता है, ऐसे सर्वविषे स्थित है, जैसे सर्व वृक्षकी लताके अंतर रस जल स्थित है, तैसे सत्ता समानरूप करिकै परमचेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है, जो चेतनतत्त्व अरुंधतीका है, अरु जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पापका है, अरु जो चेतनतत्त्व पार्वतीका है, सोई चेतनतत्त्व मेरा है, सोई चेतनतत्त्व जगत् त्रिलोकीका है, सो देव है, अपर देव कोई नहीं, अरु जो अपर हस्तपादसंयुक्त देव कल्पते हैं, सो भी चिन्मात्र सार कछु नहीं, चिन्मात्रही सर्व जगत्का सारभूत है, सोई अर्चना करने योग्य है, तिसीते सब फलकी प्राप्ति होती है, सो देव कहूँ दूर स्थित नहीं, अरु किसी प्रकार किसीको प्राप्त होना भी कठिन नहीं, सर्वकी देहविषे स्थित है, अरु सर्वका आत्मा है, सो दूर कैसे होवै, अरु कठिनतासों प्राप्त कैसे होवै, सब क्रिया वही करता है, भोजन भी वही करता है, भरण पोषण भी वही करता है, वही श्वास लेता है, सबका ज्ञाता वही है, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंबित होकरि प्रकाशता वही है, जैसे पर्वतके ऊपर चरअचरकी चेष्टा होती है, चलते बैठते स्थित होते हैं, सो सबका आधारभूत पर्वत है, तैसे मनसहित षट् इंद्रियोंकी चेष्टा आत्माके आश्रय होती है, तिस

देवकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त तत्त्ववेत्ताने कल्पी है, सो एक देव चिन्मात्र है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है निरंजन है, आत्मा है, ब्रह्म है, इत्यादिक नाम ज्ञानवान्ने शास्त्रबुद्धि उपदेश व्यवहारके निमित्त रक्खे हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु विस्तारसहित जगत् भासता है, सो सबका प्रकाश वही है, अरु सबते रहित है, सो नित्य शुद्ध अद्वैतरूप है, सब जगत्विषे अनुस्यूत है, जैसे वसंतऋतुविषे नानाप्रकारके फूल वृक्ष भासते हैं, अरु सर्वविषे एकही रसव्यापार है, वही अनेकरूप हो भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् है, सो आत्मा का चमत्कार भासता है, आत्मतत्त्वविषे स्थित है, कहूं आकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं जीवरूप होकरि स्थित है, कहूं चित्तरूप, कहूं अहंकाररूप होकरि स्थित है, कहूं दिशारूप, कहूं द्रव्यरूप, कहूं भाविकारूप, कहूं तमरूप, कहूं प्रकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं सूर्य, कहूं पृथ्वी, कहूं जल, कहूं अग्नि, वायु आदिक स्थावरजंगमरूप होकरि वही स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, तैसे एक परमात्मा देवविषे त्रिलोकियां हैं॥ हे मुनीश्वर ! देवता दैत्य मनुष्य आदिक सब एक देवविषे पड़ बहते हैं, जैसे जलविषे तृण बहते हैं, तैसे परमात्माविषे जीव बहते हैं, वही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकरि दैत्योंको नाश करता है, जैसे जल मेघरूप होकरि धूपको रोकता है, वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र, मस्तकपर चंद्रधारी, वृषभके ऊपर आरूढ, पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भँवरा, रुद्र होकरि स्थित होता है, अरु वही चेतन विष्णुरूप सत्ता है, तिसके नाभिकमलते उत्पन्न हुआ ब्रह्मा, त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनीकी तलावडी होकरि स्थित भया है ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकरि स्थित भया है, अरु जैसे एकही रस अनेकरूप होकरि स्थित होता है, अरु जैसे एकही स्वर्ण अनेक भूषणरूप होकरि स्थित होता है, तैसे एकही चेतन अनेकरूप होकरि स्थित होता है, ताते सर्व देह एक चेतनतत्त्वके हैं, जैसे एक वृक्षके अनेक पत्र होते हैं, तैसे एकही चेतनके सर्व देह हैं वही चेतन मस्तकपर चूडामणि धारणहारा त्रिलोक-

पति इंद्र होकरि स्थित भया है, देवतारूप होकरि भी वही स्थित भया है, अरु दैत्यरूप होकरि भी वही स्थित भया है, मरण उपजनेका रूपभी वही धारता है, जैसे एक समुद्रविषे तरंगके समूह उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जलही जलरूप है, तैसे उपजना अरु विनशना चेतनविषे होता है, सो चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श है, तिसविषे जगत्रूपी प्रतिबिंब होताहै, अपनी रची हुई वस्तुको आपही ग्रहण करिकै अपनेविषे धारता है जैसे गर्भिणी स्त्री, अपने गर्भको धारती है, तैसे चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिंबको धारता है ॥ हे मुनीश्वर! सर्व क्रिया उसी देवकारि सिद्ध होती हैं, देना, लेना, बोलना, चालना, सब उसीकारि सिद्ध होता है, सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसीकारि प्रकाशते हैं, अरु उसीकारि प्रफुल्लित होते हैं जैसे नीलकमल अरु रक्तकमल सूर्यकारि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्माकारि अंधकार अरु प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायुकारि उडती है, जेते कछु जगत्के आरंभ हैं, तिन सर्वको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करता है, जैसे फूलके सिंचनेकारि वल्ली प्रफुल्लित होती है, अरु फूल फलको प्रगट करती है, तैसे चेतनसत्ता सर्व पदार्थको प्रगट करती है, सबको सत्ता देकारि सिद्ध करती है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनहीकारि जडकी सिद्धता होती है, अरु चेतनहीकारि जडका अभाव होता है, जैसे प्रकाशहीकारि अंधकार सिद्ध होताहै, अरु प्रकाशहीकारि अंधकारका अभाव होता है, तैसे सर्व देह चेतनकारि सिद्ध होते हैं, अरु चेतनहीकारि देहोंका अभाव होता है, चेतनभी उसीकारि होता है, शिव भी उसीकारि होता है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो चेतनविना सिद्ध होवै, जो कोई पदार्थ है, सो आत्माहीकारि सिद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष सुंदर है, बडे ऊँचे टाससहित है, परंतु चेतनरूपी मंजरीविना नहीं शोभता, जैसे रसविना वृक्ष नहीं शोभता, तैसे चेतनविना शरीर नहीं शोभता, बढना घटना आदिक जो विकार हैं, सो भी एक आत्माकारि सिद्ध होते हैं, यह जगत् सब चेतनरूप है, चेतनमात्रही अपने आपविषे स्थित है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार

अमृतरूपी वाणीकारि त्रिनेत्रने मुझसे कहा, तब मैं अमृतरूपी भली प्रकार वाणीकारि पूँछत भया॥ हे देव! जब सर्वगत चेतन देव व्यापकरूप स्थित है, अरु चेतनही बडे विस्तारको प्राप्त भया है, तब यह प्रथम चेतन था, अब यह चेतनताते रहित है, यह कल्पनाका सब लोकविषे प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ! महाप्रश्न यह तुझने किया है, तिसका उत्तर सुन॥ हे ब्राह्मण! इस शरीरविषे दो चेतन स्थित हैं, एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है, एक निर्विकल्प आत्मा है, जो चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसाथ मिला हुआ है, सो जीव है, संकल्पके फुरणेकारि अन्यकी नाईं हो गया है, अरु वास्तवते अपर कछु नहीं हुआ, परंतु दृश्यसंकल्पके अनुभवको ग्रहण किया है, तिसकारि जीवरूप हुआ है, जैसे स्त्री अपने शील धर्मको त्यागिकारि दुराचारिणी होती है, तब शीलता उसकी जाती रहती है, परंतु स्त्रीका स्वरूप नहीं जाता, तैसे चैतन्योन्मुखत्व करिके अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है, परंतु चेतनस्वरूपका त्याग नहीं करता, जैसे पुरुष संकल्पके वशते एक क्षणविषे अपररूप हो जाता है, तैसे चित्तसत्ता फुरणे भाव करिके अन्यरूपहुई है, जैसे जल दृढ जडता करिकै पत्थरवत् हो जाता है, तैसे चेतनकला जीवरूप भई है॥ हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तस्पंद चित्तकलाविषे हुआ है, तब शब्दके चेतनते आकाश हुआ, बहुरि स्पर्श तन्मात्राका चेतना हुआ, तब वायु प्रगट भया, इसी प्रकार पंच तन्मात्राके फुरणेकारि पंचतत्त्व हुए, बहुरि देश आदिका उपाय हुआ, तिसविषे जीव प्रतिबिंबित भया, बहुरि निश्चयवृत्ति हुई, तिसका नाम बुद्धि हुआ, बहुरि अहंवृत्ति फुरी, तिसका नाम अहंकार हुआ, बहुरि संकल्प विकल्पवृत्ति फुरी, तिसका नाम मन हुआ, चिंतवना करिकै चित्त हुआ, बहुरि संसारकी भावना हुई, तब संसारका अनुभव हुआ, अभ्यासके वशते संसार भासने लगा जैसे विपर्यय भावना करिकै ब्राह्मण आपको चंडाल जानै, तैसे भावनाके विपर्ययकारि आपको जी, मारने लगा है, संकल्पकी जडता करिकै चेतनरूपी जीवको ग्रहणकारि संकल्पविषे वर्तता है, अनंत संकल्पते जडता तीव्र-

ताको प्राप्त होकारि जडभावको ग्रहणकारि देहभावको प्राप्त होता है, जैसे जल दृढ जडता करिकै बर्फरूप हो जाता है, तैसे चेतन अनंत संकल्प करिकै जड देहभावको प्राप्त होता है, तब चित्त मन मोहित हुआ जड-ताको आश्रय करिकै संसारविषे जन्म लेता है, मोहको प्राप्त हुआ तृष्णा करिकै पीडित होता है, कामक्रोधसंयुक्त भावअभावविषे प्राप्त होता है, अपनी अनंतताको त्यागिकारि परिच्छिन्न व्यवहारविषे वर्तता है, दुःख-दायक अग्निकारि तप्त हुआ शून्यभावको प्राप्त होता है, भेदभावको ग्रहण करिकै महादीन हो रहता है ॥ हे मुनीश्वर ! मोहरूपी जो गर्त है, तिस-विषे जीवरूपी हस्ती फँसा है, भावअभावकारि सदा डोलायमान होता है, जैसे जलविषे तृण भ्रमता है, तैसे असाररूप संसारविषे विकार-संयुक्त रागद्वेषकारि तपता रहता है, शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता है, जैसे यूथते बिछुरा एक मृग कष्टवान् होता है, तैसे आवरणभाव जन्ममरणकारि कष्टवान् होता है, अपने संकल्पकारि आपही भय पाता है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकारि आपही भय पाता है, तैसे जीव अपने संकल्पकारि आपही भयभीत होता है, अरु संकटको पाता है, आशारूपी फाँसीकारि बांधा हुआ कष्टते कष्टको पाता है; कर्मकरिकै तपायमान हुआ अनेक जन्म पाता है, अरु भयविषे रहता है, बालक होता है, तब महादीन परवश होता है, बहुरि यौवन अवस्थाविषे कामादिकके वश हुआ स्त्रीविषे चित्त रहता है, अरु वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकारि मग्न होता है, दुःख कष्ट पडा पाता है, जब मृतक होता है, तब कर्मोंके वश चला जाताहै, बहुरि जन्मता है, गर्भविषे दुःख पाता है, बहुरि बालक यौवन वृद्ध अरु मृतक अवस्थाको पाता है, इसी-प्रकार भटकताहै, स्वरूपते गिरा हुआ स्थिर कदाचित् नहीं होता॥ हे मुनी-श्वर ! एक चित्तसत्ता स्पंदभाव करिकै अनेक भावको प्राप्त होतीहै, कहूँ दुःख कारि रुदन करती है, कहूँ दुःख भोगती है, कहूँ स्वर्गविषे देवांगना होती है, पातालविषे नागिनी होती है, असुरविषे असुरी, राक्षसविषे राक्षसी होती है, वनकोटविषे वानरी, सिंहविषे सिंहिणी, किन्नरविषे किन्नरी

हरिणोंविषे हरिणी होती है, विद्याधरी, गंधर्वी, देवताविषे देवी इत्यादिक जो रूप धारती है, सो चैत्योन्मुखत्व जीवकलारूप धारती है क्षीर-समुद्रविषे विष्णुरूप होकरि स्थित होती है, ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्मारूप होकरि स्थित होती है, पञ्चमुख होकरि रुद्ररूप स्थित होती है, स्वर्ग-विषे इंद्ररूप होकरि स्थित होती है, तीक्ष्ण कलाकारि सूर्यरूप दिनका कर्ता होती है, क्षण दिन मास वर्षको करती है, चंद्रमा होकरि रात्रिको करती है, काल होकरि नक्षत्रको करती है, कहूँप्रकाश, कहूँ तम होती है, कहूँ बीज, कहूँ पाषाण, कहूँ मनरूप होती है, कहूँ नदी होकरि बहती है, कहूँ फूल होकरि फूलती है, कहूँ भँवरा होकरि सुगंध लेती है, कहूँ फल होकरि दिखावती है, कहूँ वायु होकरि चलती है, कहूँ अग्नि होकरि जलावती है, कहूँ बर्फ होती है, कहूँ आकाश होकरि दिखावती है॥ हे मुनीश्वर! इसप्रकार सर्वात्मा सर्वगत सर्व शक्तता करिकै एकहीरूप चित्तशक्ति आकाशते भी निर्मल है, जैसे चेता तैसे होकरि स्थित भई है, जैसी जैसी भावना करती है, शीघ्रही तैसा रूप हो जाती है, परन्तु स्वरूपते इतर कछु नहीं होती जैसे समुद्रविषे फेन तरंग होकरि भासता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं होता, जलही जल है, तैसे चित्तशक्ति अनेक रूप धारती है, परन्तु चेतनते कछु इतर नहीं होती, कहूँ हंस, कहूँ काक, कहूँ शूकर, मक्खी, चिडी इत्यादिक रूप धारिकारि संसारविषे प्रवर्त्तती है, जैसे जलविषे आय तृण भ्रमता है, तैसे भ्रमती है, अरु अपने संकल्पते आपही भय पाती है, जैसे गधेड़ा अपने शब्दकारि आपही पड़ा दौडता है, अरु भय पाता है, तैसे जीव अपने संकल्पकारिकै आपही भय पाता है॥ हे मुनीश्वर! जीवशक्तिका आचार मैंने तुझको कहा है, इस आचारको ग्रहण करिकै बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है, स्वरूपके प्रमाद करिकै जैसा जैसा संकल्प करती है, तैसी तैसी कर्मगतिको प्राप्त होती है, अरु शोकवान् होती है, अनंत दुःखको प्राप्त होती है, अपनी चैत्य-ताकरिकै मलिन होती है, जैसे चावलका स्वरूप तुषकारि आवरा जाता है, अरु बड़े संतापको प्राप्त होता है, बहुरि बहुरि बोता है, बहुरि उगता

काटता है, तैसे स्वरूपके आवरण करिकै जीवकला दुर्भाग्यता जन्ममरणदुःखको प्राप्त होती है, जैसे भरतारते रहित स्त्री शोकवान् होती है, तैसे यह कष्टको पाती है ॥ हे मुनीश्वर ! जड जो है, दृश्य अनात्मरूप, तिससे प्रीति करनेकरि अरु निजस्वरूपके विस्मरणकरि आशारूपी फांसीसे बांधा हुआ चित्त जीवको नीच योनिविषे प्राप्त करता है, जैसे घटीयंत्रके टींद कबहूँ अधको जाते हैं, कबहू ऊर्ध्वको जाते हैं, तैसे जीव आशाका वश हुआ कबहूँ पाताल, कबहू आकाशको जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारो नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.

ईश्वरोपाख्याने मनःप्राणोक्तप्रतिपादनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! स्वरूपके विस्मरण करिकै इसप्रकार होता है, कि मैं हंता हौं मैं दुःखीहौं सो अनात्माविषे अहंप्रतीति करिकै दुःखका अनुभव करता है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपको पर्वतते गिरता देखता है, दुःखी होता है, अरु मृतक हुआ आपको देखता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिकै अनात्मविषे आत्माभिमान करिकै दुःखी आपको देखता है ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध चेतनतत्त्वविषे जो चित्तभाव हुआ है, सो चित्तकला फुरणेकरि जगत्का कारण हुआ है, तिसकरि जगत् होता गया है, परन्तु वास्तव स्वरूपते इतर कछु नहीं भया, जैसे जैसे चेतती गई है, तैसे तैसे जगत् होता गयाहै, वह चित्तका कारणरूप भी नहीं भया, जब कारणही नहीं भया, तब कार्य किसको कहिये ॥ हे मुनीश्वर ! न वह चित्तहै, न चेतन है, न चेतनेवालीहै, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, जैसे पत्थरविषे तेल नहीं होता, सो न कारण है, न कर्म है, न करण इंद्रियां हैं, जैसे चंद्रमाविषे समता नहीं होती, न मन है, न मानने योग्य दृश्य वस्तु है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं होता न अहंता है, न तू है, न दृश्य है, जैसे शखको श्यामता नहीं होती ॥

हे मुनीश्वर ! न नाना है, न अनाना है, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, न शब्द है, न शब्दका अर्थ है, जैसे मरुस्थलविषे वल्ली नहीं होती, न वस्तु है, न अवस्तु है, जैसे बर्फविषे उष्णता नहीं होती, न शून्यहै, न अशून्य है, न जड है, न चेतन है, जैसे सूर्यमंडलविषे अंधकार नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्द अरु अर्थकी कल्पना उसविषे कछु नहीं जैसे अग्निविषे शीतलता नहीं होती; केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है, स्वरूपते किसीको कछु भी दुःख नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जगत्को असत् जानकरि अभावना करनी, अरु आत्माको सत् जानिकरि भावना करनी इस भावनाकरि सर्व अनर्थ निवृत्तहो जाते हैं, सो अपर किसीकरि प्राप्त नहीं होता अपने आपहीकरि प्राप्त होता है, अरु अनादिही सिद्ध है, जब तिसकी ओर भावना होती है, तब भ्रम सब मिटि जाता है, जब अनात्मभावना होती है, तब पाना कठिन होता है, यत्नविना वह कैसे पावै, जो यत्न साथ है, सो यत्नविना नहीं पाया जाता, आत्मा कैसा है, निर्विकल्प है, अद्वैत है, सर्वते अतीत है, सो अभ्यासविना कैसे पाइये, आत्मतत्त्व परम है, एक स्वच्छ है, तेजका भी प्रकाशक है, सर्वगत निर्मल नित्य है, सदा उदित निर्मन शक्तिरूप है, निर्विकार निरंजन है, सो घट, पट, वट, वृक्षविषे, गादीविषे, वानरविषे, दैत्य देवता समुद्रविषे, हस्तिविषे इत्यादिक स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है, सो सर्वविषे एक आत्मतत्त्वविषे साक्षीरूप होकरि स्थित है, दीपकवत् सर्वको प्रकाशता है, अरु सर्व क्रियाते अतीत है; अरु तिसकरि सर्व कार्यसिद्धि होती है, सर्व क्रिया संयुक्त भासता है, अरु सर्व विकल्पते रहित जडवत् भी भासता है; परंतु परम चेतन है, सर्व चेतनका सार चेतन है, निर्विकल्प परम सूक्ष्म है, अरु अपने आपविषे किंचन हो भासता है, अरु अपने प्रमादकरिकै रूप अवलोकन नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है, तब ज्योंका त्यों आत्मा भासता है, नित्य शुद्ध निर्मल परमानंदरूप है, तिसके प्रमादकरिकै चित्तभावको प्राप्त होता है, जैसे साधु भी दुर्जनके संगकरिकै असाधु हो जाते हैं, तैसे अनात्माके संगकरि

यह नीचताको प्राप्त होता है, जैसे सोना धातुकी मिलवनीकारि खोटा हो जाता है, जब शोधाजाता है, तब शुद्धताको प्राप्त होता है, तैसे अनात्माके संगकारि यह जीव दुःखी होता है, जब अभ्यास यत्न करिकै अपने शुद्धरूपको पाता है, तब वहीरूप हो जाता है, जैसे मुखके श्वासकारि दर्पण मलिन हो जाता है, तब उसविषे मुख नहीं भासता, जब मलिनता निवृत्त होती है, तब शुद्ध होता है, तिसविषे मुख स्पष्ट भासता है, तैसे चित्त संवेदन प्रमादते फुरणेकारि जगद्भ्रम भासने लगता है, अरु आत्मस्वरूप नहीं भासता, जब यह जगत्सत्ता फुरणेसहित दूर होवैगी, तब आत्मतत्त्व भासैगा, जगत्की असत्यता भासैगी॥ हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित्विषे चेतनका फुरणा निवृत्त होता है, तब अहंताभावको प्राप्त होता है, जब अहंकारको प्राप्त भया, तब अविनाशी रूपको विनाशी जानता है॥ हे मुनीश्वर! स्वरूपते कछु भी उत्थान होता है, तिसकारि स्वरूपते गिरकै कष्ट पाता है, जैसे पहाड़ते गिरा अध चला जाताहै, अरु चूर्ण होताहै, तैसे स्वरूपते उत्थान हुआ, अरु अनात्माविषे अभिमान अहं प्रतीत हुई, तब अनेक दुःखहूको प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! सर्व पदार्थका सत्तारूप आत्मा है, तिसके अज्ञानकरिकै देवत्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तिसका बोध होवै, तब देवत्वभाव निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा शुद्ध चिन्मात्रस्वरूप है, तिसकी सत्ता करिकै देह इंद्रियादिक भी चेतन होते हैं, अरु अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकारि सब जगत्का व्यवहार होता है, प्रकाशविना व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्माकी सत्ता करिकै देह इंद्रियादिकका व्यवहार होताहै, अपने अपने विषयको ग्रहण कर लिया है॥ हे मुनीश्वर! प्राणवायुको किये जो नेत्रहूविषे सुख श्यामता है, सो अपने आपविषे रूपको ग्रहण करती है, तिसका बाह्य विषयसाथ संयोग होताहै, तिस रूपका जिसविषे अनुभव होताहै, सो परम चैतन्यसत्ता है, त्वचा इंद्रियां अरु स्पर्शविषे जब संयोग होताहै, इन जडनहूका जिसकारि अनुभव होता है, सो साक्षीभूत परम चेतनसत्ता है, अरु नासिका इंद्रियका जब गंध तन्मात्रसाथ संयोग होता है,

तिसके संयोगविषे जो अनुभव सत्ता है सो परम चेतन है, इसीप्रकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह जो पांचों विषय हैं, अरु श्रोत्र नेत्र त्वचा रसना नासिका इन पांचों इन्द्रियसाथ मिलिकरि इनके जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है, सो सुख संवित् परम चेतन कहाता है, अरु जो बहिर्मुख फुरिकरि दृश्यसाथ मिला है, सो मलिन चित्त कहाता है, अरु जब वही मलिनरूप अपने शुद्ध स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शुद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब आत्मस्वरूप है, शिला घनकी नाईं अद्वैत सर्व विकारते रहित है, न उदय होता, न अस्त होता है, संकल्पके वशते जीवभावको प्राप्त होता है, संकल्पके निवृत्त हुए परमात्मारूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! आदि जो चित्त-कला फुरी है, सो जीवरूपी रथपर आरूढ हुए हैं, अरु जीव अहंकार-रूपी रथपर आरूढ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ है, अरु बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ है, मन प्राणरूपी रथपर चढ़ा है, अरु प्राण इन्द्रियांरूपी रथपर चढे हैं, इंद्रियका रथ देह है, अरु देहका रथ पदार्थ है, जो कर्म करती है, कर्महूकरि जरामरणरूपी संसारपिंजरेविषे भ्रमती है, इसप्रकार चक्र वर्तता है, तिसविषे जीव प्रमाद करिकै पड़ा भटकता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह चक्र आत्माका आभास विरूप है, जैसे स्वप्नपु-रविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् वास्तव कछु नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रमकरिकै भासती है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है॥हे मुनीश्वर! मनका रथ प्राणहै, जब प्राणकला फुरणेते रहित होती है, तब मन भी स्थित हो जाता है, प्राणके स्थित हुऐ मनका मनन शांत होजाता है, अरु जब प्राणकला फुरती है, तब मनका मनन भी फुरता है, प्राणकला स्थित भई, तब मनन निवृत्त हो जाता है,जैसे प्रकाशविना पदार्थ नहीं भासते, जैसे वायुके शांत हुए धूलि उडनेते रहिजाती है, तैसे प्राणके फुरनेते रहित मन शांत होता है, जैसे जहां पुष्प होते हैं तहां गंध भी होती है, जहां अग्नि है तहां उष्णता भी होती है, तैसे जहां प्राणस्पंद होता है, तहां मन भी होता है, हृदयविषे जो नाड़ी है, तिसविषे प्राण स्वतः फुरते हैं, तिसकरि

मनन होता है, संवित् जो हैं स्वच्छरूप सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है, अरु संवेदन प्राणकलाविषे फुरती है ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है, परंतु जहां प्राणकला होती है, तहां भासती है, जहां प्राणकला नहीं, तहां नहीं भासती, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां उज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है, तहां प्रतिबिंब भासता है, अपर ठौर नहीं भासता, तैसे आत्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां प्राणकला पुर्यष्टक होती है, तहां भासती है, अपर ठौर नहीं भासती, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, शिलाविषे नहीं भासता, तैसे पुर्यष्टक जो मनरूप है, सर्वका कारण है, अहंकार बुद्धि इंद्रियां सो तिसीके भेद हैं, जो आपहीकारि कल्पित हैं, सर्व दृश्य जाल तिसहीकारि उदय होते हैं, अपर वस्तु कोऊ नहीं, यह भली प्रकार अनुभव किया है, ताते मनही देहादिकको प्रवर्तत्ता है, सो परमतत्त्व वस्तु तिसहीविषे भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने मनःप्राणोक्तप्रतिपादनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ताविना जीव कंधवत् होता है, अरु आत्मसत्ताते चेतन होकारि चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पाषाणकी सत्ताते जड़ लोहा चेष्टा करता है, तैसे सर्वगत आत्माकी सत्ताकारि जीव फुरता है, अरु आत्मसत्ता भी जीवकलाविषे भासती है, अपर ठौर नहीं भासती, जैसे मुखका प्रतिबिंब दर्पणविषे भासता है, अपर ठौर नहीं भासता, तैसे परमात्मा सर्वगत सर्वशक्ति भी है, परंतु भासता जीवकलाहीविषे है ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध वास्तव स्वरूपते जो इस जीवकलाका उत्थान हुआ है, अरु दृश्यकी ओर वही है, तिसकारि चित्तभावको प्राप्त भई है, जैसे शूद्रनकी संगति कारिकै ब्राह्मण भी आपको शूद्र मानने लगता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद कारिकै जीवकला आपको चित्त दृश्यभाव जानने

लगीहै, अज्ञान कारिकै आच्छादित जीव महादीनभावको प्राप्त हुआहै॥ जड़ देहके अध्यासकरि कष्ट पाता है, कामक्रोधादिक वातपित्तादिककरि जलताहै, जैसी जैसी भावना होतीहै, तैसा तैसा कर्म करता है, तिस कर्मकी भावनासाथ मिला हुआ भटकताहै, जैसे खंभाणीकरि चलाया पत्थर चला जाता है, तैसे कर्मवासनाका प्रेरा जीव भ्रमताहै, जैसे रथपर आरूढ होकरि रथी चलता है, तैसे आत्मा मन अरु प्राण कर्मको दृढ कारिकै चलताहै॥ हे मुनीश्वर! चेतनही जड-दृश्यको अंगीकार कारिकै जीवत्वभावको प्राप्त होता है, मन प्राणरूपी रथपर चढकरि पदार्थकी भावनाते नानाप्रकारके भेदको प्राप्त हुएकी नाईं स्थित होता है, जैसे जलही तरंगभावको प्राप्त होता है, तैसे चेतन नानाप्रकार होकारि स्थित होता है, सो यह जीवकला आत्माकी सत्ताको पायकरि वृत्तिविषे फुरणरूप होनी है जैसे सूर्यकी सत्ताको पायकरि नेत्र रूपको ग्रहण करते हैं, तैसे परमात्माकी सत्ता पायकरि जीव वृत्तिविषे फुरता है, परमात्मा चितत्त्वविषे जो स्थित है, तिसकरि फुरणरूप जीवता है, जैसे घरविषे दीपक होता है, तब प्रकाश होता है, दीपकविना प्रकाश नहीं होता, अपने स्वरूपको भुलायकरि जो जीव दृश्यकी ओर लगाहै, इस कारणते आधिव्याधिकरि दुःखी होता है, जैसे कमल डोंडीसाथ लगता है, तब भँवरे आनि स्थित होते हैं, तैसे जब जीव दृश्यकीओर लगताहै, तब दुःख आनि स्थित होते हैं, तिसकरि जीव दीन हो जाताहै, जैसे जल तरंगभावको प्राप्त होताहै जैसे घुराण अपनी क्रियाकरि आप बंधायमान होती है, जैसे बालक अपने परछाईंको देखकर आपही अविचारते भय पाता है, तैसे अपने स्वरूपके प्रमादकरिकै आपही दुःख पाता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! चिच्छक्ति सर्वगत अपना आप है, तिसकी अभावना करिकै दीनताको प्राप्त हुआ है, जैसे सूर्य बादलकरि आच्छादितहोजाता है, तैसे मूढताकरिकै आत्माका आवरण हुआ है, जब प्राणोंका अभ्यास करै, तब जड़ता निवृत्त होवै, अपना आप आत्मस्मरण होवै; जिनकी वासना निर्मल भई है, हृदयते दूर नहीं होती सो स्थिर हुई एकरूप हो जाती है, तब जीव जीवन्मुक्त होकरि चिरपर्यंत जीवताहै, हृदयकमलविषे

प्राणोंको रोकिकरि शांतिको प्राप्त होता है, जैसे काष्ठ लोष्ट होता है, तैसे देह गिर पडती है, तब पुर्यष्टका आकाशविषे लीन हो जाती है, जैसे आकाशविषे पवन लीन होता है, तैसे तिसका मन पुर्यष्टका तहांही लीन हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर ! जिनकी वासना शुद्ध नहीं भई, सो मृत्युकालविषे तिनकी पुर्यष्टका आकाशविषे स्थित होती है, तिसके अनंतर बहुरि फुर आती है, वासनाके अनुसार स्वर्गनरकको देखने लगता है, जब शरीर मनपवनते रहित हुआ, तब शून्यरूप हो जाताहै जैसे पुरुष घरको त्यागिकारि दूरि जाय रहताहै, तैसे शरीरको त्यागिकारि मन अरु प्राण अपर ठौर जाते रहते हैं, तब शरीर शून्य हो जाता है॥ हे मुनीश्वर ! चित्सत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां जीव पुर्यष्टका होतीहै, तहां भासती है, चेतनताका अनुभव होता है, अपर ठौर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जब यह जीव शरीरको त्यागता है, तब पंच तन्मात्राको ग्रहण करिकै संग ले जाता है, जहां इसकी वासना होती है, तहां जाय प्राप्त होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, बहुरि दृश्यके दृढ अभ्यासकरि स्थूलभावको प्राप्त हो जाताहै, अंतवाहकता विस्मरण हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरि स्थूल आकार देखता है, मोहमोह करिकै मरता है, तब अपनेसाथ स्थूल आकार देखता है, बहुरि स्थूल देहविषे अहंप्रतीति करता है, तिससे मिलिकरि क्रिया करता है, तब असत्यको सत्य जानता है, अरु सत्यको असत्य जानता है, इसप्रकार भ्रमको प्राप्त होता है, जब सर्वगत चिदंशकरि जीव मन होता है, तब जगत्भावको प्राप्त होता है, जब देहसों पुर्यष्टका निकसती है, तब आकाशविषे जाय लीन होती है, तब देह फुरनेते रहित होतीहै, तिसको मृतक कहतेहैं, अपने स्वरूपशक्तिको विस्मरण करिकै जर्जरीभावको प्राप्त होता है, जब जीवशक्ति हृदयकमलविषे मूर्च्छित होती है, प्राण रोके जाते हैं, तब यह मृतक होता है, बहुरि जन्म लेता है, बहुरि मरि जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे वृक्षसाथ पत्र लगतेहैं, काल पायकरि नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नूतन लगते हैं, तैसे यह जीव शरीरको धारता है वह नष्ट हो जाता है, बहुरि अपर शरीर धारता है, वह भी नष्ट हो

जाता है, जो वृक्षके पत्रनकी नाईं उपजते अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करना व्यर्थ है ॥ हे मुनीश्वर ! चेतनरूपी समुद्रविषे शरीररूपी तरंग बुद्बुदे अनेक उपजते हैं, अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करना व्यर्थ है, जैसे दर्पणविषे अनेक पदार्थका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणते इतर कछु नहीं, तैसे चेतनविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो चेतन निर्मल आकाशकी नाईं विस्तीर्णरूप है, तिसविषे जो पदार्थ फुरते हैं, सो अनन्यरूप हैं, विधि शरीर भी वही रूप हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

ईश्वरोपाख्याने दैवप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे अर्धचंद्रधारी ! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है, सो अनंत एकरूप है, तिसको यह द्वैत कहांते प्राप्त भया है ? अरु भूतभविष्यत् काल कहांते दृढ हो रहा है ? एकविषे अनेकता कहांते प्राप्त भई है ? अरु बुद्धिमान् दुःखको कैसे निवृत्त करते हैं ? अरु कैसे निवृत्त होता है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म चेतन सर्वशक्त है; जब वह एकही अद्वैत होता है, तब निर्मलताको प्राप्त होता है, एकके भावकरि द्वैत कहाता है, द्वैतकी अपेक्षाकरि एक कहाता है, सो दोनों कल्पनामात्र हैं, तब चित्त फुरता है, जब एक अरु दोनोंकी कल्पना होती है, चित्तस्पंदके अभाव हुए, अरु दोनोंकी कल्पना मिटि जाती है, अरु कारणकरि जो कार्य भासता है, सो भी एकरूप है, जैसे बीजते लेकरि फलपर्यंत वृक्षका विस्तार है; सो एकरूप अरु बढना घटना उसविषे कल्पना होती है, तैसे चेतनविषे चित्तकल्पना होती है, तब जगत्‌रूप हो भासता है, परंतु तिस कालविषे भी वहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! वृक्षके समय भी वस्तु बीज एकरूप है, कछु अपर नहीं हुआ, परंतु बीज फुरता है, तब वृक्ष हो भासता है, तैसे जब शुद्ध चेतनविषे चेतनकलना फुरती है, तब

जगत्‌रूप हो भासती है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो कारणकार्य विकाररूप-जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टिकरि भासता है, जैसे जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, जैसे शशेके सींग असत् हैं जैसे जलविषे द्वैत तरंगकलना असत् है, अज्ञानकरिकै भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जैसे द्रवताकरिकै जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे फुरणेकरि आत्मतत्त्व ,जगत्‌रूप हो भासता है, अपर द्वैत कछु नहीं, चेतनरूपी वल्ली पसरी है, तिसविषे पत्र फूल फल एकहीरूप हैं, जैसे एक वल्ली अनेकरूप हो भासती है, तैसे एकही चेतन अहं त्वं देश काल आदिक विकार होकरि भासता है, सो वही रूप है ॥ हे मुनीश्वर ! जब सबही चेतन है, तब तेरे प्रश्नका अवसर कहां होवै, देश कालक्रिया नीति आदिक जो शक्ति पदार्थ हैं, सो एकही चिदात्मा है, जैसे जलविषे जब द्रवता होती है, तब तरंगरूप हो भासता है, तिसका नाम तरंग होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, तब अहं त्वं आदिक नानाप्रकारके नाम होते हैं, परम ब्रह्म शिव परमात्मा चेतनसत्ता द्वैत अद्वैत आदिक नाम भी फुरणेकरिकै कहते हैं, जो इन नामोंते अतीत है, सो वाणीका विषय नहीं, ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, यह जगत् जो कछु भासता है, सो भी वही चेतनतत्त्व है, जैसे वल्ली फूल पत्र होकरि पसरती है, तैसे चेतन सर्वरूप होकरि पसरता है, सो वहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! महाचेतनविषे जब किंचन होता है, तब जीवरूप होकरि स्थित होता है, आगे द्वैतकलनाको देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना स्वरूप त्यागिकरि अपर परिच्छिन्न वपुको धारता है, अरु आगे द्वैत-रूप जगत्को देखता है; जब जागता है, तब अपने अद्वैतरूपको देखता है परंतु जागेविना भी द्वैत कछु हुआ नहीं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी कछु हुआ नहीं, भ्रमकरि भासता है, जब यह जीव अपने वास्तव स्वरूपकी ओर सावधान होता है, तब तिसके अभ्यासकरि वहीरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! इस जीवका जो आदि वपु है, सो अंतवाहक है, संकल्पही तिसका रूप होता है, जब तिसविषे अहं-

भावना तीव्र होती है, तब वही आधिभौतिक होकरि भासता है, तिस-विषे सत्यता दृढ हो जाती है, तिसकी सत्यताकारि रागद्वेषसों क्षोभायमान होता है, जब काकतालीयवत् अकस्मात्ते हृदयविषे विचार आनि उपजताहै, तब संकल्परूपी आवरण दूर हो जाता है, अरु अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्त होता हैं, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पि-कारि भयको पाता है, तैसे यह जीव अपने संकल्प करिकै आपही भय पाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प इसके हृदयविषे दृढ होता है, तैसाही भासने लगता है, प्रत्यक्ष देख जो पुरुष कछु कार्य करता है, तब सो कर्तृत्वभाव तिसके हृदयविषे दृढ होता है, बहुरि कहता है, यह कार्य मैं न करौं, जब यही संकल्प दृढ होता है, तब उस कार्यते आपको अकर्ता जानता है, तैसे दृश्यकी भावनाकारि जगत् सत्य दृढ हो गया है, जब दृश्यका संकल्प निवृत्त करता है, अरु आत्मभावनाविषे जुडता है तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, आत्माही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! परमार्थते कछु द्वैत हैही नहीं, सब संकल्परचना है, संक-ल्पकारि रचा जो दृश्य सो संकल्पके अभावते अभाव हो जाता है जैसे मनोराज्य गंधर्वनगर मनकारि रचित होता है, बहुरि संकल्पके अभाव हुएते अभाव होता है, तब क्लेश कछु नहीं रहता ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत् संकल्पकी पुष्टताकारिकै जीव दुःखका भागी होता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प करिकै दुःखी होता है, इस संकल्पमात्रकी इच्छा त्यागनेविषे क्या कृपणताहै, अरु स्वप्नविषे जो सुख भोगता है, सो सुख भी कछु वस्तु नहीं, भ्रममात्र है, तैसे यह सुख भ्रममात्र है ॥ हे मुनीश्वर! संकल्पविकल्पने इसको दीन कियाहै,जब संकल्पविकल्पका त्याग करता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परम ऊंच पदविषे विराजमान होता है, जिस पुरुषने विवेकरूपी वायुकारि संकल्परूपी मेघको दूर किया है, सो परम निर्मलताको प्राप्त होता है जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे संकल्पविकल्परूपी मलते रहित उज्ज्वलभावको प्राप्त होता है, संकल्पके त्यागेते जो पाछे शेष रहता है, सो सत्तामात्र

परमानंद तेरा स्वरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मा सर्वशक्तिरूप है, जैसी भावना होती है, तैसाही अपनी भावनाकरि देखता है, ताते सब संकल्पमात्र है, भ्रमकरिकै उदय हुआ है, संकल्पके लीन हुए सब लीन हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! संकलपरूपी लकडी अरु तृष्णारूपी घृतकरिकै जन्मरूपी अग्निको यह जीव बढावता है तिसकरि अंत कदाचित् नहीं होता, जब असंकल्परूपी वायुकरि अरु जलकरि इसका अभाव करै तब शांति हो जाती है जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे जन्मरूपी अग्निका अभाव हो जाता है, अरु संकलपरूपी वायुकरि तृणकी नाई भ्रमता है ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी करंजुएकी वल्ली है, तिसको संकल्परूपी जलकरि पड़ा सिंचता है, जब असंकल्परूपी शोषता अरु विचाररूपी खड्गकरि काटै, तब तिसका अभाव हो जावै, जो आभासमात्र है, सो आभासके क्षय हुए अभाव हो जाता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे यह जगत् असम्यक् ज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे कोऊ राजा होवे, अरु स्वप्नविषे रंक हो जावे, पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो जावे, अरु दीनताको प्राप्त होवै, जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवै, तब आपको राजा जाने, अरु दुःख मिटिजावे, निर्दुःखपदको प्राप्त होवै, तैसे इस जीवको अपना वास्तव पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो गया है तिसकरि आपको परिच्छिन्न दीन दुःखी जानता है, जब स्वरूपका ज्ञान होवै, तब सब दुःखका अभाव हो जावै, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल हो जावै जैसे वर्षाकालका मल गयेते आकाश निर्मल होता है, तैसे अज्ञानरूपी मलते रहित जीव निर्मल होता है, शुद्ध पदको प्राप्त होता है, जो ऐसे युक्तिकरि भावना करता है, कि मैं आत्मा हौं, एक हौं, द्वैतते रहित हौं, जब ऐसी भावना करैगा, तब सोई होवैगा, द्वैतका अभाव हो जावैगा, उत्तम पद ब्रह्मदेव पूज्य पूजक पूजा किंचित् निष्किंचनकी नाईं चित्त एकरूप हो जावैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवप्रतिपादनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.
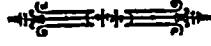
ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! देव निरंतर स्थित है, द्वैत अरु ऐकपदते रहित है, अरु द्वैत एक संयुक्त भी वही है, संकल्पसाथ मिलिकारि चेतनरूप संसारको प्राप्त भया है, अरु जो संकल्पमलते रहित है, सो संसारते रहित है, जब ऐसे जानता है, कि मैं हौं, तब इसी संकल्पकारि बंधमान होता है, जब इसके भावते मुक्त होता है, तब सुखदुःखका अभाव हो जाता है, शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है, इसीका नाम मुक्ति है, आकाशवत् व्यापकब्रह्म होता है॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रभो ! जब मनविषे मन क्षीण होता है,अरु इंद्रियां मनविषे लीन होतीहैं,द्वितीय अरु तृतीय पद किसीकी नाईं शेष रहता है, जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्वको लीन करता है, सो किसकी नाईं है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! मनकारि जब मन छेदता है, इंद्रियां जिसके अंग हैं, विचार करिकै अथवा अपर उपासना करिकै जब आत्मबोध इसको प्राप्त होता है, तब द्वैत एकको कल्पना नष्ट हो जाती है, जगज्जालकी सत्यता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है, जैसे भूने बीजते अंकुर नहीं उपजता, तैसे जब मन उपशम होता है, तब तिसविषे जगत्सत्ताका अभाव हो जाता है, चेतनसत्ता जो है, सो चित्तसत्ताको भक्षणकारि लेती है, जब मनरूपी मेघकी सत्ता नष्ट होती है, तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है, चित्तकी चपलता मिटि जाती है, तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होता है, अपर द्वैत एक भाव अभावरूपी संसारकल्पना मिटि जाती है, समसत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक है, अरु संसारसमुद्रते पार करनेहारा है, सो प्राप्त होता है, सुषुप्तिकी नाईं बोध निर्भय हो जाता है, शांतिरूप आत्माको पाइकारि शांतिरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! मनकी क्षीणताका प्रथम पद यह तुझको कहा है, अब द्वितीय पद सुन ॥ हे मुनीश्वर ! जब यह चित्तशक्ति मनके मननते मुक्त होती है, कैसी मननवृत्ति

है, जो अनेक ओरको धावती है, तिसते जब मुक्त होता है, तब चंद्रमाके प्रकाशवत् शीतल हो जाता है, अरु आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासता है, अरु घन सुषुप्तरूप हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला पोलते रहित होती है, तैसे दृश्यते रहित घन सुषुप्त इसका रूप होता है, लोणवत् रसमय ब्रह्म हो जाता है, जैसे आकाशविषे शब्द लीन हो जाता है, तैसे इसका चित्त आत्माविषे लीन हो जाता है, जैसे वायु चलनेते रहित अचल होता है, तैसे चित्त अचल हो जाता है, जैसे गंध पुष्पविषे स्थित होता है, तैसे चित्तवृत्ति आत्मतत्त्वविषे विश्रामको पाती है, सो आत्मसत्ता कैसी है, न जड़ है, न चेतन है, सर्व कलनाते रहित अचैत्य चिन्मात्र है, अंकुररूप सर्व सत्ताके धारणेहारी देशकालके परिच्छेदते रहित है, जिसको वह प्राप्त होती है, तिसको तुरीयापद भी कहते हैं, सर्व दुःखकलंकते रहित पद है तिस सत्ताको पाइकरि साक्षीकी नाईं स्थित होता है, सर्वत्र सर्वदा काल सम स्थित है, सर्व प्रकाश वही है, अरु शांतिरूप है, तिस आत्मसत्ताका जिसको आत्मतत्त्वकरि अनुभव होता है, तिसको द्वितीय पद प्राप्त होताहै ॥ हे मुनीश्वर ! यह द्वितीय पद तुझको कहा है, अब तृतीयपद श्रवण कर, जब वृत्तिका अत्यंत प्रणाम आत्मतत्त्वविषे होता है,तब ब्रह्म आत्मा आदिक नामकी भी तहां निवृत्ति हो जाती है, भाव अभावकी कलना कोई नहीं फुरती, स्थाणुकी नाईं अचल वृत्ति हो जाती है, परम शांत निष्कलंक तुरीयातीत सबते जो उल्लंघित पद है, तिसको प्राप्त होता है सर्वका अंत अरु सर्व आधाररूप है, एक अद्वैत नित्य चिन्मात्र तत्त्व है, तुरीयाते भी आगे पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, तिस पदको प्राप्त होता है ॥हे मुनीश्वर ! सर्व कलनाते रहित अतीत पद मैं तुझको कहा है, तिसविषे स्थित होहु, सोई सनातन देव है, अरु विश्व भी वहीरूप है, वही तत्त्व संवेदनके वशते ऐसे रूप होकरि भासता है, अरु वस्तुते न कछु प्रवृत्त है, न कछु निवृत्त है, समसत्ता प्रकाशरूप अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे द्वैत एक भ्रमता अभाव है, एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अरु जगत्‌विषे भेद रंचक भी

नहीं, जैसे जलअरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, सम सत्य सत्ता शिव शांतिरूप है, अरु सर्व वाणीके विलासते अतीत है, इसकी चतुर्मात्रा हैं, तुरीया शांत परम है ॥ वाल्मीकिरुवाच॥ हे भारद्वाज! इसप्रकार जब ईश्वरने कहा, अरु परमशांतिरूप आत्मतत्त्वका प्रसंग वसिष्ठजीने श्रवण किया, तब दोनोंकी वृत्ति आत्मतत्त्वविषे स्थित हो गई, अरु तूष्णीं हो रहे, मानो मूर्त्ति लिख छोडी है, एक मुहूर्त्तपर्यंत चित्तकी वृत्ति ऐसे रही, बहुरि ईश्वर जागा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच ॥ एक मुहूर्त्त उपरांत सदाशिवजी तीनों नेत्रोंको खोलत भये जैसे पृथ्वीरूपी डब्बेते सूर्य निकसे, तैसे नेत्र निकसे, जैसे द्वादश सूर्यका प्रकाश इकट्ठा होवै, तैसे नेत्रका प्रकाश हुआ, अरु देखत भया, कि वसिष्ठजीके नेत्र मुँदे हुए हैं ॥ तब कहा हे मुनीश्वर! जागौ, अब नेत्र काहेको मूँदि लिये हैं, जो कछु देखना था सो तौ देखा है, अब समाधिविषे जुडनेका श्रम किस निमित्त करते हौ, तुमसारखे तत्त्ववेत्ताको हेयोपादेय किसीविषे नहीं होता, तू जैसा बुद्धिमान् है, तैसाहीहै तू आत्मदर्शी है, जो कछु पानेयोग्य था, सो पायाहै, जाननेयोग्य था, सो जाना है, अरु बालकके बोधनिमित्त जो तुम मुझते पूछा सो मैंने कहा है, अब तुमको तूष्णींसाथ क्या प्रयोजन है ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकर मेरे अंतर प्रवेश करिकै चित्तकी वृत्तिसाथ जगाया, जब मैं जागा, तब बहुरि ईश्वर कहत भया ॥ हे वसिष्ठजी! इस शरीरकी कियाका कारण प्राणस्पंद है, प्राणोंकरि शरीरकी चेष्टा होतीहै, तिसविषे आत्मा उदासीनकी नाईं स्थित है, न कछु करता है, न भोगता है, जब इस जीवको अपने स्वरूपका प्रमाद होताहै, तब देहविषे अभिमान होताहै,

क्रिया करता आपको मानता है, बहुरि भोगता मानता है, इसकरि दुःख पाताहै, इस लोक परलोकविषे भटकता है, अरु जब आत्मविचार उपजता है, तब आत्माका अभ्यास होता है, देह अभिमान मिटि जाता है, दुःखते मुक्त होताहै, शरीरके नष्ट हुए आत्माका नाश नहीं होता, अरु शरीर जो चेतन होकरि फुरता है, सो प्राणोंकरि फुरता है, जब बीचते प्राण निकसि जाते हैं, तब शरीर मूकजड़रूप हो जाताहै, अरु जो चलावनेहारी अरु पवित्र करनेहारी संवित्शक्तिहै, सो आकाशते भी सूक्ष्म है, वह शरीरके नाश हुए नाश नहीं होती, जब नाश नहीं होती तो नाशका भ्रम कैसे होवै ॥ हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु भासती तहां है, जहां सात्त्विक गुणका अंश मन होताहै, अरु प्राण होतेहैं, मन अरु प्राणोंसहित देहविषे भासती है, जैसे निर्मल दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, अरु आदर्श मलिन होता है, तब मुख विद्यमान भी होताहै, परंतु नहीं भासताहै, तैसे मन अरु प्राण जब देहविषे होतेहैं, तब आत्मा भासता है, जब मन अरु प्राण निकसिजातेहैं, तब मलिन शरीरविषे आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासती नहीं, जब तिसका अभ्यास होवै, तब सर्वात्मरूप होकरि भासती है, सर्व कलनाते रहित शुद्ध शिवरूप, सर्वकी सत्तारूप वही है, विष्णु भी वही है. शिव भी वही है, ब्रह्मा भी वही है, देवताजातभी वही है, अग्नि, वायु, चंद्रमा, सूर्यादिक सब जगत्का आदि वपु वही है, सो एक देव है, शुद्ध चेतनरूप है, सर्व देवनका देव है, अपर सब तिसके टहलुए हैं, अरु सब तिसके चित्त उल्लास हैं ॥ हे मुनीश्वर ! हम जो इस जगत्विषे बड़े ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं, सो उसही तत्त्वते प्रगट भए हैं, जैसे अग्निते चिनगारे उपजतेहैं, जैसे समुद्रते तरंग प्रगट होतेहैं, तैसे हम तिसते प्रगट भये हैं, यह अविद्याभी तिसते प्रगट भई है, अरु अनेक शाखाको प्राप्त भई है, देव अदेव वेद अरु वेदके अर्थ अरु जीव सब उस अविद्याकी जटा हैं, अरु अनंतभावको प्राप्त भई है, बहुरि बहुरि उपजती अरु मिटती है, देश काल पृथिव्यादिक सब उसीकरि संपन्नहैं, परंतु सर्वकी सत्तारूप वही आत्मा देव है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हम जो हैं,

सो हमारा परम पिता आत्मा है, सर्वका मूल बीज वही देव है, सब तिसते उपजे हैं, जैसे वृक्षते पत्र उपजते हैं, तैसे सब महादेवते उपजते हैं, सर्वका अनुभवकर्ता वही है, सर्वको सत्ता देनेहारा वही है, सब प्रकाशका प्रकाश वही है, सो तत्त्ववेत्ताकरि पूजनेयोग्य है, सर्वविषे प्रत्यक्ष हैं, सर्वदा सर्वप्रकार सर्वविषे उदित आकार चेतन अनुभवरूप है, तिसके आवाहनविषे मंत्र आसन आदिक सामग्री नहीं चाहिये, काहेते कि सर्वदा अनुभवरूप करिकै प्रत्यक्ष है, अरु सर्वप्रकार सर्व ठौरविषे विद्यमान है, जहां जहां तिसते पानेका यत्न करिये, तहां आगेही विद्यमान है, वह शिवतत्त्व आदिही सिद्ध है, मन वाणीविषे तीनों रूप वही हो भासता है, सबकी आदि है, अरु पूजनेयोग्य है, अरु नमस्कार करनेयोग्य भी वही है, अरु जाननेयोग्य भी वही है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सो जरा मृत्यु शोक भयके काटनेहारा है, तिसको आपकरि आपही देखता है, तिसके साक्षात्कार हुए चित्त भूने बीजकी नाईं हो जाता है, बहुरि नहीं उगता, सो शिवतत्त्व जीवका जीव है, सर्व पदका पद वही है, अनुभवरूप है, आत्मा है, परमपद है, इतर दृष्टिकां त्याग करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

महेश्वरवर्णनम्

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! सो चिद्रूपतत्त्व सर्वके अंतर स्थितहै, अरु अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर है, सब बीजका बीज वही है, सर्व सारका सार वही है, कर्मका कर्म, धर्मका धर्म वहीहै, सो चेतन धातु निर्मलरूप सब कारणका कारण वही है, अरु आप अपना कारण है; सर्व भाव अभावका प्रकाशक वही है, सर्व चेतनका चेतन वही है, परमप्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाशते रहित है; अलौकिक प्रकाशक है, सर्व जीवका जीव वही है, चेतनघन निर्मल आत्मा अस्ति सन्मयरूप है, सत्असत्ते रहित

महासत्‌रूप है, सर्व सत्ताकी सत्ता वही सो चिन्मात्रतत्त्व है, सोई नाना-रूप हो रहा है, जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्नविषे आकाश कंध पहाड आदिक होकरि भासती है, तैसे नाना रंग रंजना वही होकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी हो भासती है, अनेक कोट किरणोंते अनेक तरंग हो भासते हैं, तैसे यह जगत् तिसविषे भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! उसी आत्मतत्त्वका यह आभास प्रकाश है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे अग्निते उष्णता भिन्न नहीं, वहीरूप है, तैसे आत्माते जगत् कछु भिन्न नहीं, वही स्वरूप है, अरु सुमेरु भी तिसके आगे परमाणुरूप है, अरु संपूर्ण काल तिसका निमेषरूप है, कल्पकी निमेष उन्मेषवत् उदय अरु लय होते हैं, अरु सप्तसमुद्रसंयुक्त पृथ्वी तिसके रोमके अग्रवत् तुच्छ है, ऐसा वह देव है; बहुरि कैसा है, संसाररचनाको करता नहीं अरु कर्तृत्वभावको प्राप्त होता है, बड़े कर्मोंका करता भासता है, तौ भी कछु नहीं करता, द्रव्यरूप दृष्टि आता है, तौ भी द्रव्यते रहित है, निर्द्रव्य है, तौ भी द्रव्यवान् है, देह-वान् नहीं तौ भी देहवान् है, अरु बड़ा देहवान् है, तौ भी अदेह है, सर्वका सत्तारूप वही देव है, हंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मांगले, बेली, घिलिमला, लोबलाग, गुगुल, सभस इत्यादिक वाक्य निरर्थक हैं, इनका अर्थ कछु नहीं सो भी देवकरि सिद्ध होते हैं, ऐसा कछु नहीं, जो देवविषे असत् नहीं, अरु ऐसा भी कछु नहीं जो देवकरि सत् नहीं॥ हे मुनीश्वर ! जिसते यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, जो सर्वमें नित्य है, तिस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रक-रणे महेश्वरवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

ईश्वरोपाख्याने नीतिनृत्यवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर ! इत्यादिक शब्दकी सत्तारूप वही है, सर्वसत्ता-रूप रत्नका डब्बा वहीहै, तत्त्व चमत्कार करिकै फुरताहै, जैसे जल तरंग फेन बुद्बुदा आदिक आकार करिकै फुरताहै, तैसे देव नाना प्रकारके आकार

होकारि फुरता है, वही फूल गुच्छेरूप होकारि स्थित होता है, आपही तिस-
विषे सुगंध होकारि स्थित होता है, घ्राणइंद्रियविषे स्थित होकारि आपही
सूँघता है, आपही त्वचा इंद्रिय होता है, आपही पवन होकारि चलता
है, आपही स्पर्शकारि ग्रहण करता है, आपही जलरूप होता है, आपही
वायु होकारि सुखावता है, आपही श्रवणेंद्रिय होकारि, आपही शब्द होकारि,
आपही ग्रहण करताहै, इसी प्रकार जिह्वा त्वचा नासिका कर्ण नेत्र होकारि
आपही स्पर्श रूप रस गंध शब्दको ग्रहण करता है, उसीने पदार्थ रचे
हैं, उसीने नीति रची है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव पंचम ईश्वर सदाशिव
तिसपर्यंत वही देव, इसप्रकार हुआ है, आपही साक्षीवत् स्थित होता
है, जैसे दीपकके प्रकाशकारि मंदिरकी सर्व क्रिया होती है, तैसे संसार-
रूपी मंडपकी सब क्रिया साक्षीकारि होती हैं, तिसविषे उसकी शक्ति
नृत्य करती है, अरु आप साक्षीरूप होकारि देखता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
हे जगन्नाथ ! शिवकी शक्ति क्या है, अरु कैसे स्थित है, अरु देवको
साक्षात् कैसे है, अरु तिसका नृत्य कैसा होता है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥
हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व स्वभावते अचल है, अरु शांतरूप है, शिव
परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप निराकार है, तिसकी आसक्ति इच्छा-
शक्ति है, कालशक्ति है, नीतिशक्ति है, मोहशक्ति है, ज्ञानशक्ति है,
क्रियाशक्ति है, कर्ताशक्ति है, परंतु स्वरूपते सदा अकर्ता है इत्यादिक
आत्माकी शक्ति हैं, तिन शक्तिका अंत नहीं, अनंतरूप चिन्मात्र देव
है, यह जो मैं तुझको शक्ति कही है, सो भी शिवरूप है, भिन्न नहीं,
जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षिता आदिक भावनाते शक्ति विविधरूप धारा
है, शिव अरु शक्ति एकरूप है, अरु बहुत भासती है, पदार्थविषे
अर्थशक्ति है, आत्माविषे साक्षीशक्ति कल्पित है, तैसे कालशक्ति
है, नृत्यकी नाई ब्रह्मांडरूपी नृत्यमंडलविषे नृत्य करती है, क्रियाशक्ति
कर्तृत्वकरि नृत्य करती है, इत्यादिक शक्ति कहाती है, जैसे आदि नीति
हुई है, ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होती ॥
हे मुनीश्वर ! यह संपूर्ण जगत् नृत्य करता है, संसाररूपी नटनी है,
तिसके प्रेरणेहारी नीति है, अरु परमेश्वर परमात्मा है, सो साक्षीरूप

है, सदा उदित प्रकाशरूप है, एकरस देव स्थित है, अरु नीति आदिक शक्ति भी तिसते भिन्न नहीं, वहीरूप है, ताते देवही जान, अपर द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने नीतिनृत्यवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

ईश्वरोपाख्यानेऽन्तर्बाह्यपूजावर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो एक देव परमात्मा है, सो संतकरि पूजने योग्य है, चिन्मात्र अनुभव आत्मा सर्ग है, घट पट गादी कंदरांतर आदिक सर्वविषे वह स्थित है, ब्रह्मा इंद्रादिक देवता अपर जीव सबके अंतर बाहर वही स्थित है, सर्वात्मा शांतरूप देवताका पूजन दोप्रकारका होता है सो सुन, इष्ट देवताका पूजन ध्यान है, अरु ध्यान है सो पूजन है, त्रिभुवनका आधारभूत आत्मा है, तिसको ध्यान कारि पूजा करौ. जहां जहां मन जावै, तहां तहां चिद्रूप आत्माको करौ, सबका प्रकाशक आत्माही है, सो चिद्रूप अनुभव कारकै अंतर स्थित है, अहंता कारकै सिद्ध है; सो सबका साररूप है, अरु सबका आश्रयरूप है, तिनका जो विराट्‌रूप है, सो सुन, तिसको जानिकरि पूजन करौ, बाह्य कैसा है, अनंतहै, पारावारते रहित है, परमाकाश है, सो उसकी ग्रीवा है, अरु अनंत पाताल उसके चरण हैं, अनंत दिशा तिनकी भुजा हैं, सर्वप्रकाश उसके शस्त्र हैं, हृदयकोश कोणविषे स्थित है, ब्रह्मांडसमूहोंको परंपरा प्रकाशना है, परमाकाश पारअपाररूप है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता जीव उसके रोमावलीहैं, त्रिलोकीविषे जो देहरूपी यंत्र है, तिनविषे इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है, तिसकरि सब चेष्टा करते हैं, सो देव एकही है, अरु अनंत है, अरु सत्तामात्र स्वरूप है, सब जगज्जाल तिसका निवृत्त है, अरु काल तिसका द्वारपाल है, पर्वतादिक ब्रह्मांड जगत् तिसके देहविषे किसी कोणमें स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, बहुरि कैसा देव है, सहस्र जिसके चरण हैं, अरु सहस्र

नेत्र, सहस्र जिसके शीश हैं, अरु सहस्र भुजा हैं, अरु सहस्र भुजाविषे भूषण हैं, सर्वत्र जिसकी नासिका इंद्रिय हैं, सर्वत्र जिसकी रसना इंद्रिय हैं, सर्वत्र श्रवण इंद्रिय हैं, सर्व ओर जिसका मनहै, अरु सर्व मनकलाते अतीत है, सर्व ओर वही शिवरूप है, सर्वदा सर्वका कर्ता है, सर्व संकल्पके अर्थका फलदायक है, सर्व भूतके अंतर स्थित है, अरु सर्व साधनका सिद्ध कर्ता है, ऐसा जो देव है, सो सर्वविषे सर्वप्रकार सर्वदा काल स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, ऐसे देवके ध्यानविषे सावधान रहौ, सदा तिनहीका आकार रहना, यह उस देवका पूजन है, अब अंतरका पूजन श्रवण करौ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ! संवित्मात्र जो देव है, सो सदा अनुभवकारि प्रकाशता है, तिसका पूजन दीपककारि नहीं होता, न धूपकारि होता है, न पुष्पकारि होता है, न दानकारि, न लेपकेसरकारि तिसका पूजन होता है, अर्घ्यपाद्यादिक जो पूजाकी सामग्री है, तिसकारि देवका पूजन नहीं होता, तिसका पूजन क्लेशविना नितही होता है ॥ हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोध है, तिस देवका सजातीय प्रतीत ध्यान करना सो तिसका परम पूजन है ॥ हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र जो देव है, अनुभवरूप है, तिसका सो सर्वदा काल सर्व प्रकार पूजन करौ, देखता है, स्पर्श करता है, सूँघताहै, श्रवण करता है, बोलता है, देता है, लेता है, चलता है, बैठता है इसते लेकरि जो कछु क्रिया करता है, सो सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षीविषे अर्पण करौ, तिसी परायण होहु, इसप्रकार आत्मदेवका पूजन करौ ॥ हे मुनीश्वर! आत्मदेवका जो ध्यान करना यही धूप दीप हैं, अरु सर्व सामग्री पूजनकी यही है, ध्यानही देवको प्रसन्न करता है, तिसकारि परमानंद प्राप्त होता है, अपरकारि देवकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! मूढ होवै अरु इसप्रकार ध्यानकारि ईश्वरकी पूजा करै, तब त्रयोदश निमेष जगत् उद्धानफलको पाता है, अरु सत् निमेषके ध्यानकारि प्रभुको पूजै, तब मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको पावै, अरु ध्यानके बलकारि आत्माका घडीपर्यंत पूजन करै, तब वह पुरुष राजसूययज्ञ कियेके फलको पावै, जो दो प्रहरपर्यंत ध्यान करै तो लक्ष राजसूययज्ञके फलको पावै,

जो दिनपर्यंत ध्यान करै, सो असंख्य फलको पावै ॥ हे मुनीश्वर ! यह परम योग है, अरु यही परम क्रिया है, यही परम प्रयोजन है ॥ हे मुनीश्वर ! दोनों पूजा मैं तुझको कही हैं, जिसको यह परम पूजा प्राप्त होती हैं, सो परमपदको प्राप्त होता है, सर्व देवता तिसको नमस्कार करते हैं, सर्व करिकै वह पुरुष मेरुवत् पूजने योग्य होता है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्यानेऽन्तर्बाह्यपूजावर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७॥

अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

देवार्चनाविधानवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! अब अभ्यंतरका पूजन तू श्रवण कर, जो सर्वत्र पवित्र करनेहारेको भी पवित्र करता है, अरु सर्व तम अज्ञानका नाश करता है, सो आत्मपूजन मैं तुझको कहता हौं; कैसा पूजन है जो सर्व प्रकार करिकै सर्वदा कालविषे तिस देवका पूजन होता है, व्यवधान कबहूं नहीं पडता; चलते, बैठते, जागते, सोवते, सर्वव्यवहारविषे नित्य ध्यानमैं रहता हैं ॥ हे मुनीश्वर ! इस संसारविषे नित्य स्थित संवित्‌रूप चिन्मात्र है, तिसका पूजन करौ, जो सर्व प्रत्ययका कर्ता है, सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका आपकरि आप पूजन कर, सो तू है, उठता चलता खाता पीता जेते कछु बाह्य अर्थ हैं, त्याग करता ग्रहण करता भोगको भोगता, तिन सबको करता भी देवकी पूजा कर ॥ हे मुनीश्वर ! शरीरविषे जो शिवलिंग है; चिह्नते रहित लिंग जो बोधरूपचिह्न है, सो देव है, यथाप्राप्तविषे सम रहना सो तिस देवका पूजनहै, यथाप्राप्तके समभावविषे स्नानकरिकै शुद्ध होकरि बोधरूप लिंगका पूजन करहु जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होना सर्वदा साक्षीरूपअनुभवविषे स्थित रहना यही तिसका पूजन है ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्यकेभुवन आकाशविषे वही सूर्य होकरि प्रकाशता है, चंद्रमाके भुवनविषे वही चंद्रमा होकरि स्थित होता है, इनते आदि लेकरि जो पदार्थके समूह हैं,

जैसी जैसी भावनाकारि फुरणा हुआहै, सोई रूप होकारि देव स्थितहै ॥ हे मुनीश्वर ! नित्य शुद्ध बोधरूप अद्वैत है, तिसको देखना, अपरविषे वृत्ति कोन लगावनी, यही देवका पूजन है, प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ हुआ, अंतर गुहाविषे जो स्थित है, तिसका जो ज्ञान है, अरु जेते कछु कर्म हैं, तिन सबका कर्ता वही है, सर्व भोगका भोक्ता वही है, शब्दका स्मरण करनेहारा वही है, अरु भागवतरूप है, सबकी भावना करनेहारा परम प्रकाशरूप है, ऐसा जो संवित् तत्त्व है, तिसको सर्वज्ञ जानकारि चितवना करणी सो तिसका पूजन है, बहुरि कैसा है देव ? सकल भी वही है, देहविषे स्थित है, तौ भी आकाशवत् निर्मल है, जाता भी है, अरु नहीं जाता भी वही है, प्राणरूपी आलयविषे प्रकाशता है, हृदय, कंठ, तालु, जिह्वा, नासिका पीठविषे व्यापक है, शब्द आदिक विषयको कर्त्ता मनको प्रेरताहै, जैसे तिलविषे तेल आश्रय भूत है, तैसे आत्मा सर्वविषे आश्रयभूतहै, कलनारूपी कलंकते रहितहै अरु कलनागणकारि संयुक्त भी वही है, संपूर्ण देहोंविषे एकही देव व्याप रहा है, परंतु प्रत्यक्ष हृदयविषे होताहै, सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है, कलनारूपी कलंकते रहित सदा प्रत्यक्ष है, अपने आपहीकारि अनुभव होता है, सर्वदा पदार्थका प्रकाश प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपने फुरणेकरिकै शीघ्रही द्वैतकी नाईं हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु साकाररूप जगत् दृष्ट आता है, सो सब विराट् आत्मा है, ताते आपको विराट्की भावना करु, हस्त पाद नख कैसे यह संपूर्ण ब्रह्मांड मेरा देह है, मैंही प्रकाशरूप एक देव हौं, अरु नीति इच्छादिक मेरी शक्ति हैं, सब मेरी उपासना करती हैं, जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तारकी सेवा करती है, तैसे शक्ति मेरी उपासना करती हैं. बहुरि कैसा हौं, मन मेरा द्वारपाल है, त्रिलोकीका निवेदन करनेहारा है, अरु चितवना मेरी आनेजानेवाली प्रतीहारी है, नानाप्रकारके ज्ञान मेरे अंगके भूषण हैं, कर्मइंद्रियां मेरे द्वार हैं, ज्ञानइंद्रियां मेरे गण हैं, ऐसा मैं एक अनंत आत्मा अखंडरूप हौं, व्यवच्छेद भेदते रहित अपने आपविषे स्थित हौं, सर्वविषे परिपूर्ण एक मैंही हौं ॥ हे मुनीश्वर ! इसी भावना करिकै जो एक देवकी

पूजा करता है, सो परमात्मादेवको प्राप्त होताहै,तब दीनता आदिक क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक नहीं उपजता, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष नहीं उपजता,न तोषवान् होता है, न कोपवान् होताहै, विषयकी प्राप्तिकरि न तृप्ति मानता है, इनके वियोगकरि न खेद मानता है,न अप्राप्तकी वांछा करताहै, न प्राप्तके त्यागकी इच्छा करताहै सर्व पदार्थविषे समभाव रहता है, ऐसा जो पुरुष है सो देवका परमउपासक है, ग्रहणत्यागते रहित सबविषे तुल्य है, भेदभावको नहीं प्राप्त होता, सो देवका अर्चन उत्तम है॥ हे मुनीश्वर ! चेतनतत्त्व देव मैं तुझको कहाहै, जो इसी देहविषे स्थितहै, जोप्राप्त वस्तु होवै, तिसको अर्चन करणी, सब तिसीके आगे रखणी, सबका साक्षी आत्माको देखना, किसीते खेदवान् न होना, अहंप्रतीति तिसविषे रखनी,इतर दृश्यकी भावना नहीं करनी,यही देवकी अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे यत्नविना तुल्य रहना, जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आनि प्राप्त होवै, सो देवके आगे रखना, ग्रहणत्यागकी बुद्धि तिसविषे न करनी, सो देवका पूजन है, सर्व पदार्थकी प्राप्तिविषे देवकी पूजा करनी इसकरि अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है, मृत्यु आवै तो देवकी पूजा, जीवना आवै तब देवकी पूजा, दारिद्र आवै तब देवकी पूजा, राज्य प्राप्त होवै तौ देवकी पूजा, विचित्र नानाप्रकारकी चेष्टा करनी, सो सव देवके आगे पुष्प हैं, रागद्वेषविषे सम रहना सो समताकरि देवकी पूजाहै, संतके हृदयकी रहनेहारी जो है मैत्री, जो सम्पूर्णविश्वका मित्र होना, तिस मित्रता करिकै देवका पूजन है, भोगकरि त्यागकरि रागकरि जो कछु आनि प्राप्त होवे, तिसकरि देवका पूजन करु, हंता होउ, अहंता होउ, युक्ति करु, अयुक्ति करु, हेयोपादेयते रहित होकरि तिस देवका पूजन करु, जो नष्ट हुआ सो हुआ; जो प्राप्त हुआ सो हुआ दोनोंविषे निर्विकार रहना, इसकरि देवका अर्चन करु, यह भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं, नष्ट भी हो जाते हैं, इनकी इच्छा न करनी, सदा संतुष्ट रहना, जैसे आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होना सो देवका अर्चन है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु प्रारब्धकरिकै आनि प्राप्त होवै

तिसकरि आत्माका अर्चन करौ, इच्छाअनिच्छाको त्यागिकरि जो प्राप्त होवै, तिसकरि देवका अर्चन करौ ॥ हे मुनीश्वर ! ज्ञानवान् न किसीकी इच्छा करता है, न त्याग करता है, जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै तिसको भोगता है, जैसे समुद्रविषे नदी जाय प्राप्त होतीहैं, तिनकरि न कछु हर्ष करता है, न शोक करता है, तैसे ज्ञानवान् इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति विषे रागद्वेषते रहित यथाप्राप्तको भोगता है, सो देवका पूजन है, देश काल क्रिया शुभ अथवा अशुभ प्राप्त होवै, तिसविषे संसरणविकारको प्राप्त न होना, सो देवकी अर्चनाहै, जब द्रव्य अनर्थरूप होवै, तब भी समरससाथ मिला हुआ अमृत हो जाता है, जैसे षट्रस स्वाद है, सो खांडसे मिले हुवे मधुर हो जाते हैं, तैसे अनर्थरूपी रस समरससे मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते, अनंतरूप हो जाते हैं, चंद्रमाकी नाईं सब भावना अमृतमय हो जाती हैं, जैसे आकाश निर्लेप है, तैसे समताभाव करिकै चित्त रागद्वेषते रहित निर्मल हो जाता है, द्रष्टाको दृश्यसे मिला न देखना, साक्षीरूप रहना, सो देवकी अर्चना है, जैसे पत्थरकी शिला निस्पंद होती है, तैसे विकल्पते रहित चित्त अचलहोता है, सो देवकी अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर ! अंतरते आकाशवत् असंग रहना, अरु बाह्य प्रकृत आचारविषे रहना किसीका संग अंतरस्पर्श न करै, सदा समभाव विज्ञानकरि पूर्ण रहना, सो देवका उपासन होनाहै, जिसके हृदयरूपी आकाशते अज्ञानरूपी मेघ नष्ट हो गया है, तिसको स्वप्नविषे भी विकार नहीं प्राप्त होता, अरु जिसके हृदयरूपी आकाशते अहंतारूपी कुहिड शांत हो गई है सो शरत्कालके आकाशवत उज्ज्वल होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको समभाव प्राप्त भया है तिसकरि देवको पाया है, सो पुरुष ऐसा हो जाता है, जैसा नूतन बालक रागद्वेषते रहित होता है, जीवरूपी चेतनाको उल्लंघिकरि परम चेतनतत्त्वको प्राप्त होता है, सकल इच्छाभ्रमते रहित सुख दुःख भ्रमते मुक्त शरीरका नायक तिष्ठित होता है सो देवअर्चना है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवार्चनाविधानवर्णनं नाम अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

ईश्वरोपाख्याने देवपूजावर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जैसी कामना होवै, जो कछु आरंभ करै अथवा न करै, सो अपने आपकरि चिन्मात्र संवित् तत्त्वकी अर्चना कर, इसकरि देव प्रसन्न होता है, जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रगट होता है, जब उसको पाया, अरु स्थित भया, तब रागद्वेषादिक शब्दका अर्थ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाता, तैसे इसविषे रागद्वेषादिक नहीं पाता, ताते तिस देवकी अर्चना करनी योग्य है, जो राज्य आनि प्राप्त होवै, अथवा दारिद्र्य आनि प्राप्त होवै, सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहना, सो देवअर्चना करनी ॥ हे मुनीश्वर ! शुद्ध चिन्मात्रसों प्रमादी न होना, इसीका नाम अर्चना है, जेता कछु घट पट आदिक जगत् भासता है, सो सब आत्मारूप है, तिसते इतर कछु नहीं, सो आत्मा शिव शांतिरूप अनाभास है, एकही प्रकाशरूप है, संपूर्ण जगत् प्रतीतिमात्र है, आत्माते इतर कछु द्वैतरूप आभास नहीं, सर्वात्मारूप अद्वैत तत्त्व जब भासै तब तिसविषे हुआ जानता है, जो बड़ा आश्चर्य है, घट पट आदिक सब वहीरूप हैं, अपर तौ कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! यह सर्वात्मा अनंतरूप शिवतत्त्वहै, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्त भया है, तिसने देवकी पूजा जानी है, घट पट आदिक जो पदार्थ हैं, पूज्य पूजा पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप हैं, निर्मल देव आत्माविषे कछु भेदभाव नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मदेव सर्वशक्ति अनंतरूप है, तीनों जगत्‌विषे तिसते भिन्न कछु नहीं, निर्मल प्रकाश संवित्‌रूप आत्मा स्थित है, हमको तौ ईश्वर देवते इतर कछु नहीं भासता, सर्वत्र सर्व प्रकार सर्वात्मा संपूर्ण दृष्ट आता है, अरु जिनको देश कालके परिच्छेदसहित ईश्वर भासता है, सो हमारे उपदेशके पात्र नहीं- वह ज्ञानबंध नीच हैं, तिनकी दृष्टिको त्यागिकरि मेरी दृष्टि [illegible] लेहु, जो मैं तुझको कही है, तिसकरि स्वस्थ वीतराग निरामय होहु यथाप्रारब्ध जो कछु सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, खेदते रहित होकरि

तिस देवका अर्चन करु, तब शांतिको प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर ! तिस देवकी सर्वप्रकार सर्वात्मा करिकै भावना करु यही तिसका पूजन है, जो वृत्ति सदा अनुभवरूपविषे स्थित रहै, अरु यथाप्राप्तविषे खेदते रहित विचरना यही देवकी अर्चना है, जैसे स्फटिकके मंदिरविषे प्रतिबिंब भासते हैं, सो कछु नहीं, निष्कलंक स्फटिक है, तैसे सर्व ओरते रहित जन्मादिक दुःखते रहित निष्कलंक आत्मा है, तिसकी प्राप्तिते तेरेविषे कलंक जन्मादिक दुःख कछु न रहैंगे॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवपूजाविचारो नामैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे देव ! शिव किसको कहते हैं, अरु ब्रह्म किसको कहते हैं, आत्मा किसको कहते हैं, अरु परमात्मा किसको कहते हैं, तत् सत् किसको कहते हैं, निष्किंचन शून्य विज्ञान किसको कहते हैं, इत्यादिक भेद संज्ञा किसनिमित्त हुई है, सो कृपा करिकै कहौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब सबका अभाव होता है, तब अनादि अनंत अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है, जो इंद्रियोंका विषय नहीं, तिसको निष्किंचन कहतेहैं॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे ईश्वर ! जो इंद्रियां बुद्धि आदिकका विषय नहीं, तिसका पाना किसकरि होता है ? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो मुमुक्षु है, अरु वेद आश्रयकरि संयुक्त सात्त्विकी वृत्ति जिसको प्राप्त हुई है, तिसको सात्त्विकीरूप जो गुरु शास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है, तिसकरि अविद्याका भाग नष्ट हो जाता है, अरु आत्मतत्त्व प्रकाशि आता है, जैसे साबुन करिकै धोबी वस्त्रका मैल उतारता है, तैसे गुरु शास्त्र अविद्याका सात्त्विकी भाग अविद्याको दूर करते हैं, जब केते कालते अविद्या नाश होती है, तब अपना आपहीकरि देखता है, जैसे वायुकरि बादल दूर होते हैं, अरु नेत्रकरि सूर्य देखता है, जैसे किसीके हाथको स्याही लगै, सो मृत्तिका

जलकरि धोयेते दूर हो जाती है, सो मैलकरि मैल दूर होता है, तैसे अविद्याका सात्त्विकी भाग गुरुशास्त्र सो अविद्याके आवरणको नष्ट करते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जब गुरुशास्त्रको मिलिकारि विचार प्राप्त होता है, तब विचारकारि स्वरूपकी प्राप्ति होती है, अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है, सर्व आत्माही प्रकाशताहै, जब विचारद्वारा आत्मतत्त्वनिश्चय हुआ, कि सर्व आत्मा है, इतर कछु नहीं, ऐसा निश्चय जहां होता है, तहांते अविद्या जाती रहती है ॥ हे मुनीश्वर ! आत्माकी प्राप्तिविषे गुरुशास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं, काहेते जो वस्तु जिनके क्षय हुएते पाये, सो तिनके विद्यमान हुए कैसे पाइये ? इंद्रियके समूहका नाम गुरु है, अरु ब्रह्म सर्व इंद्रियते अतीत है, इनकारि कैसे पाइये ? अकारण है, परंतु कारण भी है, काहेते जो गुरुशास्त्रके क्रम करिकै अज्ञानकी सिद्धता होती है, गुरुशास्त्रविना बोधकी सिद्धता नहीं होती, आत्मा निर्देश है, अरु अदृश्य है, तौ भी गुरुशास्त्रकारि पाता है ॥ अरु न गुरुकारि न शास्त्रकारि पाता है ॥ अपने आपहीकारि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ होवै अरु दीपक प्रकाशकारि देवै, सो दीपककारि नहीं पाया, अपने आपकारि पाया है, तैसे गुरुशास्त्र भी है, जब दीपक होवै, अरु नेत्र न होवै, तब कैसे पाइये ? नेत्र होवै अरु दीपक न होवै, तौ भी नहीं पाता, जब दोनों होवैं, तब पदार्थ पाता है, तैसे गुरुशास्त्र भी होवैं, अरु अपना पुरुषार्थ तीक्ष्ण बुद्धि भी होवै, तब आत्मतत्त्व पाता है, अन्यथा नहीं पाता है, गुरु शास्त्र अरु शुद्ध बुद्धि शिष्यको तीनों इकट्ठे मिलते हैं, तब संसारके सुखदुःख दूर होते हैं, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, गुरुशास्त्र आवरण दूर करिदेते हैं, तब आपकारि आपही पाता है, जैसे वायु बादलको दूर करता है, तब नेत्रकारि सूर्य दीखता है, अब नामके भेद सुन ॥ हे मुनीश्वर ! जब बोधके वशते कर्मइंद्रियां, बुद्धिइंद्रियां क्षय हो जाती हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, तिसका नाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदि नामकारि कहाता है, जहां यह संपूर्ण नहीं इनकी वृत्ति भी नहीं तिसके पाछे जो शेष सत्ता रहती है सो आकाशते भी सूक्ष्म अरु निर्मल है, अनंत है, परम शून्यरूप है, जहां शून्यका भी अभाव है ॥ हे मुनीश्वर ! अब

शांतरूप जो है मुमुक्षु, अरु मननकलनाकरि संयुक्त है, तिनको जीवन्मुक्ति पदके बोधनिमित्त शास्त्र मोक्षोपाय रचे हैं. ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र लोकपाल पंडित पुराण वेद शास्त्र सिद्धांत रचे हैं, तिनविषे यह नाम तीन मैं कहे हैं, चेतन ब्रह्म शिव आत्मा परमात्मा ईश्वर सत् चित् आनंद आदिक संज्ञा अनेक कही हैं, शिव आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिन्न भिन्न नाम शास्त्रकारोंने कल्पे हैं, अरु ज्ञानीको कछु भेद नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसा जो देव है, तिसका ज्ञानवान् इसप्रकार अर्चन करते हैं, जिस पदके हम आदिक टहलुए हैं, तिस परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जगत् सब अविद्यमान है, अरु विद्यमानकी नाईं स्थित है, सो कैसे हुआ है, समस्त कहनेको तुमहीं योग्य हो ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो ब्रह्म आदिक नामकरि कहाता है, सो शुद्ध केवल संवित्मात्र है, आकाशते भी सूक्ष्म है, जिसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल जैसा होताहै, अणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तिसविषे जब वेदनाशक्ति आभास होकारि फुरी तब तिसका नाम चेतन हुआ, बहुरि अहंताभावको प्राप्त हुआ, जो अहं अस्मि, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपको हस्ती देखने लगै, तैसे आपको अहं मानने लगा, बहुरि देशकाल आकाश आदिक देखने लगा, तब चेतनकला जीव अवस्थाको प्राप्त भई, अरु वासना करनेहारी भई, जब जीवभाव हुआ, तब बुद्धि निश्चयात्मक होकारि स्थित भई, शब्द अरु क्रिया ज्ञानसंयुक्त भई, एक एकसाथ मिलिकारि शीघ्रही कल्पित भई, तब मन हुआ सो मन संकल्परूपी मायाका बीज है, तब अंतवाहक शरीरविषे आत्मस्वरूप होकारि ब्रह्मसत्ता स्थित भई, इसप्रकार यह उत्पन्न भई है, बहुरि वायुसत्ता स्पंद हुई, तिसते स्पर्शसत्ता त्वचा प्रगट भई, बहुरि तेजसत्ता हुई तिसते प्रकाशसत्ता हुई, प्रकाशते नेत्रसत्ता प्रगट भई, बहुरि जलसत्ता जलते स्वादसत्ता, स्वादते रससत्ता ताते जिह्वा प्रगट भई, बहुरि गंधसत्ता गंधते भूमिसत्ता भूमिते घ्राणसत्ता पिंडसत्ता प्रगट भई देशसत्ता कालसत्ता हुई, सर्वसत्ता इनको इकट्ठाकरिकै फुरी, जैसे बीज पत्र फूल फलादिकका आश्रय होता है, तैसे यह पुर्य-

ष्टका जान, यही अंतवाहक देह है, तिसका आश्रय भई, वास्तवते कछु उपजा नहीं, परमात्मसत्ता अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे जल फुरता है, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे फुरती है ॥ हे मुनीश्वर ! संवित्‌विषे जो संवेदन पृथक्‌रूप होकारि फुरै, सो निस्पंद करिकै जब स्वरूपको जाना, तब नष्ट हो जाती है, जैसे संकल्पका रचा नगर संकल्पके अभाव हुए अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके ज्ञानते संवेदनका अभाव हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! संवेदन तबलग भासता है, जबलग इसको जाना नहीं, जानता तब है, संवेदनका अभाव हो जाता है, संवित्‌विषे लीन हो जाती है, भिन्नसत्ता इसकी कछु नहीं रहती ॥ हे मुनीश्वर ! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी, सो भावनाके वशते स्थूल देहको प्राप्त भई, स्थूल देह होकारि भासने लगी, आगे जैसे जैसे देश काल पदार्थकी भावना होती गई, तैसे तैसे भासने लगे, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नपुर भासता है, तैसे भावनाके वशते यह पदार्थ भासने लगे हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! गंधर्वनगर अरु स्वप्नपुरके समान इसको कैसे कहते हौ, यह जगत् तौ प्रत्यक्ष दिखाता है॥ ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर! संसार दुःख इसको वासनाके वशते दीखता है, जो अविद्यमानविषे स्वरूपके प्रमाद करिकै विद्यमान बुद्धि हुई है, जगत्‌के पदार्थको सत् जानिकारि जो वासना फुरती है, तिस वासनाकारि दुःख होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, तिसविषे वासना अरु वासक वासना करनेयोग्य तीनों वृथा हैं, जैसे मृगतृष्णाका जल पानकारि तृप्त कोऊ नहीं होता. काहेते कि जलही असत् है, तैसे यह जगत्‌ही असत् है, इनके पदार्थकी वासना करनी वृथा है, ब्रह्माते आदि क्रमपर्यंत सब जगत् मिथ्यारूप है, वासना वासक वासना करने योग्य पदार्थ तिन्होंके अभाव हुए केवल आत्मतत्त्व रहता है, सब भ्रम शांत हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत् भ्रममात्र है, वास्तवते कछु नहीं, जैसे बालकको अज्ञानकारि अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, जब विचारकारि देखै तब वैतालका अभाव हो जाता है, तैसे

अज्ञानकरि यह जगत् भासता है, आत्मविचारकरि इसका अभाव हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै देह भासता है, जिसकी देहादिकविषे स्थिर बुद्धि है, सो हमारे उपदेशके योग्य नहीं है ॥ हे मुनीश्वर ! जो विचारवान् है, तिसको उपदेश करना योग्य है, अरु जो मूर्ख भ्रमी है, अरु असत्यवादी सत्कर्मते रहित अनार्जव है, तिसको ज्ञानवान् उपदेश करै, जिसविषे विचार अरु वैराग्य होवै, कोमलता अरु शुभ आचार होवै, तिसको उपदेश करना योग्य है, अरु जो इन गुणोंते रहित विपर्यय है, तिसको उपदेश करना ऐसे होता है, जैसे महासुंदर स्वर्णवत् कांति ऐसी कन्या किसीकी होवै, अरु स्वप्न कल्पित पुरुषको विवाहि देनेकी इच्छा करै, तैसेही अपात्रको उपदेश करना मूर्खता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनवर्णनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

परमार्थविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! वह जीव जो आदि सर्गते उत्पन्न भया, अरु देहभ्रम अपनेसाथ देखत भया, तिसके अनंतर कैसे स्थित हुआ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! परमाकाशते उपजा, जैसे तुमको कहा है, सो अपनेसाथ शरीर देखत भया, स्वप्ननगरकी नाईं सर्वगत चिद्घन आत्माके आश्रय उपजिकरि जीव अपने शरीरको देखत भया ॥ हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुरा है, अरु प्रमादको प्राप्त न भया, अपने स्वरूपहीविषे अहंप्रत्यय रहा, इस कारणते ईश्वर होकरि स्थित भया, तिसको यह निश्चय रहा कि, मैं सनातन हौं, नित्य हौं, शुद्ध परमानंद स्वरूप हौं, अव्यक्तरूप परम पुरुष हौं, इसप्रकार आदि जीवका निश्चय रहा, आत्माकी अपेक्षा करिकै तिसको जीव कहा है, अरु सृष्टि जगत्की अपेक्षा करिके उसको ईश्वर कहा है ॥ हे मुनीश्वर !

वह जो आदि जीव है, सो कोऊ विष्णुरूप होकरि ब्रह्माको नाभिकमलते उत्पन्न किया है, किसी सृष्टिविषे प्रथम ब्रह्मा हुआ है, विष्णु रुद्र तिसते हुए हैं, किसी सृष्टिविषे प्रथम रुद्र हुआ है, विष्णु ब्रह्मा तिसते हुए हैं, चेतन आकाशविषे जैसा जैसा संकल्प फुरा है, तैसा होकरि स्थित भया है, आदि जीव उपजिकरि जिस जिस प्रकारका संकल्प किया है, तैसा होकरि स्थित भया है, वास्तवते सब असत्‌रूप हैं, अज्ञानभ्रम करिकै हुआ है, जैसे परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै सत्‌रूप हो भासता है, आदि पुरुषते लेकरि जो सृष्टि है, सो परमाकाशके एक निमेषते हुई है, अरु उन्मेषविषे लय हो जाती है, एक निमेषके प्रमादकरि कल्पके समूह व्यतीत हो जाते हैं, अरु परमाणुपरमाणुविषे सृष्टि फुरती है, कल्प अरु महाकल्प तिनविषे भासते हैं, कई सृष्टि परस्पर दीखती हैं, कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं, इसीप्रकार सृष्टि तिसके स्पंदकलाविषे फुरी हैं, चमत्कार होता है, अरु जब स्पंदकला स्वरूपकी ओर आती है, तब लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नका पर्वत जागेते लीन हो जाता है, तैसे जाग्रत्‌की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर ! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, तिन सृष्टिको कोऊ देश काल रोक नहीं सकता, काहेते कि अपने अपने संकल्पविषे स्थित है, अरु आत्माका चमत्कार है, जैसा फुरना फुरता है, तैसा चमत्कार हो भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! न कछु उपजा है, न कछु नाश होता है, स्वतः चेतनतत्त्व अपने आपविषे चमकता है, जैसे स्वप्ननगर उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, जैसे संकल्पका पहाड़ उपजिकरि मिटि जाता है, तैसे जगत उपजिकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्न अरु संकल्प पहाड़को कोऊ रोक नहीं सकता, तैसे अपनी अपनी सृष्टिको देशकाल रोक नहीं सकता, काहेते कि, अपर ठौरविषे इनका सद्भाव नहीं, ताते यह जगत् अपने अपने कालविषे सत्‌रूप है, आत्माविषे सद्भाव नहीं, संकल्परूप है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे आदितत्त्वते जीव ईश्वर फुरे हैं, तैसे क्रम फुरे हैं, रुद्रते लेकरि वृक्षपर्यंत सब एकक्षणविषे उसी तत्त्वते फुरि आये हैं, सुमेरु आदिक भी अपने स्थितिविषे रोकते हैं, अन्य अणुको नहीं रोक सकते. काहेते कि, वहां

हैही नहीं, ताते आत्माविषे सृष्टि आभासरूप है॥हे मुनीश्वर ! इसप्रकार सब जगत् मायामात्र है, भावनाकरि भासताहै, जब आत्माका अभ्यास होता है तब भेदकल्पना मिटि जाती है, केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है॥ हे मुनीश्वर ! निमेषका जो समभाव है, तिसके अर्धभाग प्रमाद होनेकरि नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, सत् असत्रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है, आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न अध है, न ऊर्ध्व है, न पूर्व है, न पश्चिम है, सत् असत्के मध्य अनुभवरूप सर्वका ज्ञाता है, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण तिसकेविषे नहीं करि सकते, जैसे जलविषे अग्नि नहीं निकसता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु तुझने पूछा था, सो मैं कहा है, तिसविषे चित्तको लगाना, तेरा कल्याण होवै, अब हम अपने वांछित स्थानको जाते हैं, चलौ पार्वती, अपने स्थानको जावैं॥ हे रामजी ! इसप्रकार ईश्वरने जब कहा, तब मैं अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया, पार्वती अरु गणको लेकरि ईश्वर आकाशमार्गको चलते भये, जबलग मुझको दृष्टि आवते रहे, तबलग उनकी ओर मैं देखता रहा, बहुरि मैं अपने कुशके स्थानपर आनि बैठा, जो कछु ईश्वरने उपदेश किया था, सो मैं अपनी सुध बुध साथ विचारने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थविचारो नामैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥४१॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

विश्रांत्यागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जो कछु ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आप भी जानता था, अरु तू भी जानता है, यह जगत् भी असत् है, देखनेवाला भी असत् है, तिस मायारूप जगत्विषे मैं तुझको सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पवनविषे स्पंद होता है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे रामजी ! जो कछु पतित प्रवाहकरि आनि प्राप्त होता है, तिसकरि मैं देव अर्चन करता हौं, इस क्रमक-

रिकै मैं निर्वासनिक हौं, जगत्की क्रियाविषे भी मैं निर्दुःख होकरि चेष्टा करता हौं, व्यवहार करता दृष्टि आता हौं, तौ भी सदा शांतिरूप हौं, यथाप्राप्त आचाररूपी फूलकरि मैं आत्मदेवकी अर्चना करता हौं, छेद भेद मुझको कोई नहीं होता ॥ हे रामजी ! विषय अरु इंद्रियोंका संबंध सर्व जीवको तुल्य है, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सावधान रहते हैं, जो कछु देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूँघते, स्पर्श करते हैं, सो आत्मातत्त्वविषे अर्चन करते हैं, आत्माते इतर नहीं जानते, इसप्रकार सावधान रहते हैं, अरु अज्ञानी हैं, तिनको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान होता है, तिसकरि दुःखी होते हैं ॥ हे रामजी ! तुम भी ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै संसाररूपी वनविषे विचरौ, निःसंग होकरि तुमको खेद कछु न प्राप्त होवैगा, जिसकी वृत्ति इसप्रकार समान हो गई है, तिसको बड़ा कष्ट आनि प्राप्त होवै, धनबांधवका वियोग होवै, तौ भी तिसको खेद नहीं होता, यह जो दृष्टि मैं तुझे कही है, तिसका आश्रय करैगा, तब तुझको दुःख कोऊ न होवैगा ॥ हे रामजी ! सुख दुःख धन बांधवका वियोग यह सब पदार्थ अनित्य हैं, यह आते भी हैं, जाते भी हैं, इनको आगमापायी जानकरि विचरौ, यह संसार विषमरूप है, एक रस कदाचित् नहीं रहता, इसको स्थित जानकरि दुःखी नहीं होना ॥ हे रामजी ! पदार्थ काल जैसे जावै, तैसे जावै अरु जैसे सुखदुःख आवै, तैसे आवै, यह सब आगमापायी पदार्थ हैं, आते भी हैं; जाते भी हैं, इष्टकी प्राप्ति अनिष्टकी निवृत्तिविषे हर्षवान् नहीं होना, अरु अनिष्टकी प्राप्ति इष्टके वियोगकरि खेदवान् नहीं होना, जैसे आवै तैसे जावै, जैसे जावै तैसे आवै, जिसे आवना है सो आवैगा, जिसे जाना है सो जावैगा, ये सुखदुःख प्रवाहरूप हैं, इनविषे आस्थाकरि तपायमान नहीं होना ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् तूही है, अरु तूही जगत्‌रूप है, अरु चिन्मात्र विस्तृत आकार तू है, जब तूही है, तब बहुरि हर्ष शोक किसनिमित्त करता है, इसी दृष्टिको आश्रय करिकै जगत्‌विषे सुषुप्तिकी नाईं विचरु, बहुरि तुरीयातीत अवस्थाको प्राप्त होवैगा, जो सम प्रकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! जो कछु मुझे तुझको कहना था, सो कहा है, आगे जो तेरी इच्छा होवै

सो करु, अरु पाछे तुझने पूछा था कि, ब्रह्म अनंत रूपविषे मैं कलंक कैसे प्राप्त भया हौं, सो अब बहुरि प्रश्न करु, जो मैं उत्तर कहौं ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! अब मुझको संशय कछु नहीं रहा सब संशय नष्ट हो गया है, जो कछु जानना था सो मैं जाना है, अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तताको प्राप्त भया हौं ॥ हे मुनीश्वर ! आत्माविषे न मैल है, न द्वैत है, न एक है, कोई कल्पना नहीं, पूर्व मुझको अज्ञान था, तब मैं पूछा था, अब तुम्हारे वचनोंकारि मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कलंक कछु नहीं भासता, आत्माविषे न जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे मुनीश्वर ! प्रश्न संशयकारि उपजता है, सो संशय मेरा नष्ट हो गया है, जैसे जन्त्रीकी पुतली हिलावनेते रहित अचल होती है, तैसे मैं संशयते रहित अचल चित्त स्थित हौं, सर्व सारोंका सार मुझको प्राप्त भया है, जैसे सुमेरु अचल होता है, तैसे अचल हौं, कोई क्षोभ मुझको नहीं, ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागनेयोग्य होवै, अरु ऐसा भी कोई नहीं जो ग्रहण करनेयोग्य होवै, न किसी पदार्थकी मुझको इच्छा है, न अनिच्छा है, शांतरूपविषे स्थित हौं, न स्वर्गकी मुझको इच्छा है, न नरकविषे द्वेष है, सर्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है, मंदराचल पर्वतकी नाई आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको अवस्तुविषे वस्तु बुद्धि होती है, अरु कलनाकला हृदयविषे स्थित होती है, सो किसीका ग्रहण करता है, किसीका त्याग करता है, अरु दीनताको प्राप्त होताहै ॥ हे मुनीश्वर ! यह संसार महासमुद्ररूप है; रागद्वेषरूपी तिसविषे कल्लोल हैं, अरु शुभअशुभरूपी तिसविषे मत्स्य रहतेहैं, ऐसे भयानक संसारसमुद्रते अब मैं तुम्हारे प्रसादकरिकै तरगया हौं; सब संपदाके अंतको प्राप्त भया हौं, सब दुःख नष्ट हो गये हैं, सर्वके सारको प्राप्त भया हौं, पूर्ण आत्मा हौं, अदीनपदको प्राप्त भया हौं, अरु परमशांत अभेदसत्ताको प्राप्त भया हौं, आशारूपी हस्तीको मैंने सिंह होकारि माना है, आत्माते इतर मुझको कछु नहीं भासता, सब विकल्पके जाल गलत हो

गये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं, दीनता जाती रही है, तीनों जगत्‌विषे मेरी जय है, सदा उदितरूप हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण-प्रकरणे विश्रांत्यागमनवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३

चित्तसत्तासूचनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियोंकरि जो केवल करताहै, अरु मनविषे असंगता है, तब जो कछु वह कर्ता है, सो भी कछु नहीं करता, जो कछु इंद्रियोंकरि इष्ट प्राप्त होता है, सो एक क्षणमात्र सुख प्राप्त होता, तिस क्षण प्रसन्नताविषे जो बंधमान होताहै सो बालकवत् मूर्खहै, जो ज्ञानवान्‌है, सो तिसविषे बंधमान नहीं होता॥हे रामजी ! वांछाही इसकोदुःखी करती है,जो सुंदरविषयकी वांछाकरताहै,जब यत्नकरि तिनकीप्राप्तिहोती है, तब मध्य क्षणसुख होताहै, बहुरिवियोग होता हैं,तब इसको दुःख दे जाते हैं, तिस कारणते इनकी वांछा त्यागनीयोग्य है, इनकी वांछा तब होती है, जब स्वरूपका अज्ञान होता है, अरु देहादिकविषे अहंभाव होता है, जब देहादिकविषे अहंभाव होताहै, तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होती है ॥ ताते हे रामजी ! ज्ञानरूपी पहाडपरि चढ़े रहना. अहंतारूपी गर्तविषे नहीं गिरना ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत है, तिसपर चढी बहुरि अहंता अभिमान करिकै गर्तविषे वास लेना सो बडी मूर्खता है, ताते गर्तविषे नहीं गिरना, जब दृश्यभावको त्यागेगा तब अपने स्वभावसत्ताको प्राप्त होवैगा, जो सम शांतरूप है, अरु विकल्पजाल सब मिटि जावैगा, समुद्रवत् पूर्ण होवैगा, द्वैतरूप फुरणा कोऊ न फुरैगा ॥ हे रामजी ! जब अंतरते विषयको विष जानै तब मन भी निरस हो जाता है, चित्त निःसंग होता है, वस्तुते देखै तौ सबविषे सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्धन स्थित है, तिसते जो कछु इतर द्वैत भासता है, सो स्वरूपके प्रमादकरि भासता है ॥ हे रामजी ! आत्माका अज्ञान ही बंधनरूप है, आत्माका बोधही मुक्तरूप है, ताते बल करिकै आपको

आपही जगावहु, तब इस बंधनते मुक्त होहुगे ॥ हे रामजी ! जिसविषे विषयका स्वाद नहीं, अरु जिसविषे इनका अनुभव होता है, सो तत्त्व आकाशवत् निर्मल सत्ता वासनाते रहित है, जो वासनाते रहित होकरि पुरुष कछु क्रिया करता है, सो विकारको नहीं प्राप्त होता, यद्यपि अनेक क्षोभ आनि प्राप्त होवैं, तौ भी उसको विकार कछु नहीं प्राप्त होता, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय यह तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसे जाना तब भय किसीका नहीं रहता, चित्तके फुरणे करि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके अफुर हुए लीन हो जाता है, जब वासनासहित प्राण उदय होते हैं, तब जगत् उदय होता है, जब वासनासहित प्राण लीन होते हैं, तब जगत् लीन होता है, अभ्यासकरिकै वासना अरु प्राणोंको स्थित करौ, जब मूर्खता उदय होती है, तब कर्म उदय होते हैं, अरु मूर्खताके लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, ताते सत्संग अरु सच्छास्त्रोंके विचारकरि मूर्खताको क्षय करौ, जैसे वायुके संगकरि धूलि उडिकै बादल आकार होती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त फुरता है, तब नानाप्रकारका जगत् फुरि आता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत् लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! वासना शांत होवै, अथवा प्राणोंका निरोध होवै, तब चित्त अचित्त होजाता है, सो वासनाके क्षय हुए अथवा प्राणोंके रोकेते चित्त अचित्त होता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब परमपदको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शन संबंधके मध्यविषे जो सुख है, सो परमात्मसुख है, जो एकांतका सुख है, सो संवित् ब्रह्मरूप है, तिसके साक्षात्कार हुए मन क्षय होता है, जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्तते रहित अकृत्रिम सुख है, ऐसा सुख स्वर्गविषे भी नहीं जैसे मरुस्थलविषे वृक्ष नहीं होता तैसे चित्तसहित विषयकेविषे सुख नहीं होता, चित्तके उपशमविषे जो सुख है, सो अवाच्य है, वाणीकरि नहीं कहा जाता, तिसके समान अपर सुख कोई नहीं, और तिसते अतिशय सुख भी नहीं, अपर सुख नाश हो जाता है, आत्मसुख नाश नहीं होना अविनाशी है, उपजने विनशने दोनोंते रहित है ॥ हे रामजी ! अबोधकरिकै चित्त उदय होता

है, अरु आत्मबोधकरिकै शांत हो जाता है, जैसे मोहकरिकै बालकको वैताल दिखाई देता है, मोहके नष्ट हुए वैताल नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि चित्त उदय होता है, अज्ञानके नष्ट हुए चित्त नष्ट हो जाता है, जब विद्यमान भी चित्त भासता है, तब भी बोधकरि निर्बीज होता है, जैसे लोहा पारसकेसाथ मिलिकरि स्वर्ण होता है, आकार तौ वही दृष्टि आता है, परंतु लोहे भावका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि जगत् भासता है, अरु ज्ञानकरि चित्त अचित्त होजाता है, अरु जड जगत् नहीं भासता वही ब्रह्मसत्ता होकरि भासता है, सत् पदको प्राप्त होता है, परंतु नामरूप तैसेही भासता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका चित्त भी क्रिया करता दृष्ट आता है, परंतु चित्त अचित्त हो जाता है, जो अज्ञानकरिकै भासता है, सो ज्ञानकरिकै शून्य हो जाता है, जेता कछु जगत् अबोधकरिकै भासता था, सो बोधकरिकै शांत हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता, वह चित्त शांतपदको प्राप्त होता है, कोई काल तौ वह भी तुरीया अवस्थाविषे स्थित हुआ विचरता है, बहुरि तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही सदा इसप्रकार अनेक होकरि स्थित भया है, अनेक भ्रमकरिकै भी एकही है, सर्वात्माही है, अपर चित्तादिक कछु नहीं ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

बिलोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब तू संक्षेपते एक अपूर्व आश्चर्यरूप बोधका कारण अज्ञान सुन, एक बीलफल है, अरु अनंत योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अरु अनंत युग व्यतीत होगयेहैं, वह जर्जरीभावको कदाचित् नहीं प्राप्त होता, अरु अनादि है, तिसविषे अविनाशी रस है, कबहूँ नाश नहीं होता, रसकरि पूर्ण है, अरु चंद्रमाकी

नाईं सुंदर है, बहुरि कैसा है, जो सुमेरु आदिक बडे पहाड हैं, तिनको महाप्रलयका पवन तृणोंकी नाईं उडावता है, सो पवन भी तिसको हिलाय नहीं सकता ॥ हे रामजी ! योजनके अनंत कोटकोटान करिकै तिसकी संख्या नहीं करी जाती, ऐसा वह बीलफल है, बहुरि कैसा है, बहुत बडा है, जैसे सुमेरुके निकट राईका दाना सूक्ष्म तुच्छ भासता है, तैसे तिस बीलफलके आगे ब्रह्मांड सूक्ष्म तुच्छ भासता है, सो बीलफल रसकरि पूर्ण है, गिरता कबहूं नहीं, अरु पुरातन है, तिसका आदि, अंत, मध्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक भी नहीं जान सकते, न उसके मूलको कोई जान सकता है, न मध्यको कोई जान सकता है, अदृष्ट उसका आकार है, अरु अदृष्ट फल है, अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, बहुरि कैसा है, एक घन है आकार जिसका अरु सदा अचल है, किसी विकारको नहीं प्राप्त होता, सत् है, निर्मल निर्विकार निरंतररूप है, निरंध्र है, अरु चंद्रमाकी नाईं शीतल सुंदर है, अरु अज्ञान संवित्रूपी तिसविषे रस है, सो अपना रस आपही लेता है, अरु सर्वको रस देनेहारा भी वही है, सबको प्रकाश करता भी वही है, तिसविषे अनेक चित्र रेखाने आनि निवास किया है, परंतु अपने स्वरूपको त्यागता नहीं ॥ अनेकरूप होकरि भासता है, तिसविषे स्पंदरूपी रस फुरता है, तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत्, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या, इत्यादिक कलनाजाल इसके फुरणे करिकै फुरते हैं, सो बिल आत्मरूप है, अनुभवरूपी तिसविषे रस है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, नित्य शांतरूप है, तिसको जानिकरि पुरुष कृतकृत्य होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बिलोपाख्यानं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

शिलाकोशोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता ! तुम यह बिलरूपी महाचिद्घनसत्ता कही, सो ऐसे मेरे निश्चय भया कि, जो चेतन मज्जारूप

अहंतादिक जगत् है, इसविषे भेद रंचक भी नहीं, द्वैत एक कलना सर्व वही है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्मांडकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है, तैसे चेतन बिलकी मज्जा यह ब्रह्मांड है, सब जगत् चेतन बीलरूप है, इतर कछु नहीं, तिस सर्व जगत् चेतनका विनाश संभवता नहीं ॥ हे रामजी ! चेतनरूपी मिर्च बीज है, तिसविषे जगत्‌रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है, सो सुषुप्तवत् निर्मल है, शिलाके अंतरवत् अमिश्रित है ॥ हे रामजी ! अब अपर आश्चर्यरूप आख्यान सुन, चंद्रमावत् महासुंदर प्रकाश अरु स्निग्ध शीतल स्पर्श है; अरु विस्तृतरूप शिला है, सो महानिरंध्र है, घनरूप है, तिसविषे कमल उपजते हैं, ऊर्ध्व तिसकी वल्ली है; अरु अध मूल है, अरु अनेक तिसकी शिखा हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सत्य कहते हौ, यह शिला मैं भी देखी है, जो विष्णुकी मूर्ति नदीविषे शालग्राम है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे तू जानता है, अरु देखा भी है, परंतु तैसी तिसके सब अंतर हैं, जो शिला मैं कहता हौं सो अपूर्व शिला है, तिसके अंतर ब्रह्मांडके समूह हैं, और कछु भी नहीं ॥ हे रामजी ! चेतनरूपी शिला मैं तुझको कही है, तिसविषे संपूर्ण ब्रह्मांड है सो घन चेतनता करिकै शिला वर्णन करी है, अनंत घन अरु निरंध्र है, सो परब्रह्म आकाशवत् शिला है, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व तिस शिलाके अंतर स्थित हैं, अरु कछु है नहीं, जैसे शिलाके ऊपर कमल लिखे होते हैं, सो शिलारूप है, शिलाते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूपी शिलाविषे है, आत्माते भिन्न कछु नहीं ॥ हे रामजी ! भूत भविष्य वर्त्तमान जो तीनों काल हैं, सो उस शिलाकी पुतलियां हैं, जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, कि एती पुतलियां इस शिलाते निकसैं तैसे यह जगत् आत्माविषे है, उपजा नहीं. काहेते कि जो मनरूपी शिल्पी कल्पता है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है, आत्माविषे कछु उपजा नहीं जैसे सुषुप्तरूप शिलाकेऊपर कमलरेखा लिखी होती है, सो शिलाते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आत्माविषे है, सो आत्माते भिन्न नहीं, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, सो न उदय न अस्त होती

है, ज्योंकी त्यों शिला है, तैसे आत्माविषे जगत् न उदय न अस्तहोता है. काहेते कि, वास्तव कछु नहीं, अरु आत्माते इतर जो कछु द्वैतकल्पना होती है, सो अज्ञानकरिकै भासती है; जब बोध हुवा तब शांत होजाती है, जैसे जलकी बूँद समुद्रविषे डारी समुद्ररूप हो जाती है, तैसे बोधकारि कल्पना आत्माविषे लीन हो जाती है ॥ हे रामजी ! चेतन आत्मा अनंत है, तिसविषे विकारकल्पना कोई नहीं, अज्ञानकारि कल्पना भासती है, ज्ञानकरिकै लीन हो जाती है, विकार भी आत्माके आश्रय भासते हैं, अरु आत्मा विकारते रहित है, ब्रह्मते विकार उत्पन्न होते हैं, अरु ब्रह्महीविषे स्थित हैं, अरु वास्तवते कछु हुए नहीं, सब आभासमात्र हैं, जैसे किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत्विकार आभास होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, पत्र टास फूल फलका विस्तार एकही बीजके अंतर होता है, अरु बीजसत्ता सबविषे अनुस्यूत होती है, बीजते इतर कछु नहीं होता, तैसे चिद्घन आत्माके अंतर जगत्विस्तार है, सो चिद्घन आत्माते इतर कछु नहीं, वही अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् भी वहीरूप है, जब एक मानिये तब द्वैत भी होता है, जब एक कहना भी नहीं, तब द्वैत कहां होवै, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, आत्माही अद्वैत अपने आपविषे स्थित है, जैसे शिलाविषे मूर्ति लिखी होती है, सो शिलारूप है, तैसे जगत् आत्मारूप है, जैसे-शिलाविषे भिन्न भिन्न विषमरूप मूर्तियां होती हैं, आधाररूप शिला अभेद है, तैसे आत्माविषे जगत्मूर्तियां भिन्न भिन्न विषमरूप भासती हैं, अरु आधार चेतन अभेद है, ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् सम स्थित है, बड़े विकार भी तिसविषे दृष्ट आते हैं, परंतु वास्तव सुषुप्तवत् विकारते रहित स्थित हैं, फुरणेते रहित चेतन शिला स्थित है, तिस नित्य शांत चिद्घनरूप सत्ताविषे यह जगत् कल्पित है, अधिष्ठानसत्ता सदा सर्वदा शांतरूप है, भेदको प्राप्त कदाचित् नहीं होती, जैसे जलविषे तरंग अभेदरूप हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण अभिन्नरूपहैं, तैसेआत्माविषे जगत्अभिन्नरूप है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलाकोशोपदेशवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

सत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! जैसे बीजके अंतरफूलफल वृक्ष संपूर्णहोता है, सो आदिभी बीजहै,अरु अंतभी बीज है,जब फल परिपक्कहोताहैतब बीजही होता है, तैसे आत्मा भी जगत्‌विषे है, परंतु सदा अच्युतहै,अरु सम है,कदाचित् भेदविकार परिणामको नहीं प्राप्त भया,अपनी सत्ताकरि स्थित है, जगत्‌के आदि भी वही है, मध्य भी वही है, अंत भी वही है, कछु अपर भावको प्राप्त नहीं भया, देश काल कर्म आदिक जेती कलना भासती है, सो वहीरूप है जेते कछु शब्द अरु अर्थ हैं, सो आत्माते भिन्न नहीं होते, जैसे वृक्षकेआदि भी बीजहै;अरु अंत भी बीज है, मध्य जो कछु विस्तार भासता है सो भी वहीरूप है, भिन्न कछु नहीं, तैसे जगत्‌के आदि भी आत्मसत्ता है अंत भी आत्मसत्ता है, मध्य जो कछु भासता है, सो भी वहीरूप है ॥ हे रामजी ! चेतनरूपी महा आदर्श है, तिसविषे संपूर्ण जगत् प्रतिबिंब होता है, अरु संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा किसीविषे फुरण दृढ होता है, तैसाही आत्मसत्ताके आश्रित होकरि भासता है, जैसे चिंतामणिविषे जैसा कोऊ संकल्प धारता है, तैसाही प्रगट हो आता है, सो संकल्पही मात्र होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोऊ करता है, तैसी तैसी आत्माके आश्रित होकरि भासती है, अनंत जगत् आत्मारूपी मणिके स्थित होते हैं, जैसी कोऊ भावना करता है, तैसाही तिसको हो भासती है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपीडब्बाहै, तिससों जगत्‌रूपी रत्न मोती पन्ने निकसते हैं, जैसा फुरणा होता है, तैसा जगत् भासि आता है, जैसे शिलाके अंतर रेखा होती हैं, सो नानाप्रकार चित्र भासती हैं, सो अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे जगत्‌अनन्यरूप है,जैसे शिलाके अंतर शंखचक्रादिक रेखा भासतीहैं, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासता है, सो आत्मारूप है, आत्मारूपी शिला निरंध्रहै, तिसविषे छिद्र कोई नहीं जैसे जलविषे तरंग जलरूप होते हैं,तैसे ब्रह्मविषे जगत्‌ब्रह्मरूपहै,सो कैसा ब्रह्म है, समशांतरूप

सुषुप्तवत् स्थित है, तिसविषे जगत् कछु फुरा नहीं, शिलाकी रेखावत् है, जैसे बिलके अंतर मज्जा स्थित होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, जैसे वायुविषे स्पंदता होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे तरु अरु वृक्षविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं ब्रह्मही जगत् है, जगत्‌ही ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! भाव अभाव भेदकल्पना कोऊ नहीं,ब्रह्मसत्ताहीप्रकाशतीहै,ब्रह्मसत्ताहीजगत्‌रूपहोकारि भासती है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणें जलरूप होकारि भासती हैं, तैसे ब्रह्म जगत्‌रूप होकारि भासता है ॥ हे रामजी ! सुमेरु आदिक पर्वत अरु तृण वन अरु चित्त जगत् परिणामते लेकारि भूतको विचारि देखिये तौ परमसत्ताही भासती है, सम पदार्थविषे स्थूल अरु सूक्ष्म भावकारि वही सत्ता व्यापी है, जैसे जलका रस वनस्पतिविषे व्यापा हुआ है, तैसे सब जगत्‌विषे सूक्ष्मता करिकै आत्मसत्ता व्यापी हुई है, जैसे एकही रस-सत्ता वृक्ष तृण गुच्छेविषे व्यापी हुई है, अरु एकही अनेकरूप होकारि भासती है, तैसे एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकारि भासती है ॥ हे राम-जी ! जैसे मोरके अंडविषे अनेक रंग होते हैं, जब अंड फूटता है, तब शनैः शनैः अनेक रंग तिसते प्रगट होते हैं, सो एकही रस अनेकरूप हो भासता है, तैसे एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकारि भासता है, जैसे मोरके अंडविषे एकही रस होता है, परंतु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं, तिनको भविष्यत् अनेक रंग उसविषे भासते हैं, सो अनउपजेही उपजे भासते हैं, तैसे यह जगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानीके हृदय-विष स्थित होता है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनको एकरस ब्रह्मसत्ता भासती है, जैसे मोरका रस परिणामको नहीं प्राप्त भया, एकरस है, अरु जब परिणामको प्राप्त होकारि नानारूप भया, तब भी एकरस है, तैसे यह जगत् परमात्माविषे गुह्य है, तौभी परमात्माही है, अरु जब नाना-रूप होकारि भासता है, तौ भी वही है परिणामको नहीं प्राप्त भया, परंतु अज्ञानीको नानात्व भासता है, ज्ञानवान्‌को एक सत्ता भासती है, अथवा

इस दृष्टांतका दूसरा अर्थ है, जैसे मोरके अंडेविषे नानात्व कछु हुई नहीं, जिसको दिव्यदृष्टि है, तिसको उसविषे अनउपजी नानात्व भासती है, अरु जिसको दिव्यदृष्टि नहीं तिसको बीजही भासता है, नानात्व नहीं भासता, तैसे जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है, तिनको अनउपजा जगत् नानात्व हो भासता है, अरु जो अज्ञानदृष्टिते रहित हैं, तिनको एकही ब्रह्म भासता है, अपर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी ! नानात्व भासता है तौ भी कछु नानात्व है नहीं, जैसे मोरके अंडेविषे नानारंग भासते हैं, तौ भी एकरूप है, तैसे यह जगत् भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सत्तोपदेशवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

ब्रह्मैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे अनउपजी कांतिरंग मयूरके अंडविषे होते हैं, सो बीजते इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् आत्माविषे अनउदयही उदयरूप भासताहै, जैसे बीजविषे उन रंगहूकी उदय भी अनउदयरूपहै, तैसे आत्माविषे जगत्की उदय भी अनउदयरूप है, अरु आत्मसत्ता अशब्द पद है, वाणीकारि कछु कहा नहीं जाता ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं पाताहै अरु अपर भी किसी स्थानविषे ऐसा सुख नहीं पाता, जैसा सुख आत्माविषे स्थित हुए पाता है ॥ हे रामजी ! आत्मसुखविषे विश्रांति पानेनिमित्त मुनीश्वर, देवता, गण अरु सिद्ध महाऋषि दृश्य दर्शनसंबंध फुरणेको त्यागिकारि स्थित होते हैं, ताते उत्तम सुख है, संवित्‌विषे जो संवेदनका फुरणा है, सो जिनका निवृत्त हुआ है, तिसका जिनने त्याग किया है, तिन पुरुषोंको दृश्यभावना कोई नहीं फुरती, न कोऊ तिनको कर्म स्पर्श करता है, अरु प्राण भी तिनके निस्पंद होतेहैं, चित्त चेतनके संबंधते रहित चित्रकी मूर्तिवत् स्थित होतेहैं,

अरु शांतरूप स्थित होते हैं ॥ हे रामजी ! जब चित्तकला फुरती है, तब इसको संसारभ्रम प्राप्त होता है, अरु जब चित्तका फुरना मिटि जाता है, तब यह शांतरूप अद्वैत स्थित होता है, जैसे राजाकी सेना युद्ध करती है, अरु जीत हार राजाकी होती है, तैसे चित्तके फुरणेद्वारा आत्माविषे बंध मोक्ष होता है, यद्यपि आत्मा सत्‌रूप अच्युत है, परंतु मन बुद्धि अंतःकरणद्वारा आत्माविषे बंधमोक्ष भासता है आत्मा सबका प्रकाशक है, जैसे चंद्रमाकी चांदनी वृक्षादिकको प्रकाशती है, तैसे आत्मा सर्व पदार्थको प्रकाशता है ॥ सो कैसा है न दृश्य है, न उपदेशका विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल अनुभव चेतनरूप आत्माकारि सिद्ध है ॥ न देह है, न इंद्रियगण है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पंद है, न अपरको स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत् है, न असत् है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देश काल वस्तु है, न अहं है, न इतर है, इत्यादिक सर्व शब्दते रहित हृदयस्थानविषे प्रकाशता है, अनुभवरूप है, तिसका न आदि है, न अंत है, न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाय सकता है, न जल गलाय सकता है, न यह है, न वह है, न वायु शोष सकता है, अपर किसीकी समर्थता नहीं; सो चित्तरूप आत्मतत्त्वहै, न जन्मता है, न मरता है, अरु देहरूपी घट कईबार उपजते हैं, कई बार नष्ट होते हैं, अरु आत्मरूपी आकाश सबके अंतर बाहिर अखंड अविनाशी है, जैसे अनेक घटविषे एकही आकाश स्थित होता है, तैसे अनेक पदापदार्थविषे एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप करके स्थित है ॥ हे रामजी ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है, सो सब ब्रह्मरूप है. कैसा ब्रह्म है, निर्धर्म निर्गुण है, निरवयव निराकार है, निर्मल निर्विकार है, आदि अंतते रहित सम शांतरूप है, ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इस दृष्टिको आश्रय करोगे तब बड़े आरंभ कार्य भी तुमको स्पर्श न करैंगे. जैसे आकाशको बादल स्पर्श नहीं करते हैं, तैसे तुमको कर्म स्पर्श न करैंगे काल क्रिया

कारण कार्य जन्म स्थिति संहार आदिक जो संसरणारूप संसार है, सो सब ब्रह्मरूप है, इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचरौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

स्मृतिविचारयोगवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब प्रत्यक् ब्रह्माविषे कोई विकार नहीं, तब भावअभावरूप जगत् किसकरि भासता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! विकार किसको कहते हैं, प्रथम तौ यह सुन, जो वस्तु अपने पूर्वरूपको त्यागिकरि विपर्ययरूपको प्राप्त होवै, अरु बहुरि पूर्वके स्वरूपको प्राप्त न होवै, तिसको विकार कहते हैं, जैसे दूधते दही होता है, वह बहुरि दूध नहीं होता, अरु जैसे बालक अवस्था बीति जाती है, बहुरि नहीं होता, अरु युवा अवस्था गई हुई बहुरि नहीं आती, तिसका नाम विकार है, अरु ब्रह्म निर्मल है, आदि भी निर्विकार है, अंत भी निर्विकार है, मध्य जो तिसविषे कछु विकार मल भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, मध्यविषे भी ब्रह्म अविकारि ज्योंका त्यों है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है, सो बहुरि अपने स्वरूपको नहीं प्राप्त होता, अरु ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप आत्मअनुभव करिकै प्रकाशती है, जो कबहूं अन्यथा रूपको प्राप्त न होवै, तिसको विकार कैसे कहिये ॥ हे रामजी ! जो वस्तुविचार ज्ञानकरिकै निवृत्त हो जावै, तिसको भ्रममात्र जानिये, वास्तव कछु नहीं, जेते कछु विकार हैं, सो अज्ञान करिकै भासते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब निवृत्त हो जाते हैं, जिसके बोधकरिकै विकार नष्ट हो जावै हैं, तिसविषे विकार कैसे करिये, जो ब्रह्म शब्दकरिकै कहाता है, सो निर्वेदरूप आत्मा है, जो आदि अंतविषे सत् होवै, सो मध्यविषे भी जानिये कि सत् है, इसते इतर होवै, सो अज्ञानकरि जानिये, आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है, आकाश

पवन भी अन्यभावको प्राप्त हो जाते हैं, परंतु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्यभावको प्राप्त नहीं होता, प्रकाशरूप है, अरु एक नित्य है, निर्विकार ईश्वर है, भाव अभाव विकारको कदाचित् नहीं प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विद्यमान एक तत्त्व है, सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है, तिस संवित् ब्रह्मविषे यह अविद्या कहांते आई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म था, अरु पाछेभी ब्रह्म होवैगा, तिस निर्विकार आदि अंत मध्यते रहित ब्रह्मविषे अविद्या कोई नहीं, यह निश्चय है, जिसको वाच्य वाचक कर्मकरि उपदेशनिमित्त ब्रह्म कहता है, तिसविषे अविद्या कहां है ॥ हे रामजी! अहं त्वं आदिक जगद्भ्रम अग्नि वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है, अपर अविद्या रंचकमात्र भी नहीं, जिसका नामही अविद्या है, सो भ्रममात्र असत् जान, जो विद्यमान नहीं है, तिसका नाम क्या कहिये॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! उपशम प्रकरणविषे तुमने क्यों कहा? कि अविद्या है, अब इसप्रकार कैसे कहते हौ, कि विद्यमान नहीं है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एते कालपर्यंत तू अबोध था, तिसनिमित्त मैं कल्पकरि तुझको युक्ति कही थी, सो तेरे जगावनेनिमित्त कही थी, अरु अब तू प्रबुद्ध हुआ है, तब मैं कहा अविद्या अविद्यमान है ॥ हे रामजी! अविद्या अरु जीव जगत् आदिकका क्रम अप्रबोधको जगावनेनिमित्त वेदवादीने वर्णन किया है, जबलग अप्रबोध मन होता है, तबलग इसको अविद्याभ्रम है, सो युक्तिविना अनेक उपायकरि भी बोधवान् कदाचित् नहीं होता, अरु जब बोधवान् होता है, तब सिद्धांत उपदेशसों युक्तिविना भी पाय लेता है, अरु अबोध मन युक्तिविना पाय नहीं सकता ॥ हे रामजी! जो कार्य युक्तिकरि सिद्ध होता है, अपर यत्नकरि साध्य नहीं जाता, जैसे अंधकार युक्तिरूपी दीपककरि दूर होता है, अपर बल यत्नकरि निवृत्त नहीं होता, तैसे युक्तिविना अपर यत्नकरि अज्ञाननिद्रा निवृत्त नहीं होती, जो अप्रबोधको सर्व ब्रह्म सिद्धांतका उपदेश करिये, तब वह व्यर्थ होता है, जैसे कोई दुःखी अपना दुःख स्थाणुके आगे जाय कहै तब उसका कहा वह सुनता नहीं,

उसका कहना भी वृथा होता है, तैसे अप्रबुद्धको सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होता है, ताते मूढको युक्तिकरि जगावता है, अरु बोधवान्को प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश करता है ॥ हे रामजी ! एता काल तू अप्रबोध था, इस कारणते मैं तुझको नानाप्रकारकी युक्ति उपदेशकारि जगाया है, अब तू जागा है, तब मैं तुझको प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश किया है ॥ हे रामजी ! अब तू ऐसे धार कि, मैं ब्रह्म हौं, यह तीनों जगत् भी ब्रह्म हैं, अहंत्वं आदिक सब ब्रह्महैं, द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे धारिकरि जो तेरी इच्छा होय सो कर, दृश्य संवेदन फुरै नहीं, सदा आत्माविषे स्थित रहै, इसप्रकार अनेक कार्यविषे भी लेप न होवैगा ॥ हे रामजी ! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है, सो सदा अहंभावकरिकै फुरता है, ऐसा जो अनुभवरूपहै, चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते तिसीविषे स्थित रहु तब अहं ममभाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, अवेदन जो शांतरूप ब्रह्म सर्व भूतविषे स्थित है, तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब आदि अंतते रहित प्रकाशरूप आपको देखैगा, शुद्ध संवित्मात्र आत्माको देखैगा, जैसे मृत्तिकाके पात्र टिंड, दोली घट आदिक सब मृत्तिकाका अपना आप है, तैसे तू सर्वभूत आत्माको देखैगा, जैसे मृत्तिकाते घट भिन्न नहीं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, जैसे वायु अरु स्पंद भिन्न नहीं, अरु जलते तरंग भिन्न नहीं तैसे आत्माते प्रकृति भिन्न नहीं. जैसे जल अरु तरंग शब्दमात्र दो हैं, तैसे आत्मा अरु प्रकृति शब्दमात्र दो हैं, भेदभाव कछु नहीं, अज्ञानकरिकै भेद भासता है, ज्ञानकरिकै भेद नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे प्रकृति है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी वृक्ष है, अरु कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोता है, तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है, तिसते भावरूप संसार उत्पन्न होता है, जब आत्मज्ञानकरिकै कल्पनारूपी बीज दग्ध होता है, तब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी अंकुरते सुखदुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जावै, तब सुखदुःखरूपी वृक्ष कहां उपजै ॥ हे रामजी ! जेता कछु द्वैतभ्रम है सो अबोधकरि उपजता है, बोधकरि

नष्ट हो जाता है, आत्मा जो परमार्थसार है, तिसकी भावना करु, संसारभ्रमते मुक्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृतिविचारयोगवर्णनं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

संवेदनविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु जानने योग्य था, सो मैंने जाना है, अरु जो कछु देखने योग्य था, सो देखा है, अब मैं तुम्हारे ज्ञानरूपी अमृतके सिंचने करिकै परमपदविषे पूर्ण आत्मा हुआ हौं ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्णने सब विश्व पूर्ण करी है, पूर्णते पूर्ण प्रतीत करी है, पूर्णविषे पूर्णही स्थित हैं, अपर द्वैत कछु नहीं, यह मुझको अब अनुभव भया है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे मैं जानिकरि लीलाके निमित्त अरु बोधकी बुद्धिके निमित्त तुमसों पूँछता हौं, ज्यों बालक पितासों पूंछता है, तब पिता उद्वेग नहीं करता, तैसे तुम उद्वेगवान् नहीं होना ॥ हे मुनीश्वर ! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना, घ्राण पांचों इंद्रियें प्रत्यक्ष दृष्ट आतीं है, जब यह मरजाता है, तब तिस कालविषे विषयको ग्रहण क्यों नहीं करती, अरु जीवते कैसे ग्रहण करती हैं, अरु मुए क्यों नहीं ग्रहण करती हैं, अरु घटादिककी नाईं जड बाह्यस्थित है, अंतर इनका अनुभव कैसे होता है, लोहेकी शलाकावत् यह भिन्न भिन्न हैं, इनका इकट्ठा होना कैसे हुआ है, परस्पर जो एक आत्मकरि अनुभव होता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, इत्यादिक इकट्ठी वृत्ति क्योंकरि हुई है, मैं समान करिकै जानता ही हौं, परंतु विशेषकरि तुमसों पूँछता हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इंद्रियां अरु चित्त अरु घट पट आदिक पदार्थ हैं, सो निर्मल चेतनरूप आत्माते भिन्न नहीं, आत्मतत्त्व आकाशते भी सूक्ष्म स्वच्छ है ॥ हे रामजी ! जब चेतनतत्त्वते चैत्यता पुर्यष्टकाकी भावना फुरी है, तब आगे इंद्रियगणसहितहू देखती भई, तब चित्तके आगे इंद्रियगण हुए हैं, इनकी घनताकरिकै चेतनतत्त्व पुर्यष्टका

भावको प्राप्त हुआ है, तिसविषे सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिंबित हुए हैं पुर्यष्टकाविषे भासें हैं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! अनंत जगत् जो रचे हैं, अरु महाआदर्शविषे प्रतिबिंबित हैं, तिस पुर्यष्टकाका रूप क्या है, अरु कैसे हुई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि अंतते रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, सो निरामय है, अरु प्रकाशरूप हैं, कल्पनाते रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, कलनाते रहित शुद्ध चिन्मात्र अचेतन है, सो सब कलनाके सन्मुख हुआ तब तिसका नाम जीव कहा, सो जीव देहको चेतता भया, जब अहंभाव फुरा, तब अहंकार हुआ, जब मनन करने लगा, तब मनन हुआ, जब निश्चय करने लगा, तब बुद्धि हुई, अरु परमात्माके देखनेवाली इंद्रियोंकी भावना हुई, तब इंद्रिया भई जब देहकी भावना करने लगा, तब देह हुई, घटपटकी भावना हुई तब घटपट हुए, इसीप्रकार जैसी जैसी भावना होती गई, तैसेही पदार्थ होते गये ॥ हे रामजी! यह स्वभाव जिसका है, तिसको पुर्यष्टका कहते हैं, स्वरूपते विपर्ययरूप जो दृश्यकी ओर भावना भई है, अरु कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख आदिककी भावनाकलना अभिमान जो चित्तकलाविषे हुआ इसकरि तिसको जीव कहते हैं, जैसी जैसी भावनाका आकार हुआ तैसी तैसी वासना करत भया, जैसे जलकरि सिंचा हुआ बीज टास पत्र फूल फल भावको प्राप्त होता है, तैसे वासनाकरि सिंचा हुआ स्वरूपके प्रमादकरि महाभ्रमजालविषे गिरता है, ऐसे जानता है कि, मैं मनुष्य देह सहित हौं, अथवा देवता हौं, स्थावर हौं, इत्यादिक देहको पायकरि देहसाथ मिला हुआ जानता है. ऐसे नहीं जानता कि, मैं चिदात्मा हौं, देहसाथ मिला हुआ परिच्छिन्न तुच्छरूप आपको देखता है, इस मिथ्या ज्ञानकरिकै डूबता है, देहविषे अभिमानकरिकै वासनाके वश हुआ चिरपर्यंत अध ऊर्ध्व मध्यविषे यह जीव भ्रमता है, जैसे समुद्रविषे आया हुआ काष्ठ तरंगकरि उछलता है, अध उर्ध्वको जाता है, जैसे घटीयंत्रके टिंड अध ऊर्ध्वको जाते हैं, तैसे जीव वासनाके वशते अध ऊर्ध्वको भ्रमताहै, अरु जब विचार अभ्यासकरिकै आत्मबोधको प्राप्त होता है, तब संसारबंधनते मुक्त होता है, आदिअंतते

रहित जो आत्मपद है, तिसको प्राप्त होता है, बहुत काल योनिको भोगिकै आत्मज्ञानके वशते परमपदको प्राप्त होताहै ॥ हे रामजी ! स्वरूपते गिरे हुए जीव इसप्रकार भ्रमते हैं, अरु शरीरको पाते हैं, अब यह सुन कि, इंद्रियां मृतक हुए विषयको किसनिमित्त ग्रहण नहीं करतीं ॥ हे रामजी ! जब शुद्ध तत्त्वविषे चित्तकलना फुरती है, तब वह जीवरूप होती है, बहुरि मनसहित षट् इंद्रियोंको लेकरि देहरूपी गृहविषे स्थित होती हैं, तब बाह्य विषयको ग्रहण करतीहै, मनसहितषट् इंद्रियके संबंधकरि विषयका ग्रहण होता है, इनते रहित विषयको कदाचित् नहीं ग्रहण करती इसप्रकार इनविषे स्थित होकरि जीवकला विषयको ग्रहण करती है, यद्यपि इंद्रियां भिन्न भिन्न हैं, तौ भी इनको एकताकरि लेती हैं, इनका इकट्ठा होना अहंकाररूपी तागेकरि होता है, देह इंद्रियां माणिक्यकी नाईं हैं, इनको इकट्ठा करिकै जीव कहता है, मैं देखता हौं, मैं सूँघता हौं, सुनता हौं, मैं बोलता हौं, इत्यादिक इनके अभिमान करिकै विषयको ग्रहण करता है ॥ हे रामजी ! देह, इंद्रियां, मन आदिक जड हैं, परंतु आत्माकी सत्ता पायकरि अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, जबलग पुर्यष्टका देहविषे होती है, तबलग इंद्रियां विषयको ग्रहण करती हैं, जब पुर्यष्टका देहसों निकस जाती है, तब इंद्रियां विषयको नहीं ग्रहण करतीं ॥ हे रामजी ! यह जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा, त्वचा, भासती हैं, सो यह इंद्रियां नहीं, इंद्रियां सूक्ष्म तन्मात्रा हैं, यह तिनके रहनेके स्थान हैं, जैसे गृहविषे झरोखे होते हैं, तैसे यह स्थान हैं, अरु जीवका रूप सुन ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व सब ठौर पूर्ण है, परंतु तिसका प्रतिबिंब तहां भासता है, जहां निर्मल ठौर होती है. जैसे जल निर्मलविषे प्रतिबिंब होता है, अरु जैसे दो कुंडे होवैं; एक जलकरि पूर्ण होवै, दूसरा जलते रहित होवै, तब सूर्यका प्रकाश दोनोंविषे तुल्य होता है, परंतु जिसविषे जल है, प्रतिबिंब तहांही होता है, जलके डोलनेकरि प्रतिबिंब भी हलता दृष्ट आताहै, जहां जल नहीं, तहां प्रतिबिंब भी नहीं तैसे जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है, तहां आत्माका प्रतिबिंब

जीव भी होता है, सो जबलग शरीरविषे होता है, तबलग शरीर चेतन भासता है, जब वह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीरको त्यागि जाती है, तब शरीर जड़ भासताहै, जैसे कुंडेते जल निकसि जावै, तब कुंड सूर्यके प्रतिबिंबते हीन भासता है, तैसे अंतःकरण अरु तन्मात्रा पुर्यष्टकाविषे आत्माका प्रतिबिंब होता है, जब पुर्यष्टका शरीरको त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे झरोखे आगे कोऊ पदार्थ राखिये तब झरोखेको पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जब उसका स्वामी आनि देखता है, तब पदार्थको ग्रहण करता है, तैसे इंद्रियोंके स्थानविषे सूक्ष्म तन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है, तब विषयको ग्रहण करती है, जब तन्मात्रा नहीं होती, तब इंद्रियां नहीं ग्रहण कर सकतीं ॥ हे रामजी ! प्रत्यक्ष देख, जो कोऊ कथाका श्रोता पुरुष कथाविषे बैठा होताहै, अरु चित्त उसका अपर ठौर निकस जाता है, तब प्रत्यक्ष बैठा है, परंतु सुनता कछु नहीं. काहेते कि, श्रवण इंद्रिय मनकेसाथ गईहै, जैसे जब पुर्यष्टका निकसि जाती है, तब मृतक होता है. इंद्रियां विषयको ग्रहण नहीं करतीं ॥ हे रामजी ! अहंममसे आदि लेकरि जो दृश्य सो भी है, स्वर्गके आदिविषे आत्मरूपी समुद्रते तरंगवत् फुरीहै, तिसकरि आगे दृश्य कलना हुई है, सो न देश है, न कालहै, न क्रिया है, यह सब असत्‌रूप है, वास्तवते कछु नहीं, ऐसे जानिकरि असंगविचरु, संसारके सुखदुःख हर्ष शोक रागद्वेषते रहित होकरि विचरु, तब तू मायाको तरि जावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संवेदनविचारवर्णनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वास्तवते इंद्रियादिक गण कछु उपजे नहीं, जैसे आदि कमलजन्य ब्रह्माकी उत्पत्ति मैं तुझको कहीहै, सो सब तुझने सुनी है, जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है, तैसे अपर

भी उपजे हैं ॥ हे रामजी ! जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकारि जैसी जैसी भावना करता गया है, तैसे तैसे भासने लगा है, बहुरि तिसकी सत्ता पायकरि अपने अपने विषयको ग्रहण करने लगेहैं, अरु वास्तवते इंद्रियां भी कछु वस्तु नहीं, सब आत्माके आभासकरि फुरतीं हैं, इंद्रियां अरु इंद्रियके अर्थ यह संवेदनते उपजे हैं, जैसे उपजे हैं, तैसे तुझको कहे हैं ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित् सत्तामात्रविषे जो अहं उल्लेख हुआ है, सो संवेदन हुई है, वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टकाभावको प्राप्त होकारि बुद्धि मन अरु पंचतन्मात्राको उपजायकारि जीवकला आपही तिनविषे प्रवेशकारि स्थित भई है, तिसको पुर्यष्टका कहते हैं, परंतु यह उपजी भी स्पंदविषे है; आत्माविषे उपजना कछु नहीं, सो आत्मा न एक है, न अनेक हैं, परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है, अरु वेदना भी तिसविषे अनन्यरूप है ॥ हे रामजी ! तिसविषे न कोऊ द्वैतकलना है, न कछु मनशक्ति है, केवल शांतसत्ता है, तिसको परमात्मा कहते हैं, सो मनसहित षट् इंद्रियोंते अतीत है, अचेतन चिन्मात्र है, तिसते जीव उत्पन्न हुआ है, यह भी उपदेशके निमित्त कहता हौं, वास्तवते कछु उपजा नहीं, केवल भ्रममात्र है, जहां जीव उपजा है, तहां तिसको अहं-भाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है, सो उपदेशकारि उपदेशको पाए लीन हो जाती है, जैसे निर्मलकारि जलकी मलिनता लीन हो जाती है, तैसे गुरु अरु शास्त्र उपदेशको पायकरि अविद्या लीन हो जाती है, तब भ्रमरूप आकार शांत हो जाते हैं, ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे परमाणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तैसे आत्माके आगे आकाश स्थूल है ॥ हे रामजी ! आत्माके आगे जो स्थूलता भासती है, सो भ्रममात्र है, जो बडे उदार आरंभ भासते हैं, सो असत हैं, तब अपर पदार्थकी क्या बात है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु नहीं पाया जाता. काहेते कि, जो वस्तु असम्यक् ज्ञानकारिके भासती है, सो सम्यक् ज्ञानकारि नहीं पाई जाती, जेते कछु जगज्जाल भासते हैं, सो सब मायामात्र हैं, अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाका जल तनक पान किया नहीं जाता तैसे

जगत्के पदार्थकरि कछु परमार्थ सिद्ध नहीं होता. सब अज्ञानकरिकै भासते हैं ॥ हे रामजी ! जो वस्तु सम्यक् ज्ञानकरि पाइये सो सत् जानिये, जो सम्यक् ज्ञानकरि न रहे, सो भ्रममात्र जानिये यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रम है, असत्‌ही सत् हो भासता है. जब गुरु अरु शास्त्रोंका विचार होता है. तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, अरु पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी भावना करता है, तैसी सिद्ध होती है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पता है; तैसे जीवकला अपने आपविषे देश काल तत्त्व आदिक कल्पती है भावनाके अनुसार तिसको भासते हैं, जैसे बीजते पत्र टास फूल फलादिक विस्तार होता है, तैसे तन्मात्राते अपर भूतजात सब अंतर बाहर देश काल क्रिया कर्म हुआ है, आदि जीव फुरिकरि जैसा संकल्प धारता भया है, तैसे हो भासा है. सो यह संवेदन भी आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे मिर्च अरु तीक्ष्णता अनन्यरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता अनन्यरूप है, तैसे आत्मविषे संवेदन अनन्यरूप है. तिस संवेदनने उपजिकरि निश्चय धारा कि, यह पदार्थ ऐसे हैं, यह ऐसे होवें, हो तैसेही स्थितहैं, अन्यथा कदाचित नहीं होते, आदि जीव फुरिकरि जैसा निश्चय धारा है, तिसीका नाम नीति है, अरु स्वरूपते सर्व आत्मसत्ता है, आत्मसत्ताही रूप धारिकरि स्थित भई है, जैसे एकही गन्नेका रस शक्करखंडादिक आकारको धारता है, जैसे एक मृत्तिका घट मठ टिंडादिक आकारको धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व नानको धारती है, जैसे एकही जलका रस पत्र टास फूल फलादिक होकरि भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता घट पट कंध आदिक आकार हो भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे आदि जीव निश्चय किया है, तैसेही स्थित है; अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परंतु जगत् कालविषे ऐसे है वास्तवते न बिंब है, न प्रतिबिंब है, यह द्वैतविषे होते हैं. सो द्वैत कछु नहीं, केवल चिदानंद ब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, देहादिक भी सब चिन्मात्र हैं ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माका अकिंचनरूप है, जैसे जेवरी सर्परूप भासतीहै, तैसे आत्मा जगतरूप हो भासताहै, जैसे स्वर्ण भूषण हो भासता है, तैसे आत्मा दृश्यरूप हो भासता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु

वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे दृश्य वास्तव नहीं जैसे स्वप्न पतन असत्‌ही सत् हो भासता है, तैसे जीवको देह अपर भासता है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, परंतु फुरणेकरि अनेकरूप धारती है जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धरता है, तैसे आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकारको धारती है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनेकरूपधारी चेष्टा करता है, तैसे जगत्‌विषे नानारूपको धारता है ॥ हे रामजी! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वका अपना आप है, अपने स्वरूपके प्रमादकरि आपकरि आपका जन्ममरण जानता है, सो जन्ममरण असत्‌रूप है, जैसे कोऊ पुरुष आपको स्वप्नविषे श्वानरूप देखै, तैसे यह आपको जन्मता मरता देखता है, जैसे जैसे इसको पूर्व भावना है, भ्रमकरिकै असत्‌को सत् जानता है, जैसे स्वप्नविषे वस्तुको अवस्तु, अरु अवस्तुको वस्तु देखता है, तैसे जाग्रत्‌विषे विपर्यय देखता है, जैसे जाग्रत्‌के ज्ञानते स्वप्न-भ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानते जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म किया होवै, अरु तिसके पाछे सुकृत कर्म करै, तब वह आच्छादित हो जाता है, तैसे पूर्व संस्कार जब नीच वासना होती है, अरु पाछे आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब पुरुष प्रयत्न करिकै मलिन वासना नष्ट हो जाती है, जबलग वासना मलिन होती है, तबलग उपजता विनशता गोता खाता है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रहूके विचारकरि आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारबंधनते छूटता है, अन्यथा नहीं छूटता ॥ हे रामजी! चित्त वासनारूपी कलंककरि जीव आवरा है, देहरूपी मंदिरविषे बैठकरि अनेक भ्रमको देखता है भ्रम-आदिक जीवको फुरा है, सो अपने स्वरूपको त्यागिकरि अनात्मभ्रमको देखता भया है जैसे बालक परछाईंविषे भूत कल्पै, तैसे कल्पिकरि जैसी भावना करि, तैसा भासने लगा, आदि जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित हुआ है, पुर्यष्टका कहिये बुद्धि मन अहंकार अरु तन्मात्रा इनका नाम पुर्यष्टका है, अरु अंतवाहक देह है, चैतन्य आत्मा अमूर्त है, आकाश भी तिसके निकट स्थूल है, प्राण वायु गुच्छेके समान है, देह सुमेरुके समान है ऐसा सूक्ष्म जीव है, सुषुप्त जडरूप अरु स्वप्नभ्रम

दोनों अवस्थाविषे स्थावर जंगमरूपी जीव भटकते हैं, कबहूं सुषुप्तिविषे स्थित होते हैं, कबहूं स्वप्नविषे स्थित होते हैं इसप्रकार दोनों अवस्थाविषे जीव भटकते हैं, ॥ हे रामजी ! सर्वका देह अंतवाहक है, तिसी देहकरि चेष्टा करते हैं, कबहूं स्थावरविषे जाते हैं, तब वृक्ष पत्थरादिक योनिको पाते हैं, जब स्वप्नविषे होते हैं, तब जंगम योनिको पाते हैं, सो भी कर्मवासनाके अनुसार पाते हैं, जब तामसी वासना घन होती है तब कल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूपको प्राप्त होते हैं, जब केवल तामसी घन मोहरूप होती है तब अपर वृक्ष पत्थरादिक योनिको पाते हैं इसका नाम सुषुप्ति है, सो लयघन मोहरूप है, अरु इसते इतर विक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कबहूं तिसविषे होता है, कबहूं सुषुप्तिरूप स्थावर होता है ॥ हे रामजी ! सुषुप्ति अवस्थाविषे वासना सुषुप्तिरूप होती है, सो बहुरि उगती है, इसकरिकै मोहरूप है, अरु तिस सुषुप्तिते जब उतरता है, तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है, जब बोध होवै, तब जाग्रत् अवस्थाको पावै, सो जाग्रत् दो प्रकारकी है, सोई जाग्रत् है, जो लय अरु विक्षेपताते रहित चेतन अवस्था है, तिसते रहित अपर मनोराज्य सब स्वप्नरूप हैं, एक जीवन्मुक्ति जाग्रत् है, दूसरी विदेहमुक्ति है, जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है, विदेहमुक्ति तुरीयातीत है, यह अवस्था जीवको बोधकरि प्राप्त होती है, अरु बोध पुरुष प्रयत्नकरि होता है, अन्यथा नहीं होता ॥ हे रामजी ! जीवका फुरणा ज्ञानरूप है, जब दृश्यकी ओर लगता है, तब वहीरूप हो जाता है अरु जो सत्की ओर लगता है, तब सत्रूप हो जाता है, जब दृश्यके सन्मुख होता है, तब दीर्घ भ्रमको देखता है, जीवके अंतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है, सो भी आत्मसत्ताते इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे बटलोहीविषे दाणेवत् जल उछलता है, सो जलते इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे आत्माविना जीवके अंतर कछु अपर वस्तु नहीं, अपर सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है॥ हे रामजी ! जीवको स्वरूपके प्रमादकरिकै सृष्टि भासती है, जो सत्वत् हो गई है, तिसकरि नानाप्रकारका विश्व भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना फुरती है, तिसकरि बंधमान हुआ है, जब वासना क्षय होवै, तब

मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी ! घनवासना मोहरूपका नाम सुषुप्ति जड अवस्था है, अरु क्षीण स्वप्नरूप है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब दृश्यविषे सद्बुद्धि होती है, तिसविषे प्रतीति होती है, तब नानाप्रकारकी वासना उदय होती है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब संसारसत्यता नाश हो जाती है, बहुरि वासना नहीं फुरती ॥ हे रामजी ! घनवासना तबलग फुरती है, जबलग दृश्यकी सद्बुद्धि होती है, जब जगत्का अत्यंत अभाव हुआ, तब वासना भी नहीं रहती, जैसे भूषण गालीकारि स्वर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, जो अज्ञानकारि वस्तु उपजी है, सो ज्ञानकारि लीन हो जाती है, सो वासनाभ्रम अबोधकारि उपजा है, बोधते लीन हो जाती है ॥ हे रामजी ! घनवासनाकारि सुषुप्ति जड अवस्था होती है, अरु तनु वासनाकारि स्वप्न देखता है, घन वासना मोहकारि जीव स्थावर अवस्थाको प्राप्त होता है, अरु मध्य वासनाकरी तिर्यक् योनि पशु पक्षी सर्पादिकको प्राप्त होता है, अरु तनु वासनाकारि मनुष्यादिक शरीरको पाता है, अरु नष्ट वासनाकारि मोक्षको पाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्पकारि रचा है, जो बाह्य घट पट आदिक देखता है, अरु ग्रहण करता है, सो एक अंतर देहविषे स्थित होकारि वही बाह्य घट पट आदिक होकारि स्थित होता है, तिनको ग्रहण करता है, ग्राह्यग्राहकका संबंध देखता है, यह मैं ग्रहण किया है, यह मैं लिया है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो न ग्रहण करनेका अभिमान करता है, न कछु त्यागनेका अभिमान करता है, तिसको अंतर बाहर सब चिदाकाश भासना है, चेतनसत्ता यह चमत्कार है, तीनों जगत्रूप होकारि वही प्रकाशता है, रंचकमात्र भी कछु अन्य नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होकारि भासते हैं, परंतु जलही जल है, जलते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जगत्रूप होकारि भासता है, अपर द्वैतवस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

नारायणावतारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस जीवको स्वप्नविषे संसार उदय होता है, सो कल्पनामात्र होता है, न सत् है, न असत है, जीवको एक फ़ुरणेकारि भ्रम भासता है तैसे यह जाग्रत्अवस्था भ्रममात्र है, स्वप्न अरु जाग्रत् एकरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत्का एक क्षण भी दीर्घकाल होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकारि जाग्रत् भी दीर्घकाल भ्रम हुआ है, सत्को असत् जानता है, अरु असत्को सत् जानता है, जड़को चेतन जानता है, अरु चेतनको जड़ जानता है, विपर्यय ज्ञानकारिकै इसप्रकार जानता है, जैसे स्वप्नविषे एकही जीव अनेकताको प्राप्त होता है, तैसे जीव आदिक एकते अनेक होकारि भासता है, जैसे स्थाणुविषे चोरभ्रम भासता है, तैसे आत्माविषे तीनों जगद्भ्रम भासते हैं, जैसे सुषुप्तिते स्वप्नभ्रम उदय होना है, तैसे अद्वैततत्त्व आत्माविषे जगद्भ्रम होता है, आत्मा अनंत सर्वगत है, जीवका बीजरूप है, जैसा तिसके आश्रय फ़ुरणा होना है, तैसा सिद्ध होकारि भासता है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको स्वरूपकी स्थिति भई है, सो सदा निःसंग होकारि विचरते हैं, जैसे पुंडरीकाक्ष विष्णुजी निःसंगता उपदेश करैगा, तिसको पायकारि अर्जुन मुक्त होकारि विचरैगा, तैसे हे महाबाहो ! तुम भी विचरौ ॥ हे रामजी ! पांडवका पुत्र अर्जुन नाम जैसे सुखसाथ जीवना व्यतीत करैगा, सर्व व्यवहारविषे भी सुखी स्वस्थ रहैगा, तैसे तू भी निःसंग होकारि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! पांडवका पुत्र अर्जुन कब होवैगा, अरु कैसे विष्णुजी तिसको निःसंग उपदेश करैगा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अस्ति तन्मात्र जो तत्त्व है, जिसविषे आत्मादि संज्ञा कल्पिकारि कही है, सो आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, आदि अंतते रहित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे निर्मलतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रममात्र

फुरता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण फुरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात फुरते हैं, इस संसारजालविषे भूतप्राणी भ्रमते हैं, जैसे पक्षी जालविषे भ्रमते हैं, तैसे जगत्‌विषे जीव भ्रमते हैं, चंद्रमा सूर्य लोकपाल होकरि स्थित हैं, पंच भूतका कर्म तिनने रचा है, कि यह पुण्य ग्रहण करने योग्य है, यह पाप त्यागने योग्य है, पुण्यकरि स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है, पापकरि नरक प्राप्त होता है, यह मर्यादा लोकपालने स्थापन करी है, इसप्रकार संसाररूपी नदीविषे बहते हैं, कैसी संसारूपी नदी बहती है, अविच्छिन्नरूप भासती है, अरु नाशरूप क्षणक्षणविषे नष्ट होती है, जैसे नदीका वेग समान प्रवाह करिकै वही भासताहै, परंतु होता अपर है, क्षणक्षणविषे वह प्रथम जाता रहता है, तैसे संसार अपने कालविषे अविच्छिन्नरूप सत् भासताहै, अरु आत्माकी अपेक्षाकरिकै नाशरूप है, क्षणक्षणविषे नष्ट होता है, तिस जगत्‌विषे वैवस्वत सूर्यका पुत्र यमराज लोकपाल बडा प्रतापवान् स्थित है, सो बड़ा तेजवान् है, अरु सब जीवको मारता है, ऐसे नेमको धारिकरि प्रजाविषे स्थित है, आदि प्रवाह इसप्रकार हुआ है, तिस प्रति प्रवाह कार्यके कर्मविषे स्थित है, जीवको मारना अरु दंड करना यही उसका नेम है, अरु चित्तविषे पहाडकी नाईं स्थित है, सो यमराज चारों चारों युगनप्रति एक नेमको धारता है, कि किसी जीवको मारना नहीं, कबहूं अष्टवर्ष, कबहू बारह वर्षका नेम धारताहै, कबहू सप्तवर्ष, कबहू षोडशवर्षका नेम धारता है, तब उदासीनकी नाईं स्थित होता है, किसीको नहीं मारता ॥ तब पृथ्वीविषे निरंध्रभूत हो जाता है, चलनेको मार्ग नहीं रहता, तब कई दुष्ट जीव होते हैं, जो जीवको दुःख देते हैं, तिसकरि पृथ्वी भारी होती है, अरु दुःखी होती है, तिस पृथ्वीके भार उतारनेनिमित्त विष्णुजी अवतार धारिकरि दुष्ट जीवको नाश करता है, अरु धर्ममार्गको दृढ करता है ॥ हे रामजी! इसप्रकार नेमको धारणेहारे यमको अनंत युग अपने व्यवहारको करते व्यतीत हो गये हैं, भूत अरु जगत् अनेक हो गये हैं,

इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यम है, सो आगे नेम करैगा, द्वादश वर्षपर्यंत किसीको न मारैगा ऐसा नेम करैगा तब जीव क्रूर कर्मोंको करने लगैंगे, पृथ्वी भूतोंसाथ निरंध्र हो जावैगी, जैसे वृक्षसाथ गुच्छे संघट्ट हो जाते हैं तैसे पृथ्वी प्राणीसाथ संघट्ट हो जावैगी, तब पृथ्वी भारसाथ दुःखित होकारि विष्णुजीकी शरण जावैगी, जैसे चोरते डरिकारि स्त्री भर्त्ताकी शरण जावै, तैसे पृथ्वी विष्णुकी शरण जावैगी, तब विष्णु दो देहको धारिकारि पृथ्वीका भार उतारैगा, अरु सन्मार्ग स्थापन करैगा, अरु सब देवता अवतार धारिकारि साथ आवैंगे, नरोंविषे नायकभावको प्राप्त होवैगा, एक देहकारि वसुदेवके गृहविषे पुत्ररूप कृष्ण नाम होवैगा, अरु दूसरि देहकारि पांडवके गृह अर्जुन नाम होवैगा, युधिष्ठिर नाम धर्मका पुत्र होवैगा, समुद्र जिसकी मेखला है, ऐसी जो पृथ्वी है, तिसका राज्य करैगा, पांडवका पुत्र धर्मका वेत्ता तिसके चाचेका पुत्र दुर्योधन नाम होवैगा, तिसका अरु भीमका बडा युद्ध होवैगा, दोनों ओर संग्रामकी लालसा होवैगी, अठारह अक्षौहिणी सैन्य इकट्ठा होवैगा, तिसविषे बड़ा भयानक युद्ध होवैगा, तिनके बलकारि हरि पृथ्वीका भार उतारैगा॥ हे रामजी ! तिस सैन्यके युद्धविषे विष्णुका जो अर्जुन नाम देह होवैगा, सो गांडीव धनुष धरैगा, सो प्रकृत स्वभावविषे स्थित होवैगा; हर्ष शोकादिक विकारसंयुक्त निर्धर्मा होवैगा, सो युद्धविषे अपने बांधव संबंधीको देखिकारि मूर्च्छित होवैगा, मोह कायरताकारि तिसके हाथते धनुष गिर पडैगा, अरु आतुर होवैगा, तब बोध देहकारि तिसको हरि उपदेश करैगा, दोनों सैन्यके मध्यविषे जब अर्जुन मोहित होकारि गिरैगा, तब हरि कहैगा, हे राजसिंह अर्जुन ! तू मनुष्यभावको क्यों प्राप्त हुआ है, अरु मोहित क्यों हुआ है, इस कायरताका त्याग करु, तू परम प्रकाश आत्मतत्त्व है, सर्वका आत्मा तू आनंदअविनाशी है, आदि अंत मध्यते रहित है, वृथा कायरताको प्राप्त क्यों हुआ है, सर्वव्यापी परम अंकुररूप है अरु निर्मल है, दुःखके स्पर्शते रहित है, नित्य शुद्ध निरामय है॥ हे अर्जुन ! आत्मा न जन्मता है, न मरता है, होयकारि बहुरि कछु अपर

नहीं होता, काहेते जो अज है, नित्य है, निरंतर पुरातन है सर्वकी आदि है, तिसका शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नारायणावतारवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

अर्जुनोपदेशवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! जो इस आत्माको हंता मानते हैं, कई हननक्रिया कर्त्ता है; अरु इस आत्माको हत होता मानते हैं, सो आत्माको नहीं जानते, न यह आत्मा मारता है, न मरता है, काहेते मारता मरता नहीं, जो अक्षयरूप है, अरु निराकार आकाशते भी सूक्ष्म है, तिस आत्मा परमेश्वरको कौन किसप्रकार मारै॥हे अर्जुन ! तू अहंकाररूप नहीं, इस अनात्म अभिमानरूपी मलका त्याग करु, तू जन्ममरणते रहित मुक्तिरूप है ॥ जिस पुरुषको अनात्मविषे अहंभाव नहीं अरु बुद्धि जिसकी कर्तृत्वभोक्तृत्वविषे लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष सब विश्वको मारे तौ भी उनको नहीं मारता, न बंधमान होता है ॥ हे अर्जुन ! जिसको जैसा दृढ निश्चय होता है, तैसाही तिसको अनुभव होता है, ताते यह मैं मेरा जो मलिन संवित्‌निश्चय होता है, तिसका त्यागकरि स्वरूपविषे स्थित होउ, जो ऐसी भावनाविषे स्थित नहीं होते, अरु आपको नष्ट होता मानते हैं, सो सुखदुःख करिकै रागद्वेषविषे जलते हैं ॥ हे अर्जुन ! अपने गुणोंके असंख्य कर्मोंविषे वर्तते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनते पांचों तत्त्व, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उपजे हैं, तिन भूतोंके अंश श्रवण त्वचा नेत्र जिह्वा नासिका विषयविषे स्थित हैं, वह अपने विषयको ग्रहण करते हैं, नेत्र रूपको ग्रहण करते हैं, त्वचा स्पर्शको, जिह्वा रसको, नासिका गंधको, श्रवण शब्दको ग्रहण करते हैं, तिसविषे अहंकारकरि जो मूढ हुआ है, सो आपको कर्ता मानता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, गंध लेता हौं ॥ हे अर्जुन ! यह सब कर्म कलना करिकै रचे हैं,सो इंद्रियकरि कर्म होते हैं,अहंभावकरि यह वृथा क्लेशका

भागी होता है, बहुत मिलिकरि कर्म किया, अरु तिसविषे एकही अभिमानी होकरि दुःख पाता है, सो बडा आश्चर्य है, देह इंद्रियकरि कर्म होते हैं अरु अभिमानी होकरि सुखदुःखविषे रागद्वेष होकरि जीव जलता है, ताते इनका संग अभिमान त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ, मनकरि बुद्धिकरि केवल इंद्रियोंकरि योगी कर्म करता है, अरु तिनविषे अभिमानवृत्ति नहीं करता, निःसंग होकरि करता है, तिसकी आत्मपदकी सिद्धताका कारण होते हैं ॥ हे अर्जुन ! इस जीवको अहंकारही दुःखदायक है, अनात्मविषे आत्मअभिमान करता है, तिस अभिमानसहित जो कछु कर्म करता है, सो सब दुःखदायक होते हैं, अरु जो अभिमानरूपी विषके चूर्णते रहित होकरि चेष्टा करताहै, लेता है, देता है, सो दुःखका कारण नहीं होता, सदा सुखरूप है ॥ हे अर्जुन ! सुंदर शरीर होवै, अरु विष्ठा मलसाथ मलिन किया होवै, तब तिसकी शोभा जाती रहती है, तैसे बुद्धिमान् भी होवै, अरु शास्त्रका वेत्ता होवै, इत्यादिक गुणोंकरि संपन्न होवै, अरु अनात्मविषे आत्मअभिमान होवै, तिसकी शोभा जाती रहती है, अरु जो निर्मम निरहंकार अरु सुखदुःखविषे सम है, ऐसा क्षमावान् है, सो शुभ कर्म करै, अथवा अशुभ करै, तिसको किसी कर्मका स्पर्श नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! ऐसे निश्चयवान् होकरि कर्मको करौ, ताते हे पांडवपुत्र ! यह युद्ध कर्म तेरा धर्म है, सो कर, अपना धर्म अति क्रूर भी होवै, परंतु कल्याण करता है, अरु पराया धर्म उत्तम भी होवै, तौ भी दुःखदायक है, अपना धर्म अमृतकी नाईं अल्प भी सुखदायक है ॥ हे अर्जुन ! भावै तैसा कर्म करु, जब तेरेविषे अहंभाव न होवैगा, तब तुझको स्पर्श न करैगा, संग अभिमानको त्यागिकरि योगविषे स्थित होकरि कर्म करु, जो निःसंग पुरुष है, तिसको कोऊ कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसको करता हुआ बंधमान नहीं होता, ताते ब्रह्मरूप होकरि ब्रह्ममय कर्मको करु, तब शीघ्रही ब्रह्मरूप हो जावैगा, जो कछु आचार कर्म होवै, सो ब्रह्मविषे अर्पण करु ॥ हे अर्जुन ! सर्व कर्म ईश्वरविषे समर्पण करु, सो ईश्वर आत्मा है, निर्मल

कहिये निर्दुःख कहिये भावनाकरि भावित हुआ ईश्वर आत्मा होकरि पृथ्वीका भूषण होकरि विचरु, संन्यास योगयुक्त होकरि कर्मोंका करता मुक्तरूप होवैगा, सर्व संकल्पते संन्यास सम शांत होकरि विचरु ॥ अर्जुन-उवाच ॥ हे भगवन्! संगत्याग किसको कहते हैं, अरु ब्रह्म-अर्पण किसको कहते हैं, ईश्वरअर्पण किसको कहते हैं, अरु संन्यास किसको कहते हैं, अरु योग किसको कहते हैं, उनको विभाग करिकै कहौ, मोहके निवृत्ति अर्थ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! प्रथम तू ब्रह्म सुन, कि किसको कहते हैं, जहां सर्व संकल्प शांत हैं एक घन-वेदना है, अपर कछु भावनाका उत्थान नहीं अचेतन चिन्मात्र सत्ता है, तिसको परब्रह्म कहते हैं, ऐसे जानिकर तिसको पानेका उद्यम करना, जिस विचारसाथ तिसको पाइये, तिसका नाम ज्ञान है, अरु तिस-विषे स्थित होना तिसका नाम योग है, अरु यह सर्व ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हौं सर्व जगत् मैंही हौं ब्रह्मते इतर कछु भावना न करनी इसका नाम ब्रह्मअर्पण है, अरु जो नानाप्रकारका जगत् भासता है, सो क्या है, अंतर भी शून्य, बाहर भी शून्य, जिसको शिलाकी उपमाहै, ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है, सो न शून्य है, न शिलावत् है तिसके आश्रय स्पंदकलना फुरेकी नाईं, कछु होकरि अन्यवत् भासती है; सो जगत्रूप होकरि स्थित भई है, परंतु कैसी है, आकाशकी नाईं शून्य है, तिसविषे जो विभागकलना हुई है, सो कोटि कोटि अंश जीवकला होती गई है, एकही अपृथक् अनेकभूत पृथक् पृथक् होकरि स्थित भई है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे अनेकरूप होकरि स्थित होते हैं, सो जलही है; अपर कछु नहीं, एकही जल अनेकरूप भासता है, तैसे एकही वस्तुसत्ता घट पट आदिक आकार होकरि भासती है, संवित्सारमें आत्माविषे भेदकलना कछु नहीं अज्ञान करिकै अनेक-रूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं, अरु अनेकभावको एक देखना भी अज्ञान है, अरु एकको अनेक देखना भी अज्ञान है, सो एक अनेक देखना क्या है, अरु अनेक एक देखना क्या है, जो एक आत्मा है, तिसको अनेक नामरूप देखना; सो अज्ञान है, अरु भिन्न भिन्न देह

इंद्रियां प्राण मन बुद्ध्यादिक अनेक हैं; तिनविषे अहंप्रतीतिकरि एकत्र भाव देखना सो भी अज्ञानकरि यह कलना हुई है, अरु ज्ञानकरिकै नष्ट हो जाती है ॥ हे अर्जुन ! जेते कछु संकल्पजाल हैं, तिनका त्याग करना इसका नाम असंग संगतेरहित कहते हैं; अरु सब कलनाजालको ईश्वर साथ इतर भाव नहीं करना, इस भावनाकरि द्वैतभाव गलित हो जावैगा, इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहतेहैं॥ हे अर्जुन ! जब ऐसी अभेदभावना होती है, तब आत्मबोध प्राप्त होता है, अरु बोधकरि सब शब्द अर्थ एकरूप भासतेहैं, सर्व शब्दोंका एकही शब्द भासताहै, अरु एकही अर्थ सर्व शब्दोंविषे भासता है, ॥ हे अर्जुन ! सर्व जगत् मैं हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही आकाश हौं, मैंही कर्म हौं, मैंही काल हौं, द्वैत भी मैंही हौं, अद्वैत भी मैं हौं, ऐसा जो सर्वात्मा मैं हौं, सो तू मेरेविषे मनको लगाये, मेरी भक्ति करु, अरु मेराही भजन करु, अरु मुझहीको नमस्कार करु, तब तू मुझहीको प्राप्त होवैगा ॥ हे अर्जुन ! मैं आत्मा हौं, तू मेरेही परायण होहु ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे देव ! ऐसे तेरे दो रूप हैं, एक पररूप है, एक अपररूप है, तिन दोनों रूपविषे मैं किसका आश्रय करौं, जिसकरि मैं परमसिद्धांतको प्राप्त होऊं ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अनघ ! एक समानरूप है, अरु एक परमरूप है, यह जो शंखचक्रगदादिक संयुक्त हैं, सो मेरा समानरूप है, अरु परमरूप मेरा आदिअंतते रहित एक अनामय है, सो ब्रह्म आत्म परमात्मा आदिक शब्दोंकरि कहाता है जबलग तू अप्रबोध है, अनात्म देहादिकविषे तुझको आत्माभिमान है, तबलग मेरे चतुर्भुज आकारकी पूजापरायण होउ, अरु कर्मोंको करु, जब प्रबोध होवैगा, तब मेरे परमरूपको प्राप्त होवैगा, आदि अंत मध्यते रहित मेरा रूप है, तिसको पायकरि बहुरि जन्ममरणविषे न आवैगा, जब तू शत्रुको नाश करता हुआ ज्ञानवान् भया, तब आत्माकरि आत्मासों मेरा पूजन करु, मैं सर्वका आत्मा हौं, यह मैं हौं, ऐसे जो मैं कहता हौं, सो आत्मतत्त्व बहुरि बहुरि कहता हौं ॥ हे अर्जुन ! मैं मानता हौं कि तू अब प्रबुद्ध हुआ है अरु आत्मपदविषे विश्रामवान् हुआ है, अरु संकल्पकलनाते रहित मुक्त हुआ है, एक आत्मसत्ताविषे स्थित हुआ है ऐसे योगकरि

सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माको देखैगा, अरु सर्व भूत आत्माविषे स्थित देखैगा, अरु सर्वत्रविषे तुझको समबुद्धि होवैगी, तब स्वरूपविषे तुझको दृढ़ स्थिति होवैगी ॥ हे अर्जुन ! जो सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माको देखता है, अरु एकत्वभावकरि भजन करता है आत्माते इतर जिसको अपर भावना नहीं फुरती, ऐसे एकत्वभावविषे जो स्थित हैं, सो सर्वप्रकार वर्त्तमान भी हैं तौभी बहुरि जन्म मरणविषे नहीं आते ॥ हे अर्जुन ! जिसविषे सर्व शब्दोंका अर्थ है, अरु सर्व शब्दोंविषे जो एक अर्थरूप है, ऐसी जो आत्मसत्ता है, सो न सत् है, न असत् है, सत् असत्‌ते जो रहित सत्ता है, सो आत्मसत्ता है, सो सर्व लोकके चित्त-विषे प्रकाशरूप करिकै स्थित है, सो आत्मा है ॥ हे भारत ! जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित होता है, अरु जलविषे रस स्थित होता है, तैसे मैं सर्व लोकके अंतर तत्त्वरूप स्थित हौं, सर्व शरीरविषे जो चेतन है, तिस चेतनयुक्त जो सूक्ष्म अनुभवसत्ता है, सो मैं हौं, सर्वगत आत्मा स्थित हौं, जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित है, तैसे सर्व पदार्थके अंतर मैं आत्मा स्थित हौं, जैसे रत्नके अंतर बाहर प्रकाश होता है, तैसे मैं सर्व पदार्थके अंतर बाहर स्थित हौं, जैसे अनेक घटके अंतर बाहर एकही आकाश स्थित है, तैसे मैं अनेक देहको अंतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थित हौं ॥ हे अर्जुन ! ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्व पदार्थविषे सत्ता समानकरिकै मैं स्थित हौं, अरु नित्य अजन्मा हौं, मेरेविषे जो चित्त-संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मसत्ताकी नाईं होत भई हैं, अरु फुरणेकरिकै जगत्‌रूप हो भासता है, अहंता ममता आदिकको प्राप्त भई है, अरु आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु नहीं ॥ हे अर्जुन ! आत्मा सबका साक्षीरूप है, तिसको जगत्‌का सुखदुःखस्पर्श नहीं करता, जैसे दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, परंतु सबविषे सम है, किसीकरि खेदवान् नहीं होता, तैसे सब पदार्थ अवस्था साक्षीभूत आत्मा है, परंतु किसीको स्पर्श नहीं करता, अरु शरीरके नाशविषे तिसका नाश नहीं होता, जो ऐसे देखता है, सो यथार्थ देखता है ॥ हे अर्जुन ! पृथ्वीविषे गंध मैं हौं, अरु जलविषे रस मैं हौं, पवनविषे स्पर्श अरु स्पंदशक्ति मैं

हौं, अग्निविषे प्रकाशशक्ति, आकाशविषे शब्दशक्ति मैं हौं, अपर तुझको क्या कहौं, कि यह मैं हौं, सर्वात्मा सर्वका आत्मा मैं हौं, मुझते इतर कछु नहीं ॥ हे पांडव ! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है, उत्पन्न अरु प्रलय होती दृष्ट आती है, सो मेरेविषे ऐसे है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, जैसे पहाड़ पत्थररूप हैं, अरु वृक्ष काष्ठरूप है, तरंग जलरूप है, तैसे सर्व पदार्थविषे मैं आत्मरूप हौं, जो सर्व भूतोंको आत्माविषे देखता है, सो आत्माको अकर्त्ता देखता है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे नाना आकार यह आत्माविषे भासते हैं ॥ हे अर्जुन ! यह नानाप्रकारके पदार्थ ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मते भिन्न कछु नहीं, तब अपर क्या कहिये, भाव विकार क्या कहिये, जगत् द्वैत क्या कहिये, जो वही है, तब वृथा मोहित क्यों होता है ? इसप्रकार बुद्धिमान् मुनिकरि समुझसों अंतर भावना निश्चित होकरि जीवन्मुक्त इस लोकविषे समरस चित्त विचरते हैं ॥ हे अर्जुन ! तिस पदको तू क्यों नहीं प्राप्त होता, जो पुरुष निर्मान अरु निर्मोह हुए हैं, अरु अभिलाषादोष जिनका निवृत्त भया है, सर्व कामनाते रहित हुए हैं, सो अव्यय पदको प्राप्त हुए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेश वर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे महाबाहो ! बहुरि मेरे परमवचन सुन, मैं तेरी प्रसन्नताके निमित्त कहता हौं, जो तेरा हितकारी हौं, यह जो उष्ण शीत विषय हैं, सो इंद्रियको स्पर्श होते हैं, अरु आगमापायी हैं, आते हैं, बहुरि निवृत्त हो जाते हैं, ताते अनित्य हैं, तिनको तू सहि रहु, आत्माको स्पर्श नहीं करते, तू तौ आत्मा है, एक है, आदि अंत मध्यते रहित है, निराकार अखंड पूर्ण है, तुझको शीत उष्ण सुखदुःख खंडित नहीं कर सकते, यह कलनाकरि रचे हुए हैं, जैसे स्वर्णविषे

भूषणका निवास है, तैसे आत्माविषे इनका असत् निवास है ॥ हे भारत ! जिसको इंद्रियोंके भोग स्पर्श भ्रमरूप चलायमान नहीं कर सकते, अरु सुखदुःख जीवको सम हैं, तिस पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ हे अर्जुन ! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वरूप है, अरु इंद्रियोंके स्पर्श असत्‌रूप हैं, सो असत्‌रूपविषे सत्‌रूप आत्माको मोह नहीं सकते, यह अल्पमात्र तुच्छ है, कछु वस्तु नहीं, अरु बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप हैं, तिसको इनका स्पर्श कैसे होवै; सत्‌को असत् स्पर्श नहीं करि सकता, जैसे जेवरीविषे सर्प आभास होता है, सो जेवरीको स्पर्श नहीं कर सकता, अरु जैसे मूर्तिकी अग्नि कागजको जलाय नहीं सकती, अरु जैसे स्वप्नके क्षोभ जाग्रत् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकते, तैसे इंद्रियां अरु तिनके विषय आत्माको स्पर्श नहीं कर सकते ॥ हे अर्जुन ! जो सत् है, सो असत् नहीं होता, अरु जो असत् है सो सत् नहीं होता, सुखदुःखादिक असत्‌रूप हैं, कछु है नहीं, अरु परमात्मा सत्‌रूप है, जगत्‌के सत्‌वस्तु घटादिक अरु आकाशके असत् फूलादिक तिन दोनोंके त्यागते पाछे जो निष्किंचन महासत्‌पद है, तिसविषे स्थित होउ ॥ हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, इष्ट सुखकरि हर्षवान् नहीं होता, अनिष्ट दुःखकरि शोकवान् नहीं होता, अरु चेतन पाषाणवत् शरीरविषे स्थित होता है ॥ हे साधो! यह चित्त भी जड़ है अरु देह इंद्रियादिक भी जड़ हैं, अरु आत्मा चेतन है, इनके साथ मिला हुआ आपको देह क्यों देखता है, चित्त अरु देह भी आपसमें भिन्न भिन्न हैं, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट नहीं होता इनके नष्ट हुए जो आपको नष्ट होता मानता है, अरु इनके सुख दुःख साथ सुखी दुःखी होता है सो महामूर्ख है ॥ हे अर्जुन ! स्वरूपके प्रमाद करिकै देहादिकविषे अहंप्रतीति करता है, अरु कर्ता भोक्ता आपको मानता है, जब आत्माका बोध होता है, तब आपको अकर्ता अभोक्ता अद्वैत देखता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके बोधकरि सर्पका अभाव होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि देह इंद्रियोंके

सुख दुःख भासते हैं, अरु आत्मज्ञानकरि सुखदुःखका अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन ! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है, न कोऊ जन्मता है, न मरता है, यह सत् उपदेश है, प्रबोधकरि ऐसे जानता है ॥ हे अर्जुन ! ब्रह्मरूपी समुद्रविषे तू एक तरंग फुरा हैं, केताक काल रहिके बहुरि तिसीविषे लीन हो जावैगा, ताते तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म है, सब जगत् ब्रह्मका स्पंद है, समय पायकरि दृष्टि आता है, ताते मान मद शोक सुख दुःख सब असत्रूप हैं, तू शांतिमान् होहु ॥ हे अर्जुन ! प्रथम तौ तू ब्रह्ममय युद्ध करु, जेती कछु अक्षौहिणी सैन्य है, सो सब अनुभवकरि नाश कर, जो यह द्वैत कछु नहीं, एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है, यह ब्रह्ममय युद्ध कर, अरु सुख दुःख लाभ अलाभ अरु जय अजय ब्रह्मयुद्धविषे इनको एकता करु, जो कछु ब्रह्माते लेकरि तृणपर्यंत जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मही है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ऐसे जानिकै लाभअलाभविषे सम होकरि स्थित होउ, अपर चिंतवना कछु न करु ॥ हे अर्जुन ! जड शरीरसाथ कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायुका फुरणा स्वाभाविक होता है, तैसे शरीरकरि कर्म स्वाभाविक होते हैं ॥ हे अर्जुन ! जो कछु कार्य करै, अरु भोजन करै, जो कछु यजन करै, दान करै, सो आत्माहीविषे अर्पण कर, अरु सदा आत्मसत्ताविषे स्थित रहु, अरु सबको आत्मरूप देख ॥ हे अर्जुन ! जो किसीके अंतर दृढ़ निश्चय होता है, सोई रूप उसको भासता है, जब तू इसप्रकार अभ्यास करैगा; तब ब्रह्मरूप हो जावैगा, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ हे अर्जुन ! कर्मोंविषे जो आत्माको अकर्ता देखता है; अरु अकर्त्ता जो है, अकरणा अभिमानसहित तिसको करता देखता है, सो मनुष्यविषे बुद्धिमान् है, अरु संपूर्ण कर्मोंका कर्त्ता भी है, कर्तव्य कछु न रहै, यह अर्थ है ॥ हे अर्जुन ! कर्मोंके फलकी इच्छा भी न होवै, अरु कर्मोंविषे विरसता भी न होवै, जो मैं न करौं, योगविषे स्थित होकरि कर्मको कर ॥ हे धनंजय ! कर्तृत्व अभिमान अरु फलकी वांछाको त्यागिकरि कर्म करु; जो कर्मोंके फल अरु संगको त्यागिकरि नित्य तृप्त हुआ है, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता, कार्य अकार्यको कर्ता भी नहीं करता ॥

हे अर्जुन ! जिसने सर्व आरंभोंविषे कामनासंकल्पका त्याग किया है, ज्ञान अग्निकरि कर्म जलाए हैं, तिसको बुद्धिमान् पंडित कहते हैं, जो सम आत्माविषे स्थित हैं, सर्व अर्थविषे निस्पृह है, निर्द्वंद्वसत्ता स्थित यथाप्राप्त वर्तता है, सो पृथ्वीका भूषण है, समुद्रकी नाईं अचल है, अरु अपने आपविषे तृप्त है, जैसे समुद्रविषे अनिच्छित जल प्रवेश करता है, तैसे ज्ञानवान्‌विषे सुख प्रवेश करते हैं, सो शांतरूप सब कामनाते रहित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मप्रतिपादन-वर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ५४.

जीवनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! तू आत्मा है, सो कैसा आत्मा है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, अविनाशी है, अरु अजर है, अजर कहिये-परिणामते रहित है ॥ हे अर्जुन ! तू शोक मत कर, यह जो तुझको जगत् भासता है, सो अज्ञान करिकै भासता है, अज्ञान कहिये अपना प्रमाद, अरु प्रमाद कहिये अनात्मविषे आत्माभिमान, इसका नाम अज्ञान है ॥ हे अर्जुन ! यह जो संसाररूप तेरा देह है, इसविषे अभिमान मत कर, यह मिथ्या है, इसकरि दुःख होता है, अरु तू असंग है, अविनाशी है, तेरा नाश कदाचित् नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! जो विनाशरूप है, तिसका होना कदाचित् नहीं, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव होना कदाचित् नहीं, तत्त्ववेत्ताने इनदोनोंका निर्णय किया है ॥ हे अर्जुन ! तिसको तू अविनाशी जान, जिसकरि यह सर्व प्रकाशता है, तिसके विनाश करनेको कोई समर्थ नहीं ॥ हे अर्जुन ! सो तू ऐसा है, अरु यह आत्मा सर्वका अपना आप है, तिसका विनाश कैसे होवै ? अरु अज्ञानी मनुष्य तिसका विनाश होना मानते हैं, ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो, आत्मा अविनाशी है, अरु

सबका अपना आप है, तब उसका क्यों करि नाश होता है ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! तू सत्य कहता है, परमार्थते किसीका नाश नहीं होता परंतु अज्ञान करिकै उनका नाश होता है, तिनको मृत्यु ग्रासि लेता है ॥ हेअर्जुन ! तू आत्मवेत्ता होउ, सो आत्मा एक है, अरु अद्वैत है, जिसविषे एक कहना भी नहीं संभवता, तब द्वैत कहां होवै ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, आत्मा एक है, तब मृत्यु भी द्वितीय न भया, अरु लोक मरते हैं, मरिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं, जब मृत्यु नहीं, तब लोक क्यों मरते हैं, अरु पाप पुण्य क्यों भोगते ह ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! न कोऊ मरताहै, न जन्मता है, यह स्वप्नकी नाईं मिथ्या कल्पना है, जैसे निद्रादोषकरि जन्म अरु मरण भासता है, तैसे संसारविषे यह जन्म मरण भासता है, सो अज्ञानकरिकै भासता है,अज्ञान नाम फुरणेका है तिस फुरणेहीकरि नरक अरु स्वर्ग कल्पा है ॥ हे अर्जुन !जैसे यह जीव भोगता है, सो तू श्रवण कर, अपने स्वरूपके प्रमाद होनेकरि आगे संकल्पके शरीर रचे हैं, पुर्यष्टका कहिये सो क्या है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार तिसविषे जीव प्रवेश करता है, तिससाथ मिलिकरि जैसी वासना करता है, तैसीही आगे भोगता है, वासना तीन प्रकारकी है, एक सात्त्विकी, एक राजसी, एक तामसी है, जैसी वासना होती है, तैसा स्वर्ग नरक बनजाता है, सात्त्विकी वासनाते स्वर्ग बन जाता है, इतरते नरकादिक बन जाते हैं; स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र है, वास्तवते न कोऊ स्वर्ग है, न कोऊ नरक है, न कोऊ मरता है, न जन्मता है, केवल एक आत्माही ज्योंका त्यों स्थित है, परंतु यह जगत्भास भ्रमकरिकै भासता है, अज्ञानकरिकै चिरकाल वासनाका अभ्यास किया है, तिसकरि भ्रमको देखता है ॥ अर्जुन उवाच॥ हे जगत्के पति ! नरकस्वर्गादिक योनिको जगत्विषे यह जीव देखता है, तिस नानाप्रकारके देखनेविषे कारण कौन है ? ॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे अर्जुन ! अज्ञानकरिकै जो अनात्मविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसकरि जगत्को सत् जानने लगा है, सत् जानिकरि वासना करने लगा है, बहुरि जैसे जैसे जगत्को सत् जानिकरि वासना करता है,

तैसे जगतभ्रमको देखता है; जब इसको आत्मविचार उपजता है, तब जगत्को स्वप्नकी नाईं देखता है, अरु वासना भी क्षय हो जाती है, जब वासना क्षय होती है, तब कल्याणको प्राप्त होता है ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन्! चिर अभ्यासकरि जो जो संसारभ्रम दृढ़ रहा है, सो किसप्रकार उपजता है, अरु किसप्रकार लीन होवैगा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! मूर्खता अज्ञानताकरिकै जो अनात्म देहादिकविषे आत्मभावना होती है, तिसकरि जगत्को सत् जानि वासना करताहै; तिस वासनाके अनुसार जगद्भ्रमको देखता है, जब स्वरूपका अभ्यास करता है, तब वासना नष्ट हो जाती है. ताते हे अर्जुन! तू स्वरूपका अभ्यास कर, अहं मम आदिक वासनाको त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु ॥ हे अर्जुन! यह देह वासनारूप है, जब वासना निवृत्त होवैगी, तब देहभी लीन हो जावैगा, जब देह लीन भया, तब देश काल क्रिया जन्ममरण भी न रहैंगे, यह अपनेही संकल्पकरि उठे हैं; भ्रमरूप हैं, तिनकी वासनाकरि वेष्टित हुआ जीव भटकता है, जब आत्मबोध होता है, तब वासनाते मुक्त होता है, निरालंब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्वको पाता है, तिसीको मोक्ष कहते हैं, जिसकी वासना क्षय हुई है ॥ हे अर्जुन! जब जीवको तत्त्वबोध होता है, तब वासनारूपी जालते मुक्त होता है, जो वासनाते मुक्त हुआ सो मुक्त हुवा जो पुरुष सर्व धर्म परायणभी है, अरु सर्वज्ञ है, शास्त्रोंका वेत्ता भी है, परंतु वासनाते मुक्त नहीं हुआ, सो सर्व ओरते बद्ध है, जैसे दृष्टिके दोषकरि निर्मल आकाशविषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् भासते हैं, तैसे मूर्खको शुद्ध आत्माविषे वासनारूपी मल जगत् भासता है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांधा होता है, तैसे वह बद्ध होता है, जिसके अंतर वासना है, सो बद्ध है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं, तिसको मोक्ष जान ॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर जगत्की वासना है, अरु बड़ी प्रभुतासंयुक्त दृष्ट आता है, तौ भी दरिद्री है, अरु दुःखका भागी है, अरु जिसकी वासना नष्ट भई है, अरु प्रभुताते रहित दृष्ट आता है, तौ भी बड़ा प्रभुतावान् है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवनिर्णयवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

श्रीकृष्णसंवादे अर्जुनविश्रांतिवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! इसप्रकार तू निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकारि विचर, तब तेरा अंतःकरण शीतल हो जावैगा, अरु जरामरणते मुक्त निःसंग आकाशवत् होवैगा, इष्टअनिष्टको त्यागि वीतराग होकारि स्थित होवैगा ॥ हे अर्जुन ! पतित प्रवाह जो कार्य आनि प्राप्त होवै तिसको कर युद्धविषे कायरता मत कर, आत्मा अविनाशी है, अरु देह नाशवंत है, देहके नाश हुए आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सो रागद्वेषते रहित होकारि प्रवाहपतित कार्यको करते हैं, तू भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकारि विचर, अरु यह मैं करौं, यह न करौं इस ग्रहण त्यागके संकल्पको त्याग, इसकारि ज्ञानवान्‌बध्यमान नहीं होते, अरु मूर्ख हैं, सो इसविषे बध्यमान होते हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सुषुप्तवत् स्थित होकारि प्रवाहपतित कार्यको करते हैं, अरु प्रबुद्धकी नाईं वासनाते रहित हुए कार्य करते हैं, जैसे कच्छप अपने अंग खैंचिलेता है, तैसे ज्ञानवान् वासनाको संकुचित करलेता है, अरु आपको चिन्मात्ररूप जानता है, अरु जगत् मेरेविषे मणकेकी नाईं परोया हुआ है, अरु सब जगत् मेरे अंग हैं, जैसे अपने हाथ पसारै, अरु खैंचै, जैसे समुद्रते तरंग उठते अरु लीन होते हैं, तैसे विश्व आत्माते उपजता अरु लीन होता है, भिन्न कछु नहीं ॥ हे अर्जुन ! चंदोएके ऊपर नानाप्रकारके चित्र लिखे होते हैं, परंतु वह रंगवस्त्रते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे मनरूपी चितेरेने जगत् रचा है, अरु अनउपजा होकारि भासता है, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है कि, एती पुतलियां निकसैंगी, सो आकाशरूपी पुतलियां तिसके मनविषे फुरती हैं, तैसे यह तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्तविषे फुरते हैं, चितेरा भी मूर्तियां तब लिखता है, जब भीत होती है यह आश्चर्य है कि, आकाशविषे मन मूर्तियोंको कल्पता है ॥ हे अर्जुन !

यह मूर्तियां स्पष्ट भासती हैं, तौ भी आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे यह भी हैं, आकाश अरु कंधविषे भेद नहीं, परंतु आश्चर्य है, कि भेद भासता है, जैसे मनोराज्य स्वप्नपुरविषे जगत् मनके फुरणेकरि भासता है, अरु अफुर हुए लय हो जाता है, सो मनोमात्र है, तैसे यह जगत् मनोमात्र है, आकाशते भी शून्यरूप है, जैसे स्वप्नपुर अरु मनोराज्यविषे एक क्षणमें बडे कालका अनुभव होता है, पूर्वरूपके विस्मरण करि सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् सत् हो भासता है, जबलग प्रमाद होता है, तबलग भासता है, जब इस क्रमकरिके आत्माको देखता है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, प्रगट देखता है, परंतु लीन हो जाता है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है, जैसे चितेरेके मनविषे चित्र फुरते हैं, सो आकाशरूप है, तैसे यह जगत् आकाशरूप है ॥ हे अर्जुन ! भाव अभाव वृत्तिको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, तब आकाशवत् निर्मल हो जावैगा, जैसे मेघकी प्रवृत्तिविषे भी आकाश निर्मल होता है; अरु निवृत्तिविषे भी निर्मल होता है, तैसे तू पदार्थके भावअभावविषे निर्मल है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, जैसे चितेरेके मनविषे पुतलियां भासती हैं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है, जैसे एक क्षणविषे मनके फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासि आते हैं, अफुर हुए लीन हो जाते हैं, तैसे प्रमादकरिके जगत् भासता है, आत्माके जाननेते लीन हो जाता है, अरु आत्माविषे निर्वाणरूप है, आत्माविषे एक निमेषके फुरणेकरि प्रमादते वज्रसारकी नाई दृढ हो भासता है, अरु चित्तके फुरणेकरि यह सत् भासता है, सब जगत् आकाशरूप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, बडा आश्चर्य है, कि आकाशपर मूर्तियां लिखी हैं, अरु नानारूप रमणीय होकरि भासती हैं, अरु मनको मोहती हैं, ॥ हे अर्जुन ! यही आश्चर्य है, कि कछु है नहीं, अरु नानाप्रकारके रंग भासते हैं, आकाशरूपी नीला ताल है, चंद्रमा तारे आदिक तिसविषे फूल खिले हैं, अरु मेघरूपी तिनको पत्र लगे हैं ॥ हे अर्जुन ! और आश्चर्य देख, चित्र भी तब होता है, जब प्रथम तिसका आधार भीत

अथवा वस्त्र होता है, अरु यहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं, आधारभूत कंध पाछे बनती है, प्रथम यह मूर्तियां चित्र बने हैं, अरु पाछे भीत हुई है, यह आश्चर्य है ॥ हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानता है, जो वास्तव आकाशरूप चितेरेने आकाशविषे आकाशरूप पुतली रची है, आकाशविषे आकाशरूप पुतलियां उपजी हैं, अरु आकाशविषे लीन होती हैं, आकाशहीको भोजन करती हैं, अरु आकाशहीको आकाश देखता है, आकाशही यह सृष्टि है, आकाशहीरूप आकाश आत्माविषे आकाशरूप स्थित है ॥ हे अर्जुन! वास्तवते आत्मा ऐसे है, तिस ऐसे अद्वैतरूप आत्माविषे जो उत्थान हुआ है, तिस उत्थानकरि उसको स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिसकरि आगे दृश्यभ्रमको देखता है, अरु अनेक वासना होती हैं, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा हुआ भटकता है, वासनाकरि आवराहुआ अहं त्वं आदिक शब्दोंको जानने लगता है. अरु नानाप्रकारके भ्रमको देखता है, तौ भी स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, अरु दर्पण ज्योंका त्यों रहता है; तैसे आत्माविषे जगत् प्रतिबिंबित होता है, अरु आत्मा छेदभेदते रहित है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, जब सर्व वही है, तब छेद भेद किसका हो, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे यह सब ब्रह्महीकरि पूर्ण है, तिसविषे द्वैत कछु नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे आत्मा स्थित है, तिसविषे वासवासक कल्पना कोई नहीं, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि वासवासक भेद होता है, जब स्वरूपका ज्ञान होता है, तब वासना नष्ट हो जाती है ॥ हे अर्जुन! जो वासनाते मुक्त है, सोई मुक्त है, अरु वासनासाथ बांधा हुआ है, सोई बंध है, जो सर्व शास्त्रोंका वेत्ता भी है, अरु सर्व धर्मोंकरि पूर्ण है, जब वासनाते मुक्त नहीं हुआ, तब बंधही है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बाँधा होता है, तैसे वह वासनाकरि बाँधा हुआ है ॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर वासनाका बीज रहा है, अरु बाह्य दृष्टि नहीं आता सो बीज भी बड़े विस्तारको पावैगा, जैसे वटका बीज बडे विस्तारको पाता है, तैसे वह वासना विस्तारको पावैगी, अरु जिस पुरुषने आत्मा-

का अभ्यास किया है, तिसकारि ज्ञानरूपी अग्नि उपजाई है. उसकारि वासनारूपी बीज जलाया है, तिसको बहुरि संसारभ्रम उदय नहीं होता, अरु वस्तुबुद्धिकारि पदार्थको ग्रहण नहीं करता, अरु सुखदुःख आदिकविषे नहीं डूबता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे तुंबा जलके ऊपरही रहता है, तैसे वह सुखदुःखके ऊपर रहता है॥ हे अर्जुन! तू शांत आत्मा है, तेरा भ्रम अब दूर भया है, अरु आत्मपदको तू प्राप्त भया है, मन मोह तेरा निर्वाण हो गया है, तू सम्यक्ज्ञानी हुआ है, व्यवहार अरु तूष्णीं तुझको तुल्य भई है, शांतरूप निःशंक पदको प्राप्त भया है, यह मैं जानता हौं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णसंवादे अर्जुनविश्रांतिवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यतगीतानामोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

अर्जुन उवाच॥ हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट भया है, अरु आत्मस्मृतिको मैं प्राप्त भया हौं, तेरे प्रसादते मैं अब निःसंदेह होकारि स्थित भया हौं, अब जो कछु तुम कहौ सो मैं करौं॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे अर्जुन! मनकी जो पांच वृत्ति हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, स्मृति जब यह पांचों हृदयसों निवृत्त हो जावैं, तब चित्त शांत होवै, तिसके पाछे जो शेष रहता है, चैत्यते रहित चेतन तिसको प्रत्यक् चेतन कहते हैं, सो वस्तुरूप है, सर्व उपाधिते रहित सर्व है अरु सर्वरूप हैं, जो तिस पदको प्राप्त हुआ है, तिसको आधि व्याधि आदिक दुःख बांधि नहीं सकते, जैसे जालते निकसिकारि पक्षी आकाशमार्गको उड़ता है, तैसे वह देह अभिमानते मुक्त होकारि आत्मपदको प्राप्त होताहै, तिसको दुःख नहीं बांध सकते॥ हे अर्जुन! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है, सो परम प्रकाशरूप शुद्ध है, संकल्प विकल्पते रहित है, इंद्रियके विषयमें नहीं आता, इंद्रियोंते अतीत है, जो पुरुष सर्वते अतीत पदको प्राप्त हुआ है, तिसको वासना नहीं स्पर्श कर

सकती, तिसके प्राप्त हुए यह घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं, तहां तुच्छ वासनाका बल कछु नहीं चलता, जैसे अग्निसमूहके निकट बर्फ गलि जाती है, तिसकी शीलता नहीं रहती, तैसे शुद्ध पदके साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है, अरु वासनाका भी अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन ! वासना तबलग फुरती है, जबलग संसारको सत्य जानता है, जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब संसार अरु वासनाका अभाव हो जाता है, इसकारणते विरक्त पुरुषको सत्य जाननेते कछु वासना नहीं रहती, तबलग नानाप्रकाके आकार विकार संयुक्त विद्या फुरती है, जबलग शुद्ध आत्माको अपने आपकारि नहीं जाना, शुद्ध आत्माको प्राप्त हुए जगद्भ्रम सब नष्ट हो जाता है, आत्मतत्त्व स्वच्छ पदविषे स्थित होता है, आकाशवत् निर्मलभावको प्राप्त होता है, अरु अपने आपकारि सबको पूर्ण देखता है, सोई आत्मसत्ता सर्व आकाररूप है, अरु सर्व आकाररूपते रहित है ॥ हे अर्जुन ! जो शब्दते अतीत परम वस्तु है, तिसको किसकी उपमा दीजै, जो वासनारूपी विषूचिकाको त्यागिकारि अपने आत्मस्वभावविषे स्थित हुआ पृथ्वीमें विचरताहै, सो त्रिलोकीका नाथ है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार त्रिलोकीका नाथ कहैगा, तब अर्जुन एक क्षण मौनविषे स्थित हो जावैगा तिसके उपरांत कहैगा ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! सब शोक मेरे नष्ट हो गये हैं, तुम्हारे वचनोंकारि बोध उदय हुआ है, जैसे सूर्यके उदय हुए कमल खिल आते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकारि मेरा बोध खिल आया है, अब जो कछु तुम्हारी आज्ञा होवै सो मैं करौंगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकर अर्जुन गांडीव धनुष्यको ग्रहण करैगा, भगवान्‌को सारथी कारिके निःसंदेह निःशंक होकारि रणलीला करैगा, कैसा युद्ध करैगा, जो हस्ती घोड़ा मनुष्य मारैगा, लोहूके प्रवाह चलैंगे, तौ भी आत्मतत्त्वविषे स्थित रहैगा, स्वरूपते चलायमान न होवैगा, शूरोंको नष्टकारि देवैगा, परंतु ज्योंका त्यों रहैगा, जैसे पवन मेघका

अभावकरि देता है तैसे योद्धोंका नाश करैगा, परंतु स्वरूपते चलायमान न होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यत्गीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

प्रत्यगात्मबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसी दृष्टिको आश्रय करिकै निःसंग संन्यासी होहु, कैसी दृष्टि है, दुःखका नाश करती है, जो कछु कर्मचेष्टा होवै सो ब्रह्म अर्पण करु, जिसविषे यह सर्व है, अरु जिसते यह सर्व है, ऐसी जो सत्ता है, तिसको तू परमात्मा जान, अनुभवरूप आत्मा है, तिसकी भावनाकरि तिसीको प्राप्त होता है, इसविषे संशय नहीं, जो सत्ता संवेदन फुरणेते रहित है, चेतनते रहित जो चेतन प्रकाशता है, तिसीको तू परमपद जान, सो सबका परम द्रष्टारूप है, अरु सबका प्रकाशक है, सो महाउत्तम परम गुरुका गुरु है, सो आत्मरूप है, शून्यवादी जिसको शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, ब्रह्मवादी जिसको ब्रह्म कहते हैं, सो परमसाररूप है, सो शिवरूप है, शांतरूप अपने आपविषे स्थित है, सो आत्मा इस जगत्रूपी मंदिरको प्रकाश करनेहारा दीपक है, अरु जगत्रूपी वृक्षका रस है, अरु जगद्रूपी पशुका पालनेहारा गोपाल है, अरु जीवभूतरूपी मोतीको एकत्र करनेहारा आत्मा तागा है, अरु हृदय आकाशविषे स्थित है, अरु भूतरूपी मिर्चविषे आत्मरूपी तीक्ष्णता है, अरु सर्व पदार्थविषे पदार्थरूप सत्ता वही है, सत्यविषे सत्यता वही है, असत्यविषे असत्यता वही है; जगत्रूपी गृहविषे पदार्थका प्रकाशनेहारा दीपक वही है, तिसकरि सब सिद्ध होते हैं, अरु चंद्रमा सूर्य तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं, तिनका प्रकाशक वही है, यह जड़ प्रकाश है, वह चेतन प्रकाश है, तिसकरि यह सिद्ध होते हैं, तिसीते सब प्रकाश प्रगट भये हैं, सो आत्मसंवित् अपने विचार करि पाता है ॥ हे रामजी !

जेते कछु भावअभाव पदार्थ भासते हैं, सो असत् हैं, वास्तव कछु हुए नहीं, प्रमाद दोष करिकै नानारूप भासते हैं, जब विचार उपजता है, तब यह नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी! अहंभाव जिसके अंतर है, ऐसा जो जगज्जाल है सो मिथ्या भ्रमकरि भासता है, तिसको उपजा क्या कहिये; अरु सत्य क्या करिये किसकी आस्था करिये, यह जगत् कछु वस्तु नहीं, आदि अंत मध्यकी कल्पनाते रहित जो देव है, सो ब्रह्मसत्तासमान अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु बना नहीं. जब यह निश्चय तुझको दृढ़ होवैगा, तब तू व्यवहार भी कर्त्ता अंतरते निःसंग शांतरूप होवैगा॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी तिस समान सत्ताविषे स्थिति भई है, सो इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित अंतरते सदा शांतरूप रहता है, वह न उदय होता है, न अस्त होता है, सदा समताभावविषे स्थित रहता है, स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वविषे स्थित होता है, जगत्की ओरते सुषुप्तवत् हो जाता है, व्यवहार भी करता है, परंतु क्षोभवान् नहीं होता, दर्पणकी नाईं, जैसे मणि सब प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, परंतु तिसको अंतर संग नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलनाकलंकको नहीं प्राप्त होता, तिसका चित्त व्यवहारविषे भी सदा निर्मल रहता है, ज्ञानवान्को जगत् आत्माका चमत्कार भासता है, न एक है, न अनेक है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, चित्तविषे जो यह चेतनभाव भासता है, तिस चित्त फुरणेका नाम संसार है; अरु फुरणेते रहित अफुरका नाम परमपद है॥ हे रामजी! महाचेतनविषे जो निजका अभाव है कि, मैं आत्माको नहीं जानता, इसीका नाम चित्त स्पंद संसारका कारण है, जब यह भावनाक्षय होवै, तब चित्त अफुर हो जावै॥ हे रामजी! जहां निजभाव होता है, तहां पदार्थका अभाव होता है, सो निज सब ठौर अपने अर्थको सिद्ध करता है, परंतु आत्माविषे प्रवृत्त नहीं सकता, जब यह कहता है कि, मैं आत्माको नहीं जानता, तब भी आत्माका अभाव नहीं होता, अभावको जाननेवाला भी आत्माही है, जो आत्मतत्त्व न होवै तब अभाव क्यों न कहै, सो आत्मा परम शून्य है, परंतु कैसा शून्य है, जो अजडरूप परम चेतन है॥

हे रामजी ! सो निजका अर्थ तू आत्माविषे कर, जो आत्माको निजकी भावना नहीं होती. अर्थ यह कि, आत्माका अभाव न मानौ, अरु अनात्मविषे जो निजका भाव है, तिसका अभाव करु, अर्थ यह कि, अनात्माको अभावरूप मान, जब इसप्रकार दृढ भावना करैगा, तब संसार भ्रम निवृत्त हो जावैगा, केवल आत्मभाव शेष रहैगा, ॥ हे रामजी ! चित्तके फुरणेका नाम संसार है, चित्तके फुरणेकरि संसारचक्र वर्त्तता है, माता मान मेय त्रिपुटीरूप चित्तही होता है, जैसे स्वर्णते भूषण प्रगट होते हैं, तैसे चित्तकरि त्रिपुटी होती है, अरु चित्तस्पंद भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्माका आभासरूप है, अज्ञान करिकै चित्तस्पंद होता है, ज्ञानकरिकै लीन हो जाता है, जैसे स्वर्णके भूषणको गालेते भूषणबुद्धि नहीं रहती, तैसे चित्त अचल हुए चित्तसंज्ञा जाती रहती है, जैसे भूषणके अभाव हुए स्वर्णही रहता है, तैसे बोधकरि चित्त जगत्के लीन हुए शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है, बहुरि भोगकी तृष्णा लीन हो जाती है, जब भोगभावना निवृत्त भई तब ज्ञानका परम लक्षण सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिसने सत्स्वरूपको जानाहै, तिसको भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे जो पुरुष अमृतपानकरि अघाय रहताहै, तिसको खल आदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहीं रहती, तैसे आत्मज्ञानकरि जो संतुष्ट भया है, तिसको विषयकी तृष्णा नहीं रहती, यह निश्चयकरि जान, जब चित्त फुरताहै, तब जगत्भ्रम हो भासता है, अरु सत्य जानिकरि भोगकी इच्छा होती है, जब बोध होता है, तब जगद्भ्रम लीन हो जाताहै, बहुरि तृष्णा किसकी करै अरु जब इंद्रियके विषय आनि प्राप्त होवैं, अरु हठकरि तिनको न भोगै, तब वह मूर्ख है, मानो शस्त्रकरि आकाशको छेदता है ॥ हे रामजी ! मन जो वश होता है, सो गुरुशास्त्रोंकी युक्तिकरि होता है, उनकी युक्तिविना शुद्धता नहीं प्राप्त होती, जब कोऊ अपने अंगहीको काटै अरु तिसकरि चित्तको स्थिर किया चाहैं, तो भी चित्त स्थिर नहीं होता, अरु संसारभ्रम नहीं मिटता, जबलग चित्त कोटिविषे स्थित है, तब लग जगद्भ्रमको देखता है, जब गुरुशास्त्रोंकी युक्तिको ग्रहणक-

रिकै चित्तका अभाव करता है, तब चित्त नष्ट होता है, चित्त अचल हो जाता है, जैसे बालकको अंधकारविषे पिशाच भासता है; अरु दीपक जलाये देखनेते अंधकार निवृत्त हुए पश्चात् पिशाचभ्रम नष्ट हो जाता है तब बालक निर्भय होता है, तैसे आत्मज्ञान युक्तिकारि अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक् बुद्धि करिकै जगद्भ्रम हुआ है, सम्यक् बोधकरि निवृत्त हो जाता है, बहुरि जाना नहीं जाता कि, अज्ञानका जगत्भ्रम कहां गया, जैसे दीपकके निर्वाण हुए नहीं जानना कि, प्रकाश कहां गया, तैसे अज्ञान नष्ट हुए नहीं जानता कि, जगत् कहां गया, चित्तके फुरणेकरि बंध होता है, अरु अफुरण हुए मोक्ष होता है, परंतु आत्माते भिन्न कछु नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी ! जब इसको मोक्षकी इच्छा होती है, तब भी इसकी पूर्णताका क्षय होता है, अरु निःसंवेदन हुए कल्याण होता है, जो अनाभास अजड़रूप परमपद है, सो चैतन्योन्मुखत्वते रहित है । हे रामजी ! बंध मोक्ष आदिक भी कलनाविषे होते हैं, जब कलनाते रहित बोध होता है, तब बंध मोक्ष दोनों नहीं रहते जबलग विचारकरि नहीं देखा, तबलग बंध अरु मोक्षभासता है, विचार कियेते दोनोंका अभाव हो जाता है, जब अहं त्वं इदं आदिक भावनाका अभाव हुआ, तब कौन किसको बंध कहै, अरु कौन किसको मोक्ष कहै, सब कलना चित्तके फुरणेकरि होती है, जब चित्तका फुरणा नष्ट होताहै, तब सब कलनाका अभाव हो जाता है तव शांतिमान् होता है, अन्यथा नहीं होता, ताते चित्तको आत्मपदविषे लीन कर, जिनके आश्रय यह जगत् उपजता है, अरु लीन होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसी अनुभवरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाशविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यगात्मबोधवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८.

विभूतियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! परमतत्त्व जो परमात्मपद हैं, सो हमको सदा प्रत्यक्ष है, वस्तुरूप वही है, तिसते इतर कछु नहीं, यह प्रत्यक् आत्मा है, सर्व सत्ताका दर्पण है, सर्वसत्ता इसीते प्रगट होती हैं, जैसे बीजते वृक्षकी सत्ता प्रगट होती है, तैसे आत्माते जगत्सत्ता प्रगट होती है ॥ हे रामजी ! मन बुद्धि चित्त अहंकार जडात्मक हैं, उनते रहित है, सो परमपद है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक सब तिसविषे स्थित हैं, तिस सत्ताको पायकरि बडी ऊंची प्रभुताकरि शोभते हैं, जैसे चक्रवर्ती राजा निर्धनते ऊंचा शोभता है, तैसे यह सर्व लोकते ऊंचे शोभते हैं, तिस आत्माको जो प्राप्त होता है, सो मृत्युको नहीं प्राप्त होता, अरु शोकवान् कदाचित् नहीं होता, अरु क्षीण नहीं होता, एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकरि आत्माको ज्योंका त्यों जानता है, सो संसारकलनाको त्यागिकरि मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मन बुद्धि चित्त अहंकारके अभाव हुए सत्तासामान्य शेष रहती है, सो तिसका भान कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सर्व देहोंविषे स्थित होकरि भोजन करता है, जलपान करता है, देखता सुनता बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है, सो आदि अंतते रहित संवित्सत्ता है, सर्वगत अपने आप-विषे स्थित है, अरु सर्व विश्व वहीरूप है; आकाशविषे आकाशरूप वही हैं, शब्दविषे, शब्दरूप वही है, स्पर्शविषे स्पर्श, नासिकाविषे गंध-रूप वही है, शून्यविषे शून्य, रूपविषे रूप, नेत्रोंविषे नेत्र वहीहै, पृथ्वी-विषे पृथ्वी, जलविषे जल, तेजविषे, तेज वृक्षविषे रस वही है, मनविषे मन, बुद्धिविषे बुद्धि, अहंकारविषे अहंकाररूप वहीहै, अग्निविषे अग्नि, उष्णताविषे उष्णता, घटविषे घट, पटविषे पटरूप वहीहै, वटविषे वट, स्थावरविषे स्थावर, जंगमविषे जंगमरूप, चेतनविषे चेतन, जडविषे

जड़रूप वही हैं, कालविषे काल, नाशविषे नाश उत्पन्न होकरि स्थित होता है, बालविषे बालक, यौवनविषे यौवन, वृद्धविषे वृद्ध, मृत्युविषे मृत्यु होकरि वही परमेश्वर स्थित है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सर्व पदार्थविषे अभिन्नरूप स्थित है; नानात्वदृष्टि भी आती है, परंतु अनाना है, भ्रमकरिकै नानात्व भासती हैं, जैसे परछाईंविषे भ्रमकरिकै वैताल भासताहै, तैसे आत्माविषे नानात्व भासता हैं, सर्वविषे सर्व ठौर सर्व प्रकार सर्व आत्माही स्थित है, ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है, तिसविषे स्थित होउ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब दिन अस्त हुआ, सर्व सभाके लोक परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि दिनको अपने अपने आसनपर आनि बैठे ॥ इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.
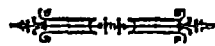
जाग्रत्स्वप्नविचारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे हमारे स्वप्नविषे पुर नगर मंडल होते हैं, तैसे ब्रह्मादिकने देवको ग्रहण किया है, उनको असत्में प्रतीति है, हमको दृढ़ प्रतीति कैसे उपजी है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम ब्रह्माको सर्ग असत्वत् भासता है, वास्तव नहीं भासता सर्वगत चेतनसंवित्को संसारके दर्शनकरि जब सम्यक् दर्शनका अभाव भया, स्वप्नरूपविषे आपते अहंप्रतीति उपजी, तब दृढ़ होकरि देखने लगा, जैसे अपने स्वप्नविषे जगत् दृढ़ भासता है, स्वप्न नहीं जानता, तैसे ब्रह्माका जगत् भी दृढ़ भासता है, स्वप्न नहीं भासता; जो स्वप्नपुरुषते उपजा है, सो स्वप्न है ॥ हे रामजी ! ऐसा जो सर्ग है सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे चेतनतत्त्वका आभास जगत् फुरते हैं, जैसे स्वप्नपुरविषे अवास्तव पदार्थ होते हैं, तैसे यह पदार्थभी अवास्तव हैं, भ्रममात्रही मनके संकल्पकरि भासते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो इस जगत्विषे सिद्ध नहीं होता, अरु अपरका

अपर नहीं भासता, अरु मर्यादाको नहीं त्यागता. काहेते कि, मनके संकल्पमात्र उपजे हैं, तू देख, जैसे जलविषे अग्नि स्थित है, अथवा समुद्रविषे वडवाग्नि है, सो क्या विपर्यय है? इसी कारणते मैं कहता हौं, जो मनोमात्र हैं, अरु देख जो आकाशविषे नगर वसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं, अरु शिला जो हैं चिंतामणि आदिक, तिनते कमल उपजते हैं जैसे हिमालय पर्वतविषे बर्फ उपजता है, अरु सर्व ऋतुके फूल एकही समय उपजते हैं, जैसे संकल्पवृक्षते पत्थर निकसि आते हैं, रत्नोंके गुच्छे जो लगते हैं, शिलाविषे जल निकसता है, तैसे चंद्रकांतसों अमृत द्रवता है, एक निमेषविषे घट पट हो जाते हैं, अरु पटघट हो जाते हैं; स्वरूपके विस्मरण हुए सत्को असत् देखताहै, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, जल ऊर्ध्वको चलता देखता है, मेघ होकरि स्वर्गका चंदोआ होकरि गंगा बहती है, पत्थर उडते हैं, जैसे पंखहूसहित पहाड़ उड़ते थे, चिंतामणि शिलारूपते सब पदार्थ उपजते हैं, इत्यादिक भ्रमकारि नानात्व विपर्ययरूप हुए फुरते हैं, ताते तू देख, जो मनोमात्र हैं, अपरका अपर हो जाते हैं ॥ हे रामजी! यह इंद्रजाल गंधर्वनगर शंबर मायावत् है, असत्‌ही भ्रमकरिके सत् हो भासते हैं, ऐसे पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं अरु असत् भी नहीं, मनविषे फुरते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नविचारो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

ब्रह्मैकप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, जो पुरुष इसको सत्य जानता है, सो महामूर्ख है, अरु भ्रमविषे भ्रमको देखता है, अरु महामोहको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ मृग टोएविषे गिर पडता है, तब महादुःखी होता है, बहुरि उसते भी बड़े टोएविषे गिरता है, तब अति दुःखको प्राप्त होता है, तैसे जो मूर्ख पुरुष है, सो आत्माके अज्ञानकरिके संसाररूपी टोएविषे गिरता है, तिसविषे अपर अपर भ्रमको देखता

है, स्वप्नते स्वप्नांतरको देखता है, इसीते एक इतिहास कहता हौं ॥ हे रामजी ! तू श्रवण कर. एक संन्यासी था, सो मननशीलवान् था, योगका अष्टवाँ अंग समाधि है, तिसविषे स्थित था, अरु हृदय उसका समाधि करते करते शुद्ध हुआ था, समाधिकरि दिनको व्यतीत करै, जब समाधिते उतरै, तब आसन बनायकरि बहुरि समाधिविषे जुडै, इसीप्रकार जब बहुत काल व्यतीत भया तब एक समय समाधिते उतरे हुए, यह चिंतना करने लगा, कि जैसे प्रकृत पुरुष विचरतेहैं, अरु चेष्टा करते हैं, तैसे मैं भी कछु चेष्टा रचौं, ऐसे विचार करिकै मनके संकल्पते विश्वकल्पि तिसविषे एक आप भी बना, तिसका नाम झीवट भया, मद्यपान करै, अरु ब्राह्मणकी सेवा भी करै, तिस झीवट शरीरविषे वर्त्तने लगा, चेष्टा करते हुए सोय गया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे ब्राह्मणका शरीर तिसको भान हुआ कि, मैं ब्राह्मण हौं, तब ब्राह्मणके शरीरविषे वेदका अध्ययन करने लगा, तब पाठ बहुत करै, ऐसी चेष्टाकरि चिरकाल व्यतीत भया, तब सोए हुए स्वप्न पाया, तहां आपको राजा देखत भया, कि मैं राजा हौं, बडी सेनासंयुक्त राजा होकरि विचरने लगा, केताक काल इसीप्रकार व्यतीत भया, तब सोए हुए बहुरि स्वप्न पाया, तिसस्वप्नविषे आपको चक्रवर्ती राजा देखत भया, कि मैं चक्रवर्ती राजा हौं, तब चक्रवर्ती होकरि सारी पृथ्वीपर आज्ञा चलाने लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपको देवांगना देखत भया, कि मैं देवताकी स्त्री हौं तब देवताकी स्त्रीहोकरि देवताके साथ बागविषे विचरै जैसे वल्ली वृक्षके साथ शोभा पातीहै, तैसे देवताके साथ शोभा पाने लगा, इसीप्रकार कोई काल देवताके साथ व्यतीत भया, तब बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपको हरिणी देखता भया, कि मैं हरिणी हौं, हरिणी होकरि वनविषे विचरने लगा, कोई काल ऐसे व्यतीत भया, बहुरि स्वप्न पाया, तब आपको वल्ली देखता भया कि, मैं देवताके वनकी वल्ली हौं, जब ऐसे कोई काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपको भँवरी देखत भया. कि मैं भँवरी हौं भँवरी होकरि सुगंधिको ग्रहण करने लगा, तिसके अन्तर बहुरि स्वप्न पाया, तब देखत

भया, कि मैं कमलिनी हौं, कमलिनी हुआ, तहां एक दिन हस्ती आयकरि वल्लीको खाय गया, जैसे कोई मूर्ख बालक भली वस्तुको तोड डारता है, तैसे मूर्ख हस्ती वल्लीको तोडकर खाय गया, तिसके उपरांत तिस वल्लीमें हस्तीका शरीर,पाय बड़ा दुःख भी पाया, टोएविषे गिरा, केताक काल व्यतीत भया, तब फिर हस्तीका स्वप्न आया, बहुरि भँवरी होकारि कमलविषे विचरने लगा, केताक काल व्यतीत भया, तब बहुरि वल्ली हुआ, उस वल्लीके निकट एक हस्ती आया, हस्तीके पादकरि वह वल्ली चूर्ण भई, तब उस वल्लीको एक हंसने खाया, वह वल्ली हंस भई, हंस होकरि बड़े मानससरोवरविषे विचरने लगा, बहुरि हंसके मनविषे आया कि, ब्रह्माका हंस होउं, तब संकल्पकरिकै ब्रह्माका हंस बनि गया, जैसे जलका तरंग बनि जावै, तैसे वह ब्रह्माका हंस बनि गया, तब ब्रह्माके उपदेशकारि हंसको आत्मज्ञान प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै ऐसे भ्रमको प्राप्त भया, सो ज्ञानकरिकै शांत भया, बहुरि विदेहमुक्त होवैगा, वह हंस सुमेरु पर्वतविषे उडा जाता था, बहुरि उसके मनविषे आया कि, मैं रुद्र होऊं, तब सत्संकल्प करिकै रुद्र होगया, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब शीघ्रही पड़ता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणके संकल्पकारि रुद्र भया, रुद्र कहिये जिसको अनुत्तर ज्ञान है, अनुत्तरज्ञान कहिये जिसके जाननेते अपर जानना कछु न रहै, सर्वते श्रेष्ठ ज्ञान सो रुद्रको अनुत्तर ज्ञान है, तिस अनुत्तर ज्ञानकारि शोभित रुद्र होकारि अपनी चेष्टा करत भया, अरु अपने गुणको देखत भया, रुद्रके मनविषे विचार हुआ कि बड़ा आश्चर्य है, मैं अज्ञानकरिकै एते बड़े भ्रमको प्राप्त हुआ था, ऐसी आश्चर्य माया, मैं तौ एक रूप पड़ा हौं, अरु यह विश्व मेरा स्वरूप है, अपने जो मेरे शरीर हैं, तिनको जायकारि जगावौं, तब रुद्र उठ खड़ा हुआ, अपने स्थानोंको चला, प्रथम जो संन्यासीका शरीर था, तिसको आयकारि देखा, देखिकारि तिसको चित्तशक्तिसों जगाया; तब संन्यासीके शरीरविषे ज्ञान हुआ, जो सर्व मैंही खड़ा हौं, परंतु संन्यासीने जाना कि, मेरे ताईं रुद्रने जगाया है, तब जानत भया कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं, तब वहांते रुद्र अरु संन्यासी दोनों चले,

झीवटके स्थानमें आये. देखा कि, झीवट शबकी नाईं पड़ा है, अरु मदिराके बासन पड़े हैं, अरु चेतना वहांही पड़ी भ्रमती है, नानाप्रकारके स्थानोंको देखती है, जैसे झरणेके छिद्रविषे कीडी भ्रमती है, तब झीवटको चित्तशक्तिकरि जगाया, वह उठ खडा हुआ, तिसको ऐसे स्मरण हुआ कि, मुझको तौ इनने जगाया, तब झीवटके मनविषे विचार हुआ कि, इनते शरीर मेरे और हैं, तब रुद्र संन्यासी अरु झीवट तीनों चले, बहुरि इनने विचार किया कि, हम एते शरीर क्योंकरि पाये, जो आदि एक परमात्माविषे चैत्योन्मुखत्व करिकै मैं संन्यासी भया, बहुरि संन्यासीते झीवट हुआ; मद्यपान करने लगा, बहुरि ब्राह्मण हुआ, तहां वेदका पाठ करने लगा, तिस वेदके पाठ करनेके पुण्यकरि राजाका शरीर धारा, तिसके आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त भया, चक्रवर्ती राजा हुआ, जब चक्रवर्ती राजाके शरीरविषे काम बहुत हुआ, तिसके होनेकरि देवताकी स्त्री भया, तब स्त्री शरीरमें बहुत प्रीति नेत्रोंविषे थी, तिसते हरिणी भया, बहुरि भँवरी भया, तिसते आगे वल्ली भया, इसते लेकरि जो शरीर धारे, सो मैंने मिथ्या धारे हैं, अरु अज्ञानकरिकै मैं बहुत काल भटकता रहा हौं, अनेक वर्ष अरु सहस्रही युग व्यतीत हो गये हैं, संन्यासीते आदि रुद्रपर्यंत वासनाकरिकै जन्म पाये हैं, एते जन्म पायकरि भी ब्रह्माका हंस जाय हुआ, तहां ज्ञानकी प्राप्ति भई, काहेते जो पूर्ण अभ्यास किया था, तिसकरि अकस्मात्ते सत्संग आनि प्राप्त भया, ऐसे विचार करते वहांते चले, तब चेतन आकाशविषे उड़े ब्राह्मण वेदपाठ करनेवालेकी सृष्टिविषे गये तब उसको देखा कि, सोया पड़ा है, चित्तशक्तिकरिकै उसको जगाया, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करनेवाला, अरु ब्राह्मण चारो, वहांते चले, चित्ताकाशविषे उड़े राजाकी सृष्टिविषे गये, तब देखत भये कि, राजाकी सृष्टि चेष्टा करती है, अरु राजा अपने मंदिरविषे शय्यापर सोया है, अरु रानी भी साथ सोई है, सो राजाका देह स्वर्णकी नाईं शोभायमान है, तैसाही रानीका देह है, दोनों सोए पड़े हैं, तिसपर सहेलियां चमर करती हैं तब राजाको चित्तशक्तिकरि जगाया, तब राजा देखत भया कि, सर्व

विश्व मेराही स्वरूप है, अरु देखत भया कि एते शरीर मैंने अज्ञान करिकै धारे हैं, आश्चर्य माया है, राजा स्वरूपविषे जागा, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण अरु राजा वहांते चले अरु हस्तीते आदि लेकरि जो शरीर धारे थे सो जगाये, वह शरीर धारे थे, सो सब जगाये तिनविषे यही निश्चय भया कि, हम चिन्मात्ररूप हैं, अरु आवरणते रहित हैं, आवरण कहिये अज्ञानका फुरणा तिसते रहित हैं ॥ हे रामजी ! तब उनके शरीर देखनेविषे सब दृष्ट आवैं, परंतु चेष्टा सबकी एक जैसी अरु निश्चय भी एक जैसा उनका नाम सत् रुद्र भया, वह सत् रुद्र हुये ॥ ताते हे रामजी ! विश्व संपूर्ण अज्ञानरूप फुरणेकरिकै होता है, अरु ज्ञानकरिकै देखिये, तब कछु हुआ नहीं ऐसेही उनकी संवेदन अरु निश्चय एक जैसा हुआ, एक देखै तौ सर्वही मेरा रूप है, जब दूसरा देखै तब मेराही रूप है, इसीप्रकार सर्वही देखत भये कि, सब अपनाही स्वरूप है, तिसविषे यह दृष्टांत है, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, आकार उनके भिन्न भिन्न होते हैं, अरु स्वरूप उनका एक जैसा होता है तैसे ज्ञानवान् सर्व विश्वको अपनाही स्वरूप देखते हैं, अरु अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं, अरु आपको भिन्न जानते हैं, एकको दूसरा नहीं जानता, दूसरेको प्रथम नहीं जानता, सो क्या नहीं जानते, जो अपना स्वरूप है, तिसको नहीं जानते, जैसे पत्थरके वटे दो पडे होवैं, तब न आपको जानते हैं, न दूसरेको जानते हैं, कि मेरा स्वरूप तैसे अज्ञानी न आपको जानते हैं, न अपरको अपना स्वरूप जानते हैं ॥ हे रामजी ! यह विश्व अपनाही स्वरूप है, अरु अज्ञानकरिकै भिन्न भासता है, अज्ञान कहिये जो चिन्मात्रविषे फुरणा, तिस फुरणेविषे संसार है, अरु अफुरणेविषे आत्माही स्वरूप है, ताते हे रामजी ! फुरणेका त्याग करु, अपर कछु नहीं, जिसप्रकार शत्रु मरै तिसप्रकार मारिये यही यत्न करहु, अरु मैं तेरे ताईं ऐसा उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी कछु नहीं, अरु शत्रु भी मारा जावै, सो उपाय यही है कि, चिंतवना कछु न करिये, इसविषे यत्न कछु नहीं, सुगम उपाय है ॥ हे रामजी ! यह चिंतवनाही दुःख है, अरु चिंतव-

नाते रहित होनाही सुख है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु, इस चित्तके फुरणेकारि संसार है, अरु निवृत्त होनेते स्वरूपही है, जैसे पत्थरविषे पुतलियां पुरुष कल्पता है, तब पत्थरते भिन्न पुतलियोंका अभाव है, तैसे चित्तने विश्व कल्पा है, जब चित्त निवृत्त होवै, तब विश्व अपना स्वरूप है, अपर भिन्न कछु नहीं, अरु चित्तसाथ जहां जावै, तहां तहां पंचभूतही दृष्टि आते हैं, आत्मा दृष्टि नहीं आता, अरु चित्तते रहित ज्ञानी जहां जावै तहां आत्माही दृष्टि आतेहैं, जब चित्तकी वृत्ति बहिर्मुख होतीहै, तब संसार होता है, पंचभूतही दृष्ट आते हैं, अरु जब चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है, तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो अज्ञानरूप आत्माविना सिद्ध नहीं होते, प्रथम आपको जानता है, तब पाछे अपर पदार्थ जानते हैं, इसीते ज्ञानवान् सर्व अपना आप जानता है ॥ हे रामजी ! यह जेते कछु पदार्थ हैं, सो फुरणेकारि कल्पते हैं, अरु जेते जीव हैं, तिनकी संवेदन भिन्न भिन्न है, अरु संवेदनविषे अपनी अपनी सृष्टि है, जैसे कोऊ पुरुष सोता है, तिसको अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है, अरु अपर तिसके पास बैठा होता है, उसको नहीं भासती, उसकी विश्व स्वप्नको नहीं जानती, अरु जो ज्ञानी है, तिसको अपना आपही भासता है, यह जगत् सब अपना रूप जानता है, अरु ज्ञानी जिस ओर देखता है, तिस ओर तिसको पांचभौतिक दृष्ट आते हैं, जैसे पृथ्वीके खोदेते आकाशही दृष्ट आता है, तैसे ज्ञानी चित्तसहित जहां देखताहै, तहां पंचभूतही दृष्ट आते हैं ॥ताते हे रामजी ! तू फुरणेते रहित होहु फुरणेही कारिकै बंध है, अफुरणेकरिकै मोक्ष है, आगे जैसे तेरी इच्छा हो तैसा कर ॥ हे रामजी ! जो अफुरणेकरिकै अस्त हो जावै, तिसके नामविषे कृपणता करनी क्या है, अरु जो अफुरणेकारिकै प्राप्त होवै, तिसको प्राप्तरूप जान ॥ राम उवाच हे मुनीश्वर ! यह झीवट ब्राह्मणते आदि लेकारि संन्यासीके रूप स्वप्नविषे हुए, तिसते उपरांत बहुरि क्या हुआ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्राह्मणते आदि जेते शरीर थे, सो रुद्रकारि जगाये हुए सुखी भये जब सबही इकट्ठे भये, तब रुद्रने तिनको कहा हे साधो ! तुम अपने अपने

स्थानको जाउ, अरु कोऊ काल अपने कलत्रविषे भोग भोगहु, बहुरि तुम मेरे गण होकरि मुझको प्राप्त होहुगे, महाकल्पविषे हम सबही विदेहमुक्त होवैंगे ॥ हे रामजी ! जब ऐसे रुद्रने कहा, तब सब अपने अपने स्थानोंको गये, अरु रुद्रजी भी अंतर्धान हो गये, सो अब भी तारेका आकार धारे हुए कभी कभी मुझको आकाशविषे दृष्ट आते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा संन्यासीने झीवटते आदि सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुए, अरु तिनकी सृष्टि कैसे सत् हुई सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा सबका अपना आप है, शुद्ध है, अरु चेतन आकाश है, अरु अनुभवरूप है, तिस अपने आपविषे जैसे देश काल वस्तुका निश्चय होता है, तैसेही आगे बन जाता है, जैसे जैसे फुरता है, तैसेही आगे हो जाता है, जिसका मन शुद्ध होता है, तिसका सत्संकल्प होताहै, जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, अरु जब तू कहै, संन्यासीका अंतःकरण शुद्ध था, तिसने नीच ऊँच जन्म कैसे पाये, नीच कहिये मद्यपान करनेवाला, अरु भँवरी वल्लीते आदि लेकरि, अरु ऊंच कहिये ब्राह्मण राजाते आदि लेकरि शुद्ध अंतःकारणविषे ऐसे जन्म न चाहा, तिसका उत्तर यह है कि, संवेदनाविषे जैसा फुरणा होता है, तैसाही हो भासता है, जैसे एक पुरुषका अंतःकारण शुद्ध होवै, तिसको मनविषे फुरै कि, एक शरीर मेरा विद्याधर होवै, अरु एक शरीर मेरा भेडता होवै तिसके दोनों हो जाते हैं, भला भी अरु बुरा भी, अरु जब तू कहै बुरा क्यों बना, भला ही बनता, तिसका उत्तर सुन, जैसे भले पंडितके घर पुत्र होवै, अरु संस्कार करिकै चोर हो जावै, संस्कार क्या जो वासना मलिन होवै, तब तिसको दुःख होता है ॥ ताते हे रामजी ! सर्व फुरणेहीकारि ऊंच नीच होते हैं, जब अभ्यास अरु परम योग होता है, तब शुद्ध होता है, अभ्यास कहिये मंत्र जाप, अरु योग कहिये चित्तका स्थिर करना, इसकारिकै जैसी जैसी चिंतना होती है, तैसीही सिद्धि होती है, अरु अज्ञानीकी नहीं होती है, जैसे वस्तु निकट पड़ी है, भावना नहीं तब दूर है, तैसे अज्ञानीकी भावना नहीं, न तब दूरवाली प्राप्त होती है, न निकटवाली प्राप्त होती है, क्यों नहीं

सिद्ध होती, जो उसकी भावना दृढ़ नहीं, अरु हृदय शुद्ध नहीं संकल्प भी तब सिद्ध होता है, जब हृदय शुद्ध होता है, शुद्ध हृदयवाला जिसकी चिंतवना करता है, दूर है सो भी सिद्ध होता है अरु जो निकट है सो ही सिद्ध होता है, अरु जब तू कहै संन्यासी तौ एक था, बहुत शरीर कैसे चेतन हुए तिसका उत्तर सुन, जो कोई योगीश्वर है, अरु योगिनी देवियां हैं, तिनका संकल्प सत्य है, जैसा संकल्प फुरता है, तैसाही होता है, ऐसे सत्संकलपवाले अनेक मैं आगे देखे हैं, एक सहस्रबाहु अर्जुन राजा था, सो घरविषे बैठा हुआ शिरपर छत्र पड़ा झूलता है, अरु चमर पड़ा होता है, तिसके मनविषे संकल्प हुआ कि, मैं मेघ होकरि बरसौं तिस संकल्प करणेकरि एक शरीर तौ राजाका रहा अरु एक शरीर मेघ होकरि बरसने लगा, अरु विष्णु भगवान् एक शरीरकरिकै क्षीरसमुद्र-विषे शयन करता है, अरु प्रजाकी रक्षानिमित्त अपर शरीर भी धारि-लेता है, अरु यज्ञ देवियां अपने स्थानोंविषे होती हैं, बडे ऐश्वर्यकरि देशोंविषे भी विचरती हैं, अरु इंद्र भी एक शरीरकरि स्वर्गविषे रहता है, अरु अपर शरीर करिकै जगत्‌विषे भी बैठा रहता है, इत्यादिक जो योगी-श्वर हैं, तिनका जैसा संकल्प होता है, तैसीही सिद्धिहोती है, अरु जो अज्ञानी मूर्ख हैं, तिनका मन बडे भ्रमको प्राप्त होता है, बडे मोहको प्राप्त होते हैं, मोहते आगे मोहकरि नीच गतिको प्राप्त होते हैं, जैसे बडे पर्वतके ऊपरते बटा गिरता है, सो नीचे स्थानको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख आत्मपदते गिरनेकरिकै संसाररूपी टोयेविषे पडते हैं, अरु बडे दुःखको प्राप्त होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा जो संसार स्वप्नमात्र है, सो मैंने जाना है, जो अनंत मोहरूपी विषमता है, अरु आत्मचेतनरूप आनंदके प्रमादकरिकै आपको जड दुःखी जानता है, बडा आश्चर्य है, अरु हे भगवन् ! यह जो तुमने संन्यासी कहा, तिस जैसा कोऊ अपर भी है, अथवा नहीं सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! संसाररूपी मढी है, तिसविषे मैं रात्रिके समय समाधि करिकै देखौंगा, अरु दिनको तेरे ताईं जैसे होवैगा तैसे कहौंगा ॥ वाल्मीकि-रुवाच ॥ हे राजा ! ऐसे जब वसिष्ठजीने कहा, तब मध्याह्नका समय

हुआ, अरु नौबत नगारे बाजने लगे, बडा शब्द हुआ जैसे प्रलयकालका मेघ गर्जता है, तैसे शब्द होने लगा; तब वसिष्ठजीके चरणोंपर राजा, अरु देवताओंने फूल चढाये, सबने बडी पूजा करी, जैसे बडा पवन चलता है, अरु वेगकरिकै बाग वृक्षोंके फूल पृथ्वीपर गिर पडते हैं, तैसे बहुत फूलोंकी वर्षाकरि जब बहुत पूजा होरही तब वसिष्ठजीको नमस्कार करिकै उठ खडे हुए, बहुरि आपविषे नमस्कारकरि बहुरि राजा दशरथते आदि लेकरि राजा अरु ऋषि सब उठे, जैसे मंदराचल पर्वतते सूर्य उदय होता है, तैसे वसिष्ठजीते आदि लेकरि ऋषि अरु राजा दशरथते आदि सब उठे, तब पृथ्वीके राजा अरु प्रजा पृथ्वीको चले आकाशके सिद्ध अरु देवता जो थे सो आकाशको चले, सब अपने अपने कर्मविषे जाय-लगे, जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है, तिसविषे स्थित भये, अरु जब रात्रि हुई तब आपही आप विचार करत भये कि वसिष्ठजीने कैसे ज्ञान उपदेश किया, तिस विचारविषे रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत भई, अरु वसिष्ठजीके मिलनेकी वांछाविषे रात्रि कल्पके समान बीती, तब सूर्यकी किरणैं उदय होनेसों आनि स्थित भये, अरु राम लक्ष्मणजीते आदि लेकरि सब स्थित भये, अरु सबने आपसविषे नमस्कार किये, अरु अपने अपने आसनपर बैठ गये, शांतरूप होकरि स्थित भये, जैसे पवनते रहित कमल स्थित होते हैं, तैसेही फुरणेते रहित शांतरूप स्थित भये, तब वसिष्ठजी अनुग्रह करिकै आपही कहत भये ॥ हे रामजी ! तेरी प्रीतिके निमित्त मैं संसाररूपी मढीका बहुत खोज किया, आकाश अरु पाताल सप्त द्वीप सब खोजे हैं, परंतु ऐसा संन्यासीकोई दृष्ट न आया, जैसे अन्यका संकल्प नहीं भासता, जब रात्रिका पिछला प्रहर शेष रहा तब मैं बहुरि ढूंढिकरि उत्तर दिशाविषे चिन्माचीन नगरमें एक स्थान हैं, तहां एक मढी देखी, तिसके दरवाजे चढे हुए देखे, तिसविषे पके केशवाला संन्यासी बैठाहै अरु बाहर उसके चेले बैठे हैं, वह दरवाजे खोलते नहीं कि, हमारे गुरुकी समाधि मत खुलि जावै, तिस स्थानविषे बैठा है, मानो दूसरा ब्रह्मा बैठा है, अरु जिस देशविषे बैठा है, तिसके बैठे दिन इक्कीस भए हैं,

समाधिविषे स्थित हुए अरु उसको समाधिविषे सहस्र वर्षका अनुभव भया है, अरु बहुत जन्म भी पाये हैं, कैसे जन्म जो प्रत्यक्ष देखत भया, अरु सृष्टिभी प्रत्यक्ष देखी, तिसविषे विचरा ॥ हे रामजी ! इस जैसा एक अपर भी पूर्व कल्पविषे था, यह तीनहीथे, सो एकको बहुत देख रहा हौं, कोई दृष्ट नहीं आता, तब राजा दशरथने कहा ॥ हे महामुने ! जब तुम आज्ञा करौ, तब मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगर उत्तरवाले भेजौं तहां,जायकरि तिस संन्यासीको जगावौं, तब वसिष्ठजीने कहा ॥ हे राजन् ! वह संन्यासी अब ब्रह्मका हंस होकरि ब्रह्माके उपदेशसों जीवन्मुक्त हुआ है, अरु जो शरीर उसका है, सो अब मृतक हुआ है, इसविषे अब पुर्यष्टका जो जीव हैं सो नहीं तिसको क्या जगावना है, अरु एक महीने पीछे उसका दरवाजा सो खोलैंगे, तब नगरके लोक देखैंगे,जो मृतक पडा है, ताते हे रामजी ! यह विश्व संकल्पमात्रही है, अरु जब तू कहै, एक जैसे क्योंकरि हुए तब सुन, जैसे यह मुनीश्वर ऋषि राजा अरु अपर जो संसारविषे लोक हैं सो कई बार एक जैसा शरीर धारते हैं,अरु कई मध्य धारते हैं, कई कछु थोडा धारते हैं अरु कई विलक्षण धारते हैं, सो श्रवण कर, यह जो नारद है, सो इस जैसा अपर भी नारद होवैगा, तिसकी चेष्टा भी ऐसी होवैगी, अरु शरीर भी ऐसा होवैगा, अरु व्यासजी अरु शुकदेव भृगु अरु भृगुका पिता अरु जनक अरु करकरी, अरु अत्रि ऋषीश्वर जैसा अब है, अरु अत्रिकी स्त्री भी जैसी अब षंढ है ऐसाही अत्रि अरु ऐसीही स्त्री होवैगी, इनते आदि लेकरि बहुरि होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग एक जैसे भी होतेहैं,घट अरु वट भी होतेहैं॥ हे रामजी ! तैसे यह संसार ब्रह्माते आदि लेकरि पातालपर्यंत सब मनका रचा हुआ है, सो सब मिथ्या है, जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है, तब संसार देश काल होता है, जब अंतर्मुख होती है, तबलग आत्मपद प्राप्त होता है, अरु जबलग बहिर्मुख होती है, तबलग दुःखको पाता है, अपना स्वरूप आनंदरूप है, तिसविषे चित्तकला जाती है कि, मैं सदा दुःखी हौं, देह अरु इंद्रियां साथ मिलिकरि दुःखी होता है ॥ ताते हे रामजी ! इस अज्ञानरूप फुरणेते तू रहित होउ फुरणेकरि

यह अवस्था प्राप्त होती है, जैसे चंद्रमा अमृतकरिकै पूर्ण है, तिसविषे चर्मदृष्टि करिकै कलंकता भासती है, तैसे आत्मा अमृतरूपी चन्द्रमाविषे अज्ञानदृष्टिकरिकै जन्म मरण शोकदुःख भय कलंक देखता है, महाआश्चर्य माया है, जैसे चंद्रमा एक हैं, नेत्रदोषकरिकै बहुत भासते हैं, तैसे एक अद्वैत आत्माविषे विश्व नानात्व अज्ञानकरि भान होता है, यही माया है ॥ हे रामजी ! तू एकरूप आत्मा है, तिसविषे फुरणेते विश्व कल्पी है, ताते फुरणेतेरहित होउ, फुरणेते रहित हुए विना आत्माका दर्शन नहीं होता; जैसे सूर्य उदय हुये भी बादलके होते शुद्ध नहीं भासता, तैसे फुरणरूपी बादलते दूर हुए आत्मरूपी सूर्य शुद्ध भासता है, अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा फुरणेते कल्पे हैं ॥ हे रामजी ! इस संसारका सार जो आत्मा है, तिसविषे सुषुप्तिकी नाईं मौन होउ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तीन मौन मैं जानता हौं, सो कौन हैं, एक वाणीमौन, चुपकरि रहना; अरु एक इंद्रियकी मौन, अरु एक कष्टमौन कष्टमौन, कहिये जो हठकरिकै मनइंद्रियोंको वश करना, यह तीनों मौन मैं जानता हौं, अरु सुषुप्तमौन तुम कहौ कि, क्या है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तीन मौन कष्ट तपस्वीके हैं, अरु सुषुप्तमौन ज्ञानी जीवन्मुक्तका है, अरु तीनों मौन अज्ञानी तपस्वीके बहुरि श्रवण कर, एक मौन वाणीका जो बोलना नहीं अरु एक मौन समाधि जो नेत्रोंको मूंदि लेना, देखना कछु नहीं, एक हठकरि स्थित होना, इंद्रियां अरु मनको स्थिर करना, अरु एक मौन इंद्रियोंकी चेष्टाते रहित होना, यह तीनों मौन कष्ट तपस्वीकी हैं, अरु सुषुप्तमौन ज्ञानीकी सुन, सुषुप्तमौन कहिये जो वाणीकरिकै अरु इंद्रियोंकरिकै चेष्टा भी होवै, अरु आत्माते इतर अपर न भासै, यह उत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै कि, न मैं हौं; न जगत् है, ऐसे निश्चयविषे स्थित होना, यह महाउत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै कि, सर्व मैंही हौं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होना, यह बड़ी उत्तम मौन है ॥ हे रामजी ! विधिकरिकै भी आत्माकी सिद्धि होती है, अरु निषेधकरिकै भी आत्माकी सिद्धि होती है, तिस आत्माविषे स्थित होना यह बड़ी मौन है ॥ हे रामजी ! यह जो मैं सुषुप्त मौन कही है, सो क्या है, तू सुन,

संसार द्वैतरूपके फुरणेते सुषुप्त होना अरु आत्माविषे जागना यही सुषुप्तमौन है, द्वैतके फुरणेते रहित होना यही सुषुप्ति है, अरु आत्माविषे जागना यही तेरे ताईं कहा है, अरु ऐसे देखना कि, न मेरेविषे जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, इस निश्चयविषे स्थित होना यह तुरीयातीत सो पंचम मौन है, ऐसा जो तुरीयातीत पद है, सो अनादि है, अनंत है, अरु जराते रहित है, शुद्ध है, अरु निर्दोष है, इस निश्चयविषे स्थित होना, यह उत्तम मौन है ॥ हे रामजी ! ज्ञानी इंद्रियोंके रोकनेकी इच्छा भी नहीं करता, अरु न विचरनेकी इच्छा करता है, जैसे स्वाभाविक होती है, तिसीविषे स्थित होता है, यह परम मौन है, अरु ज्ञानीको सुखकी इच्छा भी नहीं, दुःखका त्रास भी नहीं, हेयोपादेयते रहित होना यह परम मौन है ॥ हे रामजी ! तुम रघुवंशकुलविषे चद्रमा हौ अपने स्वभावविषे स्थित होना प्रम मौन है ॥ हे रामजी ! संसारभ्रम मनके फुरणेकरिकै होता है, सो मिथ्या है वास्तव कछु नहीं, न शरीर सत्य है, न माया सत्यहै ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप ओंकार है, ओंकारको अंगीकार करिकै स्थित होना,यह परम उत्तम मौन है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो सब रुद्र तुमने कहे सो रुद्र थे, अथवा रुद्रगण थे ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी !जिसको रुद्र कहते हैं,तिसीको गण कहते हैं,यह सबही रुद्र हैं॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो तुमने कहा, सब रुद्र हुए, सो यह तो एकचित्त थे सब क्योंकरि हुए जैसे दीपकते दीपक होता है, क्या इसी भाँति हुए?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक सावरणहै, एक निरावरण है, जहां शुद्ध अंतःकरण है सो निरावरणहै, अरु जहां मलिन अंतःकरण है, सो सावरण है, शुद्ध अंतःकरणविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा तत्काल आगे सिद्ध होता है, अरु मलिन अंतःकरणका फुरणा सिद्ध नहीं होता; ताते शुद्ध जो निरावरण रुद्र है, सो आत्मा है, अरु सर्वव्यापी है, जैसा उनका निश्चय होता है, सो सत्य है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! रुद्र सदाशिवकी चेष्टा तौ मलिन है जो रुंडोंकी माला गलेविषे धारता है, अरु विभूति लगाई हुई है, अरु श्मशानविषे विहरताहै अरु स्त्री बायें अंग रहती है, तिसको तुम कैसे कहते हौ कि, शुद्ध अंतःकरण है,

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह शुद्ध अशुद्ध अज्ञानीको कहते हैं; जो शुद्धविषे वर्त्तै अशुद्धविषे न वर्त्तै अरु जो ज्ञानी है, सो क्रियाको अपनेविषे नहीं देखता, तिसको शुद्ध अशुद्ध मलिनकारि राग द्वेष कछु नहीं होता, ऐसा जो सदाशिव है, तिसको न ग्रहण करना है, न त्याग करना है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, सो होवै, सो कैसी होती है, श्रवण करु, आदि परमात्माविषे विष्णु भगवान्का फुरणा हुआ, जो चार भुजा धारै, संसारकी रक्षा करनी, शुद्ध चेष्टा राखनी, अरु अवतार धारण, धर्मकी रक्षा करनी, अरु पापीको मारणे यह आदि फुरणा हुआ है ॥ हे रामजी ! यह क्रिया स्वाभाविकही जो आनि प्राप्त हुई है, इस क्रियाका इनको रागद्वेषकरिकै हेयोपादेय कछु नहीं, अरु क्रियाका इनको अभिमानही नहीं, जो हम करते हैं, इसीते क्रिया इनको बंध नहीं करती, ताते यह संसार फुरणेमात्र है, जब तू फुरणेते रहित होवैगा, तब तेरे ताईं त्रिपुटी न भासैगी, आत्माते इतर कछु भासैगा, ताते तू अज्ञानरूप फुरणेते रहित होहु, जब तुमको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब तू जानैगा कि, मेरेविषे फुर दृश्य अदृश्य कछु नहीं, अरु आत्मपद है, जिसविषे एक कहना भी नहीं, तब द्वैत कहांते होवै ॥ हे रामजी ! दृश्य अदृश्य फुरणा अफुरणा अरु विद्या अविद्या, यह सब जतावनेके निमित्त कहते हैं, अरु आत्माविषे कहना कछु नहीं; आत्मा एक है, जिसविषे द्वैतका अभाव है, जब चित्तपरिणाम बहिर्मुख होते हैं, तब विश्वका भान होता है, अरु जब चित्त अंतर्मुख परिणाम पाताहै तब अहंता ममताका नाश होता है, अरु चेतनमय शेष रहता है, अरु जब अतिशय अंतर्मुख परिणाम पाता है, तब चेतन कहना भी नहीं, रहता, अरु जब इसते भी अतिशय परिणाम पाता है, तब है नहीं कहना भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ! ऐसा आत्मा तेरा अपना आप स्वरूप है, अरु शान्त पद है जिसविषे वाणीकी गम नहीं, जो ऐसा कहिये अरु तैसा कहिये ऐसा कहिये इंद्रियोंका विषय है अरु तैसा कहिये इंद्रियोंते पर है, जब तू अपने विषे स्थित होवैगा, तब जानैगा कि, मेरेविषे अहं फुरणा कछु नहीं आत्मरूपी सूर्यके साक्षात्कार हुएते दृश्यरूपी अंधकारका अभाव हो

जावैगा काहेते कि, जो तेरा आत्मा अपना आप है, केवल शांतरूप है, अरु निर्मल है, जैसे गंभीर समुद्र वायुते रहित होता है, तैसे आत्मारूपी समुद्र संकल्परूपी वायुते रहित गंभीर शुद्ध होता है, अरु यह संसार चित्तका चमत्कार है, सो चित्त निरंश है, तिसविषे अंशांशीभाव नहीं; अद्वैत है ॥ हे रामजी ! जब ऐसे बोधविषे स्थित होवैगा, तब इस विश्वको भी आत्मरूप देखैगा, अरु बोधविना देखैगा, तब विश्वका भान होवैगा ताते हे रामजी ! बोधविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण-प्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

वेतालप्रश्नोक्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सदाशिवका आदि फुरणा हुआ है; जो त्रिनेत्र, अरु विश्वका संहार करणा, अरु शिरकी माला धारणी, अरु ब्रह्माके चार मुख, अरु चारों वेद हाथविषे, अरु संसारकी उत्पत्ति करणी ऐसे फुरणा हुआ है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा विष्णु रुद्र यह तीनों एकरूप हैं, अरु चेष्टा इनकी स्वाभाविक यही बनी पडी है, न राग-करिकै अंगीकार किया है, न द्वेषकरिकै त्याग करते हैं, अरु यह संज्ञा भी लोकके देखनेमात्र हैं, अपने ज्ञानविषे कछु नहीं करते, जो बोधविषेही जाग्रत है, बोधविषे जाग्रत् क्या कहिये, अरु कैसे होता है, सो श्रवण करु, एक सांख्य मार्गकरि होता है, अरु एक योगमार्गकरि होता है, सांख्य कहिये तत्त्व अरु मिथ्याका विचारणा, तत्त्व कहिये मैं आत्मा हौं, सत् हौं अरु चेतन हौं, अरु मिथ्या सर्व दृश्य जड़ असत् है, मेरेविषे अज्ञानकरि कल्पित है, मैं आत्मा अद्वैत हौं, मेरेविषे अज्ञान अरु दृश्य दोनों नहीं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होना, सो सांख्य विचार है, अरु योग कहिये प्राणोंका स्थित करना, जब प्राण स्थित होते हैं, तब मन भी स्थित हो जाता है, अरु जब मन स्थित हो जाता है, तब प्राण भी स्थित होते हैं, इनका परस्पर संबंध है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब प्राण स्थित हुए मुक्त होता

है, तब मृतक पुरुषके प्राण नहीं रहते, निवृत्त हो जाते हैं, तब सब मुक्त हुए चाहिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम तौ वर्णाश्रम करु कि, क्या है, यह जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी वासना करता है, बहुरि शरीरको त्यागिकरि आकाशविषे स्थित होता है, इसका नाम मरणा है, तिस वासनारूप प्राणकरिकै बहुरि इसको संसारभान होता है, अरु जब प्राणकी वासनाक्षय होती है, तब मुक्त होता है, ज्ञानीकी वासना क्षय हो जाती है, ताते जन्ममरणसों रहित होता है, जैसे भूना बीज बहुरि नहीं उगता, तैसे ज्ञानीको वासनाके अभावते जन्ममरण नहीं होता। हे रामजी ! जन्ममरण दोनों मार्गकरि निवृत्त होता है, अरु दोनोंका फल कहा है ॥ हे रामजी ! ज्ञानकरिकै चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है, अरु योगकरिकै प्राणवायु स्थित होता है, तब वासना क्षय हो जाती है, जब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, तब संसारके पदार्थका अभाव हो जाता है जैसे रसायनकरि तांबा सोना भया, तब तांबाभाव नहीं रहता, तैसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञा नहीं रहती, जैसे तांबाभाव जाता रहता है, तैसे ज्ञानकरि जब चित्त सत्यरूप हुआ फिरि संसारी नहीं होता, अरु आत्मा विषे न बंध है, न मुक्त है, एक परमात्मा अद्वैत है, तब बंध कहां अरु मुक्त कहां, बंध अरु मुक्त चित्तके कल्पे हुए हैं; अरु चित्त शांत करनेका जो उपाय है, सो कहा है, तिसकरि शांत होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, अपर बंध मुक्त कोऊ नहीं. चित्तके उदय होनेका नाम बंध है, चित्तका शांत होना यही मुक्ति है, ॥ हे रामजी ! जब मन अपने वश होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अथवा प्राण स्थित होते हैं, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, जब वासना निवृत्त होती है, तब आत्मपदविषे स्थिति होती है, जैसे मेघ जलसंयुक्त होते हैं, तब गर्जते हैं, अरु वर्षा करते हैं, जब वर्षाकरि रहित हैं, तब शांत हो जाते हैं, तैसे जब वासना क्षय होती है, तब शांत चित्त हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे बादल अरु कुहिड निवृत्त हो जाते हैं, अरु शुद्ध निर्मल आकाशही रहता है, तैसे वासनारूपी बादल अरु कुहिडके निवृत्त हुएते आत्मा शुद्ध केवल चेतनही भासताहै, एक

मुहूर्त्त भी चित्त विना स्थित होवै, तब तेरे ताईं आत्मपदकी प्राप्ति होवै जबलग चित्तकी वासना क्षय नहीं होती, तबलग बड़े भ्रमको देखता है ॥ हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णाका जलरूप है, असत् है, आभासमात्र पड़ा फुरता है, तिसपर एक आख्यान आगे हुआ है, सो कहता हूं, तू श्रवण कर, मंदराचल पर्वत दक्षिणदिशाविषे है, तिसकी अटवीविषे एक वैताल रहता था, महाभयानक तिसका आकार था, अरु मनुष्यका आहार करता था, तिसके मनविषे विचार उपजा कि, किसी नगरको भोजन करौं, अरु वैताल एक समय साधुका संग भी करता था, जो कछु वह साधु तिस वैतालको भोजन कराता था, तब साधुसंगके प्रसादकरि वैतालके मनविषे यह बुद्धि उपजी कि मेरी कौन गति होवैगी, मेरा आहार मनुष्य हो रहा है, अरु मैं जो मनुष्यका भोजन करता हौं सो बड़ी हत्या है, ताते मैं एक वृत्ति करौं, कि जो मूर्ख अज्ञानी मनुष्य हैं, तिनका भोजन करौं, अरु जो उत्तम पुरुष हैं, तिनका आहार न करौं॥ हे रामजी! ऐसी वृत्ति तिस वैतालने की, यद्यपि क्षुधाकरि आतुर भी होवै, अरु भले मनुष्य आय प्राप्त होवै तौ भी उनका आहार न करै, ऐसे होते एक समय क्षुधाकरि बहुत व्याकुल भया, अरु रात्रिके समय घरते बाहर निकसा, तब उस नगरका राजा वीरयात्राको रात्रिके समय निकसा था, तिस राजाको देखिकरि वैतालने कहा ॥ हे राजा! तू मेरे ताईं अब आय प्राप्त हुआ है, मैं तुझको भोजन करता हौं, तू कहां जावैगा, तब राजाने कहा, हे रात्रिके विचरणेहारे वैताल! जब तू मेरे निकट अन्यायकरि आवैगा, तब तेरा शीश सहस्र टुकडे होवैगा, अरु तू गिरैगा, तब वैतालने कहा, हे राजा! मैं तुझते डरता नहीं, हे आत्महत्यारे! मैं तेरे ताईं भोजन करौंगा, भावै कैसा बली तू होवै, मैं डरता नहीं, परंतु एक प्रतिज्ञा मेरी है, अज्ञानीको भोजन करता हौं, अरु ज्ञानीको नहीं मारता, जो तू ज्ञानी है, तो न मारौंगा, जो तू अज्ञानी है तो मारौंगा, जैसे बाज चिडीको मारता है, तैसे तुझको मारौंगा, जो तू ज्ञानी है तो मेरे प्रश्नका उत्तर दे, एक प्रश्न यह है कि, जिसविषे ब्रह्मांडरूपी अणु है, सो सूर्य कौन है; अरु दूसरा प्रश्न

यह है कि, जिस पवनविषे आकाशरूपी अणु उडते हैं, सो पवन कौन है, अरु तीसरा प्रश्न यह है कि, केलेके वृक्षवत् है जिसविषे अपर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेके छीलेते अपर कछु नहीं निकसता, सो कौन वृक्ष है, अरु चौथा प्रश्न यह है कि, वह पुरुष कौन है, जो स्वप्नते स्वप्न बहुरि तिसविषे अपर स्वप्न देखता है, अरु एक रहता है, परिणामको नहीं प्राप्त होता, इन प्रश्नोंका उत्तर कहु, जो प्रश्नका उत्तर न दिया तौ तेरे ताईं आहार करौंगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वैतालप्रश्नोक्ति नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

राजवेतालसंवादे वेतालब्रह्मपदप्राप्तिवर्णनम् ।

राजोवाच ॥ हे वैताल ! इन प्रश्नोंका उत्तर सुन, ब्रह्मांडरूपी एक मिर्च बीज है, अरु तिसविषे तीक्ष्णता आत्मा चेतन सतपद है, अरु ऐसे मिर्च एक टाससाथ कई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे टास एक वृक्षसाथ कई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे वृक्ष एक वनविषे कई सहस्र हैं, अरु ऐसे कई सहस्र वन एक शिखरपर स्थित हैं, अरु ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्वतपर स्थित हैं, अरु ऐसे कई सहस्र पर्वत एक नगरविषे हैं, अरु ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीपविषे हैं, अरु ऐसे सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वीविषे हैं, अरु ऐसे कई सहस्र पृथ्वी भव एक अंडविषे हैं, अरु ऐसे कई सहस्र अंड एक समुद्रविषे लहरी हैं, अरु ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुषके उदरविषे हैं अरु ऐसे कई पुरुष एक पुरुषके गलेविषे माला परोई हुई हैं, ऐसे कई लाख कोटि सूर्यके अणु हैं, जिस सूर्यकारि सर्व प्रकाशमान हैं, सो सूर्य आत्मा है, जिसविषे अनंत सृष्टि स्थित हैं ॥ हे वैताल ! जैसे यह सृष्टि भासती है, इदं कारिके तैसे सर्व सृष्टि जान जो यह सृष्टि सत्य है, तौ सब सृष्टि सत् जान जो यह सृष्टि स्वप्न है, तो सर्व सृष्टि स्वप्न जान, अरु आत्मा ऐसा सूर्य है, जिसते इतर अपर अणु भी कछु नहीं, अरु सदा अपने आपविषे स्थित है, इसते अपर क्या पूछता है

ऐसे आत्माविषे स्थित होऊ, जो आत्मसत्तामात्र पद है जिस सत्तामात्र पदते कालसत्ता हुई है, तिसीते आकाशसत्ता हुई है, तिस ऐसे सतपदते सर्व सत्ता प्रगट हुई है, सो सब संकल्पते उदय हुए हैं, अरु संकल्पके लय हुए सब लय होजाता है, अरु तैंने जो प्रश्न किया था, वह कौन सूर्य है, जिसते ब्रह्मांडरूपी अणु होते हैं, सो वह ब्रह्म सूर्य है, जिसते इतर अपर कछु नहीं, अरु केलेका वृक्ष जो तैंने पूछा था, सो केलेकी नाईं विश्वके अंतर बाहिर आत्मा स्थित है, जैसे केलेके अंतर फोलेते शून्य आकाशही निकसता है, तैसे विश्वके अंतर बाहिर आत्माते इतर अपर सार कछु नहीं निसकता, जो अद्वैत है, तिसते इतर द्वैत कछु नहीं अरु वह पवन ब्रह्म है, जिस पवनविषे ब्रह्मांडके समूह उडते हैं, अरु वह पुरुष स्वप्नते स्वप्न आगे अपर स्वप्न देखता है, अरु एक अपने स्वतःविषे स्थित है, स्वप्न कहिये जो चित्तकला फुरती है, तब अनंत ब्रह्मांड भान होते हैं, तब भी इतर कछु हुआ नहीं एकही रूप नटवत् रहता है, यह सब उसकी आज्ञासों वर्तते हैं, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है, स्थूलते स्थूल है, अरु जिसविषे मंदराचल पर्वत भी अणु है, ऐसा स्थूल है, अरु जिसविषे वाणीकी गम नहीं, अपने आपहीविषे स्थित है, इंद्रियोंते अगोचर इसकरि सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु पूर्णताकरिके स्थूलते स्थूल है॥ हे मूर्ख वैताल! तू आहार किसको करता है, अरु क्षुधाकरि व्याकुल क्यों भया है, तू तौ आत्मा अद्वैतरूप है, अरु आनंदरूप है, तू अपने स्वतःविषे स्थित होउ, जब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकरि राजाने उपदेश किया, तब वैताल वहांते चला कि, एकांत स्थानविषे स्थित होऊं, ऐसे झूठ संसार मृग-तृष्णाके जलविषे मेरे ताईं क्या प्रयोजन है, तब एकांत स्थानविषे जायकरि स्थित हुआ, अरु ध्यान लगाय बैठा, ध्यान कहिये कि, एक धाराप्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ, धाराप्रवाहकप्रवाह कहिये आत्माका अभ्यास दृढ किया आत्माते इतर कछु फुरै नहीं, एकरस स्थित हुआ ऐसे ध्यानविषे स्थित होकरि वैताल सत आत्मा पदको प्राप्त हुआ; हे रामजी! यह राजा अरु वैतालका आख्यान तुझको श्रवण कराया,

सो आत्मा कैसा है, जिसविषे ब्रह्मांड अणुकी नाईं स्थित है ताते निर्विकल्प आत्माविषे स्थित होउ, अरु इंद्रियोंको बाहिरते संकोचकरि स्थित करु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजवैतालसंवादे वैतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

भगीरथोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आख्यान आगे हुआ है, सो श्रवण करु ॥ एक भगीरथ नाम राजा था, उसकी मूढता गई है अरु स्वस्थ चित्त होकरि आत्मपदविषे स्थित हुआ, अपने प्राप्त प्रवाहविषे विचरा है, अरु अपने पुरुषार्थकरि स्वर्गलोकते गंगा मध्यलोकविषे ले आया है, तैसे तू विचरु, सो कैसा था, जो अर्थी कोई आता था, तिसका अर्थ पूर्ण करता था, जिस पदार्थका कोई संकल्पकरि आवै, सो राजा उसका पूर्ण करै, अरु जो राजासों मित्र भाव करै, तिसको चंद्रमारूप होवै, जैसे चंद्रमाको देखकर चंद्रमणि अमृतको द्रवता है, तैसे मित्रभावको राजा था, अरु जो राजासों शत्रुभाव है, तिसको नाश करनेहारा था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नाश हो जाता है, तैसेही शत्रुको नाश करनेहारा था, जैसे अग्निते अनेक चिणगारे उठते हैं, तैसे शत्रुको शस्त्रोंकी भी वर्षा करता था,अरु प्रतिप्रवाहविषे स्थित रहताथा, भले बुरे सुखदुःखविषे एक समान रहता था ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसा जो भगीरथ था,तिसकेमनविषे क्या आई जो गंगाको ले आया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक समय अपने नगरको देखत भया कि सब लोक भले मार्गको त्यागिकरि बुरे मार्ग पापकर्मविषे लगे हैं, अरु लोक मूर्ख हुए हैं तब लोकके उपकारनिमित्त तप करने लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु यज्ञ ऋषि तिनका तप करिकै आराधन किया, अरु गंगाके लावनेनिमित्त मंत्र जपने लगा, सो गंगा कैसी है, जिसका एक प्रवाह स्वर्गविषे चलता है, अरु एक प्रवाह

पातालविषे चलता है, अरु एक प्रवाह राजा भगीरथने मध्यलोकविषे चलाया है, अरु भगीरथ राजाने गंगाको लाकर समुद्रपर भी उपकार किया है, कैसा समुद्र जो अगस्त्य मुनिकरि सुखाया है तिस गंगाके आनेकरि समुद्रका दारिद्र्य भी निवृत्त हुआ, ऐसा जो राजा है, तिसके मनविषे विचार उपजा, संसारको देखिकरि कहने लगा कि, एकही वारंवार करना यह बड़ी मूर्खता है नित्य वही भोगना, वही खाना, इत्यादिक कर्म बहुरि करने, अरु जिस कर्म कियेते पाछे सुख निकसै, तिसके करनेका कछु दूषण नहीं, ऐसे वैराग्य करिकै विचार उपजा कि, संसार क्या है, सो राजा यौवन अवस्थामें था, जैसे मरुस्थलविषे कमल उपजना आश्चर्य है, तैसे यौवन अवस्थाविषे विचार उपजना आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! जब राजाको ऐसे विचार उपजा तब घरते निकसा, अरु त्रितल ऋषीश्वर जो गुरु था, तिसके निकट जायकरि प्रश्न करत भया ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! वह कौन सुख है, जिसके पायेते जरामृत्युके दुःख निवृत्त होते हैं, अरु यह संसारके सुख अंतरते शून्य हैं, इनके परिणामविषे दुःख है ॥ ॥ त्रितलऋषिरुवाच ॥ हे राजा ! जानने योग्य एक ज्ञेय है, जिसके जानेते शांत पद प्राप्त होता है, सो आत्मज्ञान है, सो आत्मसुख कैसा है, न उदय होता है, न अस्त होता है, ज्योंका त्यों अपने आपविषे है ॥ हे राजा ! यह जरा मृत्यु तबलग भासता है, जबलग अज्ञान है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा, तब अज्ञानरूपी अंधकार निवृत्त हो जावैगा, केवल शांत पदविषे स्थित होवैगा, अरु आत्मानंद सर्वज्ञ है, जिसके जानेते चित्तजड़ग्रंथी टूटि जाती है, चित्तजड़ग्रंथी कहिये अनात्म देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान करना, सो निवृत्त हो जाता है; अरु सब कर्म भी निवृत्त होते हैं, संशय सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूपको पायकरि ज्ञानी स्थित होते हैं, सो सत्ता सर्व है, सर्वगत नित्य स्थित है, उदय अस्तते रहित है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसे मैं जानता हौं, जो आत्मा चिन्मात्र सत्ता है, अरु देहादिक मिथ्या है, अरु आत्मा सर्वज्ञ है, अरु शांतरूप है, निर्मल अच्युतरूप है, ऐसे जानता भी हौं, परंतु शांति मेरे

ताईं नहीं प्राप्त भई, जो आत्मा चिन्मात्र मेरे ताईं नहीं भासता, अरु स्थिति नहीं भई, सो कृपाकरि कहौ. जो मैं स्थित होऊँ॥ ऋषिरुवाच॥ हे राजा! ज्ञान तेरे ताईं कहताहौं, जिसके जानेते बहुरि दुःख कोई न रहैगा, तिस ज्ञानकरि ज्ञेयविषे तेरे ताईं निष्ठा होवैगी, तब तू सर्वात्मरूप होकरि स्थित होवैगा, जीवभाव तेरा नष्ट हो जावैगा॥ श्लोक॥ असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु॥ नित्यं च समचित्तत्व मिष्टानिष्टोपपत्तिषु,॥ आसक्त न होवैगा अरु अनभिष्वंग होवैगा, आसक्त न होना कहिये देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान न करना इनको आप न जानना, अरु अनभिष्वंग कहिये पुत्र स्त्री कुटुंबके दुःखकरि आपको दुःखी न जानना, अरु नित्यही समचित्त रहना, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे एकरस रहना, अरु चित्तको आत्मपदविषे जोडना, आत्माते इतर चित्तकी वृत्ति न जावै, अरु एकांत देशविषे स्थित होना, अरु अज्ञानीका संग न करना, अरु ब्रह्मविद्याका सदा विचार करना, तत्त्व ज्ञानके दर्शननिमित्त यह तेरे ताईं ज्ञानके लक्षण कहे हैं, अरु इसते विपरीत है, सो अज्ञान है॥ हे राजा! यह ज्ञेय जानने योग्य है, इसके जानेते केवल-शांतपदको प्राप्त होवैगा अरु देहका अहंकार भी निवृत्त होवैगा॥ हे राजा! पहिले अहं होता है, तब पाछे मम होती है, ताते तू अहं ममका त्याग करु, जब अहंममका त्याग करैगा, तब आत्मपद अहंप्रत्ययकरि भासैगा; सो आत्मा सर्वज्ञ है, अरु सर्व भी आप है, स्वतःप्रकाश है, अरु आनंदरूप है; कैसा आनंदरूप है, जो संसारके आनंदते रहित है, जब ऐसे गुरुने कहा, तब राजा बोलत भया॥ राजोवाच॥ हे भगवन्! यह अहंकार तौ चिरकालका देहविषे रहता है, अरु अभिमानी है, जैसे पर्वतपर चिरकालका वृक्ष स्थित होता है, अरु तिसका नाम प्रसिद्ध होता है, तैसेही अहंकार चिरकालका देहविषे अभिमानी है, तिसका त्याग कैसे करौ सो कहौ॥ ऋषिरुवाच॥ हे राजा! अहंकार पुरुषप्रयत्न करिकै निवृत्त होता है, सो श्रवणकर; प्रथम भोगविषे दोषदृष्टि करनी, भोगकी वासना न करनी, अरु वारंवार अपने स्वरूपकी भावना करनी, विचार करना, इसकरिकै जीव अहंकार तेरा

निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजा ! जब तेरा अहंकार निवृत्त होवैगा, तब तेरे ताईं सर्वात्माही भासैगा, अरु दुःखते रहित शांतरूप स्वप्रकाश होवैगा ॥ हे राजन् यह लज्जारूप फांसी जबलग निवृत्त नहीं होती, तबलग आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, लज्जा कहिये मैं हौं, अरु मेरा है, तृष्णा अरु शोक दुःख अरु भला कहावनेकी इच्छा इत्यादिक जो मोहके स्थान हैं, सो लज्जा है, ताते तू अहं ममते रहित होउ, अरु तेरे शत्रु जो तेरा राज्य लेनेकी इच्छा करतेहैं तिनको अपना राज्य दे, अरु क्षोभते रहित होकरि पुत्र स्त्री बांधव इनके मोहते रहित होउ, अरु मेरे मोहते भी रहित होउ, अरु राज्यका त्याग करिकै एकांत देशविषे स्थित होउ, अरु तिन शत्रुके घरते भिक्षा माँग, जो तेरे ताईं भला कहनेकी इच्छा न रहै, ताते उठि खडा होउ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपदेशो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

भगीरथोपाख्यानम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब त्रितल ऋषीश्वरने उपदेश किया, तब राजा उठि खडा हुआ, घरको गमन किया, गुरुका उपदेश हृदयविषे धारिकरि अपने राज्यविषे आनि स्थित हुआ, अरु राज्य करने लगा, मनविषे विचार भी करै, जब केताक काल बीता तब राजाने अग्निष्टोम यज्ञका आरंभ किया, अग्निष्टोम यज्ञ कहिये धनका त्याग-करना, सो राजा धनका त्याग करने लगा, त्रयदिनविषे धनका त्याग किया, हस्ती घोडे रथ भूषण वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य था, सो लोकको दिया, ब्राह्मणों अरु अर्थी अरु पुत्र स्त्रीको अरु अपने जो शत्रु थे तिनको, पृथ्वीका राज्य दिया, जब इसप्रकार राज्य दिया,तब राजा जो थे शत्रु तिनने देखा कि अब राजा भगीरथविषे पराक्रम कछु नहीं रहा, तब उन शत्रुओंने आयकरि इसका देश लिया, हवेली पर आनि

स्थितहुए, जेते राजाके स्थानथे सो रोक लिये, राजा धोतीअंगोछा साथ रहि गया, अपर सब शत्रुओंने लिया, तब राजा वहांते निकसा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब राजा निकसा, तब वनको गया, वनते अपर वनविषे विचरता रहै, अरु शांतपद आत्माविषे स्थित हुआ, अनिच्छित विचरै, जब केताक काल व्यतीत भया, तब राजा भगीरथ अपने देश-विषे आया, जो राजाके शत्रु थे तिनके गृहते भिक्षा माँगने लगा, तब शत्रु अरु लोगोंने देख बहुत पूजा करी, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! तुम राज्यको ग्रहण करौ, तब राज्य ग्रहण न किया जैसे पृथ्वीपर पड़ा तृण तुच्छ बुद्धिकरिकै नहीं ग्रहण करता, तैसे राज्यका ग्रहण न किया, केताक काल वहां रहिकरि बहुरि चला, तब त्रितल ऋषि जो अपना गुरु था अपनिच्छित तहां गया, तब गुरुने भी आत्मत्वकरिकै ग्रहण किया, अरु शिष्यने भी गुरुको आत्मत्वकरिकै ग्रहण किया, गुरु अरु शिष्यकीभा-वनाते दोनों रहित हुए, फुरै कछु नहीं, केताक काल एक स्थानविषे रहे बहुरि वनविषे इकट्ठे विचरने लगे, अरु शांत आत्मपदविषे दोनों स्थित रहे, अरु राग द्वेषते रहित केवल एकरस स्थित रहे, तिनको न देह त्यागनेकी इच्छा, न देह रखनेकी इच्छा अनिच्छा प्रारब्धविषे स्थितरहैं तब स्वर्गलोकके जो सिद्ध थे, तिनने आनि पूजा करी, अरु बड़े ऐश्वर्य पदार्थ चढाये, अरु बहुत अप्सरा आईं, जेते ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे, सो आनि स्थित हुए, तिनको उनने तुच्छ जाना, जो आत्मसुख करि तृप्त थे अरु केवल आकाश वत् निर्मल थे, कलंकतारूपी मलते रहित प्रकाशरूप अरु समचित रहैं ॥ हे रामजी ! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुआहै, तैसे तुमभी स्थित होओ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपा-ख्यानं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

भगीरथोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केताक काल बीता, तब भगीरथ वहांते चला, एक देशका राजा मृतक हुआ था, तिसकी जो लक्ष्मीथी, सो

राजाकी याचना करती थी, तिस कालमें अनिच्छित राजा भगीरथ भिक्षा माँगता आया, तब उसराजाके मंत्रीने राजा भगीरथको देखा, तब क्या देखा कि, जेते कछु गुण राजाविषे होते हैं, तैसेही इसविषे हैं, तब राजा भगीरथको कहा ॥ हे भगवन् ! तुम इस राज्यको अंगीकार करौ काहेते कि, तुमको अनिच्छित आय प्राप्त हुआ है, तब राजाने राज्यका ग्रहण किया, अरु न कछु भला जाना, न बुरा, ऐसे ग्रहण किया, तब राजा हस्तिपर आरूढ हुआ, अरु सैन्यकरि शोभत भया, देश अरु स्थान सैन्यकरि पूर्ण भये हैं, जैसे मेघकरि ताल पूर्ण होतेहैं, तैसेही देश अरु स्थान सैन्यकरि पूर्ण करत भया, जब नगारे अरु साज बाजनेलगे तब राजा गृहविषे गया, सब महलमें स्त्रियां आय विद्यमान भईं, तब वह देश जो राजा भगीरथका पहिला था, तिस देशते लोक आये तब मंत्री अरु प्रजाने आनिकरि कहा ॥ हे भगवन् ! जिन शत्रुओंकोतुमने राज्य दिया था, तिनको मृत्युने भोगिकरि लिया है, जैसे मच्छी कोमल मांस ग्रासि लेती है, तैसे उनको मृत्युने ग्रास लिया है, ताते, तुम राज्यकरौ यद्यपि तुमको इच्छा नहीं, तौ भी राज्य करौ काहेते कि, जोवस्तुअनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं, ताते तुम राज्य करौ, तब राजाने उस राज्यका भी अंगीकार किया अरु राज्य करने लगा, जब पिछला वृत्तांत राजाने श्रवण किया कि, मेरे पितर कपिल मुनिके शापते भस्म हुए हैं, अरु कूपविषे पडे हैं, तब राजाने चिंतवना करी कि, मैं तिनका उद्धार करौं, तब राजा अपने मंत्रीको राज्यदेकरि एकला वनको चला. अरु वृत्त किया कि, तप करौं, तब राजा एक स्थानविषे स्थित होकरि तपकरने लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु जगत् ऋषिका गंगाके लावनेनिमित्त आराधन किया, सहस्र वर्ष पर्यंत तप किया, तब गंगा मध्यमंडलविषे आई, सो कैसी गंगा है, जो विष्णु भगवान्‌के चरणोंते प्रगट भई है, तिंस गंगाके प्रवाहको पितरोंके उद्धारनिमित्त राजा ले आया, बहुरि राजा भगीरथ समचित्त अरु शांत पदविषे स्थित होकरि विचरने लगा, जिसविषे न कोई क्षोभ है, न भय है, न कोई इच्छा है,

केवल शांत आत्मपद है, तिसविषे स्थित भया है; जैसे पवनते रहित समुद्र अचल होता है, तैसेही संकल्पविकल्पते रहित होकरि स्थित भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

शिखरध्वजचूडालाप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो भगीरथकी दृष्टि तेरे ताईं कही है, तिसको आश्रय करिकै विचरौ, कैसी यह दृष्टि है कि, सर्व दुःखका नाश करती है; अरु एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत भया है, ऐसाही शिखरध्वज राजा होत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह शिखरध्वज कौन था, अरु किसप्रकार चेष्टा करत भया; सो कृपाकरिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजा शिखरध्वज आगे था, अरु बहुरि भी होवैगा, सप्त मन्वंतर व्यतीत भये थे, अरु चौकडी चतुर द्वापरयुगकी थी, तिस कालविषे हुआ था, सो कैसा राजा था कि, संपूर्ण पृथ्वीका तिलक था, अरु जैसे शूरवीर हैं, तिनते उत्तम था, अरु जेता ऐश्वर्य है, तिसकरि संपन्न था, अरु तिसविषे बंधमान न होत भया, अरु जेते भोग हैं, तिनके भोगनेको समर्थ था, अरु बडे ओजकरि संपन्नथा, उदार अरु धैर्यवान् था, किसीपर जोर जुलुम न करता था, समचित्त अरु शांतपदविषे स्थित था, संपूर्ण दुःखते रहित, अरु जो कोई अर्थी होवै, तिसका अर्थ पूर्ण कर्त्ता ऐसा था, अरु बहुरि भी होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसा जो ज्ञानवान् राजा था सो बहुरि जन्म किसनिमित्त पावैगा ज्ञानी तौ बहुरि नहीं जन्म पाता, वह कैसे पावैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे एक समुद्रविषे कई तरंग समान उठते हैं, कई अर्ध सम, कई विलक्षण भावकरि फुरते हैं, तैसे आत्मसमुद्रविषे कई आकार एक जैसे फुरते हैं, कई अर्धभावकरि फुरतेहैं, कई विलक्षणभाव फुरते हैं, जो समान फुरते हैं, तिनकी चेष्टा अरु आकार एक जैसे दृष्ट

आते हैं, ताते जानाजाता है कि, वही हैं तैसे शिखरध्वजकी आगे ऐसी प्रतिमा होवैगी ॥ हे रामजी ! इस सर्गविषे सप्त मन्वंतर व्यतीत भये, अरु चतुर चौकडी द्वापर युगकी बीती, तब जंबूद्वीप मालवदेशविषे श्रीमान् शिखरध्वज राजाहोत भया, परंतु उस जैसा शिखरध्वज अपर होवैगा, वह न होवैगा, जब षोडश वर्षकी आयुष्यमें मैं राजकुमार था, तब एकसमय राजा शिकारको निकसा, अरु वसंतऋतुका समय था, तब राजाअपने बागमें जाय स्थित भया, तहां फूलोंके आश्चर्यदायक स्थान बने हुएथे तहां कमलनियां मानो स्त्रियां हैं, अरु धूडके कणके तिनके भूषण हैं, अरु पुष्प तिनके समीप वृक्ष हैं, इसीप्रकार भँवरीभँवरेकी सुंदर लीला देखत भया, तब राजाको चिंतवना भई मेरे ताईं स्त्री प्राप्त होवे, तब मैं चेष्टा करौं, अरु अधिक चिंतना भई कि, कब मेरे ताईं स्त्री प्राप्त होवे, अरु कब फूलकी शय्यापर शयन करौंगा, इत्यादिक जो भोगकी वृत्ति है सो राजा चिंतना करने लगा, तब मंत्रीने देखा कि हमारे राजाका मन स्त्रीपर है, ऐसे होउ जो राजाका विवाह करिये, सो मंत्री राजाके त्रिकाल ज्ञान रखते थे, शरीरकी अवस्था जानते थे, इसीसे जानत भये, तब एक राजा था, तिसकी कन्या बहुत सुंदर अरु वरप्राप्ति चाहती थी, तिस राजाकी पुत्री साथ राजा शिखरध्वजको शास्त्रकी विधिसहित विवाह किया, तब राजा बहुत प्रसन्न होकरि अपने गृहविषे आया अरु तिस स्त्रीका नाम चूडाला था, अरु बहुत सुंदर थी, तिसविषे राजाका हेतु बहुत हुआ, अरु स्त्रीका हेतु राजाविषे बहुत हुआ जो कछु राजाके मनविषे चिंतवना होवे, सो रानी आगे सिद्धकरि देवै, इसप्रकार परस्पर प्रीति आपसविषे बढ़ी जैसी भँवरे अरु भँवरीकी प्रीति आपसविषे होती है, तब एक समय राजा मंत्रियोंको राज्य देकरि वनको गया; वनविषे नानाप्रकारकी चेष्टा करत भया, अरु वनविषे विचरै, जैसे सदाशिव अरु पार्वती, जैसे विष्णु भगवान् अरु लक्ष्मी विचरैं, तैसे राजा अरु रानी विचरने लगे, बहुरि योगकला सीखने लगे, तब रानी राजाको योगकला शिखावै, संपूर्ण कलाकरि संपन्न हुए. परंतु चूडालाकी बुद्धि राजाकी बुद्धिते तीक्ष्ण

शीघ्रही जानि लेवै, अरु राजाको शिखावै, इसीप्रकार बहुत चेष्टा करै अरु विचारै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचूडालाप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

चूडालाप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार राजा अरु रानीने अनंत भोग भोगे, जैसे छिद्रकारि कुंभते शनैः शनैः जल निकसता है तैसे शनैः शनैः यौवनके गये वृद्ध अवस्था आय प्राप्त भई, तब राजा अरु रानीको वैराग्यका कणका आनि उत्पन्न भया, तब वैराग्य करिकै यह विचारणे लगे कि, यह संसार मिथ्या अरु विनाशी है, एक जैसा नहीं रहता अरु यह विषयभोग भी मिथ्या है, जो एता काल हम भोगते रहे, तब तृष्णा पूर्ण न भई, वर्धती गई ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा अरु रानी वैराग्यकरिकै विचारत भये कि, यह भोग मिथ्या है, अरु हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गई है, जैसे बिजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकरि बीति जाता है, तैसे यौवन व्यतीत हो गया, अरु मृत्यु निकट आया, जैसे नदीका वेग तलेको चला जाता है, तैसे आयुर्बल व्यतीत हो जाती है. जैसे हाथके ऊपर जल पाया बहिर जाता है, तैसे यौवन अवस्था निवृत्त हो गई है, अरु यह शरीर कैसा है, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे उपजिकारि लीन हो जाते हैं, तैसेही शरीर क्षणभंगुर है, अरु जहां चित्त जाता है, तहां दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं, निवृत्त नहीं होते, जैसे मांसके टुकडे पाछे ईल पक्षी चला जाता है, तैसे जहां अज्ञान है, तहाँ दुःख भी पाछे जाते हैं, अरु यह शरीर भी निवृत्त हो जाता है, जैसे आंबका पका फल वृक्ष साथ नहीं रहता, गिरि पड़ता है, तैसे शरीर भी नष्ट हो जाता है, जो शरीर अवश्य गिरता है, तिसका आसरा करना क्या है, जैसे सूखा पात वृक्षते गिर पड़ता है, तैसे यह शरीर गिर पड़ता है, ताते हम ऐसा कछु करै, जो संसाररूपी विषूचिका निवृत्त होवै, सो संसाररूपी

विषूचिका ब्रह्मविद्याके मंत्रकारि निवृत्त होती हैं, ब्रह्मविद्याकारि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञानकारि सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं, इसते अपर उपाय कोई नहीं, ताते आत्मज्ञानके निमित्त हम संतपास जावैं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै राजा अरु चूडाला संत जो हैं, आत्मज्ञानी तिनके पास चलें, अरु आत्मज्ञानकी वार्त्ता करैं आत्मज्ञानवि तिनका चित्त अरु भावना आपसमें विचार अरु चर्चा करनी, आत्मपरायण होकारि संतपास गये, सो कैसे संत हैं, जो संसारसमुद्रते तरावणेवाले हैं, अरु आत्मवेत्ता हैं, तिनपास जायकारि पूजा करत भये, अरु उनसों प्रश्न किया, तब राजा अरु रानी उनसों ब्रह्मविद्या श्रवण करने लगे, आत्मा शुद्ध है, अरु आनंदरूप हैं, जिसके पायेते दुःख निवृत्त हो जाते हैं, चेतन है, अरु एक है, इसप्रकार सुनते भये ॥ हे रामजी ! तब रानी चूडाला विचारविषे लगी, जब राजाको कोऊ टहल करे, परंतु उसके चित्तकी वृत्ति विचारविषे रहै, सो विचार यह कि, मैं क्या हौं, अरु यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसते है, ऐसे विचार करि जानने लगी कि, यह पंचतत्त्वका शरीर है, सोभी मैं नहीं, काहेते कि, शरीर जड है, अरु यह कर्म इंद्रियां भी जड हैं, जैसा शरीर है, तैसे-शरीरके अंग हैं, यह जो चेष्टा करते हैं, सो ज्ञानइंद्रियां करिकै करते हैं, सो ज्ञानइंद्रियां भी मैं नहीं, काहेते कि यह भी जड है, मनकारि मनकी चेष्टाहोती है, सो मन भी जड है, तिसविषे संकल्प विकल्प चेतना है, सो बुद्धिकारि है, अरु बुद्धि भी जड़ है, जो तिसविषे निश्चय चेतना है, सो अहंकार करिकै होता है, अरु अहंकार भी जड़ है, जो तिसविषे अहं चेतनाकरिकै होती है, सो चेतनता भी जीवकरिकै होती है, सो जीव भी मैं नहीं, काहेते कि, यह जीवत्व फुरनरूप है, अरु मेरा स्वरूप अफुर है, सदा उदयरूप है, अरु सन्मात्र है, बड़ा कल्याण है, जो चिरकालकरिकै मैं अपने स्वरूपको पाया है, सो कैसा पद है, अविनाशी है, अनंत है, अरु आत्मा है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे मैं निर्मल हौं, अरु विगतज्वर हौं, रागद्वेषरूपी तापते रहित हौं, अरु चिन्मात्र पद हौं, अरु अहं त्वंते रहित हौं, मेरेविषे

फुरणा कोई नहीं, इसीते शांतरूप हौं, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल पर्वततते रहित शांतरूप है, तैसे चित्तते रहित अचल हौं, अरु अद्वैत हौं, कदाचित्, स्वरूपते परिणामको नहीं प्राप्त भया. ऐसा जो तन्मात्र पद है, तिसकी ब्रह्मवेत्ताने संज्ञा कही है कि ब्रह्म है, चेतन है, अरु परमात्मा है, इत्यादिक नाम आचार्यने रक्खे हैं, अरु यह आत्माही मन बुद्धि आदिक अरु दृश्य संसाररूप होकरि पसरा है, अरु स्वरूपते अच्युत है, गिरा कदाचित् नहीं, अरु फुरणे करिकै आकार भासते हैं, तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे बड़ा पर्वत होता है, तिसके पत्थर वटे होते हैं, तौ भी पर्वतते इतर कछु नहीं, तैसे यह दृश्य आत्माते इतर कछु नहीं, अरु यह आकार कैसे हैं, जैसे गंधर्वनगर नानाआकार हो भासता है, तैसे यह संसार है, ज्ञानवान्को एक रस है, अरु अज्ञानीको भेदभावना है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने कल्पता है, हस्ती घोड़ा राजा प्रजाते आदि लेकरि नाम रखता है, अरु जिसको मृत्तिकाका ज्ञान है, तिसको मृत्तिकाही भासती है, इतर कछु नहीं भासता, तैसे अज्ञानकरिकै नाना रंग भासते हैं, अब मैं जाना है, एक रस हौं ॥ हे रामजी! इसप्रकार चूडाला आपको जानती भई, कि मैं सन्मात्र हौं, अरु अच्छेद हौं, अदाह हौं, स्वच्छ हौं, अरु अक्षर हौं, निर्मल हौं, मेरेविषे अहं त्वं एक अरु द्वैतशब्द कोई नहीं, अरु जन्म मृत्यु भी कोई नहीं, यह संसार चित्तकारि भासता है, अरु आत्मा स्वरूप है, देवता यक्ष अरु राक्षस स्थावर जंगम आदिक सर्व आत्मरूप हैं, जैसे तरंग बुद्बुदा समुद्रसों भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, दृश्य द्रष्टा दर्शन यह भी आत्माकी सत्ताकारि चेतन हैं, इनको आपते सत्ता कछु नहीं, अरु मेरेविषे अहंका उत्थान कदाचित् नहीं, अपने आपविषे स्थित हौं, अब इसी पदको आश्रय करिकै चिरकाल इस संसारविषे विचरौंगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्रबोधो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

अग्निसोमविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चूडाला विचार करत भई, सो कैसी चूडाला है, कि तृष्णा निवृत्त भई है जिसकी, दुःख भय अरु भोगवासना सब निवृत्त भई है, केवल शांत आत्मपदको पायकरि शोभत भई है, जो पाने योग्य पद है, तिसको पायकरि जानत भई, कि एता काल मैं अपने स्वरूपते गिरी रही हौं, अब मेरे ताईं शांति हुई है, अरु दुःख सब मिटि गये हैं, अब मेरे ताईं ग्रहण त्याग कछु नहीं ॥ हे रामजी! अपने आत्मस्वभावविषे स्थित भई, अरु एकांत बैठिकरि समाधिविषे लगी, जैसे वृद्ध गो पर्वतकी कंदराको पायकरि बहुत तृणघासकरि प्रसन्न होती है, तैसे अपने आनंदरूपको पायकरि चूडाला स्थित भई ॥ हे रामजी ! ऐसे आनंदको प्राप्त भई, जिसको वाणीकरि नहीं कह सकता, तब राजा शिखरध्वज आय रानीको देखिकरि आश्चर्यको प्राप्त भया, अरु कहा॥हे अंगना ! अब तू बहुरि यौवन अवस्थाको प्राप्त भई है, तेरे ताईं कोऊ बडा आनंद प्राप्त भया है, कदाचित् तैंने अमृतका सार पान किया है, ताते अमर भई है, अथवा तेरे ताईं किसी योगेश्वरने कलाको प्राप्त करी है, अथवा त्रिलोकीका ऐश्वर्य तुझमें प्राप्त भया है ॥ हे अंगना ! तेरे ताईं कौन वस्तु प्राप्त भई है, तेरे चित्तकी वृत्ति मैं ऐसे जानता हौं कि, अमृतका सार तैंने पान किया है, अरु त्रिलोकीके राज्यते भी तैंने कोई अधिक पदार्थ पाया हैं, तू बडे आनंदको प्राप्त भई है, तिस आनंदका आदि अंत कोई नहीं देखपड़ता, अरु तेरेविषे भोगवासना भी नहीं दीखती, शांत हो गई है, जैसे शरत्काल आकाश निर्मल होता है,तैसे तेरेविषे निर्मलता दीखती है, अरु तेरे श्वेत बाल भी बडे सुंदर दृष्ट आते हैं, सो कहहु तेरे ताईं क्या वस्तु प्राप्त भई है ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन् ! यह जो कछु देखता है, सो किंचित् है, अरु इसते जो रहित निष्किंचन पद है, तिसको मैं पाई हौं, तिसका आकार निष्किंचित है, अरु दूसरेका अभाव है, तिसीको पायकरि मैं श्रीमान् भई हौं, अरु जेते कछु भोग हैं, तिनते रहित

अभोगको भोगा है, तिस भोगकरि तृप्त हौं, अभोग कहिये आत्मज्ञान, तिसको मैं पाया है, आत्माविषे विश्राम है, सदा शांतरूप श्रीमान् हौं ॥ हे राजन् ! जेते यह राजभोग सुख हैं, तिनको त्यागिकरि परमसुखको भोगती हौं, रागद्वेषते रहित होकरि मैं कैसी हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही स्थित हौं, अरु जेता कछु नेत्रोंकरि दीखता है, अरु इंद्रियोंकरि जानता है, अरु मनकरि चिंतवना करता है, सो सब स्वप्नवत् मिथ्या है, अरु मैं तहां स्थित भई हौं जहां इंद्रियां अरु मनकी गम नहीं, अरु अहंकारका उत्थान भी जिसविषे नहीं तिस पदको मैं पाई हौं, जो सर्वका आधार है- अरु सर्वका आत्मा है, अरु सर्व जो अमृत है, तिसका सार अमृत मैं पान किया है, ताते मेरा नाश कदाचित् नहीं, अरु भय भी कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार रानीने जब कहा, तब राजा शिखरध्वज तिसके वचनोंको न जानत भया, हाँसी करी, अरु कहा ॥ हे मूर्ख स्त्री ! यह तू क्या कहतीहै, कि प्रत्यक्ष वस्तुको झूठ कहती है, अरु कहती है, मैं नहीं देखती, अरु जो असत् है, दीखता नहीं तिसको सत्य कहती है, मैं देखती हौं, यह वचन तेरे कौन मानैगा, इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता, अरु कहती है कि, ऐश्वर्यको त्यागिकरि श्रीमान् भई हौं, निष्किंचनको पायकरि इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता, अरु कहती है, इन भोगोंका त्याग किया है, अरु इनते जो रहित अभोग है, तिसको मैं भोगती हौं, ताते तू मूर्ख है, अरु कहती है मैं कछु नहीं, बहुरि कहती है, मैं ईश्वर हौं, इसते महामूर्ख दृष्ट आती है, अरु जब इसीविषे तेरा चित्त प्रसन्न है, तब त्यौं विचरु परंतु यह बात सुनिकारि सत् कोऊ न मानैगा, जैसे तेरी इच्छा है, तैसे विचर, परंतु तेरे ताईं यह शोभा नहीं ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि राजा उठि खड़ा हुआ, मध्याह्नका समय था, स्नानके निमित्त गया, तब राणी मनविषे बहुत शोकवान् भई, अरु विचार किया कि बडा कष्ट है, राजाने आत्मपदविषे स्थिति न पाई, अरु मेरे वचनोंको जानत न भया, रानी ऐसे मनविषे धारिकारि अपने आचारविषे प्रवर्त्तने लगी, बहुरि अपना निश्चय राजाको न दिखाया, जैसे अज्ञान कालविषे चेष्टा करती थी, तैसेही ज्ञान-

कोकारि चेष्टा करने लगी, तब एक समय रानीके मनविषे आया, कि मैं प्राणोंको ऊपर चढाऊं, अरु ऊर्ध्वको लावौं, उदान अरु अपानको अपने वश करौं, किसनिमित्त कि आकाशको भी उडौं, अधको भी गमन करौं, ऐसे चिंतवनाकरिकै रानी योगविषे स्थित भई, प्राणायाम करने लगी ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह संसार संकल्पते उत्पन्न भया है, स्थावरजंगमरूप संसारवृक्ष है, अरु संकल्प इसका बीज है, तब वह प्राणायाम पवन है, जिसकारि आकाशको उडते हैं, अरु फिरि तलेको आते हैं, अरु अज्ञानी पुरुष यत्नकारिकै सिद्धि करते हैं, अरु ज्ञानवान् कैसे लीलाकारि विचरते हैं, इसका उत्तर कहौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तीन प्रकारकी सिद्धि होती है, सो श्रवण करु, एक तौ उपादेय है, कि यह वस्तु मेरे ताईं प्राप्त होवै, तिस-निमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं, अरु एक जो यह दुःख मेरा निवृत्त होवै, मैं सुखी होऊं महाअज्ञानीको यह चिंता रहती है, अरु एक यह है कि मैं कर्म करता हौं, तिसका फल मेरे ताईं सिद्धि होवै, यह भी अज्ञानी है, काहेते कि आपको करता मानता है, अरु ज्ञानवान् इनते उल्लंघित वर्तता है, कदाचित् ज्ञानवान् इसविषे वर्तता है, तौ भी तिसके निश्चय-विषे यह है कि न मैं कर्त्ता हौं न भोगता हौं, अरु योगकारिकै इसप्रकार सिद्ध होते हैं, जो देश काल वस्तु क्रिया तिनके अधीन हो जाते हैं, क्रिया कहिये मुखविषे गुटका राखना तिसकारि जहां चाहै तिसी ठौर-विषे जाय प्राप्त होवै, अरु अंजन नेत्रोंविषे पाना, तिसको देखा चाहै, तिसको देखि लेवै, अरु खड्ग हाथविषे धारिकारि संपूर्ण पृथ्वीको वश-करि लेना, यह तौ क्रिया पदार्थ हैं. अरु देश यह कि सर्व पर्वत हैं, तिनविषे केती पीठ हैं, अरु बडा उत्तम है, अरु जिसप्रकार यह सिद्ध होते हैं, सो श्रवण कर, एक कुंडलिनी शक्ति है; आधार चक्रविषे नाभिके तले सर्पिणीकी नाईं तिसविषे कुंडल है, कुंडलको मारि बैठी है, अरु वासनाही तिसविषे विष है, अरु जेती नाडी हैं, तिनकी समष्टि नहीं है, तिस कुंडलिनीविषे जब मनन होता है तब मन होकारि प्रगट होता है, अरु निश्चय होता है, तब बुद्धि प्रगट होती है, जब अहंभाव होता

है, तब अहंकार प्रगट होता है, जब स्मरण होता है, तब चित्त प्रगट होता है, अरु जब तिसविषे स्पर्शकी इच्छा होती है, तब पवन प्रगट होता है, इसीप्रकार पंचतन्मात्रा अरु चारों अंतःकरण प्रगट होते हैं, अरु जेती नाडी हैं, सो सर्व कुंडलनीते प्रगट होती हैं; अरु आत्माका प्रगट होना भी तिसीते जानता हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आत्माका प्रगट तिसते कैसे जाना जाता है, आत्मा तौ देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तुकारि पूर्ण है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे देखपडता है, अरु धूप सर्व ठौर देखपडता है, तैसे ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है, अरु प्रगट सात्त्विक गुणविषे देखपडता है, जेती कछु नाडी अरु इंद्रियां हैं, तिनका उदय होना कुंडलनी शक्तिसों है, अरु जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होकारि पवनको स्थिर करता है, तब जेती कछु अंतर प्राणवायु है, सो सर्व इसके वश होता है, जैसे सर्व सेना राजाके वश होती है, तिसी प्रकार सर्व इंद्रियां इसके वश होती हैं, अरु जो इसके वश प्राणवायु नहीं होती, तौ इसको आधि व्याधि रोग उपजते ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती हैं, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आधि नाम है मनकी पीडाका, अरु व्याधि नाम है देहके दुःखका, आधि तब होती है, जब इसको संकल्प होता है, कि यह सुख मेरे ताईं प्राप्त होवै, अरु वह वस्तु इसको नहीं प्राप्त होती, तब चिंताकरिकै दुःख पाताहै; अरु व्याधि तब होतीहै, जब वात पित्त कफका विकार शरीरविषे होता है, अरु दुःख पाता है, जब मन अरु शरीरका दुःख इकट्ठा होता है, तब आधि व्याधि दुःख इकट्ठे होते हैं, जब भिन्न भिन्न होते हैं, तब दुःख भिन्न भिन्न होते हैं, अज्ञानीको अरु ज्ञानवान्को न आधि होती है, न व्याधि होती है; अरु यह योगकी कला मैं विस्तारकारि नहीं कही, काहेते कि पूर्वके ज्ञानक्रमका प्रसंग रहा जाता है, अरु जेती कला है, तिन सर्वको मैं जानता हौं, परंतु यह कला ज्ञानमार्गको रोकनेहारी है, इसीते विस्तारकारिकै नहीं कहता, अरु वासना चार प्रकारकी है, सो श्रवण कर, एक वासना सुषुप्ति है,

अरु एक वासना स्वप्न है, अरु एक वासना जाग्रत् है, अरु एक क्षीण वासना है; स्थावर योनिको सुषुप्त वासना है, सो आगे फुरैगी, अरु तिर्यक् योनिको स्वप्न वासना है, जो उनको वासनाका ज्ञान भी नहीं, अरु जंगम जो है मनुष्य अरु देवता आदिक तिनको जाग्रत् वासना है, जो वासनाविषे लगे हैं, यह तीन वासना अज्ञानीको हैं, अरु क्षीण वासना ज्ञानीकी है, जो वासनाकी सत्यता नष्ट भई है, तिसको वासना कोऊ नहीं रहती, जब इसप्रकार वासना निवृत्त भई, तब आगे संसार भी नहीं रहता, अरु जब कुंडलनीशक्तिते वासना फुरती है, तब पंच तन्मात्राद्वारा संसार भान होता है, संसाररूपी वृक्षका बीज वासनाहीहै, दशों दिशा संसारवृक्षके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ कर्म तिसके फूल हैं, अरु स्थावर जंगम तिसके फल हैं, जैसी जैसी वासना पुर्यष्टकासाथ मिलिकरि जीव करता है, तैसाही आगे फल होता है ॥ हे रामजी ! ताते वासनाका त्याग कर, वासनाही संसाररूपी वृक्षका बीज है, यही पुरुषप्रयत्न है, सो निर्वासनिक होना; तब विश्व कदाचित् न भासैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकाररूपी रात्रि नहीं रहती, तैसे ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हुए संसाररूपी अंधकार निवृत्त हो जाताहै ॥ हे रामजी ! आधि व्याधि बडे रोग हैं, सो मनकरि होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आधि रोग तौ मनकरि होता है, अरु व्याधि तौ शरीरका रोग है, मन करि कैसे होता है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! व्याधि दो प्रकारकी है, एक लघु है, एक दीर्घ है. लघु कहिये कि, शरीरको कोई दुःख आनि प्राप्त होवै, सो पुण्यकरि अथवा स्नानकरि अथवा जपकरि निवृत्त हो जावै, यह लघु कहीहै, अरु दीर्घ व्याधि सो कहिये, जो जन्म मरणका रोग है, सो बडा रोग है, मनके शांत हुए विना निवृत्त नहीं होता, इसते आधि व्याधि दोऊ मनकरि होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! व्याधि मनकरि कैसे होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोऊ नहीं रहता, अरु जबलग चित्त शांत नहीं होता, तबलग आधि व्याधि होती है, सो श्रवण कर कि, कैसे होती है, जो कछु बाहर अग्निकरि परिपक्व होता है

तिसको पुरुष भोजन करते हैं, तब अंतर कुंडलनी जो है, पुर्यष्टकासाथ मिली हुई जीवकला अरु प्राणोंकी समष्टिता, सो उदानपवन ऊर्ध्वमुख होफुरती है, अरु अपानपवन तिसते अधःको फुरता है, उदान अरु अपानका आपसविषे विरोध है, तिनके क्षोभते अग्नि उठता है, सो हृदयकमलविषे आनि स्थित होता है, तब बहिर अग्निका पका भोजन हृदयकी अग्निते बहुरि पक्क होता है, अरु सर्व नाडी अपने अपने भाग रसको ले जाते हैं, तब वीर्यवाली नाड़ी वीर्यकरिकै राखत है, अरु रुधिरवाली नाड़ी रुधिरकरि राखत है, अरु जब राग अरु द्वेषकरिकै चित्त कुंडलनी शक्तिविषे क्षोभ होता है, तब नाड़ी अपने स्थानोंको छोड देती हैं, अन्न भी अंतर पक्क नहीं होता, तिस कच्चे रसकरि रोग उठते हैं, जैसे राजाको क्षोभ होता है, तब सैन्यको भी क्षोभ होता है, अरु जब राजाको शांति होती है, तब सैन्यको भी शांति होती है, तैसेही जब मनविषे क्षोभ होता है, तब रोग होते हैं, अरु जब मनविषे शांति होती है, तब नाड़ी अपने अपने स्थानोंविषे स्थित होते हैं, रोग कोई नहीं होता ॥ ताते हे रामजी! आधि व्याधि तब होते हैं, जब पुरुषका चित्त निर्वासन नहीं होता, जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोई नहीं रहता, ताते निर्वासनापदविषे स्थित होहु, तब रामजीनें कहा ॥ हे भगवन्! पीछे तुमने कहा, कि मंत्रोंकरि भी रोग निवृत्त होता है, सो कैसे निवृत्त होता है यह कहौ? तब वसिष्ठजीने कहा ॥ हे रामजी! प्रथम पुरुषको श्रद्धा होती है, कि इस मंत्रकरि रोग निवृत्त होवैगा, अरु पुण्यक्रिया जो दान आदिक हैं, अरु संतजनकी संगति होत है, अरु 'य र ल व' आदिक जो अक्षर हैं, इनके जाप करिकै अरु जेते कछु जाप अरु मंत्र हैं, सो इन अक्षरोंकरि सिद्ध होते हैं, जब इनको भावना सहित जाप करता है तब व्याधि रोग निवृत्त हो जाता है, अरु योगेश्वरका क्रम जो है, अणु स्थूल सो श्रवण कर, जब वह प्राण अरु अपान कुंडलिनी शक्तिविषे स्थित होते हैं, अरु इनको वश करिकै योगी गंभीर होते हैं, जैसे मसक विषे पवन होवै, इसी प्रकार पवनको स्थित करिकै कुंडलिनी सुषुम्नाविषे प्रवेश करती है, तब ब्रह्मरंध्रविषे जाय स्थित होती

है, एक मुहूर्त्तपर्यंत तहां स्थित होवै, तब आकाशविषे सिद्धिको देखत है, जिसप्रकार क्रम है, तैसे तुझको कहता हौं ॥ हे रामजी ! सुषुम्नाके अंतर जो ब्रह्मरंध्र है, पूरककारि तिसविषे कुंडलनी शक्ति जब जाय स्थित होती है, तहां अथवा रेचक प्राणवायुके प्रयोगते द्वादश अंगुलपर्यंत मुखसों बाह्य अथवा अंतर ऊर्ध्वभूत मुहूर्त्त एक लगे स्थित होती है, तब आकाशविषे सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जब ब्रह्मरंध्र जीवकला जाय स्थित होती है, तब तहां सिद्धोंका दर्शन कैसे होता है, दर्शन तौ नेत्रोंकरि होता है, सो नेत्र आदिक इंद्रियां वहां कोई नहीं होतीं, नेत्रोंविना दर्शन कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहु रामजी ! भूचर जो हैं, पृथ्वीविषे विचरनेवाले इंद्रियगण, तिनको नभश्चर जो हैं, आकाशविषे विचरनेवाले, तिनका दर्शन नहीं होता, परंतु दिव्य दृष्टिकरि दृष्ट आते हैं, चर्मदृष्टि साथ नहीं दृष्ट आते, विज्ञानके निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं, तिनसाथ दर्शन होता है, जैसे स्वप्नविषे चर्मनेत्रोंविना भी सर्व पदार्थ दृष्ट आते हैं, तैसे सिद्धोंका दर्शन होता है, परंतु एती विशेषता है कि स्वप्नके पदार्थ जाग्रतविषे नहीं भासते, अर्थ सिद्ध नहीं होते, अरु सिद्धोंके समागमकी चेष्टा जाग्रत्विषे भी स्थिर प्रतीत होती है, मुखके बाह्य जो द्वादश अंगुलपर्यंत अपानका स्थान है, जो रेचकप्राणायामका अभ्यास होता है, अरु चिरपर्यंत प्राण स्थिरभूत होता है, तब और पुरियां अरु दिशाके स्थानमें प्राप्त होनेको सामर्थ्य होता है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जो पदार्थ चंचलरूप हैं, तिनका स्थिर होना कैसे होताहै, वक्ता जो गुरु है, सो कृपाकरि कहते हैं, दुष्टप्रश्न जो तर्करूप है, तिसकरिकै भी खेदवान् नहीं होते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वस्तु हैं, तैसी तिसकी शक्ति स्वाभाविक होती हैं, यह आदि जगत्के फुरणे कारि नीति भई है, तैसे अबलग आत्माविषे स्वभाव शक्तिका फुरणा होता है, यह जो अविद्याहै सो असत्रूप है, जो कहूं वस्तुरूप होकरि भी भासतीहै, सो जैसे वसंतऋतुविषे भी शरत्कालके फूल दृष्ट आते हैं, अरु वसंतऋतुके शरत्कालविषे भासते हैं अरु यह भी एक नीति है कि, इसकरिकै यह

द्रव्यकी शक्ति ऐसे हो जावै, परंतु स्वरूपते सब ब्रह्मरूप है, और द्वैत नानात्व कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, व्यवहारके निमित्त नानात्वकी कल्पना हुई है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सूक्ष्म रंध्रते स्थूलरूप कैसे निकस जाती है, अरु अणु सूक्ष्मरूप होकरि बहुरि स्थूलभावको कैसे प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे ओरसे काष्ठ कटता है, अरु उसके दो टुकडे हुए तिनको शीघ्रही घर्षण करिये, तब तिनसों स्वाभाविक अग्नि प्रगट होता है, तैसे उदरविषे मांसमय जो मल हैं, तिसके मध्य हृदयकमल है, तिसविषे सूर्य अरु चंद्रमाकी स्थिति है, तिस कमलके अंतर दो कमल हैं, एक अधः दूसरा ऊर्ध्व, सो अधः चंद्रमाकी स्थिति है, अरु ऊर्ध्व सूर्यकी स्थिति है, तिसके मध्यविषे कुंडलिनी लक्ष्मी स्थित है, जैसे पद्मराग मणिका डब्बा होवै, जैसे मोतियोंका भंडार होवै, तैसे उसका महाउज्ज्वलरूप है, जैसे आवर्त्त फेनके मिलनेते शल शल शब्द प्रगट होता है, तैसे उसते शब्द निकसता है, जैसे डंडसाथ हलायेते सर्पिणी शब्द करती है, तैसे उस कुंडलिनीसों प्रणवशब्द उदय होता है ॥ हे रामजी ! आकाश अरु पृथ्वी जो है, ऊर्ध्व अरु अधःरूप दो कमल तिनकेमध्यविषे कुंडलिनीशक्ति स्पंदरूपिणी स्थित है, जीवकला पुर्यष्टक अनुभवरूपअतिप्रकाश सूर्यकी नाईं हृदयरूप कमलकी भ्रमरी है, सो सबनका अधिष्ठान आदि शक्तिहै,हृदयकमलविषे विराजमानहै,तिस हृदय आकाशविषे कुंडलिनीशक्तिसों स्वाभाविक वायु निकसती है, सो कोमल मृदुरूपहै,वही पवन निकसिकरि दो रूप होताहै, एक प्राण अरु दूसरा अपान, सो अन्योन्य मिलिकरि स्फूरणरूप होताहै,जैसे वृक्षकेपत्र हलते हैं,तिसकरि शीघ्रही अग्नि प्रगट होताहै,अरु बांसोंके घर्षणेते अग्नि प्रगट होता है, तैसे प्राण अपानते अग्नि प्रगट होकरि आकाशविषे उदय होती है, तब सर्व ओरते प्रकाश होता है, जैसे सूर्यके उदयहुए सर्व ओरते भुवन प्रकाशरूप होताहै, तैसे सर्व ओरते प्रकाश होताहै, सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार है, हृदयकमलका स्वर्णरूप भ्रमरा है, तिसके चिंतवनते योगी तद्गत होतेहैं, सो प्रकाश ज्ञानरूपहै, तिस तेजसाथ योगकी

वृत्ति तद्गत होती है, अर्थ यह एकत्वभावको प्राप्त होती है, तब लक्ष योजनपर्यंत जो पदार्थ होवें तिनका ज्ञान हो आता है प्रत्यक्ष दृष्ट पडे आते हैं, तिस अग्निका हृदयरूपी तालस्थान है, जैसे बडवाग्नि समुद्रविषे रहता है, अरु जलही ताके इंधन हैं, जो जलको दग्ध करता है, तैसे हृदयरूपी तालविषे तिसका निवास है, अरु रस शीतलता जलरूपको पचावतहै, तिस हृदयकमलते जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है, तिसका नाम चंद्रमा है, अरु प्राणरूप उष्ण पवन उदय होताहै, सो सूर्यरूप है, सोई उष्ण अरु शीतल सूर्य चंद्रमा नामकरि देहमें स्थित हैं, आदिप्राणवायु सूर्यते अपनारूप चंद्रमाते सूर्यरूप होकरि स्थित होता है, सूर्य उष्ण अरु चंद्रमा शीतल है, इन दोनोंकरि जगत् हुआहै, विद्या अविद्या सत्य असत्यरूप जगत् दोनोंकरि युक्तहै, सत्चित् प्रकाश विद्या उत्तरायण सूर्य अग्नि आदिकनामसों बुद्धिमान् निर्मलभाव कहते हैं, अरु असत् जड अविद्या तम दक्षिणायन आदिक मार्ग यह चंद्रमारूप मलिन भाव कहते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अग्नि सूर्यरूप जो प्राणवायु है, तिसते शीतल जलरूप चंद्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है, अरु अपानजल चंद्रमा रूपते सूर्य कैसे उत्पन्न होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सूर्य चंद्रमा जो हैं, अग्नि सोम सो परस्पर कार्यकारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर अरु अंकुरते वृक्ष अरु वृक्षते बीज होता है, जैसे दिनसों रात्रि अरु रात्रिसों दिन होताहै, छायासों धूप अरु धूपसों छाया होती है, तैसे सूर्य चंद्रमा परस्पर कार्यकारण होते हैं, कबहूँ इनकी इकट्ठी भी उपलब्धि होती है, जैसे सूर्यके उदय हुए धूप अरु छाया दोनों इकट्ठे आते हैं, अरु कार्यकारण भी दो प्रकारका है, एक कार्य सत्यरूप परिणाम करिकै होता है, एक विनाशरूप परिणाम करिकै होता है, एकते जो दूसरा होता हैं, जैसे बीज नष्ट होगया तिसते अंकुर होता है सो विनाशरूप परिणाम होता है, अरु जैसे मृत्तिकाते घट उपजता हैं, सो सत्यरूप परिणाम कहाताहै, जो कारणकार्यके भावाभावविषे भी इंद्रियों प्रत्यक्ष पाइये, तिसकरि नाम सत्यरूप परिणाम है, अरु जो कार्यविषे इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता; दिनविषे रात्रि अरु रात्रिविषे दिन

की नाईं सो विनाशरूप परिणाम कहाता है, जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, तैसे अभाव भी प्रमाण है, ताते एक विनाशभाव भी कारणरूप है, जो कहते हैं, अपना संवित्‌विषे कर्तव्य नहीं बनता, इत्यादिक युक्तिवादी कहते हैं, सो इस अर्थकी अवज्ञा करते हैं, अपने अनुभवको नहीं जानते हैं, अनुभवकी युक्ति उनको नहीं आती, यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रगट होता है, अरु शीतलता प्रमाण है, जैसे अग्निके अभावते शीतलताके अभावविषे उष्णता पाईजाती है, दिनके अभावविषे रात्रि, छायाके अभावविषे धूप, इत्यादिकका नाम अभाव प्रमाण कारण है, अरु अग्निते धूमभाग निकसता है, सो मेघ जाय होता है, इसप्रकार सत्त्वरूप प्रमाणकरि सोम जो है चंद्रमा, तिसका कारण अग्नि होता है, अरु अग्नि नाश होकरि शीतलभावको प्राप्त होता है, तब इसका नाम विनाश प्रमाणकरि अग्नि सोम चंद्रमाका कारण होता हैं, सप्त समुद्रोंका जलपान करिकै वडवाग्नि धूमको उद्गीर्ण करता है, सो धूम मेघको प्राप्त होकरि अत्यर्थ जलका कारण होता हैं, अरु सूर्य जो सो विनाशके अर्थ चंद्रमाको पान करता है, अमावास्यापर्यंत वारंवार भक्षण करता है, बहुरि शुक्लपक्षविषे उद्गीर्ण रूप है, जैसे सारस पक्षी भेकको भक्षण करिकै उद्गीर्ण कर डारता है, ॥ हे रामजी ! अमृतके समान शीतल जो अपानवायु चंद्रमारूप है, सो मुखके अग्नि विषे रहता है, वह जलकणका रूप जब शरीरविषे जाता है, तब वह जलका अणु अपानरूप सूर्यरूप प्राणी फुरणेको प्राप्त होता है, इसप्रकार सत्यरूप परिणामसों जल अग्निका कणका होता है, अरु जब जलका नाश हो जाता है, तब वह उष्णभाव अग्निको प्राप्त होता हैं, इनका नाम विनाशपरिणाम है, इसप्रकार जल अग्निका कारण कहाता है, अग्निके नाश हुए चंद्रमा उत्पन्न होता हैं, इनका नाम विनाशपरिणाम हैं, अरु चंद्रमाके अभाव हुए अग्निका होना होता है, इसका नाम भी विनाशपरिणाम हैं, जैसे तमके अभावते प्रकाश उदय होता है, अरु प्रकाशके अभावते तम होता है, दिनके अभावते रात्रि, अरु रात्रिके अभावते दिन होता है, इसके मध्यविषे जो विलक्षणरूप है,

सो बुद्धिमानोंकरि भी नहीं पायाजाता, तम अरु प्रकाश दोनों रूपोंकरि युक्त है, इनके मध्यविषे जो संधि है, सो आत्मरूप है, तिसविषे स्थित होउ, चेतन अरु जड़ दोनों रूपोंकरिकै भूत फुरण होते हैं, जैसे दिन अरु रात्रि तम अरु प्रकाश करिकै पृथ्वीविषे चेष्टा करते हैं, चेतन अरु जड़रूप सूर्य अरु चंद्रमा दोनों रूपकरिकै युक्त हैं, निर्मलरूप जो प्रकाश चिद्रूप है, तिसका नाम सूर्य है, अरु जडात्मक तमरूप है, सो चंद्रमाका शरीर है, जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है, तब संसारका दुःखरूप जो तम है सो नष्ट होता है, जैसे बाह्य आकाश विषे सूर्य उदय हुएते श्याम रात्रिका तम नष्ट हो जाता है, अरु जड़ चंद्रमारूप जो देह है, जब तिसको देखता है, तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता, असत्यकी नाईं हो जाता है, अरु चेतनकी ओर देखता है, तब देह नहीं भासता, केवल लक्षविषे दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती, केवल चेतनपदको प्राप्त हुएते द्वैतते रहित निर्वाणभाव होता है, अरु जडभावको प्राप्त हुए चेतन नहीं भासता, ताते संसारके दर्शनका कारण दोनों हैं, सूर्यचेतनकरि चंद्रमाजडकी उपलब्धि होती है, अरु जड चंद्रमाकारि सूर्यचैतन्यकी उपलब्धि होती है, जैसे दीपक अग्निका अंधकारविना प्रकाश नहीं होता, तैसे इन दोनोंविना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती, अरु प्रकाशविना केवल जडकी उपलब्धि भी नहीं होती, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब कंधेके ऊपर प्रकाशता है सो कंध प्रकाशकारि भासता है, अरु प्रकाश कंधकारि भासता है, तैसे चित्त फुरता है, तब चेतनको जगत् भासता है, अरु फुरणा जगत्कारि होता है, फुरणेते रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है ॥ ताते हे रामजी! जगत्को अग्नि अरु सोम जानो, देहदेहविषे संबंध है, परंतु जिसका अतिशय होवै तिसका जय होता है, प्राण अग्नि उष्णरूप है, अरु अपान शीतल चंद्रमारूप है, प्रकाश अरु छायारूप है, इनको जानना सुखका मार्ग है, ॥ हे रामजी! जब बाह्यसों शीतलरूप अपान अंतरको आता है, तब उष्णरूप प्राणविषे जाय स्थित होता है, अरु जो हृदयस्थानसों निकसकरि प्राण उष्णरूप बाह्यको द्वादश अंगुलप-

र्यंत जाता है, तब अपान जो है, चंद्रमाका मंडल, तिसको प्राप्त होता है, सो अपान प्राणरूप होकरि उदय होता है, अरु प्राण अपानरूप होकरि उदय होता है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, तैसे इनका परस्पर आपसमें प्रतिबिंब पडता है, जहां षोडश कला चंद्रमाको सूर्य ग्रास लेता है, तिस मध्यभावविषे स्थित होउ, जब अपान प्राणोंके स्थानविषे आनि स्थित होता है, अरु प्राणरूप होकरि हृदय नहीं भया, सो शांतिरूप भाव है, तिसविषे स्थित होउ, अरु प्राण निकसिकरि मुखसों द्वादश अंगुलपर्यंत जब बाह्य स्थित होता है, अरु जबलग अपान भावको प्राप्त होकारि उदय नहीं भया, वह जो मध्यभाव है, तिसीविषे स्थित होउ, अरु मेष आदिक जो द्वादश राशिहैं, तिस एकको त्यागिकरि दूसरी राशिको संक्रांति नहीं प्राप्त,भई, तिसका नाम संक्राति है, तिनके मध्यविषे जो संधि, तिसका नाम पुण्यकाल है, सो पुण्यसमय अंतर अरु बाह्य प्राण अपानकी संधिके समयमें तृणवत् है, अरु तिन संक्रांतिविषे जो बृषवती संक्रांति वैशाखकी है, जो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रांति त्रयोदश दिन होती है, अरु अस्तकी संक्रांति त्रयोदश दिन इनका नाम वर्षवती है, जहां दिन अरु रात्रि सम होत हैं, दक्षिणायन अरु उत्तरायणकी जो संधि होत है, इनके अंतर अरु बाह्य भेदको जाने, तब जन्मते रहित परमबोधको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरोंका है, सो क्रमकरि मुक्त होत हैं, अरु दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालोंका है; तिसकरि बहुरि संसारभागी होत हैं; तिनके मध्यविषे जो संधि है, तिसविषे स्थित हुएते परपमदको प्राप्त होते हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अग्निसोमविचारयोगो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

नवषष्टितमः सर्गः ६९.

चिंतामणिवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! यह सर्व कला योगकी विस्तार करिकै कही है, अरु उत्तम प्रभाव तामें वर्णन भया है, अरु प्रयोजन यही है, जो

निर्वाणपदमें स्थित होवै, आत्मा ब्रह्मकी एकता होवै, जो बहुरि जन्मादिकोंका दुःख न होवै, ब्रह्म चित् :सत् आनँद स्वभावमात्र है, जो एकवार तामें तद्भाव जो है, एकत्वभावसो होता है, तब सदैव वही भाव रहत है, अरु घनी शक्तिका होत है, अविद्या नाश हो जाती है, इसप्रकार वही चूडाला रानी योगके अभ्यास अरु ज्ञानके अभ्याससों पूर्ण होत भई, तब सर्व शक्तिसों संयुक्त होइकारि अरु अणिमा आदि सिद्धिकी प्राप्ति होत भई, तब मध्यआकाशको उड़ी, एक दिशामें राजा शयन कर रहा था, अरु तामें अवकाश पाया, अरु मध्य आकाशके बहुत स्थानोंमें विचरत भई, अरु मध्य देवलोकके कालीरूप अरु अविद्युत् विलोचन अति चंचल धारिके गमन करत भई, अरु मध्यदिशाको जात भई, अरु मध्य देवलोक, अरु मध्य दैत्योंके, अरु मध्य राक्षसोंके अरु मध्य विद्याधरोंके अरु मध्य सिद्धोंके, अरु मध्य सूर्यलोकके, अरु मध्य चंद्रमालोकके, मध्य तारामंडलके, मध्य मेघमंडलके, अरु मध्य इंद्रलोकके गमन करत भई, तहां कौतुक देखकर बहुरि अधोलोकमें आई, अरु मध्य समुद्रके प्रवेश करिकै बहुरि मध्य अग्निके प्रवेश करत भई, अरु मध्य पवनके पवनरूप होत भई, अरु मध्य नागलोकके कन्या विषे क्रीडा करत भई, मध्य वनोंके, मध्य पर्वतोंके, अरु मध्यभूतोंके, अरु मध्य अप्सराओंके अरु मध्य त्रिलोकीके विचरती भई, लीलाकरिकै एक क्षणमें तिसी स्थान आवत भई, जहां राजा शयन कर रहा था समीप राजाके शयनकारि रही; जैसे भँवरीभँवरा कमलिनीके मध्य शयन करतेहैं, अरु राजा तिसको न जानत भया, कि रानी गई थी अथवा न गई थी, बहुरि रात्रि व्यतीत भई, प्रातःकाल हुआ, अरु राजा स्नानशाला में जायकारि स्नान करत भया, अरु प्रवाह कर्म वेदोक्त हैं, सो करत भया, अरु रानी भी प्रवाहकर्म करत भई, अरु राजाको शनैः शनैः तत्त्वका उपदेश किया, जैसे पिता पुत्रको मिष्ट वाणीकारि उपदेश करता है, अरु पंडितोंको कहत भई कि, राजाको तुमभी उपदेश करौ, कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम है, अरु दीर्घ रोग है, दुःखका कारणहै, सोआत्मज्ञान औषधते नाश होता है, अपर इसका औषध कोई नहीं, इसीप्रकार

आपभी राजाको उपदेश करै, अरु पंडित भी उपदेश करैं परंतु राजा तिस ज्ञानको पावत न भया, अरु विक्षेपताविषे रहा, उत्तमपदमें विश्राम पावत न भया, जो अपना आप है, अरु कँवल चित्तरूप प्रत्यक् आत्मा है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनिजी! वह रानी तौ सर्वशक्तिसंपन्न भई थी, योगकलाविषे भी अति चतुर, अरु ज्ञानकलाविषे भी तद्रूप भई थी, अरु राजा भी अति मूढ़ न था, तिसको उसका उपदेश दृढ क्यों न होत भया, अरु रानी भी तिसको प्रीतिकारि उपदेश करती थी, वह कारण क्या था, जो अपने पदविषे स्थिति पावत न भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे अच्छिद्र मोतीविषे तागा प्रवेश नहीं करता, तैसे चूडालाका उपदेश राजाको न वेधत भया, सो जबलग आप विचार न करै, अरु तिसविषे दृढ अभ्यास न होवै, तबलग ब्रह्मा उपदेश करै तब भी तिसको न वेधै. काहेते कि, आत्मा आपही कारि जाना जाता है, अरु इंद्रियका विषय नहीं, जो अधिष्ठानरूप है, अरु स्वभावमात्र है, अरु आपही आपको देखता है, अरु किसी मन इंद्रियका विषय नहीं अरु सर्वका अपना आप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब अपने आपकारि देखता है, तब गुरु अरु शास्त्र उपदेश किसनिमित्त करते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! गुरु अरु शास्त्र जताय देते हैं कि, तेरा स्वरूप आत्मा है, परंतु इदंकारिकै नहीं दिखावते; अरु विचारनेत्रसों आपको आपही देखता है, विचारते रहित तिसको नहीं देख सकता, जैसे किसी पुरुषको चंद्रमा कोऊ सचक्षु दिखावता है कि, अमुक स्थानमें देख उदय है, जब वह सचक्षु होता है, तौ देखता है, अरु मंददृष्टि होता है, तब नहीं देखता, तैसे गुरु अरु शास्त्र आत्माका रूप वर्णन करते हैं, अरु लखावते हैं, जब वह विचार नेत्रसों देखता है, तब कहता है कि, मैं देखा, अरु अपरके दिखानेको योग्य होता है ॥ हेरामजी! आत्मा किसी इंद्रियका विषय नहीं, जो अपना आप मूलरूप है, अरु इंद्रिय कल्पित हैं, अरु जो तू कहै कि, तुम भी उपदेश इंद्रियकारि करते हौ; तौ सर्व इंद्रियोंका विस्मरण करु, जो मूल अपना तुझे भासै, अरु अभाववृत्ति इंद्रियां किसीको तेरा अभाव न होवैगा ॥

हे रामजी! इसीपर एक इतिहास कृपणको है, सो श्रवण करु एक कृपण था, उसके पास धन और अनाज भी बहुत था; परंतु कृपण था, किसीको देता कछु न था, अरु अपर धनकी तृष्णा करता रहै कि किस प्रकार चिंतामणि मेरे ताईं प्राप्त होवै, सदा यही वांछा करै, इसी वांछाकरि एक समय घरते बाहर निकसा, अरु पृथ्वीकी ओर देखता जावै, तब एक स्थान था, तहां घास अरु भूस पडा था, तिसविषे एक कौडी दृष्टि पडी तब कौडीको उठाय लिया, बहुरि देखने लगा कि, कछु अपर भी निकसै तब दूसरी कौडी निकसी, इसप्रकार ढूँढते हुए दिन व्यतीत भए, तब चार कौडी निकसी, बहुरि अष्ट निकसी जब ढूँढते२ त्रय दिन और व्यतीत भये, तब चिंतामणि चंद्रमाकी नाईं प्रगट देखा तब मणि लेकारि अपने घर आया; अरु बडे हर्षको प्राप्त भया ॥ हे रामजी! तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकारि तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मिका पाना, सो कौडियोंका खोजना है अरु आत्मा चिंतामणिरूप है, परंतु जैसे कौडियांके खोजते चिंतामणि विना खोजे न पाई, तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकारि आत्मपद पाता है, गुरुशास्त्रोंविना नहीं पाता, धनकारि तपकारि कर्मकारि आत्मा नहीं पाता, केवल अपने आपकारि पाता है ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज चूडालाके पासते उठिकारि स्नानको गया तब राजाके मनविषे वैराग्य उपजा कि, यह संसार मिथ्या है, बहुत भोग हम भोगे हैं, तौ भी हृदयको शांति न भई, अरु इन भोगोंका परिणाम दुःखदायक है, जब मनविषे ऐसा विचार उपजा, तब राजाने गौ, पृथ्वी, स्वर्ण, मंदिर अरु अपर सामग्री बहुत दान करी, जेते कछु ऐश्वर्यके पदार्थ हैं, सो दान किये, ब्राह्मणोंको दिये अपर गरीब अतिथिको दिया, जैसे जैसे किसीका अधिकार देखा, तैसे दिया, अरु रानीने भी ब्राह्मणों मंत्रियोंको कहा कि, राजाको तुम यही उपदेश किया करौ, कि यह भोग मिथ्या हैं, इनविषे सुख कछु नहीं, अरु आत्मसुख बडा सुख है, जिसके पायेते जन्ममृत्युसों मुक्त होता है, इसीप्रकार राजा ब्राह्मणोंते श्रवण करै, अरु अपने मनविषे भी वैराग्य उपजा था, तब राजा कहत भया कि, इस संसारदुःखते मैं रहित होऊं, इस संसारमें बडा दुःख है, इसविषे

सदा जन्ममरण है, तब राजाके मनविषे हुआ कि, मैं तीर्थोंको जाऊं, अरु स्नान करौं, बहुरि राजा तीर्थोंको चला, तब स्नानभी करै, दान भी करै, इसप्रकार देवता अरु तीर्थों अरु सिद्धोंके दर्शन किये; स्नानकरि बहुरि गृहको आया, तब आयकरि रात्रिके समय, रानी साथ शयन किया, अरु रानीको कहा कि, हे अंगना ! अब मैं वनको तप करनेके निमित्त जाता हौं, यह सब भोग मेरे ताईं दुःखदायक भासते हैं, अरु राज्य भी वनकी नाईं उजाड भासता है, ताते मैं तपके निमित्त वनको जाता हौं, अरु यह भोग बहुत कालपर्यंत हम भोगते रहे तौ भी इनविषे सुख दृष्टि न आया, ताते मेरे ताईं अटकावना नहीं, मैं वनको जाता हौं, तब रानीने कहा ॥ हे राजन् ! अब तेरी कौन अवस्था है, जो तू वनको जाता है, अब तौ हम राज्य भोगैं, जैसे वसंतविषे फूल शोभा पाते हैं, अरु शरत्कालविषे नहीं शोभते, तैसे हम भी वृद्ध होवैंगे, तब वनको जावैंगे, अरु वनहीविषे शोभा पावैंगे, जैसे वनके फूल श्वेत होवैं तैसे हमारे केश श्वेत होवैंगे, तब शोभा पावैंगे, अब तौ राज्य करौ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब रानीने कहा, तब राजाका चित्त वैराग्यहीविषे रहा. रानीका कहना चित्तविषे न लावता भया. जो तीर्थोंके स्नान अरु दानकरि राज्यसुखते राजाको वैराग्य उपजा परंतु शांति न पाई, जैसे चंद्रमाविना कमलिनी शांति नहीं पाती, तैसे ज्ञानविना राजाको शांति न प्राप्त भई, परंतु वैराग्यकरिकै कहने लगा ॥ हे रानी ! अब मेरे ताईं अटकावना नहीं अब राज्य मुझको फीका लगा है, मैं वनको जाता हौं, जो ठहराव मेरा यहां नहीं होता, जो तू कहै हम यहां तेरी टहल करते थे, पाछे कौन करैगा, तब पृथ्वीही हमारी टहल करैगी अरु वनकी वीथियां भी स्त्रियां होवैंगी, अरु मृगके बालकही पुत्र हैं, आकाश हमारे वस्त्र हैं, फूलके गुच्छे भूषण हैं, ऐसे राजाने कहा, तब आगे रात्रिका समय हुआ अरु राजा वहांते चला तब वहांते रानी अरु नगरते सैन्य भी पाछे चला, बडी भयानक रात्रिविषे चले कोटके बीचही जाय स्थित भये, तब राजा अरु रानी सोये, जैसे भँवरा भँवरी सोवते हैं, सैन्य अरु सहेलियां सब सोयगये कर्मनिद्रा करि जड होगये, जैसे पत्थरकी शिला

जड़ होती है, जब अर्धरात्रि व्यतीत भई, तब राजा जागा, अरु देखा कि, सब सोये गये हैं, तब शय्याते उठा, राणीके वस्त्र एक ओर करिकै हाथविषे खड्ग लेकरि निकसा, जैसे क्षीरसमुद्रते विष्णु भगवान् लक्ष्मीसों उठता है, तैसे उठा, अरु सब लोक लँघता जब कोटके दरवाजेपर आया तब अर्ध मनुष्य जागे थे, अरु अर्ध सोयेथे उनने राजाको देखा, तब राजाने कहा, हे द्वारपालो ! तुम यहांही बैठे रहौ, मैं एकलाही वीरयात्राको जाता हौं, तब राजा तीक्ष्ण वेगकरि चला गया, अरु बाहर निकसिकरि कहा ॥ हे राजलक्ष्मी ! तुझको नमस्कार है, अब मैं वनको चला हौं, तब एक वनविषे आया, जहां सिंह अरु सर्प अपर भयानक जीव हैं, तिनके शब्द सुनता आगे चला गया, तिसते आगे अपर बेला आया तिसको भी लंघ गया, जब आठ प्रहर राजा चला गया, तब एक ठौर जाय स्थित भया, जब सूर्य उदय हुआ, तब राजाने स्नान करिकै संध्यादिक कर्म किये अरु वृक्षके फल लेकरि भोजन किये बहुरि आगे चला कि, कोई पाछेते आयकरि मेरे ताईं अटकावै नहीं, इसनिमित्त तीक्ष्ण चला, बडे पहाड़ अरु नदियां बेले राजा उल्लंघिकरि द्वादश दिनपर्यंत चला गया, जब मंदराचल पर्वतके निकट गया, तब एक वनविषे जाय स्थित भया, अरु स्नान करिकै कछु भोजन किया अरु पत्र लेकरि झुपडी बनाई मेघकी रक्षा अरु छायाके निमित्त तहां स्थित भया, अरु बासन भी बनाए, तिनविषे फूल फल राखे, जब प्रातःकाल होवै, तब स्नानकरिकै प्रहरपर्यंत जाप करै, बहुरि देवताओंके पूजननिमित्त फूल चुनै अरु स्नानकरिकै द्वितीय प्रहर ऐसे व्यतीत करै, जब तीसरा प्रहर होवै, तब फल भोजन करै, चौथा प्रहर बहुरि संध्या जाप करै । इसीप्रकार दिन अरु रात्रि व्यतीत करै, कछुक काल रात्रिको शयन करै, अपर जापविषे व्यतीत करै, इसीप्रकार कालको व्यतीत करै ॥ हे रामजी ! राजाकी तौ यह अवस्था भई, अब राणीकी अवस्था श्रवण करु ॥ जब अर्ध रात्रिते पाछे राणी जागी तब क्या देखै कि, राजा यहां नहीं, वनको गया है, अरु शय्या खाली पडी है, तब राणीने सहेलियोंको जगाया अरु कहने लगी, बडा कष्ट है, राजा वनको निकस गया

है, अरु बडे भयानक वनविषे जावैगा, ऐसे कहकर मनविषे विचार किया कि, राजाको देखा चाहिये, तब योगविषे स्थित होकरि आकाशको उडी, आकाशकी नाईं देहको अंतर्धान करिकै जैसे योगेश्वरी भवानी उड़ती है, तैसे उडी, अरु आकाशविषे स्थित होकरि देखा कि, राजा चला जाता है, तब राणीके मनविषे आया कि, इसका मार्ग रोकौं बहुरि एक क्षणमात्र स्थित होकरि भविष्यत्को विचारने लगी कि, राजा अरु मेरा संयोग नीतिविषे कैसे रचा है, तब देखत भई कि, राजा अरु मेरा मिलाप होनेविषे बहुत काल शेष है, अरु अवश्य मिलाप होगा मुझे उसको उपदेशकारि जगावना है, परंतु केतेक काल उपरांत अभी इसके कषाय परिपक्क नहीं, ताते अब राजाका मार्ग नहीं रोकना, तब राणी बहुरि अपने घर आई, अरु शय्यापर शयन किया, अरु बडी प्रसन्नताको प्राप्त भई; जब रात्रि व्यतीत भई, तब मंत्रीसे कहने लगी कि, राजा एक तीर्थ पर्सणे गया है, दर्शन करिकै बहुरि आवैगा, ऐसे मंत्री अरु प्रजाको कहा, बहुरि मंत्रीको आज्ञा करी कि, तुम अपने कार्यविषे वर्तौ तब मंत्री अपनी चेष्टाविषे वर्तने लगे, इसीप्रकार राणीने अष्ट वर्षपर्यंत राज्य किया, अरु प्रजाको सुख दिया, जैसे बागवान् कमलोंके क्यारीको सुखसे पालता है, तैसे राणीने प्रजाको सुख दिया, अरु वहां राजाको अष्ट वर्ष तप करते व्यतीत भये, अरु राजाके अंग दुर्बल हो गये अरु वहां राणीने राज्य किया, जैसे भँवरा अपर ठौर होवै, तैसे इनको और और ठौरविषे व्यतीत भया, तब राणीने विचार किया कि, राजा अब मेरे वचनोंका अधिकारी भया है, अंतःकरण राजाका तप करिकै शुद्ध हुआ है, अब राजाको देखिये. तब राणी उडी आकाशको गई, अरु नंदनवन इंद्रका है सो देखा, वहांके जो दिव्य पवन हैं, तिनका स्पर्श हुआ, तब राणीके चित्तविषे आया कि मेरे ताईं भर्ता कब मिलैगा, बहुरि कहने लगी कि, बडा आश्चर्य है, मैं तौ सत्पदको प्राप्त भई थी, तो भी मेरा मन चलायमान भया है, ताते इतर जीवकी क्या कहनी है, तब वहांते चली, आगे कमलफूल देखे, देखिकारि कहने लगी कि, मेरे ताईं यह भर्ता कब मिलैगा,

जिसकरि भर्ताको पाऊं मैं कामातुर भई हौं, बहुरि मनको कहने लगी॥ हे दुष्ट मन ! तू तौ सत्पदको प्राप्त भया था, तेरा भर्ता आत्मा है, अब तू मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा काहेको करता है, बहुरि कहने लगी, जबलग देह हैं, तबलग देहके स्वभाव भी साथ रहते हैं, जो मेरे ताईं यह अवस्था प्राप्त भई है, तौ भी मन चलायमान होता है, ताते इतर जीवकी क्या वार्ता करणी है, तब राणी मेघके स्थानोंको लंघ अरु महाबिजलीके स्थान लंघे बडे पर्वत अरु नदियोंको लंघी समुद्र भयानक स्थानोंको लंघी, अरु मंदराचल पर्वतके पास वनविषे आनि स्थित भई, अरु कहने लगी कि, मेरा भर्ता कहां है, बहुरि समाधिविषे स्थित होकारि देखा कि, अमुक स्थानमें बैठा है, तप करिकै महादुर्बल अंग हो गये हैं, अरु ऐसे स्थानविषे प्राप्त भया है, जहां अपर जीवकी गम नहीं, अरु महावेतालकी नांई रात्रिको चला आयाहै, ताते अज्ञान महादुष्ट है, जो ऐसा राजा तपको लगा है, स्वरूपके प्रमाद करिकै जड है, अब ऐसे होवै, जो किसी प्रकार अपने स्वरूपको प्राप्त होवै, परंतु मेरे इस शरीरकरिकै ज्ञान इसको न उपजैगा. काहेते कि, राजाको प्रथम यह अभिमान होवैगा कि, मेरी स्त्री है, अरु बहुरि कहैगा, मैं इसहीके निमित्त राज्य छोडाहै, बहुरि मेरे ताईं दुःख देनेको आई है, ताते अपर शरीर ब्रह्मचारीका धारौं ऐसे विचार करिकै शीघ्रही ब्रह्मचारीका शरीर धारत भई, जैसे जलका तरंग एक स्वरूपको छोडता है, अरु अपर हो जाता है, तैसे महासुंदर शरीरको धारिकारि एक गिठ पृथ्वीते ऊपर चलने लगी, अरु हाथविषे रुद्राक्षकी माला अरु कमंडलुको धारे, अरु मृगछालाको धारे, अरु मस्तकपर विभूति लगाई, जैसे सदाशिवके मस्तकपर चंद्रमा विराजता है, तैसे सुंदर विभूतिको लगाया, अरु श्वेतही यज्ञोपवीतको पाया, ऐसा चिह्न धारिकारि चली, तब राजा देखि करि आगेते उठि खडा हुवा, अरु नमस्कार किया, फूल चरणोंपर चढाये, अरु अपने स्थानपर बैठाया, अरु कहने लगा ॥ हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुम्हारा दर्शन भया ॥ हे देवपुत्र ! तुम्हारा आना कैसे हुआ ? ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन् ! हम बडे बडे पर्वत

देखते आये हैं, अरु तीर्थ करते आये हैं, परंतु जैसी भावना तेरेविषे देखी है, तैसी किसीविषे नहीं देखी ॥ हे राजन् तुमने बडा तप किया है, अरु तू इंद्रियजित दृष्टि आता है अरु मैं जानता हौं कि, तेरा तप खड्गकी धारा जैसा तीक्ष्ण है, ताते तू धन्य है, तेरे ताईं नमस्कार है ॥ परंतु हे राजन्! आत्मयोगके निमित्त भी कछु तप किया है, अथवा नहीं किया, सो कहु ॥ तब राजाने जो फूलकी माला देवपूजनके निमित्त रक्खी थी सो देवपुत्रके गलेमें डाली अरु पूजा करी बहुरि कहा ॥ हे देवपुत्र! तुमसारिखेका दर्शन दुर्लभहै, अरु अतिथिका पूजन देवताते भी अधिकहै॥हे देवपुत्र! तेरे अंग बहुत सुंदर दृष्ट आते हैं, ऐसेही मेरी स्त्रीके अंग थे, नखशिखपर्यंत तेरे वही अंग दृष्ट आते हैं, परंतु तू तौ तपस्वी है, तेरी मूर्ति शांतिके लिये हुई है, मैं कैसे कहौं कि, वही है ॥ ताते हे देवपुत्र ! कहो कि, तू किसका पुत्र है, अरु यहां किस निमित्त आया है, अरु आगे कहांजावैगा, यह संशय मेरा निवृत्त करौ, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन्! एक समय नारदमुनि सुमेरु पर्वतकी कंदराविषे आया था, सो महासुंदर कंदरा है, जहां आश्चर्यके वृक्ष अरु मंजरियां फूलफलसाथ सब पूर्ण हैं, ब्राह्मणोंकी कुटी तहां बनी हुई हैं, तिस स्थानको देखिकरि ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाय बैठा, अरु गंगाका प्रवाह चलता है, जहां सिद्धोंकी गम है और जीवोंकी गम नहीं तब केताक काल समाधिविषे स्थित रहा, जब समाधिते उतरा, तब भूषणका शब्द हुआ, तब नारदजीके मनविषे महाआश्चर्य हुआ कि, इहांतौ आनेकी गम किसीकी नहीं, यह भूषणोंका शब्द कहांते आया; तब उठिकारि देखने लगा कि, गंगाका प्रवाह चला आता है, तहां उर्वशी आदिक अप्सरा स्नान करती हैं, वस्त्रोंको उतारे हुए महासुंदर हैं, जब उनको देखा तब नारदजीका विवेक आवरण भया; अरु वीर्य चला, तिसके पास सुंदर वल्ली थी तिसके पत्रपर जाय स्थित भया, चंद्रमाकी नाईं उज्वल इसप्रकार सुनकारि शिखरध्वज कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारदमुनि सर्वज्ञ अरु बडा मननशील तिसका वीर्य किसनिमित्त चला, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन्! जबलग शरीर है, तबलग अज्ञानीका अरु

ज्ञानीका भी शरीरस्वभाव निवृत्त नहीं होता, परंतु एक भेद है, जब ज्ञान वान्को दुःख आय प्राप्त होताहै, तब दुःख नहीं मानता, अरु जब सुख आय प्राप्त होता है, तब सुख नहीं मानता, हर्षवान् नहीं होता, अरु जब अज्ञानीको दुःखसुख आय प्राप्त होता है, तब हर्षशोक करता है, जैसे श्वेत वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, तैसे अज्ञानीको सुखदुःखका रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु जैसे सोमके वस्त्रको जलका स्पर्श नहीं होताहै, तैसेही ज्ञानवान्को सुखदुःखका स्पर्श नहीं होता, अरु जिसके अंतःकरणरूपी वस्त्रको ज्ञानरूपी मोम नहीं चढा तिसके दुःख सुखरूपी जल स्पर्शकरि जाता है, अरु ज्ञानवान् मोमवत् है, उसके अंतः करणको दुःखसुख नहीं होता, अज्ञानीको होता है, जो दुःखकी नाडी भिन्न हैं, अरु सुखकी नाडी भिन्न हैं, जब सुखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब दुःख कोऊ नहीं देखता, जब दुःखकी नाडीविषे स्थितहोता है, तब सुख नहीं देखता, अज्ञानीको कोऊ दुःखका कोऊ सुखका स्थान है, अरु ज्ञानीको एक आभासमात्र दिखाईदेता है, बंधमान नहीं होता, जब लग इसको ज्ञानका संबंध है, तबलग दुःख निवृत्त नहीं होता, तब राजा नेकहा, वीर्य जो गिरता है, सो वीर्य कैसे निवृत्त होता है, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! जब इसका चित्त वासनाकरिकै क्षोभवान् होता है, तब नाडी भी क्षोभ करती हैं, अरु अपने स्थानोंको त्यागने लगती हैं, तब वीर्यवाली नाडीते स्वभाविकही वीर्य नीचेको चला आता है, बहुरि राजाने कहा ॥ हे देवपुत्र ! स्वाभाविक क्या कहिये ! देवपुत्रने कहा हे राजन् ! आदि परमात्मशुद्ध चेतनविषे जो फुरणा हुआ है, तिस क्षण मात्र शक्तिके उत्थानकरि आगे प्रपंच बनिगया है, तिसविषे आदि नीति हुई है, कि यह घट है, यह पट है, यह अग्नि है, इसविषे उष्णता है यह जल है, इसविषे शीतलता है, तैसेही नीति है, जो वीर्य ऊपरते नीचेको आता है, जैसे पर्वतते पत्थर गिरता है, सो नीचेको चला आता है तैसे वीर्य भी नीचेको आता है, तब राजाने प्रश्नकिया ॥ हे देवपुत्र ! इसको दुःख कैसे होता है, अरु सुख कैसे होता है, अरु दुःखसुखका अभाव कैसे होता है, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! जब यह जीव कुंडलिनी शक्ति-

विषे स्थित होता है, अरु दृश्य जो है, चार अंतःकरण, अरु इंद्रियां देह तिनविषे अभिमान करिकै दुःखी सुखी होताहै, इनके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इनके सुखसाथ सुखी होता है, जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है, तैसा तैसा दुःखसुख भासता है, जैसे शुद्ध मणिविषे प्रतिबिंब पडता है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, ज्ञानकरिकै इनका अभाव हो जाता है, अरु जब तिसको ज्ञानरूपका आवरण करिकै आगे पटल होत हैं, तब प्रतिबिंब नहीं पडता, ज्ञान कहिये जो देहादिकके अभिमानते रहित होना, जो न देहादिक हैं, अरु न मैं इनकरि कछु करता हौं, जब ऐसे निश्चय होवै तब दुःखसुखका भान नहीं होता, काहेतें कि संसारका दुःखसुख इसकी भावनाविषे होता है, जब वासनाते रहित हुआ, तब दुःखसुख भी सब नष्ट हो जाते हैं, जैसे जब वृक्षही जलि जाताहै, तब पत्र फूल फल कहां रहैं, तैसे अज्ञानरूप वासनाते दग्ध हुए, दुःखसुख कहां रहैं, ? बहुरि राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे वचन श्रवणकरते हुए मैं तृप्त नहीं होता, जैसे मेघका शब्द सुनेते मोर तृप्त नहीं होता, ताते कहौ, कि तुम्हारी उत्पत्ति कैसे भई, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! जो कोऊ प्रश्न करता है, तब बडे तिसका निरादर नहीं करते, ताते तू जो पूछता है, सो मैं कहता हौं ॥ हे राजर्षि ! वह वीर्य था सो नारदमुनिने एक मटकीविषे पाया, अरु वह कैसी मटकी थी स्वर्णवत् जिसका उज्वल चमत्कार, तिसविषे वीर्य पायकरि तिसके ऊपर दूध पाया, अरु ऊपर उसके दूध पाया मटकीको पूर्ण किया, अरु वीर्यको एक कोणकी ओर किया, बहुरि मंत्रोंका उच्चार किया, अरु आहुति किये, भलीप्रकार पूजन किया, जब एक मास व्यतीत भया, तब मटकीते बालक प्रगट हुआ, सो कैसा बालक, जैसा चंद्रमा क्षीरसमुद्रते निकसाहै, तिस बालकको लेकरि नारद आकाशको उडताभया, तब नारद उसको जो पिता है ब्रह्माजी तिसके पास ले आया, अरु आयकरि नमस्कार किया, तबबालकको पितामहने गोदविषे बैठाया, अरु आशीर्वाद कियाकि, तू सर्वज्ञ होवैगा अरु शीघ्रही अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, अरु कुंभते जो उपजा

बालक है, तिसका नामभी कुंभ राखा, सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हौं, नारदजीका पुत्र अरु ब्रह्माजीका पौत्र हौं, सरस्वती मेरी माता है, गायत्री मेरी मौसी है, मेरे ताईं सर्व ज्ञानहै, तब राजाने कहा, हे देवपुत्र ! तुम सर्वज्ञ दृष्टि आते हौ तुम्हारे वचनोंकरि मैं जानता हौं, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! जो तुम पूँछा सो मैंने कहा, अब कहु कि, तू कौन है, अरु यहाँ क्या कर्म करता है, अरु यहाँ किसनिमित्त आया है, तब राजाने कहा, हे देवपुत्र ! आज मेरे बडे भाग्य उदय हुए हैं, जो तुम्हारा दर्शनभयाहै तुम्हारा दर्शन बड़े भाग्यसों प्राप्त होता है, यज्ञ अरु तपते तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! अपना वृत्तांत कहु कि, तू कौन है ॥ राजाने कहा, हे देवपुत्र ! मैं राजा हौं, अरु शिखरध्वज मेरा नाम है, अरु राज्यका मैंने त्याग किया है, जो मेरे ताईं संसार दुःख दायक भासा, तिसके भयकरि त्याग किया, वारंवार जन्म अरु मृत्यु संसारविषे दृष्ट आता है, ताते राज्यका त्यागकरि यहाँ तप करनेलगा हौं, तुम त्रिकालज्ञ हौ, अरु जानते हौ, तथापि तुम्हारे पूछनेकरि कछु कहा चहिये, मैं त्रिकाल संध्या करता हौं, अरु जाप करता हौं, तौ भी मेरे ताईं शांति नहीं प्राप्त भई, नाते जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, सो उपाय कहौ ॥ हे देवपुत्र ! मैं तीर्थ बहुत फिरा हौं, बहुत देश स्थान फिरा हौं, अब इस वनविषे आनि बैठा हौं तौ भी मेरे ताईं शांति नहीं प्राप्त भई, ताते जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं अरु शांति प्राप्त होवै सो कहौ, तब देवपुत्रने कहा, हे राजर्षि ! तैंने राज्यका त्याग किया, अरु बहुरि तपरूपी टोयेविषे आय पडा है, यह तैंने क्या कियाहै, जैसे पृथ्वीका कम बहुरि पृथ्वीविषे रहता है, तैसे तू एक टोयेको त्यागिकारि बहुरि दूसरे टोयेविषे आइ पडा है, अरु जिसनिमित्त राज्यत्याग किया, तिसको न जानत भया, अरु यहाँ आयकरि एक लाठी अरु मृगछाला अरु फूल राखे, इनकारि तौ शांति नहीं प्राप्त होती ताते अपने स्वरूपविषे जाग जबस्वरूपविषे जागैगा, तब दुःख सब निवृत्त होवैंगे, इसीपरएकसमय ब्रह्माजीसों मैंने प्रश्न किया था कि, हे पितामहजी ! कर्म श्रेष्ठ है, अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है, दोनोंविषे क्या श्रेष्ठ है, जो मुझको कर्तव्य है, सो कहौ,

तब पितामहने कहा, ज्ञानके पायेते दुःख कोई नहीं रहता, सर्व आनंदका आनंद ज्ञान है, तिसते आगे आनंद कोई नहीं अरु अज्ञानीको कर्म श्रेष्ठ हैं, क्योंकि जो पापकर्म करैंगे, तो नरक को प्राप्त होवैंगे, ताते तप दान करनेते स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तौ भी अज्ञानीको श्रेष्ठ है, कि नरक भोगनेते स्वर्ग विशेष है, जैसे कंबलते पटका वस्त्र श्रेष्ठ है, परंतु पटका न पाइये तब कंबल भी भला है, तैसे ज्ञानपटकी नाईं है, अरु तप कर्म कंबलकी नाईं है, कर्मकारि शांति नहीं प्राप्त होती ॥ ताते हे राजन्! तू काहेको इस टोयेविषे पडा है, आगे राज्यवासी था, अब वनवासी भया, ताते यह क्या किया है, जो अज्ञानविषे पड रहा है, मूर्खताके वश पडा है, जबलग तेरे ताईं क्रियाभान होता है कि, मैं यह करौं, तबलग प्रमाद है, इसकारि दुःख निवृत्त न होवैंगे ताते निर्वासनिक होकारि अपने स्वरूपविषे जाग, निर्वासनिक होनाही मुक्ति है, अरु वासनासहित ही, बंधनहै, पुरुषप्रयत्न यही है, कि निर्वासनिक होना, जबलग वासना सहित है तबलग अज्ञानी है, जब निर्वासनिक होवै, तब ज्ञेयरूप है, निर्वासनिक कहिये सदा ज्ञेयकी भावना करनी, अरु ज्ञेय कहिये आत्मस्वरूप तिसको जानिकारि बहुरि इच्छा कोई न रहै, केवल चिन्मात्र पदविषे स्थित होना, इसीका नाम ज्ञेय है, जो जानने योग्य है, सो जाना, तब अपर बासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होता है ॥ हे राजन्! तुझे अपने स्वरूपको जानना था, तू अपर जंजालविषे किसनिमित्त पडा है, आत्मज्ञान विना अपर अनेक यत्न करे, तौ शांति न प्राप्त होवैगी, जैसे पवनते रहित वृक्ष शांतरूप होता है, जब पवन होता है, तब क्षोभको प्राप्त होता हैं, तैसे जब वासना निवृत्त होवैगी, तब शांत पद प्राप्त होवैगा, अरु क्षोभ कोई न रहैगा जब ऐसे देवपुत्रने कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे भगवन्! तुम मेरे पिता हौ, अरु तुमही गुरु हो, अरु तुमहीं कृतार्थ करनेहारे हौ; मैं वासना करिकै बडा दुःख पाया है, जैसे किसी वृक्षके पत्र टास फूल फल सूख जावैं, अरु एकका ठूंठ रहिजावै, तैसे ज्ञानविना मैं भी ठूँठसा हो रहा हौं, ताते कृपाकारि मेरे ताईं शांतिको प्राप्त करौ; तब देवपुत्रने कहा ॥ हे

राजन् ! तैंने त्याग करिकै संतका संग करना था, अरु यह प्रश्न करना था कि, हे भगवन् ! बंध क्या है, अरु मोक्ष क्या है, अरु मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसकरि होतीहै, अरु लीन कैसे होताहै, तैंने यह क्या किया हैं, जो संतविना वनका ठूंठ आयकरि सेवन किया है, अब तू संतजनको प्राप्त होकरि निर्वासनिक होउ, ऐसे ब्रह्मादिकने भी कहा है कि, जब निर्वासनिक होता है, तब सुखी होता है, बहुरि राजाने कहा ॥ हे भगवन् तुमही संत हौ, अरु तुमही मेरे गुरु हौ, अरु तुमही मेरे पिता हौ, जिसप्रकार मेरे ताईं शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब कुंभने कहा ॥ हे राजन् मैं तेरे ताईं उपदेश करता हौं, तू हृदयविषे धारि लेहु, अरु जो तू हृदयविषे धारै नहीं, तौ मेरे कहने करि क्या होता है, जैसे टासपर कौआ होवै, अरु शब्द भी श्रवण करै, तो भी अपने कौए स्वभावको नहीं छोडता, तैसे जो तू भी कौएकी नाईं होवै, तौ मेरे कहनेका क्या प्रयोजन है, अरु जैसे तोते पक्षीको जो कहता हैं, सो ग्रहण करता हैं, ताते तोते पक्षीकी नाईं होउ. तब शिखर-ध्वजने कहा ॥ हे भगवन् ! जो तुम आज्ञा करौगा, सो मैं करौंगा, जैसे शास्त्रवेदके कहे कर्म करता हौं, तैसेही तुम्हारा कहना करौंगा, यह मेरा नियम है, जो तुम आज्ञा करौ सो मैं करौंगा तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! प्रथम तौ तू ऐसे निश्चय कर कि, मेरा कल्याण इन वचनोसों होवैगा, अरु ऐसे जान कि, जो पिता पुत्रको कहता है, शुभही कहता है, तैसे मैं जौ तेरे ताईं कहौंगा सो शुभही कहौंगा, अरु तेरा कल्याण होवैगा, ताते निश्चय जान कि, इन वचनोंकरि मेराकल्याण होवैगा, ताते एक आख्यान आगे व्यतीत भया है सो श्रवण करु ॥ एक पंडित था, सो धन अरु गुणकरि संपन्न था, अरु सर्वदा चिंतामणि पानेकी इच्छा करता था, जैसे शास्त्रकरि उपाय कहे, तैसेही उपायकरता था, जब केताक काल व्यतीत भया; तब जैसे चंद्रमाका प्रकाश होता है, तैसे प्रकाशवान् चिंतामणि आय प्राप्त भया, ऐसे निकट जाना कि, हाथकरि उठाइलीजै, जैसे उदा-याचल पर्वतके निकट चंद्रमा उदयहोताहै, तैसे चिंतामणि निकट आय प्राप्त भया, तब पंडितके मनविषे विचार हुआ कि, यह चिंतामणि है,

अथवा कछु और है, जो चिंतामणि होवै, तौ उठाइ लेउँ जो चिंतामणि न होवै तौ किसनिमित्त पकड़ौं, बहुरि कहै, पकड लेता हौं, मणिही होवैगा, तब मणि न होवै क्या पकडौं, यह मणि नहीं काहेते कि, मणि बडे यत्नकरि प्राप्त होता है, मेरे ताईं सुखेन क्या प्राप्त होना है, इसते जाना-जाता है कि, चिंतामणि नहीं, जो सुखेन प्राप्त होता होवै, तौ सब लोक धनी हो जावैं, परंतु सुखेन नहीं पाता, ताते यह चिंतामणि नहीं, जब ऐसे संकल्पविकल्पकरि पंडित विचार करने लगा, अरु इसीकरि तिसका चित्त आवरण भया, तब मणि छपन हो गया, काहेते जो सिद्धि है, तिनका मान आदर न करिये तौ उलटा शाप देती है, जिस वस्तुका आवाहन करता है, तिसका पूजन न करिये तौ त्याग जाती है; अरु शाप देती है, जब वह चिंतामणि अंतर्धान हो गई तब वह बडे दुःखको प्राप्त भया कि, चिंतामणि मेरे पासते निवृत्त होगई, अरु बहुरि यत्न करने लगा, जब बहुरि उपाय किया, तब काचकी मणि किसीने हांसीकरि तिसके आगे डारिदई, सो तिसके पास आय पड़ी, उसको देखत भया, देखिकरि कहने लगा कि, यह चिंतामणि है, तब उसको उठाय लीनी, लेकरि अपने घर आया, अबोधके वशते उसको चिंतामणि जानत भया, जैसे मोहकरि असत्को सत् जानता है. अरु रज्जुको सर्प जानता अरु जैसे दो चंद्रमा, अरु शत्रुको मित्र अरु विषको अमृतरूप जानता है, तैसे वह काचको चिंतामणि जानत भया, अरु जेता कछु अपना धन था, सो लुटाय दिया, अरु कुटुंबका त्याग किया, कहने लगा कि, मेरे ताईं चिंतामणि प्राप्त भई है, अब कुटुंबसाथ क्या प्रयोजन है, अरु घरते निकसिकरि वनको गया, वनविषे जाय बड़े दुःखको प्राप्त भया कि, काचकी मणिसाथ कछु प्रयोजन सिद्ध न हुआ, तैसे हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु होवै, तिसको मूर्ख त्यागते हैं, तिसका माहात्म्य नहीं जानते, अरु नहीं पाते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिवृत्तांतवर्णनं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.
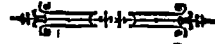
हस्त्याख्यानवर्णनम् ।

देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन् ! इसीपर एक अपर आख्यान कहता हौं, सो श्रवण करु, मंदराचल पर्वतके वनविषे एक हस्ती रहता था, सो सर्व हस्तीका राजा था, कैसा था सो मानो मंदराचल पर्वत है, जिसको अगस्त्य मुनिने रोका था । ऐसा जो मंदराचल पर्वत है, तिसविषे रहता था, अरु जिसके बड़े दंत हैं, इंद्रके वज्रकी नाईं तीक्ष्ण हैं, बडा बलवान् अरु प्रकाशवान् जैसे प्रलयकालकी वडवाग्नि होती है, ऐसा प्रकाशवान् अरु बलवान् ऐसा जो सुमेरुपर्वत उसको दंतसाथ उठावै, तिस हस्तीको महावनते बल छल करिकै बांधा, जैसे बलि राजाको विष्णु भगवान्ने बांधा, तैसे लोहकी संकरसो हस्तिको पाय, अरु आप महावत जो निकट वृक्ष था, तिसपर चढिबैठा, किसनिमित्त, बैठाथा कि, कूंदकरि हस्तीके ऊपर चढि बैठों, अरु हस्ती संकर करि महाकष्टको प्राप्त भया, कैसे दुःखको प्राप्त भया जो वाणीकरि कहा नहीं जाता जब ऐसा दुःख पाया तब हस्तीके मनविषे विचार उपजा कि; अबमैं बलसाथ संकर न तोडौंगा, तौ कब छूटौंगा, तिस संकरको बलकरिकै तोड़िदिया, अरु वृक्षपर जो महावत बैठा था, सोगिरा, सोहस्तीके चरणों आगे आय पड़ा, अरुभयको प्राप्त भया, जैसे फल पवनकरि गिरपड़ता है, तैसे महावत भयकरि गिरपड़ा, जब इसप्रकार महावत गिरा, तब हस्तीने विचार किया कि, यह मृतकसमान है, ताते मुयेको क्या मारना है, यद्यपि मेरा शत्रु है, तौ भी मैं नहीं मारता, इसके मारणेकरि मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होता है, ताते मैं नहीं मारता. हे राजन् ! जब ऐसे दयाकरि हस्तीने महावतको न मारा, जो पशुयोनिविषे भी दया मुख्य है, तब महावतको छाँडिकरि हस्ती वनविषे चला, जैसे पाणी बंधको तोडकरि वेगसाथ चलता है तैसे संकरको तोडिकरि हस्ती वनको गया, जैसे स्वर्गके द्वारे तोडकरि दैत्य जाय प्रवेश करते हैं. तैसे संकरको तोडकरि हस्ती वनविषे जाय प्रवेश किया, अरु हस्तीको गया देखि महावत जो पड़ा था सो उठबैठा, अरु अपने स्वभावविषे स्थित

भया, बहुरि हस्तीके पाछे चला, अरु हस्तीको खोजि लिया जैसे चंद्रमाको राहु खोजि लेता है, तैसे वनविषे हस्तीको खोजि लिया, देखाकी वृक्षके तले सोया पडा है, जैसे संग्रामको सूरमा जीतिकरि निश्चित होता है, तैसे हस्तिको निश्चित सोया पडा देखा; जो संकरको तोडिकरि आय सोयाहै, तब महावतने विचार किया कि, इसको वश करिये अरु यही उपाय करत भया, कि बेलेके चउफेर खाईंकरी, जैसे ब्रह्माने विश्वको उत्पन्न करिकै पृथ्वीके चउफेर समुद्र चक्र किया है, तैसे बेलेके चउफेर खाईंका चक्रकरि लिया, अरु खाईंके ऊपर कछु तृण घास पाया, जैसे शरत्कालके आकाशविषे बादल देखने मात्र होता है, तैसे तृण घास खाईं ऊपर देखने मात्र दृष्ट आवै, अरु बीच खाईं करी, तब एक समय हस्ती उठिकरि चला, अरु खाईंके बीच गिरपड़ा, जब गिरपड़ा तब महावत हस्तीके निकट आया, अरु संकरोंसाथ बांधा, जैसे दैत्य छल करिकै देवताओंको वश करतेहैं, जैसे अगस्त्यमुनिने छलकरिकै मंदराचलको रोंकि छोड़ा था, तैसे हस्तीको महावतने वश किया, अरु हस्ती गिरपड़ा, जैसे सूखे समुद्रविषे पर्वत गिरपडता है, तैसे खाईंविषे हस्ती गिरपडा, अरु दुःखको प्राप्त हुआ, जो अबतक वनविषे पड़ा दुःख पाता है. काहेते कि, भविष्यका विचार न किया, अज्ञानीको भविष्यका विचार नहीं, इसीते दुःख पाता है, वर्तमानकालविषे विचार नहीं करता, कि आगे क्या होना है, इसीते अज्ञानी हस्ती दुःखको प्राप्त भया ॥ हे राजन् ! यह जो आख्यान तेरे ताईं मैंने श्रवण कराये हैं, एक मणिका, एक हस्तीका, तिनको जब तू समझैगा, तब आगे मैं उपदेश करौंगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्त्याख्यानवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

हस्तिवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब देवपुत्रने ऐसे कहा तब राजा कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! यह दो आख्यान तुमने कहे हैं सो तुम जानते हौ

मैं तौ कछु नहीं समझा, ताते खोलिकरि तुमहीं कहौ, तब देवपुत्रने कहा॥ हे राजन् तू शास्त्रके अर्थविषे तौ बहुत चतुर है, सब अर्थका ज्ञाता है, परंतु स्वरूपविषे तेरे ताईं स्थित नहीं, जैसे आकाशविषे पर्वत नहीं ठहरता, ताते जो वचन मैं कहता हौं, सो बुद्धिकरि ग्रहण करु, कि, हस्ती क्या है, अरु चिंतामणि क्या है, प्रथम जो सर्व त्याग तैंने किया था, सो चिंतामणि थी, तिसके निकट तू प्राप्त होकरि सुखी भया, जो तिसको तू अपने पास राखता, तौ सब दुःख निवृत्त हो जाते सो मणिको तैंने निरादर किया कि तिसको त्यागा, अरु काचकी मणि तप क्रियाको प्राप्त भया, सो दरिद्रही रहा॥ हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिंतामणि थी, अरु यह क्रियाको आरंभ काचकी मणि है, सो तैंने ग्रहण करी, तिसते दारिद्रकी निवृत्ति नहीं होती, दुःखही रहता है, त्यागरूपी चिंतामणिका आवाहन था, अरु क्रियारंभ तिसका अनादर है॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंने नहीं किया, किया भी था परंतु कछुक रहता था, तिसके रहनेते बहुरि विस्तारको प्राप्त भया, जैसे बडा बादल वायुकरि क्षीण होता है, अरु सूक्ष्म रहि जाता है, अरु पवनके रहेते बहुरि विस्तारको पाता है अरु सूर्यको छिपाय लेता है, सो बादल क्या है, अरु सूर्य क्या है, अरु थोडा रहना क्या है सो सुन, स्त्रियां अरु कुटुम्बते आदि त्याग किया अरु अहंकार इनविषे करना सो बड़ा बादल है, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि राज्य अरु कुटुम्बका अहंकाररूपी बड़ा बादल निवृत्त हुआ अरु देहादिकविषे जो अहंकार रहा सो सूक्ष्म बादल रहा, सो बहुरि वृद्ध होगया, जो अनात्म अभिमान करिकै क्रियाका आरंभ किया, इसकरिकै आत्मारूपी सूर्य जो अपना आप है, सो अहंकाररूपी बादलकरि आच्छाद्या गया, ज्ञानरूपी चिंतामणि अज्ञानरूपी काचकी मणि करिकै जैसे छपन भई; जब ज्ञान करिकै आत्माको जानैगा, तब आत्मा प्रकाशैगा, अन्यथा न भासैगा, जैसे कोऊ पुरुष घोडेपर चढ़िकै दौड़ता है. तिसकी वृत्ति घोड़ेविषे होती है, तैसे जिस पुरुषका आत्माविषे दृढ निश्चय होता है, तिसको आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता है॥ हे राजन्! आत्माका पाना सुगम है, जो सुखनही पाता है, अरु बडे आनंदकी

प्राप्ति होती है, अरु तपादिक क्रिया जो हैं, तिसको कष्टकरि सिद्धि होती है अरु स्वरूपसुखकी प्राप्ति नहीं होती॥ हे राजन्! मैं जानता हौं, तू मूर्ख नहीं शास्त्रोंका ज्ञाता है, अरु बहुत चतुर है, तथापि तेरे ताईं स्वरूपविषे स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पत्थर नहीं ठहरता, ताते मैं उपदेश करता हौं, तिसको ग्रहण करु, तेरे दुःख निवृत्त हो जावैंगे, अरु पाछे जो राज्यका त्याग आया हैं, जैसे ब्रह्माकी रात्रिविषे संसारका अभाव हो जाता है, तैसे त्याग किया था॥ हे राजन्! यह सर्वते श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, तैंने जो तपक्रियाका आरंभ किया है, अरु तिसका जो फल जाना है, तिस ज्ञानते श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा॥ हे राजन्! चिंतामणिका तात्पर्य संपूर्ण तेरे ताईं कहा अब हस्तीका वृत्तांत जो आश्चर्यरूप है सो श्रवण करु, जिसके समुझनेकरि अज्ञान निवृत्त हो जावैगा, मंदराचलका हस्ती सो तू है, अरु महावत तेरे ताईं अज्ञानता है, इस अज्ञानरूपी महावतने तेरेको बांधा है, अरु हस्ती जो संकलसे बांधा था, सो आशारूपी संकलोंकरि बांधा था, अरु संकलते भी तू अधिक बांधा हैं, कि, संकल तौ घटते भी हैं, अरु अशारूपी फांसी घटती नहीं, दिन दिन बढती जाती है॥ हे राजन्! आशारूपी फांसीकरिकै तू महादुःखी है, अरु जो हस्तीके बड़े दंत थे, जिसकरि संकलोंको तोडा था, सो तेरे दंत विवेक अरु वैराग्य हैं, तैंने विचार किया, मैं बलकरिकै छूटौं, अरु राज्य कुटुम्ब पृथ्वीका त्याग करिआया अरु फांसीको काटा, तब आशारूपी रस्से काटे, अज्ञानरूपी महावत भयको प्राप्त भया, अरु तेरे चरणोंके तले आय पड़ा जैसे वृक्षके ऊपर वैताल रहता है, अरु कोऊ वृक्षको काटने आता है, तब वैताल भयको प्राप्त होता है, तैसेही तैंने वैराग्य अरु विवेकरूपी दंतनकरिकै आशाके फांस काटे, तब अज्ञानरूपी महावत गिरा, अरु तैंने एक घाव लगाया, परंतु मारि न डारा, तब महावत तुझते भागि गया जैसे वृक्षपर वैताल रहता है, वृक्षको कोऊ काटने लगता है, तब वैताल भागि जाता है॥ हे राजन्! तैसे

वृक्षको तैंने काटा वैराग्यरूपी शस्त्रकरिकै तब अज्ञानरूपी वैताल भागा अरु मूर्खताकरिकै तिसको तैंने न मारा, तिसको छांडिकरि तू वनविषे गया, जब तू वनविषे आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पाछे चला आया,आयकरि तेरे चौफेर खाईं करी जो तपादिक क्रियाका आरंभ किया तिस खाईंविषे तू गिर पडा, अरु महादुःखको प्राप्त भया, तब तेरेको संकलसे बहुरि बांधा, अरु देखने लगा कि, अबतक दुःख पाता है, अब तू कैसी खाईंविषे गिरा है, जो अनात्माभिमानकरिकै यहां तपादिक क्रियाका आरंभ किया है, जो मैं कहता हौं ऐसी खाईंविषे तू पडा है, ॥ हे राजन् तू जानिकरि खाईंविषे नहीं पडा खाईंके ऊपर घास तृण पडा था, छल करिकै तू गिर पडा है, सो छल अरु तृण कौन हैं, तू श्रवण करु, प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुको न मारा अरु संकलोंके भय करिकै तू भागा, जो वन मेरा कल्याण करैगा, संत अरु शास्त्रके वचनोंको न जाना, जो तेरे दुःखको निवृत्त करैं अरु उन वचनरूपी खाईंपर तृणादिक था, मूर्खता करिकै तू गिरा जैसे बलिराजा पातालविषे छल करिकै बाँधा हुआ है, तैसे भविष्यका विचार किया नहीं जो अज्ञानशत्रु रहा हुआ मेरा नाश करैगा, तिस विचार विना तू बहुरि दुःखी हुआ, सर्व त्याग तौ किया परंतु ऐसे न जाना कि मैं अक्रिय हौं यह क्रियाका आरंभ काहेको करता हौं, इसीते तू बहुरि फांसीसे बांधा है, ॥ हे राजन् जो पुरुष इस फांसीते मुक्त भया सो मुक्त है, अरु जिसका चित्त अनात्म अभिमानकरि बांधा है कि, यह मेरेको प्राप्त होवै तिसकरि दुःखको पाता है, जिस पुरुषने वैराग्यविवेकरूपी दंतोंकरि अशारूपी जंजीरको नहीं काटा, सो कदाचित् सुख नहीं पाता, विवेकते वैराग्य उत्पन्न होता है, अरु वैराग्यते विवेक होता है, विवेक कहिए सत्यको जानना, अरु असत् देहादिकको असत्य जानना, जब ऐसे जाना, तब असत्की ओर भावना नहीं जाती, सो वैराग्य हुआ, अरु वैराग्यते विवेक उपजता है, विवेकते वैराग्य उपजता है, इन विवेक अरु वैराग्यरूपी दंतकरि आशारूपी संकलको तोड ॥ हे राजन् ! यह हस्तीका वृत्तांत जो तुझको कहा है, इसके विचार कियेते तेरा मोह निवृत्त हो जावैगा; हे राजन् ! हस्ती बडा बली था, अरु

महावत छोटा बली था, तिस अज्ञानरूपी महावतको मूर्खता करिकै न मारा, तिस करिकै दुःख पाता है ताते तू वैराग्यविवेकरूपी दंतकारि आशारूपी फांसीको तोड, तब सब दुःख मिटि जावैंगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिवृत्तांतवर्णनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनम् ।

देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन् ! ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवेत्ता थी, अरु सर्वज्ञान श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अरु सत्यवादी, तिसने तेरे ताईं उपदेश किया; अरु तैंने तिसके वचनोंका निरादर किस निमित्त किया, मैं तौ सर्व जानता हौं, जो त्रिकालज्ञ हौं, तौ भी तू अपने मुखते कहु कि, तिसका उपदेश अंगीकार क्यों न किया, एक तौ यह मूर्खता करी कि, उपदेश न अंगीकार किया, अरु दूसरी यह मूर्खता है कि, सर्व त्याग न करिकै बहुरि वन अंगीकार किया, जो त्याग करता तौ सर्व दुःख मिटि जाते, जब ऐसे देवपुत्रने कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! मैं तौ सर्व त्याग किया है, स्त्री पृथ्वी मंदिर हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य अरु कुटुंब हैं, सो सर्व त्याग किया है, तुम कैसे कहते हौ कि, त्याग नहीं किया, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! तैंने क्या त्यागा है, राज्यविषे तेरा क्या था, जैसे ऐश्वर्य आगे था, तैसे अब भी है, अरु स्त्रियां भी जैसे अपर मनुष्य थे, तैसे स्त्रियां थी, तिनविषे तेरा क्या था, जो त्याग किया, पृथ्वी, मंदिर अरु हस्ती जैसे आगे थे, तैसे अब भी हैं, तिनविषे तेरा क्या था जो त्याग किया है ॥ हे राजन् ! सर्व त्याग तैंने अब भी नहीं किया, जो तेरा होवै, तिसका तू त्याग कर, जो निर्दुःख पदको प्राप्त होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवपुत्रने कहा तब सूरवीर जो इंद्रियजित राजा था, सो मनविषे विचारत भया कि, यह वन मेरा, है, अरु वृक्ष फूल फल मेरे हैं, इनका त्याग करौं, अरु कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! वन अरु वृक्ष फूल

फल टासे जो मेरे थे तिनका मैंने त्याग किया क्यों अब तौ सर्व त्याग हुआ ? तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, जो वन अरु वृक्ष फूल फल तुझते आगे भी थे, इनविषे तेरा क्या है, जो तेरा है, तिसको त्याग, तब सुखी होवै ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवपुत्रने कहा, तब राजा मनविषे विचारत भया कि, मेरी जलपानकी बावली है, अरु मेरे बगीचे हैं, इनका त्याग करौं, जो सर्व त्याग सिद्ध होवै, अरु कहा हे भगवन् ! मेरी यह बावली अरु बगीचे हैं, तिनका त्याग किया क्यों अब तौ मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ, तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् । सर्व त्याग अब भी नहीं भया, जो तेरा है, तिसको त्यागैगा, तब शांत पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा, तब राजा विचारने लगा कि, अब मेरी मृगछाला अरु कुटी है, तिसका त्याग करौं, अरु कहा ॥ हे देवपुत्र ! मेरे पास एक मृगछाला अरु एक कुटी है, तिसका त्याग किया, क्यों अब सर्व त्यागी भया ? तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! मृगछालाविषे तेरा क्या है, यह तौ मृगकी त्वचा है, अरु कुटीविषे तेरा क्या है, कुटी तौ माटी अरु शिलाकी है, इसकरि तो सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता, जो कछु तेरा है, तिसको त्यागै तब सर्व त्याग होवै, अरु तू सर्व दुःखते रहित होवै ॥ हे रामजी ! जब ऐसे कुंभने कहा तब राजाने मनविषे विचार किया कि, अब मेरा एक कमंडलु है, अरु एक माला है, एक लाठी है, इसका त्याग करौं, ऐसे विचार कर राजा शांतिके लिये बोलत भया ॥ हे देवपुत्र ! मेरी लाठी अरु कमंडलु अरु एक माला है तिसका भी त्याग किया, क्यों अब मैं सबत्यागी भया ? तब देवपुत्रने कहा ॥ हे राजन् ! कमंडलुविषे तेरा क्या है, कमंडलु तौ वनका तुंबा है, तिसविषे तेरा कछु नहीं, अरु लाठी भी वनके बाँसकी है, अरु माला भी काष्ठकी है, तिनविषे तेरा क्या है, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जब तिसका त्याग करैगा तब दुःखते रहित होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कुंभने कहा तब राजा शिखरध्वज मनविषे विचारत भया कि, अब मेरा क्या रहता है, तब देखा कि, एक आसन रहता है, अरु बासन हैं, जिस-

विषे फूल फल राखते हैं, अब इनका त्याग करौं तब राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! आसन अरु बासन यह मेरे पास रहते हैं, इनका भी त्याग किया, क्यों अब तौ सर्व त्यागी भया ? तब कुंभने कहा ॥ हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, आसन तौ भेडकी ऊनका है, अरु बासन मृत्तिकाके हैं, इनविषे तेरा कछु नहीं, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जो सर्व त्याग होवै, अरु दुःख निवृत्त हो जावै ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कुंभने कहा, तब राजा उठि खडा हुआ, अरु वनकी लकडी इकट्ठी करी, अरु अग्नि लगाई, जब बडी अग्नि लगी, तब लाठीको हाथविषे लेकरि कहने लगा ॥ हे लाठी ! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंका पर्य-टन किया है, परंतु मेरे साथ उपकार कछु न किया अब मैं कुंभ मुनिकी कृपाते तरौंगा, तेरे नमस्कार है, ऐसे कहकारि लाठीको अग्निविषे डारि दिया बहुरि मृगछालाको हाथविषे लेकरि कहा ॥ हे मृगकी त्वचा ! बहुत काल मैं तेरे ऊपर आसन किया है, परंतु तुझने उपकार कछु न किया, अब कुंभ मुनिकी कृपासों मैं तरौंगा, तेरे ताईं नमस्कार है, ऐसे कहिकारि मृगछालाको अग्निविषे डारि दीनी, बहुरि कमंडलुको लेकरि कहने लगा हे कमंडलु ! धन्य है, मैं तेरे ताईं धारा अरु तुझने मेरे जलको धारा तैंने मुझसे गुण कोप नहीं किया, तौ भी कमंडलुकी जैसे प्रवृत्ति त्यागनी है, तैसे निवृत्तिकी कल्पना भी त्यागनी है, तातें तेरेको नमस्कार है, तुम जावहु, ऐसे कहकारि कमंडलु भी अग्निविषे जलाय दिया ॥ बहुरि मालाको हाथविषे लेकरि कहने लगा ॥ हे माला ! तेरे मणके जो मैं फेरे हैं, सो मानो अपने मैंने जन्म गिने हैं, तेरे संबंधकारि जाप किया है अरु दिशा विदिशा गया हौ, अब तेरेको नमस्कार है, ऐसे कहिकारि मालाको भी अग्निविषे डारि दीनी इसीप्रकार फल फूल कुटी आसन सब जलाय दिये, बड़ी अग्नि जागी, अरु बड़ा प्रकाश भया, जैसे सुमेरु पर्वतके पास सूर्य चढै, अरु मणिका भी चमत्कार होवै तौ बड़ा प्रकाश होता है, तैसे बड़ी अग्नि लगी, अरु राजाने संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया, जैसे पके फलको वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलनेते ठहरता है, तब धूडते रहित

होता है, तैसे राजा सर्व सामग्रीको त्याग निर्विघ्न हुआ, अरु सर्व सामग्री अग्निविषे डारी, अरु अग्निरूप होत भई; जैसे नदियां समुद्रविषे जाय समुद्ररूप होती हैं, तैसे सब सामग्री अग्निरूप होत भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

चित्तत्यागवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब संपूर्ण सामग्री जलाई, अरु भस्म हो गई, जैसे सदाशिवके गणने दक्षप्रजापतिके यज्ञको स्वाहा करि दिया था; तैसे जेती कछु सामग्री थी, सो सब स्वाहा हो गई अरु वन बड़ा प्रज्वलित भया, जेते कछु वृक्षके रहनेवाले पक्षी थे, सो भाजि गए, अरु मृग, पशु कई आहार करते, कई जुगली करते थे, सब भाजि गये, जैसे पुरको आग लगेते पुरवासी भाजि जावैं, तैसे भाजि गये, तब राजा मनविषे विचारत भया कि, कुंभकी कृपाते मैं बडे आनंदको प्राप्त भया ॥ अब दुःख मेरे मिटि गये हैं, जेती कछु वस्तु मनके संकल्पकारि रची थी; जो मेरी हैं सो जलाय दी तिसका न मेरे ताईं हर्ष है, न शोक है, जेते कछु दुःख होते हैं, सो ममत्वकारि होते हैं, सो मेरा ममत्व अब किसीसे नहीं रहता, ताते दुःख भी कोई नहीं, अब मैं ज्ञानवान् भया हौं, अब मेरी जय है, अब निर्मल भया हौं, अरु सर्व त्याग किया है,ऐसे विचार करिके राजा उठि खड़ा हुआ, हाथ जोड कहत भया ॥ हे देवपुत्र ! क्यों अब में सर्व त्याग किया है, जो आकाशही मेरे वस्त्र हैं, अरु पृथ्वी मेरी शय्या है, जब राजाने ऐसे कहा, तब कुंभमुनिने कहा ॥ हे राजन् ! अब भी सर्व त्याग नहीं किया, जो तेरा है, तिसका त्याग करु, तब दुःख तेरे निवृत्त हो जावैं; बहुरि राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! अब तौ अपर मेरेपास कछु नहीं रहा, नंगा होकारि तुम्हारे आगे खड़ा हौं, अब एक इंद्रियोंका धारणहारा रक्त मांसका देह है जो कहौ, तौ इसका भी

त्याग करौं, पर्वतके ऊपर जायकारि डारि देऊँ, ऐसे कहिकारि राजा पर्वतको दौडा कि, देहको डारि देउं, तब कुंभ मुनिने कहा ॥ हे राजा ! ऐसे पुण्यदेहको क्यों त्यागता है, इसके त्यागेते सर्व त्याग नहीं होता । जिसके त्यागनेते सर्व त्याग होवै, तिसका त्याग करु, इस देहविषे क्या दूषण है; जैसे वृक्षसाथ फूल फल होते हैं, जब वायु चलता है, तब फूल फल गिरते हैं, सो फूल, फल गिरनेका कारण वायु है, वृक्षविषे दूषण कछु नहीं, तैसे देहविषे दूषण कछु नहीं, जो देहका पालनेहारा अभिमान है, तिसका त्याग करु, जो सर्व त्यागसिद्धि होवै, अरु देह तौ गुण है, जो कछु इसको देता है, सोई लेता है, आपते बोलता नहीं, जड़ है, इसके त्यागते क्या सिद्ध होता है, जैसे पवनकारि वृक्ष हिलता है, अरु भूकंपकारि पर्वत कँपते हैं, तैसे देह आप कछु नहीं करता, अपरकी प्रेरी चेष्टा करता है, जैसे पवनकारि समुद्रविषे तरंग होते हैं, अरु तृणको जहां जल ले जाता है, तहां चले जाते हैं, तैसे देह आपते कछु नहीं करता, इसका जो प्रेरणेवाला है, तिसकारि चेष्टा करता है, ताते देहके प्रेरणेवालेका त्याग करु जो सुखी होवै ॥ हे राजा ! जिसकारि सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द है, अरु जो सर्व ओरते त्यागने योग्य है, तिसका त्याग कर कि, तेरे सर्व दुःख मिटि जावैं, तब राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! वह कौन है जो सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द है अरु जो सर्व ओरते त्यागने योग्य है ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेते जरा मृत्यु नष्ट हो जावै सो कहो; तब कुंभने कहा हे राजा ! जिसका नाम चित्त है. अरु प्राण है, अरु देह है, ऐसा जो चित्त है, तिसका त्याग कर, अरु बाहर जो नानाप्रकारके आकार दृष्टि आते हैं, सो चित्तही कारि दृष्ट आते हैं ताते चित्तका त्याग करु ॥ हे राजा ! जैसे सर्प खुदविषे बैठा होवै तौ खुदका दूषण कछु नहीं विष सर्पविषे है; जिसकारि डसता है, तिसके नाश करनेका उपाय करु, अरु सर्व शब्द भी इस चित्त विषे है, अरु आत्मा है, जो मात्रपद है, जिसविषे न एक कहना है, न द्वैत कहना है, अरु सर्व ओरते इसी चित्तका त्याग करना योग्य है, जब इस चित्तका त्याग करैगा, तब त्यागरूपी अमृतकारि अमर हो जावैगा, अरु जरा मृत्युते रहित

होवैगा, अरु जो चित्तका त्याग न करैगा तौ बहुरि देहको धारैगा, अरु दुःख भोगैगा, अरु जैसे एक क्षेत्रते अनेक दाने उत्पन्न होते हैं, अरु जब क्षेत्रही जलि जाता है, तब अन्न नहीं उपजता, तैसे यह जो देह है, अरु जरा मृत्यु दुःख संसार इनका बीज चित्त है, जैसे अनेकका कारण क्षेत्र है, तैसे दुःख संसारका कारण चित्त है, ताते हे राजा ! चित्तका त्याग करु जब इसका त्याग करैगा, तब सुखी होवैगा ॥ हे राजा ! जिसने सर्व त्याग किया है, सो सुखी हुआ है, जैसे आकाश सर्व पदार्थते रहित है, किसीका स्पर्श नहीं करता, अरु सर्वते बड़ा है, अरु सुखरूप है, अरु सर्व पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तौ भी ज्योंका त्यों रहता है, जो आकाश सर्व त्याग किया है, हे राजा ! तू भी सर्व त्यागी होउ, राज्य अरु देह अरु कुटुंब गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं, सो सर्व चित्तने कल्पे हैं, अरु जो एकका त्याग नहीं होता, तौ कछु नहीं त्यागा, जब चित्तका त्याग करै, तब सर्व त्याग होवै ॥ हे राजा ! यह धर्म अरु वैराग्य अरु ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुए हैं, जब चित्त पुण्यक्रियासों लगता है, तब पुण्यही प्राप्त होता है, जब पापक्रियासों लगता है, तब पापही प्राप्त होता है, अधर्म अरु अवैराग्य अरु दारिद्र्य होता है, जब पुण्यका फल उदय होता है, तब सुख प्राप्त होता है, अरु जब पापका फल उदय होता है, तब दुःख प्राप्त होता है, ताते जन्ममृत्यु दुःख नहीं मिटते. जब चित्तका त्याग होता है, तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजा ! जो कोऊ पुरुष किसी वस्तुको नहीं चाहता, जो मैं नहीं लेता तब तिसकी पूजा बहुत होती है, अरु कोऊ कहता है कि, मैं इस वस्तुको लेऊँ मेरेको यह देवै, तब उसको देता कोई नहीं, ताते सर्व त्याग करु, जो सुखी होवै, अरु सर्व त्याग कियेते सब तूही होवैगा, सर्वात्मा होवैगा, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपनेविषे देखैगा, जैसे मालाके मणकेविषे तागा होता है, अरु मणके भी सूत्रके आधार होते हैं, तिनविषे अपर कछु नहीं होता, तैसे देखैगा कि, सर्व मैंही हौं, अरु एकरस हौं, मेरेहीविषे ब्रह्मांड स्थित है, अरु मैंही हौं, तुझते इतर कछु नहीं ॥ हे राजा जिसने सर्व त्याग किया है, सो

सुखी है, अरु समुद्रकी नाईं स्थित है, उसको दुःख कोई नहीं, ताते तू चित्तका त्याग करु, जो राज्यदोष मिटि जावै, अरु इस चित्तके एतेनाम हैं, चित्त मन अहंकार जीव अरु माया, यह सर्व चित्तहीके नाम हैं ॥ हे राजन्! त्यागने अरु अपरकी भिक्षा लेनेते तौ चित्त वश नहीं होता चित्त तबहीं वश होता है, जब पुरुष निर्वासनिक होता है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग सर्व त्याग नहीं होता, जब यही फुरना निवृत्त होताहै, तब चित्तका त्याग होताहै, अरु चित्तको त्यागिकरिभी त्यागके अभिमानते रहित होना, ऐसा शून्य पाछे जब तू रहैगा, तब सर्वात्मा होवैगा, जब चित्तको त्यागैगा, तब तिसपदको प्राप्त होवैगा कि, जेते ऐश्वर्यसुख हैं, तिनका आश्रय है, अरु जेते दुःख हैं, तिनका नाश करनेहारा है, अरु जिसके जानेते किसी पदार्थकी इच्छा न रहैगी, काहेते न रहैगी कि, सर्व आनंदके धारनेहारा तेरा स्वरूप है, बहुरि इच्छा किसकी रहै, जैसे आकाशके आश्रय देवलोकते आदि सर्व विश्व रहता है, अरु आकाशकी इच्छा कछु नहीं, जो इच्छा नहीं करता तौ भी सर्व आकाशहीविषे है, अब सर्वका धारणेहाराहै ॥ हे राजन्! जब तू भी इच्छा किसीकी न करैगा, तब निर्वासनिक होकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा अरु जानैगा कि, सर्वका आत्मा मैंही हौं, सर्वको धारिरहा हौं अरु भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं जैसे समुद्रके आश्रय तरंग हैं, तैसे मेरे आश्रय काल है. अरु चित्तका संबंध तेरे ताईं प्रमादकरिकै हैं, अरु प्रमाद यही है कि, चिन्मात्र पदविषे चित्त होकरि फुरता है अरु चित्त कैसा है, कि जड भी है, अरु चेतन भी है, इसीका नाम चिज्जड ग्रंथि है जब यह ग्रंथि खुल जावेगी, तब अपने आपको वासुदेवरूप जानैगा, जब निर्वासनिक होवैगा, तब संसाररूपीवृक्ष नष्ट हो जावैगा, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है तैसे चित्तविषे संसार है, जैसे बीजके जलनेते वृक्ष भी जलि जाताहै, तैसे वासनाके दग्ध हुएते संसार भी दग्ध होताहै ॥ हे राजा! जैसे एक डब्बेविषे रत्न होतेहैं, तौ रत्नोंके नाश हुए डब्बा नाश नहीं होता अरु डब्बेके नष्ट हुए रत्न नष्ट होतेहैं, सो डब्बा क्याहै, अरु रत्न क्या हैं, श्रवण करु; डब्बा चित्त है, अरु रत्न देह हैं, ताते चित्त नष्ट होनेका उपाय करहु, जब चित्त

नष्ट होवैगा, तब देहते रहित होवैगा देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी धूडते रहित होवैगा, तब केवल शुद्ध आकाश होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

राजविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कुंभने कहा कि, चित्तका त्यागनाही सर्व त्याग है, तब शिखरध्वजने कहा, हे भगवन् ! मैं चित्तको स्थित कैसे करौं, संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड है, अरु संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है, जो कबहूं स्थित नहीं होता, ताते ऐसे चित्तको मैं कैसे स्थित करौं, तब कुंभने कहा, हे राजन् ! चित्तका रोकना तौ सुगम है, नेत्रोंके खोलने अरु मूँदनेविषे भी कछु यत्न है; परंतु चित्तके रोकनेविषे कछु यत्न नहीं परंतु सुगम किसको है, जो दीर्घदर्शी है, अरु अज्ञानीको चित्तका रोकना कठिनहै, जैसे चंडालको पृथ्वीका राजा होना कठिन है, अरु जैसे तृणको सुमेरु होना कठिन है, तैसे अज्ञानीको चित्तका रोकना कठिन है॥राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! चित्तका तोड़ना कठिनहै, तौभी टूटि जाता है, परंतु मनका रोकना अति कठिन है, जैसे बडे मच्छको बालक रोक नहीं सकता, तैसे मैं चित्तको रोक नहीं सकता ॥ हे देवपुत्र ! तुम कहते हौ कि, मनका रोकना सुगम है, अरु मुझको ऐसे कठिन भासता है. जैसे मूर्ति लिखी हुई अंध पुरुषको नेत्रोंसे नहीं दृष्ट आती, तौ वे हाथविषे कैसे लेवै, तैसे तिनको वश करना मेरे ताईं कठिन भासता है प्रथम चित्तका रूप मेरे ताईं कहौ कि, क्या है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! इस चित्तका रूप वासना है, जब वासना नष्ट होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै, ताते चित्तका बीज तू नष्ट कर, तब चित्तरूपी वृक्षभी नष्ट होवै, न कोऊ टास रहै,न कोऊ फूल फल रहै, अरु जब टासको काट

गा, तब बहुरि होवैगा, टासके काटनेते वृक्ष नष्ट नहीं होता, बहुरि कई टास होते जब बीजको नष्ट करै, तब वृक्ष भी नष्ट हो जावै ॥ राजोवाच हे भगवन्! संसाररूपी सुगंधि है, तिसका चित्तरूपी फूल है, अरु संसाररूपी तंतु है, तिसका चित्तरूपी भीह है, अरु देहरूपी तृण है, तिसके उठावने उडावनेवाला चित्तरूपी पवन है, अरु जरा मृत्यु अध्यात्मक अधिभूतक तेल हैं, तिनका यह तिल है, जिसते तेल उपजता है, अरु संसाररूपी अँधेरी है, तिसका यह चित्तरूपी आकाश है, जो आकाशविषे कई अँधेरियां होती हैं, अरु हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भँवरा है, तिसका बीज भी कहौ; अरु टास भी कहौ, जो क्या है, अरु टासका काटना क्या है, अरु वृक्ष क्या है, अरु फूल फल क्या हैं, सो कृपाकरि कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे अहंभाव बीज है, इसीको अहंकार कहते हैं, अरु इसीको चित्त कहते हैं, इसीको मन कहते हैं, अरु इसीको जड़ कहते हैं, इसीको मिथ्या कहते हैं, तिस अहंविषे जो संवेदन है, सोई देह इंद्रियां हो पसरी हैं, तिसविषे जो निश्चय है सो बुद्धि है, तिस बुद्धिविषे जो निश्चय है, यह मैं हौं, यह संसार है, सोई जीव अहंकार है, अहंकार इस वृक्षका बीज है, अरु वासना इस चित्तरूपी वृक्षके टास हैं, अरु सुखदुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं ॥ हे राजन्! इसका जो काटना है, सो सुन, एकांत बैठिकरि चिंतवनाते रहित होना, एक आश्रयको त्यागिकरि दूसरेका अंगीकार करना, इसप्रकार स्थित होना कि, मैं ऐसा त्यागी हौं, इसका चिंतवना यही टासको काटना है ॥ हे राजन्! इस टासके काटेते वृक्ष नष्ट नहीं होता, काहेतें जो ऐसा होकरि स्थित होना, जो मैं हौं, अरु वासना त्याग करै, कछु फुरै नहीं, जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है, तब चित्तरूपी वृक्ष नष्ट हो जाता है, काहेते कि, इसका बीज अहं है, जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्ष भी नष्ट होजाता है, ताते चित्तका बीज तू नष्ट कर ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! तुम्हारा निश्चय मैं यहां जाना है कि, चित्तके त्यागते चित्तका बीज नष्ट करना श्रेष्ठ है ॥ हे भगवन्! एता काल मैं टास काटत

रहा हौं, इसीते दुःख मेरे नष्ट नहीं भये,अरु तुमने कहा कि, अहंही दुःख दायी है,सो अहंका उत्पन्न होना कैसे होता है ? ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! शुद्ध चेतनविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंका फुरणा कि, मैं हौं, सो दृश्यरूप हुआ है, मिथ्या संवेदन करिकै हुआ है, जैसे शांत समुद्रविषे पवनकरिकै लहरी तरंग होते हैं, तैसे शुद्ध आत्माविषे अहं फुरणा है, तिस करिकै संसार हुआ है, ताते अहंभावको नष्ट करु, जो शांतपदविषे स्थित होवै, जो दुःखदायक वस्तु है, तिसको नष्ट करै सो शांत होवै ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! वह कौन वस्तु है, जो जलावने योग्य है, अरु वह कौन अग्नि है, जिसविषे जलती है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे त्यागवान्विषे श्रेष्ठ राजा ! तेरा जो अपना स्वरूप है, तिसका विचार कर कि, मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, इसका दृढ विचार करना सोई अग्नि है, अरु मिथ्या अनात्मा जो देह इंद्रियादिकविषे अहंभाव है, तिसको वास्तवरूप विचार अग्निकरि जलावहु, जब विचार अग्निकरिकै अहंकार बीजको जलावैगा, तब केवल चिन्मात्र होवैगा ॥ हे राजा ! मेरे उपदेशकरिकै तू आपको क्याजानता भयाहै,सो मेरे ताईं कहौ,तब राजाने कहा मैं राजा भी नहीं अरु पृथ्वी भी मैं नहीं,अरु पर्वत भी मैं नहीं,अरु आकाश भी मैं नहीं,अरु दशों दिशा भी मैं नहीं,अरु मैं रुधिरमांसकी देह भी नहीं,अरु कर्मइंद्रियां, ज्ञानइंद्रियां भी नहीं,अरु मन बुद्धि भी मैं नहीं, अरु मैं अहंकार भी नहीं, इनते रहित शुद्ध आत्मा हौं, परंतु हे भगवन् ! अहंरूपी कलंकता मेरे ताईं कहाँते लगी है, तिस कलंकके दूर करणेको मैं समर्थ नहीं, तब कुंभने कहा ॥ हे राजा ! इसी अहंका त्याग करु, कि मैं त्याग किया है, यह फुरणा भी न फुरै, शून्य हो रहु, जब इसका त्याग करैगा तब चेतन आकाश होवैगा ॥ हे राजा ! तू अपने स्वरूपविषे जानिकरि देख कि, कौन है, तब राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! मैं यह जानता हौं कि, मेरा स्वरूप आत्मा है, सो सर्वका आत्मा है, अरु मैं आनंदरूप हौं,सर्व मेरा प्रकाश है; परंतु यह नहीं जानता कि,अहंभावकलना कहांते लगी है, इसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं, अरु यह मैं जाना कि, संसारका बीज चित्त है, अरु चित्तका बीज अहंकार है, तुम्हारी कृपाते मैं जाना

है कि, मेरा स्वरूप आत्मा है; अहं त्वं मेरेविषे कोई नहीं; तुम भी इस अहंरूप कलंकताको दूरकरि रहे हौ, मेरेते दूर नहीं होता, बहुरि बहुरि आय फुरता है कि, मैं शिखरध्वज हौं, इस अहंकरिकै मैं संसारी हौं इसके नाश करणेका उपाय तुम कहौ ॥ कुंभ उवाच, हे राजन् ! कारणविना कार्य नहीं होता, अरु जो कारणविना कर्य भासै तो जानिये कि; भ्रममात्र है, अरु मिथ्या है, अरु जिसका कारण पाइये सो जानिये कि, सत्य है, ताते तू कह, इस अहंकारका कारण क्या हैं, तब मैं उत्तर कहौंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है, शुद्ध आत्माविषे जो जानना हुआ है, जाननमात्रविषे जाननेका उत्थान हुआ है, जो दृश्यकी ओर लगा है, सो जानना संवेदनही अहंका कारण है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! इस जाननेका कारण क्या है, प्रथम तू यह कहु, पाछे दूर करणेका उपाय मैं कहौंगा ॥ हे राजन् ! जिसका कारण सत् होता है, तो कार्य भी सत् होता है, अरु जो कारण झूठ होता है, तौ कार्य भी झूठ होता है, जैसे भ्रम दृष्टि करिकै दूसरा चंद्रमा आकाशविषे देखता है, सो कारण तिसका भ्रम है, ताते इस जानने संवेदनका कारण कहु कि, क्या है, जो जानना संवेदन दृष्ट अरु दृश्यरूप होकरि स्थित भई है, अरु दृश्यद्रष्टृरूप होकरि स्थित भई है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र ! जाननेका कारण देहादिक दृश्यहैं, काहेते कि, जानना तब होता है, जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है, जो आगे वस्तु नहीं होती है तौ तिसका जानना भी नहीं होता, ताते जाननेका कारण देहादिक हुए ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! यह देहादिक मिथ्या हैं, भ्रम करिकै हुए हैं, इनका कारण तो कोई नहीं ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र ! देहका कारण तो प्रत्यक्ष है, खाता पीता है, अरु पिताते इसकी उत्पत्ति भई है, अरु प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्ट आता है, तुम कैसे कहते हौ, कि, कारणविना है, अरु मिथ्या है, ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् पिताका कारण कौनहै, पिता भी मिथ्याहै, जैसे स्वप्नविषे पिता अरु पुत्रदेखिये सो दोनों मिथ्या हैं, ताते कहु पिताका कारण क्या है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! पुत्रका कारण पिता अरु पिताका कारण पितामह है, इसीप्रकार परंप-

राकरिकै सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जानाजाता हैं कि, सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीते भई है, ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत सर्व सृष्टि संकल्पकी रची है, अरु देह भी भ्रम करिकै भासता हैं, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता है, जैसे आकाशविषे दो चंद्रमा भ्रमकरिकै देखते हैं, तैसे आत्माविषे यह संसार भ्रमकरिकै भासता है, अरु जो तू कहै, क्रिया कैसे दृष्ट आते हैं, तौ सुन, जैसे कोऊ कहै, वंध्याके पुत्रको भूषण पहिराये हैं, जो वंध्याके पुत्रही नहीं तौ भूषण किसने पहिरे, सो भ्रम करिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे सब क्रिया होती हैं, सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह संसार तेरे भ्रमविषे है, जब भ्रम निवृत्त होवैगा, तब केवल आत्माही भासैगा ॥ हे राजन् ! जैसे तू अपना देह जानता है, तैसे ब्रह्माका भी जान, ब्रह्माका कारण कौन है, ताते इस भ्रमते जाग, जो तेरा भ्रम नष्ट हो जावै ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! मैं जागा हौं, अब मेरा भ्रम नष्ट भया है, अरु मैंने यह संसार मिथ्या जाना है, कि केवल संकल्पमात्र है जो कछु दृश्य है, सो मिथ्या है, अरु एक आत्माही मेरे निश्चयविषे सत् भया है ॥ हे भगवन् ! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है, अरु अद्वैत है, अविनाशी है, अरु सर्वात्मा है, ब्रह्माका कारण यह हुआ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! कारण अरु कार्य द्वैतविषे होते हैं, सो असत् हैं, जो तिस कारणका देशते भी अंत होता है, वस्तुते भी अरु कालते भी अंत हो जाता है, अरु परिणामी होता है, जो वस्तु परिणामी होवै सो मिथ्या है ॥ हे राजन् ! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे न एक कहना है, न द्वैत कहना है, न भोगता है, न भोगहै, न कर्म है, अद्वैत है, जो स्वरूपते परिणामको नहीं प्राप्त भया, अरु सर्वात्मा है, जो सर्व देश है, अरु सर्वकाल भी है, जो सर्व वस्तुविषे पूर्ण है, अरु अद्वैत है, जो अद्वैत है, तो कारण कार्य किसका होवै, कारणकार्यका संबंध द्वैतविषे होता है, अरु परिणामी होता है, अरु जिसविषे देशकालका अंत है सोआत्मा अद्वैत है, तिसविषे नकोऊ देश है, न कालहै, न कोऊ वस्तु है, चिन्मात्रपद है॥

हे राजन्! मैं जानता हौं कि, तू जाग्रत होवैगा भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है, जैसे बर्फकी पुतली सूर्यकी किरणोंसों क्षीण हो जाती है, तैसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुएते तू आत्माही होवैगा, तू अपने प्रत्यक् चेतनस्वरूपविषे स्थित होहु, अरु देख कि, ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्माका किंचन है, परमात्माही ऐसे होकरि स्थित भया है, अरु जो दृष्टि पडता है, तिस सर्वका अपना आप आत्मा है. जो जागै तौ जानै, जागेविना नहीं जानता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम्हारी कृपाते मैं जागा हौं, अरु जानता हौं कि मेरा स्वरूप आत्मा है, अरु मैं निर्मल हौं अब मेरा मुझको नमस्कार है, एक मैंही हौं, मेरेते इतर कछु नहीं, अरु आपको जाना है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रांति वर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५.

शिखरध्वजविश्रांतिवर्णनम्।

राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कैसे कहते हौ कि, ब्रह्माका कारण कोई नहीं आत्मा ऐसा ईश्वर है, जो अनंत है, अरु अच्युत अव्यक्त अरु अद्वैत है, परमाणुका विषय नहीं, अरु परमब्रह्म है, सोई ब्रह्माका कारण है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तूही कहता है, कि आत्मा अनंत है, जो अनंत है, तिसको देशकाल वस्तुका परिच्छेद नहीं, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पूर्ण है, सो कारण किसका होवै, कारण तब होवै जब प्रथम द्वैत होवै, सो आत्मा अद्वैत है, अरु कारण तिसको कहते हैं, जो कार्यते पूर्व होवै, अरु पाछे भी वही होवै, जैसे घटके आदि मृत्तिका है, अंतभी मृत्तिका होती है, तिसको कारण कहते हैं, सो आत्माविषे न आदि है, न अंत है, आत्मा अनंत है, अरु कारण तब होता है, जब परीणाम होता है, जब परिणाम होता है, सो आत्मा अच्युतहै, अपने स्वरूपते कदाचित् नहीं गिरा, अरु भोक्ता भी द्वैतविषे होता है, सो आत्मा अद्वैतहै, भोग भोक्ता दोनोंनहीं अरु आत्माविषे कर्म भी नहीं कि, आत्माते आदिकौन

है, जिसकरि आत्मा सिद्ध होवै, अरु किसीका कार्य भी नहीं, काहेते कि जो कार्य होता है, सो इंद्रियोंका विषय होता है,सो आत्मा अव्यक्त है, अरु जो कार्य होता है, तिसका कारण भी होता है, सो आत्मा सर्वकी आदिहै, तिसका कारण कौन होवै जो सर्वात्मा है, अरु स्वच्छ है,आकाशवत निर्मल तेरा स्वरूपहै ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! बडा आश्चर्यहै, मैंने जाना है कि, जो आत्मा अद्वैतहै, सो न किसीकाकारण है,न कार्य है, अरु अनुभवरूपहै, सो मैं हौं, अरु निर्मलहौं, विद्या अविद्याके कार्य ते रहित हौं, अरु निर्वाण पद हौं, अरु निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणा कोई नहीं बहुरि कैसा हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही हौं, ऐसा जो सर्वात्माहौं मेरा मुझको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजविश्रांतिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

शिखरध्वजबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजा शिखरध्वज कुंभमुनिको प्रबोध हुआ, ऐसे वचन कहिकारि केवल निर्वाणपदविषे स्थित भया,जब निर्विकल्प फुरणेते एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहा, जैसे दीपक वायुते रहित स्थित होता है, तब कुंभने जगायकारि कहा ॥ हे राजन् ! तेरा समाधिसाथ क्या है, अरु उत्थान क्या है, तू तौ केवल आत्ममात्र है, अरु मैं जानताहौं कि तू परमज्ञानकारि शोभत भया है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता हैं, तिसका प्रकाश बाहिर दृढ नहीं आता, अरु जब डब्बेसों निकासिकारि देखिये तब बडा प्रकाश होताहै, तैसे अविद्यारूपी डब्बेसों, तू निकसाहै, अरु परमज्ञान करिकै शोभत भयाहै ॥ हे राजन् ! तेरेविषे न कोई क्षोभहै, न कोई उपाधि है, संसारके रागद्वेषते तू रहित भया है, शांतरूप जीवन्मुक्त होकारि विचरु, तेरे ताईं उपाधि कोई न लगैगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार कुंभमुनि कहा तब राजा शांतरूप हो गया,अरु

कहा ॥ हे भगवन्! जो कछु तुमने आज्ञा करी सो सर्व भलीप्रकार मैंने जाना है, अब एक प्रश्न और है, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ, जो मैं दृढ स्थित होऊँ ॥ हे भगवन्! आत्मा तौ एक है, अरु शुद्ध है, केवल आकाशरूप है, चेतनमात्र है, तिसविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी कहाँते उपजी है, सो कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! जो कछु स्थावर जंगम संसार है, सो महाप्रलयपर्यंत है, जब महाप्रलय होता है, तब केवल आत्माही शेष रहता है, अरु स्वच्छ निर्मल होता है, तहां न तेज होता है, न अंधकार होता है, केवल अपने आप स्वभावविषे स्थित होता है, अरु जेता कछु आनंद है, तिसका अधिष्ठान आत्मा है, अरु सत्असत्‌ते रहित है, सत् कहिये जिसको बुद्धि इदं कारि कहते हैं, अरु असत् कहिये जिसको नहीं कहते हैं, तिस सत्असत्‌ते रहित अरु सर्व लक्ष्मीकारि संयुक्त जो अपना स्वभावमात्र है, जिसविषे उपाधि कोऊ नहीं, अरु सर्वदा प्रकाशवान् है, अरु सर्वदा उदयरूप है, तिस परमात्माका यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्नका चमत्कार लाट होती है, तैसे ब्रह्मका चमत्कार यह संसार है, ताते ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं हुआ, केवल ब्रह्मरूप है; अरु ब्रह्मते इतर कारिकै है, सो मिथ्याही भ्रम जानना, जो कछु आकार भासते हैं, सो असत् हैं ॥ हे राजन्! जो सब आकार मिथ्या हैं, तौ तेरी संवेदन भी मिथ्या है, आत्माविषे अहं त्वंका उत्थान कोई नहीं, केवल ज्ञानमात्र है, अरु केवल सत्रूप है, अरु आनंदरूप है, अरु अविद्या तमते रहित प्रकाशरूप है, अरु प्राणोंकारि नहीं जानाजाता जो इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु मनकी चिंतवनाते रहित है. काहेते कि, सर्वका द्रष्टा है, अरु सर्वका अपना आप अनुभवरूप है ॥ हे राजन्! तिसविषे स्थित होहु, बहुरि आत्मा कैसा है कि, बडेते बडा है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है, स्थूलते स्थूल है, जिसविषे आकाश भी किसी ओर अणु जैसा पाता है, अरु ब्रह्मांड भी तिसविषे तृणसमान पाते हैं; अरु अपने आपकारि पूर्ण है, अरु अपने आपकारि घूर्म है, अरु किंचित् भी तिसते उत्पन्न कहीं नहीं भया अरु नानाप्रकार करिकै स्थित भया है, फुरणेकरिकै जगत्‌ भासता है

फुरणेके निवृत्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो कि, संसार फुरणेमात्र है, अरु आत्मा शुद्ध शांतिरूप है, अरु निर्विकल्प है, तो तिसविषे संवेदन फुरणा कहांते आया है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! फुरणा भी आत्माका चमत्कार हैं, जैसे पवनविषे सस्पंद फुरणा शक्ति भी है, अरु निस्पंद ठहरना शक्ति भी है, जब फुरता है, तब स्पर्श चलना प्रगट होता है, जब ठहर जाता है, तब प्रगट नहीं होता तैसे संवेदन जब फुरता है, तब नानाप्रकार होते हैं, अरु जगत् भासता है, जब फुरणा मिटजाता है, तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है ॥ हे राजन् ! आत्मा सत्तामात्र है, अरु संसार भी सन्मात्र आत्माही है, जो सम्यक् दृष्टिकरि देखिये तो आत्माही भासता है, अरु असम्यक् दृष्टिकरिकै दुःखदायक जगत् भासता है, जिसके मनविषे संसारभावना है, तिसको दुःखदायक भासता है, अरु जिसके हृदयविषे आत्मभावना होती है, तिसको आत्माही भासता है, अरु सुखरूप होता है, काहेते कि, आत्मा नाम अपने आपका है, जिसने जगत्‌को अपना आप जाना, तिसको दुःख कहां होवै ॥ हे राजन् ! यह संसार भावनामात्र है, जैसी भावना होती है, तैसेही भासता है, जिसकी भावना विषविषे अमृतकी होती है, तो विष भी अमृत हो जाता है, अरु जिसकी भावना अमृतविषे विषकी होती है, तब अमृत भी विष हो जाता है. काहेते कि संसार भावनामात्र है, जैसी भावना दृढ करता है, यद्यपि आगे वह वस्तु न होवै तौ भी हो जाती है, ताते संसार भावनामात्र मिथ्या है, ज्ञानवान्‌को दुःख कदाचित् नहीं देता. अरु अज्ञानीको सुख कदाचित् नहीं देता ॥ हे राजन् ! अहंता अरु संवेदन चित्त अरु चैत्य यह भी आत्माकी संज्ञा है, जैसे आकाश कहिये, शून्य कहिये, नभ कहिये यह सर्व संज्ञा आकाशकीही हैं, तैसे सर्व संज्ञा आत्माकी हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, अहं त्वं सर्व आत्माके आश्रय हैं, जैसे भूषण स्वर्णके आश्रय होते हैं, परंतु स्वर्ण परिणामकरि भूषण होता है, जो पूर्वरूपको त्यागता है, आत्मा तैसे भी नहीं केवल एकरस है, अरु अपने आपविषे स्थित है, कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त

भया, यह संवेदन आत्माका चमत्कार है, अरु सत् असत्‌ते आत्मा परे है, जेता कछु दृश्य है, सो आत्माविषे नहीं, चित्तकरिकै रचा है, इसीते परे है ॥ हे राजन्! सो कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब दृश्य होता है, सो आत्मा किसीका विषय नहीं, कारण कार्य किसीका होवै, अरु विश्वका आदि भी आत्मा है, अंत भी आत्मा है, अरु मध्यविषे भी आत्माही है, जो कछु अपर भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे घर मंडल पुर दृष्ट आते हैं, तिसकी आदिभी आकाश है, अंत भी आकाश है, अरु मध्य भी आकाश है, जो घर मंडल पुर भासते सो मिथ्या हैं, जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्ट आता है सो मिथ्या आकार है, एक अग्निही है, तैसे सर्वकी आदि मध्य अंत एक आत्माही सार है ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे भी देश काल होता है. काहेते कि, दृश्य है सो इंद्रियोंका विषय है, यह तरंग अमुक स्थानते उठा है, अरु अमुक स्थानविषे जाय लीन भया, तौ स्थान देश हुआ, अरु उपजिकरि एता काल रहा सो काल हुआ, अरु जिसको इंद्रिय विषयकरि न सकैं तिसविषे देश काल कैसे होवै ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! मैं भलीप्रकार जाना है कि, आत्मा चिन्मात्र है, ज्ञानइंद्रियां कर्म इंद्रियोंते परे हैं, अरु देश काल इंद्रियां मनकरि जानता है कि, अमुक देश है अमुक काल है, जहां इंद्रियां अरु मनही न होवै, तहां देश काल कहां है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! जो तैंने ऐसे जाना तौ तू जाना है, आत्माविषे देश काल कोई नहीं, यह मन इंद्रियोंकरि जानाजाता है कि, यह देशहै, अरु यह कालहै, जो इनते रहित होकरि देखै तो आत्माही भासै, अरु जो इनसहित काल देखै तौ संसारही दृष्ट आवैगा ॥ हे राजन्! इनते रहित होकरि देख, जो संसार तेरेविषे कछु न रहै, जो अमुक प्रश्न किया, अब अमुक प्रश्न करौं, संसार तबलग होताहै, जबलग इनका संयोग अपनेसाथ होता है ॥ हे राजन्! ब्रह्मकरि ब्रह्मको देखै अरु पूर्णको देखै जो तू भी पूर्ण होवै, जब पूर्ण होवैगा, तब सर्व ओर आपको जानैगा, अरु सर्व संज्ञा तेरीही होवैगी, अरु निर्वाच्य पदको प्राप्त होवैगा, जहां इंद्रियोंकी गम नहीं, केवल आकाशरूप है, जैसे आकाश अपनी

शून्यताकारि पूर्ण है, तैसे तू अपने चेतन स्वभावकारि आप पूर्ण होवैगा, जब मनसहित षट् इंद्रियोंते रहित होकारि देखैगा, अपने आपको बहुरि इनसहित देखैगा तौ भी तेरे तांई चेतन आत्माही भासैगा, संसारका शब्द अर्थ तेरे हृदयते उठि जावैगा, शब्द यह जो संसार है, अरु तिसको सत् जानना यह अर्थ है, सो भावना निवृत्त हो जावैगी, केवल आकाशरूप आत्माही भासैगा, अरु संसार संवेदनमात्र है, संवेदन कहिये चित्तशक्तिका चमत्कार है, यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकारि स्थित भई है, अरु संसारको देखने लगी है, जब अंतर्मुख होती है, तब आत्माही दृष्ट आता है, आत्मा सदा एकरस है, जब बहिर्मुख होती है, तब संसार दृष्ट आता है, जैसी यह भावना करता है, तैसेही आगे दृष्ट आता है, जब संसारकी भावना होती है, तब संसारही भासता है, जब आत्माकी भावना होती है, तब आत्माही भासता है, आत्मा सदा एकरस है, अरु असंसारी है, ताते हे राजन् ! तू आत्माकी भावना करु, जो तेरे तांई आत्माही भासै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

शिखरध्वजप्रथमबोधवर्णनम् ।

कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! यह संसार जो तेरे तांई भासता है, सो आत्माविषे नहीं, केवल शुद्ध आत्माविषे जो अहं उत्थान है, सोई संसार है, सो अहंका चमत्कार न सत् है, न असत् है, न अंतर है, न बाहर है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अपने आपविषे स्थित है, अरु संसारका प्रध्वंसाभाव भी नहीं, प्रध्वंसाभाव कहिये जो पहिले होवै, पाछे नाश हो जावै, सो संसारका उदय अरु अस्त होना आत्माविषे नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है, तिसते इतर कछु नहीं, यह कहना भी आत्माविषे नहीं, जो केवल अपने आपविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसविषे

वाणीकी गम नहीं, वाणी तिसको कहते हैं, जहां दूसरा होता है, जहां दूसरा न होवै तहां वाणी क्या कहै, यह कहना भी तेरे उपदेशनिमित्त कहा है, आत्माविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति नहीं ॥ हे राजा ! ऐसा आत्माका कारण कार्य किसका होवै, आत्मा शुद्ध है, निर्विकार है, अरु प्रमाणोंते रहित है, जो किसी लक्षणकारि प्रमाण किया नहीं जाता, सो आकार होकरि स्थित भया है, अरु शांतरूप है॥हे राजा ! ऐसा आत्मा है, कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब प्रथम परिणामको प्राप्त होता है, अरु क्षोभको प्राप्त होता है, सो आत्मा शांतरूप है, अरु कारण तब होवै, जब क्रिया कारिकै कार्यको उत्पन्न करै, सो आत्मा अक्रिय है, क्रियाते रहित है, अरु कारणको कार्यते जानना है, सो आत्मा चिह्नते रहित है, अरु प्रमाणोंका विषय नहीं, ताते कारण कार्य आत्मा किसीका नहीं, अरु आत्माको कारण कार्य मानना मेरे तांई आश्चर्य आता है ॥ हे राजन् ! जो वस्तु उपजती है, सो नष्ट भी होती है, अरु जो नष्ट होती है सो उपजती भी है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, अरु अजन्मा है, अरु निर्विकार है, तिसविषे स्थित होउ, जो तेरा संसार निवृत्त हो जावै, यह संसार अज्ञानकारिकै भासता है, जब तू स्वरूपविषे स्थित होकरि देखैगा, तब संसार न भासैगा, अरु ऐसे भी न भासैगा कि, संसार आगे था, अब निवृत्त हुआ है, एकरस आत्माही भासैगा, केवल शून्य आकाश हो जावैगा, शून्य कहिये संसारते रहित हो जावैगा, स्वरूप चेतन नाना कारिकै भी वही है, अरु एक भी वही है, शून्य है, अरु शून्यते रहित है, द्वैतरूप भी वही है, अद्वैतरूप भी वही है, ऐसा भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

शिखरध्वजबोधवर्णनम् ।

कुंभ उवाच ॥ हे राजा ! जो कछु देखता है, सो चेतन घन है, तिसविषे अहं त्वं शब्द कोई नहीं, अरु अहं त्वं शब्द प्रमादकारि होते हैं, जब

आत्माविषे स्थित होकरि देखैगा, तब आत्माते इतर कछु न भासैगा, तौ अहं त्वं शब्द कहाँ भासै ॥ हे राजन्! यह नानाप्रकारकी संज्ञा चित्तते कल्पी हैं, जब चित्तते रहित होवैगा, तब नाना अरु एक संज्ञा कोई न रहैगी ॥ हे राजन्! सर्व ब्रह्म है, यह वाक्य वेदका सार है, जब इस वाक्यविषे दृढभावना बुद्धि होवैगी तब एकरस आत्माही दृष्ट आवैगा, अरु चित्त नष्ट होजावैगा, जब चित्त नष्ट हुआ, तब केवल महाशुद्ध आकाशकी नाई स्थित होवैगा, निर्दुःखपदको प्राप्त होवैगा, जो पद सर्वकी आदि है, अरु सर्वदा मुक्तरूप है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुमने कहा कि, चित्तके नष्ट हुएते दुःख कोई न रहैगा, सो चित्तनष्टका उपाय तुमने कहा है, परंतु मैं दृढकरि नहीं समझा, ताते मेरे दृढ होनेके निमित्त कृपा करिकै बहुरि कहौ कि, चित्त कैसे नष्ट होता है, ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह चित्त न किसी कलका है, अरु न किसीको है, न यह देखता है, चित्त हैही नहीं, तौ मैं तेरे तांई क्या कहौं; अरु जो चित्त तुझको दृष्ट आता है, तौ तू आत्माही जान, आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं ॥ हे राजन्! महासर्गके आदि अरु अंत सृष्टि कोई नहीं, केवल आत्मा है, अरु यह कहना भी आत्माविषे नहीं, मैं तेरे जतावनेके निमित्त कही है, अरु मध्य जो कछु दृष्ट आता है, सो अज्ञानीकी दृष्टिविषे है, आत्माविषे सृष्टि कोई नहीं, आत्मा किसीका उपादान कारण, अरु निमित्तकारण नहीं काहेते कि अच्युत है; परिणामको नहीं प्राप्त भया, अरु उपादान भी परिणामकरि होता है, आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है, आकाशरूप है, सो कारण कार्य किसका होवै, अरु चित्त भी वासनारूप है, वासना तब होती है, जब वास होती है, वास कहिये वासना करनेयोग्य जो आगे सृष्टि भी नहीं तौ वासना किसकी फुरै, अरु चित्तविषे संसारकी स्थिति कैसे होवै, ताते चित्त कछु नहीं; यह विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु सृष्टि आत्माविषे कोई नहीं, निरालंब केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ हे राजन्! संसार भी नहीं भया, अरु चित्त भी नहीं भया, तौ अहं त्वं आदिक शब्द भी आत्माविषे कोई नहीं यह शब्द तब होते हैं, जब चित्त होताहै, अरु चित्त तबलगहै, जबलग वासनाहै, जब निर्वासनिक

पदको प्राप्त भया, तब कल्पना कोई नहीं रहती ॥ हे राजन्! यह संसार महाप्रलयविषे नष्ट हो जावैगा, सत् असत् संसार कछु न रहैगा, एक आत्माही शेष रहैगा, जो निराकार अरु शुद्ध है, जबलग महाप्रलय नहीं भया, तबलग संसार है; सो महाप्रलय क्या है श्रवण करु, एक क्षण आत्माका साक्षात्कार होना, तिसकरि सृष्टिका शेष भी न रहैगा, सो ज्ञानही महाप्रलय है, अरु अब जो दृष्टि आता है, सो मिथ्या है, यह क्रिया भी मिथ्या है अरु इसका भान होना भी मिथ्या है. जैसे स्वप्नकी क्रिया भी मिथ्या है, तिसका भान होना भी मिथ्याहै, तैसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है, कारणविनाही भासता है, जो कारणविना है, सो मिथ्या है, इसका कारण अज्ञानही है, जो अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासैगा, जैसे स्वप्नविषे अपने न जाननेकारि भिन्न आकार भासते हैं, जब जागा तब अपना आपही जानता है, कि, मैंही था ॥ हे राजन्! मेरे ताईं तौ एक आत्माही दृष्ट आता है, आत्माही है, आत्माते इतर संसार कोई नहीं, अरु इस संसारको स्थित मानना मूर्खता है, सदा चलरूप है, वेद शास्त्र अरु लोक भी कहता है कि, संसार मिथ्या है, अरु आप भी जानता है जो नष्ट होजाता है, दृष्टि आता है, तिसविषे आस्था करनी मूर्खता है, आत्माविषे संसार नाना अनाना कोऊ नहीं आत्मा सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, शुद्ध है, अरु अच्युत ज्योंका त्यों है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

शिखरध्वजबोधवर्णनम् ।

शिखरध्वज उवाच ॥ हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट भया है, अरु अपना आप मैंने जाना है, तुम्हारी कृपाते मेरा संसार निवृत्त भया है, शोकसमुद्रको अब तरा हौं। अरु शांत पदको प्राप्त भया हौं, अहं त्वं

शब्द मेरेविषे कोऊ नहीं, निर्वाणपदको प्राप्त भया हौं, अच्युत हौं, चिन्मात्र हौं, केवल हौं, अरु शून्य हौं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! आत्मा शुद्ध आकाशकी नांई निर्मल है, आकाशते भी सो अति निर्मल है, तिसविषे अहं मल है, सो अहं मोहते उपजी है, मोह कहिये अविचार, जब विचार होता है, तब अहंको नहीं पाता, यह विश्व संवेदनविषे है, संवेदन सर्वके आदि होकारि स्थित भई है, जब संवेदन अंतर्मुख होती है, तब सर्व विश्व लीन हो जाती है, संवेदनहीविषे बंध अरु मुक्ति है, जब बहिर्मुख होती है, तब बंध है, जब अंतर्मुख होतीहै, तब मोक्ष है, जिसने मन अरु इंद्रियोंते रहित होकारि अपना आप देखा है, तिसको ज्योंका त्यों दृष्ट आता है, अरु जो मोहसंयुक्त देखता है, तिसको विपर्यय भासताहै, जैसे सम्यक् दृष्टि करिकै भूषणविषे स्वर्ण भासता है, जब भूषणके आकार जाते हैं, तब भी स्वर्ण ही है, अरु मूर्खको सोनेके विषे भूषण दृष्टआते हैं. चिरकालके अध्यास करिकै जो बुद्धि इनविषे फुरती है, तौ भी प्रारब्धके वेगपर्यंत चेष्टाहोतीहै तब चेष्टाविषे भी आत्माही दृष्टि आताहै; तातेकेवल आत्माहीका किंचन होता है, जैसे सोनेविषे भूषण अरु आकाशविषे नीलता अरु वायुविषे स्पंदता है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे आकाशविषे नीलता देखनेमात्र है, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे सृष्टि वास्तव कछु नहीं, भ्रांतिमात्रहीहै, जब भ्रांति निवृत्त होवैगी, तब जगत्का शब्द अर्थ सर्वओरते शांत होवैगा, अरु शब्द अर्थकी भावनाते जो चेष्टा होती है, तिसते जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है, तब दुःख कोऊ नहीं होता, इसीको मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाणपदका हुआ, तब शांतरूप शून्यपदको पायकारि स्थित होता है ॥ हे राजन् ! अहंका उत्थान होना यही बंधनहै, अरु अहंका निर्वाण होना यही मुक्ति है, अरु अहंके होनेकारि संसार दुःख है, जबलग अहंका उत्थान है तबलग संसार है, अरु जबलग संसार है, तबलग अहंका उत्थान है, जब संसारकी सत्ता जाती रहै तब अहं फुरना भी नष्ट होजावैगा, जब फुरणा नष्ट भया, तब अहं भी नष्ट होजावैगा, जब अहं नष्टभया तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहैगा, अरु अनामय एकही एक

निर्दुःखही भान होवैगा, अहं ब्रह्मका उत्थान भी शांत हो जावैगा, अरु चेतन मात्रही रहैगा ॥ हे राजन्! जिसको सर्व ब्रह्मकी बुद्धि भई है, तिसको संसारकी बुद्धि नहीं, अरु जिसको संसार बुद्धि है, तिसको ब्रह्मबुद्धि नहीं जैसी जैसी भावना दृष्ट होती है तैसाही आगे भासता है, जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है, सो ब्रह्मरूप हो जाता है, अरु जिसको जगत्की भावना दृढ़ होती है, तिसको जगत् भासता है ॥ हे राजन्! तू अब जागा है, अरु ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध निर्मल है, अरु प्रत्यक्है,जो किसी शब्द अरु लक्षणका विषय नहीं अरु इंद्रियोंका विषय नहीं ॥ हे राजन्! ऐसा आत्माकारण कार्य जिसका होवै, जो केवल अद्वैत है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग पवनकारि उपजते हैं, तौ भी समुद्रते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारकी विश्व संवेदन फुरणेक- रिकै उपजती है तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, फुरणेमात्र है, जैसे स्तंभेविषे मनोराज्यकारि कोऊ पुरुष पूतलियां कल्पता है, अरु नाना- प्रकारकी चेष्टा करता है, इनकी चेष्टा तबलग है, जबलग संकल्प है, जब संकल्प निवृत्त हुआ, तब शून्य स्तंभही रहता है, जैसा आगे भी शून्य था, अरु तिसकी संवेदनविषे सृष्टि थी, तैसे यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अंतर्मुख भया, तब संसारकी सत्ता जाती रहती है ॥ हे राजन्! संसारसत्ता जाती तब है जो आगेही असत् है,अरु जो वस्तु सत् होती है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ताते केवल संवेदन कल्पी है, जैसे एक शिलाविषे पुरुष पुतलियां कल्पता है, तो शिलाविषे तौ पुतली कोऊ नहीं, ज्योंकी त्यों शिलाही है, तैसे फुरणेकारिकै आकार दृष्ट आते हैं, जब चित्त फुरणेते रहित होवैगा, तब आत्माको अपना आप जानैगा, अरु अशब्द पदको प्राप्त होवैगा, जो शांतिपद है, अरु शुद्ध आकाशरूप है ॥ हे राजन्! सर्व शब्द अरु सर्व अर्थकी अभा- वना यह ब्रह्म अर्थ है, जहां कोऊ कल्पना नहीं, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब शेष आत्माही भासता है, अरु यह भावना भी उठ जाती है,

जो यह संसार है, यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेयमात्रही होय रहता है, कैसा ज्ञेयमात्रही है, जो शिलाकी नाईं ज्ञान है, ऐसा शेष रहता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनं नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.
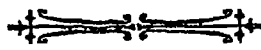
परमार्थोपदेशवर्णनम् ।

राजोवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे तुम कहते हौ, सो सत्य है, अरु मैं ऐसे जानता हौं कि, संसार आत्माका कार्य है, अरु आत्मा कारण है, जो आत्माका कार्य हुआ तौ आत्मस्वरूप हुआ, आत्माते इतर नहीं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसीका नहीं जो आत्मा अप्रत्यक्ष है, अरु अक्रिय है, अच्युत है, निरस है, जो अशब्द पद है, सो कारण कार्य किसका होवै, अरु कारणको कार्यद्वारा जानता है, अरु आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, जो अप्रत्यक्ष है, अरूप है, अरु कारण तब होता है, जो क्रिया होती है, न किसीका कारण कार्य है, न कर्म है, केवल ज्योंका त्यों अपने आपविषे स्थित है, चेतनमात्र है, शिवरूप है, शुद्ध है, यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थितहै, तैसे आत्माविषे विश्व आत्मरूपकरिस्थित है, ऐसेविश्व चेतनमात्र है, तिसविषेअसम्यक्दर्शी अज्ञानकरि नानाप्रकार कल्पता है, अज्ञानकहिये वस्तुका नजानना, जो वस्तु परमात्माहै, तिसके प्रमादकरिकै वासनारूप चित्तसों विश्वको कल्पताहै, सो विश्व शब्दमात्र है, अर्थ कछु नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा आकाशविषे, जैसे तरंगसमुद्रविषे जैसे जल मृगतृष्णाविषे, जैसे वैताल परछाईंविषे तैसे असम्यक्दृष्टि आत्माविषे, विश्व कल्पताहै, अरु सम्यक्दर्शीऐसे जानता हैकि, आत्मा शुद्धहै अजन्मा है, अविनाशी है, परम निरंजन है ॥ हे राजन् ! जब तू सम्यक् दृष्टिकरि देखैगा, तब संसारका प्रध्वंसाभाव भी न देखैगा काहेते

कि चित्तका कल्पा हुआ है, अरु चित्त अज्ञानकरिकै उपजा है स्वरूप-विषे न चित्त है, न अज्ञान है न संसार है, केवल अद्वैत मात्र हैं, तहां एक कहां, अरु अद्वैत कहां, केवल मात्र पद है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब अहं त्वं (चित्त फुरणा) सब नष्ट हो जावैगा, बहुरि भ्रम दृष्ट न अवैगा ॥ हे राजन्! आत्माते इतर जो कछु भासता है, सो अज्ञान-करिकै है, विचार कियेते नहीं रहता ॥ राजोवाच ॥ हेभगवन्! अज्ञान क्या है, अरु नाश कैसे होवे सो कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! एक ज्ञान है, अरु एक अज्ञान है, ज्ञान यह कि पदार्थको प्रत्यक्ष जानना, अरु अज्ञान यह कि पदार्थको न जानना, अरु एक ज्ञान भी अज्ञान है, सो श्रवण करु, मृगतृष्णाका जल देखकर आस्था करणी जो है, अरु जेवरीविषे सर्प, सीपीविषे रूपा देखना अरु तिसको सत्य जानना, यह ज्ञान भी अज्ञान है, काहेते कि सम्यक्‌दर्शी होकारि नहीं देखता, यह दृष्टांत है, अरु दार्ष्टांत यह है, जो शुद्ध आत्मा निरा-कार अच्युत है, तिसविषे मैं हौं, अरु मेरा अमुक वर्णाश्रम है, अरु नानाप्रकार विश्व जानना, यह ज्ञान भी अज्ञान है, अरु मूर्खता है ॥ हे राजन्! न कोऊ जन्मता है, न कोऊ मृत होता है, ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है, तिसविषे जन्म मरण आदिक विकार देखना, ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है ॥ हे राजन्! जैसे कोऊ ब्राह्मण होवे, अरु ऊंची बाहुकारि कहै, मैं शूद्र हौं, मेरे ताईं वेदका अधिकार नहीं अरु जैसे कोऊ पुरुष कहै, मैं मुआ हौं, तिसको मैं जानता हौं, तैसे आपको कछु वर्णाश्रमका अभिमान लेकारि कहना सो मूर्खता है, काहेते कि असम्यक्‌दर्शन है, जब ज्योंका त्यों जानै, तब दुःखी न होवै ॥ हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक्‌दर्शनकारि नष्ट हो जावै सो अज्ञान है, जैसे सूर्यकी किरणों विषे जलबुद्धि होती है, किरणके ज्ञानते जलका ज्ञान नष्ट हो जाता है सो जलका जानना अज्ञान था, जैसे जेवरीविषे सर्प जानना सो सर्पका ज्ञान जेवरीके ज्ञानते नष्ट हो जाता है, यह अज्ञान है, सम्यक्‌दर्शनकरिकै नष्ट होता है, जब ऐसा सम्यक्‌दर्शी होवैगा, तबआध्या त्मिक ताप निवृत्त हो जावैगा, अरु शुद्ध होवैगा, जो आत्मा है, अज है, अरु शांतरूप है, सत् असत् सर्व अत्मा है, तिसते इतर कछु नहीं,

अरु प्रकाशरूप है सो ऐसा तू है ॥ हे राजन्! अज्ञान भी अपर कोऊ नहीं इस चित्तके उदय होनेका नाम अज्ञान है, अज्ञानका कारण चित्त है, अरु जो पदार्थ चित्तकारिके उदय हुआ है, सो नष्ट भी चित्तकारिके होता है ताते तू चित्तरिके चित्तको नाश कर, जैसे अग्नि पवन कारिके उपजता है, अरु पवनहीकारि शांत होता है, तैसे चित्तकारि चित्तको नष्ट करु ॥ हे राजन्! न तू है, न मैं हौं, न इंद्रिय हैं, न संसार है, न यह जगत् है, केवल शुद्ध आत्मा है ॥ हे राजन्! जो चित्तही नहीं, तौ चित्तका कार्य विश्व कहां होवै, यह अज्ञानीको भासता है, जो चित्त है, अरु विश्व है, केवल अपने आपविषे आत्मा स्थित है ॥ हे राजन्! चित्तका उदय होना अज्ञानते है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब चित्त अरु अहं त्वं सर्व नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजन्! तू शुद्ध आत्मा है, एक है अरु प्रकाशरूप है, अच्युत है, अरु निरंतर है, अरु देह इंद्रियादिकरूप होकारि भी तूही स्थित भया है, इच्छा अनिच्छा भी तूही है, जैसे चंद्रमाकी किरणैं चंद्रमाते भिन्न नहीं, तैसे तू है, अरु निर्विकल्प हैं, कछु फुरणा तेरे विषे नहीं, तू केवल ज्योंका त्यों स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

शिखरध्वजबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभमुनिने कहा, तब शिखरध्वज श्रवण कारिकै शांतिको प्राप्त भया, नेत्र मूँदिके सब अंगकी चेष्टाते रहित हुआ, जैसे शिला ऊपर पुतली लिखी होवै, तैसे स्थित हुआ, एक मुहूर्तपर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा, अरु बहुरि उठा तब कुंभने कहा ॥ राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है, तिस निर्विकल्प शिलाविषे तैने शयन किया, अरु ज्ञेय जो जाननेयोग्य है सो तैने क्या जानाहै तेरा अज्ञान अब नष्ट भया, अथवा नहीं भया, अरु शांतिको प्राप्त भया, अथवा नहीं भया,

सो कहु ॥ राजोवाच ॥ हेभगवन्! तुम्हारी कृपाते मैं उत्तम पदको प्राप्त भया हौं ॥ हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताके संगते जो अमृत पाताहै, सो क्षीरसमुद्रते भी नहीं पाता अरु देवताविषे भी नहीं पावता, तुम्हारी कृपाते मैं ऐसे अमृतको पाया है, जिसका आदि अंत कोऊ नहीं, अनंत है, अरु अमृतसार है, अब मेरे दुःख सर्व नष्ट होगये हैं, अब मैं जागा हौं अरु अपने आपको जाना है, मैं आत्मा हौं, मेरेसाथ चित्त कोउ नहीं, मैं केवल अपने आपविषे स्थित हौं अब इच्छा मेरे ताईं कोऊ नहीं, अपने स्वभावको पाया है, अरु सर्वके आदिपदको प्राप्त भया हौं, जिस विषे क्षोभ कोऊ नहीं, ऐसे निर्विकल्प पदको प्राप्त हुआ हौं ॥ हे भगवन्! ऐसा मेरा अपना आप है, जिस करि सर्व प्रकाशते हैं, तिसके जानेविना कोटि जन्म पाये थे, अब दुःख मेरे नाश भये हैं, तुम्हारी कृपाते एक क्षणविषे जाना है, आगे श्रवण भी करता, सो कारण कौन था, जो आगे न जाना, अरु अब जाना है ॥ कुंभ उवाच हे राजन्! तेरे कपाय अब परिपक्क हुए हैं, जैसे फल परिपक्क होता है, तब यत्नविना वृक्षते गिर पड़ता है, तैसे तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है, अब अज्ञान तेरा नष्ट होगया है, जब अंतःकरण मलिन होता है, तब संतके वचन नहीं लगते, अरु जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब संतके वचन लगते हैं, जैसे कोमल भिहको बाण लगै, तब शीघ्रही बेधाजाता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे शीघ्रही उपदेश प्रवेश करता है ॥ हे राजन्! अब भोगकी तेरी वासना नष्ट भई है, अरु स्वरूप जाननेकी इच्छा भई है, ताते तू जागा है ॥ हे राजन्! मैं उपदेश तब किया है, जब तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है, अरु प्रतिबिंब भी तहां पडता है? जहां निर्मल ठौर होती है, जैसे श्वेत वस्त्रके ऊपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु रंग भी उज्वल होता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे संतके वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं अरु शोभा पाते हैं हे राजन्! जबलग अंतःकरण मलीन होता है, भावै जेता उपदेश करिये तोऊ स्थित नहीं होता, जब भोगते वैराग्य होता है तब वासना कोई नहीं रहती, केवल आत्मपदकी इच्छा होती है तब

स्वरूका साक्षात्कार होता है हे राजन्! अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ है, अरु अज्ञान नष्ट भया है, जो अपर उपाधि कोई नहीं, चित्तकी बडी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ, तब दुःख कोई नहीं रहता, अब तू सुखेन विचरु, तुझको दुःख कोई नहीं, शोक अरु भय कोई नहीं, तू शांतिपदको प्राप्त भया है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञानीको चित्तका सम्बन्ध है अरु ज्ञानवानको चित्तका संबंध नहीं होता,जोस्वरूपविषेस्थित है तौ चित्तविना जीवनमुक्ति क्रियाविषे कैसे वर्तता है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्!तू सत्यकहाताहै,कि ज्ञानीको चित्तका संबंध नहीं;जैसे पत्थरकी शिलाविषे अंगुरी नहीं होती, तैसे ज्ञानीका चित्तका संबंध नहीं होता ॥ हे राजन्! चित्त वासनारूपहै सो वासना जन्ममरणका कारणहै,अरु जीवन्मुक्तकी वासना नहीं रहती, ज्ञानवान्का चित्त सत्य पदको प्राप्त है, अरु अज्ञानी चित्तविषे बंधमान है, तिस करिकै जन्मता भी है, अरु मरता भी है, अरु जो ज्ञानीका चित्त शांतिविषे स्थित है, तिसको न बंध है, न मोक्ष है, प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है, अरु सर्वात्मही देखता है, यद्यपि इंद्रियोंकारि चेष्टा भी करता है, तौ भी सर्व ब्रह्मही देखता है, अरु क्रिया करणेविषे अभिमानते रहित होता है, जो मैं करता हौं, अरु भोगता हौं, अरु अज्ञानी आपको करता मानता है, तिसको संसार सत्य भासता है, सत्य जानकारि संकल्प विकल्प करता है, अरु ज्ञानवान्को संसारकी सत्यता नहीं भासती, आपको अकर्ता अभोक्ता देखता है, अरु अभिलाषते रहित चेष्टा करता है ॥ हे राजन्! संसारको सत्य जानना, अरु अपनेविषे क्रिया देखनी तबलग होती है जबलग चित्तका संबंध होता है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब संसार अरु फुरणा कहां रहै ॥ हे राजन्! अब चित्तका तैंने त्याग किया है, तातै सर्वत्यागी भया है, अरु आगे सर्व त्याग न किया था जिससे अज्ञान नष्ट न भया था, अब अहंभाव तेरा दूरभया है, जो अज्ञानका कार्य था, जब अज्ञान नष्टभया, तब अहंभाव न रहा, अहंके त्याग करनेतेसर्वत्याग सिद्ध हुआ, अरु आगे तैंने राज्यका त्याग किया था; सो राज्यविषे तेरा कछु न था; बहुरि तमका त्याग किया, बहुरि वनते आदि सर्व सामग्रीका

त्याग किया, अब तिसका त्याग किया जो त्यागने योग्य अहंभाव है, ताते सर्व त्याग भया, अरु जो कछु जानने योग्य है, सो जाना है, अरु शांतपदको प्राप्त भया है ॥ हे राजन्! तू आत्मा है, सर्व दुःखते रहित है, जैसे मंदराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतपदको प्राप्त भया है, तैसे तू अज्ञानते रहित शांतपदको प्राप्त भया है, अब तू जागा है, अरु चित्तका त्याग किया है, ताते सर्व आत्मा अद्वैत भया है ॥ हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं, तब तिनकी संज्ञा नानाप्रकारकी होती है, कि अमृत विष अरु सुख दुःख अरु धर्म अधर्म यह होते हैं, जब एकाएकी अक्षर होता है, तब सर्वका आत्मा है, तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है, अरु सत्यपदको प्राप्त भया हैं, अरु शुद्ध निर्मल है ॥ हे राजन्! जो ज्ञानवान् है, सम्यक् दृष्टिकरिकै तिस चित्तका त्याग किया है, बहुरि तिसको दुःख कोऊ नहीं होता, सो तू तिस पदको प्राप्त भया है, जिस-विषे दुःख कोऊ नहीं, अरु तिस पदको प्राप्त भया है, जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं; स्वर्गविषे भी क्षय अतिशय होता है अतिशय कहिये जो बडे पुण्यवाला आपसों ऊँचा देखता है, तब चाहता है, कि, मैं भी इसी जैसा होऊं अरु क्षय कहिये मत इन सुखसों गिरौं, दोनों प्रकार दुःख होता है, सो पुण्य पाप दोनोंका तैंने त्याग किया है, ताते तू सर्व त्यागी है, अरु अज्ञानी जो पापीजीव हैं, तिनको स्वर्ग भी भला है, जैसे स्वर्णका पात्र न पाइये तौ पीतलका भी भला है, तैसे स्वर्णका पात्र जो ज्ञान है, जब-लग प्राप्त न होवै, तबलग पीतलका पात्र जो स्वर्गादिक हैं, सो नरकते भले हैं, अरु तुम सारखेको कछु नहीं, जो आत्माविषे सर्व पदार्थकी पूर्णता है, अरु सर्वकी उत्पत्ति आत्माते है ॥ हे राजन्! वर्णाश्रमविषे क्या अवस्था करणी है, जहांते इनकी उत्पत्ति है, अरु जहां लीन होते हैं, अरु मध्यविषे जिसके अज्ञानते दृष्ट आते हैं, तिसविषे स्थित होइये जिसके ज्ञानते सर्व लीन हो जाते हैं ॥ हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं, तिनविषे स्थित मत होहु, जिसविषे उत्पन्न अरु लीन होतेहैं, तिसविषे स्थित होहु, अरु तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जिसकरि तपादिक सिद्ध होते हैं, तिसविषे स्थित होहु, बूँदविषे क्या

स्थित होना है जिस मेघते बूँद उत्पन्न होती है, तिसविषे स्थित होइये ॥ हे राजन् ! जैसे स्त्री होवै, अरु भर्त्ताते कोऊ पदार्थ चाहै, अरु आप न कहै, तैसे तपादिक क्रियाकरि क्या सिद्ध होता है, जो तिनकरि आत्मपदकी इच्छा करै, तौ इनकरि प्राप्त नहीं होता, अपने आपकरि पाता है ॥ हे राजन् आत्मा तेरा अपना आप है, तिसकरि सर्व सिद्ध होता है, जो वस्तु पाछे त्याग करणी होवै, तिसको ज्ञानवान् प्रथमही अंगीकार नहीं करता अरु जेता कछु तपादिक धंधा है, तिनको चित्तकरि क्या रचता है, अपने आपको देख जो अनुभवरूप है, अरु सर्वदा निरंतर अपने आपविषे स्थित है, जब तू अपने आपकरि आपको देखैगा, तब तपादिक क्रियाको दूर करिकै शोभा पावैगा, जैसे बादलके दूर भये चंद्रमा प्रकाशवान् शोभा पाता है, तैसे तू भी भोगकी चपलताको त्यागिकरि शोभा पावैगा, जब इंद्रियोंको जीतैगा, अरु किसी पदार्थविषे आसक्त न होवैगा, अरु सर्व वासनाका त्याग करैगा, तब ज्ञानवान् होवैगा, अरु जिसने सर्व वासनाका त्याग किया है, तिसको विष्णु जानना; जो सब राज्यका स्वामी है, जिसने मन जीता है सो चेष्टाविषे भी ज्योंका त्यों रहता है, अरु समाधिविषे भी ज्योंका त्यों है, जैसे पवन चलने अरु ठहरनेविषे तुल्य है, तैसे ज्ञानवान्को कहूँ खेद नहीं होता ॥ राजोवाच ॥ हे सर्व संशयके छेदनेहारे स्पंद अरु निस्पंदविषे ज्ञानी ज्योंका त्यौं कैसे रहता है, सो कृपाकरि कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! चेतन आकाश है सो आकाशते भी निर्मल है, जब तिसका साक्षात्कार हुआ, तब जहां देखै तहां चेतनहो भासता है, जैसे समुद्रके जाननेते तरंग बुद्बुदे सर्व जलही भासता है, तैसे चित्तविना आत्माके देखे हुए फुरणेविषे भी आत्माही दृष्टि आता है, अरु जिसने आत्माको नहीं जाना, तिसको नानाप्रकारका जगतही भासता है, जैसे जलके जानने विना तरंग बुद्बुदे भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं, अरु जलके जाननेते तरंग भी जलमय भासते हैं ॥ हे राजन् ! सम्यक्दर्शीको जगत् आत्मस्वरूप है, असम्यक्दर्शीको जगत् है, ताते तू सम्यक्दर्शी होकरि देख कि जगत् भी आत्मरूप है, अरु सम्यक्दर्शन जैसे प्राप्त होता है, सो श्रवण करु; संत-

का संग करना अरु सच्छास्त्रका विचार करना जब दृढ भावना करिये तब केते कालते स्वरूपका साक्षात्कार होता है. कालकी अपेक्षा दृढ विचारके निमित्त कही है, जब दृढ विचार होता है, तब साक्षात्कार होताहै, जब स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, तब स्पंद निस्पंदविषे एक समान होता है ॥ हे राजन्! जिसके समीप माखी होवै, सो माखीके निमित्त पर्वत क्यों खोजै अरु दौड़ै, तैसे तेरे घरविषे ब्रह्मवेत्ता चूडाला थी, तिसका त्यागकरि तैंने वनविषे आय तपका आरंभ किया, ताते बड़ा कष्ट पाया परंतु अब तू जागा है, अरु दुःख तेरे नष्ट भये हैं, अब तू शांतिपदको प्राप्त भया है, जैसे जेवरीके न जाननेकरि सर्प भासता है, अरु भली प्रकार जाननेते जेवरीही भासती है, तैसे जिसने भली प्रकार निस्पंद होकरि अपना आप देखा है, तिसको फुरणेविषे भी आत्माही भासता है, जब मनकी चपलता मिटती है, तब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, जिस पदको वाणी विषयकरि नहीं सकती ॥ हे राजन्! तू भी तिसी पदको प्राप्त भया है, जो मन अरु वाणीते रहित है, अरु तुरीयातीत पद है, जहाँ क्षोभ कोऊ नहीं शांतिपद है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधवर्णनं नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब राजाको कुम्भमुनिने ऐसे उपदेश किया, तिसके उपरांत कहा ॥ हे राजन्! अब हम स्वर्गको ब्रह्माजीके पास जाते हैं, वहां देवतोंकी सभाविषे नारदमुनि आया है; जो मेरे तांई न देखेगा, तो क्रोध करैगा ॥ हे राजन्! जो कल्याणकृत पुरुष हैं, सो बड़ेकी प्रसन्नता लेते हैं, ताते मैं जाता हौं अरु जो तेरे तांई उपदेश किया है, तिसको भली प्रकार विचारना, अरु सर्व शास्त्रोंका सार यही है कि, संपूर्ण वासनाका त्याग करना, किसीविषे चित्तको बंधमान नहीं करना, मेरे आवनेपर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहना, अपर किसी

चेष्टाविषे नहीं लगना, अरु स्वरूपको भली प्रकार जानिकरि भावै तैसे विचरहु ऐसे कहिकरि कुम्भमुनि उठ खड़ा हुआ, तब राजाने अर्घ्य अरु फूल चढ़ावनेके निमित्त हाथविषे लिये, सो जल फूल हाथविषे रहे, और कुम्भमुनि अंतर्धान होगया, जब राजा कुम्भमुनिको अपने आगे न देखत भया, तब विचार करने लगा, देखो ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती कि, नारदमुनि कहां था, अरु तिसका पुत्र कुम्भमुनि कहां, अरु मैं राजा शिखरध्वज कहां, नीतिहीने कुम्भमुनिका रूप धारिकरि मुझको आय जगाया है, अरु कुंभ बडा मुनि दृष्ट आया, जिसने मेरेको उपदेश करि जगाया है, अब मैं अज्ञानरूपी गर्तसों निकसा हौं, अरु स्वरूपको प्राप्तभया हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं, अरु निर्दुःख पदविषे स्थित भया हौं, अरु अज्ञान निद्राते जागा हौं बड़ा आश्चर्य है॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि राजा शिखरध्वजने संपूर्ण इंद्रियां अरु प्राण मन स्थित किया, अरु चेष्टाते रहित भया, जैसे शिलाके ऊपर पुतली लिखी होती हैं, जैसे पर्वतका शिखरस्थित होता है, तैसे स्थित भया अरु वहां चूडाला कुम्भरूप शरीरका त्यागकरि अरु चूडालाका सुन्दर रूप धारिकरि उड़ी आकाशको लंघिकरि अपने नगरविषे आवत भई, अरु अंतःपुरमें जहां स्त्री रहती थी, तहां प्रवेश किया, अरु मन्त्रीको आज्ञा-करी कि, तुम अपने अपने स्थानविषे स्थित होउ, अरु रानी राजाके स्थानविषे स्थित भई, भली प्रकार प्रजाकी खबर लीनी, तीन दिन रहि-कारि बहुरि उड़ी जहाँ राजा वनविषे था, तहां आय प्राप्त भई, अरु कुम्भका रूप धारिकरि देखा कि राजा समाधिविषे स्थित है, देखिकरि बहुत प्रसन्न भई॥ हे रामजी ! ऐसे प्रसन्न होकारि चूड़ाला विचारत भई बड़ा सुखकार्य हुआ, जो राजाने स्वरूपविषे स्थिति पाई, अरु शांतिको प्राप्त भया बहुरि विचार किया, कि इसको जगावौं, तब सिंहकी नाईं गर्जी अरु बड़ा शब्द किया, तिस शब्दकरिकै जेते वनके पशु पक्षी थे, सो सर्व भयको प्राप्तभये, परन्तु राजा न जागा, बहुरि हाथ करिकै हिलावती भई, तौ भी राजा न जागा, जैसे मेघके शब्दकरि पर्वतका शिखर चलायमान नहीं होता, तैसे राजा चला-यमान न भया, काष्ठ अरु पाषाणकी नाईं स्थित रहा, तब रानीने विचार

किया कि, राजा शरीरको त्यागि न देवै तौ भला, अरु जो राजाने शरीरका त्याग किया होवै, तौ मैं भी त्यागौंगी ॥ हे रामजी ! चूडालाने शरीर न त्यागा, परंतु आरंभ करने लगी कि राजा अरु मैं इकट्ठा शरीर त्यागें है, बहुरि विचार करने लगी कि, इसकी भविष्यत् क्या होनी है तब राजाके नेत्रपर हाथ लगाया, अरु देहसाथ देहका स्पर्श किया, तब देखा कि, प्राण राजाके शरीरविषे हैं, अरु भविष्यत्का भी विचार किया, कि इसका सत्त्व शेष रहता है, जीवन्मुक्त होकारि राज्यमें विचरणा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा कि राजा काष्ठ अरु पाषाणकी नाईं स्थित भया, बहुरि कहा कि हाथ लगायकारि देखा कि इसविषे प्राण हैं, जीवता है, तौ कुंभने क्योंकारि जाना यह मुझको संशय है, सो दूर करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस शरीरविषे पुर्यष्टका होतीहै, तिसविषे हरियावलता होती है॥हे रामजी ! अज्ञानीका चित्त रहता है, अरु ज्ञानीका सत्त्व रहता है, जो प्रारब्धवेग कारिके फुरता है, अरु ब्रह्माकार वृत्ति होती है, अरु अज्ञानीका चित्त फुरणेकारिके बहुरि शरीर पाता है, अरु ज्ञानी इष्टअनिष्टविषे एक समान रहता है, अरु अज्ञानी एक समान नहीं रहता, इष्टविषे प्रसन्न अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान् होता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानी जब शरीरको त्यागता है, तब ब्रह्मसमुद्रविषे स्थित होता है, अरु जबलग सत्त्व शेष है, तबलग फुरता है अरु अज्ञानी शरीरको त्यागता है, तब तिसविषे सूक्ष्म संसार होता है जैसे बीजविषे वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता कारिके स्थित होते हैं, सो काल पायकारि बहुरि निकसता है, तिसीप्रकार राजाका सत्त्व शेष रहा था, तिस कारिके बहुरि फुरैगा, तब कुंभरूप चूडालाने विचार किया कि, इसके अंतर प्रवेश कारिके जगावौं, जो मैं न जगावौंगी, तौ भी नीति कारिके इसको जागना है, ताते मैं ही जगावौं ऐसे विचार कारिके अपने शरीरका त्याग किया, चेतनाविषे स्थित होकारि अरु फुरणेको लेकारि उस विषे जाय प्रवेश किया, प्रवेश कारि उसकी जो चेतनता सत्त्व शेष था, उसको छोड़त भई. बड़ा क्षोभ किया, जब राजा वहांते हिला, तब आप निकस आई, अरु अपने शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पखेरू आकाशविषे

उड़ता है, बहुरि आलयविषे आय प्रवेश करता है, तैसे अपने शरीरविषे आनि स्थित भई, अरु सामवेदका महासुंदर स्वरसाथ गायन करने लगी, तब राजाने श्रवण किया, अरु जानत भया कि, कोऊ सामवेद गाता है, ऐसे श्रवण कारि जागा, अरु देखा कि, कुंभमुनि बैठा है, देखकर बहुत प्रसन्न भया, तब फूल जल चढाया अरु कहा॥ हे भगवन्! मेरे बडे भाग्य हैं, देखकारि बहुत प्रसन्न भया, जो तुम्हारा दर्शन हुआ॥हे भगवन्! कुलरूपी जो कुलाचल पर्वत है, तिसविषे जो देहरूपी वृक्ष है, सो अब फूला है, तुमने हमको पावन किया है॥ हे भगवन्! किसीकी समर्थता नहीं, जो तुमसारखेके चित्तविषे प्रवेश करै, जिसविषे सर्वदा आत्माका निवास है, तिस चित्तविषे मेरी स्मृति हुई है, जो दर्शन किया है, ताते मेरे बड़े भाग्य हैं॥ हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंकारि तुमने प्रथम मेरे ताईं पवित्र किया था, अरु अब जो चित्त किया है, सो मेरे ताईं पावन किया है॥ कुंभ उवाच॥ हे राजन्! तेरे दर्शन करिकै मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हौं, अरु तुम्हारी जैसी प्रीति मैं आगे किसीकी नहीं देखी॥ हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गते आया हौं, स्वर्गके सुख मेरे ताईं भले न लगैं, अरु तू मेरे ताईं बहुत प्रीतम है, इसी निमित्त मैं आया हौं, अब स्वर्गविषे भी नहीं जाता, तेरेही पास रहौंगा॥ राजोवाच॥ हे भगवन्! जिसके ऊपर तुमसारखेकी कृपा होती है, तिसको स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते तौ तुम सारखेकी बात क्या कहनी है, यह वन है, यह झुपडी है, इसविषे विश्राम करो, मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुम्हारा चित्त यहां रहनेका भया है॥ कुंभ उवाच॥हे राजन्! अब तेरे ताईं शांति प्राप्त भई है, अरु संकल्पबीज नष्ट भया है, जैसे नदीके किनारेपर वल्ली होती है, अरु जलके प्रवाहकारि मूलसमेत गिरती है, तैसे तेरा संकल्पबीज नष्ट भया है, अब तू यथाप्राप्तिविषे संतुष्ट हुआ है, कि नहीं हुआ, हेयोपादेयते रहित हुआ है कि नहीं हुआ अरु जो पाने योग्य पद है सो पाया है,कि नहीं पाया, अपना अनुभव कहु॥राजोवाच॥ हे भगवन्! तुम्हारी कृपाते सर्वसों श्रेष्ठ पद मैं पाया हौं, जहां संसारसीमाका अंत है, अरु अब मेरे ताईं उपदेशका अधिकार नहीं रहा, जो संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं

हेयोपादेयते रहित हौं, इसकरि सुखी विचरता हौं, अरु जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जाना है, अब दुःख मेरेविषे कोऊ नहीं, सर्व ठौर मैं तृप्त हौं, अनीति प्राप्तरूप हौं, अरु आत्मा हौं, निर्मल हौं अरु अपने स्वभावविषे स्थित हौं, अरु सर्वात्मा हौं, निर्विकल्प हौं मेरेविषे फुरणा कोऊ नहीं, मैं शांतरूप हौं, अरु चिरपर्यंत सुखी हौं ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी ! इस प्रकार राजा अरु कुंभका तीन मुहूर्त संवाद हुआ, तिसते उपरांत दोनों उठ खड़े हुये, अरु चले; निकट एक तालाब था, जहां बहुत कमलिनी थीं, तहां आयकरि दोनों स्नान करत भये, अरु गायत्री संध्या करी, पूजा करिके बहुरि वहांते चले, वनकुंजोंविषे आये तब कुंभने कहा, चलिये राजाने कहा, भली बात है, चलिये. तब चले, बहुत नगर देश ग्राम अरु तीर्थ देखे, अरु नानाप्रकारके वनविषे विचरे जो फूल फल संयुक्त थे, तिनविषे विचरे अरु मरुस्थलविषे विचरे ॥ हे रामजी ! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानोंविषे विचरे, तीर्थादिक सात्विकी स्थान हैं, अरु सुंदर वन आदिक राजसी स्थान हैं, अरु मरुस्थल आदिक तामसी स्थान हैं, तिनविषे विचरे, तोभी हर्षशोकको न प्राप्त भये, समताविषे रहे ॥ हे रामजी ! कुंभका प्रयोजन फिरणेका यह था कि राजा शुभ अशुभ स्थानोंको देखिकरि हर्ष शोक करैगा, अथवा न करैगा, तौ भी राजा हर्षशोकको न प्राप्त भया, बहुरि बड़े पर्वतकी कंदरा देखीं, अरु वन कुंज बड़े कष्टके स्थान देखे, अरु एक वनविषे जाय स्थित भए, केतेक कालविषे राजा अरु कुंभ एक जैसे हो गये, इकट्ठेही स्नान करैं, अरु एक जैसी मूर्तियां, अरु एक जैसे जाप जपैं, एक जैसी पूजा करैं, अरु एक जैसे दोनों शुद्ध भए, जो उपकारकी अपेक्षाविना उपकारी भये, किसी ठौर माटी शरीरको लगावैं किसी ठौर चंदनका लेप करैं, किसी ठौर शरीरको भस्म लगावैं, किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरैं किसी ठौर केलेके पत्र ऊपर सोवैं, किसी ठौर फूलकी शय्यापर सोवैं, किसी ठौर क्रूर स्थानोंविषे शयन करैं ॥ हे रामजी! ऐसे शुभ अशुभ ठौरविषे भी दोनों ज्योंके त्यों रहैं, जो हर्षशोकको न प्राप्त भए, केवल सत्त्व शुद्धविषे स्थित रहैं, आत्माविना अपर कछु न फुरा, एक वनविषे जाय स्थित भये,

तब राणीके मनविषे विचार हुआ कि, यह मेरा भर्त्ता है, मैं इसको भोगों, हमारी अवस्था है, जो भले कुलकी स्त्री हैं, सो भर्त्ताको प्रसन्न रखती हैं, अरु राजाका शरीर भी देवता जैसा हुआ है अरु स्थान भी शुभ है, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी साथ हैं, अरु बहुरि विचार किया कि, राजाकी परीक्षा भी करौं कि, क्या कहैगा तब कुंभने कहा, हे राजन् ! अब हम स्वर्गको जाते हैं, जो चैत्र शुद्ध एकमको ब्रह्माजीने सृष्टि उत्पन्न करी है, इसी दिन वर्षके वर्ष उत्सव होता है, अरु नारदमुनि भी आवैगा, ताते हम जाते हैं, अरु आजही फिरि आवैंगे, मेरे आनेपर्यंत तुम ध्यानविषे रहना, अरु ध्यानते उतरौ तब फूलको देखना, ऐसे कहिकारि फूलोंकी मंजरी राजाको दीनी, अरु राजाने भी कुंभको फूलकी मंजरी दीनी, जैसे नंदनवनविषे स्त्री भर्ताके हाथ देवै अरु भर्त्ता स्त्रीके हाथ देवै तैसे दोनों परस्पर देते भए, बहुरि कुंभ आकाशको उडा, अरु पाछे राजा देखता रहा, जैसे मेघको मोर देखता है, तैसे राजा देखता रहा, जेतेपर्यंत राजाकी दृष्टि पडती थी, तबलग कुंभका शरीर रक्खा, जब दृष्टिसों आकाशविषे अगोचर भया, तब फूलकी माला जो गलेविषे थी, सो तोड़िकारि राजाके ऊपर डारि दीनी अरु चूडालाका शरीर धारि आकाशको लंघिकारि अपना अंतःपुर जो था स्त्रीका स्थान, तहां आय प्राप्त भई, अरु राजाके स्थानपर बैठिकारि मंत्रीको बुलाया, अपने अपने स्थानोंविषे स्थित किये, अरु प्रजाकी खबर लीनी, बहुरि उड़ी सूर्यके किरणोंके मार्ग मेघमंडलको लांघती आई, जहां राजाका स्थान था तहां आयकारि देखा कि, राजा बिछुरेकरि शोकवान् है, अरु कुंभ भी दिलगीर जैसा राजाके आगे आय स्थित भया, तब राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! शोक तुम्हारे ताईं कैसे प्राप्त भया है, ऐसा कष्ट मार्गविषे तुम्हारे ताईं कौन हुआ है, अरु सर्व दुःखका नष्ट करनेहारा ज्ञान है, जो तुमसारखे ज्ञानवान्को शोक होवै तौ अपरकी क्या बात कहनी है ॥ हे मुनी ! तुम्हारे ताईं दुःखका कारण कोऊ नहीं, तुम क्यों शोकवान् होते हौ, अरु तुम्हारे ताईं कवन अनिष्ट प्राप्त भया है, तब कुंभने कहा ॥ हे राजन् ! मेरे ताईं एक दुःख

हैं सो कहता हौं, जो मित्र पूछे तौ सत् कहना चाहिये, अरु दुःख भी नष्ट होता है, जैसे मेघ जड अरु श्याम भी होता है, अरु उसका सज्जन जो है, क्षेत्र अरु पृथ्वी, तिस ऊपर वर्षा करता है, तिसकी जड़ता अरु श्यामता नष्ट होतीहै, ताते मैं तेरे ताईं कहता हौं, हे राजन्! जब स्वर्ग-विषे सभा स्थित थी, तब मैं नारदके पास था, जब सभा उठी, तब नारदमुनि भी उठा, अरु मुझको कहा, जहां तेरी इच्छा होवै तहां जाहु, अरु मैं भी जाता हौं, काहेते कि, नारद एकही ठौरविषे नहीं ठहरता, विश्वविषे सैर करता फिरता है, इसीते मेरे ताईं कहा कि, तू भी जाहु, तब मैं आकाशते चला, एक ठौर सूर्यसाथ मिलाप हुआ, बहुरि आगेको चला, मेघके मार्ग तीक्ष्ण वेगकरि चला आया हौं, जैसे नदी पर्वतते तीक्ष्ण वेगकरि आती है, तैसे मैं तीक्ष्ण वेगकरि चला आता था, तब दुर्वासा ऋषीश्वर उड़ता आता है, महामेघकी नांईं श्याम वस्त्र पहिरे हुए, अरु भूषणसंयुक्त जैसे बिजलीका चमत्कार होता है, तैसे भूषणोंका चमत्कार देखकरि मैं दंडवत् करिकै कहा ॥ हे मुनीश्वर! तुम क्या रूप धारा है, जो स्त्रीकी नांईं भासता है, तब दुर्वासाने मेरे ताईं कहा ॥ हे ब्रह्मपौत्र! तू कैसा वचन कहता है, ऐसा वचन मुनीश्वर प्रति कहना उचित नहीं, हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्रविषे बोइये तैसा उगता है, ताते मेरे ताईं स्त्री तैंने कहा है, तू भी स्त्री होवैगा, अरु रात्रिको तेरे अंग सब स्त्रीके होवैंगे ॥ हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको नम्रता होती है, जैसे फलसंयुक्त वृक्ष नम्र होता है, तैसे ज्ञानी भी नम्र होता है, ऐसा वचन तेरे ताईं कहना न चाहिये ॥ हे राजन्! ऐसे श्रवण करिकै मैं तेरे पास चला आया हौं, अरु मेरे ताईं लज्जा आती है, कि स्त्रीका शरीर धारे देवतोंविषे कैसे विचरौंगा, यही मुझको शोक है, तब राजाने कहा, क्या हुआ, जो दुर्वासाने कहा, अरु स्त्रीका शरीर भया, तुम तौ शरीर नहीं, आत्मा निर्लेपहै, किसीसाथ लेप नहीं ॥ हे मुनीश्वर! तुम अपनी समताविषे स्थित रहते हौ, अरु ज्ञानवान् पुरुषको हेयोपादेय किसीका नहीं रहता, अपनी समताविषे स्थित रहता है, तब कुंभने कहा ॥ हे राजन्! तू सत्य कहता है, मेरे ताईं

क्या दुःख है, जो शरीरका प्रारब्ध है, सो होता है, तिससाथ हमारा क्या प्रयोजन है, यह ईश्वरकी नीति है, जबलग शरीर होता है, तबलग शरीरके स्वभाव भी रहते हैं, अरु शरीरका स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है, जिस स्थानविषे ज्ञानकी प्राप्ति होवै तिसी चेष्टाविषे विचरिये, अरु यह भी मूर्खता है, कि इंद्रियोंको रोकना, अरु मनकरि विषयकी चिंतना करनी, ताते इंद्रियां अरु देहकी चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं, परंतु तिसविषे बंधमान नहीं होते, इंद्रियां विषयविषे वर्तती हैं, आदि नीति ईश्वरकी इसी प्रकार है ॥ हे राजन् ! नीतिका त्याग किसीते किया नहीं जाता, ताते नीतिका त्याग क्यों करिये ? यह नीति है कि, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जैसे जबलग तिल है, तबलग तेल भी होता है, तैसे जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देह इंद्रियोंकारि चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान नहीं होते, हैं, अरु अज्ञानी बंधायमान होते हैं, अरु चेष्टा ज्ञानी करते हैं, अज्ञानी भी करते जैसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि ज्ञानवान् हैं, सर्व चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान किसीकारि नहीं होते ॥ हे राजन् ! तैसे जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै, अरु जिसको शास्त्र प्रमाण करै, तिसके भोगणेविषे दूषण कछु नहीं ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानवान्को दूषण कछु नहीं, जो सत्ता समानविषे स्थित है, तिस कारिके दूषण कछु नहीं होता, अरु अज्ञानी शरीरके दुःख अपने विषे देखता है, तिसकारि दुःखी होता है, अरु ज्ञानवान् शरीरके दुःख अपनेविषे नहीं देखता ॥ हे रामजी ! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ, तब राजा अरु कुम्भ दोनोंने सायंकालविषे संध्या करी, अरु जाप किया, जब रात्रि हुई तब तारागण निकसे. अरु सूर्यमुखी कमलोंके मुख मुदगए, तब कुम्भने कहा ॥ हे राजन् ! देख कि, मेरे शिरके बाल बढते जाते हैं, अरु वस्त्र भी गिटपर्यंत हो गये हैं, अरु स्तन भी स्त्रीकी नांई भए हैं, इत्यादिक वस्त्र भूषण जेती कछु चेष्टा है, सो स्त्रीकी हुई, तब राजाको भी शोक प्राप्त भया, अरु महासुंदर स्त्री लक्ष्मीकी नांई चूडाला होगई, तिसको देखिकारि राजाको एक मुहूर्त्त शोक रहा, तिसते उपरांत साव-

धान हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनी ! क्या हुआ जो शरीर स्त्रीका हुआ, तुम तौ शरीर नहीं, तुम आत्मा हौ, ताते शोक क्यों करिये, तुम अपनी सत्ता समानविषे स्थित होहु, तब रात्रि हुई अरु राणीने महासुंदर रूप धारे, फूलोंकी शय्या बिछाई, तिसपर दोनों इकट्ठे सोए, हे रामजी ! ऐसे रात्रि व्यतीत भई, कोऊ फुरणा न फुरा, सत्ता समानविषे दोनों स्थित रहे, अरु मुखते कछु न बोले, सोइ गए, जब प्रातःकाल हुआ तब बहुरि कुंभका शरीर धारा, स्नान किया, अरु गायत्रीते आदि जो कर्म हैं, सो किये, इसी प्रकार रात्रिको स्त्री बनि जावैं, अरु दिनको कुंभ पुरुषका शरीर धारे, जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया, तब वहांते चले अरु सुमेरु पर्वत ऊपर गए, मंदराचल अरु अस्ताचलते आदि सर्व सुखस्थानोंको देखते भये ॥ हे रामजी ! एक दृष्टिको लिये रहैं, न कोऊ हर्षवान् हुए, न शोकवान् हुए, ज्योंके त्यों रहैं, जैसे पवनकरि सुमेरुपर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंविषे समान रहैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

विवाहलीलावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचरते विचरते मंदराचलकी कंदराविषे जाय स्थित भये, तब कुंभरूप चूडाला राजाको परीक्षाके निमित्त कहत भई ॥ हे राजन् ! मैं रात्रिको स्त्री होती हौं, तब मेरे ताईं भर्त्ताके भोगनेकी इच्छा होती है काहेते कि, ईश्वरकी नीति ऐसेही हैं, कि स्त्रीको अवश्यमेव पुरुष चहिता है, अरु जो उत्तम कुलका पुरुष होता है, तिसको पिता कन्या विवाह करिकै देता है, अथवा जिसको स्त्री चाहै तिसको आप देखि लेवै ॥ ताते हे राजन् ! मेरे तांई तुझते अधिक कोऊ नहीं दृष्ट आता, तूही मेरा भर्त्ता है, अरु मैं तेरी स्त्री हौं, तू अपनी

भार्या जानिकारि जो कछु स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं, सो किया कर, मेरी अवस्था भी यौवन है, अरु तू भी सुंदर है, ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग नहीं करते; यद्यपि तुझको इच्छा न होवै, तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है, तिसको उल्लंघनेकरि क्या सिद्ध होता है, जो अपने स्वरूप सत्ताविषे स्थित है, तिसको ग्रहण त्यागकी कछु इच्छा नहीं परंतु जो नीति है, सो करी चाहिये ॥ राजोवाच ॥ हे साधो ! जो तेरी इच्छा है,सो करिये, मुझको तौ तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं, प्राप्तहोने-करि मेरे तांई सुख कछु नहीं, अप्राप्तिविषे दुःख नहीं, न कोऊ मेरे हर्ष है, न शोक है जो तेरी इच्छा होय सो करिये ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! आजही पूर्णमासीका भला दिन है, अरु यह मैंने आगे लग्न भी गिनि छोड़ा है, ताते मंदराचल पर्वतकी कंदराविषे बैठिकरि विवाह करिये, अब सामग्री इकट्ठी करिये, तब राजा अरु कुंभ दोनों उठे, जो कछु सामग्री शास्त्रकी है,सो इकट्ठी करी,अरु दोनोंने गंगापर स्नान किया अरु बेहली पूजन करि अरु वस्त्र फूल फलते आदिलेकरि जो विवाहकी साम-ग्री है, सो कल्पवृक्षसों लीनी, बहुरि फलको भोजन किया, तब सूर्य अस्त भया,दोनोंने संध्या उपासना करी, बहुरि राजाको दिव्य वस्त्र भूषण पहिराए, अरु शिरपर मुकुट पहिराया, बहुरि कुंभका शरीर त्याग किया, अरु स्त्रीका शरीर होत भया, तब स्त्रीने कहा ॥ हे राजन् ! अब तू मेरे तांई भूषण पहिराय, तब राजाने संपूर्ण भूषण फूल अरु वस्त्र पहिराए; अरु पार्वतीकी नाईं सुंदर बनाई, तब चूडालाने कहा ॥ हे राजन् ! मैं अब तेरी स्त्री हौं, अरु नाम मेरा मदनिका है, अरु तू मेरा भर्त्ता है, कामदेवते भी तू सुंदर भासता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार चूडालाने बहुत कछु कहा, तौ भी राजाका चित्त हर्षको न प्राप्त भया, अरु वैराग्यकरि शोकवान् भी न भया, ज्योंका त्यों रहा, तिसते उपरांत विवाहका आरंभ किया, चंदोआ आदि अरु वस्त्र कल्पवृक्षते लिये, अरु पास स्वर्णके कलश राखे, देवतोंका पूजन किया, इत्यादिक जो शास्त्रकी विधि थी सो संपूर्ण करी, लाँजालिया अरु मंगल किया. बहुरि संकल्प यह दिया जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी अरु राजाने

भी संकल्प किया, कि संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी, जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा अरु राणीने फूलोंकी शय्या बिछाई, शयन करिकै आपसविषे चर्चाही करते रहे, अरु मैथुन कछु न किया, जब प्रातःकाल हुआ, तब स्त्रीका शरीर त्यागिकरि कुम्भका शरीर धारा, अरु स्नान किया, संध्यादिक कर्म किये ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार एक मासपर्यंत मंदराचलपर्वतविषे रहे जो रात्रिको स्त्रीका शरीर अरु दिनको कुम्भका शरीर करैं जब तीसरा दिन होवै, तब राजाको शयन करायके राज्यकी शुद्ध आय लेवै, बहुरि राजाके पास जाय शयन करै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

मायाशक्रागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब वहांसों चले, अस्ताचल पर्वतविषे रहे, उदयाचल अरु सुमेरु कैलास पर्वत इत्यादिक जो पर्वतअरु कंदरा वनोंविषे रहे कहूँ एक मास, कहूं दश मास, कहूं पांच दिन, कहूं सप्तदिन रहे, जब एक वनविषे आये, तब राणीने विचार किया कि एते स्थान राजाको दिखाये हैं, तौ भी इसका चित्त किसीविषे बंधमान नहीं भया ताते अब अपरपरीक्षा लेउँ ऐसे विचारकरि अपनी माया पसारी तब इंद्र तेंतीसकोटिदेवतासंयुक्त किन्नर गंधर्व सिद्ध अरु अप्सरा आगे नृत्य करती आये हैं ॥ अपर भी जो कछु इंद्रकी सामग्री है, तिससंयुक्त इंद्रको देखकर राजा उठा, बहुत प्रीतिसंयुक्त इंद्रकी पूजा करी, अरु कहा, हे त्रैलोक्यकेपति ! तुम्हारा आना इस वनविषे कैसे हुआ है, सो कहौ तब इंद्रने कहा ॥ हे राजन् ! जैसे पक्षी होता है, अरु ऊर्ध्वको उड़ता है, तिसकी पेठी तागा होता है, तिसकरि उडता हुआ भी नीचे आता है, तैसे हम ऊर्ध्वके वासी तेरा गुणरूपी जो तागा है, तप अरु शुभ लक्षण, तिसको श्रवण करिकै हम स्वर्गते खैंचे चले आये हैं, इसवनविषे

इसप्रकार हमारा आना हुआ है, ताते हे राजन्! तू स्वर्गको चल, अरु स्वर्गविषे स्थित होकरि दिव्य भोगको भोगहु, ऐरावत हस्ती है, तिसपर आरूढ होहु, अथवा यह उच्चैःश्रवा घोड़ा है, जो क्षीरसमुद्रके मथनते निकसा है, इसपर आरूढ होकरि चल अरु सिद्धि भी हैं, एक तौ यह सिद्धि है, जिसपर पाउँ राखिये तौ जहां चाहिये तहां पहुँचावै अरु एक खड्ग सिद्धि है, खड्ग हाथमें धारिकरि जहां इच्छा हो तहां चला जावै, एक गुटिका है, जो मुखमें राखिकरि जहां इच्छा हो तहां इच्छाचारी चला जाइये, इसते लेकरि अष्टसिद्धि भी विद्यमान हैं, जो इच्छा होय सो लेहु, अरु स्वर्गविषे चलौ ॥ हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हो, तुमको ग्रहण त्याग करना कछु नहीं रहा, परंतु जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसका त्याग करना योग्य नहीं, ताते स्वर्गविषे चलो॥ राजोवाच ॥ हे देवराज! जाना तहां होता है; जहां आगे नहीं होता, अरु जहां आगे होवै, तहां कैसे जाइये॥ हे देवराज! हमको सर्व स्वर्गही दृष्टि आता है, जो वहां स्वर्ग होवै यहां न होवै तौ जाइए भी, परंतु जहां हम बैठे हैं, तहांही स्वर्ग भासता है, ताते हम कहां जावैं, हमको तीनों लोक स्वर्ग दृष्ट आते हैं, अरु सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है, हम तिसी विषे स्थित हैं हमारे तांई सर्वथा स्वर्ग भासता है, हम सदा तृप्त आनंद रूप हैं, ताते हम कहां जावैं ॥ ॥ इंद्र उवाच ॥ हे राजन्! जो विदित वेद पूर्ण बोध है, सो भी यथाप्राप्त भोगको सेवते हैं, तुम क्यों नहीं सेवते, ऐसे जब इंद्रने कहा तब राजा त्योंही कहिकरि चुपकरगया ॥ बहुरि इंद्रने कहा, भला जो तुम नहीं आते तौ हम जाते हैं, तेरा अरु कुम्भका कल्याण होवै ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि इंद्र उठ खडा हुआ अरु चला जबलग दृष्टि आता था, तबलग देवता भी साथ दृष्टि आते थे, बहुरि दृष्टि अगोचर भए, तब अंतर्धान हो गए. जैसे समुद्रते तरंग उठिकरि बहुरि लीन होजाता है, अरु नहीं जानाजाता कि, कहां गया तैसे इंद्र अन्तर्धान होगया सो इन्द्र कुंभरूप चूडालाके संकल्पते उठा था, जब संकल्प लीन भया तब अंतर्धान हो गया, तब चूडालाने

देखा कि, ऐसे ऐश्वर्य अरु सिद्धि अरु अप्सराके प्राप्त भये भी राजाका चित्त समताविषे रहा, अरु किसी पदार्थविषे बंधमान न हुआ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

मायापिंजरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब चूड़ाला इंद्रका छलकारि रही, तब विचार किया कि ऐसा चारित्र राजाके मोहने निमित्त किया, तो भी राजा किसीविषे बंधायमान न भया, ज्योंका त्योंही रहा, बडा कल्याण हुआ जो राजा सत्ता सामान्यविषे स्थित रहा, ताते बडा आनंद हुआ अब अपर चारित्र करिये, जो क्रोध होवै, जिसविषे बडा खेद होवै, ऐसा विचार करि राजाकी परीक्षाके निमित्त, चरित्र किया, जब सायंकालका समय हुआ, तब गंगाके किनारे राजा संध्या करने लगा, अरु कुंभ वनविषे रहा; तब वनविषे संकल्पका मंदिर रचा, जैसे देवताकी रचना होती है, तैसे मंदिरके पास फूलोंकी बाड़ी पाई, अरु कल्प वृक्षते आदि नानाप्रकारके फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे, ऐसे वनके स्थानविषे एक संकल्पकी शय्या रची अरु एक संकल्पका महासुंदर पुरुष रचा, तिससाथ सोए रही, अंगसों अंग लगायकारि अरु गलेविषे फूलोंकी माला डारी, अरु कामचेष्टा करने लगी, तब राजा संध्या करि उठा, अरु राणीको देखने लगा, दृष्ट न आई, ढूँढते ढूँढते तिस मंदिरके निकट आया तब क्या देखे कि, कामीपुरुषके साथ मदनिका सोई हुई है, अरु कामचेष्टा करते हैं, तब राजाने कहा भले आरामसाथ सोए पडे हैं, सोते रहो इनके आनंदविषे विघ्न क्यों करिये ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजाने अपनी स्त्रीको देखी, तौ भी शोकवान् न हुआ, अरु क्रोध भी न किया, ज्योंका त्यों शांतपदविषे स्थित रहा, क्षोभको न प्राप्त भया, अरु मंदिरके बाहिर निकसे तहां एक स्वर्णकी

शिला पडी थी, तिस ऊपर बैठ रहा, अरु समाधिविषे स्थित भया, परंतु उन्मीलितलोचन तब दो घड़ी उपरांत मदनिका कामी पुरुषको त्यागिकरि बाहर आई, अरु राजाके निकट आयकरि अंगोंको नग्न किया, बहुरि वस्त्रोंसाथ ढांप जैसे अपर स्त्रियां कामकरि व्याकुल होती हैं, तैसे चूडालाको देखिकरि राजाने कहा ॥ हे मदनिका! तू ऐसे सुखको त्यागिकरि क्यों आई है, तू तौ बडे आनंदकरि मग्न थी, अब तहांही फिरि जाहु, मेरे तांई तौ हर्ष शोक कछु नहीं, मैं ज्योंका त्यों हौं परंतु तेरी अरु कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है, परस्पर प्रीति जगत्विषे नहीं होती अरु तुम्हारी देखी है, ताते तू उसको सुख देहु वह तेरे तांई सुख देवै, अब जाहु, तब मदनिका लज्जासों शिरको नीचे करिकै बोली ॥ हे भगवन्! तुम क्षमा करौ, मेरे ऊपर क्रोध न करौ, मुझते अवज्ञा बडी हुई है, परंतु मैं जानकारि नहीं करी, जैसा वृत्तांत है, सो श्रवण करौ, जब तुम संध्या करने लगे, तब मैं वनविषे आई थी, तहां एक कामी पुरुषका मिलाप भया, मैं निर्बल थी वह बली था, तिसने मेरेको पकड लिया अरु जो पतिव्रता स्त्रीकी मर्यादा है, सो भी मैं करी कि उसपर क्रोध किया, अरु निरादर किया, अरु पुकार भी करी, यह तीनों पतिव्रताकी मर्यादा है, सो मैं करी, अरु तुम दूर थे, वह बली था, मेरे तांई पकड लिया अरु गोदविषे बैठाय जो कछु उसकी भावना थी, सो करी, हे भगवन्! मुझविषे दूषण कछु नहीं ताते तुम क्षमा करौ क्रोध न करौ ॥ राजोवाच ॥ हे मदनिका! मेरे तांई क्रोध कदाचित् नहीं होता; आत्माही दृष्ट आता है, तौ क्रोध किसपर करौं, मेरे तांई न कछु ग्रहण है, न कछु त्याग करना है, तथापि यह कर्म साधुओंकरि निंदित है; ताते अब तेरा त्याग किया है, सुखसे विचरौंगा, अरु जो हमारा गुरु कुम्भ है, सो हमारे पासही है, वह अरु हम सदा निरागरूप हैं, अरु तू तौ दुर्वासाके शापते उपजी है, तेरेसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, तू अब उसीके पास जा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायापिंजरवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.

चूडालाप्राकट्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब मदनिका नाम जो चूडाला है, तिसने विचार किया, बडा आश्चर्य हुआ, जो राजा आत्मपदविषे प्राप्त भया ऐसे सिद्धि अरु श्वर्य दिखाये अरु क्रूर स्थान भी दिखाये तौ भी राजा शुभ अशुभविषे ज्योंका त्यों रहा ताते वडा कल्याण हुआ, जो राजाको शांति प्राप्त भई, अरु रागद्वेषते रहित भया, अब पूर्वला रूप चूडालाका है, सो दिखावौं, अरु संपूर्ण वृत्तांत राजाको बतावौं ऐसे विचार करि मदनिका शरीरते चूडालारूप होकरि प्रगट भई. भूषणों अरु वस्त्रोंकरि तब सहित राजा देखिकरि महा आश्चर्यको प्राप्त भया अरु ध्यानविषे स्थित हुआ, अरु देखा कि, यह चूडाला कहांते आई है, बहुरि पूछा, हे देवि ! तू कहांते आई है, तेरे ताईं देखिकरि मैं आश्चर्यको प्राप्त भया हौं, कि ऐसी मेरी स्त्री चूडाला थी, अरु तू यहां किसनिमित्त आई है अरुकबकी आई है, ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन् ! मैं तेरी स्त्री चूडाला हौं, अरु तू मेरा स्वामी है ॥ हे राजन् ! कुंभते आदि अरु यह चूडाला शरीरपर्यंत सर्व चरित्र तेरे जगावनेके निमित्त मैंही किये हैं, तू ध्यानविषे स्थित होकरि देख, कि यह चरित्र किसने किये हैं, अरु मैं अब पूर्वका शरीर चूडालाका धारा है ॥ हे रामजी ! जब ऐसे चूडालाने कहा, तब राजा ध्यानविषे स्थित होकरि देखने लगा, एक मुहूर्तपर्यंत सब वृत्तांत देखि लिया, तिसते उपरांत राजाने आश्चर्यको प्राप्त होकरि नेत्र खोले, अरु राणीके गलेसाथ कंठ लगायकरि मिला अरु दोनों हर्षको प्राप्त भये, जो सहस्र वर्षपर्यंत शेष नाग उस सुखको वर्णन करै तौ भी न कहि सकेगा, ऐसे सत्ता समान विषे स्थित हुये अरु शांतिको प्राप्त भए, जिसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं राजा अरु राणी युगल कंठ लगाय मिलेथे, तिसते अंगोंविषे उष्णता उपजी, तब शनैः शनैः करि खोला, हर्षमान होकरि राजाके रोमावलि

खडे हो आए, अरु नेत्रते जल चलने लगा, ऐसी अवस्थासाथ राजा बोला ॥ हे देवि ! मेरे ऊपर तैंने बडा अनुग्रह किया है, तेरी स्तुति करनेको मैं समर्थ नहीं; कैसे स्तुति करौं, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं सो सब मायामय हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु तैंने मेरे तांई सत्पदको प्राप्त किया है, ताते मैं, तेरी उपमा क्या करौं ॥ हे देवि ! मैंने जाना है, जो जब मैं राज्यका त्याग किया है, अरु इस चूडालाके शरीपर्यंत सब तेरे चरित्र हैं, अरु मेरे वास्ते बडे कष्ट तैंने सहन किये हैं, अरु बडे यत्न किये हैं, आना अरु जाना, शरीरका स्वांग धारना, अरु उड़ना इत्यादिक बडा तैंने कष्ट पाया है, अरु बडे यत्नकारि मेरे तांई संसारसमुद्रते पार किया है, अरु बड़ा उपकार किया है, तू धन्य है, अरु जेती कछु देवियां हैं, तिनसों तैने श्रेष्ठ कार्य किया है, ताते तू सबते अधिक है सो कौन देवियां हैं, जिनते तू अधिकहै, अरुंधती अरु ब्रह्माणी अरु इंद्राणी अरु पार्वती, सरस्वती, इत्यादिक देवियोंको तैंने तिरस्कार किया है ॥ हे देवि ! जो श्रेष्ठ कुलकी कन्या है, अरु पतिव्रता है, सो जिस पुरुषको प्राप्त होती है, तिसका सर्व कार्य सिद्ध होता है, सो कौन कौन श्रेष्ठ स्त्रियां हैं, श्रवण कर, बुद्धि अरु शांति अरु दया अरु शक्ति, अरु कोमलता, मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं, सो पतिव्रता स्त्रीकारि प्राप्त होते हैं ॥ हे देवि ! मैं तेरे प्रसादकारि शांतपदको प्राप्त भया हौं, अब मेरे तांई क्षोभ कोऊ नहीं, ऐसा पद शास्त्रोंकारि भी नहीं पाता, अरु तपकारि नहीं पाता, जो पतिव्रता स्त्रीकारि पाता है ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन् ! तू काहेको मेरी स्तुति करताहै, मैं तौ अपना कार्य कियाहै ॥ हे राजन् ! जब तू राज्यका त्याग कारि वनविषे आया, तब तू मोहको साथही लिये आया, मोह कहिये अज्ञान तिस अज्ञानकारि नीच स्थानविषे पड़ा, जैसे कोऊ गंगाजलको त्यागकारि चीकडके जलका अंगीकार करे तैसे तैंने आत्मज्ञान अक्रिय पदका त्यागकारि तपका अंगीकार किया ॥ हे राजन् ! मैंने देखा कि तू चीकड़विषे गिरा है, ताते मैं तेरे निकासनेनिमित्त एते यत्न कियेहैं॥ हे राजन् ! मैं अपना कार्य कियाहै ॥ राजोवाच ॥ हे देवि ! मेरा यही आशीर्वाद है, कि, जो कोऊ पतिव्रता स्त्री होवै, सो सब ऐसेही

कार्य करै, जैसे तुमने किया है, जो पतिव्रता स्त्रीते कार्य होता है, सो अपरते नहीं होता ॥ हे देवि ! जेती अरुंधतीते आदि पतिव्रता स्त्रियां हैं, तिनते तू प्रथम गिनीजायगी, अरु मैं जानता हौं, ब्रह्माजीने तेरे ताईं क्रोधकारि इसनिमित्त उपजाई है, कि अरुंधतीते आदि जो देवियां हैं, तिन्होंने आपसविषे गर्व किया होवैगा, तिस गर्वको सुनिकारि तिनके गर्व निवारणेनिमित्त तुझको अधिक उत्पन्न किया है, ताते हे देवि! तू धन्य है, जो तैंने मेरे ऊपर बडा उपकार किया है ॥ हे देवि ! तू बहुरि मेरे अंग लाग जो तैंने बडा उपकार मेरे साथ किया है ॥ हे रामजी ! ऐसे कहकर राजाने राणीको बहुरि गले लगाई, जैसे नोल अरु नोली मिलैं, अरु मूर्त्तिकी नांई लिखी है, ऐसे भासैं ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन् ! एक तौ मेरे तांई यह कहु, जो ज्ञानरूप आत्माके एक अंशविषे जगत् लीन हो जाता है, ऐसा जो तू है, सो आपको अब क्या जानता है, अरु अब तू कहां स्थित है, अरु राज्य तेरे तांई कछु दिखाई देता है, अथवा नहीं देता ? अब तेरे तांई क्या इच्छा है ॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे देवी! जो स्वरूप तैंने ज्ञानकारिकै निश्चय कियाहै, सोई मैं आपको जानता हौं, अरु शांतरूप हौं, इच्छा अनिच्छा मेरे तांई कोई नहीं रही, केवल शांत रूप हौं॥ हे देवी ! जिसपदकी अपेक्षाकारिकै ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी मूर्त्तियां भी शोकसंयुक्त भासती हैं तिस पदको मैं प्राप्त भया हौं, जहां उत्थान कोऊ नहीं, अरु निष्किंचित् है, जिसविषे किंचित् मात्र भी जगत् नहीं अरु मैं जो था सोई भया हौं, इसते इतर क्या कहौं. हे देवि ! तैंने संसारसमुद्रते मेरे तांई पार कियाहै, ताते तू मेरा गुरु है, ऐसे कहिकारि चूडालाके चरणोंपर राजा गिर पड़ा, अरु कहा, अज्ञान मेरे तांई कदाचित् स्पर्श न करैगा, जैसे तांबा पारसके संगकारि स्वर्ण हुआ, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे मैं मोहरूपी चीकडते तेरे संगकारि निकसा हौं, बहुरि कदाचित् न गिरौंगा, अरु अब इस जगत्के सुखदुःखकारि न तुष्ट होता हौं, ज्योंका त्यों स्थित हौं, रागद्वेषको उठानेवाला जो चित्त है, सो मेरा नष्ट हो गया है, अब मैं प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे सूर्यका प्रतिबिंब पड़ता है,

अरु जलके नष्ट हुए प्रतिबिंब भी सूर्यरूप होता है, तैसे मेरा चित्त भी आत्मरूप भया है, अब मैं निर्वाणपदको प्राप्त भया हौं, अरु सर्वते अतीत भया हौं, अरु सर्वविषे स्थित हौं, जैसे आकाश सर्व पदार्थविषे स्थित है, अरु सर्व पदार्थते अतीत है, तैसे मैं भी हौं, अहं त्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट भये हैं, अरु शांतिको प्राप्त भया हौं, अब मेरे विषे ऐसा तैसा शब्द कोऊ नहीं, मैं अद्वैत हौं, अरु चिन्मात्र हौं, न सूक्ष्म हौं, न स्थूल हौं ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित-हुआहै, तौ तू अब क्या करैगा, अब तेरे तांई क्या इच्छा है॥राजोवाच॥ हे देवी ! न मेरे कछु अंगीकार करनेकी इच्छा है, न त्याग करनेकी इच्छा है, जो कछु तू कहैगी सो करौंगा, तेरे कहनेका अंगीकार करौंगा जैसे मणि प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे मैं तेरे वचनको ग्रहण करौंगा ॥ चूडालोवाच ॥ हे प्राणपति ! हृदयके प्रीतम राजा ! अब तू विष्णु हुआ है, अरु भला कार्य हुआ जो तेरी इच्छा नष्ट भई है ॥ हे राजन् ! अब तू अरु मैं मोहते रहित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरैं, अखेद जीवन्मुक्त हुए अपने प्रकृत आचारको हम क्यों त्यागैं ॥ हे राजन् ! जो अपने आचारको त्यागैंगे तौ अपर किसीका ग्रहण करैंगे, ताते हम अपनेही आचारविषे विचरैं, अरु भोग मोक्ष दोनोंको भोगे हैं ॥ हे रामजी ! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया, अरु संध्याकालकी संध्या राजा करत भया, बहुरि शय्याका आरंभ किया, तिसऊपर दोनों शयन करत भए, अरु रात्रिको परस्पर चर्चाही करते रहे, एक क्षणकी नांई रात्रिको व्यतीत करी ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्राकट्यवर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

शिखरध्वजचूडालाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे रात्रि बीती, अरु सूर्यकीकिरणैं पसरीं, अरु सूर्यमुखी कमल खिल आए, तब राजाने स्नानका आरंभ

किया, चूडालाने मनके संकल्प करिकै रत्नोंकी मटकी रची अरु हाथपर धारी तिसविषे गंगा आदिक तीर्थोंका जल पाया, अरु राजाको स्नान कराया, शुद्ध किया, अरु संध्यादिक सर्व कर्म किए, तब चूडालाने कहा हे राजन् ! मोहको नाश करिकै सुखेनही अपने राज्यकार्यको करैं, अरु आनंदसाथ भोग भोगें ॥ राजोवाच ॥ हे देवि ! जो सुख भोगनेकी तेरे ताईं इच्छा है तौ स्वर्गविषे भी हमारा राज्य है, अरु सिद्धविषे भी हमारा है, ताते स्वर्गहीविषे विचरैं ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन् ! हमको न सुख भोगनेकी इच्छाहै, न त्यागनेकी इच्छा है, हम ज्योंके त्यों हैं ॥ हे राजन् ! इच्छा अनिच्छा तब होतीहै, जब आगे कछु पदार्थ भासता है, हमको तौ केवल आकाश आत्मा दृष्ट आता है, स्वर्ग कहां अरु नरक कहां, हम सर्वदा एकरस स्थित हैं ॥ हे राजन् ! यद्यपि हमको कछु नहीं, तौ भी जबलग शरीरका प्रारब्ध है, तबलग शरीर रहता है, तौ चेष्टा भी हुई चहिए, अपर चेष्टा करनेसे अपने प्रकृत आचारको क्यों न करिये, जो रागद्वेषते रहित होकरि अपने राज्यको भोगैं, ताते अब उठ अष्टवसुके तेजको धारिकरि राज्य करनेको सावधान होहु ॥ हे रामजी ! जब ऐसे चूडालाने कहा, तब राजा कहत भया, ऐसेही होवै, अरु अष्टवसुके तेजसंयुक्त होत भया, जब ऐसा तेज राजाको प्राप्त भया, तब कहा ॥ हे देवि ! तू मेरी पट्टराणी है, अरु मैं तेरा भर्ता हौं, तौ भी एक तू है, एक मैं हौं अपर कोऊ नहीं, अरु राज्य तब होताहै, जब सैना भी होवै ताते तू सैना रच, तब चूडाला संपूर्ण सैनाको रचती भई, हस्ती, घोडे, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादिक जो राज्यकी सामग्री है सो रची है, अरु प्रत्यक्ष आगे आनि स्थित भई. नौबत, नगारे, तुरियां, सहनाई बाजने लगे, जो कछु राज्यकी सामग्री है सो अपने २ स्थानविषे स्थित भई, राजाके शिरऊपर छत्र फिरने लगा, अरु बैरख खडी हुई, तब राजा अरु राणी हस्तीपर आरूढ होकरि चले, मंदराचल पर्वतके ऊपर आगे पाछे सब सैना भई, अरु राजा जिस जिस ठौर तप करत भया था, सो राणीको दिखावता जावै कि, इस स्थानविषे मैं एता काल रहा हौं, इसविषे एता काल रहा हौं, जब राज्यका त्याग किया था, ऐसे दिखाता जावै

अरु तीक्ष्ण वेगकरि चले, तब आगे जो मंत्री अरु पुरवासी अपर नगर-वासी थे सो राजाको लेने आये, अरु बडे आदर संयुक्त पूजन किया अरु अपने मंदिरविषे आनि स्थित भए, अष्ट दिन पर्यंत राजाको मिलने-निमित्त लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे, तिसते उपरांत राजा सिंहासनपर आय बैठा, अरु राज्य करने लगा, एक समदृष्टिको लिए दशसहस्र वर्ष-पर्यंत राज्य किया, चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकारि विचरत भए, बहुरि विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! दशसहस्र वर्षपर्यंत राजा अरु चूडालाने राज्य किया, अरु सत्ता समानविषे स्थित रहे, किसी पदार्थविषे राग-वान् न भए, अरु द्वेष भी न किया, ज्योंके त्यों शांत पदविषे स्थित रहे, जेती कछु राज्यकी चेष्टा हैं सो करते रहे, परंतु अंतःकरणकारि किसीविषे बंधमान न भए, केवल आत्मपदविषे अचल रहे, बहुरि राजा अरु चूडाला विदेहमुक्तिको प्राप्त भए, जैसे आपको जानते थे, तिसी केवल परमाकाश अक्षोभ पदविषे जाय स्थित भए, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे प्रारब्ध वेगके क्षय हुए निर्वाण पदविषे प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! जैसे शिखरध्वज अरु चूडाला जीवन्मुक्त होकारि भोगको भोगते विचरे हैं, तैसे तुम भी रागद्वेषते रहित होकारि विचरौ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचूडालाख्यानसमाप्ति-वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ७६.

बृहस्पतिबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी । शिखरध्वजका वृत्तांत मैं संपूर्ण तुझको कहा; ऐसी दृष्टिको आश्रय करौ, कैसी दृष्टि है, जो पापका नाश करती है, तिस दृष्टिका आश्रय कारि जिस मार्ग शिखरध्वज तत्पदको प्राप्त भया है, अरु जीवन्मुक्त होकारि राज्यका व्यवहार किया है, तैसे तुम भी तत्पदका आश्रय करौ; अरु तिसीमें परायण होउ, आत्मप-दको पायकारि भोग मोक्ष दोनोंको भोगौ, अरु तिसी प्रकार बृहस्प-

तिका पुत्र कच भी बोधवान् हुआ है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान् हुआ है, सो प्रकार सबही संक्षेपते मुख्यकरि मुझको कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसा कच था, जो बालक अवस्था अज्ञात है, तिसको त्यागिकरि पदपदार्थको जानने लगे, जब ऐसा हुआ तब पिता बृहस्पतिसों प्रश्न कियाः कि, हे पिता ! इस संसारपिंजरते मैं कैसे निकसों, जेता संसारहै, सो जीवित करि बांधा हुआ है, जीवित कहिये अनात्म देहादिकोंविषे मिथ्या अभिमान करना, इसीकरि बांधा हुआ है, जो अहं त्वं मानता है, तिस संसारते मुक्त कैसे होउँ ? ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात ! इस अनर्थरूप संसारते तब मुक्त होता है, जब सर्व त्याग करता है, सर्व त्याग कियेविना मुक्ति नहीं होती, ताते तू सर्व त्याग करु, जो मुक्ति होवै॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार बृहस्पतिने कहा, तब कच ऐसे पावन वचनोंकोश्रवणकारि ऐश्वर्यका त्यागकारि वनकोगया, वनविषे जायकरि एक कंदरामें स्थित भया, तप करने लगा ॥ हे रामजी ! बृहस्पतिका पुत्र कच तिसके जानेकरि उसको खेद कछु न भया, जो ज्ञानवान् पुरुषको संयोगवियोगविषे समभाव रहता है, हर्षशोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होता ज्योंका त्यों रहता है, जब अष्ट वर्षपर्यंत तप किया, तब बृहस्पति आया, अरु देखा कि, कच एक कंदराविषे बैठाहै, तहां कचके पास आनि स्थित भया, अरु कचने पिताका पूजन गुरुकी नांई किया, अरु बृहस्पतिने कचको कंठ लगाया, तब दुःखकरि गद्गद वाणीसहित कचने प्रश्न किया. हे पिता ! अष्ट वर्ष बीते हैं; जो मैं सर्व त्याग किया है, तौ भी शांतिको नहीं प्राप्त भया, जिसकरि मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब बृहस्पतिने कहा, हे तात ! सर्व त्याग करु जो तेरे तांई शांति होवै, ऐसे कहिकरि बृहस्पति उठ खड़ा हुआ, अरु आकाशको चला गया ॥ हे रामजी ! जब ऐसे बृहस्पति कहिकरि चला गया, तब कच आसन अरु मृगछाला अरु वनको त्यागिकरि आगे वनको चला, एक कंदराविषे जायकरि स्थित भया, तब तीन वर्ष वहाँ व्यतीत भए, बहुरि बृहस्पति आय प्राप्त भया. देखा कि, कच स्थित है, तब कचने भली प्रकार गुरुकी नांई

पूजन किया, अरु बृहस्पतिने कचको कंठ लगाया, तब कचने कहा, हे पिता ! अबलग मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, अरु मैं सर्व त्याग भी किया कि, अपने पास कछु नहीं राखा, ताते जिसकरि मेरा कल्याण होवै, सोई कहौ, तब बृहस्पतिने कहा ॥ हे तात ! अब भी सर्व त्याग नहीं किया ताते सर्व पद चित्तका नामहै, जब चित्तका त्याग करैगा,तब सर्व त्याग होवैगा, ताते चित्तका त्याग करु॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बृहस्पति आकाशको चला गया, तब कच विचारने लगा, कि पिताने सर्वपद चित्तको कहा है, सो चित्त क्या है, प्रथम वनके पदार्थोंको देखिकरि विचारत भया कि, यह चित्त है; तब देखा कि, यह भिन्न भिन्न हैं, ताते यह चित्त नहीं, अरु नेत्र भी चित्त नहीं, जो नेत्र श्रवण नहीं, श्रवण नेत्रहूते भिन्न हैं, अरु श्रवण भी चित्त नहीं, इसीप्रकार सर्व इंद्रियाँ चित्त नहीं, जो एकविषे दूसरेका अभाव है, ताते चित्त क्या है, जिसको जानकरि त्याग करौं, बहुरि विचार किया कि, पिताके पास स्वर्गविषे जाऊँ ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकरि उठि खडा हुआ, दिगंबर आकार आकाशको चला, जब पिताके पास जाय प्राप्त भया, तब पिताका पूजन किया, अरु कहा, हे तेंतीस कोटि देवतोंके गुरु ! चित्तका रूप क्या है, तिसका रूप कहौ कि, मैं तिसको त्यागकरौं ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे पुत्र ! चित्त अहंकारका नाम है, सो अज्ञानते उपजा है, अरु आत्मज्ञान करिके इसका नाश होता है, जैसे रसडीके अज्ञानते सर्प भासता है, अरु रसडीके जाननेते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, ताते अहंभावका त्याग कर, अरु स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ कच उवाच ॥ हे पिता ! अहंभावका त्याग कैसे करौं, अहं तौ मैं हौं, बहुरि अपना त्याग करिके स्थित कैसे होऊं, इसका त्याग करना महाकठिन है ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात ! अहंकारका त्याग करना तौ महासुगम है, फूलके मिलनेविषे भी कछु यत्न है, अरु नेत्रोंके खोलने अरु मिटनेविषे भी कछु यत्न है, परंतु अहंकारके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे पुत्र ! अहंकार वस्तु कछु नहीं, भ्रमकरिकै उठा है, जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे बैताल कल्पता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु मरुस्थलविषे

जल कल्पता है, अरु आशविपे भ्रमकरि दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमादकरि उपजा है, अरु आत्मा शुद्ध है, आकाशते भी निर्मल है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित सत्ता समान चिन्मात्र है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरा स्वरूप है, अरु तू आत्मा है, तेरेविषे अहंकार कदाचित् नहीं. हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे स्थित है, तिसविषे अहंभाव ऐसे है, जैसे धूड समुद्रविषे कदाचित् नहीं तैसे तिसविषे अहंकार कदाचित् नहीं, कैसा है आत्मा, जिसविषे न एक कहना है, न दो कहना है, केवल अपने आपविषे स्थित है, अरु जो आकार दृष्ट आते हैं, सो चित्तके फुरणेकारिकै हैं, चित्तके नष्ट हुए आत्माही शेष रहता है, ताते अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, जो तेरा दुःख नष्ट हो जावै, अरु जो कछु यह दृष्ट आता है, तिसविषे भी आत्मा है, जैसे पत्र फूल फल सर्व बीजते उत्पन्न होतेहैं, तैसे सर्व आत्माका चमत्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधवर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९.

मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार बृहस्पतिने उत्तम उपदेश किया तब कच श्रवण करिकै स्वरूपविषे स्थित भया ॥ योग जो है आत्मा अरु परिच्छिन्न अहंकारकी एकता तिसको प्राप्त भया, अरु आत्म-स्वरूप हुआ, अरु जीवन्मुक्त होकरि विचरत भया ॥ हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, निरहंकार हुआ तैसे तू भी निराश होकरि विचरु, केवल अद्वैत पदको प्राप्त होहु, जो निर्मल अरु शुद्ध है, जिसविषे एक अरु दो कहना नहीं, तू तिस पदविषे स्थित होहु, तेरेविषे दुःख कोई नहीं, तू आत्मा है, अरु तेरेविषे अहंकार नहीं, तू ग्रहण त्याग किसका करै, जो पदार्थ होवै नहीं, तिसका ग्रहण त्याग क्या कहिये ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वनविषे फूल हैं नहीं, तिसका ग्रहण क्या,

अरु त्याग क्या तैसे आत्माविषे अहंकार नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो अहंकारका ग्रहण त्याग नहीं करते, अरु मूर्खको एक आत्माविषे नाना आकार भासते हैं, किसीका शोक करना, कहूं हर्ष करना, अरु तू कैसे दुःखका नाश चाहता है, दुःख तेरेविषे है नहीं, तू कैसे नाश करनेको समर्थ हुआ हैं, अरु जेते कछु आकार भासते हैं, सो मिथ्या हैं, तिन-विषे जो अधिष्ठान है, सो सत् है, अरु मूर्ख मिथ्या कारिकै सत्की रक्षा करते हैं, जो मेरे दुःख नाश होवैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादकारिकै मैं तृप्त हुआ हौं, तुम्हारे वचनरूपी अमृतकारि अघाया हौं जैसे पपैया एक बूँदको चाहता है, अरु कृपाकारिकै मेघ तिसपर वर्षाकरता है, अरु अघाय रहता है, तैसे मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हुआथा, अरु तुम्हारे दर्शनकी इच्छा बूँदकी नाईं करता था, अरु तुमने कृपा करिकै ज्ञानरूपी अमृतकी वर्षा करी, तिस वर्षा कारिकै मैं अघाय रहा हौं, अब मैं शांतपदको प्राप्त हुआ हौं, तीनों ताप मेरे मिटि गये हैं, कोऊ फुरणा मेरेविषे नहीं रहा, अरु तुम्हारे अमृत वचनोंको श्रवण करता तृप्त नहीं होता, जैसे चकोर चंद्रमाको देखिकारि किरणोंते तृप्त नहीं होता, तैसे तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंकारि मैं तृप्त नहीं होता, ताते प्रश्न करता हौं तिसका उत्तर कृपाकारि कहौ ॥ हे भगवन् ! मिथ्या क्या है, अरु सत् क्या है, जिसकी रक्षा करते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसके ऊपर एक आख्यान है सो कहता हौं; जिसके सुननेते हांसी आवै, एक आकाशविषे शून्य वन है, तिसविषे एक मूर्ख बालक है, जो आप मिथ्या है, अरु सत्यके राखनेकी इच्छा करता है कि, मैं इसकी रक्षा करौंगा, अधिष्ठान जो सत्य है, तिसको नहीं जानता, अरु मूर्खता कारिकै दुःख पाता है, क्या जानता है सो श्रवण करु, यह आकाश है; मैं भी आकाश हौं, मेरा आकाश है, मैं आकाशकी रक्षा करौंगा, ऐसे विचार करि एक गृह बनाया, गृहविषे जो आकाश है तिसकी रक्षा करौंगा, जो इसका नाश न होवे इस निमित्त गृह बनाया ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकारिकैगृहकीबनावट बहुत करी, जब किसी ठौरते टूटै तब बहुरि बनाय लेवै, जब केताकाल इसप्रकार व्यतीत भया तब कालकारि गृह गिरपड़ा तब रुदन करने

लगा, हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट होगया, जैसे एक ऋतु व्यतीत होवै अरु दूसरा आवै तैसे कालकारि गृह गिरि गया, तिसते उपरांत एक कुँआ बनाया, अरु कहने लगा कि, यह आकाश न जावैगा, जो इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कुएको बनाकरि सुख माना, जब केताक काल बीता तब जैसे सूखा पात वृक्षते गिरता है, तैसे कुँआ भी गिर पडा, तब बडे शोकको प्राप्त भया कि, मेरा आकाश गिर पडा, नष्ट होगया, मैं क्या करौंगा, ऐसे शोकसंयुक्त केताक काल बीता तब एक कुटी बनाई, जैसे अनाज राखनेके निमित्त बनाते हैं तैसे बनायकरि कहने लगा कि, अब मेरा आकाश कहाँ जावैगा, मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, ऐसी कुटी करिकै बहुत सुख माना, जब केताक काल व्यतीत भया, तब वह कुटी भी तूटि पड़ी, जो उपजी वस्तुका विनाश होना अवश्य है, बहुरि रुदन करने लगा कि, मेरा आकाश नष्ट होगया, जब केताक काल शोकसंयुक्त बीता तब एक घट बनाया; अरु घटाकाशकी रक्षा करने लगा, तब केतेक कालकारि घट भी नष्ट होगया, बहुरि एक कुंड बनाया, अरु कुंडाकाशकी रक्षा करने लगा, केताक कालकारि कुंड भी नष्ट होगया, तब शोकवान् हुआ बहुरि एक हवेली बनाई अरु कहने लगा, अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं इसकी भलीप्रकार रक्षा करौंगा, अरु बडे हर्षको प्राप्त हुआ जब केताक काल व्यतीत भया, तब वह हवेली भी गिर पड़ी, बहुरि दुःखको प्राप्त भया कि, हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट होगया, मेरे तांई बड़ा कष्ट आनि प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार आत्मज्ञानविना अरु आकाशके जाननेविना मूर्ख बालक दुःख पाता रहा, जो आपको भी यथार्थ जानता, अरु आकाशको भी ज्योंका त्यों जानता, तौ यह कष्ट काहेको पाता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नाम एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०.
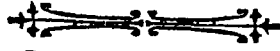
मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच॥ हे भगवन्! मिथ्यापुरुष कौन था, अरु जिसकी रक्षा करता था, सो आकाश क्या था अरु जो गृह कूप आदिक बनावता था, सो क्या था? यह प्रगट करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मिथ्यापुरुष जो संवेदन फुरणेते उपजा अहंकार है, अरु आकाश चिदाकाश है, तिसते उपजा बहुरि जानता है कि, मैं आकाशकी रक्षा करौं, अरु आकाश गृहघटादिक जो कहा सो देह है, तिसविषे जो आत्मा अधिष्ठान है, तिस आत्माकी रक्षा करणेकी इच्छा मूर्खता करिकै करता है, आपको नहीं जानता, कि मेरा स्वरूप क्या है, तिस अपने स्वरूपको न जाननेकरि दुःख पाता है, आप है, मिथ्या अरु मिथ्या होकरि आगे आकाशको कल्पिकरि राखणेकी इच्छा करता है, जो देहकरिकै देहीके राखणेकी इच्छा करता है कि, मैं जीता रहौं, अरु देह तौ कालकरि उपजा है, बहुरि देहके नष्ट होनेकरि शोकवान् होता है, अरु अपने वास्तव स्वरूप वस्तुको नहीं जानता, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ऐसे विचारते रहित क्लेश पाता है ॥ हे रामजी ! जिसविषे भ्रम उपजता है, तिसका अधिष्ठान सत्ता नहीं होता, सर्वका अपना आप आत्मा है, सो कदाचित् नाश नहीं होता तिसविषे मूर्खताकरिकै अहंरूप संसारको कल्पता है, अरु एते इसके नाम हैं अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति, दृश्य यह सर्व इसके नाम हैं, सो मिथ्या हैं, अरु इसका अत्यंत अभाव है, अनहोता उदय हुआ है, जो मैं हौं, क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण आश्रम अरु मनुष्य देवता दैत्य इत्यादिक कल्पना करता है ॥ हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, अरु न होवैगा, न किसी काल न किसीको है, अविचारसिद्ध है, विचार कियेते कछु नहीं. जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प कल्पता है, अरु जाननेते नष्ट हो जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि अहंकार उदय हुआ है, सो तेरा स्वरूप कैसा है श्रवण करु, आत्मा है अरु प्रकाशरूप है, निर्मल है, जो विद्याअविद्याके

कार्यते रहित चेतनमात्र है, अरु निर्विकल्प है, ज्योंका त्यों स्थित है, अद्वैत है, अरु प्राणको कदाचित् नहीं प्राप्त होता, आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संसार कैसे होवै, अरु अहंकार कैसे होवै, सम्यक्दर्शीको आत्माते इतर नहीं भासता, अरु असम्यक्दर्शीको संसार भासताहै, पदार्थको सत् जानता है, अरु संसारको वास्तव जानता है, जो अपने वास्तव स्वरूपको नहीं जानता है, कि मैं कौन हौं, जाननेंते अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु जेती कछु आपदा हैं, तिनकी खानि अहंकार है, सर्व ताप अहंकारते उत्पन्न होते हैं, इसके नष्ट हुए अपने स्वरूपविषे स्थित होता है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कारहै, इतर नहीं, जैसेसमुद्रविषेपवनकारि नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, अरुस्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण भासतेहैं, सो वहीरूपहैं भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्माते विश्व भिन्न कछु नहीं, अरु स्वर्ण भी परिणामकारि भूषण होता है, अरु समुद्र भी परिणामकारि तरंग होता है, अरु आत्मा अच्युत है, परिणामको नहीं प्राप्त भया, ताते समुद्र अरु स्वर्णते विलक्षण है, आत्माविषे संवेदनकारि चमत्कारमात्र विश्व है, सो आत्मामात्र स्वरूप है, सो न कदाचित् जन्मा है, न मृत्युको प्राप्त होता है, न किसीकालविषे न किसीसों मृतक है, ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, अरु जन्म मृत्यु तब होवै जब दूसरा होवै, आत्मा तौ अद्वैत है, जिसविषे एक कहना भी नहीं, तौ दूसरा कहां होवै, ताते प्रत्यक् आत्मा अपना अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, तब दुःख ताप सब नष्ट हो जावैं, सो आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है ॥ हे रामजी ! जो निराकार शुद्ध है, सो किसकारि ग्रहण करिये अरु रक्षा कैसे करिये कौन समर्थ है, जो रक्षा करे, जैसे घटके नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुए देही आत्माका नाश नहीं होता, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु जन्ममरण पुर्यष्टका करिकै भासते हैं, जब पुर्यष्टका देहते निकस जातीहै, तब मृतक भासताहै, जब पुर्यष्टका संयुक्तहै, तब जीवत भासता है, अरु आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्महै, अरु स्थूलते स्थूलहै, तिसका ग्रहण कैसे होवै, अरु रक्षा कैसे करिये, अरु स्थूल भी उपदेश जतावनेके निमित्त कहता है, आत्मा वाचाते अगोचर है, अरु भाव अभावरूप संसारते

रहित है, सर्वका अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अहंकारका त्याग कर अपने स्वरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्ति वर्णनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार आत्मरूप है, जैसे इसकी उत्पत्ति भई है, सो सुन. शुद्ध आत्मा निर्विकल्पविषे विवर्त्त चेतनलक्षण मनकरि स्थित भयाहै, अरु आगे तिसने जगत् कल्पनाकरीहै, सो मन कैसा है, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु स्वर्णविषे भूषण, जेवरीविषे सर्प, सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास, तैसे आत्माविषे विवर्त्त मन है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, जिसको तरंगका ज्ञान है, तिसको समुद्रबुद्धि नहीं होती, अरु तरंगको अपर जानता है, जिसको भूषणका ज्ञान है, सो स्वर्णको नहीं जानता, अरु सर्पके ज्ञानकरि जेवरीको नहीं जानता अरु जलके ज्ञानकरि किरणोंको नहीं जानता; तैसे नानाप्रकार विश्वके ज्ञानकरि परमात्माको नहीं जानता, जैसे जिस पुरुषने समुद्रको जाना है, जो जल है, तिसको तरंग बुद्बुदे भी जलही भासतेहैं, भिन्न कछु नहीं भासता, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसको जेवरीका ज्ञान हुआ, तिसको सर्पबुद्धि नहीं होती सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसको स्वर्णका ज्ञान हुआ है, तिसको भूषणबुद्धि नहीं होती, ऐसा पुरुषहै, सो निर्विकल्प है, जिसको किरणोंका ज्ञान हुआ है, तिसको जलबुद्धि नहीं होती, तैसे जिस पुरुषको निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुवाहै, तिसको संसारभावना नहीं होती, तिसको ब्रह्महही भासता है, ऐसा जो मुनीश्वरहै, सोज्ञानवान् है ॥ हे रामजी ! मन भी आत्माते इतर कछु नहीं, आदि जो परमात्माते मन होकारि फुरा है, सो अहं त्वं आदिकहोकारि फुरा, मात्र पदविषे जो अहंभाव होना सो उत्थान है, बहिर्मुख होनेकारि अपने निर्विकल्प

चिन्मात्र आत्मास्वरूपकाप्रमाद हुआहै,तिसप्रमाद होनेकरि आगे विश्व हुआ है,अरु मनभी कैसाहैजो कदाचित्उदयनहीं भया,अरुआत्मास्वरूप है सो उदय हुएकी नाईं भासताहै, मन अरु संसार सत्य भी नहीं,असत्य भी नहीं जो दूसरी वस्तु होवै तौ सत्असत् कहिये,आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है, तिसका विवर्त्त मन होकारि फुरा है, सोई मन कीट है, सोई मन ब्रह्मा है, बहुरि ब्रह्माने मनोराज्य करिकै स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी हैं, सो न सत्य है, न असत्य है ॥ हे रामजी! सर्व प्रपंच मनने कल्पा है,तिसीने नानाप्रकारके विचार रचे हैं, मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सब मनके नाम हैं, जब मन नष्ट हो जावै, तब न संसार है, न कोऊ विकार है, अरु जबलग मन दृश्यसाथ मिलिकारि कहै कि, मैं संसारका अंत लेउँ तो कदाचित् अंत न आवैगा, काहेते जो संसरनाही संसार है, संसरने संयुक्त संसारका अंत कहां आवै, अंत लेनेवाला बनकर आगे फुरिकारि देखता है तौ अंत कहांते आवै, जैसे कोऊ पुरुष दौड़ता जावै, अरु कहै; मैं अपनी परछाईंका अंत लेउँ जो कहां लग जाती है ॥ हे रामजी! जबलग पुरुष चला जावै, तबलग परछाईंका अंत नहीं आता, अरु जब ठहरि जावै, तब परछाईंका अंत हो जाता है, तैसे जबलग फुरणाहै, तबलग संसारका अंत नहीं आता; जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब संसारकाभी अंत होवै, आत्माही दृष्ट आवै, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावै,अरु जो फुरनेसंयुक्त देखैगा तौ संसार ही भासैगा ॥ हे रामजी! जिस पदार्थको यह देखता है, सो पदार्थ पूर्व कोऊ नहीं, चित्तके फुरणेकारि उदय होता है, जब चित्त फुरा कि, या पदार्थ है, तब आगे पदार्थ हुआ, अरु फुरणेते रहित होकारि देखै तौ पदार्थ कोऊ नहीं भासता, केवल शांतपद है ॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारकी कल्पना है, तिसते रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदविषे अहंकारका त्याग कारि स्थित होहु, अहंकार जो है, नामरूपदेह वर्णाश्रमविषे मायाकारि कल्पित, जब तिसते रहित होकारि देखैगा, तब केवल सच्चिदानंद आत्मपदशेष रहैगा, जब तिसपद को अपना आप जानैगा, तब तूही सर्वात्मा होकारि विचरैगा, दुःख तेरे ताईं कोऊ नहीं रहैगा ॥ हे रामजी!

मनही संसार है, मनही ब्रह्मा है, अरु मनही कीट है, मनही सुमेरु है, मनही तृण है, मनही सर्व विश्वरूप होकारि स्थित भया है, सो मन कैसा है, जो आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे फलहीविषे संपूर्ण वृक्ष हैं,तैसे मन आत्मास्वरूप है, आत्माते इतर मन कछु वस्तु नहीं,ऐसे जानिकरिआत्मस्वरूप होवैगा, यह जो संज्ञा है, बंध अरु मोक्ष, तिसका त्याग करु, न बंधकी वांछा करु, न मोक्षकी इच्छा करु,इसकल्पनाते रहितहोहु,अरु ऐसे न होवै, जो मुक्तहौं,अरु यह अपर बंधहैं केवल सत्तासमान आत्मपद विषे स्थित होहु,यही भावना कर, जो तेरे सर्वदुःख नष्ट हो जावैं, ऐसा जो पुरुप है तिसका चित्तभावनहीं रहता, सर्व आत्मा तिसको भासताहैं जैसे जिस पुरुषने सूर्यको जाना है, तिसको किरणैं भी सूर्यही दृष्ट आती हैं, तैसे जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिसको जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशवर्णनं नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

महाकर्त्राद्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाकर्ता होहु, अरु महाभोक्ता अरु त्यागी होहु, सर्व शंकाको त्यागिकारि निरंतर धैर्य धारिकारि स्थित होहु राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाकर्ता क्या कहिये, महाभोक्ता अरु महात्यागी क्या कहिये, सो कृपा करिकै कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! तेरे प्रश्नऊपर एक आख्यान है सो श्रवण करु, एकसमय सुमेरुपर्वतकी उत्तर दिशाके शिखरते सदाशिवजी आय प्राप्तभया,सो कैसाहै सदाशिव चंद्रमाको मस्तकविषे धारे है, अरु गुणसंयुक्तअरुगौरी बामअंगविषेधारे है, सुमेरुपर्वतके शिखरपर आनि स्थित भया,तब भृंगीगण जो है सदाशिवका; तिसने हाथ जोडकारि प्रश्न किया, कैसा है भृंगीगण, महातेजवान् अरु आत्मजिज्ञासा जिसको उपजी है, तिसने प्रश्न किया कि,

हे भगवन् देवकेदेव ! यह संसार मिथ्या भ्रमहै, तिसविषे मैं सत्यपदार्थ कोऊ नहीं देखता, सदा चलरूप भासता है. अरु जो सत्पदार्थहै, तिसको मैं नहीं जानता मेरे ताप नष्ट नहीं भए, मैं शांतिको नहीं प्राप्त भया, ताते आपको दुःखी देखताहौं, जिसकरि शांति प्राप्त होवै; सो कृपाकरि कहौ अरु खेदतेरहित होकरि चेष्टाविषे विचरौ, सो खेदते रहिततबहोताहै, जब कोऊ आसरा होताहै, अरुजेताकछु संसारहै सो मिथ्याहै, मैं किसका आसरा करौं; तातेसोई मेरेताईं कहौ, जिसको आश्रयकिये दुःखमेरेनष्टहोवैं ईश्वर उवाच ॥ हे भृंगी ! तू महाकर्ता होहु, अरु महाभोक्ता होहु अरु महात्यागी होहु, सर्व शंकाको त्यागिकरि निरंतर धैर्यको आश्रय करिकै तेरे दुःख नष्ट होवैंगे. वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! ऐसा जो है भृंगीगण जिसको सदाशिवने पुत्रकरिरक्खा है, तिसनेश्रवण करिकै प्रश्न किया॥ हे परमेश्वर! महाकर्ता क्या कहिये, महाभोक्ता महात्यागी क्या कहिये, सो कृपाकरि ज्योंका त्यों मेरे ताईं कहौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे पुत्र ! सर्वात्मा जोअनुभवरूप है, तिसका आश्रय करिकै विचरु, जो दुःखते रहित होवै, अरु इन तीनों वृत्तिकरि दुःख तेरे नष्ट हो जावैंगे, जो कछु शुभक्रिया आय प्राप्त होवै; तिसको शंका त्यागके करै, ऐसा पुरुष महाकर्ता है, धर्म अधर्मक्रिया अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसको रागद्वेषते रहित होकरि करै ऐसा पुरुष महाकर्ता है, जो पुरुष मौनी निरहंकार निर्मान है, मत्सरते रहित होकरि ऐसा पुरुष महाकर्ता है, अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग न करै, अरु जो नहीं प्राप्त हुआ, तिसकी वांछा न करै, ऐसा पुरुष महाकर्ता है, अरु पुण्य पाप क्रिया जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसको अहंकारते रहित होकरि करै, पुण्यक्रिया करनेते आपको पुण्यवान् नहीं मानता, अरु पाप कियेते पापी नहीं मानता; सदा आपको अकर्ता जानता है ऐसा पुरुष महाकर्ता है, अरु जो सर्वविषे विगतस्नेह है, सत्यवत् स्थित है, निरिच्छा वर्तता है, कार्यविषे सो महाकर्ता है, जो दुःखके प्राप्त हुएते शोक नहीं करता, अरु सुखके प्राप्त हुएते हर्षवान् नहीं होता, स्वाभाविक चित्तसमताको देखताहै, कदाचित् विषमताको प्राप्त नहीं होता, जो सुखकी भिन्न भिन्न विषमता है, तिसते

रहित है, सो पुरुष महाकर्ता है; अरु जिस पुरुषने सुखदुःखका त्याग किया है, जो सुखदुःखकी भावना नहीं फुरती, यही त्याग है, जो अपर कछु नहीं फुरता है, ऐसा पुरुष महाकर्ता है ॥ हे भृंगी ! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तुको रागद्वेषते रहित होकारि भोगता है, सो महाभोक्ता है, अरु जो बडा कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसविषे दोष नहीं रहता, अरु बडे सुखकी प्राप्तिविषे हर्षवान् नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो बड़े राज्यके सुख भोगनेविषे आपको सुखी नहीं मानता, राज्यके अभाव होने अरु भिक्षा मांगनेविषे आपको दुःखी नहीं मानता, सदा स्वरूपविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो मान अहंकार अरु चिंतनाते रहित है, केवल समताविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो कोऊ कछु देवै, तौ आपको लेनेवाला नहीं मानता, अरु शुभक्रियाविषे भोक्ता-हुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो मीठा खाटा तीक्ष्ण सलोना कटु यह रस प्राप्त होते हैं, तिनके भोगनेविषे समचित्त रहता है, अरु सम जानता है सो महाभोक्ता है, जो रसवान् पदार्थ प्राप्त हुएते हर्षवान् नहीं होता, अरु विरसके प्राप्त हुएते दोषवान् नहीं होता, ज्योंका त्यों रहता है, जैसा आय प्राप्त होवै, भलाबुरा, तिसको दुःखते रहित होकारि भोगता है, ऐसा पुरुष है सो महाभोक्ता है, अरु जेती कछु क्रिया हैं, शुभ अशुभ भाव अभाव तिसके सुखदुःखते चलायमान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जिसको मृत्युका भय नहीं अरु जीनेकी आस्था नहीं, उदयअ-स्तविषे समानहै सो महाभोक्ताहै, बडे सुखप्राप्तिविषे हर्षवान् नहीं होता अरु दुःखकी प्राप्तिविषे शोकवान् नहीं होता, ज्योंका त्यों रहता है, सो महाभोक्ता है, जो कछु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसको कर्ता हुआ अहंकारते रहितहै, सो पुरुष महाभोक्ताहै, जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृद्विषे समबुद्धि रहता है, विषमताको कदाचित् नहीं प्राप्त होता सो पुरुषमहा-भोक्ता है, जेता कछु शुभ अशुभ दुःख सुख आय प्राप्त होवै, तिसको धारि लेता है, कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्त होता जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्राप्त होती हैं, तिनको धारिकारि सम रहता है, तैसे

ज्ञानवान् शुभअशुभको धारिकारि सम रहता है, जो संसार अरु देह इंद्रियां अरु अहंकारकी सत्ताको त्यागिकारि स्थित हुआ है, अरु जानता है, न मैं देह हौं, न मेरा देह है, इनका साक्षी हौं, इस वृत्तिको धार रहै, सो महात्यागी है, अरु जो सर्व चेष्टा करता है, रागद्वेषते रहित होकारि सो महात्यागी है, अरु शुभ अशुभ प्राप्त हुएको अहंकारते रहित होकारि करता है, सो महात्यागी है, अरु जो मन इंद्रियां देहकारि इच्छाते रहित हुआ सर्व चेष्टा भी करता है, सो महात्यागी है, अरु जो पुरुष समचित्त इंद्रियजित है, अरु जो क्षमावान् है, सो महात्यागी है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने धर्मअधर्मकी देह संसारकी मद मान मनन इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है, सो महात्यागी है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार भृंगीगणको सदाशिवने उपदेश किया, सो कैसा सदाशिव है, खप्परको हाथविषे धारे, अरु व्याघ्रांबरको लिए हुए मस्तकविषे चंद्रमाको धारे तिसने सुमेरुके शिखरपर उपदेश किया ॥ हे रामजी ! तू भी इसी वृत्तिको धारिकारि विचरु, तेरे सर्व दुःख नष्ट होजावैंगे॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

कलनानिषेधवणनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो तुमने उपदेश किया सो मैं जाना है, अरु तुमने आगे उपशम प्रकरणविषे उपदेश किया था, कि आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तब मैं प्रश्न किया था, जो आत्मा अनंत है अरु शुद्ध है, तौ यह कलना कैसे उपजी है, जैसे समुद्र निर्मल है, तिसविषे धूड कैसे होवै, बहुरि तुमने कहा, इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांत कालविषे कहैंगे, सो मैं अब सिद्धांतका पात्र हौं. मेरे ताईं कहौ, जैसे स्त्री भर्तासों प्रश्न करतीहै, अरु भर्ता कृपा कारिकै उपदेश करता है, तैसे मैं तुम्हारी शरण हौं, कृपा कारिकै मुझको उत्तर कहौ, जो आशा अरु तृष्णाके फांस मेरे टूटे हैं, अरु आशारूपी जालते निकसाहौं, अरु संशय-

रूपी धूड मेरे हृदयविषे उठीहै, तिसलो वचनरूपी वर्षाकारि शांत करौ । अरु संशयरूपी मेरे हृदयविषे अंधकार है, वचनरूपी क्रीडाकारि तुम निवृत्त करौ, तुम्हारे वचनरूपी अमृतकारि मैं तृप्त नहीं होता. हे भगवन् ! अपने विचार ज्ञानकारि यह गुरुके उपदेश कियेविना नहीं शोभता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष शांतिमान् अरु क्षमावान् अरु इंद्रिय-जित है, अरु मनकी क्रिया, संकल्पविकल्पको जीता है, सो सिद्धांतका पात्र है ॥ हे रामजी ! तू जब सिद्धांतका पात्र है, ताते उपदेश करता हौं अरु जो पुरुष रागद्वेषसहित क्रियाविषे स्थित हैं, अरु इंद्रियोंके सुख-कारि जिसको आराम है, सो सिद्धांतके वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्म तिनको श्रवणकारि भोगविषे स्थित होता है, अरु अधोगतिको पाता है, काहेते कि, उसको निश्चय नहीं होता हृदय तिसका मलिन है, ताते इंद्रि-योंके सुखकारि आपको सुखी मानता है, इसी नीच स्थानोंको प्राप्त होता है, अरु जो पुरुष क्षमा आदिक साधनकारि पवित्र हुआ है, तिसको अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्मके श्रवणकारि शीघ्रही भावनाते आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु तुमसारखे जो पुरुष हैं, क्षमा आदिक साधनकारि पवित्र हुए हैं, तिनको स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होती है, अरु जिसका अंतःक-रण मलिन है, तिनको प्राप्त होना कठिन है, जैसे भूना बीज कलरकी पृथ्वीविषे बोइये, तब उसकी अंगुरी नहीं होती, तैसे इंद्रियारामी पुरु-षको आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, अरु तुमसारखे जिनका हृदय शुद्ध है, तिनको ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अरु इन वचनोंको पायकारि शोभते हैं, जैसे वर्षाकालविपे धान पृथ्वीमें शोभा पाते हैं, वर्षा करिकै तैसे सिद्धांत वचनोंको पायकारि ज्ञानरूपी दीकपसों प्रकाशते हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष ऊंची बाँहोंकारि कहते हैं, अरु सर्वशास्त्र भी कहते हैं, सो सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतको अरु तिनके दृष्टांतको मैं जानता हौं, ताते सर्व सिद्धांतोंका सार कहता हौं तू श्रवण कर, कि तेरा स्वरूप है, तिसको जानैगा ॥ हे रामजी ! जिसको अभ्यास करिकै एक क्षण भी साक्षा-त्कार हुआ है, सो बहुरि गर्भविषे नहीं आता अरु सत् असत्विषे भेद कछु नहीं, उसके संवेदनविषे भेद है, जैसे जाग्रतका सूर्य अरु स्वप्नका

सूर्य प्रकाश दोनोंका समान है, जाग्रतविषे जागृत सूर्यका प्रकाश अर्थाकार होता है, अरु स्वप्नविषे स्वप्नका सूर्य अर्थाकार होता है, प्रकाश दोनोंका सम है, अरु संवितभिन्न है, स्वप्नको मिथ्या जानता है, अरु जाग्रत्को सत्य जानता है, संवेदनते भेद हुआ स्वरूपते भेद कछु न हुआ, जैसे एक बड़ा पर्वत मन करिकै रचिये तौ संकल्पकारि देखता है, अरु एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्षकारि देखता है, तौ संवित् करिकै भेद हुआ, स्वरूप दोनोंका तुल्य है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, स्वरूपविषे जलतरंगोंका भेद कछु नहीं, जिसको जलका ज्ञान नहीं सो तरंगही जानता है, ताते संवितविषे भेद है, तैसे स्वरूपविषे सत् असत् तुल्य हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल शांतरूप आत्मा है, अरु शब्द अर्थ संवेदनविषे हैं, शब्द कहिये नाम, अर्थ कहिये नामी सो संवेदन फुरणेकरिकै है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब सर्व अर्थ भी आत्मा है ऐसे भासैगा, जगत्की सत्ता तबलग है, जबलग आत्माका प्रमाद है, अरु प्रमाद तबलग है, जबलग अहंभाव है, जब अहंभाव नष्ट हो जावै, तब केवल आत्मा शेष रहै, सो आत्मा शुद्ध है, विद्याअविद्याके कार्यते रहित है, कदाचित् स्पर्श नहीं किया ॥ हे रामजी ! अविद्याकी दो शक्ति हैं, एक आवरण, एक विक्षेप, आवरण कहिये आत्माका न जानना, विक्षेप कहिये अपर कछु जानना सो आत्मा सदा ज्ञानरूप है, तिसको आवरण कदाचित् नहीं, आत्मा अद्वैत है, तिसते इतर कछु नहीं बना, इसीते आत्मा शुद्ध है, केवल ज्ञानमात्र है ॥ हे रामजी ! तिसविषे कलनारूपी धूड़ कहां होवै, जो आत्ममात्र है, चिन्मात्र जिसविषे अहंकार उत्थान नहीं है, केवल निर्वाणपद है, जहां एक अरु द्वैत कहना भी नहीं; केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व ब्रह्म है तो मन बुद्धि आदिक यह कौन हैं, जिसकारि तुम यह शास्त्र उपदेश करते हौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द यह है, परमार्थते कल्पना है नहीं, यह मन बुद्धि आदिक कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरंग जलते इतर कछु

वस्तु नहीं, तैसे मनादिक हैं, आत्मतत्त्व कैसा है, नित्य है, शुद्ध है, सन्मात्र है, नाहींकी नाईं स्थित है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माविषे संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे होवै, आत्मा ब्रह्म है, जिसते इतर कछु नहीं, सर्व अधिष्ठान है, अरु अविनाशी है, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, इसीते ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ऐसा जो अपना आप आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, अरु यह जगत् जो दृष्ट आता है, तौ सर्व चिदाकाश है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे विश्व देखता है सो अनुभवमात्र है, जैसे जाग्रत् विश्व आत्मरूप है, ऐसा जो तेरा शुद्ध अरु नित्य उदित अविनाशी रूप है तिसविषे जब स्थित होवैगा, तब कलना जो तेरे तांईं भासती है, सो नष्ट हो जावैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कलनानिषेधवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४.

संतलक्षणमाहात्म्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंकार है, जब अहंभाव होता है, तब संसार होता है, सो अहंकार कछु वस्तु नहीं, भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, जैसे मूर्ख बालक परछाईंविषे पिशाच कल्पताहै, सो पिशाच कछु वस्तु नहीं, उसके भ्रमविषे होता है, तैसे अहंकार कछु वस्तु नहीं, स्वरूपके भ्रमविषे होता है ॥ हे रामजी! जो वास्तव कछु वस्तु न होवै, तिसके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं, तेरेविषे अहंकार वास्तव नहीं, तू केवल शांतरूप चेतनमात्र है, तिसविषे अहंभाव होना उपाधि है, तिसते सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बनि जाता है, सो संवेदनरूप है, चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रयते फुरता है; अरु विश्व कल्पता है, जैसे जेवरीके आश्रयते सर्प फुरता है, तैसे चेतनके आश्रय विश्व अरु चित्त फुरते हैं, सो आत्माते इतर नहीं, अरु अहंकार हुएकी नाईं हुआ है. जो मैं हौं, ऐसा जो अहंभाव है; सो दुःखकी खाण है, सर्व आपदा अहंकारते होती हैं, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब सर्व दुःख नष्ट हो

वैगे ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यके आगे बादल होते हैं, तौ प्रकाश नहीं होता, जब बादल दूर होते हैं; तब प्रकाशवान् भासता है; अरु सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्मारूपी सूर्यको अहंकार-रूपी बादलका आवरण हुआ; अहंकार कहिये किसी मायाके गुणसाथ मिलिकरि कछु आपको मानना, जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आत्मारूपी सूर्यका प्रकाश होवैगा, अरु ज्ञानवान्‌रूपी कमल तिस प्रकाशको पायकरि बड़े आनंदको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! ताते अहंकारके नाशका उपाय करौ, जो तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावैं, वह कवन पदार्थ है, जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता, जो अहंकारके नाशका उपाय करिये तौ नष्ट हो जाता है, जिसप्रकार अहंकार नष्ट होवै सो श्रवण करु, सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करि संतके संग जो कथा परस्पर चर्चा करनी, तिसकरि अहंकार नष्ट हो जाता है, जैसे पाणी भरणेकी जेवरीकरि पत्थरकी शिलाको घाँसि पड़ जाती है, तैसे ब्रह्मविद्याका अभ्यासकरि अहंकार नष्ट होता है, अरु शिलाके घसणेविषे कछु यत्न है, अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे रामजी ! सदा अनुभवरूप आत्मा है, तिसका विचार करौ कि, मैं कवन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, गुण क्या हैं, अरु संसार क्या है, जो ऐसे विचारकरि इनका साक्षीभूत होहु, कि मेरेविषे अहं त्वं कोऊ नहीं, इसकरि अहंकारका नाश करौ, अरु तू शुद्ध है, मेरा भी आशीर्वाद है. जो तू सुखी होवै, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब कलना कोऊ न फुरैगी, केवल सुषुप्तिकी नाईं स्थित होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो अहंकार तुम्हारा नष्ट हुआ है, तौ प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं अरु जो अहंकार नहीं तौ सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहांते उपजे हैं, अरु उप-देश कैसे होता है. उपदेशविषे चारों सिद्ध होते हैं, अंतःकरण जो प्रथम उपदेश करनेकी इच्छा होती है, तब अहंकार सिद्ध होता है, अरु जब स्मरण होता है, जो उपदेश करौं, तब चित्त भी चैत्त्यकरि सिद्ध होता है, बहुरि यह उपदेश करिये, यह नहीं करिये, ऐसे संकल्प किये मनकी सिद्धता होती है, बहुरि निश्चय किया यह उपदेश करिये, तब बुद्धिकी

सिद्धता होती है, ताते चारों अंतःकरण सिद्ध होते हैं, तुम कैसे कहते हौ, जो अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु सर्व चेष्टा होती हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मस्वरूपविषे अहंकार आदिक अंतःकरण अरु इंद्रियां कल्पित हैं; वास्तव कछु नही, अरु शास्ता शास्त्र उपदेश भी कल्पना हैं, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संवेदन करिकै अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं, तिसके निवृत्त करणेको प्रवर्तते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तब भयकरि दुःख पाता है, जब किसीने कहा कि, यह जेवरी है, तू भय मत कर, इसको भली प्रकार देख, यह सर्प नहीं; तिसके उपदेश करि वह भली प्रकार देखता है, तब भय शोक तिसका निवृत्त हो जाता है, जो भ्रमकरिकै उसको सर्पभान हुआ था, सो भी मिथ्या है, अरु उसको उपदेश करना जेवरीका सो भी मिथ्या है. काहेते कि, जेवरी तौ आगे सिद्ध है, उपदेशकरि सिद्ध नहीं होती, तैसे जेवरीकी नाईं आत्मा है, तिसका निवृत्त जो चेतन लक्षण तिसको अहंभाव है, तिस अहंकारके निवृत्त करनेको शास्त्र हुए हैं, जो आत्मारूपी जेवरीके प्रमादकरि अहंकाररूपी सर्प फुरा है, तिसके निवृत्त करनेको शास्त्रके उपदेश हुए हैं, आत्माको जताय देते हैं, जब भली प्रकार जेवरीकी नाईं आत्माको जाना, तब सर्पकी नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है, सो नष्ट हो जाता है, जैसे नेत्रविषे मैल होता है, अरु अंजनके पावनेकरि नष्ट हो जाता है, तब ज्योंका त्यों निर्मल नेत्र होते हैं तैसे अज्ञानरूपी जो मैल है, सो गुरु शास्त्रके उपदेशरूपी सुरमेकरि नष्ट हो जाता है, वास्तव न कोऊ अहंकार है, न शास्त्र है, काहेते जो आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है, परंतु तौ भी गुरुशास्त्रकरि जाना जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्‌के साथ चारों अंतःकरण अरु इंद्रियां भी दृष्ट आते हैं, सो तिनविषे सत्यता नहीं होती, जैसे भूना बीज दृष्ट आता है, परंतु उगनेकी सत्यता नहीं राखता, जैसे जला वस्त्र होता है, सो देखनेमात्र है, सत्यता उसविषे कछु नहीं तैसे ज्ञानवान्‌को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता, तिसकरि कष्ट नहीं पाता. जैसे सूर्यकी किरणोंकरि मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तिसको देखिकरि जलपान करणेनिमित्त मृग दौडत

है, अरु दुःखी होता है, तैसे दृष्यरूपी मरुस्थलविषे पदार्थरूपी जलाभास है, तिसको देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं, अरु दुःख पाते हैं, जब ज्ञानरूपी वर्षाकरि आत्मारूपी जल चढा तब चित्तरूपी मृग कहां दौडैं ? जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है, अरु अनुभवरूपी जल चढता है, तब चित्तरूपी मृग तिसविषे यत्नरूपी जो फुरणा था, सो नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! अहंकार अविचारते सिद्ध है, विचारते क्षीण हो जाता है, जैसे बर्फकी पुतली सूर्यकी किरणोंकारि क्षीण होती है, जब अधिक तेज होता है, तब जलरूप हो जाती है, बर्फकी संज्ञा नहीं रहती तैसे अहंकाररूपी बर्फ विचाररूपी किरणोंकारि क्षीण हो जाता है, जब दृढ़ विचार होता है, तब अहंकारसंज्ञाहू नष्ट हो जाती है, केवल आत्मा हो रहता है ॥ राम उवाच ॥ हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन् ! जिसका अहंकार नष्ट हुआ है, तिसका लक्षण क्या है, सो कहौ ॥ वसिष्ट उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो या संसार है, तिसविषे पदार्थकी भावनाकरि नहीं गिरता, अरु क्षमा शांति आदिक शुभ गुण तिसको स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होती हैं, अरु क्रोध भी तिसका नष्ट हो जाता है, देखनेमात्र भासता है, तौ भी अर्थाकार नहीं होता, जो विषमताकरिकै भिन्न भावना अंतरते नहीं फुरती, केवल सत्तासमानविषे स्थित होता है, जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है, अरु वर्षाते रहित होता है, तैसे इंद्रियोंकी चेष्टा अभिमानते रहित होकरि करता है, जैसे वर्षा ऋतुके जानेकरि कुहिड नहीं रहती, तैसे अभिमान चेष्टा तिसकी नष्ट हो जाती है, अरु लोभभी तिसके मनते जाता रहता है, जैसे वनको अग्नि लगती हैं, अरु पक्षी तिस वनको त्याग जाते हैं, तैसे लोभरूपी मृग तिसको त्याग जाते हैं, तिसके मनविषे कामना कोऊ नहीं रहती, जैसे दिनविषे उलूक पिशाच नहीं विचरते, जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तहाँ संपूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है, शांतरूप आत्माविषे स्थित रहता है, जैसे पैंदोई दो पोटको ज्येष्ठ आषाढकी धूपविषे उठावता है, अरु गरमी होती है, थकता भी है, तिसको डारिकरि वृक्षके नीचे सुखसों स्थित

होता है, तैसे वासनारूपी पोट है, अज्ञानरूपी धूप है, तिसकारि दुःखी होता है, ज्ञानरूपी बलकारि वासनारूपी पोटको डारिकै सुखसों स्थित होता है ॥ हे रामजी ! भोगभावना तिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है बहुरि दुःख नहीं देती, जैसे गरुडको देखकारि सर्प भागता है, बहुरि निकट नहीं आता तैसे ज्ञानरूपी गरुडको देखिकारि भोगरूपी सर्प भागते हैं, बहुरि निकट नहीं आते, आत्मपदको पायकारि शांतिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होते हैं, भाव अभाव पदार्थ तिसको स्पर्श नहीं करते, संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है, सो ज्ञान समुझने मात्रहै, कछु यत्न नहीं. संतपास जायकारि प्रश्न करना, मैं कौन हौं, जगत् क्या है, परमात्मा क्या है, अरु भोग क्या हैं, इनको तारिकारि कैसे परमपदको प्राप्त होवै, बहुरि जो ज्ञानवान् उपदेश करै, तिसके अभ्यासकारि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे अन्यथा न होवैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतलक्षण-माहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ९५.
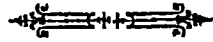
इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार तुम्हारा बडा इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकारि विचरा है, तैसे तुम भी विचरौ, तुम भी तिस कुलते उपजे हौ ॥ हे रामजी ! इक्ष्वाकुराजा सूर्यवंशी होत भया है, सो मनुका पुत्र अरु सूर्यका पौत्र सब राजाते श्रेष्ठ था, जैसे पितरोंका राजा धर्म है, अरु बर्फकी नाईं तिसका शीतल स्वभाव था, जैसे सूर्यको देखिकारि मणिते तेज प्रगट होता है, तैसे तिसको देखिकारि शत्रु तपाय-मान होवै, ऐसा परंतप था, साधु अरु मित्र प्रजाको रमणीय भासै, तिसको देखिकारि सब शांतिवान् होवै, जैसे चंद्रमाको देखिकारि चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे उसको देखिकारि प्रसन्न होवै, अरु पाप रूपी वृक्षोंके काटनेहारा कुहाडा अरु मित्रका सुखदायक जैसे मोरोंका मेघ सुखदायक है, अरु सुंदर ऐसा जिसको देखिकारि लक्ष्मी स्थित हो-

रही है, दरिद्री कदाचित् न होवै, तिसके यशकरिसंपूर्ण पृथ्वी पूरिरहीथी, जैसे चंद्रमाकी चांदनीकरि रात्रि पूर्ण होती है, ऐसा राजा भली प्रकार प्रजाकी पालना करतभया. एक काल तिसके मनविषे विचार उपजा कि जरा मरण आदिक संसारविषे बडा क्षोभ है, इस संसारदुःखके तरणेका उपाय कौन है, ऐसे विचारता था कि, एक समय शंभु मुनि ब्रह्मलोकते आया, तिसका भली प्रकार पूजन किया, अरु कहत भया ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम्हारी कृपाका जो पराक्रम है, सो मेरे हृदयविषे बैठिकरि प्रश्न करनेको प्रेरता है, ताते मैं प्रश्न करता हौं ॥ हे भगवन्! मेरे हृदयविषे संसार फुरता है, जैसे समुद्रको बडवाग्नि जलाताहै, तैसे मुझको संसार जलाता है, ताते सोई उपाय कहौ जिसकरि मुझको शांति प्राप्त होवे॥ हे भगवन्! यह संसार कहांते उपजा है, अरु दृश्यका स्वरूप क्या है, अरु कैसे निवृत्त होता है, जैसे जालसों पक्षी निकसि जाता है, तैसे जन्म मरण संसार महाजाल है, तिसते निकसनेका उपाय मुझको कहौ, जैसे वरुण सब स्थान समुद्रके जानता है, तैसे तुम जगत्के सब व्यवहारको जानते हौ, अरु संशयरूपी वृक्षके काटनेहारे तुम कुहाडे हौ, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्ता तुम सूर्य हौ, तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं शांतिको प्राप्त होऊँगा ॥ मुनिरुवाच ॥ हे साधो! मैं चिरकालपर्यंत जगत्विषे विचरता रहता हौं परंतु ऐसा प्रश्न किसीने नहीं किया, तुझने परमसार प्रश्न किया है, सर्व अनर्थके नाश करनेहारा प्रश्न है, तेरी बुद्धि विवेककरि विकासमान हुई दृष्ट आती है ॥ हे राजन्! जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे गंधर्वनगर जैसे मरुस्थलविषे जल, जैसे सीपीविषे रूपा, जैसे आकाशविषे नीलता, दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत् असत्यरूप है, जैसे जलविषे चक्रतरंग असत्रूप हैं, तैसे जगत् असत्रूप है, अरु जो मन सहित षट् इंद्रियोंते अतीत है, अरु शून्य भी नहीं, सो सत् अविनाशी आत्मा कहाता है, सो निर्मल परमब्रह्म सर्व ओरते पूर्ण अनंत है, तिसविषे जगत् कल्पित है ॥ हे राजन्! जैसे सर्व वृक्षोंविषे एकही रस व्यापक है, तैसे सर्व पदार्थोंविषे एक

चिन्मात्रसत्ता व्यापक है, जैसे समुद्र अचलविषे द्रवताकरिकै तरंग फुरते हैं, तैसे परमात्माविषे जगत् फुरते हैं, तिस महादर्पणविषे सर्व-वस्तुजात प्रतिबिंब होते हैं, जैसे समुद्रविषे कोऊ तरंगरूप, कोऊ बुद्बुदे चक्रादिक होते हैं, तैसे आत्माविषे जीवादिक आभास होते हैं, प्रथम फुरणरूप होते हैं, पाछे कारणकार्यरूप होते हैं, सो चित्तशक्ति अपने संकल्पते भूतादिक देह रचिकर तिसविषे स्वरूपके प्रमादकरि आत्म-अभिमान करता है, जैसे पुराणको अपनी क्रिया अपने बंधनके निमित्त होती है, तैसे इसको अपना संकल्प अपने बंधनका कारण होता है, हे राजन्! जीवकलाको स्वरूपका अज्ञान हुआ है, सो जैसे बालकको अपनी परछाईं यक्षरूप होकरि भय देती है तैसे यह नानाप्रकारके आरंभको प्राप्त हुआ है, अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरणेकरिकै कारणभावको प्राप्त हुआ है, तिसकरि बंधअरु मोक्ष भासते हैं, वास्तवते न बंध है,न मोक्ष है, निरामय ब्रह्महीअपनेआपविषेस्थित है, तिसविषे एक अरु अनेक कहना कछु नहीं, ताते बंधमोक्षकी कल्प-नाको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६.

राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! जैसे द्रवताकरिकै जलही तरंग भावको प्राप्त होता है, तैसे चिन्मात्रही संकल्पके फुरणेकरि जीव होता है, सो जीव संसारविषे कर्मोंके वशते भ्रमता हुआ, आपको कर्ता देखता है, अरु सर्वात्मा परमब्रह्म कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता, जैसे सूर्यकरि सब चेष्टा होती है, अरु सूर्य अकर्ता है, तैसे आत्माकी शक्तिकरि जगत् चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पत्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है, तैसे आत्माकी चेतनताकरि सब देहादिक चेष्टा करता है, अरु आत्मा सदा अकर्ता है, जैसे जलविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे देहादिक फुरते

हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषणकल्पना होती है, तैसे आत्माविषे मोहकारि दुःख सुख कल्पते हैं, आत्माविषे कल्पना कछु नहीं, शुद्ध आत्माविषे मूढने सुखदुःखकी कल्पना करी है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनको मन चित्त सुख दुःख सब आकाशरूप हैं, वह देहते रहित केवल चिदाकाशभावको प्राप्त होते हैं, जरामरणको नहीं प्राप्त होते, सब कार्यको करते दृष्ट आते हैं, अरु अंतरते सदा अकर्तारूप हैं, जैसे जल अरु दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब पड़ता है, परंतु स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्श नहीं करती, शरीरके व्यवहारविषे भी वह सदा निर्मलभाव है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है, परंतु भ्रमकरिकै चंचल भासता है, जैसे जलकी चंचलताकरिकै पर्वतका प्रतिबिंब भी चंचल होता है, तैसे देहादिककरि आत्मा चलता भासता है, सो आत्मा नित्य शुद्ध अपने आपविषे स्थित है, जैसे घटके नाश हुए घटत्वनाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे शुद्ध मणिविषे नानाप्रकारके प्रतिबिंब होते हैं, तिनकरि रंजित नहीं होती, तैसे आत्माविषे मन इंद्रियाँ देह दृष्ट आते हैं, सो स्पर्श नहीं करते, जैसे मिष्ट पदार्थविषे मिठाई एकही व्यापी है, तैसे सब पदार्थविषे एक आत्मसत्ता व्यापी है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है, परंतु अज्ञानकरिकै चलरूप भासता है, जैसे दौडतेहुए बालकको सूर्य दौडता भासता है, तैसे आत्मा देहके संगते अज्ञानकरि विकारवान् भासता है, जैसे प्रतिबिंबका विकार आदर्शको नहीं स्पर्श करता, तैसे देहका विकार आत्माको स्पर्श नहीं करता, जैसे अग्निविषे स्वर्ण डारिये, तब मैल दग्ध हो जाता है, स्वर्णका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, सो आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिंत्यरूप है ॥ हे राजन्! चिंतवणेविषे नहीं आता परंतु चेतन वृत्तिकरि देखता है, जैसे राहु अदृष्ट है, परंतु चंद्रमाके संयोगकरि दृष्ट आता है, तैसे आत्मा अदृष्ट है, परंतु चेतनवृत्तिकरि जानाजाता है, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे निर्मल बुद्धिविषे आत्मा साक्षात् भासता है, सो संकल्पते रहित अपने आपविषे स्थित है, जब बुद्धि निर्मल होती है, तब अपने आपविषे तिसको पाती है ॥ हे राजन्! शास्त्रोंकरि

परमेश्वर नहीं पायाजाता, अरु गुरुकारि भी नहीं पायजाता, जबलग अपनी बुद्धि निर्मल न होवै, जब अपनी बुद्धि सत्पदविषे निर्मल होवै,तब अपने आपकारि देखता है, सो बुद्धि कैसे निर्मल होतीहै, जब संसारकी सत्यता हृदयते दूर होवै, अरु आत्माका अभ्यास होवै, तब बुद्धि निर्मल होती है ॥ हे राजन्। सर्व भाव अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं, सो असत् हैं, केवल भ्रममात्र हैं, तिनकी आस्थाका त्याग करु, जैसे कोऊ मार्गमें चलता है, अरु मार्गविषे अनेक मिलते हैं, परंतु तिनविषे रागद्वेष कछु नहीं होता, तैसे देह इंद्रियांसाथ स्नेहते रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आप विषे स्थित हैं, तिसीविषे देहादिक इंद्रजालकी नांई मिथ्या हैं, तिनकी भावना दूरते त्यागिकारि नित्य आत्मा शीतल चित्तविषे स्थित होहु ॥ हे राजन् । अपना मित्र आपही है, अरु शत्रु भी अपना आपही है, काहेते कि, आत्माविषे अपरकी ठौर नहीं, आत्माविषे आत्माका भाव है,अपर द्वैत कछु नहीं, इस कारणते अपना आपही शत्रु है, आपही अपना मित्र है,जो दृश्य पदार्थका अनात्मधर्मविषयोंकी ओरसों खैंचिकारि चित्तको अपने आपविषे स्थित करता है, सो अपना आपही मित्रहै, अरु जो अनात्मधर्मविषे पदार्थकी ओर चित्तको लगाता है, सो अपना आपही शत्रु है, अरु वास्तवते जेता कछु दृश्यजाल है सो भी आत्मारूप है, आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रजलते इतर कछु वस्तु नहीं, जल ही जल है,तैसे आत्माते इतर जगत् कछु वस्तु नहीं,सबविषे अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे अनेक घटके जलविषे एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिंब होता है,तैसे अनेक देहोंविषे एकही आत्मा व्यापि रहा है, सो न अस्त होता है न उदय होता है, सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंका त्यों स्थित है, तिसविषे अहंभावना करिकै संसार भासता है, जैसे सीपीविषे रूपेकी बुद्धि होती है, तैसे आत्माविषे अहंबुद्धि संसारका कारण है, इस बुद्धिकरि सर्व दुःखका भागी होता है; जैसे वर्षाकालकारि सब नदियाँ समुद्रविषे आय प्रवेश करती हैं, तैसे अनात्म अभिमान करिकै सब आपदा आनि प्राप्त होती हैं, वास्तवते चिन्मात्र अरु जीवविषे रंचक भी भेद नहीं, एकही रूप है, ऐसी जो बुद्धि है, सो बंधनते मुक्तिका कारण है,

आत्मा सर्वविषे अनुस्यूत व्यापा है, जैसे सूर्यकाप्रकाश सर्वठौरविषे होता है, परंतु जहां शुद्ध जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु शुद्ध बुद्धिविषे भासता है, जैसे तरंग बुद्बुदेविषे जलही व्याप रहा है, तैसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलनाते रहित सर्वत्र व्यापा है, जैसे स्वर्णविषे भूषण नहीं, तैसे आत्माविषे जगत्का अभाव है॥ हे राजन्! यह संसार आत्माविषे नहीं, केवल आत्माही है, जो एक वस्तु पात्रकी नाईं होती है, तिसविषे दूसरी वस्तु होती है, आत्मा तो अद्वैत है, दूसरी वस्तु संसार कहां होवे, अरु स्वर्णविषे भूषण जैसे चित्तकरि कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं. तैसे आत्माविषे संसार अज्ञानकरि कल्पित है, वास्तव कछु नहीं, केवल चिदाकाश है, जैसे नदियां अरु समुद्र नाममात्र हैं, सो जलही है, तैसे केवल चिदाकाशविषे विश्व नाममात्र है, अरु जेते आकार भासते हैं, तिनका काल भक्षण करता है, जैसे नदियोंको समुद्र भक्षण करिकै अघाता नहीं, तैसे पदार्थ समूहको काल भक्षण करता अघाता नहीं ॥ हे राजन्! ऐसे पदार्थविषे अभिलाषा करनी क्या है, कई कोटि सृष्टि तपती होती हैं, तिनको काल भक्षण अबलग करता है, कोऊ पदार्थ कालते मुक्त नहीं होता, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे कई उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, ताते तू कालते अतीत पदकी भावना करु, जो कालको भी भक्षण करै, कैसे भावना करिये अरु कैसे भक्षण करिये सो श्रवण करु, जैसे मंदराचलने अगस्त्यमुनिके आनेकी भावना करी है, तैसे तू अपने स्वरूपकी भावना करु, तब कालको भक्षण करैगा. जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रका भक्षण किया था, तैसे आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रको भक्षण करैगा ॥ हे राजन्! जन्ममरणादिक जो विकार हैं, सो भ्रमकरिकै हैं, आत्माके प्रमादकरि भासतेहैं, जब आत्माको निश्चयकरि जानैगा, तब विकार कोऊ न भासैगा काहेते कि, अज्ञानकरि रचेहैं, आकाशविषे कोऊ नहीं, जैसे जेवरीविषे भ्रमसंयुक्त सर्पभासताहै सो तबलग है, जबलग जेवरीको नहीं जाना, जब जेवरीको जानै तब सर्पभ्रम निवृत्त होजाताहै, तैसे जन्म मरणआदिक विकार आत्माविषे तबलग भासते हैं, जबलग आत्माको नहीं जाना जब आत्माको जानैगा

तब सर्वविकार नष्ट हो जावैंगे ॥ हे राजन् ! ऐसा आत्मा विकारतेरहित तेरा स्वरूप है, तिसकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अरु आत्मपदको कहूँ खोजने नहीं जाना, अरु किसी वस्तुको जायकरि ग्रहण नहीं करना कि, यह आत्मा है, अरु किसी कालकी अपेक्षाभीनहीं कि इसकालकरि पावैगा, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है, अरु सर्वदा अनुभवरूप है, तुझते इतर कछु वस्तु नहीं, तू आपको ज्योंका त्यों जान, आत्माके न जाननेकरि आपकों दुःखी जानता है कि, मैं मरौं, दरिद्री हौं, मैं दास हौं, इत्यादिक दुःख तबलग होते हैं,जबलग आत्माको नहीं जाना, जब आत्माको जानैगा, तब आनंदरूप हो जावैगा, जैसे किसी स्त्रीके गोदविषे पुत्र होवै, अरु स्वप्नविषे देखतभई कि, बालक मेरे पास नहीं, तब बड़े दुःखको प्राप्त भई, अरु रुदन करने लगी, जब स्वप्नते जागै, तब देखै कि बालक मेरे गोदविषे है, अरु एता दुःख मैं भ्रमकरिकै पाया है, बडे आनंदको प्राप्त भई, अरु दुःख शोक नष्ट होगए ॥हे राजन् ! तिसी प्रकार आत्मा तेरा अपना आप है, अरु सदा अनुभवरूप है,तिसके प्रमादकरि तू आपको दुःखी जानता है, जब अज्ञानरूपीनिद्राते तू जागैगा, तब आपको जानैगा, अरु दुःख शोक तेरे नष्ट हो जावैंगे, सो अज्ञानरूपी निद्रा क्या है, श्रवण करु, देह इंद्रियादिक जो दृश्य हैं, तिनसाथ मिलिकरि आपको जानना कि, मैं हौं, यह अज्ञाननिद्रा है, इसते रहित होकरि देख जो आनंदको प्राप्त होवे,अरु जेते यह पदार्थ भासतेहैं सो मिथ्या हैं, जैसे बालक मृत्तिकाविषे राजा अरु सैन्य अरु हस्ती घोड़ा कल्पता है, सो न कोऊ राजा है, न सैन्य है, न कोऊ हस्ती घोड़ा है एक मृत्तिकाही है, तैसे चित्तरूपी बालकने आत्मरूपी मृत्तिकाविषे राजा अरु सैन्य आदिक संपूर्ण विश्व कल्पी है, सो मिथ्या है ॥ हे राजन् ! एक उपाय तेरेको कहता हौं सो करु, जो दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, एक वस्तुका त्याग करु, सो कौन है, अहं अभिलाषसहित जो फुरना है, तिसका त्याग करि जहां इच्छा है, तहां विचरु, तेरेको दुःखका स्पर्श न होवैगा, संकल्पही उपाधि है, अपर उपाधि कोऊ नहीं, जैसे मणि तृणकरि आच्छादित होती है, जब तृण दूर करिये, तब मणि प्रगट

हो आती है, तैसे आत्मरूपी मणि वासनारूपी तृणकरि आच्छादित है, जब वासनारूपी तृण दूर करिये तब आत्मरूपी मणि प्रगट हो आवै॥ हे राजन् ! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिते रहित जो आत्मपद है, जब तिसको प्राप्त होवैगा, तब जानैगा कि मैं मुक्त हौं, सो तेरा स्वरूप है, तिस पद-विषे स्थित होहु, जो केवल आत्मरूप है, अरु अजन्मा है, नित्य है, अरु चेतनमात्र है, सर्वका अपना आप है, तिसके प्रमादकरि दुःख होता है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं, हस्ती घोडा नाम कल्पते हैं, अभिमान करते हैं कि, मेरे हैं, अरु तिनके नाश होनेकरि दुःखी होते हैं, तैसे अज्ञानी जो है बालकरूप सो स्वरूपके प्रमादकरि अभि-मान करता है, यह मेरे हैं, मैं इनका हौं, तिनके नाश होनेकरि दुःखी होता है, ऐसे नहीं जानता कि, सत्का नाश नहीं होता, असत्के नाश होनेकरि सत्का नाश मानता है, जैसे घटके नाश होनेकरि घटाकाश नाश मानिये, तैसे मूर्खताकरिकै दुःख पाता है॥ हे राजन् ! तू आपको आत्मा जान, अरु आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रोंने कल्पी है, जतानेके निमित्त, नहीं तौ आत्मा अनिर्वाच्य पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, अरु इनहींकरि जानता है, काहेते कि, मनवाणी-विषे भी आत्मसत्ता है, तिसीकरि आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं, जैसे जेते कछु स्वप्नके पदार्थ हैं, तिनविषे अनुभवसत्ता है, तिसीकरि पदार्थ सिद्ध होते हैं, तैसे जेती कछु अर्थसंज्ञा हैं, सो सब आत्माकरि सिद्ध होती हैं, ऐसा जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरे जरा मृतादिक दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन् ! जब निस्पंद होकरि देखैगा, तब स्पंद-विषे भी वही भासैगा, स्पंद निस्पंद तुल्य हो करि भासैंगे, जो समाधि विषे होवैगा, अथवा ऐसेही चेष्टा करैगा, तौ भी तुल्य होवैगी, न समाधिविषे शांति भासैगी, न चेष्टाविषे दुःख भासैगा, दोनोंविषे एकरस रहैगा, विषमता कछु न भासैगी ॥ हे राजन् ! जो कछु प्रकृत आचार आय प्राप्त होवै, देना अथवा लेना; यज्ञ दान आदिक क्रिया है, तिसको मर्यादासहित अरु शास्त्रकी विधिसंयुक्त करु, अरु निश्चय आत्मा स्वरूपविषे होवै, जैसे नट स्वांगको धारि संपूर्ण चेष्टा

करता है, अरु निश्चय तिसविषे नटत्वहीको राखता है, तैसे तुम सर्व चेष्टा करौ तिसके अभिमान अरु संकल्पते रहित होहु, ग्रहण अथवा त्याग जो कछु स्वाभाविक आय प्राप्त होवै, तिसविषे ज्योंके त्यों रहौ, जब निर्विकल्प होकरि अपने स्वरूपको देखेगा, तब उत्थान कालविषे भी तेरे तांई आत्माही भासैगा, जैसे जलके जाननेते तरंग फेन बुद्बुदा सर्व जलही भासते हैं, तैसे जब तू आत्माको जानैगा, तब तुझको संसार भी आत्मरूप भासैगा, अरु जो आत्माको नहीं जानता तिसको जगत्ही दृष्ट आता है, तिसकरि दुःख पाता है, ताते तू अंतर्मुख होहु, संकल्पको त्यागिकरि परम निर्वाण अच्युत पदविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ७९.

मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

मनुरुवाच ॥ हे राजन् ! यह जो संकल्प पुरुष है, सो संकल्पकरिकै आप बँधाता है, अरु आपही मुक्त होता है, जब संकल्पकरि दृश्यकी भावना करता है, तब जन्ममृत्युको पाता है, अरु दुःखी होता है, आपही संकल्प करता है, आपही बंधनको प्राप्त होता है, जैसे घुराण कीट आपही गुफा बनाती है, अरु आपही तिसको मूँदकरि फँसती है, तैसे अपने संकल्पकरि आपही दुःख पाता है, अरु जब संकल्पको अंतर्मुख करता है, तब मुक्त होता है, अरु मुक्तिही मानता है, ताते हे राजन् ! संकल्पको त्यागिकरि आत्मा जो सर्वका अपना आप है, तिसकी भावना करु, जो तू सुखी होवै ॥ हे राजन् ! आत्माके प्रमादकरि देह आस्थाकी भावना हुई है, तिसकरि दुःख पाता है, ताते आत्मस्वरूपकी भावना करु कि तू आत्मा, है चिद्रूप है, महाआश्चर्यमाया है, जिसने संसारको मोह लिया है, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अंग अंग व्यापी है, तिसको नहीं जानते यही आश्चर्य है ॥ हे राजन् ! आत्मा सदा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार आत्माके प्रमादकरि फुरणेते

हुआ है, सो सत् भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, जो आत्माते भिन्न करि देखिये, तौ मिथ्या है, ताते सत् नहीं, अरु आत्माविना दूसरा है नहीं, सर्वात्मा है, ताते असत भी नहीं, तू आत्माकी भावना करु, जो कछु पदार्थ भासते हैं सो आत्माते भिन्न न जान, सर्वात्माही है, जो आत्माविना अपर भावना है, तिसका त्याग करु ॥ हे राजन् ! जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलते इतर नहीं जलही ऐसे भासता है, तैसे जगत् जो दृष्ट आता है, सो आत्मा है, ऐसे भासता है, जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, आत्माही जगत्रूप है, अरु भिन्न भिन्न जो आकार भासते हैं, सो चित्तशक्तिकरिकै हैं, इतर नहीं, आत्मसत्ता है, जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिकको जलाता है, सो लोहेकी अपनी सत्ता नहीं, अग्निकी है, तैसे चेतनकी सत्ता जगत्रूप होकरि स्थित भई है, अरु आत्मा सदा केवलरूप है, जिसविषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं, न सत् है, न असत है, न कोऊ देश है, न काल है, न कोऊ पदार्थ है, केवल चेतन मात्र गुणातीत है, न कोऊ गुण है, न माया है, केवल शांतरूप आत्मा है ॥ हे राजन् ! न शास्त्रों करि पाता है, न गुरुके वचनकरि पाता है; न तपकरि पाता है, केवल अपने आपकरि जाना जाता है, शास्त्रादिक लखायदेते हैं, परंतु इदं करि नहीं जनाते, जो द्रष्टा पुरुष अपने आपकरि जानता है, जैसे सूर्यकी ज्योति नेत्रविषे है, सोई सूर्यको देखती है, तैसे आत्माही आत्माको देखता है, अंतर्मुख होकरि संकल्पते रहित हुआ अपने आपको देखता है, जब संकल्प बहिर्मुख होता है, तब वही दृढ़ होकरि स्थित होता है, बहुरि तिसकी भावना होती है, जब संकल्परूप जगत् दृढ़ताकरि स्थित होता है, तब दुःखदायी होता है ॥ हे राजन् ! अपर दुःखदायी तिसका कोऊ नहीं, अपनेही संकल्पकरिकै असम्यक्दर्शी दुःखी होता है, अरु सम्यक्दर्शीको जगत् दृष्ट भी आता है, तौभी दुःखदायी नहीं होता जैसे जेवरीविषे सर्पकी भावना होती है, तब भयको प्राप्त होता है, जब जेवरीके जाननेते सर्पभावना दूर भई तब भय भी जाता रहता है, तैसे जिस पुरुषको संसारकी भावना होती है, सो

दुःखदायी है, ताते आत्माकी भावना करु, जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन् ! तू सर्वदा आनंदरूप है, अरु अद्वैत है, तेरेविषे कल्पना कोऊ नहीं, तू आत्मस्वरूप है अरु आत्मा षट्विकारते रहित है, विकार मिथ्या देहके हैं, आत्मा शुद्ध है, आत्माके प्रमादकरिकै विकार भासते हैं, जब तू आत्माको जानैगा, तब विकार कोऊ न दृष्ट आवैगा, काहेते कि, आत्मा अद्वैत है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो आत्मा अद्वैत है, जो इसप्रकार है तौ पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थररूप महाबड़े आकार बनिकै कहांते उपजे हैं, इसका रूप क्या है, सो कृपा करिकै कहौ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन् ! आत्माविषे संसार कोऊ नहीं, सदा शांतरूप है, अरु निराकार है, तिसविषे स्पंद निस्पंद दोनों शक्ति हैं, जब निस्पंदशक्ति होती है, तब केवल अद्वैत भासता है, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब जगत्‌के नानाप्रकारके आकार भासते हैं, वास्तवते आत्माही है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु अपर नहीं, वहीरूप हैं, पवनके संयोगते फुरते हैं, तौ भिन्न भिन्न दृष्ट आते हैं, तैसे फुरणशक्तिकरि अहंकार - भिन्न भिन्न भासते हैं, वास्तवते आत्मस्वरूप हैं, इत कछु नहीं, जैसे वटका बीज होता है, अरु तिसविषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्ट आते हैं, तैसे आत्मसत्ताके नानाप्रकारके आकार धारे यद्यपि दृष्ट आते हैं, तौ भी बना कछु नहीं, केवल आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है, अरु सूक्ष्मते भी अतिसूक्ष्म है, अरु पर्वत आदिक जो विश्व भासता है, सो आत्माका चमत्कार है, जैसे स्वप्नविषे पर्वत वृक्षादिक नानाप्रकारके आकार भान होते हैं, तौ भी अनुभवरूप हैं, तिसते इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत् विश्व भी आत्मा अनुभवरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन् ! जो आत्मा सूक्ष्म है, तौ पर्वतादिक स्थूल असतरूप सत् होकारि कैसे भासता है, सो कृपा करिकै कहौ ॥ ॥मुनिरुवाच॥ हे राजन् ! आत्मा अनंतशक्ति है, सो शक्ति आत्माते भिन्न नहीं, वहीरूप है, जैसे सूर्यकी किरणैं सूर्यते भिन्न नहीं, तैसे आत्माकी शक्ति आत्माते भिन्न नहीं, जैसे पवनविषे दो शक्ति हैं, स्पंद अरु निस्पंद सो वहीरूप हैं, स्पंदशक्तिकरि प्रगट भासता है, अरु

निस्पंदकरि प्रगट नहीं भासता, तैसे आत्माविषे स्पंद निस्पंद दो शक्ति हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब अहंभाव प्रगट होता है, जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदय होता है, अहंही चित्त है, जब चित्त हुआ तब आकाशकी भावनाते आकाश बन जाता है, जब स्पर्शकी भावना हुई, तब पवन उत्पन्न होता है, जब रूपकी भावना करी तब अग्नि बन गई, जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ, इसीप्रकार चित्तकी कल्पनाकरि तत्त्व उपजे हैं, जब चारों तत्त्वका समष्टि भया, तब एक अंड हुआ, जब दृढ संकल्प किया, तब स्वयंभू मनु हुआ, जब अंड फुले तब तीन लोक हुए, स्वर्ग मध्य अरु पाताल, सो तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्त्विक तामस हुए, बहुरि पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ सर्व हुए ॥ हे राजन् ! केवल संकल्पमात्रही सब हुए हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब इसप्रकार आत्माविषे भासते हैं, परंतु बना कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे फेन बद्बुदे फुरते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, अरु आदिमनु जो स्वयंभू है, तिसने संकल्पकारि आगे मन कल्पे हैं, त्रिगुणमय सृष्टि इसप्रकार उत्पन्न होती है, सो केवल संकल्पमात्र है, जबलग चित्त है, तबलग विश्व है, जब चित्त फुरणेते रहित हुआ, तब निस्पंदशक्ति होती है, जब निस्पंद हुई, तब बहुरि जगत् नहीं दिखाई देता ॥ हे राजन् ! यह विश्व मनके फुरणेविषे है, अरु सत्यकी नाईं स्थित हुआ है, सो श्रवण करु. सत् जो है, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाता है, सो नहीं भासता, अरु जो असत् है, सो सत्यकी नाईं भासता है, सत् कैसे असत्की नाईं हुआ है, अरु असत् कैसे सत्की नाईं हुआ है सो सुन. सत् जो है, सर्व देश, सर्व काल सर्व वस्तु पाता है, सो नहीं भासता अरु असत् जो है परिच्छिन्नरूप देश काल वस्तु परिच्छेदसंयुक्त है सो सत्की नाईं हुआ है, जहां देखिये तहां दृश्यही गुणमय संसार भान होता है, महाआश्चर्यरूप माया है जिसने सत्यको असत्यकी नाईं किया है, अरु असत्को सत्की नाईं स्थित किया है, सो चित्तके संबंधकारि संसार भासता है आत्माविषे संसार कोऊ नहीं, जब चित्तको स्थित कारि देखैगा, तब तेरे ताईं संसार न भासैगा, जैसे

गंभीर जल होता है, तौ चलता नहीं भासता कि कहां जाता है, तैसे गंभीर जो आत्मा है, तिसविषे संसार नहीं जनाता, कि कहां फुरता है, अरु संसारभी आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, आत्मास्वरूपही है, जैसे अग्निके चिणगारे अग्निते भिन्न नहीं अरु जलके तरंग जलते भिन्न नहीं अरु मणिका प्रकाश मणिते भिन्न नहीं, तैसे आत्माते संसार भिन्न नहीं, केवल आत्मस्वरूप है, ऐसे आत्माको जानिकरि शांतिवान् होहु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, केवल शांत पद आत्मा है, सो तेरा अपना आप है, अपने स्वरूपको भूलिकै दुःखी हुआ है, जब आत्माको जानैगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासैगा, काहेते कि आत्मस्वरूप है, आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं, ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूप है, यही भावना दृढ करु, ऐसी भावना जिसकी दृढ है, अरु सब इच्छा शांत हो गई हैं, तिस पुरुषको दुःख कोऊ नहीं लगता, उसने निरिच्छारूपी कवच पहिरा है ॥ हे राजन्! अहं अर्थते रहित जो पुरुष है, सर्व जिसको शून्य हो गया है, निरालंबका आसरा किया है, सो पुरुष मुक्तिरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनवर्णनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८.

परमनिर्वाणवर्णनम् ।

मनुरुवाच ॥ हे राजन्! यह संसार आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे जल अरु तरंग भिन्न नहीं, जैसे सूर्य अरु किरण भिन्न नहीं, जैसे अग्नि अरु चिणगारे भिन्न नहीं, तैसे आत्मा अरु संसार भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे इंद्रियोंके विषय इंद्रियोंविषे रहते हैं, तैसे आत्माविषे संसार है, जैसे पवनविषे स्पंद निस्पंद शक्ति हैं, सो पवनते भिन्न नहीं, तैसे आत्माते भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप है ॥ हे राजन्! विषयकी सत्यताको त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु, जो तेरे संशय

मिटि जावैं, तू आत्मस्वरूप है, अरु निर्गुण है, तुझको गुणोंका स्पर्श नहीं होता, तू सर्वते परे है, जैसे आकाशविषे धूड अरु धुवाँ अरु मेघ बादल विकार भासते हैं, अकाशको लेप कछु नहीं करते, केवल आकाश अद्वैतरूप है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष जिसको आत्मज्ञान भया है, तिसको सुख दुःख राजस तामस सात्त्विक गुण लेप नहीं करते, तिन-विषे दृष्टि भी आते हैं, लोक दृश्य कारि तौ भी अपनेविषे नहीं देखते, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं, जैसे शुद्ध मणिविषे नील पीत आदिक प्रतिबिंब पडते हैं, सो देखनेमात्र हैं, मणिको स्पर्श नहीं करते, तैसे जिस पुरुषके हृदयते वासना मल दूर भई है, तिसके शरी-रको संबंधकरिकै राजस सात्त्विक तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख देखने मात्र होते हैं, परंतु स्पर्श नहीं करते, केवल सत्तासमान पदका निश्चय तिसविषे होता है अपर रंग उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशको धूडका लेप नहीं होता, तैसे आत्माको गुणोंका संबंध नहीं होता, जो पुरुष ऐसे जानता है, तिसको ज्ञानी कहते हैं, जब निस्पंद होता है, तब आत्मा होता है, जब स्पंद होता है, तब संसारी होता है, जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासती हैं, जब चित्त फुरनेते रहित हुआ, तब संसारका अत्यंत अभाव होता है, प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता जो पूर्व सृष्टि थी, अब लीन होगई है, संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है, ताते हे राजन् ! वासनाको त्याग, चित्तको स्थिर करु, यह वासनाही मल है, जब वासनाका त्याग हुआ, तब केवल आकाशकी नाईं आपको स्वच्छ जानैगा, सो आत्मा वाणीका विषय नहीं, केवल आत्म-त्वमात्र है, अरु अपने आपविषे स्थित है, सर्वदा उदयरूप है, अरु विश्वभी आत्माका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्माते विश्व भिन्न नहीं आत्मरूप है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है, सो अज्ञानकरिकै भासती है, आत्मा सर्वदा एकरूप है, अरु त्रिपुटीते रहित है, फुरणेकरिकै आत्माही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे स्वप्नविषे एक अनुभवरूप होता है, अरु चेतनताकरिकै काल विषमतारूप हो भासता है, सो दूसरी

वस्तु कोऊ नहीं, तैसे आत्माही त्रिपुटीरूप भासता है, ताते चित्तको स्थिर करि देख, आत्माते भिन्न कछु वस्तु नहीं, अरु फुरणेविषे संसार है, जब फुरणा मिटिगया, तब संसारभी मिटि जाता है, सो फुरणा कैसे मिटता है, अरु स्वरूपकीप्राप्ति कैसे होती है सो श्रवण करु, सप्त भूमिका कहता हौं, जब प्रथम जिज्ञासु होता है, तब चाहता है, जो संत-जनका संग करणा, अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रको देखना अरु श्रवण करना सो प्रथम भूमिकाहै, भूमिकाकहिये चित्तके ठहरावणेकी ठौर, बहुरि जब संतोंके संग अरु शास्त्रोंकरि बुद्धि बढी, तब संतों अरु शास्त्रोंके कहणेको विचारत भया कि, मैं कवन हौं, अरु संसार क्या है, सो यह दूसरी भूमिका है; तिसके उपरांत विचारा कि मैंआत्मा हौं अरु संसारमिथ्याहै, मेरेविषे संसार कोऊ नहीं, ऐसी भावना वारंवार करणी सो तीसरी भूमिका है; जब आत्मभावकी दृढताते आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासना संपूर्ण मिटि जाती हैं, जब स्वरूपते उतारिकरि देखता है, तब संसार भासता है, परंतु स्वप्नकी नांईं जानता है, ताते वासना नहीं फुरती, ऐसे जो अवलोकन है, सो चतुर्थ भूमिका है; जब अवलोकन हुआ, तब आनंद प्रगट होता है, ऐसे महाआनंदका प्रगटहोना सो पंचमभूमिका है; अरु जब आनंदप्रगट हुआ अरु तिसविषे स्थितहोना अपने बलतेसुषुप्तवत् इसका नाम पंचम भूमिका है; अरु तुरीयापद छठी भूमिकाहै चित्तके दृढ़ताका नाम तुरीया है, जब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, तब परमनिर्वाणहोता है, तिसको सप्तम भूमिका कहते हैं; तिस परमनिर्वाणपदकी जीवन्मुक्तिको गम नहीं. काहेते कि, तुरीयातीत पद है, तिसको वाणीकरि कहि नहीं सकता, प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत् अवस्था है, तिसविषे श्रवण मनन निदिध्यासन करता है, अरु संसारकी सत्ताभी दूर नहीं होती, इसीते जाग्रत् अवस्था कही है; अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है, संसा-रकी सत्ता नहीं होती, अरु पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है, काहेते जो आनंदघनविषे स्थित होता है, अरु छठी भूमिका तुरीयापद है, जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है, केवल ब्रह्महो प्रकाशता है, अरु निर्वाणपदविषे चित्तका लय हो जाता है, सो तुरीयापदविषे जीवन्मुक्त

विचरते हैं, अरु सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है, सो परमनिर्वाण पद है, तुरीयाविषे ब्रह्माकारवृत्ति रहती है, अरु ब्रह्माकारवृत्तिभी लीन हो जाती है, जहां वाणीकी गम नहीं, तहां चित्त नष्ट हो जाता है, केवल आत्मत्वमात्र है, चेतनता मात्र तहां अपना अहंभाव होना भी नहीं, शांत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है, सो तेरा स्वरूप है, सर्व विश्व वहीरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णही भूषण है, अरु स्वर्णविषे भूषण कल्पता है, अरु भूषणभी परिणामकरि होता है, आत्मा सदा अच्युत-रूप है कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भया, केवल एकरस है, तिस-विषे चित्त फुरणेते विश्व कल्पी है, विकारसंयुक्त भासता है, तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे निरहंकार हुआ विचरु, अरु अहंकारके त्यागका अभि-मान भी त्यागकरि केवल आत्मरूप होरहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ९९.

मोक्षरूपवर्णनम् ।

मनुरुवाच ॥ हे राजन् ! सर्व चिदाकाशसत्ता आदि मध्य अंतते रहित अनाभास ज्योंका त्यों स्थित है, अरु आगे भी वही स्थित रहैगा, तिसविषे न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है, न तिसते इतर है, सर्वकी सत्ता है, सो चिन्मात्र परमसार है, सो आपही संकल्प-कारि चेतनता भया, तब जगत् हुआ, अरु क्योंकरि हुआ, क्या रूप है सो श्रवण कर ॥ हे राजन् ! यह विश्व आत्माते भिन्न कछु नहीं आत्म-स्वरूपही है, जैसे जलविषे तरंग हैं, अरु मिर्चविषे तीक्ष्णता है, खांड-विषे मधुरता है, अग्निविषे उष्णता है, अरु बर्फविषे शीतलता है, सूर्य-विषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, जैसे

आकाशविषे शून्यताहैं, जैसे वायुविषे स्पंदहै, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं॥ हे राजन्! जो आत्मस्वरूप है तौ शोक अरु मोह किसका करता है, अभिमानते रहित होकरि विचरु, जैसे नीतिका प्रवाह आनि प्राप्त होवै तिसविषे विचरु, जैसी काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेकरि अनिच्छित चेष्टा करती है, तैसे नीतिरूपी तागेसों अभिमानते रहित होकरि विचरु कि, न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, किसीविषे राग द्वेष न करना, जैसे शिला ऊपर मूर्त्ति लिखी होती है, तिसको न किसीका राग है, न द्वेष है, तैसे शिलाकी मूर्तिकी नाईं विचरु, आत्माते इतर कछु फुरै नहीं, ऐसा निरहंकार होहु, भावै व्यवहारी गृहस्थ होहु, भावै संन्यासी होहु, भावै देहधारी, भावै देहत्यागी होहु, भावै विक्षेपी होहु, भावै ध्यानी होहु, तेरे तांई दुःख कोऊ न होवैगा, ज्योंका त्योंही रहैगा, फुरणाही संसार है, फुरणेते रहित असंसार है, जब फुरता है, तब संसारी होता है, जब फुरण मिटि जावै, तब केवल आकाशरूप भासता है॥ हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है, आत्माही अपने आपविषे स्थित है, जो सर्वात्माही है तौ शोक अरु मोह किसका करिये॥ हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु नाना विकार जन्ममरणते आदि जो भासते हैं, सो आत्माके अज्ञानकरिकै भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब आत्मारूपही एकरस विषमता कछु न भासैगी, जैसे जलके न जाननेकरि तरंग बुद्बुदेका ज्ञान होता है, जब जलको जाना तब तरंग बुद्बुदेकी विषमता कछु नहीं, सर्व जलरूप है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि विकार भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब एकरस सर्वात्माही भासता है, अरु संवेदनकरिकै आकार भासते हैं, संवेदन कहिये अहंकारवासनाका संबंध, अहंकार चित्त दोनों पर्याय हैं॥ हे राजन्! अहंकारसाथ इसका होना दुःखदायी है, केवल चिन्मात्रविषे अहंभाव मिथ्या है, जबलग संवेदन दृश्यकी ओर फुरती है, तबलग दृश्यका अंत नहीं आता, अरु नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब संवेदन आत्मा अधिष्ठानकी ओर आता है तब आत्मा शुद्ध

अपना आप होकारि भासता है; अरु संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है, आभासके आश्रय विश्व कल्पी है अरु आत्मा ज्योंका त्यों है, फुरणेविषे भी अफुरणेविषे भी, परंतु फुरणेविषे विषमता भासती है, अफुरणेविषे ज्योंका त्यों भासता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकारि सर्प भासता है, जब जेवरीका ज्ञान भया, तब सर्पकी विषमता जाती रहती है जेवरी ज्योंकी त्यों भासती है, सो सर्प भासनेकालविषे भी जेवरी ज्योंकी त्यों थी, जेवरीविषे कछु हुआ नहीं, जानने न जाननेविषे एक समान है, तैसे आत्मा भी फुरणेकालविषे जगत् भासताहै, फुरणेके निवृत्त हुए आत्माही भासता है, आत्मा दोनों कालविषे एक समान है, जैसे सूर्यकी किरणैं सूर्यते भिन्न नहीं; अरु अग्निते उष्णता भिन्न नहीं तैसे आत्माते विश्व भिन्न नहीं, आत्माही स्वरूप है ॥ हे राजन्! अहंकारको त्यागिकारि सत्ता समान अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब तेरे सर्व दुःख निवृत्त हो जावैं, एक कवच तेरे ताईं कहता हौं, तिसको धारिकारि विचरु, यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी छेदको न प्राप्त होवै, सो श्रवण करु, जो कछु देखता सुनता है, सो सर्व ब्रह्म जान, वारंवार यही भावना करु, जो ब्रह्मते इतर कछु न भासै, जब ऐसी भावना दृढ करै, तब शस्त्र कोऊ छेद न सकैगा, यह ब्रह्मभावनाही कवच है, जब इसको तू धारैगा, तब सुखी होवैगा ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीने रामजीको मनु अरु इक्ष्वाकुका संवाद सुनाया, तब सायंकाल हुआ, सूर्य अस्त भया, अरु संपूर्ण सभा स्नानको उठी, वसिष्ठजी भी उठे बहुरि सूर्यकी किरणों साथ आय प्राप्त भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००.

परमार्थोपदेशवर्णनम्।

मनुरुवाच ॥ हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है, तौ तिसका कार्य कैसे सत् होवै, यह आभास जो संवेदन है सो विश्वका कारण है, जो आभास मिथ्या है, तौ विश्व कैसे सत्य होवै, जो विश्वही असत् है तौ

भय किसका करता है, अरु शोक किसका करताहै, हे राजन्! न कोऊ जन्मता है, न कोऊ मरता है, न सुख है, न दुःख है, ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, तिसविषे संवेदन विश्व कल्पी है, ताते संवेदन त्याग करु, कि न मैं हौं, न यह है, जब तेरे ताईं ऐसा निश्चय दृढ होवैगा, तब पाछे आत्माही शेष रहैगा, अरु अहंकार निवृत्त हो जावैगा, काहेते कि आत्माके अज्ञानते हुआ है, आत्मज्ञानते नष्ट हो जाता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु भ्रमकरिकै सिद्ध होवै अरु सत् दृष्ट आवै, तिसको विचारिये, जो विचार कियेते रहै, तौ सत्य जानिये, अरु आत्मा जानिये अरु जो विचार कियेते नष्ट हो जावै, तिसको मिथ्या जानिये, जैसे हीरा भी श्वेत है, अरु बर्फका मणका भी श्वेत होता है, एक समान दोनों भासते हैं, तिनकी परीक्षाके लिये सूर्यके सन्मुख दोनों राखिये जो धूपकरि गलि जावै सो झूठा जानिये अरु ज्योंका त्यों रहै तिसको सत् जानिये, तैसे विचाररूपी सूर्यके सन्मुख करिये तौ अहंकार बर्फकी नाईं नष्ट हो जाता है, काहेते कि अहंकार अनात्म अभिमानविषे होता है, सो तुच्छ है, सर्वव्यापी नहीं, अरु इंद्रियोंकी क्रिया अपनेविषे मानता है, जो परधर्म अपनेविषे कल्पता है, सो तुच्छ है, अरु आपको भिन्न जानता है, आपते अपर पदार्थ भिन्न जानता है ताते विचार कियेते बर्फके हीरेकी नाईं मिथ्या होता है, अविचार सिद्ध है, जब विचार किया, तब नष्ट हो जाता है, अरु आत्मा सर्वका साक्षी ज्योंका त्यों रहता है, अहंकारका भी अरु इंद्रियोंका भी साक्षी है, अरु सर्वव्यापी है ॥ हे राजन्! जो सत् वस्तु है, तिसकी भावना करु, अरु सम्यक्दर्शी होहु, सम्यक्दर्शीको दुःख कोऊ नहीं, जैसे जेवरी मार्गविषे पड़ी है, तिसको जेवरी जानिये तौ दुःख कोऊ नहीं, अरु जो सर्प जानिये तौ भयमान होता है, ताते सम्यक्दर्शी होहु असम्यक्दर्शी मत होहु ॥ हे राजन्! जो कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सुखदायी नहीं दुःखदायी हैं, जबलग इनका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब वियोग हुआ, तब दुःखको प्राप्त करते हैं, ताते तू उदासीन होहु, किसी दृश्य पदार्थको सुखदायी न जान, अरु दुःखदायी भी न जान, सुख अरु दुःख दोनों मिथ्या हैं इनविषे आस्था

मत करु, अहंकारते रहित जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब आपको जन्म मरण विकारोंते रहित आत्मा जानैगा कि, मैं निरहंकार हौं, अरु ब्रह्म हौं, चिन्मात्र हौं, ऐसे अहंभावते रहित होना, अपना होना भी न रहैगा, केवल चिन्मात्र रहैगा, आनंदरूप होवैगा, अरु शांतरूप रागद्वेषके क्षोभते रहित होवैगा, जब ऐसा आपको जाना, तब शोक किसका करैगा ॥ हे राजन्! इस दृश्यको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु इस मेरे उपदेशको विचार कि, मैं सत्य कहता हौं, अथवा असत्य कहता हौं, अरु विचारते जो संसार सत्य होवै, तौ संसारकी भावना करु, अरु जो आत्मा सत्य होवै, तो अत्माकी भावना करु ॥ हे राजन्! तू सम्यक्दर्शी होहु, सत्को सत् जान, अरु असत्को असत् जान, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो सत्को असत्य मानता है, अरु असत्यको सत्य मानता है, असत् वस्तु तौ स्थिर नहीं रहती, ऐसे न जाननेकारि अज्ञानी दुःख पावता है, जैसे कोऊ पुरुष कुटीको रचिकरि चिंतवने लगा कि, आकाशकी मैं रक्षा करी है, जब कुटी नष्ट भई, तब शोक करता है कि, आकाशनष्ट होगया, काहेते कि, आकाशको कुटीके आश्रय जानता था, तैसे अज्ञानी पुरुष आत्माको देहके आश्रय जानकारि देहके नष्ट हुए आत्माका नाश मानता है, अरु दुखी होता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो भूषणोंके नष्ट हुए मूर्ख स्वर्णको नष्ट मानता है, तैसे अज्ञानी देहके नष्टहुए, आपको नष्ट जानताहै, अरुजिसको स्वर्णका ज्ञान है, सो भूषणोंके नाशते भी स्वर्णको देखता है, अरु भूषण संज्ञा कल्पित जानता है, तैसे जो ज्ञानवान् है, सो आत्माको अविनाशी जानता है अरु देह इंद्रियोंको असत् जानता है ॥ हे राजन्! तू देह इंद्रियोंके अभिमानते रहित होहु, जब अभिमानते रहित इंद्रियोंकी चेष्टा करैगा, तब शुभ अशुभ क्रिया बांधि न सकैगी, अरु जो अभिमान सहित करैगा, तब शुभ अशुभ फलको भोगैगा ॥ हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी है, सो ऐसी क्रियाका आरंभ करता है, जिसका कल्पपर्यंत नाश न होवै, अरु देह इंद्रियोंके अभिमानका प्रतिबिंब आपविषे मानते हैं, मैं कर्ता हौं, भोक्ता हौं, ऐसे माननेकारि अनेक जन्म पाते हैं, तिनके

कर्मोंका नाश कभी नहीं होता, अरु जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो आपको देह इंद्रियां गुणते रहित जानते हैं, तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण नष्ट हो जाते हैं, संचित् कर्म वृक्षकी नाईं हैं, अरु क्रियमाण फूल फलकी नाई हैं, जैसे रुईसों लपेटकारि अग्निको लगायेते वृक्ष फूल फल सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकारि संचित अरु क्रियमाण कर्म दग्ध हो जाते हैं, ताते हे राजन्! जो कछु चेष्टाफुरणे वासनाते रहित होकारि करैगा, तिसविषे बंधन कोऊ नहीं, जैसे बालकके अंग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं, परंतु उसके हृदयविषे अभिमान फुरता नहीं, ताते उसको बंधन नहीं करता, तैसे तू भी इच्छाते रहित होकारि चेष्टा करु, तब तेरे ताईं बंधन कोऊ न होवैगा, यद्यपि सब चेष्टा तेरेविषे भासैगी तौ भी वासनाते रहित होवैगा, बहुरि अपर जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज देखनेमात्र होता है, अरु उगता नहीं तैसे तेरेविषे सर्व क्रिया दृष्ट आवैंगी, परंतु जन्मका कारण न होवैगा, पुण्यक्रियाका फल सुख न भोगैगा, अरु पाप क्रियाकारि दुःख न भोगैगा, तेरे ताईं पापपुण्यका स्पर्श न होवैगा, जैसे जलविषे कमल स्थित होता है, अरु जल तिसको स्पर्श नहीं करता, तैसे पापपुण्यका स्पर्श तेरे ताईं न होवैगा, ताते अभिलाषते रहित होकारि जो कछु अपना प्रकृत आचार है, सो करु ॥ हे राजन्! जैसे आकाशविषे जलसाथ पूर्ण मेघ भासतेहैं, परंतु आकाशको लेप नहीं करते, तैसे तुझको कोऊ क्रिया बंधन न करैगी, जैसे जो विषको खानेवाला है, तिसको विषे नहीं मारि सकता, तैसे ज्ञानीको क्रिया नहीं बाँधि सकती, ज्ञानवान् क्रिया करनेविषे भी आपको अकर्ता जानता है, अरु अज्ञानी न करणेविष भी अभिमानकारि कर्ता होता है, जो देह इंद्रियोंके न करते आपको कर्ता मानता है, अरु जो देह इंद्रियोंकारि करता है, तिसके अभिमानते रहित है, सो करणेविषे भी अकर्ता है, अरु जो पुरुष कर्मते इंद्रियोंका संयम कारि बैठता है, अरु मनविषे विषयके भोगकी तृष्णा राखता है, अंतःकरण जिसका रागद्वेष कारि मूढ है, बड़ी क्रियाको उठावता है, अरु दुःखी होता है, सो मिथ्याचारी है, जो पुरुष मनकारि इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित है, अरु कर्म इंद्रि-

योंकरि चेष्टा करता है, सो विशेष है, अपने जाणेविषे कछु नहीं करता मोक्षको पाता है ॥ हे राजन् ! अज्ञानरूप वासनाते रहित होकारि विचरु. ऐसे होकारि विचरैगा, तब आपको ज्योंका त्यों आत्मा जानैगा, अरु सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक आपको जानैगा, जन्ममरण बंधमुक्त विकारते रहित ज्योंका त्यों आत्मा भासैगा ॥ हे राजन् ! तिसपदको पाय कारि शांतिवान् होवैगा, अरु अपर सर्व कला अभ्यास विशेषविना नष्ट होती हैं, जैसे रसविना वृक्ष होता है, यद्यपि फैलाववाला होता है, तौ भी उगता नहीं, अरु ज्ञानकला अभ्यासविना नहीं उपजी है, उपजती हुई नाश नहीं होती, जैसे धान बोते हैं अरु दिन दिन प्रति बढनेलगते हैं. तैसे ज्ञानकला प्राप्त हुई दिन दिन प्रति बढती है ॥ हे राजन् ! ज्ञान उपजे हुए ऐसे जानता है कि, मैं न मरता हौं, न जन्मता हौं, निरहंकार निष्किंचनरूप हौं, सर्वका प्रकाशक हौं, अजर हौं अमर हौं॥हे राजन् ! ऐसी ज्ञानकलाको पायकारि मोहको नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधते दही हुआ बहुरि दूध नहीं होता, तैसे ज्ञान प्राप्त हुए मोहको नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधको मथिकारि घृत काढि लिया, बहुरि नहीं मिलता, तैसे जिसको ज्ञानकला उदय हुए बहुरि मोहका स्पर्श नहीं होता॥हे राजन् ! पुरुष प्रयत्न यही है कि, अपने स्वरूपविषे स्थित होना, अरु अपर उपायका त्याग करना, जिस पुरुषको आत्माकी भावना हुई है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया है, अरु जिसको संसारकी भावना है सो संसारीजरा मृत्यु दुःखको प्राप्त होताहै ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशवर्णनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः १०१.

समाधानवर्णनम् ।

मनुरुवाच ॥ हे राजन् ! बड़ा आश्चर्य है, जो शुद्ध आत्मा चिन्मात्रविषे मायाकारिकै नानाप्रकारके देह इंद्रियां दृश्य भास आई हैं॥हे राजन् ! दृश्यका कारण अज्ञान है, जिस आत्माके अज्ञानकारि दृश्य भासती है,

तिसीके ज्ञानकरि लीन हो जाता है, ताते इस संवेदनको त्यागिकरिआत्माकी भावना करु, यह मैं हौं, यह मेरे हैं, सो मिथ्याही फुरतेहैं॥हेराजन्! प्रथम जो कारणरूपते एक जीव उपजा है, तिस आदि जीवते अनेक जीवगण होतेभये हैं, जैसे अग्निके चिणगारे निकसते हैं, तैसे तिस जीवने आगे अनेकरूप धारे हैं, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, कोऊ मनुष्य, कोऊ राक्षस इत्यादिक बहुरि जैसे जैसे संकल्प होते गये हैं, तैसे रूप होते गये, वास्तवते क्या है, जैसे जलविषे तरंगस्वरूपके प्रमादकरि अनेकभावको प्राप्त होतेहैं, अपने संकल्प आपहीको बंधनरूप होते गये हैं, ताते संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है ॥ हे राजन्! इस भावनाको त्यागिकरि आत्मपदकी शरणको प्राप्त होहु, जो आत्मा अनंत है, कोऊ विश्वभान अपर प्रकारकी होती है, जैसे समुद्र सम है, तिसविषे कोऊ आवर्त्त उठते हैं, कोऊ बुद्बुदे उठते हैं, सो जलते भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे अनेक प्रकारकी विश्व फुरती है, सो आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मस्वरूपहीहै ताते आत्माकी भावना करु, कहूँ ब्रह्म सत् संकल्प होकरि फुरताहै, तहां जानता है, मैं ब्रह्म हौं, अरु शुद्धरूप हौं, सदा मुक्त हौं, मैं इस संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया हौं, अरु जहां चेतनताशक्ति है, तहां आपको जीता मानता है; अरु दुःखीभी जानताहै, सो जीवका लक्षण श्रवण करु अंतःकरणसाथ मिलिकरि भोगको वासनाकरणी अरु सदा विषयकी तृष्णा करनी, सो जीवात्मा कहिये, अरु जहां वासना क्षय हुई है, अरु शुद्ध आत्माविषे आत्मप्रत्यय है तहां जीवसंज्ञा नष्ट हो जातीहैं, केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है॥ हे राजन्! जब चेतन अंतःकरणसाथ मिलिकरि बहिर्मुख फुरता है, तब संसारी हुआ जरामरणकरिकै दुःखीहोता है, जहां चेतनशक्ति अंतर्मुख होतीहै, तब जन्ममरणकी भावनाको त्यागिकरि स्वरूपकी भावना करता है, सर्वदुःखकी निवृत्ति होतीहै, जब इसकी भावना स्वरूपकी ओर लगतीहै, तब दुःखकोऊ नहींरहता, जब स्वरूपका प्रमाद भया, तब दुःख पाता है, जब स्वरूपका ज्ञान हुआ, तब आनंदरूप मुक्त होता है ॥ हे राजन्! संसाररूपीकूपकी टिंड नहीं होना, जब टिंड रस्सीसाथ बंधता है, कबहूँ ऊर्ध्वको जाताहै, कबहूँ अधको जाताहै

जब रस्सी टूटि पड़ती है, तब न ऊर्ध्वको जाता है, न अधको जाता है, दुःख पाता है, सो कूप क्या है, अरु अध क्या है, ऊर्ध्व क्या है, सो श्रवण करु ॥ हे राजन्! संसाररूपी कूपहै, स्वर्गलोक ऊर्ध्व अरु पाताल नरक अध है, पुण्यकर्मकरि स्वर्गको जाताहै, पापकर्मकरि नरककोजाता है; सो आशारूपी रसडीसाथ बांधाहुआ जन्मरणरूपी चक्रविषे फिरता है, स्वर्गनरकके फेरनेका कारण आशा है, जब आशा निवृत्त होतीहै,तब न कोऊ नरक है, न स्वर्ग है, जबलग देहविषेअभिमान है, तबलग नीचते नीचगतिको प्राप्त होताहै, जैसे पत्थरकीशिलासमुद्रविषे डारिये,तौनीचेते नीचे चली जाती है; तैसे नीच स्थानोंको देखिकरि देहअभिमानीनीचे-को चला जाता है, अरु जब इंद्रियादिकका अभिमान त्याग किया, तब जैसे क्षीरसमुद्रते निकसिकरि चंद्रमा ऊर्ध्वते ऊर्ध्वको चला जाता है, तैसे ऊर्ध्वको जाता है ॥ हे राजन्! जब आत्माकी भावना करैगा तब आत्माही होवैगा, ताते आशारूपी फांसी तोड़िकरि शांतपदको प्राप्त होहु, आत्मा चिंतामणिकी नाईं है,जैसी भावना करिये,तैसीासिद्धिहोवै जब तू आत्मभावना करैगा, तब संपूर्ण विश्व अपनेविषे देखैगा, जैसे पर्वत शिलापत्थर सर्व अपनेविषे देखताहै, तैसे तू सर्वआत्माविषे जानैगा॥ हे राजन्! जेती कछु दृष्टि हैं, सो सर्व आत्माके आश्रय हैं, शास्त्र अरु शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं; राजा आत्माके आश्रय हैं, सो सर्व सत्यहै, आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोऊ भावना करताहै, तैसी सिद्धि होती है ॥ हे राजन्! फुरणेविषे यह दृष्टि सर्व सत्य है, जब फुरणा नष्ट भया, तब न कोऊ शास्त्र है, न कोऊ दृष्टि है, केवल अद्वैत आत्मा है, तब निषेध किसका करिये, अरु अंगीकार किसका करिये, जो पुरुषअहंकारते रहित हुआहैं,सो सर्व शास्त्रदृष्टिऊपर बिराजताहै, सर्व आत्मा होता है, जैन उसीको जिन कहते हैं, कालवाले उसीको काल कहते हैं, सर्वका आश्रय आत्मा है, जो पुरुष देहअभिमानीहै, सो मूर्ख है, स्वरूपके अज्ञानकरि अधऊर्ध्व लोकको गमनआगमन करता है,अरु पशु पक्षी स्थावर जंगम योनिको पाता है, अरु आशारूपी फाँसीसाथ बांधा हुआ दुःखको प्राप्त होता है, अरु जो पुरुष सम्यक्दर्शी है, शुद्ध

चेष्टा जिसकी है, तिसको विकार कोऊ दृष्टनहीं आताहै, आकाशकी नाईं सदा निर्मल भासताहै, अरु संपूर्ण विश्व तिसको आत्मस्वरूप भासता है अरु जेती कछु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं, तिसका कर्ता भी आपको जानताहै, तिसको सर्व दुःखका अंत होता है, दुःखते रहितआत्म-पदको प्राप्त होता है अरु सर्व सुखकी सीमा तिसको प्राप्त होती है ॥ हे राजन्! जब ऐसे सुखको तू प्राप्त होवैगा, तब तृष्णा तेरे तांई कोऊ न रहैगी, जैसे नदी तबलग चलती है, जबलग समुद्रको नहीं प्राप्त भई जब समुद्रको प्राप्त भई, तब चलनेते रहित होती है, तैसे जब तू आत्मपदको प्राप्त होवैगा, तब इच्छा तेरे तांई कोऊ न रहैगी ॥ हे राजन्! तू अहं-कारका त्याग कर, अथवा ऐसे जान कि सर्व मैंही हौं, अरु जरा मरण आदिक दुःख तबलग हैं, जबलग आत्मबोध नहीं प्राप्त भया, जब आत्म बोध भया, तब दुःख कोऊ नहीं रहता, अरु दोनोंही दुःखभारी हैं, जन्म अरु मृत्युसों मिटि जाते हैं ॥ इंद्रके वज्रसमान भी दुःख होवै, तौ भी ज्ञानवान्को स्पर्श नहीं करता ॥ हे राजन्! जैसे बूटा होता है, जब तिस-को फल पडता है, तब सूखकारि गिरता है, तिसीप्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है; तब मन बुद्धि अहंकार बूटेकी नांई गिर पडते हैं, जबलग मनकी चपलता है, तबलग दुःख पाता है, जब मनकी चपलता निवृत्त भई तब क्षोभ कोऊ नहीं रहता, शांतपदको प्राप्त होता है, अरु शांति तब होती है, जब प्रकृतिका वियोग होता है, अरु प्रकृतिके संयो-गते संसारी होता है, अरु दुःख पाता है, ताते प्रकृति कहिये अहंकार तिसका त्याग करु, अहंकारते रहित होकारि चेष्टा करु, जब तू अहंकार रहित हुआ, तब तिसपदको प्राप्त होवैगा, जो न जड है, न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, न अकेवल है, न आत्मा कहिये, न अनात्मा कहिये, न एक कहिये, न दो कहिये जेते कछु नाम हैं, सो प्रतियोगीसाथ मिले हुए हैं, प्रतियोगी हुआ सो द्वैत हुआ, अरु आत्मा अद्वैतमात्र है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, जो अवाच्य पद है, तिसको कैसे कहिये, जेती कछु नामसंज्ञा है, सो उपदेशमात्र है, आत्मा अनि-र्वाच्य पद है, ताते संकल्पका त्याग करु, अरु आत्माकीभावनाकरु, जब

आत्मभावना करैगा, तब केवल आत्माही प्रकाशैगा; जैसे फूलका अंग सुगंधते रहित कोऊ नहीं, तैसे आत्माते इतर कछु नहीं ॥ हे राजन् ! जब अहंकारका त्याग करैगा, तबअपनेआपकरि शोभायमान होवैगा,आकाशकीनाईं निर्मल आत्माविषे स्थित होवैगा,अहंकारको त्यागिकरितिस पदको प्राप्त होवैगा. जहां शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थ नहीं प्राप्त होते अरु संपूर्ण इंद्रियोंके रस तहां लीन हो जाते हैं, अरु सर्व दुःख तहां नष्ट हो जाते हैं, केवल मोक्षपदको प्राप्त होवैगा ॥हेराजन् ! मोक्ष किसी देशविषे नहीं, जो तहां जायकरि पावैगा अरु मोक्ष किसीकालविषे नहीं, जो अमुक काल आवैगा, तब मुक्त होवैगा अरु मोक्ष कोऊ पदार्थ नहीं, जो तिसको ग्रहण करैगा. हे राजन् ! प्रकृत जो हैअहंकार तिसीतेमोक्ष होना है, जब अहंकारका तू त्याग करै तबहीं मोक्ष है, जब इस अनात्म अभिमानको त्यागैगा, तब अपने आपकरि शोभायमान होवैगा, जैसे धूम्रते रहित अग्नि प्रकाशमान होता है, तैसे अहंकारते रहित तू प्रकाशैगा, जैसे बड़े पर्वतकेऊपर तालाब निर्मल अरु गंभीर शोभता है, तैसे तू शोभैगा ॥ हे राजन् ! तू अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे समाधानवर्णनं नाम एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः १०२.
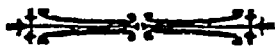
मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिवर्णनम् ।

मनुरुवाच ॥ हे राजन् ! तू आत्मारामी होहु, अरु सिद्ध होहु, रागद्वेषते रहित नित्य अंतर्मुख होहु ॥ हे राजन् !जब तू आत्मारामी हुआ तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी, अरु अंतर शीतल सोम चंद्रमा पूर्णवत् हो जावैगा, ऐसा होकारि अपने प्रकृत आचारविषे विचरु अरु किसी फलकी वांछा न करु, जो पुरुष वांछाते रहितहोकारि कर्म करता है, सो सदा अकर्त्ता है, अरु महा शोभा पाताहै ॥ हे राजन् ! ऐसी अव-

स्थाविषे स्थित होकरि भोजन आवे, तिसका भक्षण करु, अरु जो अनिच्छित वस्त्र आवे तिसको पहिरु, जहां नींद आवै तहां शयन करु,अरु रागद्वेषते रहित होहु, जब तू ऐसा होवैगा, तब तू शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थते उल्लंघित वर्तैगा, जो ऐसा पुरुष है, सो परमरसको पायकरि मत-वाला होता है, तिसको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती ॥ हे राजन् ! ज्ञानवान् काशीविषे देह त्यागै, अथवा चंडालके गृहविषे जहां त्यागै तहां मुक्ति है, वह सदा आत्मस्वरूपविषे स्थितहै, अरु वर्त्तमान काल-विषे देहको नहीं त्यागता. काहेते कि, जिस कालविषे उसको ज्ञान हुआ है, तिसी कालविषे देहका अभाव भया है, ज्ञानकरि देह दग्ध हो जाता है ॥ हे राजन् ! ज्ञानवान् सदा मुक्तिरूप है, न किसीकी स्तुति करताहै, न निंदा करता है,. काहेते कि, चित्तकी कलना तिसकी मिटिगई है, यद्यपि रागद्वेष ज्ञानवान्विषे दृष्ट भी आता है, अरु हँसता रोता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतःकरण अपने जाननेकरि न राग है, न द्वेष है, न हँसता है, न रोता है, ज्योंका त्यों है, जैसे आकाश शून्यरूप है;अरु मेघ बादलभी दृष्ट आते हैं, परंतु आकाशको लेप नहीं करते, तैसे ज्ञा-नवान्को कोई क्रिया बंधन नहीं करती, अज्ञानी जानते हैं कि, ज्ञानवान् क्रिया करता है ॥ हे राजन् ! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करनेको योग्य है, अरु पूजने योग्य है, जिस स्थान ज्ञानवान् बैठता है; तिस स्थानको भी नमस्कार है, जिससाथ बोलता है, तिसको भी नमस्कार है, जिस ऊपर ज्ञानवान् दृष्टि करता है, तिसकोभी नमस्कारहै, सो सबका आ-श्रयभूत है ॥ हे राजन् ! जैसा ज्ञानवान्की दृष्टिते आनंद मिलता है, सो तपकरिकै नहीं मिलता, दानकरि नहीं मिलता, अरु यज्ञ कर्मोंकरि भी नहीं मिलता ऐसी दृष्टि किसीकरि नहीं पाती, जैसी संतकी दृष्टि है, ऐसे आनंदको पाता है, जिस पदको वाणीकी गम नहीं. अरु जो पुरुष संतकी दृष्टिको पायकरि कैसा होता है; जिसते लोक दुःख नहीं पाते अरु लोकते वह दुःख नहीं पाता न किसीका भय करताहै, न किसीका हर्ष करता है ॥ हे राजन् ! सिद्धि पानेका सुख अल्प है, क्या है, जो उडनेकी सिद्धि पाई तौ पक्षी अनेक उडतेफिरते हैं, इसकरि आत्मज्ञान

तौ नहीं पाता, अरु आत्मज्ञानविना शांति नहीं होती, जब आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ, तब जरा मृत्यु आदिक दुःखते मुक्त होता है, दुःख इसविषे कोऊ नहीं रहता, जैसे सिंह पिंजरेते छुटा बहुरि पिंजरेते बंधनविषे नहीं पड़ता तैसे वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेविषे नहीं फँसता॥हे राजन्! तासे तू आत्माकी भावना कर, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अज्ञानक-रिकै तेरे तांई दुःख भासते हैं, अज्ञानते रहित तू सदा आनंदरूप है, आत्मा अनुभवरूप है, तिस अनुभवरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु, जब तू आत्माविषे स्थित होवैगा, तब चेष्टा तेरेविषे दृष्ट भी आवैगी, परंतु स्पर्श न करैगी, जैसी शुद्ध मणिके निकट जैसा रंग राखिये, श्वेत रक्त पीत श्याम तिसके प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तौ भी रंग कोऊ स्पर्श नहीं करता, उसविषे कल्पित जैसे भासते हैं, तैसे तू प्रकृत आचा-रको अंगीकार करता हुआ तेरे तांई पाप पुण्यका स्पर्श न होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिवर्णनं नाम द्व्यधि-कशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः १०३.

ज्ञानीलक्षणविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मनु उपदेश करिकै तूष्णीं हो गया, तब राजाने भलीप्रकार मनुका पूजन किया, बहुरि मनु भी आकाशको उड़ि ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त भया, अरु राजा इक्ष्वाकु राज्य करने लगा ॥ हे रामजी ! जैसे राजा इक्ष्वाकुने जीवन्मुक्त होकरि राज्य किया है, तैसे तू भी इस दृष्टिको आश्रय करिकै विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञानको पायकरि राज्यचेष्टा करत भया है, तैसे तू करु, तिसविषे मेरा प्रश्न है, जो अपूर्व अतिशय होवै तिसका पाना विशेष है, अरु जो पूर्व कईने पाया है, तिसका पाना अपूर्व अतिशय नहीं, ताते मेरे तांई सो कहौ, जो अपूर्व अतिशय सर्वते विशेष है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् सदा

शांतरूप है, अरु रागद्वेषते रहित हैं, अरु अपूर्व अतिशयको पाता है, जेता कछु अपर अतिशय है, सो पूर्व अतिशय है, अरु ज्ञानवान् अपूर्व अतिशयको पाता है, सो ज्ञानीते अन्य कोऊ नहीं पाता, आत्मज्ञानको ज्ञानीही पाताहै, सो ज्ञान एकही है ॥ हे रामजी ! जो दूसरा नहीं पाता तौ अपूर्व क्यों अतिशय हुआ ॥ हे रामजी ! अपूर्व अतिशयको पायकारि ज्ञानवान् प्रकृतआचार सर्व चेष्टा भी करता है, तौ भी निश्चय सर्वदा आत्माविषे रखता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानवान् ऐसा जो सर्व चेष्टा करता है, अज्ञानीकी नाईं तौ उसको किन लक्षणोंकारि तत्त्ववेत्ता जानिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक स्वसंवेद लक्षण है, अरु एक परसंवेद लक्षण है, स्वसंवेद कहिये जो आपही आपको जानताहै, अपर नहीं जानता, परसंवेद कहिये जिसको अपर भी जानते हैं ॥ हे रामजी ! परसंवेदलक्षण है सो मैं कहौं हौं, जो तप दान यज्ञ व्रत करने सो परसंवेद है, अरु दुःखसुखकी प्राप्तिविषे धैर्यकारि रहना सो समान साधुके लक्षण हैं, अरु महाकर्त्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, क्षमा, दया यह लक्षण साधुके हैं, ज्ञानवान्के नहीं, अरु जेती कछु अणिमाते आदि सिद्धि हैं, उड़ना, छुपि जावना यह भी समान लक्षण हैं, परंतु यह स्वाभाविक तिसविषे आनि फुरते हैं, सो अपरकारि भी जाने जाते हैं, अरु जो ज्ञानीके लक्षण हैं सो स्वसंवेद्य हैं, अपर कोऊ इसते इतर उसके शिरविषे सिंग नहीं जो तिसकारि जानिये, जैसे अपर व्यवहार हैं, तैसे सिद्धि ज्ञानीको समान है, यह भी ज्ञानवान्का लक्षण नहीं अरु पुण्यपापादिक क्रिया परसंवेद हैं, सो मायाके कल्पे हैं, ज्ञानीके नहीं, जेते कछु लक्षण देखनेविषे आवैंगे, सो मिथ्या हैं, मायाके कल्पे हैं, अरु स्वसंवेद्यहैं, ज्ञानीका लक्षण जो सर्वदा आत्माविषे स्थितहै, अरु अपने आपकारि संतुष्ट है, न किसीका हर्ष है, न शोक है, अरु देहके जीवित मृत्युविषे समान है, अरु काम क्रोध लोभ मोह सर्वको जानताहै, इसका लक्षण इंद्रियोंका विषय नहीं. काहेते कि, निर्वाच्यपदको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी । जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसका चित्त स्वाभाविक

विषयते विरस होता है, अरु इंद्रियजित् होता है, भोगकी इच्छा तिसकी निवृत्त हो जाती है, स्वाभाविकही तिसके विषय निवृत्त होते हैं॥
इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानीलक्षणविचारवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

शताधिकचतुर्थः सर्गः १०४.

कर्माकर्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मायाजालका काटना महाकठिन है, यह आदिकलना जीवको भई है, जो कोऊ इसविषे सत्यबुद्धि करता है, सो पखेरूकी नांई जालविषे फँसा हुआ निकस नहीं सकता है, तैसे अनात्म अभिमानते निकस नहीं सकता है ॥ हे रामजी ! बहुरि मेरे वचन सुन जो मेरे वचन तुझको प्रियतम लगते हैं, जैसे मेघका शब्द मोरको प्रियतम लगता है, अरु मैं भी तेरे हितके निमित्त कहता हौं, उपदेश करता हौं, अरु ऐसा गुरु रघुकुलका कोऊ नहीं हुआ, जो शिष्यका संशय निवृत्त करै ॥ हे रामजी ! मेरा शिष्य भी ऐसा कोऊ नहीं हुआ, जो मेरे उपदेशकरि न जागा होवै, सब जागे हुए हैं, इस-निमित्त मैं तप ध्यान आदिकको भी त्यागिकरि तेरे ताईं जगावौंगा ताते मैं तुझको उपदेश करता हौं श्रवण करु ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मा विषे जो अहंभाव हुआ है, जो कछु अहंकारकरि भासता है, सो मिथ्या है, इसविषे सत्य कछु नहीं, अरु जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है, सो सत्य है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु जो जो वस्तु फुरणे, करि उपजी हैं सो सर्व नाशवंत हैं, यह बात बालक भी जानते हैं, जो सत्य है, सो असत्य नहीं होता, अरु जो वस्तु असत्य हैं, सो सत्य नहीं होती जैसे रेतते घृत निकसना असत्य है, कदाचित् नहीं निकसता, जैसे दर्दुरको निकास चूर्ण भी करिये, एक दर्दुरके लाख कणका करिये अथवा शिलाऊपर घसाइये, जब तिस ऊपर वर्षा हुई, तब सर्व कणके दर्दुर हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! सो दर्दुर तब उत्पन्न हुए, जब उनविषे

सत्यता थी ताते सत्यका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! सत्य जो है ब्रह्म तिसकी भावना कर, जो ब्रह्मकी भावना करता है सो ब्रह्मही होता है, जैसे घृतविषे घृत एक हो जाता है, अरु दूधविषे दूध मिलता, जलविषे जल मिलि जाता है, तैसे यह जीव भावना करिकै चिद्घन ब्रह्मसाथ एक हो जाता है, जीवसंज्ञा इसकी निवृत्त हो जाती है, जैसे अमृतके पान कियेते अमर होता है, तैसे ब्रह्मकी भावना करणेते ब्रह्म होता है, अरु जो अनात्माकी भावना करता है तौ पराधीन होकरि दुःख पाता है, जैसे विषके पान कियेते अवश्य मरता है, तैसे अनात्माकी भावनाते अवश्य दुःख पाता है, तिसका नाश होता है, ताते आत्मभाव करु ॥ हे रामजी ! जो वस्तु संकल्पकरि उदय होती है, तिसका रहना भी थोड़ा काल होता है, जो चल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है, यह दृश्य आत्माविषे भ्रमकरिकै सिद्ध है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु सीपीविषे रूपा भ्रमकरिकै सिद्ध है, अरु आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तव नहीं, तैसे अहंकार देह इंद्रियोंकरि सुख भासता है, सो सब मिथ्या है, ताते दृश्यकी भावना त्यागिकरि अपने अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब मोहको प्राप्त न होवैगा, जैसे पारसके स्पर्शकरि तांबा स्वर्ण हुआ बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे तू जब आत्मपदको जानेगा, तब बहुरि मोहको प्राप्त न होवैगा कि, मैं हौं, यह मेरा है, अहं त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, यह भावना न रहैगी ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मच्छर अरु जुँआदिक जो प्रस्वेदते उत्पन्न होते हैं, सो सब कर्म करिकै उत्पन्न होते हैं, देवता मनुष्यादिक जो उत्पन्न होते हैं, सो कर्मोंकरि यह सब उत्पन्न होते हैं, अथवा कर्मोंविना भी कछु होते है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि परआत्माते जब उत्पत्ति भई है, सो चार प्रकारके जीव हैं, एक कर्मोंकरि उत्पन्न हुए हैं, एक कर्मोंविना हुए हैं एक आगे होने हैं, एक अब भी उत्पन्न होते हैं, ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी हृदयके अंधकार निवृत्त करणेहारे सूर्य ! अरु संशयरूपी बादलोंके निवृत्तिको पवन ! कृपाक-

रिके कहौ, जो कर्मोंविना कैसे उत्पन्न होते हैं, अरु कर्मोंकारि कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे कैसे हुए हैं, कैसे होते हैं, अरु कैसे आगे होने हैं सो कहो ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा चिदाकाश है, अपनें आपविषे स्थित है, जैसे अग्नि अपनी उष्णताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, अनंत है, अरु अविनाशी है, तिसविषे फुरणाशक्ति स्वाभाविक स्थित है, जैसे पवनविषे स्पंदशक्ति स्वाभाविक है, जैसे फूलविषे सुगंध स्वाभाविक रहती है, तैसे आत्माविषे फुरणाशक्ति है ॥ हे रामजी ! फुरणाशक्ति जैसे आद्य फुरीहै, तिस शब्दकी अपेक्षाकारि तब आकाश हुआ जब स्पर्शकी अपेक्षाकरी तब पवन प्रगट भया, इसीप्रकार पंचतन्मात्रा हो आई, सो शुद्ध संवित्‌विषे जो आदि फुरणा हुआ, प्रथम अंतवाहक शरीर हुए, तिनका निश्चय आत्माविषे रहा कि, हम आत्मा हैं, संपूर्ण विश्व हमारा संकल्प है ॥ हे रामजी ! कई इसप्रकार उत्पन्न होकारि अंतवाहकते बहुरि विदेहमुक्तिको प्राप्त भये, जैसे जलसों बर्फ होकारि सूर्यके तेजते शीघ्रही जल हो जाती है, तैसे शीघ्रही विदेहमुक्त हुए, अरु कई अंतवाहक शरीरविषे स्थित भये, उनका निश्चय आत्माविषे रहा, अरु कई अंतवाहकते अधिभूतक हो गए, जबलग अंतवाहकविषे स्मरण रहा, तबलग अंतवाहक रहे, जब स्वरूपका प्रमाद भया, अरु संकल्पकारि जो भूत रचे थे, तिनविषे दृढ निश्चय भया, अरु जानत भए कि, यह हम हैं, तब अधिभूतक होगए, जैसे ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करने लगे, उसके निश्चयविषे हो जावे कि, मेरा यही कर्म है, अरु जैसे शीतकारिके जलते बर्फ हो जाती है तैसे संवित्‌विषे दृढ संकल्प हुआ, तब आपको अधिभूतक जानत भया ॥ हे रामजी ! आदि परमात्माते जो फुरे हैं, सो कर्मविना उत्पन्न हुए हैं, तिनका कर्म कोऊ नहीं, जो अंतवाहकविषे रहैं, तिनकी ईश्वरसंज्ञा भई, बहुरि उनके संकल्पकारि जीव उपजे, तिनका कारण ईश्वर हुआ, अरु आगे जीवकलनाकारि उनका फुरणा कर्म हुए, आगे जैसे कर्म करते हैं, संकल्पकारि तैसे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी ! आत्माते जो जीव उपजे हैं, सो आदि अकारण होते हैं, जो आज उपजे हैं, तौभी अरु चिर-

काल उपजे हैं तौ भी, वह पाछे कारणभावको प्राप्त हुए हैं, कर्मके वशते ॥ हे रामजी ! जो आदि फुरणा हुआ है, अरु स्वरूपविषे जिनका दृढ निश्चय रहा, तिनकी संज्ञा पुण्य है, अरु जो स्वरूपको विस्मरण करि अधिभूतकविषे निश्चय करत भये, तिनकी धन संज्ञा है ॥ हे रामजी ! पुण्यते धन होना सुगम है अरु धनमें पुण्य होना कठिन है, कोऊ भाग्यवान् पुरुष होता है, जो यत्न करिकै धनते पुण्यवान् होता है, जैसे पर्वतते पत्थर गिरना सुगम है, तैसे पुण्यते धन होना सुगम है, अरु जैसे पत्थरको पर्वतपर चढावना कठिन है, तैसे धनते पुण्य होना कठिन है, कई चिरकाल धनविषे वहते हैं, कई यत्नकारि शीघ्रही पुण्यवान् होते हैं. हे रामजी ! जो सदा अंतवाहक रहतेहैं, तिनकी संज्ञा ईश्वर है, अरु अंतवाहकको त्यागिकारि अधिभूतक होते हैं, सो जीव कहातेहैं, अरु परतंत्र हैं, जैसे कर्म करते हैं, तैसे आगे शरीर धारते हैं, अरु जो धनते पुण्य होते हैं, सो ज्ञानवान् हैं, तिनको बहुरि जन्म नहीं होता अब भी जो उत्पन्न होतेहैं, सो प्रथम कर्मविना होते हैं; जब अपने स्वरूपते गिरते हैं, तब जैसा संकल्प करते हैं, संकल्पही कर्म है, तैसे आगे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी ! यह विश्व संकल्पमात्र है, ताते संकल्पका त्याग करौ, इस दृश्यकी आस्था न करु ॥ हे रामजी ! खाना पीना चेष्टा करौ, परंतु तिसविषे अहंभाव न होवै, अहंकार अज्ञानकरि सिद्ध हुआ है, सो दृश्य मिथ्या है, अहंभावके होनेकरि दुःखी होता है, ताते अहंकारते रहित चेष्टाकरौ ॥ हे रामजी ! बंधअरु मोक्षका लक्षण श्रवण करु, ग्राह्य ग्राहक जो है, विषय अरु इंद्रियोंका संयोग, तिनके इष्टविषे राग करना, अनिष्टविषे द्वेष करना, यही बंधन है, जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है, अरु ग्राह्य ग्राहक इंद्रियां अरु विषयका संबंध तिनके इष्ट अनिष्ट होना है, जिसविषे इंद्रियोंका संयोग होता है, तिसविषे समबुद्धि रहै, इनके धर्म अपनेविषे न देखै, इनके जाननेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है, तिसीविषे साक्षीरूप होकारि स्थित रहै, इसप्रकार जो इनका ग्रहण करताहै सो सदा मुक्तरूपहै, इसते इतर है सो मूर्ख जीव बंधहै, तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंधविषे सावधानरहौ, इनका संबंध धन है, इनते रहित होना मुक्त है, अरु राग द्वेष करनेवाला

मन है, इस मनका त्याग करो, मनही दुःखदायी है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता है, तिसते बासन उत्पन्न होते हैं, तैसे मनरूप चक्रते पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं, मनके फुरणेकरि संसार सत्य होता है, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब दुःख कोऊ न रहैगा ॥ हे रामजी ! फुरणे अफुरणेविषे समान होवैगा, तब रागद्वेषते रहित होकरि विचरैगा, यह होवै, यह न होवै, इसते रहित होकरि चेष्टा कर, अभिलाषपूर्वक संसारविषे न फुरै ॥ हे रामजी ! पूर्व जो ज्ञानवान् हुए हैं, तिनको बीतीकी चिंतवना नहीं, अरु अगे होनेकी आशा नहीं, वर्तमानकालविषे शास्त्रअनुसार रागद्वेषते रहित चेष्टा करणी, ताते तू भी संकल्पको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थविषे राग हुआ तौ बंधन है, अरु मेरा यही आशीर्वाद है, जो ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत-करि तेरी रुचि मत होवै, अपने आपहीविषे रुचि होवै ॥ हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है, इसविषे पदार्थ कोऊ सत् नहीं, सर्व मनके रचे हुए हैं, ताते मनको स्थिर करौ, जैसे धोबी साबू मिलायके वस्त्रका मैल दूर करता है, तैसे मनकरि मनको स्थिर करौ, जब मनको स्वरूपविषे स्थित करैगा, तब मन अपने संकल्पको आपही नाश करैगा, जैसे कोऊ दुष्ट पुरुष धनकरि वृद्ध होता है, तब भाई आदिकको नाश करनेका उपाय करता है, तैसे मन जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब अपने संकल्पको नाश करता है, जब मन तेरा स्वरूपविषे स्थित हुआ, तब तू अमन होवैगा, अरु दुःख तेरे सब नष्ट हो जावैंगे, अरु मनके नाशविना सुख कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! यह मन ऐसा दुष्ट है कि, जिसते उपजता है, तिसीके नाशनिमित्त होता है, जैसे बांसते अग्नि उपजता है, बहुरि तिसीको जलाता है, तैसे आत्माते उपजिकरि यह मन आत्माहीको तुच्छ करता है, जैसे राजाका टहलुआ राजाकी सत्ता पायकरि राजाको मारि-करि आप राजा होता है, तैसे मन आत्माकी सत्ता पायकरि तिसको आच्छादि आपही कर्त्ता भोक्ता हो बैठा है, ताते मनको मनहीकरि नाश कर, जैसे लोहा तपायकरि लोहेको काटता है तैसे मनसाथ मनहीको शुद्ध करु ॥ हे रामजी ! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जेते

कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो प्रथम कर्मोंविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछे जब स्वरूपते गिरे अरु घनपदको प्राप्त हुए तब शरीर कर्मोंकारि होते हैं, अरु कर्मोंका बीज अहंकार है, अहंकारविषे शरीर है, जैसे बीज-विषे वृक्ष होता है, समय पायकरि फूल फल प्रगट होते हैं, तैसे अहंकारते शरीर प्रगट होते हैं, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब शरीर कोऊ नहीं, केवल आत्मपद है, अहंकार है नहीं, अरु प्रत्यक्ष दिखाई देताहै, अरु आत्मा अच्युत है, गिरेकी नाईं भासता है, निरालंब है, अरु आलंबकी नाईं दृष्ट आता है, आत्मा निराकार है, अरु आकारसहित भासता है, निराभास है, अरु आभाससहित दिखाई देता है, ताते केवल चिन्मात्र आत्माविषे स्थित होहु, यह सब चिन्मात्रहीरूप है ॥ हे रामजी ! जब ऐसी भावना होती है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब जगत्कलना मिटि जाती है, केवल आत्मतत्त्वही भासता है॥

इति श्रीयोवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्माकर्मविचारवर्णनं नाम शताधिकचतुर्थः सर्गः ॥ १०४ ॥

शताधिकपंचमः सर्गः १०५.

तुरीयापदविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस जीवके तीन स्वरूप हैं एक स्वरूप शुद्धात्मा है, चिदानंद ब्रह्म, जिसकारि सर्व प्रकाशते हैं, अरु दूसरा अंत-वाहक पुण्यनाम है, आत्माके प्रमादकारिकै हुआ है, जो मात्रपदते उत्थान हुआ है, तौ भी प्रमाद नहीं, जो आत्माका स्मरण रहा है, जब आत्माका स्मरण भूला, तब तीसरा अधिभूतक हुआ, पंचतत्त्वको अपना आप जानने लगा है॥ हे रामजी ! यह तीन स्वरूप जीवके हैं, आत्माके प्रमादकारि जीवसंज्ञा पाता है, अरु दुःखी होता है, अरु परतंत्र हुआ है, ताते पंचभूतक अरु अंतवाहकको त्यागकारि वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! यह जो दो शरीर हैं, स्थूल अरु सूक्ष्म सो विचार कारि

नष्ट हो जाते हैं, अरु तीसरा जो स्वस्वरूप है, सो सत्य है, तू तिसविषे स्थित होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तीन रूप जो तुमने जीवके कहे, तिनके मध्यविषे नाशरूप कौन है, अरु सत्‌रूप कौन है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! हाथ पांवकरि जो देह संयुक्तहै, भोग साथ बलगत करी हुई सो देह स्थूलरूप है अरु जीव अपनेही संकल्पकारिकै सदा पसार रचता है, अपर चित्तरूपी देह इस फुरणे रूपसों अन्तवाहक है सो सदा प्राणवायुके रथ ऊपर स्थित रहताहै, देह होवै, भावै न होवै ॥ हे रामजी ! यह दोनों शरीर उपजते भी अरु नष्ट भी होते हैं अरु आदिअंतते रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं, सो जीवका परमरूप जान, तुरीयापद है उसीते जाग्रतादिक उपजते हैं, अरु लीन होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मैं तीनोंको जानता हौं, एक जाग्रत् है, निद्राते रहित, जिसविषे इंद्रियां अरु चार अंतःकरण अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं, अरु दूसरा स्वप्न है, तहां भी विषयको जाग्रत्‌की नांई संकल्प कर विषय विना ग्रहण करते है, अरु तीसरा तहां इंद्रिय अपने विषयते रहित होतीहै, अरु जडता आतीहै, भासता कछु नहीं, शिलाकी नांई जडता तमोगुण आता है, सो सुषुप्ति है, यह तीनोंको मैं जानता हौं, तुरीया अरु तुरीयातीत सो कृपा करि तुम कहौ कि, किसको कहते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अपना होना अनहोना दोनोंको त्यागिकारि पाछे केवल तुरीयापद रहता है, सो शांतपद है, अरु निर्मलहै ॥ हे रामजी ! तुरीया जाग्रत् नहीं, काहेते जो जाग्रत् संकल्पजाल है, इंद्रियोंकारिकै रागद्वेष होता है, अरु तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं, काहेते कि, स्वप्न भ्रमरूप होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो अपरका अपर संकल्प होता है, अरु तुरीयासुषुप्ति भी नहीं, काहेते जो अत्यंत जडता है अरु तुरीया चेतनरूप है, उदासीन है, अरु शुद्ध है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिते रहित है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! जो तुरीयापदविषे स्थित है, तिसको यह स्थित भी है, जगत्‌सों भी शांतरूप हो जाता है, अरु अज्ञानीको वज्रसारवत् दृढ है, अरु ज्ञानी सदा शांतरूप है, जो तीनों

अवस्थाका साक्षी है, न उसके राग है, न द्वेष है, उदासीनकी नांई है, अरु तुरीयातीत पदको वाणीकी गम नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता हैं, तब उसी पदको प्राप्त होता है, जहां वाणीकी गम नहीं, जबलग जीवन्मुक्त है तबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु रागद्वेषते रहित होता है, इंद्रियां भी अपने विषयविषे स्वाभाविक वर्तती हैं, परंतु रागद्वेषते रहित होकारि अरु जिस पुरुषको रागद्वेष उत्पन्न होते हैं, सो तुरीयापदको नहीं प्राप्त भया, अरु चित्तसहित है, अरु जिस पुरुषको रागद्वेष उत्पन्न नहीं होते, तिसका चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है, तिसको संसारकी सत्यता नहीं भासती, स्वप्नवत् जगत्को देखता है, ताते तू सत्पदविषे स्थित होकारि साक्षीरूप हो रहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तुरीयापदविचारवर्णनं नाम शताधिकपंचमः सर्गः ॥ १०५ ॥

शताधिकषष्ठः सर्गः १०६.

काष्ठमौनिवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कर्ता कारण कर्म यह तीनों पडे होवैं, तू इनका साक्षी होहु, इनका कर्तृत्व अभिमान तेरे तांई मत होवै कि, मैं यह कर्ता हौं, अथवा इसका मैं त्याग किया है, यहअभिमान भी नहीं करना, तू उदासीनकी नांई हो रहु, अरु इसीप्रकार एक आख्यान कहता हौं, सो श्रवण कर, तू आगे भी प्रबुद्ध है, तौ भी दृढ बोधके निमित्त सुन ॥ हे रामजी ! एक वनविषे काष्ठमौनि था, अरु एक वधिक मृगको बाण चलाता हुआ मृगके पाछे दौडता जाता था, अरु आगे गये तौ मृग वधिककी दृष्टिते अगोचर हो गया, वधिकने देखा कि, एक तपस्वी बैठा है, तिसीते पूछत भया ॥ हे मुनीश्वर ! इहां एक मृग आया था सो किस ओरको गया, तुमने देखा हो तौ मेरे तांई कहौ ॥ काष्ठमौनिरुवाच ॥ हे वधिक ! हमारे तांई सुधि कछु नहीं, काहेते कि, हम निरहंकार हैं, हमारे साथ चित्त अहंकार

दोनों नहीं, ताते निरहंकार हैं, अरु जो तू कहै इंद्रियोंकी चेष्टा कैसे होती है तौ सुन, जैसे सूर्यके आश्रय लोककी चेष्टा होती है; अरु दीपक मणिके आश्रय चेष्टा होती है अरु सूर्य दीपक मणि प्रकाशके साक्षीभूत हैं, तैसे हम इंद्रियोंके साक्षीभूत इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, हमारे तौ इनसाथ प्रयोजन कछु नहीं॥ हे वधिक! अहंभाव करणेवाला अहंकार होता है, जैसे तागेके आश्रय मणके होते हैं, सो मणके भिन्न भिन्न होते हैं, अरु तागा सर्वविषे एक होता है, तब माला होती है, जब तागा टूटि पडै तब मणके भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे इंद्रियांरूपी मणके हैं, अरु अहंकाररूपी तागा है, तिस अहंकाररूपी तागेके टूटनेसों इंद्रियां भिन्न भिन्न हो गई हैं, जैसे राजाके नाश हुए सैना भिन्न भिन्न हो जाती हैं, जैसे गोपालके नष्ट हुए गौआं भिन्न भिन्न हो जाती हैं; अरु जैसे पिताके नष्ट हुए बालक व्याकुल होजाते हैं, तैसे अहंकारविना इंद्रियां व्याकुल होती हैं; इनका अभिमान मेरे तांई कछु नहीं, इनका अभिमानी अहंकार था, सो मेरा नष्ट हो गया है, इंद्रियां अपने अपने विषयविषे विचरती हैं, मुझको इनका न राग है न द्वेष है॥ हे साधो! मेरे तांई न जाग्रत् भासता है, न स्वप्न, न सुषुप्ति, इन तीनोंते रहित हम तुरीयापदविषे स्थित हैं, जिसविषे अहं त्वंका अभाव है; जो अहं त्वं हमारा मिटि गया तौ हम साक्षी किसकी देवैं कि, मृग बाँये गया के दाहिने गया, जो नेत्र इंद्रियां देखनेवाली हैं, तिनको बोलनेकी शक्ति नहीं, यह अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं; एक इंद्रियको दूसरेकी शक्ति नहीं, बहुरि तेरेतांई कौन कहै, इन सबका धारणेवाला अहंकार था, जो सबको अपना आप जानता था, मैं देखता हौं, मैं बोलता हौं, सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया हैं, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होते हैं, तैसे अहंकारके नष्ट होनेकारि हम स्वच्छ निर्मल शांत तुरीयापदविषे स्थित हैं, अरु इंद्रियोंका जीव अहंकार मृतक हो गया है, अरु इंद्रियां भी मृतक हो गई हैं, देखनेमात्र दृष्टि आती हैं, जैसे भीतके ऊपर पुतलियां लिखी होवैं, अरु कार्य तिनके कछु न होवैं, तैसे हमारी इंद्रियोंते कार्य कछु नहीं होता

तौ तेरे तांई कौन कहै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब वधिक समुझिकरि अपनी इच्छाचारी उठिगया ॥ हे रामजी ! तुरीयापद शांतरूप है, जहां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव है, केवल अद्वैत पद है, यह जो संज्ञा है, ब्रह्म आत्मा चिदानंदते आदि लेकरि सो तुरीयापदविषेहै, अरु तुरीयातीत पद्विषे शब्दकी गम नहीं, अशब्दपद है, विदेहमुक्त पुरुष तिसी पदको प्राप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त तुरीयापदको साक्षात् करिकै तुरीयावस्थाविषे विचरते हैं, जहां जाग्रत् जो दीर्घ दुःख सुखका भान है सो नहीं, अरु स्वप्न जो रागद्वेषको लिये अल्पकाल है, सो भी नहीं. अरु जडता तामस अवस्था भी नहीं, इन तीनोंते रहित है, सो तुरीयापद है, अरु शांत जिसविषे क्षोभ कोऊ नहीं, अरु यह जगत् तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वास्तव कछु नहीं, जलही है, तैसे केवल तुरीयास्वरूप सत्ता समान तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु तिसविषे जो स्थित हुए हैं, सो श्रवण करु; ब्रह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो ज्ञानवान् हैं, सो तिसी पदविषे स्थितहैं, अरु काष्ठमौनिवधिकको उपदेश करनेवाला भी तुरीयापदविषे स्थितहै, विशेष कलना तिसकीनिवृत्त हुई थी, जो भिन्न भिन्न नामरूपको देखनेवाली केवल सत्ता समानविषे स्थित था, ताते कलनाको त्यागिकरि तुम भी तुरीयापदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनिवृत्तांतवर्णनं नाम शताधिकषष्ठः सर्गः ॥ १०६ ॥

शताधिकसप्तमः सर्गः १०७.

अविद्यानाशरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व केवल आकाशरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, आत्माका चमत्कार है, जैसे मेघविषे बिजलीका चमत्कार होता है, तैसे यह विश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है ॥ हे रामजी ! वास्तव ब्रह्मही है, इतर कछुनहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् !

यह विश्व जो तुम ब्रह्मरूप कही, मेघविषे बिजलीकी नांई क्षणमें उपजती है, क्षणविषे लीन होती है, सो मेघविषे बिजली दृष्ट आती है, जहां मेघ होता है, तहां बिजली भी होती है ताते मेघते बिजली उत्पन्न भई तिसका कारण मेघ है, हे मुनीश्वर! इस चित्तस्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्मते कैसें हुई हैं, सो कृपा करिकै मुझको समुझाय कहौ, ब्रह्महीं इसका कारण हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो वितंडक होकरि तर्क करता है सो कछु नहीं, इस नाशबुद्धिको त्याग, यह तौ बालक भी जानते हैं, जो बिजली क्षणभंगुररूप है, सत्य कछु नहीं, अपर तेरा क्या प्रयोजन है, सो कहु, यह तर्क कारण कार्यरूपका कैसा करता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह स्पंदकला सत्य है कि असत्य है, इसका कारण कौन है, जिसकरि यह फुरती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व प्रकारकी सर्वात्माही स्थित है, अपर चित्त अरु चित्तस्पंद यह भेदकल्पना वास्तव कछु नहीं, ब्रह्मही अपने स्वरूपविषे आप स्थित है, अपर जो कछु उसते इतर भासता है, सो भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे मोती भासते है, जैसे नेत्र मुदिकरि खुलते हैं, तब तरुवरे आकार भासते हैं, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है ॥ हे रामजी! हम इस संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुए हैं, हमते आदि लेकरि जो ज्ञानवान् हैं, सो तिनके यथार्थ वचन सुनिकरि हृदयविषे धारै तौ शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु जो मूर्खता करिकै मेरे वचेनोंको न धारैगा कि, यह क्या कहते हैं, तब तेरा दुःख नष्ट न होवैगा, वृक्ष तृण वल्ली आदिक योनिको पावैगा ॥ हे रामजी! आकाश अरु काल आदिक पदार्थ हैं, सो सब कलनाकरि सिद्ध हुए हैं, आत्माविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! वायुते रहित जो समुद्रका चमत्कार है, तिस चमत्कारका कारण कौन है, अरु दीपकका जो प्रकाश है, अरु अग्निविषे उष्णता हैं, तिस प्रकाश अरु उष्णताका कारण कौन है, अरु वायु जो निस्पंद है, जब वही स्पंद हुई, स्पंदका कारण कौन है, जैसे इनका कारण कोऊ नहीं, जो वायुका रूप स्पंद निस्पंद है, अरु अग्निका रूप उष्णता है, अरु दीपकका रूप प्रकाश है,

तैसे कलनाभीआत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! यह कलना जो तुझको भासती है, तिसको त्यागिकरि जब अपने आपको देखे, तब संशय सब मिटिजावै, जैसे प्रलयकालका जल चढता है, तब सर्व जलमय हो जाता है, इतर कछु नहीं होता, तैसे अपने स्वरूपको जब तू देखेगा तब तेरे ताईं सर्व आत्माही भासैगा, आत्माते इतर कछु दृष्ट न आवैगा ॥ हे रामजी ! आत्मा एकरस है, सम्यक्दर्शनकरि ज्योंका त्यों भासैगा अरु असम्यक्दर्शनकरि अपरका अपर भासैगा, जैसे जेवरी एक होती है, तिसको यथार्थ न देखिये तौ सर्पभ्रम होता है, अरु देखिकारि भयमान होता है, जब ज्योंकी त्यों जेवरी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होता है तैसे आत्माके न जाननेते संसारी होता है, अरु भयमान होता है आपको जन्मता मरता मानता है, सर्व विकार देहके आत्माविषे जानता है, जब आत्माको जानता है, तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाते हैं, जैसे नेत्रकरि तारे देखता है, जब नेत्र मूँदि लेवै तौ भी उनका आकार अंतःकरणविषे भासता है, काहेते कि, तिनकी सत्यता हृदयविषे होती है, अरु जब हृदयते सत्यता उनकी उठि जावै तब बहुरि नहीं भासते तैसे संसार चित्तके भ्रमकारि हुआ है, इसको मिथ्या जान ॥ हे रामजी ! फुरणेविषे जो दृढ भावना हुई है, सो सत्य होकरि संसार स्थित हुआ है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब संसारकी सत्यता जाती रहैगी ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा जो यह विश्व कल्पनामात्र है, सो मैंने जाना कि, इसप्रकार है, कछु सत्य नहीं, जैसे लवण राजा अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्र, अरु शुक्र इनकी कलना फुरणेविषे दृढ भई तब फुरणरूप विश्व सत्य होकरि स्थित भये अरु भासने लगे ॥ हे भगवन् ! यह मैं जानता हौं; कि विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणा मिटि जाता है, तिसके पाछे जो शांतिरूप शेष रहता है, सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तू सम्यक् बोधवान् हुआ है, जो जानने योग्य है, सो तैंने जाना है ॥ हे रामजी ! यह अध्यात्मशास्त्रका सिद्धांत है जो अपर सब दृश्यका असंभव है, एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! आत्मा शुद्ध है, अरु निर्मल है, विद्या अविद्याते रहित है, संसारका तिस

विषे अत्यंत अभाव है, जेती कछु शुद्धा आदिक संज्ञा कहते हैं, सो भी फुरणेविषे हैं, आत्मा निर्वाच्य पद है, सो शेष रहताहै, तीसरी संज्ञा शास्त्रकारोंने कही है, सो श्रवण करु; एक शून्यवादी उसीको शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, कई उपासनावान् उसीको ईश्वर कहते हैं, कई कहते हैं, आत्मा सर्वका कारण है, वही शेष रहता है, अरु एक आत्माको सर्वशक्ति कहते हैं, अरु एक कहते हैं, आत्मा निःशक्तहै, साक्षी आत्मा को अरु शक्तिको भिन्न मानते हैं॥ हे रामजी! जेते वाद हैं, सो सर्वही कलनाकारि हुए हैं, कलनाको मानिकारि वाद उठावते हैं, वास्तव वाद कोऊ नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, अरु मेरा जो सिद्धांत है, सो भी श्रवण करु, जेती कछु कलना है तिसते आत्मा अतीत है, जैसे पवन स्पंदशक्तिकारि फुरताहै, निस्पंदकारि ठहरि जाताहै, जो स्पंद भी पवन है, निस्पंद भी पवन है, इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा फुरती है, आत्माते इतर कछु नहीं, अरु जो इतर प्रतीत होती है, तिसको मिथ्या जानि त्याग, अपने निर्विकार स्वरूपविषे स्थित होहु, जब तू आत्मस्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जेते कछु शास्त्रोंके भिन्न भिन्न मतवाद हैं, सो कोई न रहैगा केवल अपना आप स्वच्छ आही भासैगा हेरामजी! तिस निर्विकल्प पदको पायकारि शांतिवान् हुए हैं, अरु असत्की नांई स्थितभएहैं, जो द्वैतकलना तिनकी कछु नहीं फुरती॥ हे रामजी! आत्मा ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेशनिमित्त कहे हैं, आत्मा शब्दते अतीत है, अरु सर्व जगत् भी आत्मस्वरूप है, अरु संसाररूप विकार आत्माविषे असम्यक्दर्शनकारि भासते हैं, जैसे शून्य आकाशविषे तरुवरे मोतीवत् भासते हैं, सो अविदित हैं, तैसे आत्माविषे जगत् द्वैत अविदित भासता है, ताते जगत् द्वैतकी भावना त्यागिकारि निर्विकल्प आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनं नाम शताधिकसप्तमः सर्गः॥ १०७॥

शताधिकाष्टमः सर्गः १०८.

जीवत्वाभावप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! देह इंद्रियां अरु कलनाविषे सार वस्तु क्या है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु यह जगत् दृश्य है, अहंत्वंते लेकरि सो सब चिन्मात्र है, जैसे समुद्र जलही मात्र है, तैसे जगत् मनसहित षट् इंद्रियोंकरि, जो कछु दृश्य भासते हैं सो भ्रममात्र हैं ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियां सब मिथ्या हैं, आत्माविषे कोऊ नहीं, चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्तही इनको देखता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगको जलबुद्धि होती है, देखिकारि जलके निमित्त दौडता है, अरु दुःख पाता है, तैसे चित्तरूपी मृग आत्मारूपी मरुस्थलविषे देह इंद्रियां विषयरूप जल कल्पिकारि दौडता है, अरु दुःख पावता है, सो देह इंद्रियांविषे भ्रमकारिकै भासते हैं, जैसे मूर्ख बालक परछाईंविषे वैताल कल्पता है, तैसे चित्तने देह इंद्रियादिक कल्पना करी है ॥ हे रामजी ! आत्मा शुद्ध निर्विकार है, तिसविषे चित्तने भ्रमकारिकै विकार आरोपण किये हैं, जैसे भ्रांतदृष्टि कारिकै आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तने देह इंद्रियां कल्पी हैं, अरु चित्त भी आपते कछु नहीं आत्माकी सत्तालेकारि चेष्टा करता है, जैसे चुंबककी सत्ता लेकारि लोहा चेष्टा करता है, तैसे निर्विकार आत्माकी सत्ता लेकारि चित्त नानाप्रकारके विकार कल्पता है, ताते चित्तका त्याग कर, जो विकारजाल तेरा मिटि जावै ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियोंविषे सार क्या है सो सुन; जेता कछु संसार है, तिसविषे सार देह है, जो सब देहके संबंधी हैं, जब देह मिटि जावै, तब संबंधी भी नहीं रहते, अरु देहविषे सार इंद्रियां हैं,अरु इंद्रियोंविषे सार प्राण हैं, प्राणोंविषे सार मन है, अरु मनका सार बुद्धि है, बुद्धिका सार अहंकार है, अरु अहंकारका सार जीव है, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये वासना संयुक्त चेतना, जिसकारि इसका संबंध है, अरु चिदावलीका सार चित्तते रहित शुद्ध चेतन है, जिसविषे सर्व विकल्पकी लय है, शुद्ध अरु निर्मल है, चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है, जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं ॥ हे रामजी !

चिदावलीपर्यंतसर्वको त्यागिकारिइनका जोसारचेतनमात्र आत्माहै,तिस-विषे स्थितहोहु, विश्वकलनामात्र है, आत्माविषे कछुनहीं,संकल्पकी दृढ-ताकरिकै सत्की नांई भासती है, अरु आगे भी शुक्र अरु लवणराजा अरु इंद्रके पुत्रोंका वृत्तांत कहा है; जो संकल्पकी भावनाते दृढ होकरि भासि आया था, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी चित्तके फुरणे विषे स्थित है, असम्यक् दृष्टि करिकै अद्वैत आत्माविषे दृश्य भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासताहै, तैसे आत्माविषे अहंकार आदिक अज्ञानकारि दृश्य भासता है, ताते इनको त्यागिकारि अपने वास्तव स्वरू-पविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! एक गड तेरे ताईं कहता हौं, जिसविषे किसी शत्रुकी गम नहीं, तिसविषे स्थित होहु हम, भी तिसी गडविषे स्थित हैं, जेते ज्ञानवान् हैं, सो भी तिसीविषे स्थित होते हैं ॥ हे रामजी ! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्माविषे नहीं होते, जैसे रात्रिविषे दिन नहीं होता, तैसे विकाररूपी दिन गडरूपी रात्रिविषे नहीं होता, ताते अचिंत्यरूप गड है,जहां फुरणा कोऊ नहीं, केवल शांतरूप है तिसविषे अहंभाव त्यागिकरि स्थित होवै, तब अहं त्वं भाव निवृत्त हो जावै, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब ज्ञानी फुरणे अफुरणेविषे स्वरूपको तुल्य देखता है, संपूर्ण जगत् तिसको आत्मरूप भासता है,ताते चिदावलीते आदि देहपर्यंत जो अनात्म है,तिसको क्रमकारिकै त्याग,प्रथम देहको त्याग, बहुरि इंद्रियोंके अभिमानको त्याग, तिसी क्रमकारि सर्वको त्यागिकै अपने वास्तवस्वरूपविषे स्थित होहु ॥इति श्रीयोगवासिष्ठेनिर्वा-णप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टमः सर्गः ॥ १०८ ॥

शताधिकनवमः सर्गः १०९.

सारप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार चेतनमात्र है, आत्माते इतर कछु नहीं आत्माही विश्वरूप होकारि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणोंमेंही जलाभास होता है, तैसे आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकारि

स्थित हुआ है, जैसे संकल्प अरु संकल्पकर्ता भिन्न नहीं, जैसे आकाशही मोतीकी माला होकरि भासता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि भासता है; जैसे बीजही वृक्ष फूल फल होता है, तैसेआत्माही दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे जलके तरंग जलही हैं, तैसे विश्व आत्माही है ॥ हे रामजी! चिदावली भी आत्माही है, जीव भी आत्माही है, अहंकार, बुद्धि, प्राण इंद्रियां, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा पदार्थ सर्व आत्माही हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, ताते विश्वको अपनास्वरूप जान, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यही है, तैसे तू जान, सर्व मैं हौं, जो ऐसे न जान सकै तौ ऐसे जान, कि देह भी जड है, इंद्रियोंकरि पालित है सो मैं नहीं, अरु इंद्रियां भी मैं नहीं, जो प्राण इंद्रियोंका सार है, जो प्राण न होवै तौ इंद्रियां किसी कामकी नहीं, अरु प्राण भी मैं नहीं, प्राणका सार मन है, जो मन मूर्च्छा होता है, प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी कामके नहीं, अरु मन भी मैं नहीं, जो मनके प्रेरणेवाली बुद्धि है, जो निश्चय बुद्धि करती है, मन भी तहां जाताहै सो भी मैं नहीं, जो बुद्धिका प्रेरक अहंकार है सो अहंकार भी मैं नहीं, अहंकारका सार जीव है, जीवविना अहंकार किसी कामका नहीं, अरु जीव भी मैं नहीं, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहिये शुद्ध चिद्विषे चैतन्योन्मुखत्व होना, जीव संज्ञाते प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं, जो चिदावलीका सार चिन्मात्र है, सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है. यह सर्व अनात्म भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शांत रूप आत्मा हौं ॥ हे रामजी! तेरा वास्तव स्वरूप है, सोई होहु, तिसते इतर अनात्मविषे अहंप्रीतिका त्याग कर, तू देहते रहित निर्विकार है, तेरेविषे जन्ममृत्युआदि विकार कोऊ नहीं, अरु शांतरूप ज्योंका त्यों स्थित है, तू कदाचित् स्वरूपते अपर नहीं हुआ, तिसी स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधवर्णनं नाम शताधिकनवमः सर्गः ॥ १०९ ॥

शताधिकदशमः सर्गः ११०.
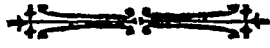
ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा चिन्मात्रते सार अपर कछु नहीं तिसविषे स्थित होहु, जो ताप मिटि जावै ॥ हे रामजी ! सर्व आत्मा ही स्थित है, जैसे बीजही फल फूल होकारि स्थित होता है, तैसे सर्व आत्माही स्थित है, तो निषेध अरु त्याग किसका करिये ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे शिष्य ! ऐसे वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिकै रामजी प्रसन्न हुआ, जैसे कमल सूर्यको देखिकारि खिलि आता है, तैसे रामजीकी बुद्धि वसिष्ठजीके वचनोंरूपी सूर्यकारि खिलि आई, अरु बोलत भया॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् सर्वधर्मज्ञ ! तुम्हारी कृपाते अब मैं जागा हौं अरु बड़ा आश्चर्य है, जो आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अपना आप है, तिसके प्रमादकारि मैं एता काल दुःख पाया है, जो अहंताममतारूपी बड़ा बोझा शिरके ऊपर था, तिसकारि मैं दुःखी था, जैसे किसीके शिरके ऊपर पत्थरकी शिला होवै, अरु ज्येष्ठआषाढका सूर्य तपै अरु पैदल चलै, तब दुःख पावै है, अरु जो उसके शिरते कोऊ उतार लेवै बलसों छायाविषे बैठावै तौ बड़े सुखको प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानरूपी पैंदे अरु धूप तिसविषे अहंताममतारूपी शिलाकारि दुःखी था, तुम वचनरूपी बलकारि उतारि लिया है, अरु आत्मारूपी वृक्षकी छायाविषे विश्राम कराया है ॥ हे भगवन् ! अब मेरे तांई शांतपद प्राप्त हुआ है, अरु तीनों ताप मिटि गए हैं, अब जो सुमेरुपर्वतका भार आनि प्राप्त होवै तौ भी मेरे तांई कष्ट कोऊ नहीं, अब मेरे सर्व संशय निवृत्त हुए हैं, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है, तैसे रागद्वेषरूपी द्वंद्व मेरा नष्ट भया है, अब मैं अपने स्वभावविषे स्थित हुआ हौं, परंतु एक प्रश्न है, उत्तर कृपा करि कहौ, जो महापुरुष वारंवार प्रश्न करणेविषे खेद नहीं मानते ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ सर्व ब्रह्मही है, तौ शास्त्रका विधि निषेध उपदेश किसको है, जो यह कर्म कर्तव्य है, यह

कर्म कर्तव्य नहीं सो यह उपदेश किसको है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्माते इतर कछु नहीं, विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे पवनकरिकै नानाप्रकारके तरंग फुरते हैं, अरु जलते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा चेतनमात्र है, तिसते चैत्योन्मुखत्व अहंभावको लेकारि फुरा है, तिसकारि देशकाल वस्तु बनि गए हैं, अरु शास्त्र फुरे हैं, बहुरि फुरणेते दो रूप धारे हैं, एक विद्या एक अविद्या, तिसविषे जो विद्यारूप जीव हुए हैं सो ईश्वर कहाते हैं, अरु अविद्यारूप हुए हैं सो इतर जीव हैं, जिनको अपने स्वरूपविषे अहंप्रत्यय वास्तवकी रही है, सो ईश्वर हैं, अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु संकल्पविकल्पविषे बहते हैं, सो जीव दुःखी हैं, हे रामजी! एती संज्ञा फुरणेविषे हुई हैं, तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे एकही रस फूल फल वृक्ष हुआ है, रसते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा रसकी नाईं भी प्रमाणको नहीं प्राप्त भया, फुरणेकारि ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है, आत्माविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! जिसका संकल्प अधिभूतकविषे दृष्ट नहीं हुआ, सो जीव शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होता है, तिसको आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है, अरु जिनका संस्कार अधिभूतकविषे दृढ हुआ है, सो चिरकालकारि प्राप्त होते हैं, आत्मपदकी प्राप्तिविना दुःख पाते हैं, अरु जिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो सुखी होते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अरु अज्ञानीके स्वरूपविषे भेद कछु नहीं, सम्यक् अरु असम्यक् दर्शनका भेद है ॥ हे रामजी! विद्या भी दो प्रकारकी है, एक ईश्वरवाद, एक अनीश्वरवाद है, जो ईश्वरवादी हैं, सो तुरत पदको प्राप्त होते हैं, जो अनीश्वरवादी हैं तिनको जब ईश्वरकी भावना होती है, तब शास्त्र गुरु करिकै ईश्वरकी प्राप्ति होती है, अरु ईश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं, एक यह हैं, जो अपर वासना त्यागिकारि ईश्वरपरायण होते हैं, तौ शीघ्रही ईश्वरको प्राप्त होते हैं, सो आत्माही ईश्वर है, जो सर्वका अपना आप है, अरु एक ईश्वरको मानते हैं वासना संसारकी ओर होती है, तौ चिरकालकारि प्राप्त होते हैं, अरु अनीश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं, एक कहते हैं जो कछु होवैगा; तिनको होते होतेकी भावनाते शास्त्र गुरुकारि आत्मपदकी प्राप्ति

प्राप्ति होवैगी, अरु एक कहते हैं, कछु नहीं, तिनको चिरकालकरि जब आस्तिकभावना होवैगी, तब आत्मपदको प्राप्त होवैंगे ॥ हे रामजी ! तिनके निमित्त विधि अरु निषेध कही है, कि इस शुभ कर्मको अंगीकार करो, अरु कशुभ कर्म त्यागौ, तिसकरि जब अंतःकरण शुद्ध होवैगा तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, इसनिमित्त विधिनिषेध कही है, जो विधिनिषेध शास्त्र न कहै तौ बडा छोटेको भोजन करि लेवै, इसनिमित्त शास्त्रका दंड है ॥ हे रामजी ! स्वरूपते किसीको उपदेश नहीं, भ्रमविषे उपदेश है, जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है, सो मोहविषे बहुरि नहीं डूबता, जैसे जलविषे तूँबा नहीं डूबता, तैसे ज्ञानवान् संसार अज्ञानविषे नहीं डूबता, अरु जिसका चित्त वासनाकरि आवरा हुआ संसरता है, तिसको इस संसारते निकसना कठिनहै, जैसे उजाड़का कूआ होता है, तिसविषे कोऊ गिरै, तौ निकसना कठिन होता है, तैसे चित्त साथ मिलिकरि संसारते निकसना कठिन होता है ॥ हे रामजी ! इस चित्तको स्थिर कर, जो दुःख तेरे मिटि जावैं, अरु सत्ता समानपदको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु अनात्मविषे अहंप्रत्यय निवृत्त भया है, सो पुरुष जो कछु करता है, तिसकरि बंधायमान नहीं होता, सदा अकर्ता आपको देखता है, अरु जिसकी अहंप्रत्यय अनात्मविषे हैं, सो पुरुष करै तौ भी करताहै अरु जो न करै तौ भी करता है ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानी शुभ कर्म करता है तौ शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गको प्राप्त होताहै, अरु अशुभ कर्म करनेसों नरकको प्राप्त होता है, अरु जो शुभ कर्मको त्यागता है, तौ भी नरकको प्राप्त होता है, काहेते कि अनात्मविषे आत्माभिमान है, ताते बुद्धिइंद्रियोंको मनकरि निग्रह करु, अरु कर्मइंद्रियोंकरि चेष्टा करु, देखने सुननेसूँघनेते मैं तुझको वर्जन नहीं करता, यही कहता हौं कि, अनात्मविषे अभिमानको त्याग, जब अनात्माभिमानको त्यागैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा, जहां तेरा चित्त फुरैगा, तहां आत्माही भासैगा, आत्माते इतर कछु न भासैगा, ताते चित्तको त्याग, चित्त कहिये अहंभाव, अहंभावको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होइ,

अरु जैसे विश्वकी उत्पत्ति भई है सो सुन, शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपविषे चिदावलीरूप अहं तरंग फुरा है, अरु तिस चिदावलीरूपी समुद्रविषे जीवरूपी तरंग उपजता है, अरु जीवरूपी समुद्रविषे अहंकाररूपी तरंग भासा है, अरु अहंकाररूपी समुद्रविषे बुद्धिरूपी तरंग उपजा है, तिस बुद्धिरूपी समुद्रविषे चित्तरूपी तरंग भासा अरु चित्तरूपी समुद्रविषे संकल्परूपी तरंग उपजा है, तिस संकल्परूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उपजा है, अरु जगत्‌रूपी समुद्रविषे देहरूपी तरंगभासा है, तिसके संयोगते दृश्यका ज्ञान हुआ है, कि यह पदार्थ हैं, यह नहीं, यह ऐसे है, तिसविषे देश काल दिशा सर्व हुए हैं ॥ हे रामजी ! संकल्पकारि हो गए हैं, सो आत्माते इतर कछु नहीं, केवल शांतरूप एकरस आत्मा है, तिसविषे नानाप्रकारके आचार रचे हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकार हो भासतीहै, सो अपनाही अनुभव होता है, तैसे यह जगत् भी जान, आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है, शुद्ध है, परमनिर्वाण है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, फुरणे करिकै नानाप्रकारकी कलना उदय भई है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो चिदेव हुई है "चिदेव पंच भूतानि, चिदेव भुवनत्रयं", सो चिदेव संज्ञा भी संकल्पविषे हुई है, आत्माविषे चिदेव संज्ञा भी नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे चिदेव जो फुरी है, तिस फुरणेविषे संसार हुएकी नाईं स्थित है, जैसे एकही बीजने वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञा पाई है, सो बीजते इतर कछु नहीं, अरु आत्मा बीजकी नांई भी परिणम्य नहीं, संकल्पतेही नाना संज्ञा कल्पी हैं, अरु जगत् स्थित हुआ है, तौ भी आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे वायु चलता है तौ भी वायु है, ठहरता है तौ भी वायु है, तैसे आत्माविषे नानात्व कछु नहीं, केवल शुद्ध अद्वैत आत्मा है, आत्मारूपी समुद्रविषे नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं ॥ हे रामजी ! आकार भी आत्माते इतर कछु नहीं, जो आत्माते इतर भासै सो मिथ्या जान, मृगतृष्णाके जलकी नांई जानकरि तिसकी भावना त्याग, अरु स्वरूपकी भावना करु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनवर्णनं नाम शताधिकदशमः सर्गः ११०

शताधिकैकादशः सर्गः १११.

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मेरे वचनोंको धारि, अरु हृदयविषे आस्तिक भावना करु, कि यह सत्य कहते हैं, अरु सर्वत्याग करु, जब सर्व त्याग करैगा, तब चित्त क्षीण हो जावैगा, जब क्षीणचित्त हुआ, तब शांति होवैगी ॥ हे रामजी ! काष्ठमौन होकरि अंतरते सर्व त्याग करु अरु बाह्य कर्मोंको करु, अभिमानते रहित होकरि अंतर्मुखी होहु, अंतर्मुखी कहिये आत्माविषे स्थित होना, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब विद्यमान दृश्य भी तेरे तांई न भासैगा. काहेते कि, सर्व आत्माही भासैगा, अरु जो तेरे पास भेरीके शब्द होवैंगे तौ भी न भासैगा, अरु जो सुगंधि लेवैगा, तौ भी नहीं लीनी, जो कछु क्रिया करैगा, सो तेरे तांई स्पर्श न करैगी, आकाशकी नांई सर्वते असंग रहैगा ॥ हे रामजी ! कछु देखै सो स्वरूपते इतर न देखै, अरु जो बोलै सो भी आत्माते इतर न फुरै; अंध अरु गूंगेकी नांई अरु पत्थरकी शिलावत् मौन हो रहु, संकल्पते रहित अरु चेष्टा तेरी यंत्रकी पुतलीवत् खड़ी होवैगी, जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्ताकरि चेष्टा करतीहै, तैसे नीति शक्तिकरि प्राणोंकी चेष्टा तेरी होवैगी, स्वाभाविक जो कछु किया है, सो अभिमानते रहित होकरि स्थित होना, अरु जो अभिमानसहित चेष्टा करता है, सो मूर्ख असम्यक्दर्शी हैं, अरु जो सम्यक्दर्शी है, तिसको अनात्मविषे अभिमान नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिसको अनात्म अभिमान नहीं अरु चित्त जिसका लेपायमान नहीं होता, सो सारी सृष्टिका संहार करै, अथवा उत्पत्ति करै, तौ उसको बंधन कछु नहीं होता, जो सर्व कर्म अभिलाषते रहित होकरि करताहै ॥ हे रामजी ! समाधिविषे स्थित होहु, अरु जाग्रत्की नांई सर्व कर्म करु, तेरेविषे दृष्टि भी आवै तौ भी तिनते सुषुप्तिकी नांई फुरणा कोऊ न फुरै, अपने स्वरूपकी समाधि रहै, अरु समाधि भी तब कहिये जो कोऊ दूसरा होवै, जो इसविषे स्थित होइये, इसका त्याग करिये ॥ हे रामजी !

जहां एक शब्द अरु दो शब्द कहना भी नहीं, अद्वितीयात्मा परमार्थ सत्ता है, तिसविषे चित्तने नानाप्रकारके विकार कल्पे हैं, ज्ञानीको एकरस भासता है, अरु ज्ञानीको ज्ञानी जानता है, जैसे सर्पके खोजको सर्प जानता है, तैसे ज्ञानीको एकरस आत्माही भासता है, सो ज्ञानीही जानता है, अरु मूर्खको संकल्पकरि नानाप्रकार जगत् भासता है,ताते संकल्पको त्यागिकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरु; जैसे उन्मत्तकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अंग हलतेहैं, तैसे अभिमानते रहित होकरि चेष्टा करु, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे दृश्यकी भावनाते रहित होहु, जो फुरै कछु नहीं, जडकी नांई जब ऐसा होवैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! चित्तके संबंधकरि क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे वसंतऋतुविषे फूल उत्पन्न होते हैं, तैसे चित्तरूपी वसंतऋतुविषे दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं, जब तू चित्तको शांत करैगा, तब परमपदको प्राप्त होवैगा, सो पद कैसा है, सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु स्थूलते स्थूल है, ताते तू असंग होहु, जब तू स्थूलते स्थूल होवैगा, तब भी असंग रहैगा, ऐसे पदको पायकरि काष्ठ पत्थरकी नांई मौन होहु ॥ हे रामजी ! दृश्य पदार्थको त्यागिकरि जो द्रष्टा है जाननेवाला, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, तिनकी ओर तू भावना मत करु कि,यह सुन्दररूप हैं, इनकी प्राप्ति होवै, भलेविषे प्राप्त होनेकी भावना तू मत करै, इनके जाननेवाला जो आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, जो पुरुष द्रष्टाविषे स्थित होता है, सो गोपदकी नांई संसारसमुद्रको लंघि जाता है. हे रामजी ! जो पदार्थ दृष्ट आते हैं, तिनविषे अपनी अपनी सृष्टि है, कैसी सृष्टि है, जो संकल्पमात्रही है, अपने अपने संकल्पविषे स्थित है, अरु सर्व संकल्प आत्माके आश्रय हैं, जैसे सब पदार्थ आकाशविषे स्थित हैं, तैसे सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रय है, अरु एकके संकल्पको दूसरा नहीं जानता, सृष्टि अपनी अपनी है, जैसे समुद्रविषे जेते बुद्बुदे हैं, तिनको जलकरि एकताहै, अरु आकारकरि एकता नहीं, तैसे स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु

संकल्पसृष्टि अपनी अपनी है, अरु जो पुरुष ऐसे चिंतवता है कि, मैं उसकी सृष्टिको जानौं तब जानता हैं ॥ हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है, जैसी कोऊ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है, जब ऐसीही भावना करिकै स्वरूपविषे जुडता है, जो सब सृष्टि मेरे तांई भासै तौ भावना करिकै भासि आती है, अरु ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता, काहेते कि, आत्माते इतर कोऊ पदार्थ नहीं जानता, अरु जानता है, जो स्वरूपते सबकी एकता है, अरु संकल्परूपकारि एकता नहीं होती, जैसे तरंगोंकी एकता नहीं, अरु जलकी एकता है, अरु जो एक तरंग दूसरेके साथ मिलि जाताहै, तौ उसके साथ एकता होतीहै, तैसे एकका संकल्प भावनाकारि दूसरेके साथ मिलता है, ताते ज्ञानी जानता है, संकल्परूप आकार नहीं मिलते, अरु स्वरूपकारि सबकी एकता है, अरु जिसकी भावना होती है कि, मैं इसकी सृष्टिको देखौं, तब उसके संकल्पसाथ अपना संकल्प मिलायकारि देखता है, तब उसकी सृष्टिको जानता हैं, जैसे दो मणि होवैं, तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है, जब दोनों इकट्ठी राखिये, एकही ठौरविषे तब दोनोंका प्रकाश भी इकट्ठा हो जाता है, तैसे संकल्पकी एकता भावनाकारि होती है, अरु ज्ञानीको प्रथम संकल्प हुआ होवै कि, मैं उसकी सृष्टिको देखौं तो संकल्पकारि देखता है, अरु ज्ञानके उपजेते वांछा नहीं रहती ॥ हे रामजी! इच्छा चित्तका धर्म है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब इच्छा किसकी रहै, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता है, कि, यह मेरा आहार हुआ, मैं इसका भोजन करौंगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष चित्तकी ओर हुआ अरु स्वरूपकी भावना न भई, तब चित्तरूपी दैत्य जन्मरूपी मनविषे फिरता है, अरु तिसका भोजन करता रहता है, जो उसका पुरुषार्थ नाश करता है, अरु आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न होने नहीं देता, जैसे वृक्षको अग्नि लगै, तब बहुरि उसविषे फल नहीं पड़ते, तैसे पुरुषार्थरूपी वृक्षको भोगरूपी अग्निलगी, तब शुद्धबुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होता॥ हे रामजी! चित्त आत्माविषे जोड़, विषयकी ओर जाने न देवहु, यह चित्त दुष्ट है, जब इसको स्थिर करौगे, तब

परम अमृतकरि शोभायमान होहुगे, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शोभता है, तैसे ब्रह्म लक्ष्मीकारि शोभौगे, अरु परमनिर्वाण पदको प्राप्त होहुगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकादशः सर्गः ॥ १११ ॥

शताधिकद्वादशः सर्गः ११२.

भूमिकालक्षणविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सप्तभूमिका ज्ञानकी हैं, इनकरि ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस भूमिकाविषे जिज्ञासी प्राप्त होता है, तिसका लक्षण क्या है, यह सप्त भूमिका क्या हैं, अरु प्राप्त कैसे होती हैं, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सप्त भूमिका तुझको कहता हौं, जिसप्रकार प्राप्त होती हैं, अरु जिस प्रकार भूमिकाते ज्ञान प्राप्त होता है, सो श्रवण करु ॥ हे रामजी ! जब बालक माताके गर्भविषे होता है, अरु बाह्य निकसता है, तब इसको दृढ सुषुप्ति जड अवस्था होती है, जैसे ज्ञानीकी होती है, परंतु बालकविषे संस्कार रहता है, तिसकरि संस्कारकी सत्यता आगे होनी है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, तिसते आगे वृक्ष होना है, तैसे बालककी भावी होनी है, अरु ज्ञानीकी भावीनहीं होनी जैसे दग्धबीजविषे अंकुर नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी भावी नहीं होनी, संसारते सुषुप्तहै, अरु स्वरूपविषे नहीं इसीते भावी तिसविषे नहीं होनी, जब बालकको बाह्य निकसेते कोऊ काल व्यतीत होता है, तब दृढ जडता निवृत्त होती है, अरु सुषुप्ति रहती है, केते कालते उपरांत सुषुप्ति भी लय होती है, अरु चेतनता होती है, तब जानता है कि, यह मैं हौं, यह मेरे पिता माता हैं, तब कुलवाले तिसको शिखावते हैं कि, यह मीठा है, यह कडुवा है, यह तेरी माता है, यह पिता है, यह तेरा कुल है, इसकरि पाप होता है, इसकरि पुण्य होता है, इसकरि स्वर्ग पाता है, इसकरि नरक पाता है, इसप्रकार यज्ञ होता है, इसप्रकार तप होता है,

इसप्रकार दान करता है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कुलके उपदेशकारि अरु शास्त्रके भयकरि धर्मविषे विचरताहै, अरु पापका त्याग करताहै, ऐसाजो शास्त्र अनुसार विचरणेवाला पुरुष सो धर्मात्मा कहाता है सो धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिकी ओर हैं, एक निवृत्तिकी ओर हैं, जो प्रवृत्तिकी ओर हैं, सो पुण्यकर्मोंकारि स्वर्गफल भोगते हैं, वह मोक्षको उत्तम नहीं जानते, इसते संसारविषे भ्रमते हैं, जलके तृणवत् कभी चिरकालते इस क्रमविषे आयकारि मुक्त होते हैं, अरु जो निवृत्तिकी ओर होता है, तिसको विषयभोगते वैराग्य उपजता है, अरु कहता है कि, यह संसार मिथ्या है, मैं इसको तरौं, अरु तिस पदको प्राप्त होऊं, जहां क्षय अरु अतिशय न होवै, यह संसार सर्वदा चलरूप है, अरु दुःखदाई है ॥ हे रामजी ! तिस पुरुषको इस क्रम कारिकै ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होते हैं, अरु जो पशुधर्मा मनुष्य हैं, तिनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है, पशुधर्मा कहिये जो शास्त्रके अर्थको नहीं जानते कि, शुभ क्या हैं, अरु अशुभ क्या है, अपनी इच्छाविषे वर्तना, अनुभवका ग्रहण करना, विचारते रहित होना, अरु मनुष्य भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिका लक्षण, एक निवृत्तिका लक्षण है, प्रवृत्ति कहिये जिसको शास्त्र शुभ कहै, तिसको ग्रहण करना, अशुभका त्याग करना, कामना धारिकै यज्ञादिक शुभ कर्म करणे, फलके निमित्त, जो स्वर्गधनपुत्रादिक मेरे तांई प्राप्त होवैंगे, तिनकी प्रार्थना धारिकारि शुभ कर्म करणे, इसप्रकार संसारसमुद्रविषे बहते हैं, अरु चिरकालकारि निवृत्तिकी ओर भी आते हैं, तब स्वरूपको पाते हैं, सो निवृत्ति क्या है, जो निःकाम होकारि शुभ करणे, तिनकारि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब तिसको वैराग्य उपजता है, अरु कहता है, मेरे तांई कर्मोंसाथ क्या है, अरु फलोंकारि क्या है, मैं किसीप्रकार आत्मपदको प्राप्त होऊं अरु संसारते कब मुक्त होऊंगा, यह संसार मिथ्या है, अरु भोगकारि मेरे तांई क्या है, यह भोग सर्प है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार भोगकी निंदा करता है, अरु उपरत होता है, अरु शम दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं तिनविषे विचरता है, अरु देश काल पदार्थको शुभ अशुभ विचारता है अरु

मर्यादासाथ बोलता है, अरु संतजनका संग करता है, सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याको वारंवार विचारता है, इसप्रकार उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, अरु संतजनका संग करता है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला दिन दिनप्रति बढ़ती है तैसे इसकी बुद्धि बढती है अरु विषयते उपरत होती है, तीर्थ ठाकुरद्वारे शुभ स्थान पूजता है, अरु देह इंद्रियोंकारि संतकी टहल करता है, अरु सर्वसाथ मित्रभाव, दया, सत्य, कोमलताकारि विचरता है, ऐसा वचन बोलता है, जिसकारि सब कोऊ प्रसन्न होवैं, अरु यथाशास्त्र होवैं, अरु इतर किसीको नहीं कहना, अरु अज्ञानीका संग त्यागना अरु स्वर्ग आदिक सुखकी भावना न करनी, केवल आत्मपरायण होना, संत अरु शास्त्रोंकी दृढ भावना करनी, तिनके अर्थोंविषे सुरति लगावनी अपर किसी ओर चित्त न लगाना, जैसे कदर्यदरिद्री सर्वदा धनकी चिंतवना करता है, तैसे वह सदा आत्माकी चिंतवना करता है, जो पुरुष एते गुण संयुक्त हैं, तिसको प्रथम भूमिका प्राप्त भई है, अरु पापरूपी सर्पको मोर समान सिरनीकारिकै नाश करता है, संतजन सच्छास्त्र अरु धर्मरूपी मेघको गर्दन ऊंची कारि देखता है, अरु प्रसन्न होता है, इसका नाम शुभेच्छा है, तिसको बहुरि दूसरी भूमिका आय प्राप्त होती है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, तैसे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, तिसके यह लक्षण हैं, जो सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याको विचारना, अरु दृढ भवाना लगावनी, तिस विचारका कवच गलेविषे पाता है, तिसकारि शस्त्रोंका घाउ कोऊ नहीं लगता, जो इंद्रियांरूपी चोर हैं, इच्छारूपी तिनके हाथविषे बरछी है, सो विचाररूपी कवच पहिरनेवालेको नहीं लगती ॥ हे रामजी ! इंद्रियांरूपी सर्प हैं, तृष्णा तिनविषे विष है, तिसकारि मूर्खको मारती हैं, अरु विचारवान् जो पुरुष है, सो इंद्रियोंके विषयको नाशकारि छोड़ताहै, अरु सर्व ओरते उदासीन रहता है, दुर्जनकी संगतिका बल कारिकै त्याग करता है, जैसे गधा तृणको त्यागता है, तैसे मूर्खकी संगति देहते लेकारि त्यागता है, अरु सर्व इच्छाका त्याग किया है, परंतु एक इच्छा तिसविषे भी रहती है, सो दया सर्वपर करता है, अरु संतोषवान्

रहता है, अरु निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं, दंभ गर्व मोह लोभ आदिक तिसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिकारि शोभायमान् होता है, तैसे विचारवान् बाह्य इंद्रियोंको त्याग करिकै शोभता है, अरु जो क्रोध भी तिसविषे दृष्ट आता है, तौ क्षणमात्र होता है, हृदयविषे स्थित नहीं हो सकता है, अरु खाना पीना लेना देना जो कछु क्रिया है, सो विचारपूर्वक करता है, अरु सर्वदा शुद्ध मार्गविषे विचरता है, संतजनोंका संग करना अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ विचारने, बोधको बढावना, तप करना, तीर्थोंका स्नान करना इसप्रकार कालको व्यतीत करता है ॥ हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है, तब श्रुति जो हैं वेद अरु स्मृति जो हैं, धर्मशास्त्र जिनके अर्थ हृदयविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भँवरा आनि स्थित होता है, तैसे तिस पुरुषके हृदयविषे शुभ गुण स्थित होते हैं, फूलोंकी शय्या भी सुखदाई नहीं भासती, वन अरु कंदरा सुखदायक भासते हैं, जो वैराग्य तिसका दिन दिन बढ़ता जाता है, अरु तलाब बावलियां नदियांविषे स्नान करना अरु शुभस्थानोंविषे रहना, पत्थरकी शिलापर शयन करना, अरु देहको तपकारि क्षीण करना, अरु धारणाकारि चित्तको किसी ठौरविषे न लगावना, अरु आत्मभावना ध्यान करना, अरु भोगते सर्वदा उपरांत होना, भोगको अंतवंत विचारना, जो यह स्थिर नहीं रहते, अरु देहके अहंकारको उपाधि जानकारि त्यागता है, रक्त मांस पुरीषादिकते पूर्ण जानकारि उस विषे अहंकारको त्यागता है, अरु निंदा करता है, सूखे तृणकी नांई तुच्छ जानकारि त्यागता है, जैसे तृण विष्ठाकारि संयुक्त होवै, अरु तिसको त्यागताहै तैसे देहके अहंकारको त्यागता है. अरु कंदराविषे विचरना, फूलफलका आहारकरना, अरु संतजनोंकी टहल करनी इसप्रकार आयुर्बलको बितावता है, सदा असंग रहता है, वह तीसरी भूमिका है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारवर्णनं नाम शताधिकद्वादशः सर्गः ॥ ११२ ॥

शताधिकत्रयोदशः सर्गः ११३.

तृतीयभूमिकाविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह ज्ञानका साधन है, ब्रह्मविद्याको विचारना, वारंवार उसके अर्थकी भावना करनी, अरु पुण्यक्रियाविषे विचारना, इसते इतर ज्ञानका साधन नहीं, इसकरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है; जिस पुरुषको ऐसी भावना हुई है, तिसको नानाप्रकारकी सुगंधि अगर चंदन चोएते आदि लेकरि अरु अप्सरा अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तब तिनका निरादार करता है, अरु जो स्त्रीको देखता है, तौ भी मातासमान जानता है, अरु पराए धनको पत्थरबटेके समान देखिकरि वांछा नहीं करता है, अरु सर्व भूतको देखिकरि दयाही करता है, जैसे आपको सुखकरि प्रसन्न दुःखकरि अनिष्ट जानता है, तैसे वह अपरको भी आप जानिकरि सुख देता है, अरु दुःख किसीको नहीं देता, इसप्रकार पुण्यक्रियाविषे विचरता है, अरु सच्छास्त्रके अर्थका अभ्यास करता है, सर्वदा असंग रहता है. अरु असंगता भी दो प्रकारकी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! असंग संगका लक्षण क्या है, तिनका भेद तौ तुमको होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असंग दो प्रकारका है, एक समान है, एक विशेष है. तिनका लक्षण श्रवण करु, प्रथम समान यह है, जो वह कहता है, मैं कछु नहीं करता, न मैं किसीको देता हौं, न मेरे तांई कोऊ देता है, सर्व ईश्वरकी आज्ञा वर्त्तती है, जिसकी धन देनेकी इच्छा होती है तिसको धन देता है, जिससों लेना होता है, तिससों लेता है, इसके अधीन कछु नहीं, अरु जो कछु दान तप यज्ञादि करता है, सो ईश्वरार्पण करता है, अपना अभिमान कछु नहीं करता, अरु कहता है, सब ईश्वरकी शक्तिकरि होता है, इसप्रकार निरभिमान होकरि धर्मचेष्टाविषे स्वाभाविक विचरता है, अरु जो कछु इंद्रियोंके भोगकी संपदा है, तिसको आपदा जानता है, भोगको महाआपदारूप मानता है संपदा आपदारूपहै, संयोग वियोगरूप है, जेते पदार्थ हैं,सो सब संनि-

पातरूप हैं, विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, सबको नाशरूप जानता है, संयोगवियोगविषे दुःखदाई है; परस्त्रीको विषकी वल्ली समान रसतेरहित जानता है, अरु सर्व पदार्थोंको परिणामी जानिकरि इच्छा किसीकी नहीं करता है; अरु संपूर्ण विश्वका जो ईश्वर हैं, जिसको सुख देना है, तिसको सुख देता है, जिसको दुःख देना है, तिसको दुःख देता है. इसके हाथ कछु नहीं, करने करानेवाले ईश्वर है, न मैं कर्त्ता हौं, न मैं भोक्ता हौं, न मैं वक्ता हौं, जो कछु होता है, सो सब ईश्वरकी सत्ता होकरि होता है, ऐसे निरभिमान होकरि पुण्यक्रियाको करता, सो समान असंग है, तिसके वचन सुनेते श्रवणको अमृतकी प्राप्ति होती है, इसप्रकार संतके मिलनेकरि भूमिकाते जिसकी बुद्धि बढ़ी है, अरु निरभिमान है, तिसके उपदेशविषे अनुभवकरि तबलगअभ्यासकरै, जबलग हाथपर आँवलेकी नाईं आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष होवै, अरु यह जो कहा था, ईश्वर सब कर्ता है, सो समान असंगहै, अरु विशेष असंगवाला कहाता है, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, केवल आकाशरूप आत्मा हौं, न मेरेविषे करणा है, न करावणा है, न कोऊ अपरहै, न मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हौं ॥ हे रामजी ! वह पुरुष न अंतर न बाहिर देखता है; न पदार्थ न अपदार्थ, न जड़, न चेतन, न आकाश न पातालको देखताहै, न देशको, न पृथ्वीको, न मेरेको न तेरेको देखताहै, निर्वास अज अविनाशी सर्व शब्द अर्थोंते रहित केवल शून्य आकाशविषे स्थित है, चित्तते रहित चेतनविषे जो प्रस्थित है, तिसको असंग श्रेष्ठ कहते हैं, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्ट भी आती है, तौ भी अंतर पदार्थकी भावनाका अभाव है जैसे जलविषे कमल दृष्टभी आता है, परंतु ऊँचाही रहता है, तैसे क्रियाविषे विचरता दृष्टभी आता हैं, परंतु असंग रहता है, कामना उसको कोऊ नहीं रहती कि, यह होवै, अरु यह न होवै, काहेते कि, उसको संसारका अभाव निश्चय भयाहै, सर्व कलनाते रहित है, आत्माते इतर किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती, सो श्रेष्ठ असंग कहाताहै, अरु करणेकरि उसका अर्थ कछु सिद्ध नहींहोता अकरणेविषे प्रत्यवाय नहीं होता, वह सर्वदा असंगहै, संसारविषे डूबताक-

दाचित् नहीं, संसारसमुद्रके पारको प्राप्त हुआ है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना तिस पुरुषने त्यागी है, अहंभावका त्याग किया है, जेते पदार्थ हैं, इष्ट अनिष्टरूप, तिनके सुखदुःखकी वेदना नहीं फुरती, सदा मौनरूप है, ऐसा पत्थरसमानहैं, सो श्रेष्ठ असंग कहाताहै॥ हे रामजी! एक कमल है, सो अज्ञानरूपी कीचसोंनिकसिकरिआत्मारूपी जलविषे विराजता है, संसारकी अभावना उसका बीज है, अरु तृष्णारूपी इस जलविषे मच्छियां हैं, कमलके चौफेर फिरती हैं, अरु कुकर्म दुःखरूपी तिससाथ कांटे हैं, अज्ञानरूपी रात्रिकरि मुख मूँदि रहताहै, अरु विचार-रूपी सूर्यके उदय हुएते खिलता है, अरु शोभता है, सुगंधि तिसविषे संतोषहै, सो हृदय बीच लगता है. फल तिसका असंगहै, तीसरीभूमि-काविषे यह ऊगताहै॥ हे रामजी! संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंका विचा-रणा सारको प्राप्त करताहै; इनकरिकै अमृत मोक्षको प्राप्त होताहै, बड़ा कष्ट है कि ऐसे स्वरूपको विस्मरण करिकै जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखोंका नाश करताहै, जिसविषे दुःख कोऊ नहीं आनंदरूपहै इन भूमिकाद्वारा प्राप्त होताहै,बहुरि बंधमान नहीं होता॥ हे रामजी!यहतीसरी भूमिका ज्ञानके निकटवर्तीहै,अरु विचारवान् इन भूमिकाविषेस्थित हो-करि बुद्धिको बढावतेहैं, जब इसप्रकारबोधको बढ़ावताहै, अरुशास्त्रयुक्ति साथ रक्षा करताहै,'तब क्रमकरिकै यहतीसरीभूमिकाको प्राप्त होताहै,तहां इसको असंगता प्राप्त होतीहै, जैसे किसान खेतीकी रक्षा करताहै, बढ़ता है, तैसे विचाररूपी जलकरिबुद्धिकोबढ़ावता है, जबबुद्धिरूपीवल्ली बढती है, तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, अरु अहंकार मोहादिक शत्रुतेरक्षा करता है, ॥ हे रामजी इस भूमिकाको प्राप्त होकरि यह ज्ञानवान् होता है, सो यह भूमिका कर्मकरिकै प्राप्त होती है, अथवा बडे पुण्यकर्म किये होवैं, तिसकरि आनि फुरती है, अथवा अकस्मात् आनि फुरती है, जैसे नदीके तटपर कोऊ आय बैठा होवै, अरु नदीके वेगकरि बीच जाय पड़े, तैसे जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है, तब फेरि बुद्धिको बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब ज्ञानरूपी फल लगता है, जब ज्ञान उपजा, तब प्रत्यक्ष क्रिया तिसविषे दृष्ट भी आवै तौ भी

इसका अभिमान नहीं रहता, जैसे शुद्धमणि प्रतिबिंबको ग्रहण भी करती है, परंतु रंग कोऊ नहीं चढता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारवर्णनं नाम शताधिकत्रयोदशः सर्गः ॥ ११३ ॥

शताधिकचतुर्दशः सर्गः ११४.

विश्ववासनारूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमने भूमिका वर्णन करी तिसविषे मेरे तांई यह संशय है कि, जो भूमिकाते रहित हैं, अरु प्रकृतिके सन्मुख हैं, तिनको भी कदाचित् ज्ञान उपजैगा, अथवा न उपजैगा, अरु जिसने एक भूमिका पाई होवै, अथवा दो भूमिका पाई होवैं, अथवा तीसरी भूमिका पाई होवै, और शरीर तिसका छूटि गया, अरु आत्मपदका साक्षात्कार न भया, अरु स्वर्गादिककी उसको कामना भी नहीं तब वह किस गतिको प्राप्त होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वे पुरुष जो विषयी हैं, तिनको ज्ञानप्राप्त होना कठिन है, वह वासनाकरिकै घटीयंत्रकी नाईं फिरते हैं, कबहूं स्वर्ग, कबहूं पाताल जाते हैं, अरु दुःख पाते हैं, कदाचित् अकस्मात् काकतालीयन्यायकी नाईं उसको संतका संग, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण करना यह वासना आय फुरती है, अरु जैसे मरुस्थलविषे वल्ली लगनी कठिन है, तैसे जिस पुरुषको आत्माका प्रमाद है, अरु भोगकी भावना है, तिसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन हैं, परंतु जब अकस्मात् संतके संगते तिसको वैराग्य उपजता है, अरु बुद्धि उसकी निवृत्तिकी ओर आती है, तब भूमिकाद्वारा ज्ञान तिसको प्राप्त होता है, तब मुक्त होता है ॥ हे रामजी! यह भावना अकस्मात् उपजेविना योनिविषे भ्रमता है, अरु जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त भई हैं, अरु शरीर तिसका छूटि गया, तब अपर जन्म पायकरि ज्ञानको प्राप्त होता है, पिछला संस्कार जागि आता है, अरु दिन दिन बढ़ता जाताहै, जैसे बीजते वृक्षका अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फलकरि बढ़ता जाता है, तैसे उसको अभ्यासका

संस्कार बढ़ता जाताहै, अरु ज्ञान प्राप्त होताहै, जैसे पहलवान् खेलताहै, अरु रात्रिको सोय जाता है, बहुरि दिन हुए उठता है, तब पहलवान्हीका अभ्यास आय फुरताहै, जैसे कोऊ मार्ग चलता २ सोय जावै, अरु जागिकरि चलने लगै, तैसे वह फेरि पूर्वके अभ्यासको लगता है ॥ हे रामजी ! जिसको भावना होती है जो मेरे ताईं विशेषता प्राप्त होवै, तिसकरि जन्मको पाता है, ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिसकोविशेष होनेकी कामना है, सो जन्म पाता है, अरु ज्ञानीको भोगकी इच्छा अरु विशेष प्राप्ति होनेकी इच्छा नहीं होती, जिनको भोगकी इच्छा होती है, सो भोगकरि आपको विशेष जानते हैं, अरु अनिष्टके निवृत्तिकी इच्छा करते हैं, अरु ज्ञानीको वासना कोऊ नहीं होती कि, यह विशेषता मेरे ताईं प्राप्त होवै, इसीते बहुरि जन्म नहीं पाता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासनाते रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जन्मका कारण वासना है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसी अवस्थाको प्राप्त होता है; सो नानाप्रकारकी वासना हैं, जब शरीर छूटनेका समय आता है; तब जो वासना दृढ होती है, जिसका सर्वदा अभ्यास होता है, अंतकालविषे वह सर्व वासना दिखाई देती हैं, पाठकी अरु तपकी कर्मकी देवताकी इत्यादिक वासना आगे आनि स्थित होती हैं, तिस समय सबको मर्दन करिकै वही भासती है ॥ हे रामजी ! तिस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं, सो भी नहीं भासते, पांचों इंद्रियोंके विषय विद्यमान होवैं तौ भी नहीं भासते, वही पदार्थ भासता है, जिसका दृढ अभ्यास किया होता है, वासना तो अनेक होती हैं, परंतु जैसी वासना दृढ़ होती है, तिसीके अनुसार शरीर धारता है, जब देह छूटता है, तब मुहूर्तपर्यंत जड़ता रहती है, सुषुप्तिकी नाईं तिसके उपरांत चेतनता होती है, तब वासनाके अनुसार शरीरको देखता है, अरु जानता है कि, यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआहौं, एक इसी प्रकार होतेहैं, अरु एक ऐसे होते हैं, कि तहां तिसी क्षणविषे युगका अनुभव करते हैं, बहुरि एक ऐसे होते हैं, जो चिरकालपर्यंत जड़ रहते हैं चिरकालते उनको चेतनता फुरती है, तिसके अनुसार संसारभ्रमको देखते हैं, अरु एक संस्कारवान् होते हैं, तिनको शीघ्रही एक क्षणते चेत-

नता होती है, अरु जानता है, कि मैं उस ठोरते मुआ हौं अरु इस ठौर आय जन्मा हौं, यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा कुल है, इसप्रकार एक मुहूर्तविषे जागिकारि देखता है, अरु बड़े कुलको देखता है, इसीप्रकार परलोकको देखता है, अरु यमराजाके दूतको देखता है, अरु जानता है, यह मेरे तांई लिये जाते हैं, अरु देखता है कि, मेरे पुत्रोंने मेरे पिंड किये हैं, तिसकारि मेरा शरीर हुआ है, अरु मेरे ताईं दूत ले चले हैं, तब आगे धर्मराजको देखता है, तिसके निकट जाय खड़ा होता है, अरु पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारिकारि इसके आगे आनि स्थित होते हैं, तब धर्मराज अंतर्यामीसों पूछता है, कि इसने क्या कर्म किये हैं, जो पुण्यवान् होता है, तौ स्वर्गभोग भोगायकारि बहुरि योनिविषे डारि देते हैं, जो पापी होता है तौ नरकविषे डारि देते हैं, इसप्रकार जन्मको धारता है, सर्पकी योनिमें कहता है, मैं सर्प हौं, बलद, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, वल्ली, वृक्ष इत्यादिक योनिको पाताहै, अरु जानता है, मैं यही हौं, अकस्मात् काकतालीय योगकी नाईं कदाचित् मनुष्य-शरीर पाता है, अरु माताके गर्भविषे जानता है, कि यहां मैं जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पिताके उत्पन्न भया हौं, यह मेरा कुल है, बहुरि बाहिर निकसता है, बालक होता है, अरु जानता है, कि मैं बालक हौं, बहुरि यौवन अवस्था होती है, तब जानता है, मैं ज्वान हौं, बहुरि वृद्ध होता है, तब जानता है मैं वृद्ध हौं, इसप्रकार कालको बिताता है, बहुरि मृत्युको पाता है, अरु सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिकोंके जन्म धारता है ॥ हे रामजी! संसारविषे घटीयंत्रकी नांई फिरताहै, कबहूं ऊर्ध्वको, कबहूं अधःको जाता है, स्वरूपके प्रमादकारि दुःख पाताहै, हे रामजी ! एता विस्तार जो तुमको कहा है, सो बना कछु नहीं, केवल अद्वैत आत्मा है, चित्तके संयोगकारि एते भ्रमको देखता है, वासनाद्वारा विमानोंको देखता है, तहां आकाशमें जाता है, जैसे पवन गंधको ले जाता है तैसे पुर्यष्टकको ले जाता है, अरु शरीरको देखता है ॥ हे रामजी ! आत्माते इतर कछु नहीं, परंतु चित्तके संयोगकारि एते भ्रमको देखता है ताते

चित्तको स्थिर करौ, तब भ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मतत्वमात्रही शेष रहैगा, सो शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम शताधिकचतुर्दशः सर्गः ॥ ११४ ॥

शताधिकपंचदशः सर्गः ११५.

सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व तुझको प्रवृत्तिवालेका क्रम कहा है, अब निवृत्तिका क्रम सुन, जिसको भूमिका प्राप्त भई है, अरु आत्मपद नहीं प्राप्त भया, तिसके पाप तौ सर्व दग्ध होजाते हैं, जब उसका शरीर छूटता है, तब वासनाके अनुसार शून्याकार हुआ, बहुरि अपने साथ शरीर देखता है, बहुरि बड़े परलोकको देखता है, तहां स्वर्गके सुख भोगता है, विमानपर चढ़ता है, लोकपालके पुरोंविषे विचरता है, जहां मंद मंद पवन चलता है, सुंदर वृक्षोंकी सुगंधि है, पांचों इंद्रियोंके रमणीय विषय हैं, तिन स्थानों विषे विचरताहै, देवता विषे क्रीडा करता है, भोगको भोगिकारि संसारविषे उपजता है, बहुरि भूमिका क्रमको प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलता कोऊ सोय जावै, जागिकारि बहुरि चलताहै, तैसे शरीर पायकारि बहुरि भूमिकाके क्रमको प्राप्त होताहै, जैसी जैसी भावना दृढ होती है तैसे हो भासता है, यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पके अनुसारही भासता है, वासनाके अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, तहांते भोगिकारि बहुरि संसारविषे आनि पड़ता है, इसीप्रकार संकल्पकारि भटकता है; जब आत्माकी ओर आता है, तब संसारभ्रम मिटि जाता है, जबलग आत्माकी ओर नहीं आता, तबलग अपने संकल्पकारि संसारको देखता है, जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है, देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्पके रचेहुए हैं, जेता कछु संसार भासता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकारि सब जगत् मनोमात्र है, मनके संकल्पते उदय हुआ है, असत्‌रूप है, जैसे मनोराज्य

गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप हैं, तैसे यह जगत् भ्रमरूप है, सब जीवकी अपनी अपनी सृष्टि है, परस्पर अदृष्ट हैं, उसकी सृष्टि वह नहीं जानता, कहूँ उदय होती भासती है, कहूं लय हो जाती है, जैसे मूर्ख अपर देशको जाता है, तैसे देहको त्यागिकरि परलोकको जाता है, अरु स्वरूपविषे आना जाना अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं केवल सत्तामात्र अपने आपविषे स्थित है, जगत् भी वही है ॥ हे रामजी ! यह विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे मणिका चमत्कार होता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु जो कछु तेरे ताईं भासताहै, सो आत्माही है, आत्माविना आभास नहीं होता, जैसे इक्षुविषे मधुरता होती है, अरु मिरचविषे तीक्ष्णता होती है, तैसे आत्माविषे विश्व है, जो कछु देखता है, श्रवण करता है, जो स्पर्श करै, सुगंध लेवै, सो सर्व आत्माही जान, अथवा जो इनके जाननेवाला है, अनुभवरूप, तिसविषे स्थित होहु, इंद्रियां अरु विषयको त्यागिकारि अनुभवरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! यह विश्व संवित्‌रूप है, अरु संवित्‌ही विश्वरूप है, जब संवित् बहिर्मुख होकारि रस लेती है, तब जाग्रत्‌को देखती है, जब अंतर्मुख होकारि रस लेती है, तब स्वप्न होताहै, जब शांत हो जातीहै, तब सुषुप्ति होती है, संसारको सत्य जानिकारि जो रस लेतीहै, तब जाग्रत्स्वप्न अरु सुषुप्ति अवस्था होती है, अरु जब संवित्‌ते रसकी सत्यताजानिरहे तब तुरीया पद होता है, जो इसका जानना फुरता है, यह पदार्थ है, यह नहीं, जब यह नष्ट होवै तब तुरीया पद है ॥ हे रामजी ! यह विश्व फुरनेमात्रहै, जब फुरना नष्ट होवै तब विश्व देखी नहीं जाती, जैसे स्वप्नके देशकाल पदार्थ जागेते मिथ्या होते हैं, तैसे यह जगत् भी मिथ्या है, अरु जीव जीव प्रति जो अपनी२ सृष्टि होती है, तिसविषे आप भी कछु बनि पड़ता है, ताते दुःखी होताहै, जब इसअहंकारको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होवै, तब विश्व कहूँ नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचदशः सर्गः ॥ ११५ ॥

शताधिकषोडशः सर्गः ११६.

विश्वाकाशैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है, अरु संकल्प भी आकाशरूप है, आकाश अरु स्वर्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, कैसी सृष्टि है, जो अनेक पदार्थ हैं परंतु परस्पर रोकती नहीं, अरु वास्तवते विश्व भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ राग किसविषे करिये, अरुद्वेष किसविषे करिये, चेतन धातुविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, अरु यह आश्चर्य है, जो आत्माते इतर हुआ कछु नहीं अरु भिन्नभिन्न संवेदनदृष्ट आती है, अरु नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी ! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, एक सृष्टि ऐसी है कि, तिनका संकल्प एक दृष्ट आता है, परंतु सृष्टि अपनीअपनी है, अरु एक ऐसी है जोभिन्नभिन्न है परंतु समानताकारिकै एकही दृष्ट आती है, जैसे जलकी बूंदें इकट्ठी होती हैं, जैसे धूड़के कणके भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु एकही धूड़ भासती है, जैसे नदीविषे नदी पड़ती है, तौ एकही जल हो जाता है, तैसे समान अधिकरणकारिकै एकही भासते हैं, एक एकके साथ मिलते हैं, अरुनहीं भी मिलते, जैसे क्षीरसमुद्रविषे घृत डारिये तौ नहीं मिलता, तैसे एक संकल्प ऐसे हैं, जो अपरसाथ नहीं मिलते, जैसे एक सूर्यका प्रकाश होवै, अरु एक दीपकका प्रकाश होवै, अरु एक मणिका प्रकाश होवै, तब वहां भिन्न भिन्न दृष्ट आते हैं, अरु एक जैसे होते हैं, तैसे कई सृष्टि एकही भासती है, अरु भिन्न भिन्न होती हैं, अरु कई इकट्ठी होती हैं, अरु भिन्न भिन्न दृष्ट आती हैं ॥ हे रामजी ! एती सृष्टि जो मैंने तेरे ताईं कही है, सो सब अधिष्ठानविषे फुरणेकारिकै कई कोटि उत्पन्न होती हैं; अरु कई कोटि लीन हो जाती हैं; जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे उपजिकरि लीन हो जाते हैं, तैसे सृष्टि उत्पन्न अरु लीन होती है, अधिष्ठान ज्योंका त्यों है; काहेते कि तिसते इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व हैं, सोभी फुरणेविषे

हुए हैं, जबलग शब्द अर्थकी भावना है, तबलग भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोऊ नहीं भासैगा, केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहैगा, बहुरि संसारका भाव किसी ठोर न होवैगा, जैसे पवन जबलग चलता है, तबलग जानता है, कि पवन है, अरु गंध भी पवनकरिकै जानीजाती है, सुगंध आई अथवा दुर्गंध आई अरु जब पवन चलनेते रहित होता है, तब नहीं भासता, अरु गंध भी नहीं भासता, तैसे जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब संसार अरु संसारका अर्थ दोनों नहीं भासते, अरु फुरणेविषे जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी अपनी सृष्टि है, तिस २ सृष्टिविषे सत्ता समान ब्रह्म स्थित है,अरु सर्वका अपनाआप है, द्वैतभावको कदाचित् नहीं प्राप्त भया ॥ हे रामजी! ताते ऐसे जान कि, आकाश भी आत्मा है, पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सर्व पदार्थ आत्माही हैं, अथवा ऐसे जान कि, सर्व मिथ्या हैं, इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्महो अपने आपविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, उसी ब्रह्मविषे अंशते अनेक सुमेरु अरु मंदराचलआदिक स्थित हैं, अरु अंशांशीभाव भी आत्माविषे स्थूलताके निमित्त कहे हैं, वास्तव नहीं, जतावनेनिमित्त कहे हैं, आत्मा एकरस है ॥ हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो आत्मसत्ताविना होवै, जिसको सत्यजानताहै, सो भी आत्मा है, अरु जिसको असत्यजानता हैं, सो भी आत्मा है, आत्माविषे जैसे सत्यका फुरणा है, तैसे असत्यका फुरणा है, फुरणा दोनोंका तुल्य है, जैसे स्वप्नविषे एक सत्य जानता है, एक असत्य जानता है, तैसे जो इंद्रियोंके विषय होते हैं, तिनको सत् जानता है, अरु आकाशके फूल, ससेके शृंगको असत् कहता है, सो सर्व अनुभवकरि फुरे हैं, ताते अनुभवरूप है, अरु ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो आत्माविषे असत् नहीं; जो कछु भासते हैं, सो सर्व फुरणेविषे हुए हैं, सत्य क्या अरु असत्य क्या, सब मिथ्या हैं, स्वप्नके सत् अरु असत्की नाईं है, जो अनुभवकारिकै सिद्ध है, सो सर्व सत्य है, अरु सत्य अनुभवते इतर है सो सब असत्य है ॥ हे रामजी! गुणातीत परमात्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल-

विषे ज्ञानवान् पुरुष सम है, अरु दशों दिशा आकाश जल अग्नि आदिक पदार्थ तिसको सर्व आत्माही दृष्ट आता है आत्माते इतर कछु नहीं भासता, सूर्य चंद्रमा तारे सर्व आत्मा हैं, यह विश्व आकाशरूप हैं, अरु शुद्ध निर्मल है, आकाशविषे आकाश स्थित है, इतर कछु नहीं अरु जो तेरे तांई इतर भासै सो मिथ्या जान, भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, सत् कछु नहीं, अरु जो परमार्थकारि देखै तो सर्व आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकषोडशः सर्गः ॥ ११६ ॥

शताधिकसप्तदशः सर्गः ११७.

विश्वविलयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व स्वप्नसमान है, जैसे स्वप्नकी सैन्य नानाप्रकार दीखती है, शस्त्र चलते हैं, इत्यादिक भासते हैं, अरु आत्माविषे इनका रूप देखना, अरु मानना, शब्द अर्थ कोऊ नहीं जगत्ते रहित है, अरु जगत्रूप भान होता है, अहं त्वं मेरातेरा जेताकछु भासता है, सो सब स्वप्नवत् है, भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है, सो सत्यहै, सर्व तिसीविषे कल्पित है, अरुजो अनुभवकारि देखिये तौ सर्व आत्मस्वरूप है, इतर देखिये तौ कछु नहीं, जैसेस्वप्नके देशकाल पदार्थ सब अर्थाकार भासते हैं, तौभी मिथ्याहैं, तैसे यहविश्व भ्रमकरिकै फुरता है, उनकी अपेक्षाकारि वह तू है, उसकी अपेक्षाकारि वह अहं है, वास्तवते दोनों नहीं, जो है सो आत्माही है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा जो त्वं आदिक अहंपर्यंत अरु अहं आदिक त्वं पर्यंत सर्व स्वप्नसैन्यकी नाईं मिथ्या है, अरु अनुभवकारि देखिये तौ आत्मस्वरूप है, हम स्वप्न सैन्यविषे हैं, अथवा हमारा अहं आत्मा है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो अनात्म देहादिकविषे अहंभावना करनी मैं हौं तौ स्वप्नसैन्यके तुल्य है, अरु जो अधिष्ठान चिन्मात्रविषे दृश्यते अरु अहंकारते रहित अहंभावना करनी सो आत्मरूप है ॥

हे रामजी ! तू आत्मरूप है, अरु यह विश्व सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, जो अधिष्ठानरूपकरि देखिये तो आत्मरूप है, अरु जो अधिष्ठानते रहित देखिये तौ मिथ्या है, सो अधिष्ठान शुद्ध है, आनंदरूप है, चित्तते रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है, तिसविषे अज्ञानकरि दृश्य दीखती है, जैसे असम्यक्दृष्टिकरिकै सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं ॥ हे रामजी ! दृश्य अविचारते सिद्ध है, विचार कियेते कछु वस्तु नहीं होती, जिसके आश्रय कल्पित है, सो अधिष्ठान सत्य है, जैसे सीपीके जानेते रूपेकी बुद्धि जाती रहती है, तैसे आत्मविचारते विश्वबुद्धि जाती रहती है, जैसे समुद्रविषे पवनकरि चक्र तरंग फुरतेहैं, अरु प्रत्यक्ष भासतेहैं, विचार कियेते चक्रविषेभी जलबुद्धिहोतीहै, तैसेआत्मरूपी समुद्रविषे मनके फुरणेकरि विश्वरूपी चक्र उठते हैं; विचार कियेते तुझको मनके फुरणेविषे भी आत्मरूप भासैगा, विश्वरूपी चक्र न भासैंगे, भ्रम निवृत्त होजावैगा, जो वस्तु फुरणेविषे उपजी है, सो अफुरकरिकै निवृत्त होजाती है, यह विश्व अज्ञानकरि उपजा है, अरु ज्ञानकरिकै लीन हो जावैगा, ताते विश्व भ्रममात्र जान ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा जो ब्रह्मा रुद्र आदि अरु उत्पत्ति संहार करनेपर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है, ऐसे जाननेकरि क्या सिद्ध होता है, यह तौ प्रत्यक्ष दुःखदायक भासती है यों दीखती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तू देखता है, सो सर्व आत्मरूप है इतर कछु नहीं, सम्यंग्दृष्टिकरिकै; अरु असम्यग्दृष्टिकरिकै विश्व है, तौ दृष्टिका भेद है, सम्यग् असम्यग् देखनेका अधिष्ठान ज्योंका त्यों है, जैसे एक जेवरी पड़ी होवै, अंधकारकी उपाधिकरि सर्प हो भासै, अरु भयदायक होवै, जो प्रकाशकरि देखिये तौ जेवरीही भासती है, तैसे जिसने आत्माको जाना है, तिसको दृश्य भी आत्मरूप है, अज्ञानीको विश्व भासता है, अरु दुःख पाता है, जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयमान होताहै, अपने न जाननेकरि दुःख पाता है. जो जानै तौ भय किसनिमित्त पावै ॥ हे रामजी ! अपनेही संकल्पकरि आप बंधायमान होता है, जैसे घुराण कीट अपने बैठनेका स्थान बनाती है, और आपही फँस मरती है,

तैसे अनात्मविषे अहंप्रतीतिकरिकै आपही दुःख पाताहै ॥ हे रामजी ! आपही संसारी होता है, आपही ब्रह्म होताहै, जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब संसारी होता है, जब स्वरूपकी ओर आता है, तब ब्रह्म आत्मा होता है, ताते जो तेरी इच्छा होवै सो करु, जो संसारी होनेकी इच्छा होवै तौ संसारी होउ, अरु जो ब्रह्म होनेकी इच्छा होवै तौ ब्रह्म होउ, अरु जो मेरेसों पूछै तौ दृश्य अहंकारको त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, विश्व भ्रममात्र है, वास्तव कछु नहीं, यही पुरुषार्थहै कि, संकल्पके साथ संकल्पको काटै, जब बाह्यते अंतर्मुख हुआ, तब ब्रह्मही भासैगा, दृश्यकी कल्पना मिटिजावैगी, काहेते, जो आगे भी नहीं ॥ हे रामजी ! जो सत् वस्तु आत्मा है, अनेक यत्न करिये तौ नाश नहीं होता, अरु जो असत्य अनात्माहै, तिसके निमित्त यत्न करिये तौ सत् नहीं होता; जो सत् वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं, अरु जो असत् है, तिसका भाव नहीं होता, असत् वस्तु तबलग भासती है, जबलग तिसको भली प्रकार नहीं जाना, जब विचार करि देखिये तब नाश हो जाती है, आविद्यक पदार्थ विद्याकरि नष्ट हो जाते हैं, जैसे स्वप्नका सुमेरु पर्वत सत्य होवै तौ जाग्रत्विषे भी भासै, ताते है नहीं, जो जाग्रत्ते नष्ट हो जाता है, तैसे यह संसार जो तुझको भासता है, सो स्वरूपके ज्ञानते नष्ट हो जावैगा, अरु जो हमते पूछै तौ हमको आत्माते इतर कछु नहीं भासता, सर्व आत्माही है, यह भी नहीं, जो यह जीव अज्ञानी है, किसी प्रकार मोक्ष होवै, न हमारे ताईं ज्ञानसाथ प्रयोजन है, न मोक्ष होनेसाथ प्रयोजन है, काहेते कि, हमको तौ सर्व आत्माही भासता है ॥ हे रामजी ! जबलग चेतन है तबलग मरता है अरु जन्म भी पाता है, जब जड होता है तब शांतिको प्राप्त होता है, अरु मुक्त होता है, चेतन कहिये दृश्यकी ओर फुरना, इसीकरि जन्ममरणके बंधनमें आता है, जब दृश्यके फुरणेते जड़ हो जावै, तब मुक्त होवै, इसका होनाही दुःख है, न होना मुक्ति है, अहंकारका होना बंधन है, अहंकारका न होना मुक्ति है, ताते पुरुषप्रयत्न यही है कि, अहंकारका त्याग करना, अरु चेतन ब्रह्म घन अपने आपविषे स्थित होना, जिसको संसारकी सत् भावना है; तिसको संसारही है

ब्रह्म नहीं, अरु जिसको ब्रह्मभावना हुई है, तिसको ब्रह्मही भासताहै ॥ हे रामजी । जो पाताल जावैं, अथवा संपूर्ण पृथ्वी फिरैं, दशो दिशा फिरैं आकाशविषे देवताके स्थान फिरैं तोऊ सुखको न पावैगा, अरु आत्माका दर्शन न होवैगा, काहेते कि, अनात्माविषे अहंकार कियेते सुख नहीं, अरु जो आत्मदर्शी होकरि देखैं तौ सर्व आत्माही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविलयो नाम शताधिकसप्तदशः सर्गः ११७

शताधिकअष्टादशः सर्गः ११८.

विश्वप्रमाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । यह संसार संकल्पमात्र है, अरु तुच्छ है, पर्वत नदियाँ देश काल सर्व भ्रमकरि सिद्ध हैं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां देश काल भासते हैं, निद्रादोषकरिकै अरु हुआ कछु नहीं, तैसे अज्ञान निद्राकारि यह संसार भासता है ॥ हे रामजी । जागकरि देखैं तौ संसार है नहीं, इसका तरणा महासुगम है, अरु सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं, सो कमलकी नाईं कोमल हैं, जैसे कमलके मुँदनेविषे यत्न कछु नहीं, तैसे यह कोमल निवृत्त होते हैं, अरु आकार जो भासते हैं, भूतप्राणी, सो उनकी स्थूलदृष्टि है, आकारको देख रहेहैं, जैसे पवनका चलना जाना जाताहै, अरु जब चलनेते रहित होता है, तब मूर्खकी गम नहीं, जो निराकारको जानै, तैसे भूतप्राणी आकारको जानते हैं, इसविषे जो निराकार स्थित है, तिसको नहीं जानते, जैसे पवन चलताहै, तौ भी पवन है, जो ठहरता है, तौ भी पवन है तैसे विश्व फुरती है, सो भी आत्मा हैं, अफुरविषे भी वही है, ताते विश्व भी आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, जो सम्यग्दर्शी है, तिसको फुरणे अफुरणेविषे आत्माही भासताहै, जैसे स्पंद निस्पंदरूप पवनही है, तैसे ज्ञानीको सर्वदा एकरस है, अरु अज्ञानीको द्वैत भासता है, जैसे वृक्षविषे पिशाचबुद्धि बालक करता है, तैसे आत्माविषे जगत्बुद्धि अज्ञानी करता है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे मनके फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वायुका रूप कदाचित्

नहीं, तैसे जगत्का रूप अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, तैसे आत्माविषे जगत्का अभाव है ॥ हे रामजी ! सुमेरुपर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष, राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड इकट्ठेकरि विचाररूपी कांटेविषे पाए, अरु पाछे अर्धरति पाई तौ भी पूरी नहीं होती, काहेते जो है नहीं, अविचारसिद्ध हैं, स्वप्नके पर्वत जागे हुए चावल प्रमाण नहीं रहते, काहेते जो है नहीं, भ्रममात्र है ॥ हे रामजी। इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं, तिनको ऐसे जान, जैसे लुहारकी खालोंते पवन निकसता है, तैसे तिन पुरुषके श्वास वृथा आते जाते हैं, जैसे आकाश विषे अँधेरी व्यर्थ उठती है, तैसे तिन पुरुषका जीवना अरु चेष्टा सर्व व्यर्थ है, अरु यह आत्मघाती हैं, अपना आप नाश करते हैं, उनकी चेष्टा दुःखके निमित्त है॥ हे रामजी। यह अपने आधीन है, जो दृश्यकी ओर होता है, तो संसार होता है, अरु जो अंतमुर्ख होता है, तौ सर्व आत्माही होता है, अरु यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये, न असत् कहिये, भ्रममात्रकरि हुआ है, पूर्वकाल, भविष्यत्काल, वर्तमानकालविषे बंध होता है, अरु अग्नि शीतल होवै,अरु आकाश पातालविषे होवे, अरु पाताल आकाशविषे होता है, अरु तारे पृथ्वीऊपर हैं, पृथ्वी आकाशऊपर भी होती है, अरु बादर विना मेघ वर्षा करता है, ऐसे कौतुक मैं देखताहौं, आकाशविषे हल फिरते देखताहौं ॥ हे रामजी। इसविषे आश्चर्य कछु नहीं,मनकरिकै सब कछु होताहै,जैसा मनोराज्य किया तैसा आगे स्थितहोताहै,अरु सिद्ध होता है, पर्वत पुरविषे भिक्षुककी नाईं भिक्षा माँगते फिरतेहैं, अरु ब्रह्मांड उड़ते फिरते हैं, बालूते तेल निकसता है, अरु मृतक युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं, अरु वन नृत्य करते हैं॥ हे रामजी ! मनोराज्यकरिकै सब कछु बनता है, चंद्रमाकी किरणोंसाथ पर्वत भस्म होते भी मानते हैं, इसविषे क्या आश्चर्य है, तैसे यह संसार भी मनोराज्य है, अरु तीव्र संवेग है, ताते इसको सत् मानता है, अरु आगे जो बालूते तैलादिक कहे,तिनको सत् नहीं जानता काहेते जो उसविषे मृदु है;अरु हैं दोनों तुल्य ॥ हे रामजी। जिसको सत् अरु असत् कहते हैं, सो आत्माविषे

दोनों नहीं अरु यह जो तेरे ताईं पदार्थ सत् भासते हैं, तौ अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं, अरु जो यह मिथ्या भासते हैं, तौ वह भी मिथ्या तीव्र अरु मृदु संवेगका भेद है, तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं, जैसे स्वप्नते जागा तब स्वप्नको मिथ्या कहता है, अरु जाग्रत्को सत् कहता है, दोनों मनोराज्य हैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु आकार दृष्ट आते हैं, सो सब मिथ्या जान, न तू है न मैं हौं, न यह जगत् है, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे अहं त्वं का उत्थान कोऊ नहीं, केवल शांतरूप है, आकाशरूप अरु निराकाशरूप है, जिसविषे द्वैत कछु नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है, जैसे बालक मृत्तिकाके हस्ती घोड़े मनुष्य बनाता है, अरु नाम कल्पता है. यह राजा है, यह हस्ती है, यह घोड़ा है, सो मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, अरु बालकके मनविषे उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ होते हैं, तैसे मनरूपी बालक नानाप्रकारकी संज्ञा कल्पता है, अरु आत्माते इतर कछु नहीं, ताते भय किसका करता है, तू निर्भय होउ, तेरा स्वरूप शुद्ध है, अरु निर्भय है, अविद्याके कारण कार्यते रहित है, तिसविषे स्थित होउ. यह संसार तेरे फुरणेविषे हुआ है, आत्मा न सत्य कहिये, न असत्य कहिये, न जड़ कहिये, न चेतन कहिये, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है, अरु शास्त्रने जो विभाग कहे हैं, यह जड है, चेतन है, सो इस जीवके जगाने निमित्त कहे हैं, आत्माविषे वास्तव संज्ञा कोऊ नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, ताते दृश्यकी कलना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, ब्रह्माते आदि स्थावरपर्यंत सर्व कलनामात्र है, इसविषे क्या आस्था करनी, संसारके भाव दोनों तुल्य हैं, फुरणा जैसा भावका है, तैसा अभावका है, स्वरूपविषे दोनोंकी तुल्यता है, अरु व्यवहारकालविषे जैसा है, तैसाही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रमाणवर्णनं नाम शताधिकाष्टादशः सर्गः ॥ ११८ ॥

शताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः ११९.

जाग्रत्–अभावप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! भूमिकाका प्रसंग यहां चला था, तिस-विषे जो सार तुमने कहा सो मैं जाना, अब भूमिकाका विस्तार कहौ, अरु योगीका शरीर जब छूटता है, अरु स्वर्गके भोगको भोगकारि गिरता है, तब फिरि उसकी क्या अवस्था होती है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस योगीको भोगकी वांछा होती है, तब स्वर्गको प्राप्त होता है, अरु भोगको भोगता है, जब उसको अपर भी भोगनेकी इच्छा होती है तब पवित्र स्थान अरु धनवान्के गृहविषे आय जन्म लेता है, मध्य मंडल मनुष्यलोकविषे प्राप्त होता है, जो भोगकी वांछा तिनको अपर नहीं होती, तौ ज्ञानवान्के गृहविषे जन्म लेता है, केतेकाल उपरांत तिसकों पिछला संस्कार आय फुरता है, तिसका स्मरण करिके आत्माकी ओर आगे होता जाता है, जैसे कोऊ पुरुष लिखता हुआ सोय जाता है, जब जागता है तब उस लिखेको देखि-कारि बहुरि आगे लिखता है, तैसे वह योगी पूर्वके अभ्यासको पायकारि दिन दिन बढावता जाता है, अरु अज्ञानका संग नहीं करता, जो भोगके सन्मुख है, अरु आत्ममार्गते बहिर्मुख है, अरु जो चुगली करनेवाले तिनका संग नहीं करता, सर्व अवगुण तिसको त्याग जाते हैं, दंभ गर्व अरु राग द्वेष भोगकी तृष्णा यह स्वाभाविक तिसके छूटि जाते हैं, अरु शांतिको प्राप्त होता है, कोमलता दयाते आदि शुभ गुण तिसको स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इस निश्चयको पायकारि वर्ण आश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्रके पारको निकट जाय प्राप्त होता है, पार नहीं भया, यह भेद है सो तीसरी भूमिका है, बहुरि मोहको नहीं प्राप्त होना, जैसे चंद्रमाकी किरणैं कदाचित् तप्तको नहीं प्राप्त होतीं तैसे तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गर्तविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी ! यह सप्त भूमिका ब्रह्मरूप हैं, एताही भेद है जो

तीन भूमिका जाग्रत् अवस्था हैं, चतुर्थ स्वप्न अरु पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीया, सप्तम तुरीयातीत है ॥ हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाविषे संसारकी सत्यता भासती है, ताते जाग्रत् कही है, अरु अपर चारोविषे संसारका अभाव है; ताते जाग्रत्ते विलक्षण है, जाग्रत्विषे घट पट आदिक सत् भासते हैं, घट घटही है, पट पटही है, अन्यथा नहीं, अपना अपना कार्य सिद्ध करते हैं, ताते अपने कालविषे ज्योंके त्यों हैं, इसीप्रकार सर्व पदार्थ हैं, स्थावर जंगमको जानता है, नामरूपकरि ग्रहण करता है, अरु हृदयविषे राग द्वेष नहीं धरता, जो विचारकरिकै तुच्छ जाने है, सो संसारका अत्यंत अभाव नहीं जाना, अरु ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता काहेते कि, तिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, जब स्वरूपको जानै तब संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, इन तीनों भूमिकाकरि संसारकी तुच्छता होती है, नष्टता नहीं होती, इनको पायकरि जब शरीर छूटता है, तब अपर जन्मविषे उसको ज्ञान प्राप्त होता है, अरु दिन दिनविषे ज्ञानपरायण होता है, जब दृढबुद्धि हुई, तब ज्ञान उपजा है, जैसे बीजके प्रथम अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फल निकसते हैं, तैसे प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी टास है, चतुर्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, सो फल है, प्रथम तीन भूमिकावाला धर्मात्मा होताहै, पुरुषोंविषे श्रेष्ठ है, तिसका लक्षण यह जो निरहंकार अरु असंगी धीर होता है, जिसकी बुद्धिते विषयकी तृष्णा निवृत्त भई है, अरु आत्मपदकी इच्छा है, सो पुरुष श्रेष्ठ कहाता है, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरता है, शास्त्रमार्गते उल्लंघित कदाचित् नहीं वर्तता, शास्त्र मार्गकी मर्यादासाथ अपने प्रकृत आचारविषे विचरता सो पुरुष श्रेष्ठ है॥राम उवाच॥हे भगवन् ! पाछे तुमने कहा कि, जब वह पुरुष शरीर छोडताहै, तब एकमुहूर्तविषे उसको युगव्यतीत होता है, जन्मते आदि मृत्युपर्यंत जैसी किसीको भावना होतीहै तैसा आगे भासताहै सो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासताहै, यह कहौ॥वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी ! यह जगत् जो तीनोंकाल भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं भासता, समानही है; जैसे इक्षुविषे मधुरता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है,

जैसे तिलोंविषे तेल है, अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे तिलोंविषे तेल होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् कहूं सत्, कहूं असत्, कहूं जड, कहूं चेतन, कहूं शुभ, कहूं अशुभ, कहूं नरक, कहूं मृतक, कहूं जीवित, ब्रह्माआदि काष्टपर्यंत भाव अभावरूप होता है, सो सत् असत्‌ते विलक्षण है, आत्मसत्ताते सर्व सत्य है; अरु भिन्नकरि देखिये तौ असत्य है ॥ हे रामजी ! जिनको सत्य असत्य जानता है, जो पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासता है, अरु आकाशके फूलादिक असत्य भासते हैं, सो दोनों तुल्य हैं, जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तौ आकाशके फूल भी सत् मानिये, जैसे स्वप्नविषे कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, तैसे जाग्रत्‌विषे भासते हैं, फुरणा दोनोंका समान है; जैसे सत्य पदार्थोंका फुरणा हुआ तैसा असत्‌का फुरणा हुआ; फुरणेते रहित सत् असत् दोनोंका अभाव हो जाता है, ताते यह विश्व भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, जैसे जलविषे पवनकरिकै चक्र आवर्त उठते हैं, तैसे आत्माविषे फुरणे करिकै संसार भासता है, इसकी भावना त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुमने प्रश्न किया कि, एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासताहै, तिसका उत्तर सुन, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है, तौ एक क्षणविषे बड़ा काल बीता भासता है, अपरका अपर भासता है, आश्चर्य तौ कछु नहीं, मोहते सब कछु उत्पन्न होता है, भ्रमकरिकै दृष्ट आता है ॥ हे रामजी ! पुरुष सोया है, तो एक आपही होता है, तिसविषे नाना प्रकारका जगत् भ्रमकरिकै भासता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करि कई भ्रम देखता है, स्वरूपके जाननेविना भ्रमका अंत नहीं होता, ताते तू अपर प्रश्न किसनिमित्त करता है, एक चित्तको स्थिर करि देख, न कोऊ संसार भासैगा, न कोऊ जन्म मृत्यु भासैगा, न कोऊ बंध मोक्ष भासैगा, केवल आत्माही भासैगा, जब संकल्प फुरता है, तब आपको बंध जानता है, संकल्पते रहित मुक्त जानता है, सो अविद्याकरि बंध जानता है, विद्याकरि मुक्त जानता है, अरु आत्मस्वरूप ज्योंका त्यों है, न बंध है, न मुक्त है, न विद्या है, न अविद्या है, केवल शांतरूप है, ताते

सर्वदा सर्वप्रकार सर्व ओरते ब्रह्महीं है, दूसरा कछु नहीं ॥ हे रामजी! जब स्वरूपकी भावना हुई, तब संसारकी भावना जाती रहती है, यह सर्व शब्द कलनाविषे है, यह पदार्थ हैं, यह नहीं, आत्माविषे कोऊ नहीं, जैसे पवन चलने ठहरनेविषे एकही है, तैसे विश्व चित्तका चमत्कार है, ब्रह्मादि चींटीपर्यंत ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, अरु आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं, फुरणेविषे सम हैं, काहेते जो दूसरा कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताही है यह प्रश्न क्या है, आकाश क्या है, पृथ्वी क्या है, मैं क्या हौं, यह जगत् क्या है, यह प्रश्न बनतेही नहीं, एक मनको स्थिरकरि देख, जो ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत कछु भी पदार्थ भासै तौ प्रश्न करिये ताते यह पदार्थ भ्रमकरिकै भासते हैं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रमकरिकै भासता है, रूप अवलोक नमस्कार इनके शब्द कलनाविषे फुरे हैं, रूप कहिये दृश्य, अवलोक कहिये इंद्रियां, नमस्कार कहिये मनका फुरणा, सो सर्व मिथ्या हैं, आत्माविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं, सो भावनाविषे स्थित हुए हैं, जैसी भावना कराती है, तैसे पदार्थ सिद्ध होता है, अरु भासता है, जब संसारकी भावना उठि जावै, तब पदार्थ कोऊ न भासै ॥ हे रामजी! सुषुप्तिविषे भी इसका अभाव हो जाता है तौ तुरीयाविषे कैसे भान होवै, जब स्वरूपते गिरता है, तब इसको संसार भासता है, अरु संसारविषे वासनाकरिकै घटीयंत्रकी नाईं फिरता है, प्रमादकरिकै अबलग बहता जाता है, प्रमाद कहिये स्वरूपते उतारिकरि आत्माविषे अभिमान करना, जो मैं हौं सो अज्ञान है, तिसकरिकै दुःख पाता है, जब अज्ञान नष्ट होवै, तब संसारके शब्द अर्थका अभाव हो जावै, अहंकारते संसार होता है, संसारका बीज अहंकार है, अहंकार कहिये अनात्माविषे आत्माभिमान करना ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है अहंके उत्थानते रहित है, केवल शांतरूप है अरु विश्व भी वहीरूप है, इसकी भावनाविषे दुःख है, यह संवित्शक्ति आत्माके आश्रय फुरती है, तैसे तेलकी बूंद जलविषे डारिये तौ चक्रकी नाईं फिरती है, तैसे संवेदनशक्ति आत्माके

आश्रित फुरती है, अरु ब्रह्म एकस्वरूप है, तिसका स्वभाव ऐसे है, जैसे मोरका अंडा अरु तिसका वीर्य एकरूप है, अपने स्वभावकरिकै वीर्यही नानाप्रकारके रंगको धारता है, तौ भी मोरते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माके संवेदन स्वभावकरिकै नानाप्रकारका विश्व भासता है, परंतु आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मरूप है, सम्यक्दर्शीको नानाप्रकारविषे एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकारका जगत् भासता है॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिला है, जिसविषे त्रिलोकी अनेक पुतलियां कल्पित हैं, जैसे एक शिलाविषे खुरपी पुतलियां कल्पता है, जो इसविषे एती पुतलियां हैं, सो उसके चित्तविषे हैं, जो शिलाविषे हुआ कछु नहीं, तैसे आत्मरूपी शिलाविषे चित्तरूपी खुरपी नानाप्रकारके पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मरूप है, ताते पदार्थकी भावना त्यागकरि आत्माविषे स्थित होहु, अरु यह संसार भी निर्वाच्य है, काहेते कि, ब्रह्मही है ब्रह्मते इतर कछु नहीं, न कोऊ उपजता है न कोऊ विनशता है, कदाचित् भी ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत्अभावप्रतिपादनवर्णनं नाम शताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ ११९ ॥

शताधिकविंशतितमः सर्गः १२०.

पिंडनिर्णयवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस संसारका बीज अहंकार हुआ, इसका पिता अहंकार है, तौ मिथ्या संसार अविद्यमान जो विद्यमान भासता है, सो भ्रमरूप हुआ, जो भ्रमरूप है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं कि, इसका शरीर पिंडकरिकै होता है, जो पिंडकरि होता है, तौ तुम कैसे भ्रम कहते हौ, अरु जो ब्रह्म है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति क्यों पिंडकरि कहते हैं, इस मेरे संशयको निवृत्त करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मेरा कहना सत् है, तैसेही है, अरु ब्रह्मविषे ब्रह्मतत्त्व स्वभाव

है, अरु जगत्‌विषे जगत्‌का लक्षण भी वही है ॥ हे रामजी ! आदि जो किंचन हुआ है, चित्तशक्ति फुरी है, सो ब्रह्मरूप हुआ है, तिसविषे पदार्थका मनोराज्य हुआ है, यह आकाश है, यह पवन आदि है, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है, यह झूठ है, इत्यादिकरि जबलग मनोराज्य है तबलग सर्व मर्यादा ऐसेही है, बहुरि ब्रह्मविषे ऐसे हुआ जो जगत्‌की मर्यादाके निमित्त वेद कहता है, कि यह पदार्थ शुभ है, यह अशुभ है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, मायारूप जगत्‌विषे मर्यादा है, जो न होवै, तौ अधः, ऊर्ध्व, नीच, ऊंच कौन कहै, यह मर्यादा भी वेदविषे नेति निश्चय हुआ है, जो यह शुभ कर्म हैं, इनके कियेते स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु यह अशुभ कर्म हैं, इनके कियेते नरकदुःख भोगते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे वेदविषे निश्चय किया है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाके अनुसार भोगता है ॥ हे रामजी ! यह चित्‌शक्ति नेति होकरि ब्रह्मादिकविषे फुरी है, परंतु उनको सदा स्वरूपविषे निश्चय है, ताते वह बंधायमान नहीं होते, अरु ब्रह्मा विष्णुरुद्रने यह वेदमाला धारी है, कि जैसा कोऊ कर्म करै, तैसा फल देते हैं, यह वेद सर्वकी नेति हैं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंको संसारकी सत्यता दृढ भई है, सो जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं, तैसे शरीरको धारते हैं, इसविषे संशय नहीं जो शास्त्रमर्यादाते उल्लंघित वर्त्तते हैं, अपनी इच्छाकरि सो शरीर त्यागिकरि कोऊ काल मूर्च्छित हो जाते हैं, मुहूर्तविषे जागिकरिआत्मज्ञान विना बड़ेनरकोंको चले जाते हैं, अरु जिनको शून्यभावना भई है कि, आगे नरक स्वर्ग कोऊ नहीं, लोकपरलोकके भयको त्यागिकरि शास्त्रबाह्य वर्तते हैं, तौ मरकर पत्थर वृक्षादिक जड योनिको पाते हैं, चिरकालते उनकी वासना परिणमती है, फेरि दुःखभागी होते हैं, अरु जिनको आत्मभावना हुई है, संसारकी भावना निवृत्त भई है तौ शास्त्रविहित करैं, अथवा अविहित करैं, तिनको बंधन कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी भूमि है, इसविषे निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है, तैसाही कालकरि उगता है, यह निःसंशय है, ताते तुम आत्मभावनारूपी बीज बोवो, और सर्व

आत्मा है, ऐसी भावना करहु, तब सिद्धही आत्मा भासैगा, अरु जिनको संसारका निश्चय हुआ है, तिनको संसार है ॥ हे रामजी । जो पुरुष धर्मात्मा है, तिसको उसी वासनाके अनुसार भासता है, सो धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं, एक सकामी, एक निष्कामी, जो धर्म करते हैं, अरु पापरूपी कामनासहित हैं, तौ स्वर्गभोग भोगिकरि बहुरि गिरते हैं, अरु जो निष्काम हैं, ईश्वरार्पण कर्म करतेहैं, तिनका अंतःकरण शुद्ध होता है, बहुरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यह भी संसारविषे मर्यादा है, जैसा किसीको निश्चय होता है, तैसाही संसारको देखता है, पिंडक-रिकै भी शरीर होता है, काहेते जो यह भी आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, सो जैसे आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, तैसे होता है, जो पवन है, सो पवनही है, जो अग्नि है, सो अग्निही है, इसीप्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज्य हुआ है, तैसेही स्थित है. जैसे जल नीचेहीको जाता है, ऊँचे नहीं जाता, तैसे जो आदि किंचनविषे निश्चय हुआ है, कल्पपर्यंत सोई है ॥ हे रामजी ! जगत् व्यवहारविषे तौ ऐसे है; अरु परमार्थते दूसरा कछु हुआ नहीं, इस जीवने आकाशविषे मिथ्या देह रची है, परमार्थते केवल निराकार अद्वैत आत्मा है, शरीर इसकेसाथ है नहीं, ताते जगत् कैसे होवै ॥ इति श्रीयोवासिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे पिंडनिर्णयवर्णनं नाम शताधिकविंशतितमः सर्गः ॥ १२० ॥

शताधिकैकविंशतितमः सर्गः १२१.

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तेरे प्रश्नऊपर बृहस्पति अरु बलि-राजाका एक इतिहास है, सो श्रवण कर ॥ जब दूसरे परार्धके छः कल्प व्यतीत हुए थे, तिस दिनके युगविषे राजा बलि होत भया, सो कैसा था पराक्रमी मूर्त्ति था, तिस राजा बलिने संपूर्ण दैत्यों अरु राक्षसोंको जीतिकरि अपने वश किया, अपनी आज्ञा तिनपर चलाई, अरु राजा हुआ, अरु इंद्रको भी जीतिकरि अपने वश किया, पूर्ण ऐश्वर्य तिसका

एक नगरकी नांई ले लिया था, देवता किंनरपर तिसकी आज्ञा चली, अरु भूलोक भी लिया, जब सबको ले रहा, तब धर्म आचारको ग्रहण किया, जैसे धर्मात्माका आचार है सो ग्रहण किया, एक समय सर्व सभा बैठी थी, अरु यह कथा चली, कि जन्म कैसे होता है, अरु मृत्यु कैसे होता है, तब राजा बलि बृहस्पति देवगुरुसों प्रश्न करत भया ॥ ब्राह्मण ! यह पुरुष जब मृतक होता है, तब शरीर तौ भस्म हो जाता है, बहुरि कर्मोंके फल कैसे भोगता है, अरु शरीरविना आता जाता कैसे है, सो कहौ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन् ! इस जीवको देह है नहीं, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु है नहीं तैसे इस साथ शरीर भासता है, अरु है नहीं, यह जीव न जन्मता है, न मरता है, न भस्म होता है, न जलिके दुःखी होता है, तत्त्वते तत्त्व यह सदा अच्युत रूप है, स्वरूपके प्रमादते आपको दुःखी जानता है, कि मैं इनको भोगता हौं अरु जन्मा हौं, एता काल हुआ है, यह मेरी माता है, यह पिता है, मैं इनते उपजा हौं, बहुरि आपको मृतक हुआ जानता है ॥ हे राजन् ! भ्रमकरि ऐसे देखता है, जैसे निद्राभ्रमकरि स्वप्नविषे देखताहै, तैसे अज्ञानकरिके यह जीव आपको मानता है, जब मृतक होता है, तब जानता है; कि मेरा शरीर पिंडकरि हुआ है, अब मैं दुःख सुखको भोगौंगा, जैसे स्वप्नविषे आकाश होता है, तहां वासनाकरि अपनेसाथ शरीर देखता है, अरु सुखदुःखको भोगता है, तैसे मरिकरि अपनेसाथ शरीर देखता है; अरु दुःखसुखका भागी होता है, अरु परमार्थते इसके साथ शरीरही नहीं, तौ जन्म मृत्यु कैसे होवै, स्वरूपते प्रमादकरि देह-धारीकी नांई स्थित हुआ है; तिस देहसाथ मिलिकरि जैसी जैसी भावना करता है, तैसाही फल भोगता है, वासनाके अनुसार जैसी इसको भावना होती है, तैसा आगे शरीर देखता है, अरु पांच-भौतिक संसारको देखता है, इसप्रकार भ्रमता है, अरु जन्मता मरता आपको देखता है, जैसे समुद्रते तरंग उठता है, अरु मिटि जाता है, तैसे शरीर उपजता है अरु नष्ट होता है, शरीरके संबंधकरि उपजता अरु विनशता भासता है, यह आश्चर्य है, जो आत्मा ज्योंका त्यों स्व-

भावकरि स्थित है; तिसविषे वासनाके अनुसार विश्वको देखता है ॥ हे राजन्! विश्व इसके अंतर स्थित है, भावनाके अनुसार आगे देखता है, इस जीवविषे विश्व है, अरु विश्वविषे जीव नहीं, जैसे तिलविषे तेल है, अरु तेलविषे तिल नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, भूषणविषे स्वर्ण कल्पित नहीं, तैसे जीवविषे विश्व कल्पित है, इसके आश्रय फुरती है, सो विश्व सत् भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, सत् इस कारण नहीं, जो चलरूप है, स्थित नहीं, अरु असत् इसते नहीं, जो विद्यमान भासती है, ताते इसकी भावना त्याग, यह दृश्य मिथ्या है, इसका अनुभव मिथ्या है, अरु इसको जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है, जैसे मरुस्थलविषे जल मिथ्या है, तैसे आत्माविषे अहंकार जीव मिथ्या है ॥ हे रामजी! जबलग शास्त्रके अर्थविषे चपलता है, अरु स्थितिते रहित है, तबलग संसारकी निवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यके फुरणे अरु अहंकारते जड़ हो जावै, तब इसको आत्मपदकी प्राप्ति होवै, जबलग दृश्यकी ओर फुरता है; चेतन सावधान है, तबलग संसारविषे भ्रमता है ॥ हे राजन्! आत्मा न कहूँ जाता है, न आता है, न जन्मता है, न मरता है, जब चैत्य अरु चित्तका संबंध मिटि जावै, तब आनंदरूपही है, चैत्य कहिये दृश्य अरु चित्त कहिये अहंकार, संवित्. जब दोनोंका संबंध आपसमें मिटि जावैगा, तब शेष आत्माही रहैगा, सो ब्रह्म है, आत्मा है, अरु शिवपद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, सोई शेष रहैगा, सो अनुभव निर्वाच्य पदहै, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जिस युक्तिकरि इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै, सो युक्ति श्रेष्ठ है, जबलग इसको फुरणा उठता है कि यह भाव है, यह अभाव है, तबलग इसको जीव कहते हैं, जब भावअभावका फुरणा मिटि जावै, तब जीवसंज्ञा भी चलती रहै, तब शिवपद आत्माको प्राप्त होवै, तहां वाणीकी गम नहीं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नाम शताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ १२१ ॥

शताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः १२२.

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार बृहस्पतिने बलि राजाको कहा, सो तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैं कहा है ॥ हे रामजी ! जबलग इसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है, तबलग जैसे कर्म करैगा, तैसा शरीर धारैगा ॥ हे रामजी ! जिसवस्तुको चित्त देखताहै, तिसकी ओर अवश्य जाता है, तिसके देखनेका संस्कार इसके अंतर होताहै, जिस पदार्थको इसने सत् जाना है, तिस पदार्थका संस्कार स्थित हो जाता है, अरु समयकरि वह संस्कार प्रगट होता है, जैसे मोरके अंडेविषे शक्ति होती है, जब समय आया, तब नानाप्रकारके रंग तिसविषे प्रगट भासते हैं, तैसे चित्तका संस्कारभी समय पायकरि जागताहै ॥ हे रामजी !सो चित्त अज्ञानते उपजाहै, बहुरि बृहस्पतिने कहा॥ हे राजन्!बीज पृथ्वीपर उगता है, आकाशविषे नहीं उगता, जैसा बीजपृथ्वीविषे बोता है, तैसाहीफल होता है, सो यहां अहंरूप जो है, अपना होना सोपृथ्वी है, जैसी जैसी भावनाकरि कर्म करता है, तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्नहोताहै, बहुरि फल होता है, जो उन कर्मोंके अनुसार धारताहै, अरुसुखदुःखको भोगता है, अरु ज्ञानवान् जो है सो आकाशरूप है, सो आकाशविषेबीज कैसे उपजै, बीज भावनाकरि अज्ञानरूपी पृथ्वीविषे उगता है ॥ बलिरुवाच ॥ हे देवगुरु ! जीव जीवता होवै, अथवा मृतक होवै, इसको जो अनुभव होता है, सो अपनी भावना जनहीते होता है, ताते यह मृतक हुआ, अरु इसकी पिंडादिकविषे भावना न हुई, तौ फिर इसका शरीर कैसे होता है, सुखदुःख भोगनेवाला जो हुआ तौ अकृत्रिम देह हुआ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्!पिंडदान आदिकक्रिया न होवै, अरु इसके अंतर भावनाहै, अरु तिस समय किसीने न किया तौ भी वह जो अंतर भावना है, सोई कर्मरूप है, उसीकरि भासि आता है, अरु जो उसके अंतर भावना नहीं, अरु किसी बांधवने इसके निमित्त पिंडदान

किया तो भी उसको भासि आताहै,काहेते कि, वह भी इसकी वासना-विषे स्पंद है ॥ हे राजन् ! जो अज्ञानी जीव हैं, जिनको अनात्मविषे आत्मबुद्धि है, तिनके कर्म कहां गये हैं, जो वह कर्म करते हैं, सोई उनके चित्तरूपी भूमिविषे पडे उगते हैं, उनके शरीरकी क्या संख्या है, अनेक वासनारूपी ज्ञानविना स्वप्नवत् शरीर धारते हैं॥ बलिरुवाच ॥ हे देवगुरु यह निश्चयकरि मैं जाना है कि, जिसको निष्किंचनकी भावना होती है, सो नीष्किंचन पदको प्राप्त होता है, अरु संसारकी ओरते शिलाकी नांई हो जाता है, जैसी इसकी भावना होती है, तैसा स्वरूप हो जाता है, जब संसारते पत्थरवत् होवै, तब मुक्त होवै ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन् ! निष्किंचनको जब जानता है, तब संसारकी ओरते जड होता है, राग द्वेष संसारका नहीं फुरता, इसीका नाम जड है, अरु केवल सार पदविपे स्थित होता है, जब गुण इसको चलाय नहीं सकै, तब जानिये कि निष्किंचन पदको प्राप्त हुआ है, सोई निःसंदेह मुक्ति है ॥ हे राजन् ! जबलग संसारकी सत्यता चित्त विषे स्थित है, तबलग इसको वासना है, जबलग वासना है, तबलग संसार है, अरु संसारके अभावविना इसको शांति नहीं प्राप्त होती, सो स्वरूपके प्रमादकरि,चित्त हुआ है, चित्तते वासना हुई है, अरु वासनाते संसार हुआ है, ताते इस वासनाको त्यागिकरि कोऊ फुरणा न फुरै, निष्किंचन भाव हो जावै, तब शांतभागी होवै ॥ हे राजन् ! जिस युक्तिसाथ, जिस क्रमसाथ यह निष्किंचनरूप होवै, सोई करै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सुरपुरविषे असुरनायकको सुरगुरुने कहा था, सो मैं तेरे आगे पिंडदानादिकका क्रम कहा है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नाम शताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः ॥ १२२ ॥

शताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः १२३.

चित्तभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! भावै जीवता होवै, भावै मृतक होवै, जो कछु इसके चित्तसाथ स्पर्श हुआ होवैगा, तिसका अनुभव अवश्य करैगा, जैसे मोरके अंडेविषे रस होता है, वह समयकरि विस्तारको पाता है, तैसे इसके अंतर जो वासनाका बीज है, जो वह प्रगट नहीं भासता तौ भी समयकरि विस्तारवान् होता है जबलग चित्त है तबलग संसार है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी ! सो चित्त भी असत् है, तौ विश्व भी असत् है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे विश्व भ्रम है ॥ हे रामजी ! हमको न चित्त भासता है, न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हौं, तू भी आकाशरूप है, यह चित्त स्वरूपके प्रमादकरिकै उपजता है, जैसे जहां काजल होता है, तहां श्यामता होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां वासना होती है, जब ज्ञानरूपी अग्निकरि वासना दग्ध होवै, तब चित्त सत्पदको प्राप्त होता है, अरु जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है ॥ हे रामजी ! चित्तके उपशमका उपाय मुझते श्रवण करु, तिसकरि चित्त निर्वाण हो जावैगा, जो सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनकरि चित्त नष्ट हो जावैगा, तिनविषे तीन भूमिका तेरे तांई कही हैं, क्रमकरिकै अरु चार कहनी रही हैं ॥ हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाविषे जिसको एक भी प्राप्त भई है, तिसको महापुरुष जान, सो संसारते कैसा हो जाता है, सो श्रवण करु, मान मोह तिसके निवृत्त हो जाते हैं, अरु संगदोष तिसको नहीं लगता, अरु उसविषे विचार स्थित होता है, कामना सर्व नष्ट हो जाती है, अरु राग द्वेष तिसको नहीं रहता, सुखदुःखविषे सम रहता है, ऐसा अमूढ पुरुष अव्ययपदको प्राप्त होता है, जेते गुण तीसरी भूमिकाविषे प्राप्त हुए पाते हैं, अरु चित्त नष्ट हो जाता है, तब संसारको नहीं पाता; जैसे दीपकसाथ देखिये तौ अंधकारको नहीं पाता ॥ इति श्रीयो० निर्वा० चित्तभावप्रतिपादनवर्णनं नाम शताधिकत्रयोविं० सर्गः ॥१२३॥

शताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः १२४

पंचमभूमिकावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब तीसरी भूमिका दृढ पूर्ण होती है, अरु दृढ अभ्यासकरि चौथी उदय होती है, तब अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु सम्यक्ज्ञान चित्तविषे उदय होता है, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् शोभा पाता है, अरु आदि अंतते रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वविषे योगीका चित्त स्थित होता है, अरु सर्वको सम देखता है, जिस योगीको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, तिसके नानाप्रकार भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं, अरु अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है, जगत् तिसको स्वप्नकी नाईं भासता है, अरु इंद्रियोंका व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसको होती है, तिसकालविषे खाना पीना रसते रहित हो जाता है, तैसे चतुर्थ भूमिकावालेका व्यवहार रसते रहित होता है, जैसे सूर्य अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे तिसको आत्माका प्रकाश उदय होता है, अरु सर्व कलपना तिसकी नाश हो जाती हैं, न किसी पदार्थविषे राग रहता है, न किसीविषे द्वेष रहता है, संसारसमुद्रविषे डुबावनेवाले राग अरु द्वेष हैं, इष्ट पदार्थविषे राग होता है अनिष्टविषे द्वेष होता है, सो रागद्वेष दोनोंका तिसको अभाव हो जाता है, ताते सँसारसमुद्रविषे गोते नहीं खाता, तिसके चित्तको कोऊ मोहित नहीं कर सकता ॥ हे रामजी ! जबलग तृतीय भूमिका होती है, तबलग उसको जाग्रत् अवस्था होती है, चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई, तब जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, सर्व जगत्को क्षणभंगुर नाशवंत देखता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य भावनाका अभाव हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका लक्षण मुझको ज्योंका त्यों कहौ, तुरीया अरु तुरीयातीत भी कहौ, बड़े जो हैं, सो शिष्यको कहनेते खेदवान् नहीं होते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो तत्त्वका विस्मरण है, अरु पदार्थकी भावना है, नाशवंत पदार्थको सत्की नाईं जानना सो जाग्रत् है, जो पदार्थविषे भावअभावकी सत्यता

होती है, अरु जगत्को मिथ्या भावनामात्र जानना सो स्वप्न कहते हैं, जाग्रत् अरु स्वप्न जिसविषे लय हो जावै, सो सुषुप्ति है, जो ज्ञानभावकरिकै भेदकी शांति हो जावै, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव होवै, ऐसी जो निर्मल स्थिति है, सो तुरीया है ॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव संसारको वर्षाकालके मेघकी नांईं देखते हैं, जो तिनको दृढ होकरि भासता है, अरु जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघकी नांईं संसारको देखता है, अरु जिसको पंचम भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघ नष्ट हुएकी नांईं देखता है; जैसे निर्मल आकाश होता है, तैसे उसको निर्मल भासता है, सो तीनोंका वृत्तांत सुन, अज्ञानी जगत्को जाग्रत्की नांईं देखता है, अरु दृढसत्यता जगत्की तिसको भासती है, तिसकरि रागद्वेष उपजता है, अरु चतुर्थ भूमिकावाला ऐसे देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ वर्षाते रहित होता है अरु जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तैसे तिसको सत्यता जगत्की नहीं भासती, काहेते जो स्मृति तिसको स्वप्नकी होती है, स्वप्नवत् देखता है, ताते उसको रागद्वेष नहीं उपजता है, अरु पंचम भूमिकाप्राप्तिवाला जगत्को सुषुप्तिकी नांईं देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ नष्ट हुआ बहुरि नहीं दीखता, तैसे उसको संसारका भान नहीं होता, अरु चेष्टा उसकी स्वाभाविक पड़ी होती है, जैसे कमल स्वाभाविकही खुलता अरु मुँदि जाता है, तैसे तिसको यत्न कछु नहीं, चेष्टाविषे जैसा प्रतियोगी तिसको स्वाभाविक आय प्राप्त हुआ सो करता है; जैसे कमलके खुलनेका प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुलि गया, अब जब मुँदनेका प्रतियोगी रात्रि भई तब मुँदि जाता है, उसको खेद कछु नहीं, तैसे तिस पुरुषकी अहंममताते रहित स्वाभाविक चेष्टा होतीहै ॥ हे रामजी ! अहंता ममतारूपी जाग्रत्ते वह पुरुष सुषुप्त हो जाता है, अरु संपूर्ण भावरूप जो शब्द अरु अर्थ हैं, तिनका तिसको अभाव हो जाता है, अशेष शेषको मनन नष्ट हो जाता, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता भला बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थकी भावना तिसको नहीं रहती, द्वैतकलना नष्ट हो जाती है, एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, तिसको संसार नहीं

भासता ॥ हे रामजी ! अहंतारूपी तिलते संसाररूपी तेल उपजता है, अरु अहंतारूपी फूलते संसाररूपी गंध उपजती है, संसारका कारण अहंता है, सो अहंता जिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, वह पुरुष इंद्रियोंके इष्टको पायकरि हर्षवान् नहीं होता, अरु अनिष्टके प्राप्त हुए द्वेष नहीं करता, ऐसे आपको नहीं जानता, कि मैं खडा हौं, अरु यहां बैठा हौं अरु चलता हौं, आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है, न अंतर देखता है, न बाहर देखता है, न आकाशको देखता है, न पृथ्वीको देखता है, सर्व ब्रह्महीं देखता है, तिसको इतर कछु नहीं भासता अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है, अहंकारका भी साक्षी, इंद्रियोंका भी साक्षी, अरु विश्वका भी साक्षी है, इनके साथ, स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चंडालसाथ स्पर्श नहीं करता अरु जैसे बीजते अंकुर होता है, बहुरि अंकुरते टास होते हैं, इसीप्रकार पदार्थ परिणामी हैं, अरु आकाश तिनविषे ज्योंका त्यों रहता है. काहेते कि उनके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे वह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्यते अतीत रहता है, जैसे मरुस्थलविषे जल असत् है तैसे उस पुरुषको त्रिपुटी असत्य है, त्रिपुटी अहंता तिस पुरुषकी नष्ट भई है, ताते भेदबुद्धि भी नहीं रहती, तिसीते शांत है, अरु निर्मल है, संसारते सुषुप्त है, अरु चेतन घनताकरिकै पूर्ण है, सर्वदा शांतरूप है, जिन नेत्रकारि संसार जानता है, सो तिनते अंध हुआ है, अर्थ यह जिस मनकारि फुरणा होता है, तिस मनको नाश किया है, अरु भय क्रोध अहंकार मोह तिस पुरुषविषे दीखते हैं, तौ भी उसके हृदयविषे कछु स्पर्श नहीं करते, जैसे पक्षी आकाशविषे आलणा भी करता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं कारि सकता, तैसे उस पुरुषको विकार कोऊ स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! तिस पुरुषके संपूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूपविषे स्थित है, अरु शांतरूप है, आत्माते इतर किसी सुखकी वांछा नहीं करता, अरु सर्व संकल्प तिसके नष्ट हुए हैं, अरु आत्माते इतर कछु नहीं भासता जाग्रत्की नांई दृष्ट आता है, अरु सर्वदा जाग्रत्ते सुषुप्त है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पंचमभूमिकावर्णनं नाम शताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ १२४ ॥

शताधिकपंचविंशतितमः सर्गः १२५.

षष्ठभूमिकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तीसरी भूमिकापर्यंत जाग्रत् है, अरु चतुर्थ भूमिकाविषे जाग्रत् अवस्था स्वप्नवत् देखता है, अरु पंचम भूमिकावाला संसारते सुषुप्त होता है, अरु छठी भूमिकावाला तुरीयापद विषे स्थित होता है, अरु सर्वदा अक्रिय है, किसी क्रियाविषे बंधमान नहीं होता, सर्वकाल आनंदरूप है, अरु भिन्न होकरि आनंदको भोगता नहीं, आपही आनंद हैं, केवल अपने आप स्वतः स्थित है, अरु सर्वदा निर्वाण है ॥ हे रामजी ! सर्व क्रियाविषे यथाशास्त्र विचरता दृष्ट आता है, परंतु अंतरते शून्य है, उसको किसी साथ स्पर्श नहीं, जैसे आकाशविषे सर्व पदार्थ भासते हैं, अरु आकाशका स्पर्श किसीसाथ नहीं, तैसेही सर्व क्रिया तिसविषे विद्यमान दृष्ट भी आती हैं, तौ भी अंतरते किसीसाथ स्पर्श नहीं करता. काहेते कि, जो क्रियाविषे बंधमान करणेहारा अहंकार था, सो तिसका नष्ट हो गया है, केवल शांतरूप है, अहंका फुरणा चिन्मात्रविषेते निवृत्त भया है, चिन्मात्रते उत्थान अहंभावका, सोई अज्ञान है, अरु दुःखदायी है, जब अहंभावनिवृत्त भया, तब कोऊ कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व तिसको दृष्ट भी आता है, तौ भी वास्तवकारि नहीं देखता, तिसको सर्व ब्रह्मही भासता है, खाता है, अरु नहीं खाता है, देता भी है, अरु कदाचित् नहीं दिया, लेता है, तौ भी कदाचित् किसीते कछु नहीं लिया है, चलताहै, परंतु कदाचित् नहीं चला ॥ हे रामजी ! जेते कछु देश काल वस्तु पदार्थ हैं, तिसको सर्वविषे आत्मभाव होता है, यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसविषे दीखती हैं, तौ भी तिसके हृदयविषे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे खाता पीता लेता देता आपको भासता है, अरु जागेते सर्वका अभाव हो जाता है, तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ताविषे जागा है, तिसको गुणकी क्रिया अपनेविषे कोऊ नहीं भासती, अरु जो करता है, तिसविषे अभिलाष

नहीं, तिसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अपनेनिमित्त कर्तव्य कछुनहीं ऐसे भगवान्ने भी कहा है, अरु सर्व आत्माही देखता है, आकाशपृथ्वी सूर्य ब्राह्मण हस्ती श्वान चंडाल आदिक सर्वविषे आत्मभावदेखता है, अरु आकारको मृगतृष्णाके जलवत् देखता है, जो अत्यंत अभाव है, अरु द्रष्टा, दर्शन दृश्य भी उसको आकाशवत् भासते हैं, अरु निर्मल आकाशवत् शांतरूप है, अहंभावते रहित केवल चिन्मात्रविषे स्थित है, ग्रहण त्यागते अतीत अरु सर्व कलनाते रहित निर्वाणपद है, केवल स्वच्छ निर्मल आकाशरूप स्थित है, अहंमम आदिक चिद्ग्रंथि तिसकी भेदी है, चिज्जड कहिये अनात्मविषे अहं अभिमान, सो तिसका नष्ट भया है; केवल शांतरूप हो रहता है, जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल पर्वत निकसा, अरु शांतरूप हुआ, तैसे रागद्वेषरूपी क्षोभ करणेवाले इसके अंतःकरणरूपी पर्वत निकस गया, तब शांतरूप अक्षोभ हुआ, परम शोभाकरि शोभता है, जैसे विश्वकर्माने सूर्यका मंडल रचा है, अरु प्रकाशकरिके शोभा पाता है, तैसे ज्ञानरूपी प्रकाशकरि प्रकाशता है, जैसे चक्री फिरता फिरता रहि जाता है, अरु शांतिको प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानकरि फिरता फिरता ठहरा हुआ, तिसकरि सदा शांतिको प्राप्त भया है, अरु अपने आपकरि प्रकाशता है, जैसे पवनते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे कलनारूपी पवनते रहित पुरुष अपने आपकरि प्रकाशता है, अरु सर्वदा निर्मल है, एकरस है, जैसे घटके अंतर भी शून्य है, अरु बाहर भी शून्य है, तैसे देहके अंतर बाहर आत्माहै, जैसे जलविषे घट राखिये तिसके अंतर बाहर जल होता है, तैसे वह पुरुष अपने आपकरि अंतर बाहिर पूर्ण होरहा है, अरु एकरस है, द्वैत कलनाको नहीं प्राप्त होता अरु तिस पदको पायकरि आनंदमान है, जैसे कोऊ मारणेके निमित्त पकडा हुआ तिसकी रक्षा होवै, तो बडे आनंदको प्राप्त होता है, जैसे वह पुरुष आनंदको प्राप्त हुआ है, जैसे कोऊ आधि व्याधिते छूटा आनंदको प्राप्त होता है, तैसे वह ज्ञानवान् आनंदको प्राप्त हुआ है, जैसे कोऊ पंथेकरि थका हुआ शय्यापर आय विश्राम करै, अरु आनंदको प्राप्त होता है, तैसे ज्ञानवान्को आनंद है, जैसे

पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि आनंदवान् होता है, तैसे वह पुरुष अपने आनंदकरि घुरम है, जैसे काष्ठके जलेते स्वच्छ अग्नि धुएँते रहित प्रकाशती है, तैसे ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुएँते रहित शोभता है ॥ हे रामजी! जब संसारकी ओर देखता है, तब अग्निकरि जलता हुआ आपते जुदा देखता है, ज्ञानरूपी पर्वतऊपर स्थित होकर जलता देखता है ॥ हे रामजी! यह जो कहा है, संसारको जलता देखता है, सो ऐसे भी नहीं फुरता कि, मैं ज्ञानी हौं, यहसंसार है, स्वरूपकी अपेक्षाकरि यह कहा है, जो संसार उसको दुखःदायी भासताहै, आनंदते रहित वह परमानंदको प्राप्त भया है; बहुरि कैसा है, जो सत् असत्‌ते रहित अपना आप है, तिसविषे स्थित है, जैसे पर्वत अंतर बाहर अपने आपविषे स्थित है, अरु एकरस है, तैसे वह पुरुष एकरस है, अरु संसारविषे जाग्रत् होकरि चेष्टा करता है, अरु अंतर संसारकी भावनाते रहित है, अरु तिस पदको वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, श्रवण कर, कई ब्रह्म कहते हैं, कई चेतन कहते हैं, आत्मा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, अरु कालवाले उसीको काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं, सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं, इत्यादिक जो संज्ञा हैं, सो सर्व उसीके नाम हैं, तिसते इतर नहीं, तिस पदको संतजन जानते हैं ॥ हे रामजी! ऐसे पदको पायके अपने आपकरि शोभता हैं, जैसे मणिके अंतर बाहर प्रकाश होता है, तैसे वह पुरुष अंतर बाहर शोभता है, अपने स्वरूपकरि सदा घुरम रहता है, जो पुरुष छठी भूमिकाविषे स्थित है, तिसके यह लक्षण होते हैं, संसारते सुषुप्त हो जाता है, अरु स्वरूपविषे चेतन होताहै, जीवत्वभाव तिसका चलता रहता है; जीवत्व कहिये परिच्छिन्नता, जैसे घटकी उपाधिकरि घटाकाश परिच्छिन्न भासताहै, जब घट भग्न हुआ, तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घटके भग्न हुए आत्माही भासता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकोपदेशवर्णनं नाम शताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ १२५ ॥

शताधिकषड्विंशतितमः सर्गः १२६.
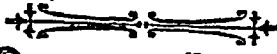
सप्तमभूमिकालक्षणविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसते अनंतर जब सप्तम भूमिका पुरुषको प्राप्त होती है, तब आपको आत्माही जानता है, अरु भूतका ज्ञान जाता रहता है, केवल आत्मत्वमात्र होता है, दृश्यका ज्ञान नहीं रहता, अरु यह भी ज्ञान नहीं रहता कि, विश्व मेरे आश्रय फुरती है, देहसहित होवै अथवा विदेह होवै, उसको आत्माते उत्थान कदाचित् नहीं होता, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु चेष्टा भी स्वाभाविक होती है, जैसे बालक पींघूडेविषे होता है, तिसके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे उसकी चेष्टा खान-पान आदिक स्वाभाविक होती है, जैसे काष्ठकी पुतली तागेकरिकै चेष्टा करती है, तैसे प्रारब्धवेगके तागेकरि उसकी चेष्टा पडी होती है, अपनी इच्छा उसको कछु नहीं रहती ॥ हे रामजी ! जैसी अवस्थाको सप्तम भूमिकावाला प्राप्त हुआ है, सो आपही जानता है, इतर कोऊ जान नहीं सकता, जिसका चित्त शान्त है, अरु जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है, सो भी नहीं जान सकता, जिसको वह पद प्राप्त हुआ है सोई जानै ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है, अरु तुरीयापदविषे स्थित है, इसका चित्त निर्वाण हो गया है, तुरीयातीत पदको प्राप्त भया है, अरु विदेहमुक्त है, तिसको अहंभावका उत्थान कदाचित् नहीं होता, सत्रूप है, अरु असत्की नांई स्थित है ॥ हे रामजी ! वह पुरुष तिस पदको प्राप्त हुआ है, जिसको वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, सो पद शुद्ध है, अरु निर्मल है, अद्वैत है, अरु चेतन ब्रह्म है, कालका भी काल भक्षण करनेहारा केवल चिन्मात्र है, अरु ज्योंका त्यों अच्युत पद है, तिस पदको पायकरि ऐसे होता है, जैसे वस्त्रके ऊपर मूर्ति लिखी है, तैसे उत्थानते रहित है, अहंब्रह्मका उत्थान भी नहीं रहता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तमभूमिकालक्षणविचारवर्णनं नाम शताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ १२६ ॥

शताधिकसप्तविंशतितमः सर्गः १२७.

संसरणाभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सप्त भूमिका तेरे तांई कही है, जो ज्ञानकी प्राप्ति इनहीकरि होती है, अन्य साधनाकरि ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! पुरुष ज्ञानवान् हुआ तब जानिये, जब तिसकी वृत्ति प्रथम भूमिकाविषे स्थित हुई है, ताते तुम भूमिकाकी ओर चित्तरूप चरण राखौ, तब तुमको स्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! तीसरी भूमिकापर्यंत सर्व कामना निवृत्त होती हैं, एक आत्मपदकी कामना रहती है, जब तिस अवस्थाविषे शरीर छूटि जावै, तब अपर जन्म पायकरि ज्ञानको प्राप्त होता है, अरु जब चतुर्थ भूमिकाविषे प्राप्त हुए शरीर छूटै तब बहुरि जन्म नहीं पाता काहेते कि, आत्मपदकी प्राप्ति हुई बहुरि कछु पानेकी इच्छा नहीं रहती, जन्मका कारण इच्छा है, जब इच्छा कछु न रही, तब जन्म भी न रहा, जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, तिसको स्वरूपकी प्राप्ति भई है, बहुरि इच्छा कैसे होवै, जैसे भुना बीज नहीं उगता, तैसे उसका चित्तज्ञान अग्निकरिकै दग्ध हुआ है, जो सत् पदको प्राप्त हुआ है, इसीते जन्म नहीं लेता, अरु मरता भी नहीं, संसारको स्वप्नवत् देखताहै, अरु पंचम भूमिका-वाला सुषुप्तकी नांई होता है, अरु छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयापद है, सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्यपद है ॥ हे रामजी ! मेरे एते कहनेका प्रयोजन यही है, कि, वासनाका त्याग करु, अरु अचिंतपदको प्राप्त होहु, सो वासना क्या है, इसका अभिमान होनाही वासना है, जब इसका अभिमान निवृत्त भया, तबही शांति हुई यह, परिच्छिन्न अहं-कार रहता नहीं, आत्माके अज्ञानते हुआ है, अरु आत्मज्ञानते लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी है, तिसविषे आधिव्याधि उपाधि रोग तरंग हैं, अरु रागद्वेषरूपी छोटे मत्स्य हैं, अरु तृष्णारूपी बडे मत्स्यहैं, तिसविषे तिसकरि जीव दुःख पाते हैं, जैसे जल नीचेको

चला जाता है, तैसे मृत्युके मुखमें संसार चला जाता है, अरु अज्ञानरूपी जल है ॥ हे रामजी ! तृष्णाकरि पुरुष बांधे हैं, ताते तुम तृष्णारूपी संगलको काटौ, हस्तीकी नांई वैराग्य अभ्यासरूपी दंतकरि तृष्णारूपी जंजीर काटहु ॥ हे रामजी ! यह तृष्णारूपी सर्पिणी है, विषयरूपी फूत्कारेकरि विचाररूपी वल्लीको जलाती है, तिसकरि जीवरूपी कृषाण दुःख पाताहै, ताते वैराग्यरूपी अग्निकरि सर्पिणीको जलावहु ॥ हे रामजी ! तृष्णा दुःखदायी है, जबलग तृष्णा है, तबलग संतके वचन इसके हृदयविषे स्थित नहीं होते, जैसे दर्पणके ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसे तृष्णावान्‌के हृदयविषे संतके वचन नहीं ठहरते, सो तृष्णाके एते नाम हैं, तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरणा, संसारणा इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं, सो इच्छारूपी मेघ है, तिसने ज्ञानरूपी सूर्य आच्छादितकिया है, तिसकरि भासता नहीं जब विचाररूपी पवन चलै तब इच्छारूपी मेघ नष्ट होजावै अरु आत्मरूपी सूर्यका साक्षात्कार होवै ॥ हे रामजी ! यह जीव आकाशका पक्षी है, तिसका कर्मविषे इच्छारूपी तागा है, तिसकरि उड़ि नहीं सकता, अरु परमात्मपदको प्राप्त नहीं होता, अरु इच्छाहीकारि दीन है, जब इच्छा नष्ट होवै, तब आत्मस्वरूप है, ताते इच्छाका नाशकरि आत्मपरायण होहु, आत्मपरायण कहिये विषयसंसारते वैराग्य अरु आत्मअभ्यास करौ ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तेरे तांई भूमिकाक्रम कहा है, जब इसविषे आवै, तब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, सो इनको तब प्राप्त होता है, जो एक हस्तिनीको जीतता है, एक वनविषे रहती है, दो उसके पुत्र महामत्तरूप हैं, वह अनेक जीवको मारिकरि अनर्थको प्राप्त करती है, तिसके जीतेते सर्व जगत् जीता जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसी हस्तिनी मत्तरूप सो कौन है, अरु कहां रहती है, कौन उसके दंत अरु पुत्र हैं, कैसे वह मारती है, अरु कैसे उसको रचा है, अरु कौन वन है, यह सब मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इच्छारूपी हस्तिनी है, शरीररूपी वन है, मनरूपी गुफाविषे रहती है, इंद्रियांरूपी बालक हैं, संकल्पविकल्परूपी दंतहैं, तिनसाथ छेदती है ॥ हे रामजी ! एक नदीहैं, तिसका प्रवाह सदा चला जाता है, तिसविषे दो मत्स्य रहते हैं, जो नाश

नहीं होते, यह संसरणाही नदी है, अरु राग द्वेष तिसविषे मत्स्य रहते हैं, सो नाश नहीं होते ॥ हे रामजी ! मत्स्य तब नाश होवैं, जब संसरणरूपी जल नष्ट होवै, तिसके सुकृतदुष्कृतरूपी किनारे हैं, चितारूपी ग्राह हैं, कर्मरूपी लहरी हैं, तिनविषे आया जीवरूपी तृण भटकता है, अरु तृष्णारूपी विषकी वल्लीको नाश करौ ॥ हे रामजी ! तृष्णारूपी अंकुरका बढ़ाना घटाना अपने अधीन है, जो अंकुरको जल देइये तौ बढ़ता जाता है अरु जो न देइये तौ जलि जाताहै, सो फुरणेरूपी जल देनेकरि तृष्णारूपी अंकुर बढ़ताजाता है, अरु न देनेकरि जलि जाता है, स्वरूपके अभ्यासकरि ॥ हे रामजी ! तृष्णारूपी बड़ा मत्स्यहै, धैर्य आदिक मांसको भक्षण करनेवाला है, तिसको वैराग्यरूपी कुंडा अरु अभ्यासरूपी दंतीकरि नाश करौ ॥ हे रामजी ! इच्छाका नाम बंधन है; निरिच्छाका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी ! एक सुगम उपाय कहता हौं; जिसकरि तृष्णा नष्ट हो जावै, सो निज अर्थकी भावना करु; जब निज अर्थकी भावना करोगे, तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु तेरी जय होवैगी, सर्वते उत्तम पदको प्राप्त होवैगा, अरु वासना तेरी कोऊ न रहैगी, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु संकल्प सर्व नष्ट हो जावैंगे ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणाभावप्रतिपादनवर्णनं नाम शताधिकसप्तविंशतितमः सर्गः ॥ १२७ ॥

शताधिकाष्टाविंशतितमः सर्गः १२८.

इच्छाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहतेहौ, निज अर्थकी भावना करु, वासना नष्ट हो जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, सो वासना तौ चिरकालकी चित्तविषे स्थित है, एकही वार कैसे नष्ट होवैगी? अरु तुम कहते हौ वासनाके नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है, जिसकी वासना नष्ट हुई तिसका शरीर कैसे रहैगा ? अरु वासना विन चेष्टा

क्योंकरि होवैगी ? ताते जीवन्मुक्तपद कैसे बनै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मेरे वचन प्रीतिसाथ सुन, कैसे वचन हैं, श्रवणोंके भूषण हैं, जिनके सुननेते दरिद्र न रहैगा, निज अर्थके धारणेते संशय नष्ट हो जावैंगे, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, सो निज अक्षरके तीन अर्थ हैं, एक तौ अन्यके अर्थ है, जो पांचभौतिक शरीरते तेरा स्वरूप अन्य विलक्षण है, अरु दूसरा अर्थ यह जो विरुद्ध है, शरीर जड़ है, तमरूप है, अरु तेरा स्वरूप आदित्यवर्णहै, तमते परे है ॥ हे रामजी ! जब तैंने ऐसे धारा कि, मैं आत्मा हौं, अरु यह देहादिक अनात्मा है, तब देह-साथ मिलिकारि अभिलाषा कैसे रहैगी, अर्थ यह कि, न करैगा, जबलग जाना नहीं, तबलग अभिलाषा है, अरु तीसरा अर्थ निजका यह जो अभाव है, कि न मैं हौं, न कोऊ जगत् है, ऐसे जाना तब इच्छा किसकी रहैगी अर्थ यह कि न रहैगी, अथवा जो तू आपको देहते विलक्षण आत्मा जानैगा तौ भी अविद्यकतमरूप शरीरकी अभिलाषा ना रहैगी, देह तमरूप है, तू आदित्यवर्ण है, आदित्यवर्ण कहिये जो तू प्रकाशरूप है, तेरा अरु इसका संयोग कहां होवै, जैसे सूर्यके मंडलविषे रात्रि नहीं दीखती, तैसे जब तू आपको प्रकाशरूप जानैगा, तब तमरूप संसार न देखैगा, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु तेरेविषे चेष्टा कछु न होवैगी, जैसे अर्ध निद्रावालेकी चेष्टा होती है, अरु जानती भी नहीं, तैसे चेष्टा होवैगी, अरु बालककी नांई तुझको अभिमान न होवैगा, जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टा होती है, तैसे तेरी चेष्टा भी स्वाभाविक होवैगी ॥ हे रामजी ! जो तू इच्छा करै कि, यह सुख होवै, अरु यह दुःख न होवै, तौ कदाचित् न होवैगा जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, परंतु ज्ञानवान्के हृदयते संसारकी सत्यता जाती रहती है, अरु चेष्टा स्वाभाविक होतीहै, इच्छा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! जैसे किसी पुरुषको मंजल पेंडा करना होता है, पेंडा बड़ा होवै, अरु पहुँचनेका समय थोड़ा होवै तो वह पुरुष मार्गके स्थान देखता भी जाता है, परंतु बंधमान किसीविषे नहीं होता, तैसे चित्तको आत्मपदविषे लावहु कि, किसीप्रकार पहुँचना है, ऐसा शरीर पायकरि आत्मपद न पाइये तौ

कब पाना है, जो आत्मपदते विमुख है, सो वृक्षादिक जन्मोंको पावैगा ताते ॥ हे रामजी ! चित्त आत्मपदविषे राख, अरु स्वाभाविक इच्छा विना चेष्टा होवै, इच्छाही दुःखदायक है, जब इच्छा नष्ट हुई, तब इसीको ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं, जहां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका अभाव होवै सो तुरीयापद है ॥ हे रामजी ! यह जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयापद है, जब संवेदन फुरणा अहंकारका अभाव हो जावै, तब तुरीयापद प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! अहंकारका होना दुःखदायक है, जब इसका नाश हुआ तबहीं आनंद है, आत्मपदते इतर जो मायाकी रचना है, तिससाथ मिलिकरि आपको जानता है; मैं हौं यही अनर्थ है ताते अहंकारका त्याग करौ, जिसको देखिकरि फुरता है, तिसको निज अर्थकी भावनाकरि नाश करु, जो आत्मपदते इतर भासताहै, सो मिथ्या जानौ, यही निज अक्षरका अर्थ है, जेता कछु संसार भासता है, तिसको स्वप्नमात्र जानौ, सत् जानकरि इसविषे इच्छा करनी यही अनर्थ है अरु मिथ्या जानकरि इच्छा न करनी यही कल्याण है ॥ हे रामजी ! मैं ऊंची बाहुकरि पुकारता हौं, मेरे वचन सुनता कोऊ नहीं कि, इच्छाही संसारका कारण है, अरु इच्छाते रहित होना परम कल्याण है, जब इच्छाते रहित हुआ तब शांतपदको प्राप्त होता है, निरिच्छित हुए आत्मा भासता है, जो आनंदरूप है, सम है, अद्वैत है, तिसविषे जगत्का अभाव है ॥ हे रामजी ! मोहका बड़ा माहात्म्य है, हृदयविषे जो आत्मरूपी चिंतामणि स्थित है तिसको मूर्ख विस्मरण करिकै अहं-काररूपी काचको ग्रहण करते हैं ॥ हे रामजी ! तुम निरभिमान होकरि चेष्टा करौ जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे अभिमान कछु नहीं, अरु चेष्टा तिसकी होती है, तैसे प्रारब्धवेगकरि तुम्हारी चेष्टा होवैगी, यह अभिमान तुम न करौ, कि ऐसे होवै, अरु ऐसे न होवै, जब ऐसा होवैगा, तब शांत-पदको प्राप्त होवैगा, जहां वाणीकी गम नहीं, ऐसे आनंदको प्राप्त होवैगा, जबलग इंद्रियोंके अर्थकी तृष्णा है, तबलग जन्ममृत्युके बंधनमें है, ताते पुरुषप्रयत्न यही है, जो तृष्णाका नाश करौ, कर्मके फलकी तृष्णा तेरे तांई न होवै अरु कर्मके करनेविषे भी तेरे तांई इच्छा न होवै, इन

दोनोंको त्यागिकारि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु ऐसा भी निश्चय न होवै, जो मैं त्याग कियाहै ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने कर्मका त्याग किया है अरु अहंकारसाथ है, तौ पुण्य अरु पाप तिसने सब कछु किया है, अरु जिसविषे अहंभाव नहीं, सो भावै तैसे कर्म करै, तौ भी कछु नहीं किया, सो बंधनको नहीं प्राप्त होता, जो कर्मविषे आपको अकर्ता जानता है, अरु अकरणविषे अभिमानसहित है. तिसको करता देखते हैं, सो बंधवान् है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माको जानकारि अहंममका त्याग करौ, ऐसे संवेदनके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं, स्मृति तिसकी होती है, जिसका अनुभव होता है, जिसका अनुभव न होवै, तिसका त्याग करना सुगम है, अनुभव कहिये प्रत्यक्ष देखना विश्व तेरे स्वरूपविषे है नहीं, तौ अनुभव क्या होवै, यह पदार्थ जो तेरे तांई भासते हैं, तिनके कारणको जान, इनका कारण अनुभवहै, जो अनुभवही इनका मिथ्या है, तौ स्मृति सत् कैसे होवै ? जेवरीविषे सर्पका अनुभव हुआ बहुरि स्मरण किया जो वहां सर्प देखा था, जो सर्पका अनुभवही मिथ्या है, बहुरि उसका स्मरण सत् कैसे होवै, ताते जो वस्तु मिथ्या है,तिसके त्यागनेविषे क्या यत्न है, जब प्रपंचको मिथ्या जाना तब तुमको कोऊ क्रिया बंधन न होवैगी, चेष्टा स्वाभाविक होवैगी अरु रागद्वेष चलता रहैगा, जैसे शरत्कालकी वल्ली सूख जाती है, अरु आकार उसका दृष्ट आता है, तैसे तुम्हारा चित्त देखनेमें आवैगा, अरु चित्तका धर्म जो राग द्वेष है, सो चलता रहैगा, वह चित्त सत् पदको प्राप्त होवैगा,जब सर्व विस्मरण होवैगा तिसको शिवपद कहते हैं, सो परमपद है, अरु ब्रह्म है, शब्द अर्थते रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पदहै, अहंममका त्याग करिकै तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार इसीका नाम है, जो अहं हौं, अरु यह मेरा है, इसको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जबलग अहं मम यह संवेदन है, तबलग दुःख नहीं मिटते, जब यह संवेदन मिटी, तब आनंद है, आगे जो इच्छा है, सो करो ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छाचिकित्सोपदेशवर्णनं नाम शताधिकाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ १२८ ॥

शताधिकोनत्रिंशत्तमः सर्गः १२९.

कर्मबीजदाहोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे एक दो कहना नहीं, अपने आप स्वभावविषे स्थित है, अंतःकरण चतुष्टय अरु बाह्य पदार्थ सर्व चेतनमात्र हैं, इतर कछु नहीं, रूप इंद्रियां अरु मनका फुरणा देश काल सर्व आत्मारूपही है, जैसे बालक माटीकी सैन्य बनाता है; अरु हस्ती घोड़े राजा प्रजा नाम कल्पता है, सो सर्व माटीही है, इतर कछु नहीं तैसे अहं मम आदिक भी सर्व आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, जैसे माटीविषे हस्ती घोड़ा आदिक नाम कल्पता है, तैसे आत्माविषे जगत् जीव कल्पता है, आत्माते इतर कछु नहीं, इस अहंकारका त्याग करु, आत्मपदते इतर कछु फुरै नहीं ॥ हे रामजी ! रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिकाके नाम हैं, मान मेय प्रमाण आदिक यह सब वहीरूप हुए तौ किसकरि किसको संचित कहिये, यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशते इतर कछु वस्तु नहीं, इनको ऐसे जानकारि अफुरशिलावत् निःसंग होय रहहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमने कहा कि अहं मम फुरणेका त्याग करु, यह मिथ्या है, अहं मम असत् है, ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं, इनकी सत्ता कछु नहीं, अरु असंग होहु, सो असंग निष्कर्मकारि होता है, अथवा सकर्मकारि होताहै यह कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तूही कहु कि, कर्म क्या है, निष्कर्म क्या, अरु इनका कारण कौन है, अरु इनका नाश कैसे होवै अरु नाश होनेकारि सिद्धि क्या होवैगी ? जो तू जानता है तौ कह ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे तुमने श्रवण किया हैं, अरु समझाहै, सो मैं कहता हौं, जो वस्तु नाश करनी होवै, तिसको निश्चयकारि मूलते नाश करिये, तबहीं तिसका नाश होता है, शाखा पत्र काटेते उसका नाश नहीं होता ताते इनका क्रम सुनो, यह संसाररूपी वनविषे देहरूपी वृक्ष है, तिसका बीज कर्म है, अरु पाणि पाद आदिक उसके पत्र हैं, अरु

रुधिर श्वास वासना इसविषे रस हैं, अरु सुख दुःख इसके फूल हैं, अरु जाग्रत् कर्म वासनारूपी वसंतऋतु है, तिसकारि प्रफुल्लित होते हैं, अरु सुषुप्ति पापकर्मरूपी इसको शरत्काल है, तिसकारि सूख जाता है, ऐसा शरीररूपी वृक्ष है, बहुरि कैसा है, तरुणपवनरूपी कली है, क्षणका क्षण सुंदर है, जरारूपी फूल इसको हंसते हैं, अरु रागद्वेषरूपी वानर क्षण क्षणविषे क्षोभते हैं, जाग्रत्‌रूपी इसको वसंत ऋतु है, अरु सुषुप्तिरूपी हिम करती है, अरु वासनारूपी रसकारि बढ़ता है, अरु पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास हैं, अरु इंद्रियोंके गढ़रूपी तिसका मुख है, इनकारि शरीरकी चेष्टा होती है, ज्ञानइंद्रियां इसके पंच स्तंभ हैं, इनकारि वृक्ष धारा है, अरु इच्छा इसविषे बेलैं हैं, जो अपने अपने विषयको चाहती हैं, अरु बड़ा स्तंभ इसका मन है, जो सर्वको धारता है, अरु पंच प्राण इसके रस हैं, प्रत्यक्ष अनुमान शब्द इनकारि सर्वको ग्रहण करता है, आगे इनका बीज जीव है, जीव कहिये चैत्योन्मुखत्वचेतन, अरु जीवका बीज संवित् है, जो मात्रपदते उत्थान हुआ है, तिस संवित्‌का बीज ब्रह्म है, तिसके बीज आगे कोऊ नहीं ॥ हे भगवन् ! सबका मूल संवित्‌का फुरणा है, जब इसका अभाव हुआ, तब शेष आत्माही रहा है ॥ हे भगवन् ! यह तौ मैं जानता हौं, आगे कछु कृपा कारि तुम कहौ ॥ हे भगवन् ! जबलग चित्तसाथ संबंध है, तबलग संसारविषे जन्म मृत्यु पाताहै, जब चित्तते रहित हुआ तब परब्रह्म है, सो शिवपद है, अनिच्छित है, शान्तहै अनंत रूप है, चिन्मात्रविषे जो अहंका उत्थानहै, सोई कर्मरूपी वृक्षका कारणहै, जबलग अनात्मासाथ मिलिकारि कहताहै, मैं हौं ऐसा जानता है, सो संसारका कारण है, यह तुम्हारे वचनकारि समुझा है, सो प्रार्थना करी है, आगे कछु कृपाकारि तुम कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है, जबलग संवित् है, तबलग कर्मोंका बीज नाश नहीं होता, अरु यह सब संज्ञा इसकीहैं, कर्मोंका बीज कहिये, इच्छा कहिये, तृष्णा कहिये, अज्ञान कहिये, चित्त कहिये, इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं, अपर क्या किसीविषे हेयोपादेय बुद्धि करै ॥

हे रामजी ! जबलगअज्ञान है, तबलग इच्छा नाश नहींहोती, अरुकर्मभी नाश नहीं होते, नाश दोनोंका भेद नहीं होता, परंतु भेदहै अज्ञानीको भासता है, जो इच्छा है, यहकर्महै, अरु ज्ञानवान्को सर्व ब्रह्मही भासता है ताते सुखीरहता है, अरुअज्ञानीको कर्मविषे कर्म भासताहै, ताते बंधमान होता है, अरु इसीका नामत्यागहै, जो कर्मते कर्मबुद्धि जावैं, अरु इसका नाम त्याग नहीं जो क्रियाका त्याग करना है ॥ ॥ हे रामजी ! बडी उपाधि अहंकार है, जिसका अहंकार नष्ट हुआ है, उसने वह पुरुष कर्म करता है, तौ भी कबहूं कछु नहीं किया, अरु जो अहंकार सहित है, वह पुरुष जो तूष्णीं हो बैठा है, तौ भी सब कर्म करता है, इस अहंके त्यागका नाम सर्वत्याग है, अपर क्रियाके त्यागका नाम सर्वत्याग नहीं,पुरुषप्रयत्न यही है, जोसर्व कर्मोंका बीजअहंकारकात्यागना अरु परम शांतिको प्राप्त होना ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम शताधिकैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १२९ ॥

शताधिकत्रिंशत्तमः सर्गः १३०.

अहंकारनाशविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस संवेदनका होनाही अनर्थ है, जो आपको कछु जानता है, जब यह निवृत्त होवै, तबहीं इसको आनंदहै ॥ हे रामजी ! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारते रहित स्वाभाविक होतीहै,जैसेअर्धनिद्रित पुरुष होता है, तैसे ज्ञानी अपने स्वरूपविषे घूर्म है, जैसे हस्ती मदकारि उन्मत्त होता है, तैसे ज्ञानवान् स्वयंब्रह्म लक्ष्मीकारि घूर्म है, अरु ज्ञान ऐसा व्यसन है, जैसा कामीको काम व्यसन होता है, तैसे यह सुखरूपी स्त्रीको पायकारि घूर्म रहता है, काहेते जो निरहंकार हैं, सर्व दुःखका बीज अहंकार. जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आनंद भया ॥ हे रामजी ! संसाररूपी विषकी वल्ली है, तिसका बीज अहंकार है, जब अहंकार अभाव होवै, तब संसारका अभाव होता है ॥

हे रामजी ! अहंकार दुःखका मूल है, इस संवेदनका विस्मरण करना बड़ा कल्याण है, जो कछु अनात्मसाथ मिलिकारि आपको मानना यही अनर्थ है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो वस्तु असत्य है, तिसका होना नहीं होता, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव नहीं होता, तुम कैसे कहते हौ कि, अहं संवेदनका नाश करौ, ए तौ सत् भासती है, संवेदन अवेदन कैसे होवे ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तू सत्य कहता है, जो वस्तु असत्य है, तिसका होना नहीं, अरु जो सत् है, तिसका नाश नहीं होता है ॥ हे रामजी ! यह जो अहंकार दृश्य तुझको भासता है, सो इसका होना कदाचित् नहीं, मिथ्या कल्पित है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार शब्दअर्थ फुरता है, यह शब्द अरु अर्थ मिथ्या है, तिसका लक्षण यह जो मैं हौं सो कल्पित है, आत्मा केवल शुद्धस्वरूप है, तिसविषे अहं त्वंका शब्द अर्थ कोऊ नहीं, यह अबोधकारि भासते हैं, बोधकारि लीन हो जाते हैं, अरु वेदनाका जो बोध है, सो अनर्थका कारण है, अबोधतम है, जब यह निर्वाण होवै, तब कर्मका बीज मूलते काटा ॥ हे रामजी ! जो कर्मोंको त्यागिकरि एकांत जाय बैठता है, जो मैं कर्म नहीं करता हौं, ऐसे मानता है सो कहताही है, जो अहंकारसाथ है तौ फलको भोगताही है, काहेते जो अहंकारसहित मैं बहुरि करौंगा, आत्मज्ञानविना अनात्म साथ मिलिकारिआपको मानता है, अरु जो पुरुष कर्मइंद्रियोंसाथ चेष्टा करता है, अरु आत्माको लेप नहीं जानता है सो अकर्ताही है, तिसको करणेविषे कछु अर्थ सिद्ध नहीं होते, अकरणेकारि भी नहीं होता, ऐसा पुरुष परमनिर्वाणपदको प्राप्त होता है, जिसको वाणीकी गम नहीं ॥ हेरामजी ! उसविषे फुरणा कोऊ नहीं, चमत्कार है, चमत्कार कहिए हुआ कछु नहीं अरु भासता है, जैसे बिल्वकी मज्जा होती है, वह बिल्वते इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् है, जैसे सोनेते भूषण भिन्न नहीं, तैसे निजशब्दका अर्थ है, सो यह भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबलग भासता है, जबलग अहंवेदनाकार है ॥ हे रामजी ! आत्मपद सदा

अपने आपविषे स्थित है, जैसे पत्थार अपनी जडताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपनी चेतनघनताविषे स्थित है तिसको मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं, तिस अपने स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष गृहविषे स्थित है, अरु अहंकारते रहित है, तिसको वनवासी जान, सदा एकांत है, अरु जो वनवासी है, अरु अहंकारसहित है, सो जनोंविषे स्थित है, प्रथम एक गर्तविषे था, तिसको त्यागिकरि दूसरी गर्तमें पडा है, जो वेषधारी है, अरु वनवास लिया है, तिसको ईश्वर चाहै तौ निकसै, नहीं तौ बडे कूपविषे पडा है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है, एक अंगका त्याग किया अरु दूसरेका अंगीकार किया, ऐसा पुरुष आपको निष्कामी मानता है, तिसको वह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है ॥ हे रामजी ! निष्कर्म यह तबहीं होता है, जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है, अन्यथा नहीं होता, ताते कर्मको मूलते उखाडहु, जैसे शूर दंडबल बुंटेको मूलते काटता है, तैसे काटहु, अहं वेदनाही मूल है, तिसका मूल काटना है ॥ हे रामजी ! पुरुषप्रयत्न इसीका नाम है, जो अपने आपका नाश करना, अरु आपही रहना, देहसाथ मिला हुआ आपको जानता है, तिसका नाश करना, अरु शिवपदको प्राप्त होना, जो सर्वदा सत्स्वरूप है, अरु अद्वैत है, तिसविषे स्थित होहु, यह विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे बिल्वविषे गरी होती है, तिसके बहुत नाम राखते हैं, सो बिल्वते इतर कछु नहीं, तैसे संसार आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे स्तंभविषे काष्ठते इतर कछु नहीं, तैसे यह संसार है, नानात्व जो भासता है, सो भी चेतनघन आत्माही है, अरु निज अक्षरका अर्थ जो तेरे तांई कहा है, सो भी वही है, विधिनिषेध किसका करिये, सर्व परमात्मा तत्त्व है, दूसरा किंचित् मात्र भी नहीं ॥ हे रामजी ! ऐसे आत्माको जानकरि सुखेन विचरो, स्वाभाविक चेष्टा होवैगी, जैसे अर्धनिद्रितकी होतीहै, अरु जैसे बालक पिंघुडेविषे होता है, अंग उसके स्वाभाविक हलते हैं, तैसे तुम्हारी चेष्टा होवैगी, अपना अभिमान तुम न करौ ॥ हे रामजी ! जेते कछु भाव अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्माके साक्षात्कार

हुएते परमात्मतत्त्वही भासैंगे, जब अहंकार उत्थान निवर्त्त होवैगा॥ हे रामजी। एक अपर युक्ति सुन, जिसकरि आत्मज्ञान होवै, यह जो अहं अहं क्षणक्षणविषे फुरती है, सो जब फुरै तबही तिस क्षणविषे जान कि, मैं नहीं. जब ऐसे दृढ हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावैगा, अरु आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवैगा, जब अहंकार नाश होवै, तब आत्मा भासै, ताते अहंकारके नाशका यत्न करु कि, न मैं हौं, न जगत् है॥ हे रामजी! ज्ञान इसीका नाम है, जो अहं मम न रहै, तिसको मुनीश्वर परमब्रह्म कहते हैं, अरु सम्यक् पद कहते हैं, अरु जहां अहं मम है, तहां अविद्यारूपी तम खडा है॥ हे रामजी। अज्ञानीके हृदयविषे सर्व पदार्थका भाव स्थित है, देश काल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार तिसको भासता है, जब इनका अभावहो जावै, तब शांतपदकीप्राप्ति होवै॥इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण-प्रकरणे अहंकारनाशविचारो नाम शताधिकत्रिंशत्तमः सर्गः॥ १३० ॥

शताधिकैकत्रिंशत्तमः सर्गः १३१.

विद्याधरवैराग्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी। जिसके मनते मैं मेरेका अभिमान गया है, तिसको शांतिविना सुख नहीं॥ हे रामजी! प्रथम आप बनता है, तब जगत् है, जो आप होता न बनै तौ जगत् कहां होवै, इसका होनाही अनर्थका कारण है, जिस पुरुषने अहंकारका त्याग किया है, सो सर्वत्यागी भया, अरु जिसने अहंकारका त्याग नहीं किया तिसने कछु नहीं त्यागा, अरु जिसने क्रियाका त्याग किया है, अरु आपको सर्व-त्यागी मानता है, सो मिथ्या है, जैसे वृक्षके टास काटिए तौ फिरि उगता हैं, नाश नहीं होता, तैसे क्रियाके त्याग किये त्याग नहीं होता. त्यागनें योग्य अहंकार जो नष्ट नहीं होता, तौ क्रिया बहुरि उपजती है, ताते अहंकारका त्याग करै, तब सर्वत्यागी होवै, इसका नाम महात्याग है, तिसको स्वप्नविषे भी संसार न भासैगा, जाग्रत्की क्या

कहनी है, तिसको संसारका भान कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! संसारका बीज अहंभाव है, तिसकरि स्थावर जंगम जगत् भासता है, जब इसका नाश हुआ, तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, ताते इसके अभावकी भावना करु, जब तेरे तांई अहंभाव फुरै, तब तू जान कि, मैं नहीं, जब इसप्रकार अहंका अभाव हुआ, तब पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मपद है ॥ हे रामजी ! सब अनर्थका कारण अहंभाव है, तिसीका त्याग करु ॥ हे रामजी ! शस्त्रका प्रहार जीव सह लेता है, अपर व्याधि- रोगको सह लेता है, इस अहंके त्यागनेविषे क्या कदर्थना है ॥ हे रामजी ! संसारका बीज अहंका सद्भाव है; तिसका नाश करना संसारका मूलसंयुक्त नाश है, ताते तिसके नाशका उपाय करौ, जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसको सब ठौर आकाशरूप है, उसके हृदयविषे संसारकी सत्ता कछु नहीं फुरती, यद्यपि गृहस्थ विषे होवै, तौ प्रपंच यह शून्य वनकी कटवी तिसको भासती है, अरु जो अहंकार सहित है, वनविषे जाय बैठे, तौ भी जनके समूहविषे बैठा है, काहेते कि, तिसका अज्ञान नाश नहीं भया, अरु जिसने मनसहित षट् इंद्रियोंको वश नहीं किया, तिसको मेरी कथाश्रवणका अधिकारनहीं; वह पशु है, अरु जिस पुरुषने मनको जीता है, अथवा जो जीतनेकी इच्छा- करता है दिन दिन प्रति सो पुरुष है, अरु जो इंद्रियोंकारि विश्रामी है, काम क्रोध लोभ मोहकारि संपन्न है, सो पशु है, महाअंधतमको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञानवान् है, अरु इच्छा कर्मकी तिस- विषे दृष्टि आती है, तो भी इच्छा तिसकी अनिच्छाही है, अरु कर्म अकर्मही है. जैसे भूंना दाना बहुरि नहीं उगता अरु आकार तिसका भासता है, तैसे ज्ञानवान्की चेष्टा दृष्ट आती है, सो देखने मात्र है, उसके हृदयविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी ! पुरुष कर्मेंद्रियोंसाथ चेष्टा करता है, अरु जगत्की सत्यता हृदयविषे नहीं, तब बंधन कोऊ नहीं होता, अरु जो जगत्को सत्य जानकारि थोड़ा कर्म करता है, तौ भी पसर जाता है, जैसे थोड़ा अग्नि जागकारि बहुत हो जाता है, तैसे थोड़ा कर्म भी उसको जन्ममरण दुःख देता है, अरु ज्ञानीको नहीं होता, उसकी

प्रारब्ध शेष है, सो भी हृदयविषे नहीं मानता, जानता है जो शरीरकी है, आत्माकी नहीं, सो भी वेग उतरता जाता है, जैसे कुंभारका चक्र होता है, अरु चरण चलावनेते रह जाता है, तौ शनैः शनैः वेग उतरता जाता है, तैसे प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है, बहुरि जन्म नहीं होता. काहेते कि, तिसको अहंकाररूपी चरण नहीं लगता, ताते अहंकारका नाश करु, जब अहंकार नाश हुआ तब सर्वके आदि पदको प्राप्त होवैगा, सो परमनिर्वाणपद है, तिसविषे तब बादल होतेहैं, निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब वर्षाकाल होता है, जब शरत्काल आता है, तब बादल चलते रहते हैं ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञानरूपी वर्षाकाल है, तबलग अहंकाररूपी वर्षा है, जब विचाररूपी शरत्काल आवैगा, तब अहंकाररूपी मेघ चलते रहैंगे, अरु आत्मरूपी आकाश निर्मल भासैगा ॥ हे रामजी ! जैसे मलिन आदर्श होताहै, तब मुखका प्रतिबिंब उज्वल नहीं भासता, जब मैल निवृत्त होवै तब मुखका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासै, तैसे अहंकाररूपी मैलकरि जीव आच्छादित हैं, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त होवै, तब आत्मा ज्योंका त्यों भासै; जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं, अरु सम्यक्दर्शीको सब जलमय दृष्टि आते हैं, अरु भूषणविषे स्वर्णही भासता है, तैसे नानाप्रकारके प्रपंच तिस समदर्शीको चेतनघन आत्माही दृष्ट आता है, आत्माते इतर कछु नहीं देखता, अपर ओरते पत्थरकी शिलावत् हो जाता है. काहेते जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है, अरु जो अहंकार साथ है, क्रियाका त्याग करता है, अरु त्यागकरि आपको सुखी मानता है, सो मूर्ख है, जैसे कोऊ लकडी लेकरि आकाशको नाश किया चाहै तौ नहीं होता, तैसे क्रियाके त्यागकरि दुःख नष्ट नहीं होता, जब संपूर्ण संसार क्रियाका बीज अहंकार नाश होवै, तब अक्रिय आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है, जैसे तांबा अपने तांबाभावको त्यागता है, तब स्वर्ण होता है, तैसे जबजीव अपना जीवत्वभाव त्यागै, तब आत्मा होता है, अरु जैसे तेलकी बूँद जलविषे पडती है, अरु पसरि जाती है, नानाप्रकारके रंग जलविषे भासते हैं, तैसे ब्रह्मरूपी जलविषे अहंतारूपी तलकी बूँद नानाप्रकारकी

कलना दिखाई देती है, आत्मा ब्रह्म निराकार निरंजन इत्यादिक नाम भी अहंकारकरिकै शुद्धविषे कल्पे हैं, सो अफुर केवल सत्तामात्र हैं, सत् अरु असत्की नाईं स्थित हैं ॥ हे रामजी ! संसाररूपी मिर्चका बूटा है, अरु संसाररूपी फूल हैं, अहंतारूपी तिसविषे सुगंधि है ॥ हे रामजी ! जब अहंता उदय हुई, तब संसार उदय होता है, अरु अहंताके नाश हुए संसारनाश हो जाता है, क्षणविषे उदय होता है, अरु क्षणविषे नाश होता है, सो अहंताका होनाही उदय होनेका क्षण है, अरु अहंताका लीन होना सो नाशका क्षण है ॥ हे रामजी ! जैसे मृत्तिकाको जलका संयोग होता है, तिसकारि घट बनता है, तब मृतिका घटसंज्ञाको पाती है, तैसे पुरुषको जब अहंकारका संग होता है, तब संसारी होता है अरु जीवसंज्ञाको पाता है, देश काल पृथ्वी पर्वत आदिक दृश्यको प्रत्यक्ष देखता है, जब अहंता नाश होवै, तब सुखी होता है, जेता कछु नामरूप है, अरु तिसका अर्थ है, सो अहंताकरि भासता है, जब अहंताको त्यागै, तब शांतरूप आत्माही शेष रहैगा, जैसे पवनते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे अहंकाररूपी पवनते रहित अपने स्वभावविषे स्थित होता है, आनंद अरु पदको प्राप्त होता है, अरु अनादि पद अपनेको प्राप्त होता है, अरु सर्वका अपना आप होता है, देश काल वस्तु अपनेविषे देखता है ॥ हे रामजी ! जबलग अहंताका नाश नहीं होता तबलग मेरे वचन हृदयविषे स्थित न होवैंगे ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने अपना स्वभाव नहीं जाना तिसको ब्रह्म पाना कठिन है, जैसे रेतविषे तेल निकसना कठिन है, तैसे उसको ब्रह्मका पाना कठिन है, अरु अपना स्वभाव जानना अति सुगम है, जब अहंताका त्याग करै कि, न मैं हौं, न जगत् है, जब कल्याण हुआ, तब अहंताका नाश होता है, तब भ्रम कोऊ नहीं रहता, जैसे जेवरीके जाने सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है, जबलग अहंता फुरती है, तबलग उपदेश इसका नहीं लगता, जैसे आरसीके ऊपर मोती नहीं ठहरता, उसके हृदयविषे मेरे वचन नहीं ठहरते, अरु जिसका हृदय शुद्ध है, तिसको मेरेवचन लगते हैं, जैसे तेलकी बूँद जलविषे विस्तारको पाती है; तैसे उसको थोडा वचन भी बहुत हो लगता है ॥ हे रामजी ! इसपर एक पुरा-

तन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं, सो तू श्रवण करु, मेरा अरु कागभुशुंडका संवाद है॥ एक समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर मैं गया था, तहाँ भुशुंड बैठा था, तिससों मैं प्रश्न किया कि, हे अंग! ऐसा भी कोऊ पुरुष है, जिसकी आयुर्बल बडी होवै, अरु ज्ञानते शून्य रहा है, जो उनको देखा होवै तौ कहौ ॥ भुशुण्डिरुवाच ॥ हे भगवन् ! एक विद्याधर देवता होत भया है, तिसका बडा आयुर्बल था, अरु विद्या बहुत अध्ययन करी थी, सत्कर्मोंविषे विचरता था, अरु भोग भी तिसने बड़े भोगे थे, अरु सत्कर्मोंको करै, परंतु केवल सकाम चतुर्युगपर्यंत सकाम कर्म करता रहा, जप तप नियम आदिक कर्म करत भया, जब चतुर्थ युगका अंत हुआ, तब उसको विचार आनि उपजा, जेते भोग सुखरूप जानकरि भोगता था, तिन भोगोंते उसको वैराग्य उपजत भया, तब भोगको त्यागिकरि लोकालोक पर्वतपर गया, तहां जायकरि विचारत भया कि, यह संसार असाररूप है, किसी प्रकार इसते छूटौं, वारंवार जन्म है वारंवार मृत्यु है, पदार्थ सत्य कोऊ नहीं, किसका आश्रय करौं; ऐसे विचार करिकै वह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरुपर्वतके ऊपर मेरेपास आय प्राप्त भया, अरु शिर नीचा करि मेरे ताईं दंडवत् करै, अरु मैं भी बहुत आदर किया, तब हाथ जोडिकरि तिसने कहा ॥ विद्याधर उवाच ॥ हे भगवन् ! एते कालपर्यंत विषयको भोगता रहा हौं, परंतु शांति मेरे ताईं प्राप्त नहीं भई, तिसते मैं दुःखी रहा हौं तुम कृपाकरि शांतिका उपाय कहौ ॥ हे भगवन् ! चित्ररथका जो बाग बना हुआ है, तिसविषे सदाशिवजी रहता है, अरु कल्पवृक्ष भी बहुत हैं; तिसविषे मैं चिरकाल रहा हौं, बहुरि विद्याधरके स्वर्गविषे रहा हौं, अरु इंद्रके नंदनवनविषे रहा हौं, अरु स्वर्गकी कंदराविषे रहा हौं, अरु सुंदर अप्सरासाथ स्पर्श किया, अरु विमानपर आरूढ बहुत रहा हौं ॥ हे भगवन् ! इत्यादिक बहुस्थान मैंने देखे हैं, अरु तप भी बहुत किया है, दान यज्ञ व्रत भी बहुत किया है, अरु सहस्र वर्ष सुंदररूप देखता रहा हौं, जिनकी सुंदरता कहनेविषे नहीं आती, तौ भी नेत्रको तृप्ति नहीं भई, अरु बहुत सुगंधिकरि नासिकाको तृप्ति न भई, अरु रसनाकरि भोजन बहुत प्रकारके खाए हैं, तौ भी शांति न भई, तृष्णा

बढती गई, अरु श्रोत्रकरि शब्द राग बहुत प्रकार सुने हैं, अरु त्वचाकरि स्पर्श बहुत किये हैं तौ भी शांति न प्राप्त भई ॥ हे भगवन्! मैं जिस ओर सुख जानिकरि प्रवेश करौं, तिसी ओर दुःख प्राप्त होवै, जैसे मृग क्षुधा निवारणेअर्थ घास खाने आता है, अरु राग सुन मूर्च्छित हो जाता है, अरु वधिक उसको पकड लेता है, तब मृग दुःख पाता है, तैसे मैं सुख जानिकरि विषयको ग्रहण करता था, अरु बड़े दुःखको प्राप्त भया ॥ हे भगवन्! मैं चिरकालतक दिव्य भोग भोगे हैं, पांचों इंद्रिय छठे मनसहित कछु कहनेविषे नहीं आते, ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे, परंतु मेरे तांई शांति न प्राप्त भई, अरु न इंद्रिय तृप्त भईं, जैसे घृतकरि अग्नि तृप्त नहीं होती, तैसे दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है, अरु अंतर पडी जलाती है, जो पुरुष इन भोगके निमित्त यत्न करता है, जो मैं इनकरि सुखी होऊंगा, सो मूर्ख है, तिसको धिक्कार है, वह समुद्रविषे तरंगका आश्रय करता है, अरु यह सुखरूप तबलग भासते हैं, जबलग इंद्रियां अरु विषयका संयोग है, जब इंद्रियोंते विषयका वियोग हुआ, तब महादुःखको प्राप्त होता है. काहेते कि, तृष्णा अंतर रहती है, अरु भोग जाते रहते हैं. जो जो विषय भोगते हैं, सोई दुःखदायक हो जाते हैं ॥ हे भगवन्! इसकरि मैं बहुत दुःख पाया है, यद्यपि इंद्रियां कोमल हैं, तौ भी सुमेरुकी नांई कठिन हैं, कोमल भासती हैं, परंतु ऐसे हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्गकी धारा कोमल है, स्पर्श किया मर जाता है, बहुरि कैसी है, जैसे बेडी जलविषे पवनकरि भ्रमती है, तैसे अज्ञानरूपी नदीविषे पवनरूपी इंद्रियोंने मेरेतांई दुःख दिया है ॥ हे भगवन्! ऐसे भी मैं देखे हैं, जो सारा दिन माँगते रहे हैं, अरु भोजन खानेके निमित्त इकट्ठा नहीं हुआ, अरु एक ऐसे देखे हैं, जो ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत सब भोगको एक दिनविषे भोगा है, जिसको दिनविषे भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता, जो सब विषय इंद्रियोंके इष्टरूप भोगता है, तिन दोनोंको भस्म होते देखी, भस्म दोनोंकी तुल्य हो जाती हैं, विशेषता कछु नहीं, इंद्रियोंके बंधनविषे वारंवार जन्मते अरु मरते हैं, अज्ञानी शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त

होते, अरु जो तुम कहौ तू तौ सुखी दृष्ट आता है, तेरे तांई क्या दुःख है, तौ हे भगवन् ! यह दुःख देखनेमें नहीं आता, जैसे चक्रवर्ती राजा होवै, अरु शिरपर चमर झुलता है, अरु अंतर अध्यात्मतापकरि तपता है, जो मनविषे ज्वलन है, तिसकरि जलता है, अरु बाहरते सुखी दृष्ट आता है, तैसे देखनेमात्र मैं सुखी दृष्ट आता हौं, अरु अंतर इंद्रियां मेरे तांई जलाती हैं ॥ हे भगवन् ! ब्रह्माके लोकविषे मैं वडे सुखको देखे हैं, परंतु तहां भी दुःखी रहा हौं, काहेते कि, क्षय अरु अतिशय तहां भी रहती है, जिसकरि वह भी जलते हैं, अरु इन इंद्रियोंका शस्त्रते भी कठिन घाव है, सो घाव क्या है जो संसारकी विषमता नानाप्रकारकी दिखावती हैं, सर्वदा राग द्वेष इनविषे रहता है, तिसकरि मैं बहुत जलता रहा हौं, ताते सोई उपाय मेरेतांई कहो, जिसकरि मैं शांतिको प्राप्त होऊं, अरु वह कौन सुख है, जिसकरि बहुरि दुःखी न होवै; अरु जिसका नाश नहीं, आदि अंतते रहित है, सो कहो, तिसके पानेविषे कष्ट है, तौ भी मैं यत्न करता हौ, जो किसीप्रकार प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर ! इंद्रियोंने मेरे तांई वडा कष्ट दिया है, यह इंद्रियाँ कैसी हैं, जो गुणरूपी वृक्षको अग्नि हैं, शुभ गुणोंको जलाती हैं, विचार धैर्य संतोष अरु शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाश करनेहारी हैं ॥ हे भगवन् ! इनने मेरे तांई दुःख दिया है, जैसे मृगका बच्चा सिंहके वश पडै, तिसको मर्दन करता है, तैसे इंद्रियां मेरे तांई मर्दन किया है ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने इंद्रियोंको वश किया है, तिसका पूजन सर्व देवता करते हैं, अरु दर्शनकी इच्छा करते हैं, अरु जिसने मनको वश नहीं किया, तिनको दीनकरि जानते हैं, अरु जिस पुरुषने इंद्रियोंको वश किया है, सो सुमेरु पर्वतकी नांई अपनी गंभीरताविषे स्थित हैं, अरु जिसने इंद्रियां वश नहीं किया, सो तृणकी नांई तुच्छ है, अरु जिसको इंद्रियोंके अर्थविषे सदा तृष्णा रहता है, सो पशु है, तिसको मेरा धिक्कार है ॥ हे मुनीश्वर ! जो वडा महंत भी है, अरु इंद्रिय उसके वश नहीं तौ वह महानीच है ॥ हे मुनीश्वर ! इंद्रियोंने मेरे तांई वडा दुःख दिया है, जैसे महाशून्य उजाडविषे पैंदोईको तस्कर लूटि लेते हैं, तैसे इंद्रियोंने

मेरेतांई लूटि लिया, है, अरु इंद्रियांरूपी सर्पिणी है, अरु तृष्णारूपी विष हैं, तिसकरि इनविषे सारी विश्व मोहित दीखती है, कोऊ विरले इनते बचे होवैंगे, यह इंद्रियां दुष्ट हैं, अपने अपने विषयको लेती हैं अपरको देती नहीं, तुच्छ अरु जड हैं, अनहोतियोंने दुःख दिया है, जैसे बिजलीका चमत्कार होता है, बहुरि छपन हो जाती है, तैसे इंद्रियोंके सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं, बहुरि छपन हो जाते हैं, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब इनका वियोग हुआ, तब दुःख उत्पन्न होता है, काहेते जो तृष्णा रहती है, एक सैन्य है, तिसविषे इंद्रियोंके भोग उन्मत्त हस्ती हैं, तिसविषे तृष्णारूपी जंजीर हैं, अरु इंद्रियांरूपी रथ हैं, अरु नानाप्रकारके विषय तिसमें घोडे हैं अरु संकल्पविकल्परूपी खड्ग हैं, तिसके धारनेहारा अहंकार है, अरु यह जो क्रिया होती है, अहंकारसहित, सो शस्त्रोंके समूह हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने इस सैनाको नहीं जीती, सो मोहरूपी अंधके कूपाविषे गिरा है, अरु कष्ट पाता है, अरु जिसने जीती है, सो परम सुखको प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह इंद्रियां कैसी हैं, जो भोगकी इच्छारूपी खाईविषे अहंकाररूपी राजाको डारि देती हैं, अरु निकसना कठिन हो पडता है जिस पुरुषने इनको जीता है, तिसकी त्रिलोकीविषे जय होती है, अरु जिसने नहीं जीता, सो महादीनताको प्राप्त होता है, अरु जन्मजन्मांतरको पाता है, इन इंद्रियोंविषे रजोगुण अरु तमोगुण रहता है, तबलग दाहको देती हैं, जबलग रज तम वृत्ति है यह भी मनकी वृत्ती है, जब इनका अभाव होवे, तब शांति प्राप्त होवै, यह शोधि देखा है, जो इंद्रियां तपकरि भी वश नहीं होती हैं, न यज्ञकरि, न व्रतकरि, न तीर्थकरि वश होती हैं, न किसी औषधकरि, न किसी अपर उपायकरिकै वश होती हैं, एक संतके संगकरि निरवासी होवैं, तब वश होती हैं, ताते मैं तुम्हारी शरण हौं मेरे तांई आपदाके समुद्रते कृपा करिकै निकासौ जो मैं बूडता हौं, अरु यह संसारसमुद्रविषे दीन हौं, ताते तुम्हारी शरणको प्राप्त भया हौं, तुम पार करौ, अरु तुम्हारी महिमा संतने भी सुनी है, तुम कृपा करौ ॥ हे भगवन् ! जो कोऊ आयुर्बल-

पर्यंत विषयके दिव्य भोग भोगता रहै अरु इनते शांति चाहै तौ न प्राप्त होवैगी, बडे सुख सो दुःख समान हैं, अरु आकाशविषे उडनेवाले भी हैं, तौ भी इंद्रियोंको वश नहीं करि सकते, ताते दीन दुःखी रहते हैं, अरु ऐसा भी कोऊ पुरुष होवै, जो फूलकी नांई महामत्त हस्तीके दंतको चूर्ण करै, तौ भी मानता हूँ, परंतु इंद्रियोंको अंतर्मुख करना महाकठिन है ॥ हे मुनीश्वर ! एता काल मैं जलता रहा हौं, महाअध्यात्म तापविषे मैं दुःखी हौं, तुम कृपाकरि निकासहु मैं तुम्हारी शरण हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३१ ॥

शताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः १३२.

संसाररूपीवृक्षवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी ! जब इसप्रकार विद्याधरने मेरे आगे प्रार्थना करी, तब मैं कहा ॥ हे अंग, तू धन्य है, अब तू जागा है, जैसे कोऊ पुरुष अंधे कुँएविषे पड़ा होवै, अरु तिसकी इच्छा हुई कि निकसौं तौ जानिये कि, निकसैगा, ताते तू धन्य है ॥ हे विद्याधर ! मैं उपदेश करता हौं, सो तुम अंगीकार करियो, अरु सत् जान जो मेरे वचनोंविषे संशय नहीं करना कि, यह उपदेश ऐसे क्यों किया जो सबके सार वचन हैं, सो तेरे तांई कहता हौं, अरु मैं जानता हौं कि, तू शीघ्रही अंगीकार करैगा, जैसे उज्वल आरसी यत्नविना प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे मेरे वचन तेरे अंतर प्रवेश करैंगे, जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसको संत उपदेश करौ अथवा न करौ, उनको सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं, जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबको यत्नविना ग्रहण करता है, तैसे मेरे वचनोंको तू धारि लेवैगा, तब तेरे दुःख नाश हो जावैंगे, अरु परमानंदको प्राप्त होवैगा, जो अविनाशी सुख है, अरु आदिअंतते रहित है, अरु इंद्रियोंके सुख आगमापायी हैं, सो दुःखके तुल्य हैं, इनते रहित परमसुख है ॥ हे विद्याधरविषे श्रेष्ठ ! जो कछु

तेरे तांई सुखरूप दृष्ट आवै, तिसका त्याग करु, तब परम सुख तेरेतांई प्राप्त होवैगा, अरु सर्व दुःखका मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हुआ, तब शांति होवैगी, संसारका बीज अहंकार है, अरु संसार मृगतृष्णाके जलवत् है, अणहोता भासता है, तबलग संसार नष्ट नहीं होता, जबलग अहंतारूपी संसारका बीज है जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावै, तब संसार भी निवृत्त हो जावै, अरु संसाररूपी वृक्ष है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसके पत्र हैं, तारागण तिसके कली फूल हैं, अरु सप्त समुद्र तिसका रस है, अरु जन्ममरण तिसकेसाथ वल्ली हैं, अरु सुखदुःख तिसके फल हैं, अरु आकाश दिशा पातालको धारिकै स्थित हुआ है, अरु अहंकाररूपी पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है, अहंकार तिसका बीज है, अरु मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है, असत् अरु सत्की नांई स्थित हुआ है, ताते अहंकार बीजका नाश करौ, निरहंकाररूपी अग्निकरि इसको जलावहु, तब अत्यंत अभाव हो जावैगा, यह भ्रम करिकै भयको देता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम भयको देता है, ताते निरहंकाररूपी अग्निकरि इसका नाश करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाररूपीवृक्षवर्णनं नाम शताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३२ ॥

शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः १३३.

संसाराडंवरवर्णनम् ।

भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है, सो श्रवण करु, ब्रह्मविद्या शास्त्र तिसको श्रवण करना, अरु आत्मविचार करना, तिसकरि ज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानरूपी अग्निकरि संसाररूपी वृक्षको जलावहु, अरु आगे भी है नहीं, अणहोता उदय हुआ है, मनके संकल्पकरि हुएकी नांई स्थित है, जैसे पत्थरविषे शिल्पी कल्पता है कि, एती पुतलियाँ निकसैंगी, सो हुई कछु नहीं, तैसे मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियाँ कल्पता है, जब मनका नाश करौगे,

तव संसारभ्रम मिटि जावैगा, आत्मविचार करिकै परमपदको प्राप्त होहुगे, अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासैगा, तातें अहंताको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे विद्याधर ! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजते उपजा है, तिसको जव ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाइये, तव फिरि यह जगत् नहीं उपजता, जव इसको विचारकरि देखिये, तव अहंत्वंको नहीं पाता ॥ हे विद्याधर ! यह अहं त्वं मिथ्या हैं, इनके अभावकी भावना करु, यही उत्तम ज्ञान है ॥ हे साधो ! जव गुरुके वचन सुनिकरि तिनके अनुसार इसने पुरुषार्थ किया, तव यह परम ऊँचे पदको प्राप्त होता है, इसकी जय होती है ॥ हे विद्यारूपी कंदराके धारणेहारे पर्वत अरु विद्यारूपी पृथ्वीके धारणेहारे! यह संसाररूपी एक आडंबर है, तिसके सुमेरु जैसे कई थंभे हैं, अरु रत्नोंकी पंक्तिसाथ जड़े हुए हैं, अरु वन दिशा पहाड वृक्ष कंदरा वैताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्मांड है, सो तिसके ऊपर स्थित है, अरु रात्रिदिन भूतप्राणी अरु इनके जो घर हैं सो चौपडके खाने हैं, कोऊ जैसा कर्म करता है, तिसके अनुसार दुःख सुख भोगता है, सो खेलै है, ऐसेही संपूर्ण प्रपंच क्रियासंयुक्त दिखाई देता है, सो भ्रमकरि सिद्ध है, तातें मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि संकल्पकरि भासती है, तैसे यह सृष्टि भी भ्रमकरि भासती है, अज्ञानकरि रची हुई है, आत्माके अज्ञानकरि भासती है, सो आत्माके ज्ञानकरि लीन हो जाती है, तव भी परमात्मतत्त्वही है, अरु जव सृष्टि होवैगी, तव भी परमात्मतत्त्वही होवैगा, आगे भी वही था अरु जो कछु प्रपंच तेरे तांई दृष्टि आता है सो शून्य आकाशही है, त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचा हुआ है, अपने स्वरूपके प्रमादकरि स्थित भया है, अरु आत्मज्ञानकरि शून्य हो जावैगा, जव प्रपंचही शून्य हुआ, तव आत्मा अरु अनात्माका कहना भी न रहैगा, पाछे जो शेष रहैगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है, सो तेरा अपना आप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु दृश्यका त्याग करु, जो है नहीं, न मैं हौं, न जगत् है, जव तू ऐसा होवैगा, तव तेरी जय होवैगी, आत्मपद सवते उत्तम है, जव तू आत्मपदविषे

स्थित हुआ. तब तू सबते उत्तम हुआ, अरु तेरी जय होवैगी, ताते आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाराडंबरवर्णनं नाम शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३३ ॥

शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः १३४.

चित्तचमत्कारवर्णनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे विद्याधर ! यह प्रपंच भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मा शुद्ध चेतन है; जिसविषे जड अरु चेतन स्थित हैं, अरु सबका अधिष्ठान है, सो सत्तामात्र तेरा अपना आप है, अहं त्वं शब्द अर्थते रहित है, अरु आत्मतत्त्वमात्र है, अरु सत्य स्वरूपकी असत्की नाईं स्थित है ॥ हे विद्याधर ! तू इस जड अरु चेतनते अबोधमान होहु, जब तू अबोध हुआ तब शांति चिद्घन होवैगा, अरु यह जो जड़ चेतन है, सो दोनों जड़ परमार्थ चेतन आगे इन दोनोंका अंतर रहता है, यद्यपि अदृश्य है, तौ भी उनके अंतरही रहता है, जैसे समुद्रके अंतर वडवाग्नि रहती है, अरु इन जड़ चेतनका जो कारणरूप है सो वही है, उत्पत्ति भी उसीते होती है, अरु नाश भी वही करता है, जैसे पवनकरि अग्नि उपजती है, अरु पवनहीकरि लीन होती है ॥ हे विद्याधर ! जब ऐसे जाना कि, मैं चेतनरूप भी नहीं; अरु जड़ भी नहीं, जब ऐसी भावना हुई, तब पाछे जो रहैगा सो तेरा स्वरूप है, जब तेरे अंतर इन जड़ चेतन दोनोंका स्पर्श हुआ नहीं, तब सर्वके अंतर जो चेतन है वह ब्रह्म तेरे तांई भासैगा; अरु विश्व भी आत्माविषे कछु हुई नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंका चमत्कार जलाभास होता है, तैसे शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्व हो भासता है ॥ हे अंग ! जैसे भीतके ऊपर पुतलियां लिखी होती हैं, सो भीतते इतर कछु वस्तु नहीं, चितेरेने पुतलियां लिखी हैं, तैसे शून्य आकाशविषे चित्तरूपी चितेरेने विश्वरूपी पुतलियां कल्पी हैं, सो आत्मरूपी भीतते इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो

स्वर्णते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अज्ञानी विश्व देखते हैं, सो आत्माते इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूपकी संज्ञा है, जगत्का ब्रह्म आत्मा, आकाश, देश, काल, सर्व उसी तत्त्वकी संज्ञा है, वही शुद्ध चेतन आकाश है, जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है, तिसी तत्त्वविषे स्थित होहु, यह जगत् ऐसे है, जैसे दूरदृष्टिकरि आकाशविषे बादल हाथीकी शुंड भासते हैं, तैसे यह जगत् है; यह जो अहं त्वंरूप जगत् है सो अबोधकरिकै भासता है, अरु बोधकरिकै लीन हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंकरि जल भासता है, जैसे गंधर्वनगर है, तैसे यह जगत् है, ताते इसका त्याग करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे चित्तचमत्कारवर्णनं नाम शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥१३४॥

शताधिकपंचात्रिंशत्तमः सर्गः १३५.

सर्गोपसर्गोपदेशवर्णनम् ।

भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! यह जगत् स्थावर जंगम सब आत्माते उत्पन्न हुआ है, आत्माहीविषे स्थित है, अरु आत्माही विश्वविषे स्थित है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु आत्मा किसीका कारण नहीं, काहेते जो अद्वैत है, जिसविषे दूसरा फुरणा नहीं ॥ हे अंग ! जब तू तिस पद पानेकी इच्छा करता है, तब तू ऐसे निश्चय करु कि, न मैं हौं, न यह जगत् है, जब तू ऐसा हुआ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, अरु सर्व वही परमात्मतत्त्व स्थित है, अरु जगत्का कर्त्ता संकल्पही है, काहेते कि, संकल्पकरि उत्पन्न होता है, बहुरि संकल्पहीकरि नाश होता है, जैसे पवनकरि अग्नि उत्पन्न होती है, अरु पवनहीकरि दीपक निर्वाण होता है तैसे जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है, तब संसार उदय हो भासता है, जब संकल्प अंतर्मुख होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु प्रपंच लय हो जाता है, ताते संसारकी नानाप्रकार संज्ञा फुरणेकरि होती है, स्वरूपविषे कछु नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है, न अन्य है, यह

सब कल्पनामात्र है, सत् असत् अरु स्वतः अन्यका अभाव हुआ तहां अहं त्वं कहां पाइये, है नहीं, सो भ्रममात्र है, बालकके यक्षवत् ॥ हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट हो गए, तहां जो सत्ता है, सो परमपद है, अरु जहां जगत् है, तहां विचारकरि लीन हो जाता है, अरु वास्तव पूछै तौ ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, नाममात्र दो हैं, जैसे घट अरु कुंभ हैं, परंतु भ्रमकरि नानात्व भासता है, जैसे समुद्रविषे आवर्त्त तरंग उठते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं, अरु पवनके संयोगते आकार भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् इतर कछु नहीं, परंतु संकल्पके फुरणेकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे अंग! यह संकल्पके साथ मिलिकरि चित्तशक्ति जैसी भावना करता है, तैसा रूप अपना देखता है, स्वरूपते इतर कछु नहीं. परंतु भावनाकरि अपरका अपर देखता है, जैसे शुद्ध मणिके निकट कोऊ रंग राखिये तैसा रूप भासता है, अरु मणिविषे कछु रंग हुआ नहीं, तैसे चित्तशक्तिविषे कछु हुआ नहीं, अरु हुएकी नांईं स्थित है, ताते अपने स्वरूपकी भावना करु, अरु जड़ चेतनको छांडकरि शुद्ध चेतनाविषे स्थित होहु, जब ऐसे जानिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा; तब तेरे तांईं उत्थानविषे भी विश्व अपना स्वरूप भासैगा ॥ हे विद्याधर! यह जगत् भी आत्माते भासता है, जैसे स्थिर समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो कारणरूप जलविना तौ नहीं, तैसे ब्रह्म कारणरूपविना जगत् नहीं, परंतु कैसे है, ब्रह्मसत्ता जो अकर्तारूप है, अद्वैत है, अच्युत है, इसीते कहा है जो अकर्ता है, अरु जगत् अकारणरूप है, जो जगत् अकारणरूप है तौ न उपजता है, न नाश होता है, मरुस्थलके जलवत् है, इसीते कहा है कि, जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल अज अच्युत शांतरूप आत्मतत्त्वही अखंडित स्थित है, शिलाकोशवत् अचेत चिन्मात्र है, जिसको चिन्मात्रकी अंतरभावना नहीं, तिस मूर्खसे हमारा क्या है ॥ हे साधो! परमार्थते कछु बना नहीं, अरु जहां जहां यह मन है, तहां २ अनेक जगत् हैं, तृण सुमेरु आदिक जो है, तिन सर्वविषे जगत् है, जो विचारकरि देखिये तौ वहीरूप है, अपर कछु नहीं, जैसे स्वर्णके जानेते

भूषण भी स्वर्ण भासते हैं, तैसे केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है, इतर कछु नहीं. भिन्न भिन्न संज्ञा भी वही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम शताधिकपंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥१३५॥

शताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः १३६.

यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशवर्णनम् ।

भुशुंड उवाच ॥ हे विद्याधर ! जब यह आत्मपदको प्राप्त होता है, तब इसकी अवस्था ऐसी होती है, जो नग्न शरीर होवे, अरु तिसपर बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तिसकरि दुःखी नहीं होता, अरु सुंदर अप्सरा कंठसे मिलैं तौ तिनकरि हर्षवान् नहीं होता, दोनोंहीविषे तुल्य रहता है ॥ हे विद्याधर ! तबलग यह पुरुष आत्मपदका अभ्यास करै, जबलग संसारते सुषुप्तिकी नांई नहीं होता, अभ्यासहीकरि आत्मपदको प्राप्त होवैगा, जब आत्मपदकी प्राप्ति भई, तब पांचभौतिक शरीरके ज्वर स्पर्श न करैंगे, यद्यपि शरीरविषे प्राप्ति भी होवै तौ भी तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते, केवल शांतपदविषे स्थित रहता है, विद्यमान भी लगते हैं; तौ भी स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे जलविषे कमलको स्पर्श नहीं होता ॥ हे देवपुत्र ! जबलग देहादिकविषे अध्यास है, तबलग इसको सुख दुःख स्पर्श करते हैं, आत्माके प्रमादकरि, जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासैगा ॥ हे विद्याधर ! जैसे कोऊ पुरुष विषपान करता है, तब उसको ज्वलनता अरु खांसी होती है, यह अवस्था विषकी है, सो विषते इतर कछु नहीं, परंतु नाम संज्ञा हुई है, न विष जन्मती है, न मरती है, अरु धूप खांसी उसविषे दृष्ट आई है, तैसे आत्मा न जन्मता है, न मरता है, अरु गुणोंके साथ मिलिकरि अवस्थाको प्राप्त हुआ दृष्ट आता है, आत्मा जन्ममरणते रहित है, अरु गुण व संकलपके साथ मिलनेकरि जन्मता मरता भासता है, अंतःकरण अरु देह इंद्रियादिक भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे साधो ! यह जगत् भ्रमकरि भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष है सो इस

जगत्को अपने पुरुषार्थकरि गोपदकी नाईं लंघि जाता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको अल्प भी समुद्रसमान हो जाता है, ताते आत्मपद पानेका यत्न करौ, जिसके जाननेते संसारसमुद्र तुच्छ हो जावै, सो आत्मतत्त्व कैसा है, जो सर्वविषे अनुस्यूत व्यापा है, अरु सर्वते अतीत है, बहुरि कैसा है, जिसके जानेते अंतर शीतल हो जाता है, सब ताप नष्ट हो जाते हैं ॥ हे साधो ! फिरि तिसका त्याग करना अविद्या है, अरु बड़ी मूर्खता है ॥ हे साधो ! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूपही है, जो ब्रह्मस्वरूप हुए तौ, मन अहंकार आदिक कलंक कैसा; सब वही ह, किसीकरि किसीको कछु दुःख सुख नहीं ॥ हे विद्याधर ! जब आत्मपदको जाना, तब अंतःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे, जो संकल्पकरि भिन्न भिन्न जानते हैं, सो संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे, ताते निःसंकल्प होकरि स्थित होहु कि, न मैं हौं, न यह जगत् है, न इदं है, इन शब्दों अरु अर्थोंते रहित होकरि स्थित होहु, जो संशय सब मिटि जावै ॥ हे विद्याधर ! जब तू ऐसे निरहंकार होवैगा, अरु निःसंकल्प होवैगा तब उत्थानकालविषे भी सर्व आत्मा भासैगा, बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्त्ति इत्यादिक जो शुभ अशुभ अवस्था है, सो सर्व आत्मबुद्धि रहैगी, इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थसत्ताते इतर न भासैगा, जैसे अंधकारविषे सर्पके पैरका खोज नहीं भासता. काहेते कि है नहीं, तैसे तेरे तांईं सर्व अवस्था न भासैगी, सर्व आत्माही भासैगा, जेते कछु भावरूप पदार्थ स्थित हैं, सो अभाव हो जावैंगे ॥ हे अंग ! जिस पुरुषने विचारकरि आत्मपद पानेका यत्न किया है, सो पावैगा, अरु जिसने कहा कि, मैं मुक्त हो रहौंगा, मेरे तांईं दया करैंगे, जिस पुरुषने कदाचित् नहीं मुक्त होना, आत्मस्वरूपविषे स्थित होनेको पुरुषप्रयत्नविना कदाचित् मुक्त न होवैगा, आत्मस्वरूपविषे न कोऊ दुःख है, न किसी गुणसाथ मिला हुआ सुख है, केवल शांतरूप है, किसीकरि किसीको कछु सुख दुःख नहीं, न सुख है, न दुःख है, न कोऊ कर्ता है, न भोक्ता है, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशवर्णनं नाम शताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३६ ॥

शताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः १३७.

इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगत्वर्णनम्।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे विद्याधर! जैसे कोऊ कलना करै कि, आकाशविषे अपर आकाश स्थित है, तौ मिथ्या प्रतीति है, तैसे आत्माविषे जो अहंकार फुरणा है, सो मिथ्या है, जैसे आकाशविषे अपर आकाश कछु वस्तु नहीं, परमार्थतत्त्व ऐसा सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु स्थूल ऐसा है, जिसविषे सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं, द्वैतते रहित चेतन केवल शांतरूप है, गुण अरु तत्त्व क्षोभते रहित है ॥ हे देवपुत्र! अपना अनुभवरूप चंद्रमा है, अरु अमृतके स्रवणेहारा है ॥ हे अंग! जेते कछु दृश्य पदार्थ भासते हैं, सो हुए कछु नहीं हैं, हे अंग! आत्मरूप अमृतकी भावना करु, जो तू जन्ममृत्युके बंधनते मुक्त होवै, जैसे आकाशविषे दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्या है, तैसे निराकार चिदात्माविषे अहं मिथ्या है, जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अहं त्वं आदिकते रहित है, जब अहंका उत्थान तिसविषे होता है, तब जगत् विस्तार होता है, जैसे जलविषे द्रवताकरि तरंग पसरते हैं, तैसे अहंकरि जगत् पसरता है, अरु जैसे वायु फुरणेतेरहित हुई आकाशरूप हो जाती है, तैसे संवित् उत्थान अहंते रहित हुई, तब आत्मरूप हो जाती है, जगद्भ्रम मिटि जाता है, फुरणेकरि जगत् फुरि आया है, वास्तव कछु नहीं, ज्ञानवान्‌को आत्माही भासता है, देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्त्ति सब आकाशरूप हैं, ब्रह्मरूपी चंद्रमाके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे बादलोंके संयोगकरि आकाश धूम्रभावको प्राप्त होता है, तैसे प्रमादकरिकै संवित् दृश्यभावको प्राप्त होती है, परंतु अपर कछु नहीं होती, जैसे तरंगकरिकै जल अपर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठ छेदेते अपर कछु नहीं होता, तैसे द्रष्टाते दृश्य भिन्न नहीं होती, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्रविना अपर कछु नहीं निकसता, पत्र शून्यरूप है, तैसे क्रूररूप जगत् भासता है, परंतु आत्माते

भिन्न कछु नहीं, शून्यरूप है, शीश, भुजा, नेत्र, चरण आदिक नाना-प्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं, परंतु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नाईं भासते हैं, सब असाररूप हैं ॥ हे विद्याधर ! चित्तविषे रागरूपी मलिनता है, जब वैराग्यरूपी झाडूकरि झाडिये, तब इसका चित्त निर्मल होवै, जैसे कंधेके ऊपर चित्र लिखे होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरेने मूर्त्तीं लिखी हैं, स्वरूपके विचारकरि निवृत्त हो जाती हैं, जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है, तब भावअभावरूप जगत् विस्तारको पाता है, जैसे जलविषे तेलकी बूँद विस्तारको पाती है, जैसे बांसते अग्नि निकासिकरि बांसको दग्ध करती है, तैसे स्नेह इसते उपजीकरि उसीको खाते हैं, आत्माविषे जो देश काल पदार्थ भासते हैं, यही अविद्या है ॥ पुरुषार्थकरि इसका अभाव करौ, दो भाग साधुसंग अरु कथाश्रवणविषे व्यतीत करौ, तृतीय भाग शास्त्रका विचार करौ, चतुर्थ भाग आत्मज्ञानका आपही अभ्यास करौ, इस उपायकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी, अरु अशब्द अरूप पदकी प्राप्ति होवैगी ॥ विद्याधर उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! चार भाग जो उपायकरि अशब्द पद प्राप्त होता है, सो सब काल क्या है, नाम अर्थके अभाव हुए शेष क्या रहता है ? भुशुण्ड उवाच ॥ हे विद्याधर ! संसारसमुद्रके तरणेको ज्ञानवान्का संग करना, जो विकृत निर्वैर पुरुष है, तिनकी भलीप्रकार टहल करनी, तिसकरि अर्धभाग अविद्याका नष्ट होवैगा, उनकी संगति करिकै अरु तीसरा भाग मनन करिकै चतुर्थ भाग अभ्यास करिकै नष्ट होवैगा, अरु जो यह उपाय न करिसकै तौ यह युक्तिकर जिसविषे चित्त अभिलाष करिकै असक्त होवै, तिसीका त्याग करु, एक भाग अविद्या, इसप्रकार नष्ट होवैगी, तीन भाग शनैःशनैः करि नष्ट होवैगी; साधुसंग अरु सच्छास्त्रविचार अरु अपना यत्न होवै, तब एकही वार अविद्या नष्ट हो जावैगी, यह समकाल कहिये, अरु एक एकके सेवेते एकएक भाग निवर्त होता है, पाछे जो शेष रहता है, तिसविषे नाम अर्थ सब असत्रूप है, अजर

अनंत एकरूप है, संकल्पके उपजेते पदार्थ भासते हैं, संकल्पके लीन हुए लीन हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! यह जगत् संकल्पकरि रचा है, जैसे आकाशविषे सूर्य निराधार स्थित होता है, तैसे देशकालकी अपेक्षाते रहित यह मननमात्र स्थित है, तीनों जगत मनके फुरणेकरिकै फुरि आते हैं, मनके लय हुए लय हो जाते हैं, जैसे स्वप्नके पदार्थ जागेते अभाव हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर ! ब्रह्मरूपी वनविषे एक कल्पवृक्ष है, तिसकी अनेक शाखा हैं, तिसकी एक शाखासाथ जगत्रूपी गुरलका फल है, तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य पशु आदिक मच्छर हैं, वासनारूपी रसकरि पूर्ण मज्जा पहाड है, पंचभूत मुखद्वारा तिसका खुला निकसनेका मार्ग है, इत्यादिक सुंदर रचना बनी है, तिसविषे त्रिलोकीका ईश्वर इंद्र एक होत भया, गुरुके उपदेशकरि तिसका आवरण नष्ट हो गया, बहुरि इंद्र अरु दैत्यका युद्ध होने लगा, इंद्र अपनी सैन्यको ले चला, तब इंद्रकी हीनता भई, इंद्र भागा, दशों दिशाविषे भ्रमता रहा, जहां जावै तहां दैत्य चले आवैं, जैसे पापी परलोकविषे शोभा नहीं पाता, तैसे इंद्र शांतिको न पाया, तब अंतवाहकरूपकरिकै सूर्यकी त्रसरेणुविषे प्रवेशकरि गया, जैसे कमलविषे भँवरा प्रवेश करै, तैसे प्रवेश किया, वहां युद्धका वृत्तांत इसको विस्मरण हो गया, तब एक मंदिरविषे बैठा आपको देखत भया, जैसे निद्राकरि स्वप्नसृष्टि भासि आवै, तहां रत्नमणिसाथ संवित् नगर देखा तिसविषे प्रवेश करत भया, तहां पृथ्वी पहाड नदियां चंद्र सूर्य त्रिलोकी इसको भासने लगी, तिस जगत्का इंद्र आपको देखत भया, जो दिव्य भोग ऐश्वर्यकरि संपन्न मैं इंद्र स्थित हौं, सो इंद्र केतेक काल उपरांत शरीरको त्यागिकै निर्वाण हुआ, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होता है, तब कुंदनाम पुत्र उसका इंद्र हुआ, राज्य करने लगा, बहुरि तिसका एक पुत्र भया, तब कुंद इंद्र शरीरको त्यागिकरि परमपदको प्राप्त हुआ, तिसका पुत्र राज्य करने लगा, बहुरि तिसका पुत्र हुआ, इसी-प्रकार सहस्रों पुत्र होकरि राज्य करते रहे, उनके कुलविषे यह हमारा इंद्र

राज्य करता है, ताते यह जगत् संकल्पमात्र है, तिस त्रसरेणुविषे यह सृष्टि है, ताते इस जगत्को संकल्पमात्र जानकरि इसकी आस्था त्यागु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगत्वर्णनं नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३७ ॥

शताधिकाष्टत्रिंशत्तमः सर्गः १३८.

संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनम् ।

भुशुण्ड उवाच ॥ हे विद्याधर ! बहुरि उनके कुलविषे एक इंद्र हुआ, बड़ा श्रीमान् त्रिलोकीका राज्य करत भया, बहुरि वह निर्वाण हुआ, तिसके पुत्र रहा तिसको बृहस्पतिके वचनकरि ज्ञानरूप प्रतिमा उदय भई, तब यह विदितवेद होकरि स्थित भया, अरु यथाप्राप्तविषे इंद्र होकरि राज्य करै दैत्योंको जीतै, तब एक कालविषे किसी कार्यके निमित्त भीहकी तंतुविषे प्रवेश किया तहां तिसको नानाप्रकारका जगत् भासने लगा, तहां इसको अपनी इंद्रकी प्रतिमा भई, तब इच्छा उपजी कि, मैं ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होऊं दृश्य पदार्थकी नांई प्रत्यक्ष देखौं एकांत बैठकरि समाधिविषे स्थित हुआ, तिसको अंतर बाहिर ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ तिस प्रतिमाके, उदय होनेकरि एक निश्चय भया कि, सर्व ब्रह्मही है, अरु सर्व ओर पूजने योग्य है, सर्व पूजते भी इसीको हैं, अरु सर्व है, अरु सर्व शब्दते रहित है, रूप अवलोकनते रहित है, अरु मननते भी रहित है, केवल शुद्ध आत्मपद है, अरु सर्व ओरते प्राणपद उसीके हैं, सर्व शीश अरु मुख उसीके हैं, अरु सर्व ओरते तिसीके श्रवण हैं, अरु सर्व ओरते तिसीके नेत्र हैं, अरु सर्वको आत्मत्वकरिकै स्थित हो रहा है, सर्व इंद्रियां अरु सर्व विषयको प्रकाशता है, अरु सर्व इंद्रियोंते रहित है, अरु असक्त हुआभी सर्वको धारि रहा है, निर्गुण है, अरु इंद्रियांसाथ मिलिकरि गुणोंका भोक्ता है, अरु सर्व भूतके अंतर बाहर व्याप रहा है, अरु सूक्ष्म है, ताते दुर्विज्ञेय है, इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु अज्ञानीको ज्ञानकरिकै दूर है, अरु ज्ञानीको

ज्ञानकरिकै निकट है, आत्मत्वकरिकै अरु अनंत है, सर्वव्यापी है, अरु केवल शांतरूप है, जिसविषे दूसरा कोऊ नहीं, घट पट कंध गाए आवा वरा नरा सबविषे वही तत्त्व भासता है, पर्वत पृथ्वी चंद्र सूर्य देश काल वस्तु सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं ॥ हे विद्याधर ! इसप्रकार इंद्रको ज्ञान हुआ, अरु जीवन्मुक्त भया, जो कछु चेष्टा होवै सो सब करै, परंतु अंतःकरणविषे बंधमान न होवै, जब केता काल बीता, तब इंद्र निर्वाणपदको प्राप्त हुआ, आकाश भी जिसविषे स्थूल है, तिस पदको प्राप्त भया, बहुरि इंद्रका एक पुत्र सो बडा शूरवीर था, तिसने सर्व दैत्योंको जीता, बहुरि देवताका अरु त्रिलोकीका राज्य करने लगा, तिसको भी ज्ञान उत्पन्न भया, सच्छास्त्र अरु गुरुके वचनकरि केता काल बीता तब वहभी निर्वाण हुआ, उसका जो पुत्र रहा, वह राज्य करने लगा इसीप्रकार कई इंद्र हुए अरु तिसविषे राज्य करत भये, अरु नानाप्रकारके व्यवहारको देखते भये, तब तिसके कुलविषे इसका कोऊ पुत्र था, तिसको यह हमारी सृष्टि भासि आई, वह भी ब्रह्मध्यानी होत भया, तब वह आयकरि इस त्रिलोकीका राज्य करने लगा, अबलग विश्वका इंद्र वही है ॥ हे विद्याधर ! इसप्रकार विश्वकी उत्पत्ति है, सो संकल्पमात्र है, सब मैं तेरे ताईं कही है, उसको पहिली त्रसरेणुविषे सृष्टि भासी, बहुरि तिस सृष्टिके एक भीडकी तंतुविषे उसको भासी, बहुरि तिसविषे कर्म वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे, उनको तुरत देखे, अणुविषे अनेक अवस्था देखी ॥ हे विद्याधर ! वास्तव कछु हुई नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है,अरु है नहीं, तैसे यह विश्व है, आत्माविषे विश्वका अत्यंत अभाव है, यह विश्व अहंभावते उपजा है, जब अहंभाव फुरता है, तब आगे सृष्टि बनती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कोऊ नहीं, इस विश्वका बीज अहं है, तातें तू ऐसी भावना करु कि, न मैं हौं, न जगत् है, जब ऐसी भावना करी, तब आत्माही शेष रहैगा, जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है, ज्योंका त्यों भासैगा ॥ हे विद्याधर ! इस मेरे उपदेशको अंगीकार करु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकअष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३८ ॥

शताधिकनवत्रिंशत्तमः सर्गः १३९

भुशुण्डिविद्याधरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

भुशुण्डि उवाच ॥ हे विद्याधर ! जब अहंका उत्थान होताहै, तब आगे सृष्टि बनी भासतीहै, जब अहंका अभाव हुआ तब विश्व कछु नहीं भासता केवल शुद्ध आत्माही भासता हैं ॥ हे विद्याधर ! इंद्रते कहा जो मैं हौं, उसको सूर्यकी किरणोंके अणुविषे ऐसे अहं हुआ, तब उसविषे देखा अरु कष्ट पाया, जब उसको अहं न होता, तब दुःखको न पाता, दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है, अरु आत्मविचारते अहंका नाश होता है, जब अहंका नाश होता है तब आत्मपदका साक्षात्कार होता है, अरु आत्मपदके साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहंका नाश होता हैं ॥ हे विद्याधर ! आत्मरूपी एक पर्वत है, तिस ऊपर आकाशरूपी वन है, तिसविषे संसाररूपी वृक्ष लगे हैं, वासनारूपी तिनविषे रसहै, अज्ञानरूपी भूमिते उत्पन्न हुआ है, अरु नदियां समुद्र इसकी नाडी हैं, अरु चंद्रमा तारे इसके फूल हैं, वासनारूपी जलसाथ बढता है, अरु अहंकाररूपी वृक्षका बीज, सुखदुःखरूपी इसके फल हैं, रसविषे अनात्मपद है, अरु टास इसका आकाश है, अरु जड इसकी पाताल है, तुम इस वृक्षको ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, अहंरूपी जो वृक्षका बीज है, तिसका नाश करौ ॥ हे विद्याधर ! एक खाई है, तिसके जन्ममरणरूपी दोनों किनारे हैं, अनात्मरूपी तिसविषे जल है, अरु वासनारूपी तिसविषे तरंग हैं, अरु विश्वरूपी तिसविषे बुद्बुदे होते भी हैं, अरु मिटि भी जातेहैं अरु शरीररूपी तिसविषे झागहै, अहंकाररूपी वायुहै, जब वायु हुई तब तरंग बुद्बुदे सब होते हैं, जब वायु मिटि गई, तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है ॥ हे विद्याधर ! जो वायु हुई तो जलते इतर कछु न हुआ, अरु जो न हुई तौ भी जलते इतर कछु नहीं, जलही है, तैसे अज्ञानके होते भी अरु निवृत्त हुए भी आत्मपद ज्योंका त्यों है, परंतु सम्यक्दर्शनकरिकै आत्मपद भासता है, अरु अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, सो अहंका होनाही अज्ञान

है,जब अहं हुआ तब मम भी होता है, सो अहंमम भी नाम संसारकाहै, जब अहं मम मिटि गया, तब जगत्का अभाव होता है, अहंके होते दृश्य भासती है, अरु दृश्यविषे अहं होती है, ताते संवेदनको त्यागिकरि निर्वाणपदको प्राप्त होहु ॥ भुशुण्डि उवाच ॥ हे वसिष्ठजी ! इसप्रकार जब मैं विद्याधरको उपदेश किया, तब समाधिविषे स्थित हुआ, अरु परम निर्वाणपदको प्राप्त भया, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे उसका चित्त क्षोभते रहित शांतिको प्राप्त भया ॥ हे ब्राह्मण ! उसका हृदय शुद्ध था, मेरे वचनोंने शीघ्रही उसके हृदयविषे प्रवेश किया, जब समाधिस्थित भया, तब मैं उसको वारंवार जगाय रहा परंतु न जागा, जैसे कोऊ जलता जलता शीतल समुद्रविषे जाय बैठे, अरु उससे कहिये तू निकस तौ नहीं निकसता, तैसे संसारतापकरि जो जलता था, सो आत्मसमुद्रको प्राप्त हुआ, तब अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहको नहीं देखता ॥ हे वसिष्ठजी ! जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसको थोड़े वचन भी बहुत हो लगते हैं, जैसे तेलकी एक बूँद जलविषे पाई बडे विस्तारको पाती है, तैसे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसको थोड़ा वचन भी बहुत होकरि लगता है, अरु जिसका अंतःकरण मलीन होता है, तिसको वचन नहीं लगता, जैसे आरसीऊपर मोती नहीं ठहरता; तैसे गुरु शास्त्रके वचन उसको नहीं लगते, जब विषयते वैराग्य उपजै; तब जानिये कि, हृदय शुद्ध हुआ है ॥ हे वसिष्ठजी ! जब मैं विद्याधरको उपदेश किया, तब वह शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त भया. काहेते कि, उसका चित्त निर्मलथा ॥ हे मुनीश्वर ! जो तुमने मुझते पूँछा था सो कहा, जो ज्ञानते रहित चिरकाल जीता देखा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे मैं काकभुशुण्डिसे पूछा था, सो मुझसों कहा, अरु कहकरि तूष्णीं होगया, जैसे मेघ वर्षा करि तूष्णीं होवै, तैसे वह तूष्णीं भया, अरु मैं नमस्कार करिकै उठ आकशमार्गते अपने घर आया ॥ हे रामजी ! मेरे अरु कागभुशुण्डिके संवादको अब एकादश चौकडी युग बीते हैं ॥ हे रामजी ! कालका नियम नहीं, जो थोरे कालकरि ज्ञान उपजता है, अथवा बहुत काल

कारि उपजता है, यह हृदयशुद्धिकी बात है, जिसका हृदय शुद्ध होताहै, तिसको गुरु शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगता है, जैसे जल नीचेको स्वाभाविक जाता है, तैसे शुद्ध हृदयविषे उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी! एता उपदेश क्रमकारिकै तुझको किया है, तिसका तात्पर्य यह कि, फुरणेका त्याग करु कि, ना मैं हौं, न कोऊ जगत् है, तब पाछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहैगा, जो सर्वका अपना आप है, तिसका साक्षात्कार तुझको होवैगा, जैसे मलिन दर्पणविषे मुख नहीं दीखता, तैसे आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलकारि आच्छादित है, जब इसका त्याग करौ, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु जगत् भी अपना आप भासैगा कि आत्माते इतर कछु नहीं, काहेते कि, इतर कछु नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अपर जो कछु भासता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जान, अरु बंध्याके पुत्रवत् जान, यह जगत् आत्माके प्रमादकारि भासताहै, जैसे आकाशमें नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे जगत् प्रत्यक्ष भासताहै, अरु है नहीं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्याहै, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है, जब आत्माका ज्ञान हुआ तब जगत्का अत्यंत अभाव होवैगा, केवल आत्मत्व मात्र अपना आप भासैगा ॥ इति श्रीयो० निर्वा० भुशुण्डिविद्याधरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम शताधिकनवत्रिं० सर्गः ॥ १३९ ॥

शताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४०.

अहंकारासत्ययोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तू अहंवेदनाते रहित होहु, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है, वासनाकारिकै शुभ अशुभरूप कर्मका सुख दुःख फल है, अरु वासनाहीकारि प्रफुल्लित होता है, ताते अहंभावको निवृत्त करौ, जब अहं फुरता है, तब आगे जगत् भासता है, जब अहंताते रहित होवैगा, तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा, सो अहंता आत्मबोधकारि नष्ट होती है, आत्मबोधरूपी खंभाणीकारि उड़ाया अहंतारूपी पाषाण जानियेगा

नहीं कि, कहां गया, अरु स्वर्ण पाषाण तुझको तुल्य हो जावैगा, अरु शरीररूपी पत्रके ऊपर अहंतारूपी अणु स्थित है, जब बोधरूपी वायु चलैगी, तब न जानियेगा कि, कहां गया, अरु शरीररूपी पत्रके ऊपर अहंतारूपी बर्फका कणका स्थित है, बोधरूपी सूर्यके उदय हुए न जानियेगा कि, कहां गया, बोधविना अहंता नष्ट नहीं होती, भावै चीकडविषे गमन होवै, भावै पडाडविषे जाय रहै, भावै घरहीविषे रहै, भावै आकाशविषे उडै, भावै जलविषे रहै, भावै स्थलविषे रहै, भावै स्थूल होवै, भावै सूक्ष्म होवै, भावै निराकार होवै, भावै रूपांतरको प्राप्त होवै, भावै भस्म होवै, भावै मृतक हो जावै, भावै दूर होवै, अथवा निकट होवै, जहां रहैगा, तहांही अहंता इसके साथ है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी वट है, तिसका बीज अहंता है, तिसते सब शाखा पसरती हैं, सब अनर्थका कारण अहंता है, जबलग अहंता है, तबलग दुःख नहीं मिटता, जब अहंभाव नष्ट होवै, तब परम सिद्धताकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं उपदेश किया है, तिसको भलीप्रकार विचारकरि तिसक अभ्यास करु, तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलिजावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारासत्ययोगोपदेशवर्णनं नाम शताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४० ॥

शताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४१.

विराटात्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है, भ्रमकरिकै उदय हुआ है, आत्मस्वरूपविषे सृष्टि वस्ती है, कई लीन होतीहैं, कई उत्पन्न होती हैं, कई उडती हैं, कहूँ जाकर इकट्ठी हो जाती हैं, कहूँ भिन्न भिन्न उडतीहैं, सो मुझको प्रत्यक्षभासती हैं, वह उडती जातीहैं, तुम भी देखौ अरु आकाशरूप हैं, अरु आकाशहीसों मिलती हैं, जैसे केलेका वृक्ष देखनेमात्र सुंदर होता है; अरु तिसविषे सार कछु नहीं होता, तैसे विश्व देखनेमात्र

सुंदर है, अरु आकाशरूप है, बहुरि कैसा है, जैसे जलविषे पहाड़का प्रतिबिंब पडता है. अरु हलता भासता है, तैसे यह जगत् है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, प्रत्यक्ष सृष्टि उड़ती मुझको भासती हैं, तू भी देख, यह तौ मैं कछु नहीं समुझा क्या कहते हौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अनेक सृष्टि उडती हैं, सो श्रवण करु, पांचभौतिक शरीविषे प्राण स्थित है, अरु प्राणविषे चित्त स्थित है, तिस चित्तविषे अपनी अपनी सृष्टि है, जब यह पुरुष शरीरका त्याग करता है, तब लिंगशरीर जो वासना अरु प्राणवायु है, सो उडते हैं, तिस लिंगशरीरविषे विश्व है, वह सूक्ष्मदृष्टिकारि मुझको भासता है ॥ हे रामजी ! आकाशकी जो वायु है, जिसका रूप रंग कछु नहीं, वही वायु प्राणोंसाथ मिलि मेरे तांई प्रत्यक्ष दिखाई देती है, इसीका नाम जीव है स्वरूपते न कोऊ आता है, न जाता है, परंतु लिंगशरीरके संयोगकारि आपको आता जाता देखता है, अरु जन्मता मरता देखता है, अपनी वासनाके अनुसार आत्माविषे विश्व देखताहै, अपर बना कछु नहीं, यह वासनामात्र सृष्टि है, जैसी वासना होतीहै, तैसा विश्व भासता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है, परंतु लिंगशरीरके मिलनेकारि इसका नाम जीव हुआ है, अरु आपको परिच्छिन्न जानता है, वास्तवते ब्रह्मस्वरूप है, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकारि आपको कछु मानते हैं, इसीका नाम लिंगशरीर है, जैसे घटाकाश भी महाकाश है, परंतु घटके खप्परकारि परिछिन्न हुआ है, तैसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है, अहंकारके संयोगकारिकै जीव परिछिन्न हुआ है, जैसे घटको एक देशते उठाय देशांतरविषे ले जाय रक्खा तौ क्या ले गया, आकाश तौ न कहूं गयाहै, न आया है, खप्परकारि आता जाता भासता है, तैसे आत्मा अखंडरूप है, परंतु प्राण चित्तकारि चलता भासता है, जब अहंकाररूप चित्त नष्ट होवै, तब अखंडरूप होवै, जबलग अहंकाररूपी खप्पर नहीं फूटता तबलग जगद्भ्रम दीखता है, अरु वासनाकारिकै भटकता फिरता है, वासनाकारि सृष्टि अपने अपने चित्तविषे स्थित है

जब शरीरका त्याग करता हैं, तब आकाशविषे उड़ता है, प्राणवायु उडिकारि जो आकाशविषे शून्यरूप वायु है तिसविषे जाय मिलतीहै, तहां इसको अपनी वासनाके अनुसार सृष्टि भास आती है, अपनी सृष्टिको लेकारि इसप्रकार उड़ते हैं, जैसे वायु गंधको ले जाती है, तैसे यह वासनारूप सृष्टिको ले जाते हैं, सो उड़ते मेरे तांई सूक्ष्म दृष्टिकरिकै भासते हैं ॥ हे रामजी ! स्थूलदृष्टिकारक लिंगशरीर नहीं भासता सूक्ष्म दृष्टिकारि देखता है, जिस पुरुषको सूक्ष्मदृष्टि लिंगशरीर देखनेकी है, अरु ज्ञानते रहित है, सोऊ मेरे मतविषे मूर्ख पशु है ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष वासनाका त्याग करता है, वासना कहिये अहंकार जो मैं हौं, इस होनेका त्याग करता है, तब आगे विश्व नहीं दिखाई देता, केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है, उसके प्राण नहीं उडते, तहांही लीन हो जाते हैं, काहेते कि उसका चित्त अचित्त हो जाता है, इसकारि नहीं उडते, जबलग अहंकारका संयोग है, तबलग विश्व इसके चित्तविषे स्थित है, जैसे बीजविषे वृक्ष स्थित होता है, जैसे तिलोंविषे तेल स्थित होता है, तैसे इसके हृदयविषे विश्व स्थितहै, जैसे मृत्तिकाविषे बासन बडे छोटे होवैं, जैसे लोहेविषे सुई खड्ग होवै, जैसे बीजविषे वृक्षभाव चेतन अथवा जड़ होवै ॥ हे रामजी ! तैसे यह संकल्पकलनाविषे भेद है, स्वरूपते कछु नहीं, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी ! विश्व संकल्पमात्र है; काहेते कि दूसरी अवस्थाविषे नाश होजाता है, यह जाग्रत् जो तुझको भासता है, सब मिथ्या है, जब स्वप्न आया. तब जाग्रत् नहीं रहती अरु जाग्रत् आई तब यह स्वप्न नाश हो जाता है, जब मृत्यु आती है, तब सृष्टिका अत्यंत अभाव होजाता है, अरु देश काल पदार्थसहित वासनाके अनुसार अपर सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! यह विश्व कैसा है जैसे स्वप्ननगर होवै, तैसा है, जैसे संकल्पपुर होवै, तैसे यह सब संकल्प उड़ते फिरते हैं, सृष्टि कई परस्पर मिलती हैं, कई नहीं मिलतीं परंतु सब संकल्परूपी भ्रमकारिकै अपरका अपर भासता है । जैसे कोऊ पुरुष बड़ा होता है, अरु छोटा भासता है, अरु छोटेका बडा भासता है, जैसे हस्तीके निकट अपर पशु तुच्छ भासते हैं,

अरु चींटीके निकट अपर बड़े भासते हैं, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको बडे पदार्थ देशकालसंयुक्त विश्व तुच्छ भासता है, असत् जानता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसको संकल्पसृष्टि बड़ी होकरि भासती है, जैसे पहाड़ बडा भी होता है, परंतु जिसकी दृष्टिते दूर है, तिसको महालघु तुच्छ जैसा भासता है, अरु चींटीके निकट तुच्छ मृत्तिकाकी टेल राखी पहाडके समान है, तैसे ज्ञानीकी दृष्टिते यह जगत् रहित है, इसकारि बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है, अरु अज्ञानीको तुच्छरूप भी बड़ा भासता है ॥ हे रामजी ! यह विश्व भ्रमकरिकै सिद्ध हुआ है, जैसे भ्रमकरिकै सीपीविषे रूपा भासता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माके प्रमादकारि विश्व भासता है, अरु आत्माते भिन्न कछु नहीं, जैसे निद्रादोषकरिकै पुरुष अपने अंग भूलि जाते हैं, अरु जागे हुए सब अंग अपने भासते हैं, तैसे अविद्यारूपी निद्राकरिकै पुरुष सोया हुआ जब जागता है, तब सब विश्व अपना आप दिखाई देता है, जैसे स्वप्नते जागा हुआ स्वप्नकी विश्वको आपना आपही देखता है, तैसे यह विश्व अपना आपही भासैगा ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष निद्रामें सोया होता है, तब शुभ अशुभ विश्वविषे राग द्वेष कछु नहीं होता, अरु जागता है, तब इष्टविषे राग होता है, अनिष्टविषे द्वेष होता है, सो जबलग इसको विश्वविषे हेयोपादेय बुद्धि है, जो सर्वज्ञ हैं तौ भी मूर्ख है ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष जड़ हो जावै, तब कल्याण होवै, सो जड़ होना यही है, कि दृश्यते रहित आत्माविषे स्थित होवै, सो आत्मा चिन्मात्र है, आत्माते इतर जो कछु करता है, सत् अथवा असत् जानता है, तबलग स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, जब संवित् फुरणेते रहित होवै, तब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, ताते फुरणेका त्याग करु, अरु यह स्थावर जंगम जगत् जो तुझको भासता है, सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जब तू ऐसे निश्चय करैगा, तब सब विवर्त्तका अभाव हो जावैगा, आत्मपदही शेष रहैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जीव जो तुम कहा सो जीवका स्वरूप क्या है, अरु जीव आकारको ग्रहण कैसे करता है, अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है, अरु इसके

रहनेका स्थान कौन है सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध जो परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है, तिसविषे चैत्योन्मुखत्व हुआ जो मैं हौं, ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी, अरु तिसको चित्तका संबंध हुआ, जो चित्तका संयोग भया, तिसका नाम जीव है, सो जीव न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न शून्य है, न अशून्य है, न थोड़ा है, न बहुत है, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु शुद्ध है, न अणुरूप है, न स्थूल है, अनंत चेतन आकाशरूप है, तिसको जीवकरि कहते हैं, स्थूलका स्थूल वही है, सूक्ष्मका सूक्ष्म वही है, अनुभव चेतन सर्वगतरूप सो जीव है, तिसविषे वास्तव शब्द कोऊ नहीं, जो कोऊ शब्द है, सो प्रतियोगीसाथ मिलिकरि हुआ है, अरु जीव अद्वैत है, जो अद्वैत है, तिसका प्रतियोगी कैसे होवै, यह जीवका स्वरूप है, चैत्यके संयोगकरि जीव हुआ है, अरु जीवका अधिष्ठान परमात्मतत्त्व है, चेतनआकाश है, निर्विकल्प है, चैत्यते रहित शुद्ध चेतन है, तिसविषे जो संवित् फुरी है, तिसका नाम जीव है, सो सूक्ष्मते सूक्ष्म है, स्थूलते स्थूलहै, सर्वका बीज है, इसीका नाम विराट् कहते हैं, अरु शरीर तिसका मनोमय है, आदि जो परमात्मतत्त्वते फुरा है; अरु अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भया, अपर अवस्था कहिये परिच्छिन्नताको नहीं प्राप्त हुआ, आपको सर्व आत्मा जानता है, इसका नाम विराट् है, प्रथम शरीर उसका मनोमात्र अरु शुद्ध प्रकाशरूप है, रागद्वेषरूपी मलते रहित है, अरु अनंत आत्मा है, सर्व मन अरु कर्मों अरु देहोंका बीज है, अरु सबविषे व्याप रहा है, सब जीवका अधिष्ठाता है, तिसीके संकल्प करि यह जीव रचे हैं, पंच ज्ञानइंद्रियां अरु अहंकार मन अरु संकल्प इन आठौंके आकार धारे हैं, अरु आपही ग्रहण किये हैं, परमार्थरूपको त्यागि फुरणेते जो आकार उत्पन्न हुए हैं, तिसको ग्रहण किया, इसका नाम पुर्यष्टका है, बहुरि इन इंद्रियोंके छिद्र रचता भया, स्थूलरूप रचिकरि तिनविषे आत्मप्रतीति करत भया, जैसे पुरुष शयन करता है, अरु जाग्रत् शरीरका त्याग कर स्वप्नशरीरका अंगीकार करता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्र निर्विकार अद्वैत स्वरूपको त्यागिकरि वासनामय शरीरका अंगीकार किया है, अरु वास्तव स्वरूपका कछु त्याग नहीं किया,

स्वरूपते वह गिरा नहीं, शुद्धनिर्विकल्प भावको त्यागिकरि विराट् भाव होत भया है, इसीप्रकार आगे तिस पुरुषने चारों वेद ज्ञानकरिकै रचे, अरु नीतिको निश्चय किया, नीति कहिये कि, यह पदार्थ ऐसे होवैं, अरु एताकाल रहैं, यह रचना रची, जो जो संकल्प करत भया, सो सो देश काल पदार्थ दिशा ब्रह्मांड सब आगे होत भये, तिस पुरुषके एते नाम हैं, ईश्वर विराट् आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीवके नाम हैं, सो इस जीवका स्वरूप वासनारूप कछु झूठ नहीं, वासनाके शरीर ग्रहण करनेकरि वासनारूप कहा है, अरु वास्तवरूप शुद्ध है, निर्विकार अद्वैत है, कदाचित् स्वरूपते अन्य अवस्थाको नहीं प्राप्त भया, सदा ज्ञानरूप है, अद्वैत परमशुद्ध है, तिसको अपने चेतन स्वभावकरि चैत्यका संयोग हुआ है, तिसकरि कहा है, जो उसका वपु वासनारूप है, तिस आदि जीवते ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि देवता दैत्य आकाश मध्यपाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है, जैसे दीपकते दीपक होता है अरु जलते जल होता है, तैसे सब विराट्स्वरूप हैं, सो विराट् कैसा है, महाआकाश जिसका उदर है, अरु समुद्र तिसका रुधिर है, अरु नदियां जिसकी नाड़ी हैं, अरु दिशा जिसके वपु हैं, अरु जिसके उदरविषे कई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वतसहित समाए रहते हैं, अरु पवन जिसके मुण्ड हैं, अरु उश्वास पवन जिसके प्राणवायु हैं, मांस जिसका पृथ्वी है, हस्त जिसके सुमेरु आदिक पर्वत हैं, तारे जिसकी रोमावली हैं ऐसा विराट् है, सहस्र जिसके शीश हैं, अरु सहस्र मस्तक हैं, सहस्रही नेत्र अरु अनंत है, अनादि है, अरु चंद्रमा जिसकी कफ है, जिसते अमृत स्रवता है, भूत उपजते हैं, अरु सूर्य पित्त है, अरु सर्वको उत्पन्न करता है, सर्व मन अरु सर्व कर्म अरु सर्व शरीरका बीज आदिविराट् है॥ हे रामजी! इस चित्तके संबंधकरिकै तुच्छहुआहे, वास्तवते परमात्मस्वरूप है, जैसेमहाकाश घटके संयोगकरिघटाकाश होताहै, तैसेविराट् जो परमात्मा है, तिसने फुरणेकरि सृष्टि रची हैं, अरु तिसविषेअहंप्रत्यय करी है, इसते तुच्छ हुआ है, सो इसको मिथ्याभ्रमहुआहै, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, तैसे आपको दृश्य देखता है, सो लघुताभी इसको

आत्माकी अपेक्षाकरिके है, दृश्यविषे विराट्है, अरुआत्माविषेइसकाअनु-
भव है ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार इसने उपजिकारि सृष्टि रची है, जैसे एक
विराट् पुरुषने आदि निश्चय किया है, तैसेही अबलग है, सो यह
आपही उपजा है, अरु आपही लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस
प्रकार विराट्की आत्माते उत्पत्ति हुई है, तैसेही सब जीवकी है, यह सब
विराट्रूप है, परंतु जो स्वरूपते उपजिकारि दृश्यसाथ तद्रूप हुए, अरु
वास्तव स्वरूप जिनको भूलि गया, सो जीव तुच्छरूप भये, अरु स्वरू-
पसों फुरिकारि स्वरूपते न गिरे, अरु आगे अपनाही संकल्परूप विश्व-
देख प्रमाद न हुआ, तिसका नाम विराट् आत्मा है ॥ हे रामजी ! जीव
चेतनरूप है, अरु निराकाररूप है, इसको जो शरीरका संयोग हुआ है,
सो कलनाकारि हुआ है, जब आपको दृश्य संयुक्त देखता है, तब महा-
आपदाको प्राप्त होता है, जब द्वैतते रहित निर्विकल्प होकारि देखै, तब
शुद्ध चेतनघनआत्मपदको प्राप्त होताहै ॥ हे रामजी ! यह विराट् कैसा
है, सबका उत्पन्नकर्ता है, सो ऐसे कई विराट् आत्मपदते उदय हुए हैं,
अरु कई मिटि गये हैं, अरु कई आये होवैंगे, जैसे समुद्रते कई तरंग
बुद्बुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे आत्मारूपी समुद्रते कई उठतेहैं
कई लीन होते हैं, कई उपजैंगे, ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठानहै, सबके
अंतर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा तेरा अपना आप अनुभवरूपहै ॥
हे रामजी ! इससंवेदनको त्यागिकारि देख वहीपरमात्मस्वरूपहै, यह जो
कछु तुझको भासताहै, तिसकोविचारिकारि त्याग, जब तू इसका त्याग
करैगा, तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है सो प्रकाश तुझको
भासैगा, तिसके आगे चेतनताही आवरणरूप है, जैसे सूर्यके आगे
बादलोंका आवरण होता है, जबलग बादल होते हैं, तबलग सूर्यका
प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता, जब बादल दूर होवैं, तब प्रकाश स्वच्छ
भासता है, तैसे जब फुरणा निवृत्त होवैगा, तब शुद्ध आत्माहीप्रकाशैगा॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराटात्मवर्णनं नाम शता-
धिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४१ ॥

शताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४२.

ज्ञानबंधयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यहपरमात्मा पुरुष फुरणेकरिकै जीवसंज्ञाको प्राप्त हुआ है, फुरणेविषे भी वही है; अरु अपने स्वरूपको नहीं जानता, इसीते दुःख पाता है, जैसे पवन चलता है, तौ भी वहीरूपहै, जब ठहरता है, तौ भी वहीरूपहै, दोनोंविषे तुल्य है,तैसे आत्मा सर्वदा एकरस है, कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भया, अरु यह जीव प्रमादकरिकै दृश्यको कल्पता है, दृश्यको आप जानता है, इसीते दुःख पाता है, अरु जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहै, तौ दृश्यविषे भी अपना रूप भासै,अरु जो निःसंकल्प होवै तौ भी विश्व अपनारूप भासै विश्व भी इसीका रूप है, परंतु अविचारते भिन्न भिन्न भासती है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेका रूपहै, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जानता,जब जागता है, तब जानता है, कि मैंही था, तैसे यह प्रपंच सब तेरा स्वरूप है, तू अपने स्वरूपविषे निरहंकार स्थित होकरि देख तौ बना कछु नहीं अरु जो आत्माते इतर परिच्छिन्न कछु तू बनैगा, तौप्रपंचविश्व भासैगा जो आत्मस्वरूपविषे स्थित होवै,तौअपना आप भासैगा प्रपंचका अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! शून्याशून्य जड चेतन किंचन निष्किंचनसत् असत् सब आत्माही पूर्ण है, निषेध किसका करिये सब वहीरूप है ॥ हे रामजी ! ऐसा अनुभवरूप है, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु ऐसे आत्माको मूर्ख नहीं जानते,जैसेजन्मका अंधमार्ग को नहीं जानता तैसे अज्ञानी महाअंध जागती ज्योति आत्माको नहीं जानते, जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुएको नहीं जानते, तैसे वासनाकरि आवरे हुए आपको नहीं जान सकते, जैसे जलविषे पक्षी आवरा होता है, तैसे जीव आवरे हुए हैं, इसीका नाम बंधन है, जब वासनाका वियोग हुआ तब इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी ! विषमताकरिकै इसकी जीव संज्ञा हुई है, जब सम हुआ,तब ब्रह्म है, सो ब्रह्मअहंकारको

त्यागिकरि होता है, जैसे खप्परके संयोगकरि घटाकाश कहाता है, जब खप्पर टूटा तब महाकाश हो जाता है,तैसे जब अहंकार नष्ट हुआ,तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै एकदेशी जीव हुआ है, जब परिच्छिन्नताका वियोग हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! अपना वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है, तिसविषेगुणका संयोग उपाधिक-रिकै भासता है, सो अनर्थरूप है,जब निर्गुण अरु सगुणकी गाँठ टूटी तब केवल अद्वैत तत्त्व अपना आप भासैगा, सो कैसा स्वरूप है, जो अनामय है, दुःखते रहित है, अरु सत् असत्ते पर है, ज्ञानरूप आदि अंतते रहित है, जिसके पायेते बहुरिपाना कछु नहीं रहता, अरु जिसके जानेते अपर जानना कछु नहीं रहता, ऐसा जो उत्तम पद है, तिसको आत्मत्वकरिकै प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! यह जो ज्ञान तेरे तांई कहा है, तिसको आश्रय करिकै तुम ज्ञानवान् होना, ज्ञानबंध नहीं होना, ज्ञानबंधते अज्ञानी भलाहै.काहेते कि,अज्ञानी भी साधुसंग अरुसच्छास्त्र श्रवणकरि ज्ञानवान् होता है, अरु ज्ञानबंध मुक्त नहीं होता, जैसे रोगी होवै, अरु कहै, मुझको रोग कोऊ नहीं,मैं अरोगहौं,तब वैद्यका औषध नहीं खाता. काहेते कि आपको अरोगी जानता है, तैसे जो ज्ञानबंध है तिसते संतका संगभी नहीं होता,अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण भीनहींहोता ताते अंधतमको प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका फल क्या है सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिस पुरुषने आत्माके विशेषण शास्त्रोंते श्रवण किये हैं, जो आत्मा नित्य है, शुद्ध है, अरु ज्ञानस्वरूप है, अरु तीनों शरीरते भिन्न है, ऐसे सुनकरिआपको मानता है, अरु विषय भोगनेकी सदातृष्णा रहती है,जो किसीप्रकार इंद्रियोंके विषय मेरे तांई प्राप्त होवैं, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानबंध है, वह बोध शिल्पी है, बहुरि कैसा है, जो कर्मफलके विचारते रहित है, भला बुरा विचारकरि नहीं करता; तिसविषे विचारता है, अरु मुखते शुभ अशुभ निरूपण करता है, सो शास्त्र शिल्पी है, अरु फलके अर्थ कर्म करता है, एक एक ऐसे हैं,जो शास्त्र उक्त आपको उत्तमकरि मानतेहैं,अरुशास्त्रोंके

अर्थ बहुत प्रकार भी कहते हैं, पढते भी हैं, पढावते भी हैं अरु विषयसों बंधमान हैं, सदा विषयकी चिंतवना करते हैं, ऐसा पुरुष है सो ज्ञानबंध कहाता है, तिस निमित्त अर्थशिल्पी कहता है, चितेरा करनेको समर्थ है, अरु धारणेको समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! एक प्रवृत्तिमार्ग है, एक निवृत्तिमार्ग है प्रवृत्ति संसारमार्ग है, निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है, अरु जिस पुरुषने निवृत्तिमार्ग धारा है, अरु प्रवृत्तिमार्गविषे वर्त्तता है, प्रवृत्ति कहिये जो बहिर्मुख विषयकीओर वर्तता है, अरु इंद्रियोंके विषयकी वांछा करता है, विषयते उपरांत नहीं होता, तिनकारि तुष्टमान होता है, अरु स्वरूपका अभ्यास नहीं करता, ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहाता है ॥ हे रामजी ! श्रुति उक्त शुभ कर्म करता है, हृदयविषे उनके फलको धारिकारि वह पुरुष ज्ञानके निकटवर्ती है, तौ भी ज्ञानबंध है, अरु जिसको आत्माविषे प्रीति भी है, विषयको चिंतवता है, अरु आपको उत्तम मानता है, सो ज्ञानबंध कहाता हैं, अरु जो आत्मतत्त्वका निरूपण यथार्थ करता है, अरु स्थिति नहीं, वह ज्ञानआभास हैं, ज्ञानका फल तिसको प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं, अरु जिस पुरुषने सिद्धता पाई है, अरु ऐश्वर्य पाया है, तिसकारि आपको बड़ा जानता है, अरु आत्मज्ञानते रहित है, सो ज्ञानबंध कहाता है ॥ हे रामजी ! निदिध्यासकरिकै जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तिसकारि शांतिका प्रकाश होता है, जबलग शांति नहीं प्राप्त होती, तबलग आपको बडा न मानै ॥ हे रामजी ! बडा जो होता है, सो ज्ञानकारि होता है, जबलग ज्ञान नहीं उपजा, तबलग आत्मपरायण होवै अभ्यास यत्न करै, छांडि न देवै, अरु चेष्टा भी शुभ करै; शुभ व्यवहारकारि उपजीविका उत्पन्न करनी, प्राणोंकी रक्षाके निमित्त, अरु प्राणोंको ब्रह्म जिज्ञासाके अर्थ धारै, अरु ब्रह्मजिज्ञासा इसनिमित्त है, जो संसारसमुद्र दुःखरूपते मुक्त होवै, बहुरि संसारी न होवै, यह इसी निमित्त आत्मपरायण होवै, जब आत्मपरायण होवैगा, तब दुःख सब मिटि जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदको प्राप्त हुए दुःख सब नष्ट हो जाता है, तिस पदको प्राप्त होनेका उपाय यह है, कि सच्छास्त्रोंते आत्माके विशेषण सुनै हैं, तिनको समुझिकारि वारंवार

अभ्यास करना, अरु अनात्म दृश्यते उपरत होना, तिनको मिथ्या जान वैराग्य करना, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयो० निर्वा० ज्ञानबंधयोगो नाम शताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४२ ॥

शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४३.

सुखेनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिज्ञासी होकरि ज्ञाननिष्ठ होना जो कछु गुरुशास्त्रोंते आत्मविशेषण श्रवण किये हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय करणी, स्थित होना इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है. तिस ज्ञाननिष्ठाकारि परमउच्चपदको प्राप्त होता है. जो सबका अधिष्ठानपद है, तिस पदको पाता है, जब तिस पदविषे स्थित हुआ, तब कर्मोंके फलका ज्ञान नहीं रहता, काहेते कि, शुभ कर्मोंविषे फलका राग नहीं रहता, अरु अशुभ कर्मोंके फलविषे द्वेष नहीं रहता, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानी कहाता है, शीतलचित्त रहता है, अकृत्रिमशांतिको प्राप्त होता है, किसी विषयके संबंध करिकै नहीं फसता, अरु वासनाकी गाँठ टूटि जाती है, ऐसा जो पुरुष है, तिसको ज्ञानी कहते हैं ॥ हे रामजी ! बोध सोई है, जिसके पाएते बहुरि जन्म न पावै, जन्ममरणते रहित होवै, तिसको ज्ञानी कहते हैं, जब संसारते विमुख हुआ जो संसारकी सत्यता न भासै, तब जानिये कि, बहुरि जन्म न पावैगा, काहेते जो संसारकी वासना नष्ट हो गई ॥ हे रामजी ! जिसकरि ज्ञानीकी वासना नष्ट होतीहै, सो श्रवण कर. यह जो संसार है, तिसका कारण नहीं देखता, जो पदार्थ कारणते उत्पन्न नहीं भया, सो सत्य नहीं होता, ताते संसार मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तिसका कारण कोऊ नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है तैसे यह विश्व कारणविना दृष्ट आता है, ताते मिथ्या है, जो मिथ्या है, तौ इसकी वासना कैसे होवैं ॥ हे रामजी ! जो प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होवै तिसविषे ज्ञानी विचरता है, संकल्पते रहित होकरि अपना अभिमान कछु नहीं करता, जो इसप्रकार होवै, इसप्रकार न होवै अरु हृदयकरि

आकाशकी नांई संसारते न्यारा रहता है, अरु फुरणेते शून्य है, ऐसा जो पुरुष है, सो पंडित कहाता है ॥ हे रामजी ! यह जीव परमात्मरूप है जब अचेतन होवै, तब आत्मपदको प्राप्त होवै, अचेतन कहिये संसारके फुरणेते रहित होवै; जब जड़ हुआ तब आत्मा है, जैसे आमका वृक्ष फलते रहित है, तो भी नाम तिसका आम है, परंतु निष्फल है तैसे यह जीव आत्मस्वरूप है, परंतु चित्तके संबंधकरि इसका नम जीव है, जब चित्तका त्याग करै,तब आत्मा होवै, जैसे आमको फल लगा तब शोभता है, अरु सफल कहाता है, तैसे जब यह जीव आत्मपदको प्राप्त होता है, तब महाशोभाकरि विराजता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता, फल कहिये इंद्रियोंके विषय इष्टकी वांछा नहीं करता, जैसे जिस पुरुषने अमृतपान किया होवै, सो मद्यपान करनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है, सो विषयके सुखकी वांछा नहीं करता, अरु जो किसी पदार्थको पायकरि सुख मानते हैं, सो मूढ हैं, जैसे कोऊ पुरुष कहै,वंध्याके पुत्रके कांधेपर आरूढ होकरि नदीके पार उतरता है, ऐसा पुरुष महामूढ है. काहेते कि, जो वंध्याका पुत्र है नहीं, तो तिसके कांधेपर कैसे आरूढ होवैगा, तैसे जो पुरुष कहै, संसारके किसी पदार्थको लेकरि मुक्त होऊंगा, सो महामूढ है ॥ हे रामजी ! ऐसा पुरुष ज्ञानते शून्य है, तिसकी इंद्रिय स्थित नहीं होती, अरु जो शास्त्रोंके अर्थ प्रगट भी करता है, परमात्मज्ञानते रहित है, तिसको इंद्रिय बलकरि गिराय देती हैं, विषयविषे जैसे इल्ल पक्षी आकाशविषे उडता भी मांसको देखकरि पृथ्वी ऊपर गिर पडता है, तैसे अज्ञानी विषयको देखकर ऊर्ध्वते गिर पडता है, ताते इन इंद्रियोंको मनसंयुक्त वश करो, अरु युक्तिकरि तत्परायण होहु, अन्तर्मुख होहु यह जो संवेदन फुरती है, तिसका त्याग करौ,जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जब परमात्माका साक्षात्कार हुआ , तब रूप अवलोकन नमस्कार जो त्रिपुटी है, तिसके सबअर्थकी भावना जाती रहैगी, केवल आत्मतत्वही प्रत्यक्ष भासैगा, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावैगा ॥

हे रामजी ! संसारका आद्य परमात्मतत्त्व है, अरु अंत भी वही हैं, जैसे स्वर्ण गालिये तौ भी स्वर्ण है, जो न गालिये तौ भी स्वर्ण है, तैसे जब सृष्टिका अभाव होता है, तौ भी शेष आत्माही रहता है, अरु जब उपजी न थी, तब भी आत्माही था, अरु मध्य भी वही है, परंतु सम्यक्दर्शीको भासता है, अरु असम्यक्दर्शीको आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे रामजी ! विश्व आत्माका परिणाम नहीं, चमत्कार है, जैसे स्वर्ण लगता है; तब रेणी संज्ञा उसकी होती है; अथवा शलाका कहाता है, यद्यपि भूषण तिसविषे हुए नहीं तौ भी चमत्कार उसका ऐसाही होता है, जो भूषण उसते उपजिकरि लय हो जाता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, बना कछु नहीं, ज्योंका त्यों आत्मसत्ता है, तिसका चमत्कार विश्व होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणैं जलाभास हो भासती हैं ॥ हे रामजी ! जब तुम ऐसे जाना कि, केवल आत्मसत्ता है, तब वासनाक्षय हो जावैगी, अरु चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, जैसे वृक्षके पत्र पवनकरिकै हलते हैं, तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्ध वेगकरिकै होवैगी ॥ हे रामजी ! देखनेमात्र तुम्हारेविषे क्रिया होवैगी, अरु अंतरते मनकरि शून्य भासैगी, जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदन विना तागेकरि चेष्टा करतीहै, तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्धकरि स्वाभाविक होवैगी, अरु तुझको अभिमान न होवैगा, जैसे कोऊ पुरुष दूधके निमित्त गूजर पास बासन ले गया तिसको दूध दोहने विषे कछुक बिलंब है, तब उसने कहा कि, बासन इहां धरा है, जो मैं गृहते कोई कार्य शीघ्रहीकरि आऊँ, जब वह गृहका कार्य करने लगा, तब उसका मन दूधकी ओर रहा कि, शीघ्रही जाऊँ, कहीं दुहुता न होवे, गृहका कार्य किया, परंतु मन उसका दूधकी ओर रहा, तैसे तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगकरि होवैगी, परंतु मन आत्मतत्त्व-विषे रहैगा, जब अहंकारते रहित होवैगा, जबलग अहंकार फुरता है, तबलग प्रसन्न जीव है, प्रसन्न कहिए तुच्छ है, तिसको शरीरमात्रका ज्ञान होता हैं, अंतःकरणविषे जो प्रतिबिंब है, जीव तिसको नख शिखपर्यंत शरीरका ज्ञान होता है, अरु इसीविषे आत्मअभिमान होता है, अपर ज्ञान नहीं होता, ताते जीव है, अरु विराट् जो आगे तुझको कहा है,

सो ईश्वर है, सर्व शरीर अरु अंतःकरणका ज्ञाता है, अरु सर्व लिंग-शरीरका अभिमानी है, सर्वका अपना आप जानता है, ताते ईश्वर है॥ हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है, तौ भी अहंकारकरिकै तुच्छसा भया है, जैसे मेघते भिन्न हुआ एक बादल कहाता है, अरु घटकरि घटाकाश कहाता है, सो बादल भी मेघ है, अरु घटाकाश भी महाकाश है, तैसे अहं फुरणेकरि प्रसन्न हुआ है, सो फुरणा दृश्यविषे हुआ है, अरु दृश्य फुरणेविषे हुई है, जैसे फलविषे गंध है, अरु तिलोंविषे तेल है, तैसे फुरणेविषे दृश्य है॥ हे रामजी! आत्माविषे बुद्धि आदिक फुरणा है, जो मैं हौं, जब ऐसे फुरता है, तब आगे दृश्य होती है, जब अहंकार होता है, तब आगे देह इंद्रियादिक विश्वको रचता है, ताते फुरणेविषे दृश्य हुई, अरु फुरणा दृश्यविषे हुआ, जो देह इंद्रियां मन आदिक दृश्य हैं, तिनविषे अहं प्रत्यय करिकै फुरणा हुआ, इसी कारणते इसकी जीव-संज्ञा हुई है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, अरु यह जन्म मरण आना जाना आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है, तौ भी मिथ्या है, काहेते जो विचार कियेते कछु नहीं रहता, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं, तैसे विचार कियेते प्रपंचको नहीं पाता, जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण आना जाना देखता है, परंतु मिथ्या है, तैसे जाग्रत् क्रिया भी सर्व मिथ्या है॥ हे रामजी! जो परावरदर्शी है, सो एती अवस्थाविषे निर्विकल्प है, जन्मता भी है, परंतु नहीं जन्मता, सर्व क्रिया करता भी है, परंतु नहीं करता, स्वप्नवत् है, स्वरूपते कदा-चित् कछु नहीं हुआ॥ हे रामजी! ज्ञानी जाग्रत्विषे भी ऐसेही देखता है, जब यह आत्मपदविषे जागता है, तब सर्व विकारका अभाव हो जाता है, कोऊ विकार नहीं भासता॥ हे रामजी! जो पुरुष इंद्रियोंके विषयकी चिंतवना करता रहता है, सो बंध है, काहेते जो अभिलाषही दुःखदायक है, यद्यपि राजा है, अरु अंतर अभिलाष है तौ दरिद्री जान, अरु जो पुरुष छाजन भोजन शयन कष्टसाथ देखता है, जो भोजन भिक्षाकरि होता है, अथवा किसी अपर यत्नकरि होता है, अरु छाजन भी निर्गुणसा पहिरता है, अरु शयन करणेको स्थान भी जैसा कैसा

होता है, अरु ज्ञानकरि संपन्न है, तौ उसको चक्रवर्ती जान ॥ ॥ दोहा ॥ सात गांठ कौपीनकी,साध न मानें शंक॥ राम अमल माता फिरै, गिनै इंद्रको रंक ॥ १ ॥ हे रामजी । तिसको चक्रवर्त्तीते भी अधिक जान, यद्यपि आरंभ क्रिया करता भी दृष्ट आता है; अरु संकल्पते रहित है, तौ कछु करता नहीं, करना अकरना क्रियाका दोनों उसको तुल्य है, काहेते कि, नरभिमान है, शुभ कर्म करनेते स्वर्ग नहीं भोगता, अशुभ कर्म कारि नरक नहीं भोगता, तिसको दोनों एकसमान हैं ॥ हे रामजी। ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा समान है, परंतु अज्ञानी अहंकारसहित करता है, इसकारि दुःख पाता है, ताते तुम अहंकारका त्याग करौ, अरु अपना स्वरूप जो है, चैत्यते रहित चेतन तिसविषे स्थित होहु, जो संशय सर्व मिटि जावैं, अरु जेते कछु जीव तुमको भासते हैं, सो सर्व संवित्-रूप हैं, संवित् कहिये ज्ञानरूप हैं, परंतु बहिर्मुख जो फुरते हैं, तिसकरि भ्रमको प्राप्त हुए हैं, जब अंतर्मुख होवैं तब केवल शांतिरूप हैं, जहाँ गुणों अरु तत्त्वोंका क्षोभ नहीं, तिसको शांतपद कहते हैं ॥ हे रामजी। जैसे विराट्का मन चंद्रमा है, तैसे सर्व जीवका है, अर्थ यह जो सब विरा-ट्रूप है परंतु प्रमादकारि वास्तव स्वरूप नहीं भासता ॥ हे रामजी। यह जीव संपूर्ण देहविषे व्यापक है, अरु भासता हृदयकोशविषे है, जैसे गुलाबकी संपूर्ण बूटीविषे सुगंधि व्यापक है; परंतु भासती फूलविषेही है, तैसे चेतनसत्ता सर्व शरीरविषे व्यापक है, परंतु भासती हृदयविषे है, जो त्रिकोण निर्मल चक्र है, तहांही अहंब्रह्मका उत्थान होता है, तहांते वृत्ति पसारिकारि पंच इंद्रियोंके छिद्रते निकसि-कारि विषयको ग्रहण करती हैं, तिन इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे राग द्वेष मानता है ताते ॥ हे रामजी । एता कष्ट प्रमादकारिके है, जब बोध होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी । वासनारूप जो संसार है तिसका बीज अहंभाव है, प्रत्यक्ष संसारविषे फुरता है, जब इसकी अचिंतवना होवै, अरु स्वरूपविषे अहंप्रत्यय होवै, तब संसारभ्रम मिटि जावै, अरु अहंभावके शांत हुए ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ सत् है तिसका

अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो असत् है, सो सत् नहीं होता, यद्यपि होनेकी भावना करिये तौ भी उसका होना नहीं, जैसे अग्निको जानिकरि स्पर्श करिये तौ भी जलावती है, अरु अजानि स्पर्श करिये तौ भी जलावती है. काहेते कि, सत् है, अरु जैसे मृग जलकी भावना करि मरुस्थलविषे धावता है, परंतु जल नहीं पाता. काहेते कि, असत्य है, तैसे ॥ हे रामजी ! अहंकार जो फुरता है, सो असत्य है, भ्रमकरि सिद्ध है, विचारकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! यह अहंकाररूपी कलंक उठा है, जब निरहंकारकरि देखै, तब मुक्तरूप है, अरु जब अहंकारसंयुक्त है, तब बंध है, ताते निरहंकार होकरि परम निर्वाणको प्राप्त होहु यह मेरा सिद्धांत है, परमभूमिका यही है जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे तुम ब्राह्मी लक्ष्मीकरि शोभहुगे ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्का चित्त सत्पदको प्राप्त होता है, ताते अहंकार नहीं रहता, तिसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती, जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसे उसको जन्मफल नहीं होता, अरु अज्ञानीका चित्त जन्ममरणका कारण होता है, जैसे कच्चा बीज उगता है तैसे अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देती है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबते निराश हो रहु, जो हृदयविषे अभिलाषा किसीकी न फुरै, अरु न किसीका सद्भाव फुरै, पाषाणकी नाईं तुम्हारा हृदय होवै ॥ हे रामजी ! जिसका हृदय कोमल है, स्नेहसंयुक्त सो अज्ञानी है, अरु जिसका हृदय पाषाण समान है, स्नेहते रहित, सो ज्ञानी है, ताते निर्मन निरहंकार होकरि स्थित होहु, यह भोग मिथ्या है, इनकी इच्छाविषे सुख नहीं ॥ हे रामजी ! जब संसारते उपरांत होवैगा, अरु अंतर्मुख आत्मपरायण होवैगा, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु आत्मा भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है, अरु वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, तब पुरातन पत्र त्यागि देते हैं, अरु नूतन हो आते हैं, तैसे जब तुम अंतर्मुख होहुगे, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु विभुताको प्राप्त होहुगे, तुच्छ जो अहंप्रत्यय सो जात रहैगी, परमनिर्वाण पद पावोगे

ताते एकअहंकार संवेदनका त्याग करौ, अपर यत्न कोऊ न करौ, तुमको यही हमारा उपदेश है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४३ ॥

शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः १४४.
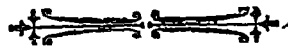
मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो वासनारूप संसार है, तिसको तुम तरि जाहु, जैसे मंकीऋषि तरा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मंकीऋषि किस प्रकार तरा है, सो कृपा करि कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मंकीऋषिका वृत्तान्त श्रवण कर, तिसने महा तीक्ष्ण तप किये थे, एक समय तुम्हारा जो पितामह है, राजा अज, तिसने मेरा आवाहन किया ; मैं अपने गृहविषे आकाशमें था, तब मैं राजा अजके निमित्त आकाशते उतरा मार्गविषे एक अटवी देखी, तिसविषे मानो एकांत अनेक वनके समूह हैं, सो मैंने महाभयानक शून्य देखे, तहां न कोऊ मनुष्य दृष्ट आवै न कोऊ पशु दृष्ट आवै; शून्य मानौ एकांत ब्रह्मस्थान है,केतेक योजनपर्यंत मरुस्थलही दृष्ट आवै, अरु मध्याह्नका समय था, अति तीक्ष्ण धूप पडै, रेत उरु पर्यंत तपी हुई तिसविषे मैं प्रवेश किया, कई वृक्ष तहां दग्ध हुए दृष्ट आये ॥ हे रामजी ! तिस शून्य स्थलविषे एक पैंडोई अति दुःखित आता मुझको दृष्ट आया, तिसने यह वाक्य मुखते निकासा कि, हाय हाय महाकष्ट पाया है ! जैसे किसीको दुष्ट जन दुःख देते हैं, अरु दया नहीं करते तैसे मुझको धूप अरु पैंडेने जलाया है, मैं अति दुःखको प्राप्त भया हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे वचन कहता हुआ मेरे पासते चला जावै, केता मार्ग आगे गया तब एक धीवरका गांव तिसको दृष्ट पडा, तहां गृह पांच अथवा सात थे, तिसको देखिकारि शीघ्र चला कि, इहां मुझको शांति प्राप्त होवैगी, मैं जलपान करौं, अरु छायातले बैठौंगा ॥ हे रामजी !

तिसको देखिकारि मुझको दया उपजी, तब मैं कहा कि, हे मार्गके मित्र ! तू कहां धावता है, जिनको सुखदायी जाणिकारि तू धावता है, सो तौ दुःखदायक हैं, जैसे मृग मरुस्थलको नदी जाणिकारि जलपानके निमित्त धावता है, कि शांति पाऊँ सो अति दुःख पाता है, तैसे जिस स्थानको तू सुखरूप जानता है, सो दुःखरूप है ॥ हे अङ्ग ! यह जो इस गांवके वासी हैं, तिनका संग कदाचित् नहीं करना, इनका संग दुःखरूप है, जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है, तिसको दुःख नहीं होता अरु जो विचारविना चेष्टा करता है, सो दुःख पाता है, यह जो नगरवासी हैं, सो आप जलतेहैं तौ तुझको सुख कैसे देवैंगे. जैसे कोऊ पुरुष अग्निकुंडविषे जलता होवै, तिसको कहिये, तू मेरी तप्त शांत करु, तौ कहनेवाला मूढ होता है, वह आप जलता है, अपरकी तप्त कैसे शांत करैगा, तैसे वह आप इंद्रियोंके विषयकी तृष्णारूपी अग्निविषे जलते हैं सो तुझको शांत कैसे करैंगे ? ॥ ॥ हे मार्गके मित्र ! एते कष्ट होहिं तौ अंगीकार करिये परंतु अज्ञानीका संग न करिये सो कौन दुःख होहिं कि पृथ्वीके छिद्रविषे सर्प हो रहना, अरु मरुस्थलका टुंटा मृग हो रहना, अरु पाषाणकी शिलाविषे कीट हो रहना एते कष्ट अंगीकार करिये परंतु अज्ञानीका संग न करिये, जिनको इंद्रियोंके सुखकी तृष्णा रहती है, सो इंद्रियोंके सुख कैसे हैं, जो आपातरमणीय हैं, अर्थ यह कि, जबलग इंद्रियोंका विषयसाथ संयोग है, तबलग सुख है, जब वियोग हुआ, तब दुःख होता है, विषयीजनोंकी प्रीति भी विषवत् है, अरु विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनीके नाश करनेहारी बर्फ है, बहुरि इनकी संगति कैसी हैं, जिनके वचनरूपी पवनकरि राख उडती पास बैठनेहारेको भी अंध कर डारती है, ताते इन गावँवासी अज्ञानीका संग नहीं करना, बहुरि कैसे हैं, विचारवती बुद्धिरूपी सूर्यके आवरण करनेहारे बादल हैं, जैसे वल्लीऊपर अग्नि डारिये तौ जलाती है, तैसे वैराग्यको ग्रहण करनेहारी बुद्धि है, तिसके नाश करनेहारी इनकी संगति है, ताते इनका संग नहीं करना ॥ हे साधो ! तिसका संग कर जिसके संगकारि तेरा ताप मिटै, इनके संगकारि शांति

न पावैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब मैं कहा तब वह मेरे निकट आयकरि बोलत भया ॥ मंकीऋषिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कौन हौ, अरु तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारे वचन सुनकरि मैं शांतिको प्राप्त भया हौं, तुम शून्य जैसे दृष्ट आते हौ, अरु सर्वकरिकै पूर्ण हौ, अरु तुम्हारा दिव्य प्रकाश मुझको भासता है, तुम आदि पुरुष विराट् हौ कि, कवन हौ तुम सुंदर दृष्ट आते हौ ॥ हे भगवन् ! जो सुंदर होता है, तिसको देखिकरि राग उपजता है, अरु चित्त क्षोभको भी प्राप्त होता है, अरु तुम ऐसे सुंदर हौ कि, तुम्हारे दर्शनकरि मुझको शांति आती जाती है, तुम दिव्य तेजको धारे हुए दृष्ट आते हौ, जेते कछु तेजवान् हैं, देखने नहीं देते तिनको तिरस्कार करते हौ, अर्थ यह कि, अपर सुंदरता तुम्हारे समान किसीकी नहीं, अरु तुम्हारा तेज हृदयको शांति उपजाता है, शीतल प्रकाश है ॥ हे भगवन् ! तुम उन्मत्तवत् घूर्मसे दृष्ट आते हौ, सो कैसी शांतिको लेकरि एकांतविषे स्थित हौ; अरु अपने स्वरूप प्रकाशकी दया करते दृष्ट आते हौ, अरु पृथ्वीपर स्थित भी दृष्ट आते हौ, परंतु त्रिलोकीके ऊपर विराजमान् भासते हौ, अरु एकाकी दृष्टि आते हौ, परंतु सर्वात्मा हौ, अरु किंचित् अकिंचित् तुमही हौ, सर्व भाव पदार्थते शून्य दृष्ट आते हो, अरु सर्व पदार्थ तुम्हारी सत्ताकरि प्रकाशते हैं, सर्व पदार्थके अधिष्ठान हौ; तुम्हारे नेत्रोंके खोलनेकरि उत्पत्ति होती है, अरु मुँदनेकरि लय हो जाती है, ताते ईश्वर हौ, अरु सकलंक दृष्ट आते हौ, परंतु निष्कलंक हौ. अर्थ यह कि, फुरणा तुम्हारेविषे दृष्ट आते हैं, परंतु अंतरते शून्य हौ, अरु किसी अमृतको पायकरि तुम आए हौ, अरु बड़े ऐश्वर्यकरि संपन्नदृष्टि आते हौ, ताते, हे भगवन् ! तुम कौन हौ अरु जो मुझते पूछौ तू कौन है, तौ मैं मांडव्यऋषिके कुलविषे हौं अरु मेरा नाम मंकी है, मैं ब्राह्मण हौं, तीर्थयात्राके निमित्त निकसा था, अरु सर्व दिशा भ्रमा हौं, अतिभयानक स्थानोंविषे जो तीर्थ हैं, तहां भी गमन किया है, परंतु शांति मुझको प्राप्त न भई, ऐसी शांति कहूँ न पाई जो इंद्रियोंकी जलनते रहित होइये, अब मैं गृहको चला हौं॥ हे भगवन्! अब गृहते भी चित्त विरक्त भया है, कि यह संसारही मिथ्या है, तौ गृह

किसका है, संसारविषे सुख कहूँ नहीं, अरु यह प्राण ऐसे हैं, जैसा दामिनीका चमत्कार होता है, तैसे यह संसार नष्ट होता दृष्ट आता है, शरीर उपजते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, दृष्टिमात्र हैं, जैसे रात्रि आती है, बहुरि नहीं जानते कि, कहां गई ॥ हे भगवन्! इस संसारको असार जानकरि मैं उदासीन भया हौं, जो अनेक जन्म पाये हैं, सो नष्ट हो गये हैं, इसीप्रकार भ्रमता फिरा हौं, अब तुम्हारी शरणागत हौं, अरु जानता हौं, कि तुमसों मेरा कल्याण होवैगा, अरु तुम कल्याणरूप दृष्ट आते हौ, ताते कृपा करि कहौ कि कौन हौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे मंकीऋषि! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हौं, अरु मेरा गृह आकाशविषेहै, मुझको राजा अजने स्मरण कियाहै, तिसनिमित्त मैं इस मार्गसे गमन करताहौं अब तुम संशय मत करौ, जो ज्ञानमार्गको पाया है ॥ हे रामजी! जब मैं ऐसे कहा, तब वह मेरे चरणोंपर गिरि पड़ा, अरु नेत्रोंते जल चलने लगा, जब महा आनंदको प्राप्त भया, तब मैं कहा कि, हे ऋषि! तू संशय मत कर, मैं तुझको अकृत्रिम शांतिको प्राप्त करिकै गमन करौंगा, जो कछु पूछा चाहता है, सो पूछ, मैं तुझको उपदेश करौं, अरु मैं जानता हौं तू कल्याण कृत है, जो कछु मैं कहौंगा, सो तू धारैगा, अब तू कछु प्रश्न कर जो तेरे कषाय परिपक्व भये हैं, तू मेरे वचनोंका अधिकारीहै, तुझको मैं उपदेश करौंगा, अब तू संसारके तटको आय प्राप्त भया है, अब तुझको निकासनेका विलंब है, जो वैराग्यकरि पूर्ण है, सो संसारका तट वैराग्य है, ताते संशय मत कर ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणंनामशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमःसर्गः १४४

शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४५.

मंकीवैराग्ययोगवर्णनम् ।

मंक्युवाच ॥ हे भगवन्! अब मैं जानता हौं कि, मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, मुझको अज्ञानकरि मोह था, तिसका नाश करनेको तुम समर्थ दृष्ट आते हौ, मेरे हृदयका तम नाश करनेको तुम सूर्य उदय भए हौ ॥

हे भगवन् ! यह संसार असार है, अरु लोककी बुद्धि विषयकी ओरही धावती है, जहां दुःखही होता है, जैसे जल नीचे स्थानको चला जाता है, तैसे हमारी बुद्धि नीचे स्थानोंविषे धावती है, वही चाहती है ॥ हे भगवन् ! जेते कछु भोग हैं, तिनको मैं भोगा है, परंतु शांति न पाई, उलटी तृष्णा बढती गई, जैसे तृष्णा लगै अरु खारा जलपान करिये तौ तृष्णा नहीं मिटती, बढती जाती है, तैसे विषयके भोगनेकारि शांति नहीं प्राप्त होती, तृष्णा बढ़ती जातीहै ॥ हे मुनिराय ! देह जर्जरीभाव हो जाती है, अरु दंत गिरि पड़ते हैं, अति क्षोभ होता है, तो भी तृष्णा नहीं मिटती, ताते अब मैं दुःखको चाहता हौं, सुख कोऊ नहीं चाहता, काहेते कि संसारके जेते सुख हैं, तिनका परिणाम दुःख है, जो प्रथम दुःख है, तिसका परिणाम सुख है, इसीते दुःख चाहता हौं, संसारके सुख नहीं चाहता ॥ हे भगवन् ! अपनी वासनाही दुःखदायक है, जैसे घुराण गुफा बनायकारि तिसविषे आपही फँस मरती है, तैसे अपनी वासनाकारि आपही बंधमान होता है॥ हे मुनि ! वह काल कब हुआहै, जो अज्ञानरूपी हस्तीने मुझको वश किया है, अरु तिसका नाश करनेहारा ज्ञानरूपी सिद्ध प्रगट होवैगा, अरु कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्ता विवेकरूपी वसंत कब प्रगटैगा अरु वासनारूपी अंधेरी रात्रिका नाशकर्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होवैगा॥ हे भगवन् ! वैताल तबलग भासता है, जबलग निशा है, जब सूर्य उदय होवैगा, तब निशा जाती रहैगी, बहुरि वैतालन भासैगा, सो अहंकाररूपी वैताल तबलग है, जबलग अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं भई ॥ हे भगवन् ! जब संतजनके उपदेशते आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रगटै, तब अहंकाररूपी वैताल तहां नहीं विचरता, संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखना चांदनी रात्रिवत् है, तिनकारि जब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तब दिनहुआ, जबलगसंतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखना न होवै, तबलग अँधेरी रात्रिहै॥ हे भगवन् ! जिसको सच्छास्त्रका श्रवण भी होवै, बहुरि विषयकी ओर भी गिरै, तौ बडा अभागी जानिये सो मैं हौं, परंतु अब मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त भया हौं, मेरे हृदयरूपी आकाशविषे जो अज्ञानरूपी कुहिड है, सो तुम्हारे वचनरूपी

शरत्काल करिकै नष्ट हो जावैगी, हृदयाकाश निर्मल होवैगा॥ हे भगवन्! मैं त्रिदंड साधे हैं, दीर्घकालपर्यंत मनकरि भी, शरीरकरि भी, वाणीकरि भी यह तीन तप किये हैं, परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ, अब मैं तुम्हारी शरणागत हुआ तरौंगा, ताते कृपा करिकै उपदेश करौ, जो मेरे हृदयका तम दूर होवै॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीवैराग्ययोगवर्णनं नाम शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४५ ॥

शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः १४६.

मंकीऋषिप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात ! संवेदन भावना वासना कलना यह चारौं अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै, तब कल्याण होवै, शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन अपने आपविषे जो अहंकार उत्थान है, सो संवेदन है, अरु भावना यह जो कछु बना बहुरि चेता अरु अपनाआप चित्त स्मरण भया, तब भ्रम मिटि जाता है, अरु जो कछु बनाहै, तिसकी भावना हुई, जो मैं यह हौं, तब भावनाकरि संसार दृढ हुआ, बहुरि तैसेही वासना दृढ होती है, अपने शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती है, बहुरि संसारके संकल्पविकल्प उठते हैं ॥ हे ब्राह्मण ! यह चतुर अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै तब कल्याण होवै, अरु जेते कछु शब्द अर्थ हैं, तिनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है, सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं, अरु सर्व वही है, जब तू ऐसे जानैगा, तब वासना क्षय हो जावैगी, जब अहं संवेदन इसको फुरती है, तब आगे संसार भासता है, जैसे वसंतऋतु आती है, तब वल्ली प्रफुल्लित होती हैं तैसे जब संवेदन फुरती है, तब आगे संसार सिद्ध होता है, जब संसार हुआ तब नानाप्रकारकी वासना फुरती हैं, अरु संसार नहीं मिटता ॥ हे अंग ! संसार इसका नाम है जो संसरता है, जब संसरना मिटि जावै, तब आत्मपदही शेष रहै, सो तेरा अपना आप है, ताते इस फुरणेको त्यागिकरि अपने आपविषे स्थित होहु, सर्व तेराही रूपहै, जबलग वासना

फुरती है, तबलग संसार दृढ हो जाता है, जैसे वृक्षको जल दीजिये तब बढ़ता जाता है, तैसे वासनारूपी जल देनेकरि संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो जाता है, ताते वासनाका नाश करौ, कारण यह कि, संवेदन फुरै,जब वृक्ष जलते रहित भया, तब आपही जलिजाता है ॥ हे पुत्र आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं, केवल परमार्थसत्ता हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प कछु वस्तु नहीं, जेवरीके अज्ञानते सर्प भासता है, तैसे आत्माके अज्ञानते संसार भासता है. जब तू आत्मपदको जानैगा, तब परमार्थसत्ताही भासैगी, जैसे बालक अपने परछायेविषे भूत कलिपकरि भय पाता है, जब विचारकरि देखा तब भूत कोऊ नहीं,भय दूर होजाताहै; तैसे आत्माके अज्ञानकरि संसारके राग द्वेष जलाते हैं, अरु ज्ञानवान्को वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, केवल अद्वैत आत्मसत्ताही भासती है, जैसे स्वप्नते जागा स्वप्नका प्रपंच वासनासंयुक्त अभाव हो जाताहै, तैसे जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है,काहेते जो है नहीं, जैसे घटादिकविषे मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्रस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सर्व आत्माही है ॥ हे मित्र! जो कछु आत्माते इतर भासता है तिसको भ्रममात्र जान, जैसे आकाशविषे नीलता भासतीहै सो भ्रममात्र है, तैसे विश्व असम्यक्दृष्टिकरिकै भासती है, सम्यक्दृष्टिकरिकै सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप हैं, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासतीहै, सो भी बोधस्वरूप है, बोधही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित होता हैं, जैसे स्वप्न विषे एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है तैसे यह जाग्रत्की त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है ॥ हे अंग ! जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो सर्वआत्मस्वरूप हैं, जो परमात्मस्वरूप न होवै, तौ भासै नहीं, द्रष्टा रूप जो अनुभव करता है, सो एक अद्वैतरूप है, तिस स्वरूपके प्रमाद करि भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासतीहै,तौ भी इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी अपने अनुभवकरि भासती है, जो अनुभव न होवै तौ काहेते भासै, तैसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्माकरि भासती है, ताते सर्व परमात्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, जो नहीं तौ है नहीं काहेते जो सर्वकी

एकता परमार्थ स्वरूपविषे होती है ॥ हे ऋषीश्वर ! सजातीय वस्तु मिलि जाती है, जैसे जलविषे जलकी बुंद डारिए तौ मिलि जाती है, काहेते जो एकरूप है, तैसे बोधकरिकै सर्व पदार्थकी एकता भासती है, काहेते जो द्वैतसत्ता है नहीं, जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवनही हैं, जैसे जल अरु तरंग अभेदरूप हैं; तैसे विश्व परमार्थस्वरूप है; ताते ऐसे निश्चय करौ कि; सर्व ब्रह्मस्वरूप है, अथवा आपको उठाय देवहु, जो मैं नहीं, जब तूही न हुआ, तब विश्व कहांते होवै ॥ हे मंकीऋषि ! प्रथम जो अहं होता है तो पाछे ममत्व होता है, जो अहंही न रहैगा तौ ममत्व कहां रहैगा, इस अहंका होनाही बंधन है, इसके अभावका नाम मुक्ति है ॥ हे मित्र ! इस युक्तिविषे क्या यत्न है, यह तौ अपने आधीन है जो मैं नहीं, जब अहंकारको निवृत्त किया तब शेष वही रहैगा, जो सर्वका परमार्थरूप है, तिसीको ब्रह्म कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जब अहंकार फुरता है, तब नानाप्रकारकी वासना होती है, तिस वासनाके अनुसार अनेक जन्मको पाते हैं, जो वर्णन किये नहीं जाते हैं, जैसे पवनकारि तृण भटकते फिरते हैं; तैसे वासनाकरिकै जीव भटकते फिरते हैं, जब पर्वतते कंकर गिरता है, तब चोटें खाता नीचेको चला जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जन्मजन्मांतर पाते चलेजातेहैं, घटीयंत्रकी नाईं कबहूँ ऊर्ध्व, कबहूं अधको जाते हैं, अपनी वासनाके अनुसार, जैसे खेनु हाथकरि ताडन किया कबहूँ ऊर्ध्व, कबहूँ अधको जाता है ॥ हे अंग ! इस संसारका बीज वासना है जब वासना निवृत्त होवै, तब सर्वकी एकता होजाती है, जबलग संसारकी वासना दृढ है, तबलग एकता नहीं होती, जैसे दूध अरु जल मिलता है, उनका संयोग हो जाता है, तैसे भी आत्मा अरु विश्वका संयोग नहीं, आत्मा केवल अद्वैत है, अरु सर्वका आपना आप है, जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है, तैसे आत्मा सत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है, ताते आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं ॥ हे साधो ! आत्मा अरु दृश्यका संयोग कछु नहीं, काष्ठ अरु लाखवत् अथवा घट अरु आकाशवत् संयोग कछु नहीं, काहेते कि, आत्मा अद्वैत है, सर्व दृश्य बोधमात्रहै॥ हे साधो ! जो जड़ है सो चेतन नहीं होता, अरु चेतन जड़ नहीं होता

ताते न कोऊ जड़ है, न चेतन है, चेतन आत्माही भावनाकरि जड़ दृश्य हो भासता है, तिसके बोधकरि एक अद्वैतरूप हो जाता है, तौ जानता है. कि, सर्व वही है, इतर कछु नहीं है, मित्र अज्ञानकरि नाना प्रकारकी विश्व भासती है, जैसे मेघकी वर्षाकरि नानाप्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे अहंरूपी बीजते संसाररूपी वृक्ष वासना सुखकरि प्रफुल्लित होता है, जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो जावै, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा ॥ हे अंग ! जैसे वानर चपलता करता है, तैसे आत्मतत्त्वते विमुख अहंकाररूपी वानर वासनाकरि चपलता करता है, जैसे खेनु हस्तते प्रहारकरि अध ऊर्ध्वको उछलता है, तैसे जीव वासनाके प्रहारकरि जन्मांतरविषे भटकता फिरता है, कबहूं स्वर्ग, कबहूं पाताल , कबहूं भूलोकविषे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, ताते वासनाका त्याग करौ, अरु आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ हे तात ! यह संसार रात्रिका पैंडा है, देखते नष्ट हो जाता है, इसको देख इसविषे प्रीति करनी अरु सत् जानना यही अनर्थ है, ताते संसारको त्यागि-करि आत्मपदविषे स्थित होहु, चित्तकी वृत्ति जो संसरती है इसीका नाम संसार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिप्रबोध-वर्णनं नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४६ ॥

शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४७.

मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात ! यह संसारका मार्ग गहन है, इसविषे जीव भटकते हैं, यह चेतनवृत्ति जो संसरती है, यही संसार है, जब यह संसरना मिटै, तब स्वच्छ अपना आपही स्वरूप भासै, चेतनावृत्ति जो, बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बंधन है, अपर बंधन कोऊ नहीं ॥ हे साधो ! यह जगत् वासनाकरि बांधा है, जैसे वसंतऋतुकरि रस पसरता है, तैसे वासनाकरि जगत् परसता है, बड़ा आश्चर्य है, जो मिथ्या वास-नाकरि जीव भटकते फिरते हैं, दुःखको भोगते हैं, अरु वारंवार जन्म

मृत्यु पाते हैं, बडा आश्चर्य है, जो वासना विषमरूपहै, इसते जीव वश हुए अविद्यमान जगत्को भ्रमकारि सत् जानते हैं ॥ हे साधो! जो इस वासनारूप संसारको तर गये हैं, सो धन्य हैं, वह प्रत्यक्ष चंद्रमाकी नाईं हैं, जैसे चंद्रमा अमृतरूप शीतल प्रकाशवान् प्रसन्न करताहै, तैसे ज्ञानी पुरुष हैं; ताते तू धन्य है, जिसको आत्मपदकी इच्छा हुई है॥ हे अंग! यह संसार तृष्णाकारि जलता है; जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है, तिनको तू बिल्ला जान, जैसे बिल्ला तृष्णाकारि चूहेको ग्रहण करता है; तैसे यह जीव भी अपनी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं, अरु इस मनुष्यशरीरविषे यही विशेषताहै कि, किसीप्रकार आत्मपदको प्राप्त होवै, अरु जो नरदेह पायकरि भी आत्मपद पानेकी इच्छा न करै तौ पशुसमान है, जैसे पशु तैसे मनुष्य॥ हे मित्र! मूढ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं, जो प्राणोंके अंत-पर्यंत भी तृष्णा करते रहते हैं ॥ हे अंग! ब्रह्मलोकते आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु इंद्रियोंके विषय हैं, तिनके भोगनेकारि शांति नहीं प्राप्त होती, काहेते जो आपातरमणीय हैं, इनविषे सुख कदाचित्नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको शांति ऐसी है, जैसे चंद्रमाविषे है, अरु सूर्यकी नाईं प्रकाशते हैं, अरु विषयकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते, जैसे कोऊपुरुष अमृत पानकारि तृप्त हुआ होवै, तब वह फल खानेकी इच्छा नहीं करता तैसे जिस पुरुषको आनंद प्राप्त हुआहै सो विषय भोगनेकी इच्छा नहीं करता, ताते इसी वासनाका त्याग करु, अरु वासनाका बीज अहंकार है, तिसको निवृत्त करु, जो मैं नहीं, काहेसे जो तेरा होनाही अनर्थ है ॥ हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदविषे जो कछु तू आपको प्रसन्न जानता है कि, मैं ब्राह्मण हौं, अथवा किसीप्रकृतिसाथ मिलिकरि आपको मानता है कि मैं यह हौं, यही अनर्थ है ॥ हे ऋषि! तेरे नेत्रोंके खोलनेकारि संसार उत्पन्न होता है, अरु नेत्रोंके मुन्दनेकारि नष्ट हो जाता है, सो नेत्र क्या हैं, अहंकारका फुरणा इसीकारि आगे विश्व सिद्ध होती है; ताते तेरा होनाही अनर्थ है॥हे अंग! जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र उदय होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार उदय हुआ है, इसीके अभावते भय शांत होता है, जब अहंकार हुआ, तब आगे स्त्री कुटुंब

धन होते हैं, सो इसको बंधन हैं, इनका चमत्कार ऐसे है, जैसे दामिनीका चमत्कार क्षणविषे उदय होकरि नष्ट हो जाता है, ताते इन-विषे बंधमान नहीं होना ॥ हे अंग ! जब तू कछु बना तब सब आपदा तुझे आय प्राप्त होवैंगी, अरु जब तू अपना अभाव जानै, तब पाछे आत्मपदही शेष रहैगा, सो परम शांतरूप है, जिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा भी अग्निवत् जानता है, सो परम शून्य है, अरु सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है सो आकाशरूप हैं ॥ हे मित्र ! इन मेरे वचनोंको धार, जो मोह तेरा नष्ट हो जावै, यह विश्व कछु हुई नहीं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो है नहीं, तैसे विश्व नहीं आत्माके प्रमाद करि भासताहै ॥ हे ऋषि ! तू तिसीको जान, जिसके अज्ञानकरि विश्व भासता है, अरु जिसके ज्ञानकरि लय हो जाता है॥ हे मंकी ! शून्यमात्र जैसे आकाश है, स्पंदमात्र जैसे पवन है, जलमात्रजैसे तरंग है, तैसेसंवित् मात्र जगत् है, ति ससंवित्आकाशते जो इतर भासताहैं, सो भ्रममात्र जान जैसे असम्यक्दृष्टिकरिकै जल पहाडरूपभासै, तैसे असम्यक्दृष्टि करि जगत् भासता है, अरु सम्यक् अवलोकनकरि परमार्थसत्ताही भासती हैं जिसके अज्ञानकरि जो विश्व भासताहै, तिसको भी ज्ञानवान् ब्रह्मश-ब्द्करि कहतेहैं, तिस ब्रह्मपदका अहंकारही व्यवधान है, सो ज्ञानवान्-का नष्ट भया है, ताते सर्वका अधिष्ठान वही परमार्थस्वरूप एक देखते हैं, तिसीविषे तू एकत्र होउ, जैसे आकाश अनेक घटके संयोगकरि भिन्न भिन्न भासता है, जो घटको फोडिये तौ सर्व एकही होजाताहै, तैसे अहंकाररूपी घट फोडिये तौ सर्व पदार्थ एकत्र हो जातेहैं ॥ हे अंग ! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है, सो कैसा है, अजन्मा है, अच्युतहै आनंद है, शांतरूप है, निर्विकल्प अद्वैत है, सर्वका अधिष्ठानहै, तिसी-विषे स्थित होहु, जो शिलावत् आत्मसत्ताते इतर कछु न फुरै, ताते निर्बो-धबोध हो जावहु ॥ हे मंकीऋषि! यह जो पदार्थभासते हैं, दुःखके देने-हारे, ऐसे जो शब्द अर्थ है, सो आकाश फूल हैं, ताते शोक मत करु, जो सर्व परमार्थसत्ताही है, जैसे पुरुष निराकार है, तिसकी भावनाकरि अंगका संयोग होता है, तैसे विश्व भी इसकी भावनाकरि होताहै. जैसी

जैसी संसारकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप आगे दृष्ट आता है, जो विश्व उपादानकारि हुआ नहीं, तो आरंभ परिणामकारि बना कछु नहीं जैसे यह विना उपादान है तैसे श्रवण कर ॥ हे मित्र ! शुद्ध परमात्माका जो पाना है सो साधन है, अरु विश्व उपादान है सो शब्द है; अरु आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है, अरु अचिंत्य है, इसीते विश्व निरुपादान है स्वप्नवत् जैसे स्वप्नसृष्टि निरुपादान होती है, तैसे जाग्रत् सृष्टि भी है, अरु उपादान मृत्तिकाकारि जैसे घट कार्य बनता है, आत्मा विश्वका उपादान ऐसे भी नहीं, काहेते जो मृत्तिका परिणामकारि घटाकार होती है, अरु आत्मा अच्युत है, जैसे भीतविना चित्र होवै सो हैही नहीं, ताते यही विश्व आकाशविषे चित्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी विश्व आधार भीतविना चित्र होता है, तैसे यह विश्व भी आकाशविषे चित्र हुआ है, इसीते आत्मा अकर्ता है, अरु विश्व जो दृष्ट आता है सो निरुपादान है, तिसका शोक क्या करिये; अरु हर्ष क्या करिये यह प्रपंच सर्व आत्मरूप है, प्रमादकरिकै नहीं जानाजाता ॥ हे साधो ! संवेदनकरिकै जो अहंकार फुरता है, तब विश्व भासता है, जैसे स्वप्नविषे जो कछु बनता है,सो अपने स्वरूपते भिन्न देखता है, अरु तिसविषे राग द्वेष भासतेहैं, अरु जागे हुए अपर कछु नहीं, सब अपनाही अनुभव था तैसे जब संवेदन उठ गई, तब सब विश्व अपना आप हो जाता है, यह अहंकार होनाही विश्व है, जब अहंकार नाश होवै, तब सर्व शब्द अर्थ जो मैं दुःखी हौं, मैं सुखी हौं, यह नरक है, यह स्वर्ग है इत्यादिक सब परमार्थसत्ताविषेही फुरते हैं सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, ताते सर्व आत्मस्वरूप है; सो कैसा है, दृश्यते रहित द्रष्टा है, ज्ञेयते रहित ज्ञाता है, अरु निर्बोध बोध है, इच्छाते रहित इच्छा है, अद्वैत है, अरु नानात्व भी वही है, निराकार है, आकार भी वही है, अकिंचन है, किंचन भी वही है, अक्रिय है, अरु सर्व क्रिया वही करता है, ऐसे आत्मज्ञानको पायकारि आत्मवेत्ता विचरते हैं, अरु जगत्का भान तिनको किंचित् भी नहीं, जैसे स्वर्णके भूषण जलके तरंग होते हैं, तैसे सर्व विश्व तिसको आत्मस्वरूप भासता है, ऐसे जानकारि सर्व चेष्टा करते हैं, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे संवेदन नहीं फुरती, तैसे

उनको जगत सत्यता नहीं फुरती, काहेते जो निरहंकार भयेहैं॥ हे मंकी-ऋषि ! जैसे स्वर्णविषे भूषण बनि आयेहैं, तैसे आत्माविषे विश्व फुरि आताहै, सो अहंकार फुरा है, ताते इसके अभावकी भावना करु, निरहं-कार होकारि चेष्टा करु, जैसे पिंघुडेविषे बालकके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे ज्ञानीकी निर्वंदन चेष्टा होती है ॥ हे ऋषि ! जब तू इस मेरे उपदेशको धारैगा तब सुखेनही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूपही भासैगा, जो कछु विश्व भासता है, सो सब आत्म-रूपही है ॥ हे रामजी ! जब मैं इसप्रकार कहा, तब मंकीऋषि परम निर्वाणपदको प्राप्त भया, परम समाधिविषे स्थित होगया, सौ वर्षपर्यंत समाधि स्थित रहा सो कैसी समाधि जो शिलावत् फुरै कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे मंकीऋषि स्वरूपको प्राप्त भयाहै, तैसे तुम भी स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनं नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४७ ॥

शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४८.

सुखेनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, सर्व वही चिन्मात्रस्वरूप है ॥ हे रामजी ! मेरा आशीर्वाद है, जो तुम चिन्मा-त्रस्वरूपको प्राप्त होहु, जो तुम्हारा अपना आप है, तिसको अपना आप जानो, तुम्हारे दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे रामजी ! तुम निर्वाण शांत आत्मा होहु, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहौ, अरु सत् हुआ असत्की नाईं स्थित होहु, रागद्वेषका रंग तुमको स्फटिकमणिकी नाईं स्पर्श न करै ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत् एकही स्थित है, अरु वास्तवते एकविषे कछु स्थित नहीं, आदि अंतते रहित एक चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है, सो शरीरादिकके नाशविषे भी अखंडरूप है, तिसका यह जगत् चम-त्कार है, उपज उपजकारि जलतरंगवत् लय हो जाता है ॥ हे रामजी! ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र शुद्ध हुई है, अरु वास्तवते द्रष्टा

दर्शन दृश्य सर्व वहीरूप है, तिसते इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूप हैं अरु सदा एकरस है, कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्त होता, यद्यपि यह दशा होवै कि, अमावास्याको चंद्रमा दृष्ट आवै, अरु प्रलयकालविना प्रलयकाल वायु चलै, तौ भी आत्माको क्षोभ नहीं होता, आत्मपद सदा ज्योंका त्यों है ॥ हे रामजी ! ऐसे आत्माके प्रमादकरि जीव दुःख पाते हैं, जब आत्माका प्रमाद होता है, तब इसको प्रत्यक्ष देह इंद्रिय अपनेविषे भासती है, तौ भी है नहीं, जैसे बालूसों तेल नहीं निकसता, अरु आकाशविषे वन नहीं होता, चंद्रमाके मंडलविषे तप्तता नहीं होती, तैसे आत्माविषे देह इंद्रिय कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! यह जीव सर्व आत्मारूप हैं,ताते इनको देह इंद्रियोंका संबंध कछु नहीं, परंतु इनकी क्रियाविषे जो अभिमान करता है, इसीते बंधमान होता है ॥ हे रामजी ! जैसे बेडीपर पुरुष बैठता है, तिसको भ्रांतिकरि नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे मनके भ्रमकरि आत्माविषे चित्त देह इंद्रियां भासते हैं, अरु वास्तवते चित्त देह इंद्रियां कछु भिन्न वस्तु नहीं, यह भी आत्मस्वरूप है, तौ निषेध किसका करिये ? हे रामजी ! यह मन इंद्रियादिकको अपनी सत्ता कछु नहीं, भ्रांतिकरिकै भासती है, जैसे पर्वत ऊपर उज्ज्वल मेघ होता है, तिसविषे वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है, तैसे देहादिकविषे अहंबुद्धि निष्फल है ॥ ताते हे रामजी ! एक अखंड आत्मतत्त्व है, अपर द्वैत कछु नहीं, जब तैंने ऐसे धारा, तब तू निरंजन स्वरूप है ॥ हे रामजी ! यह सर्व शरीर चित्तके फुरणेविषे स्थित है, जैसे चित्तके फुरणेविषे शरीर है, तैसे जीवविषे चित्त है, तैसे परमात्माविषे जीव है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार फुरणेमात्र दृश्य हुई तौ द्वैत तौ कछु न हुआ क्यों ? इसप्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रमको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! ऐसे धारिकरि सुखेन विचरहु, जो कछु चेष्टा नेतिकरि आय प्राप्त होवै तिसको करौ, परंतु अपना अभिमान न होवै, जब अपना अहंभाव दूर भया, तब स्पंद होवै, अथवा निस्पंद होवै, समाधिस्थित होवै अथवा राज्य करै, स्थिति क्षोभ तुमको दोनों तुल्य होजावैंगे, जब अपनी

अभिलाषा दूर भई तब जैसी चेष्टा आय प्राप्त होवै तैसीही होवै, वह फुरणा भी अफुर है, जैसे जलके ज्ञानते तरंग बुद्बुदे जलही भासता है, तैसे तुमको स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होवैंगे, एक अद्वैत सत्ताही भान होवैगी, जैसे सम्यक्‌दर्शीको तरंग अरु सोमजल एक भासता है, तैसे तुमको भी एकही भासैगा, जीवन्मुक्त होहु, अथवा विदेहमुक्त होहु, समाधि होवै अथवा राज्य होवै, तुमको दोनों तुल्य हैं, ॥ हे रघुकुल-आकाशके चंद्रमा रामजी ! इसको अपनी अभिलाषाही बंधन करती है, जब अभिलाषा मिटी, तब कर्म करौ अथवा न करौ, बंधन कछु नहीं, काहेते कि करनेविषे भी आत्माको अक्रिय देखता है, अरु अकरनेविषे भी तैसे देखता है, द्वैतभावना तिसकी निवृत्त होजाती है, ताते तिसको चित्त देह इंद्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूपही भासते हैं ॥ हे रामजी ! मैं जानता हौं कि तुम्हारे हृदयका मोह निवृत्त भया है, अब तुम जागे हौ, अरु जो कछु तुमको संशय रहा होवै तौ बहुरि प्रश्न करौ, जो मैं उत्तर देऊं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४८ ॥

शताधिकैकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः १४९.

निराशयोगोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एक संशय मुझको है, तिसको तुम निवृत्त करौ, एक कहते हैं; कि बीजते अंकुर होता है, अरु एक कहते हैं, अंकुरते बीज होताहै, अरु एक कहते हैं, जो कछु कर्ताहै, सो दैवही करता है, अरु एक कहते हैं, कर्म करताहै, तब जन्म पाते हैं, कर्महीकरि सब कछु होता है, अपर किसीके आधीन नहीं, अरु एक कहते हैं, जब देह होती हैं तब कर्म करते हैं, एक कहते हैं कर्मोंते देह होती है, एक कहते हैं देहते कर्म होते हैं, यह अर्थ है, एक पुरुषप्रयत्न मानते हैं, सो जो जैसे है, तैसे तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! एक एक मैं तुझको क्या कहौं ? कर्मते आदि देवपर्यंत, अरु घटते आदि आकाशपर्यंत जेती

कछु क्रिया कर्मद्रव्य है, सो यह विकल्पजाल सब भ्रांतिमात्र है, केवल आत्मस्वरूप अपने आपविषे स्थित है,द्वैत कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी ! जब संवेदन फुरती है, तब सब कछु भासता है,अरु निःसंवेदन हुए कछु नहीं, कर्म पुरुषप्रयत्न सब दैवसमेत आत्माके पर्याय हैं, जैसे शीत श्वेत आदिक बर्फके पर्याय हैं, तैसे यह सर्व आत्माके पर्याय हैं, दैव पुरुष है, अरु पुरुष दैव है, कर्म देह है, अरु देह कर्म है, बीज अंकुर है, अरु अंकुर बीज है, दैव कर्म है, अरु कर्म दैव है, सो पुरुषप्रयत्न है, जो इनविषे भेद मानते हैं, सो पंडितविषे पशु हैं, काहेते जो इनका बीज अहंकार है, जब अहंकार हुआ तब सब कछु सिद्ध हुआ, जैसे बीजते वृक्ष होता है, फूल फल टास सर्व बीजते होते हैं, अरु जो बीजही न होवै, तौ वृक्ष कैसे उपजै ॥ हे रामजी ! इनका बीज संवेदन है, अहंकार संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं; जब फुरणा हुआ तब कर्म देह दैव सर्व सिद्ध होते हैं, जब फुरणा मिटि गया तब कछु नहीं भासता, इसीको ज्ञान अग्निकरि जलावहु जो फूल फल टास जलि जावैं, यह जो संवेदन फुरती है, जो मैं ही हौं, यही संसारका बीज है, ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, जब अहंकार नष्ट भया तब द्वैत कछु न भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जो प्रपंच भासता है, तिसका बीज संवेदन है, अरु संवेदनकाबीज शुद्ध संवित्तत्त्वहै, तिसका बीज अपर कोऊ नहीं, दैव कर्म पुरुषप्रयत्न क्या है, सो श्रवण करु, आदि जो स्पंद संवेदन फुरणा हुआ है, तिसका नाम दैव है, काहेते जो कर्मते आदिही फुरता है, बहुरि जो आगे क्रिया करती है, सो कर्म हैं, इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है, अरु वह जो कर्मते आदि देवरूप फुरा है, सो क्या रूप है इसीका जो प्रकृति कर्महुआ है, तिसीका नाम दैवकारिके कहते हैं, इन सर्वका बीज संवेदन है ॥ हे रामजी ! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एकही था, जब तिसते विकारसंयुक्त उत्थान हुवा, तब आगे प्रपंच भासने लगा, बहुरि जब उत्थानका अभाव होवै, तब प्रपंचका भी अभाव हो जावै॥ हे रामजी ! जब यह कछु बनता है तब सर्व आपदा इसको प्राप्त होती हैं, जैसे सुई वस्त्रविषे प्रवेश करती है। तिसके पाछे तागा भी चला जाता है

अरु जो सुई प्रवेश न करै तौ तागा कहांते जावै, तैसे जब अहंकार प्रवेश करता है, तब सब आपदा आती हैं, जब अहंकार निवृत्त भया, तब सब विश्व आनंदरूप अपना आप भासता है, ताते अहंकारका अभावकरौ काहेते जो विश्व भ्रांतिकरि सिद्ध है, आगे कछु हुई नहीं, सर्व आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! वासनामात्र विश्व है, जब वासना नष्ट होवै तब परम कल्याण है, जिसप्रकार इसकी वासना क्षय होवै सोई युक्ति श्रेष्ठ है, जब युक्तिकरि वासना क्षय होवैगी, तब चेष्टा भी होवैगी परंतु बहुरि जन्मको न देवैगी ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्ध बीजवत् है, बहुरि जन्मको नहीं देता, अरु अज्ञानीका संकल्प कच्चे बीजवत् है, बहुरि जन्म देता है, अरु वास्तव देखिये तौ न कोऊ जन्मही पाता है, न कोऊ मृत होता केवल अपने आप भावविषे स्थित है, भ्रांतिकरिकै भिन्न भिन्न भासते हैं स्वरूपतेसर्व अपनाहीआपहै, द्वैत कछु हुआनहीं, अरु जोभासताहै, सोमिथ्या है, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं होता, तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है, इसविषे सार कछु नहीं, ताते इसकी वासना त्यागिकरि अपने आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल होवै, सोई यत्नकरि निर्मूल करौ, तब शेष परमशिवपदही रहैगा ॥ हे रामजी ! पुरुषप्रयत्नकरि जबनिरहंकार होवहुगे, तब वासना आपहीक्षय होजावैगी, वासना क्षयका उपाय अपने पुरुषप्रयत्नविना कोऊ नहीं. ताते हे रामजी ! पुरुषार्थकरिकै इसी एक देवपरायण होहु, कर्म दैव आदिक वही पुरुष होकरि भासता है, अरु कछु हुआ नहीं, जैसे एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारपूर्वक सब ईषणाको त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निराशयोगोपदेशो नाम शताधिकैकोनपञ्चशत्तमः सर्गः ॥ १४९ ॥

शताधिकपंचाशत्तमः सर्गः १५०.

भावनाप्रतिपादनोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्‌की बुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदयविषे शीतलता होती है, चेतन रसकरि बुद्धि पूर्ण होती हैं, दूसरा भान उठि जाता है, ताते नित्य अंतर्मुखी होहु, अरु वीतराग निर्वासी होहु, चिन्मात्र निर्मल शांतरूप सर्व ब्रह्मकी भावना करु, ब्रह्मपदको पायकरि नेतिके अनुसार चेष्टा कर, जो हर्षका स्थान होवै, तिसविषे हर्ष करु जो शोकका स्थान होवै, तहां शोक करु, जैसे अज्ञानी करते हैं, तैसे करु, अरु हृदयविषे आकाशकी नांई रहु ॥ हे रामजी ! जब इष्टकी प्राप्ति होवै, तिससाथ स्पर्श करहु, परंतु हृदयविषे तृष्णा न होवै, जब युद्ध आय प्राप्त होवै तब शूरमा होकरि युद्ध करहु, अरु जहां दीन होवै तहां दया करह, जो राज्य आय प्राप्त होवै, तिसको भोगहु, जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवै तिसको भी भोगहु ॥ हे रामजी ! सब चेष्टा अज्ञानीकी नांई करह; अपनें हृदयविषे, सदा समता रहै, इतर कछु फुरै नहीं, रागद्वेषते रहित सदा निर्मल होहु, जब तू ऐसे निश्चयको धारैगा तब तुझको खेद कछु न होवैगा. यद्यपि बड़ा दुःख इंद्रका वज्र पड़ै तौ भी तुझको स्पर्श न करैगा ॥ हे रामजी ! तेरा रूप कैसा है, जो शस्त्रकरि छेदा नहीं जाता, अरु अग्निकरि जलता नहीं, जलकरि गलता नहीं, पवनकरि सूखता नहीं; केवल निराकार अजर अमर है, सर्वका अपना आप है ॥ हे रामजी ! कष्ट तब होता है, जब विलक्षण वस्तु होती है, अग्नि तब जलाती है, जब भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है, अग्निको अग्नि तौ जलाती नहीं, जलको जल तौ गालता नहीं ताते तू अपने आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे पक्षी सर्व ओरते संकल्पको त्यागिकरि आलयविषे स्थित होता है तब सुख पाता है, तैसे जब तू सर्व कलनाको त्यागिकरि अंतर्मुख संवित्‌विषे स्थित होवैगा तब रागद्वेषरूपी धुंध कोऊ न रहैगा ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र बडा प्रवाह है, तिसते निकसना तब होवै, जब आश्रय होवै सो आश्रय तुझको

कहता हौं, अनुभवरूप आत्माको आश्रयकरि संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होहु, ताते विलंब न करहु, अपने आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी। संसाररूपी वृक्षका अंत लिया चाहै, तो नहीं पाता, अरु मैं तुझको ऐसा उपाय कहता हौं, जो सर्वका अंत कहिये सुगंधिको ग्रहण किये संसार-रूपी एक वृक्ष है, तिसविषे चेतनमात्र सुगंधिता है, सो तेरा अपना आप है, तिसको ग्रहण करु, जो सर्वका अधिष्ठान है, जब तिसको ग्रहण किया तब सर्वको ग्रहण किया है ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुमको भासता है, सो सब आत्मरूप है; तिसकी भावना करु, अरु जाग्रत्‌विषे सुषुप्त होहु सुषुप्तिविषे जाग्रत् होहु, संसारकी सत्ता जो जाग्रत् है, तिसकी ओरते सुषुप्तहोहु सुषुप्त कहिये फुरणेते रहित होकरि तुरीयापदविषे स्थित होहु जहाँ गुणका क्षोभ कोऊ नहीं, अरु निर्मल शांतिरूपहै, जहां एक अरु दोकी कलना कोऊ नहीं, तिसविषे स्थित होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऐसे जो शांतरूप तुरीयापदविषे स्थित होना तुमने कहा, सो तुम्हारेविषे यह नहीं फुरता कि मैं, वसिष्ठ हौं तिसका रूप क्या है, जो अहं प्रतीति तुमको नहीं होती है ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भरद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीने प्रश्न किया, तब वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये अरु सर्व सभा संशयके समुद्रविषे मग्न भई, तब रामजी बोले॥ हे भगवन् ! तूष्णीं होना तुम्हारा अयोग्यहै, तुम साक्षात् विश्वगुरु, हौ, ब्रह्मवेत्ता हौ, ऐसी कौन बात है, जो तुमको न आवै, अथवा मुझको समर्थ नहीं, देखते सो कहौ, जब ऐसे रामजीने कहा, तब वसिष्ठजी एक घड़ी उपरांत बोले ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असमर्थताकरिकै मैं तूष्णीं नहीं भया परंतु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है, सोई दिखाया कि तेरे प्रश्नका तूष्णीं ही उत्तरहै, जो प्रश्न कर-नेवाला अज्ञानी होवै तौ उसको अज्ञान लेकरि उत्तर कहिये, अरु जो तज्ज्ञ होवै, तिसको ज्ञानकरि उत्तर दीजिये, आगे तू अज्ञानी था, सवि-कल्प उत्तर मैं देताथा, अब तू ज्ञानवान् है, तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णींही है ॥ हे रामजी ! जो कछु कहना है, सो प्रतियोगीसाथ मिला हुआ है प्रतियोगी विना शब्द मैं कैसे कहौं, आगे तू सविकल्प शब्दका अधिकारी था, अरु अब तुझको निर्विकल्पका उपदेश किया है ॥ हे रामजी ! शब्द

चार प्रकारके हैं, एक सूक्ष्म अर्थका, दूसरा परमार्थका, एक अल्प है, एक दीर्घ है, सो तीन कलंक इनविषे रहतेहैं, एक संशय, एक प्रतियोग, एक भेद, यह तीनोंकलंक शब्दविषे रहते हैं,जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रस-रेणु रहतेहैं,तैसे शब्दविषे कलंक रहते हैं, अरु जो पद मन अरु वाणीते अतीतहै, तौ कलंकित शब्द कैसे तिसका ग्रहण करै ॥ हे रामजी ! काष्ठ-मौन तिसको कहतेहैं. जहां न इंद्रियां फुरैं, न मन फुरै, कोऊ फुरणा न फुरै, सो कहिये काष्ठमौन, ऐसे पदको मैं वाणीकरि कैसेकहौं, जेता कछु बोलना होताहै, सो सविकल्प होताहै, उस तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीं है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहतेहौ,बोलना सविकल्प अरु प्रतियोगी सहित होता है, जो कछु ब्रह्मविषे दूषण है तिसका निषेधकरिकैकहौ, मैं प्रतियोगीको न विचारौंगा ॥ वसिष्ठउ० ॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाशस्वरूप हौं, चैत्यते रहित चिन्मात्र हौं, अरु शांतरूप हौं, सम हौं, सर्व कलनाते रहित केवल आत्मातत्त्वमात्र हौं, अरु तू भी चिदाकाश है, सर्व जगत् भी चिदाकाश है, अरु अहं त्वं कोऊ नहीं कहना, काहेते कि दूसरी सत्ता कोऊ नहीं, सब चिदाकाश है, अहं संवेदनते रहित शुद्धहै, जो सापेक्षिक अहं अहं फुरतीहै,अरु मोक्षकी भीइच्छा होवै तौ सिद्ध नहीं होती काहेते जो कछु आपको मानकरि फुरती है, तौ एक अहंकारके कई अहंकार हो जाते हैं, यह अहं इसके गलेमें फांसी पड़तीहै, जब अहंताते रहित होवै तब आत्मपदको प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब यह सबकी नाईं होजावै कछु अपनी अहंता अभिमान न फुरै. तब संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होवै, अरु जब द्वैतसों मिलाहुआ जीता है, तबलग जन्ममरणके बंध-नमें है, कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्मका अंध चित्रकी पुतलीको देखि नहीं सकता, तैसे अहंतासंयुक्त मुक्तिको नहीं प्राप्त होता. जब अहंताका अभाव होवै, तब कल्याण होवै, स्वरूपके आगे अहंताही आवरण है ॥ हे रामजी ! जब यह चेतन हुआ फुरा तब इसको बंधन पड़ा, अरु जब जड़ अफुर हो जावै तब कल्याण हुआ, जब चैतन्यो-न्मुखत्व होता है, तब इसका नाम पशु होता है, पशुका शरीर पाया, जब चैत्यते रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होता है, तब

मनुष्यजन्म सफल होता है, यह मनुष्य जन्म पाय जो कछु पावना था सो पाया ॥ हे रामजी ! जब मनुष्यजन्मको पायकरि न जानैगा, तब अपर जन्मविषे जानना कहां है, यह संसार चित्तके फुरणेकरि उत्पन्न हुआ है, जब चित्त संसरणेते रहित होवै, तब केवल केवलीभावस्वरूप भासै,ज्ञानवान्‌की दृष्टिविषे अब भी कछु नहीं हुआ, केवल आत्मस्वरूपही भासता है, फुरणाअफुरणा दोनोंतिसको तुल्य दिखाई देतेहैं, अंतःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासते हैं, इसीते चित्त आदिक जड़ हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु आत्मस्वरूपकरिकै सब आत्मरूप हैं, आत्मा देश कालवस्तुके परिच्छेदते रहित है, ज्ञानीको सर्व आत्माही भासता है, भावै कैसी चेष्टा करै, वह लोक धन पुत्र सर्व ईषणाते रहित है, न लोककी इच्छा करता है, जो लोक मुझको कछु भला कहै, अरु न पुत्र धन पानेकी इच्छा करता है, केवल आत्मअनुभवरूपविषे स्थित है, अरु सबको अपना आप जानताहै ॥ हे रामजी ! जिस पदको वह प्राप्त होता है, तिस पदको मेरी वाणी कह नहीं सकती अनिर्वाच्य पद है, अरु जो पुरुष अहं ब्रह्म अस्मि कहता है, कि जो मैं ब्रह्म हौं, अरु यह जगत् है, तब जानिये कि तिसको ज्ञान नहीं उपजा, तिसको शास्त्रश्रवणका अधिकार है, जैसे कोऊ कहै,मेरे हाथविषे दीपक है, अरु अंधकार भी मुझको दृष्ट आता है, तब जानिये कि, इसके हाथविषे दीपक नहीं, तैसे जबलग जगत् भासता है, तबलग ज्ञान उपजा नहीं, इस जीवने निर्वाण हो जाना है, जब प्रत्यक् चेतनविषे स्थित हुआ, तब जड हो जावैगा, संसारकी भास कछु न रहैगी, ऐसी भी दृष्टि न रहैगी, कि मैं सम्यक्‌दर्शी हौं,केवल निर्वाण हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अब भी निर्वाणपद है, इतर हुआ कछु नहीं, किसकरिकै किसको कौन उपदेश करै, केवल एकरस शून्य है, शून्य अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं अरु जो कछु भेद है, तिसको ज्ञानवान् जानते हैं, अरु वाणीकी गम नहीं, तिसविषे जो अनंत संवेदन फुरती है, तिसकरि संसार फुरता है,अरु संवेदनहीकरि लीन होता है, जैसे पवनकरि अग्नि प्रज्वलित होता है; अरु पवनही करि लीन होता है, तैसे संवेदन बहि-

मुख फुरती है, तब संसार भासता है; अरु जब अंतर्मुख होती है, तब जगत् लीन हो जाता है, ताते संसार फुरणे मात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है तैसे आत्माविषे जगत् प्रमादकरिकै भासता है, जगत् कछु बना नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे स्थित होहु, जब स्थित होवैगा, तब अशेष विशेष भाव मिटि जावैगा॥ हे रामजी! ग्राह्य अरु ग्राहक संबंध भी जाता रहैगा, केवल जो परमात्मतत्त्व शुद्ध है, अजर अमर है, खाते पीते चलते सोते वृत्ति तहांही रखनी॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्रतिपादनोपदेशो नाम शताधिकपंचाशत्तमः सर्गः॥ १५०॥

शताधिकैकपंचाशत्तमः सर्गः १५१.

हंससंन्यासयोगवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जिसप्रकार आत्मपदको प्राप्त होता है, सो सुन, जब पुरुष निरहंकार होता है तब आत्मपदको प्राप्त होता है, जो सर्वात्मा है; तिसको आवरण करनेहारी अविद्या है, जैसे सूर्यमंडलके आगे बादल आय आच्छादि लेता है, तैसे अविद्या आत्माविषे आवरण करती है, तिस अविद्याकरि उन्मत्तकी नांई मूर्ख चेष्टा करते हैं, अरु जो अहंताते रहित ज्ञानवान् पुरुष है, तिसको दुःख कोऊ नहीं स्पर्श करता, संदेह भी निर्दुःख होता है. जैसे भींतके ऊपर मूर्तियां युद्धकी सैना लिखी होती हैं, सो देखनेमात्र शोभा दृष्ट आती है, परंतु वह शांतरूप हैं; तैसे ज्ञानवान्की चेष्टाविषे भी क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है, वासनासहित दृष्ट आता है, अरु सदा निर्वासी है, जैसे जलविषे लहरीचक्र क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्को ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता, जिसके अंतर दृश्यभाव शांत हो गया है, बाहिर क्षोभवान् दृष्ट आताहै, तौ भी मुक्तिरूप है, जैसे धुँएके बादल आकाशविषे हस्ती घोडा पहाड़रूप दृष्ट आते हैं, परंतु है कछु नहीं, तैसे जगत् दृष्ट आता है, परंतु है कछु नहीं.

अहंकार करि जगत् भासता है, अहंकारते रहित निर्विकार शांतरूप होता जाता है, ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है, तिसको पायकरि ज्ञानवान् शोभता है, ऐसा शरत्कालका आकाश नहीं शोभता, अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा नहीं शोभता, अरु पूर्णमासीका चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता, जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है॥ हे रामजी! अहंताही इस पुरुषको मल है, जब अहंता नाश होवै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होवै, अरु संसारके पदार्थकी जो भावना थी सो निवृत्त हो जाती है. काहेते कि, भ्रमकरिकै उपजती थी, जो वस्तु भ्रमकरिकै उपजी होती है, सो भ्रमके अभाव हुए तिसका भी अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे धुंएका बादल नानाप्रकारके आकार हो भासता है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व अनहोती भासती है, विचार कियेते रहती नहीं॥ हे रामजी! जबलग इसको संसारकी वासनाहै, तबलग बंधहै,जब वासना निवृत्त हो जावै, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै अरु संपूर्ण कलना मिटिजावै, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे तुल्य हो जावै, यद्यपि व्यवहार कर्त्ता है तो भी शांतरूप है, जैसे शब्दको रागद्वेष नहीं फुरता, तैसे ज्ञानी निर्वाणपदको प्राप्त होता है, जिस निर्वाणविषे सत् असत् शब्द कोऊ नहीं केवल ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु अद्वैत है॥ हे रामजी! विश्वभी वहीरूप है, चेतन आकाश है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसाए चेतन होकरि भासता है, जब जगत्की भावना होती है, तब नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं, अरु जब ब्रह्मकी भावना होतीहै, तब ब्रह्म भासता है, जैसे विषविषे अमृतकी भावना होती है, अरु विधिसंयुक्त खाते हैं,तब विषभी अमृत हो जाती है, अरु जो विधिविना खाइये तो मृतक होता है, तैसेजबइस संसारको विधिसंयुक्त देखिये, अर्थ यह जो विचारकरि देखिये तो ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो विचार विना देखिये तो जगत्रूप भासताहै, सो विचार तब होता है, जब अहंकार निवृत्त होता है, अरु अहंकार आकाशविषे उपजाहै, अरु आकाश शून्यताविषे उपजाहै, अरु शून्यता आत्माके प्रमादकरि उपजी है, बहुरि अहंकारते जगत् हुआ है, अरु

अहंकार मिथ्या है ॥ हे रामजी ! शरीर आदिक चित्तपर्यंत विचार देखिये तो दृष्ट कहूं नहीं आते, इनविषे जो अहंप्रत्यय है सो भ्रममात्र है, जब तू विचारि देखेगा, तब मरीचिकाके जलवत् भासैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रपंचके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतका त्यागना यत्न कछु नहीं, तैसे मिथ्या संसारके त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं, बहुरि इसका निर्णय क्या करिये, जो हैंही नहीं, जैसे बंध्याके पुत्रकी वाणी विचारिये कि सत्य कहता है, अथवा असत्य कहताहै, सो मिथ्या कल्पना है, वंध्याका पुत्र है नहीं तो तिसका विचार क्या करिये, तैसे प्रपंच है नहीं, इसका निर्णय क्या करिये, ताते तुम ऐसे करो जैसे मैं कहता हौं, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! ऐसी भावना करु कि न मैं हौं, न जगत् है, जब अहंकार न रहा तब कलना कहां होवै, इसका होनाही अनर्थ है, जब ऐसे विचार उत्पन्न होता है. तब भोगकी वासना क्षय हो जाती है, अरु संतकी संगति होती है, अन्यथा भोगकी वासना नष्ट नहीं होती ॥ हे रामजी ! जबलग इसको अहंता उठती है, अर्थ यह कि दृश्य प्रकृतिसाथ मिलाप है, तबलग द्वैतभ्रम नहीं मिटता, जब अहंका उत्थान मिटि जावै, तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ताही रहै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५१ ॥

शताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः १५२.

निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब अहंताका उत्थान होता है, तब स्वरूपका आवरण होता है, अरु जब अहंता मिटि जावै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, इस संसारका बीज अहंताही है, सो अहंकारही मिथ्या हैं, तिसका कार्य सत्य कैसे होवै, जो प्रपंच मिथ्या हुआ, तो पदार्थ कहांते सत् होवै ॥ हे रामजी ! ऐसा जो ब्रह्म है, तिसकी युक्ति क्या है, जो संकल्पपुरुष भी असत्य है, अरु तिसको संशय भी मिथ्या है,

अरु जिसप्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है; जैसे स्वप्नविषे द्वैतकलना होती है, सो असत् है, तैसे यह जगत् द्वैत भी असत्य है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् इसके अंतर स्थित है, अरु प्रमादकरि बाहिर भासता है, यह अपनाही स्वप्न दृष्ट आता है, जो अंतरकी बाह्य सृष्टि भासती है, ताते यह जगत् सब चिद्रूप है, इतर कछु नहीं, सो चेतनसत्ता आकाशते भी अतिसूक्ष्म है, अरु स्वच्छ है ॥ हे रामजी ! यह जगत् चित्तकरि चेता है, ताते कहूं हुआ नहीं; न किसीका नाश होता है, न उत्पन्न होता है, न किसीका कहूं जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी। जगत्के नाश हुए कछु नाश नहीं होता, काहेते कि हुआ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पहाड नष्ट हुए, जैसे संकल्पपुर नष्ट हुए, जो कछु उपजे नहीं तो क्या नष्ट हुये तैसे यह जगत्है, कछु हुआ नहीं, यह विचारकरिदेखताहैं जो वस्तु अविचारते उपजी होवै सो विचारकरि कैसे रहै, जैसे जो पदार्थ तमते उपजा होवै, सो प्रकाश हुए कैसे रहै, तैसे यह जगत्है, अविचारकरि भासताहै, विचार करनेते नाश हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् संकल्पहीमात्र है, जैसे संकल्पनगर होताहै, तैसे यह संसार है, इसविषे कोऊ पदार्थ सत्य नहीं; ताते रूप अरु इंद्रियां अरु मनके अभावकी चिंतवना करनी, यह संसार ऐसा है, जैसे समुद्रविषे चक्र नहीं है, जलही है, तिस विषे प्रीति भावना करनी अज्ञान है ॥ हे रामजी ! एक ऐसेहैं, जो बाह्यते शांतरूप दृष्ट आते हैं, अरु अंतर उनके क्षोभ होता है, अरु एक ऐसेहैं, जो अंतरते शीतल हैं, बाह्य नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं, जिनके दोनों मिटि जाते हैं, सो मोक्षके भागी होते हैं, तिनके अंतर बाहर एकता होती है, जैसे समुद्रविषे घट भरि राखिये, तिसके अंतर बाहर जल होता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्माको ज्यों त्यों जाना है, तिसको न भय होता है, न शोक होता है, न मोह होता है, केवल स्वच्छरूप शांत आत्माविषे स्थित है, भय तब होता है, जब दूसरा भासता है, सो सर्व द्वैतका तिसके अभाव हो जाता है, अरु शांतरूप होता है ॥ हे रामजी ! सम्यक्दर्शीको जगत् दुःख नहीं देता, अरु असम्यक्दर्शीको दुःख देताहै, जैसे जेवरी होती है,-जो जानता है, तिसको जेवरी भासती है, अरु

जो नहीं जानता तिसको सर्प भासता है, अरु भयको प्राप्त होता है, तैसे जिसको आत्माका साक्षात्कार है, तिसको जगत्कल्पना कोऊ नहीं भासती, चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासताहै, अरु जिसको अधिष्ठानका अज्ञान है, तिसको जगत् द्वैतरूप होकरि भासता है, अरु रागद्वेषविषे जलता है ॥ हे रामजी ! अपर जगत् कोऊ नहीं, इसके अनुभवविषे जगत् कल्पना होतीहै, अज्ञानकरिकै द्वैतरूप हो भासता है, जब अपने स्वभाव सत्ताविषे जागता है, तब सब अपना आप भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपना आपही द्वैतरूप हो भासता है, अरु राग द्वेष उपजता है, जब जागता है, तब सब आत्मरूप हो भासता है, तैसे यह जगत् है, न इस जगत्का कोऊ निमित्त कारण है, न कोऊ उपादान कारण है, जो पदार्थ कारणविना भासै सो असत् जानिये, वास्तव उपजा नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है, तैसे यह जगत् अकारण है, भ्रमकारिकै भासता है, ॥ हे रामजी ! शास्त्रको युक्तिसाथ विचार करिकै देख जो द्वैतभ्रम मिटि जावै, रंचकमात्र भी कछु बना नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता कछु बनी नहीं, अरु मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे यह जगत् भी जान, आत्मा शुद्ध है, अद्वैत है, तिसविषे अहंकृतका फुरणाही दुःख है, अरु दुःखका कारण है, अरु जो स्वरूपका प्रमाद न होवै तो अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं, अरु जो स्वरूप भूला है, तौ अहंकृतादिक दृश्य विषकी वल्ली वढ़ती जाती है, अरु नानाप्रकारके आकारको धारती है, अरु वासना दृढ होती है, जबलग वासना होती है तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त होवै, तबही कल्याण होता है ॥ हे रामजी ! जिस दृश्यकी भावना करताहै; सो दृश्य भी कछु भिन्न नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग चक्र होते हैं, सो इतर कछु नहीं, तैसे अहंकार आदिक जो दृश्य हैं सो हैं, नहीं, जो है नहीं, तिसकी इच्छा करनी यही मूर्खता है, अरु ज्ञानवान्की वासना क्षय हो जाती है, जैसे महा अणु होता है तब आकाशको ग्रहण करता है, जो आकाशवत् बहुत सूक्ष्म होता है तैसे ज्ञानवान्की वासना सूक्ष्म होती है, वह वासना उसके बंधनका कारण नहीं होती, काहेते जो संसारकी सत्यता हृदय-

विषे नहीं रहती, अरु सत्यता इसकारि नहीं रहती, जो आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु जब आत्माका प्रमाद है, तब अहंता उदय होती है अरु दृश्य भासती है, जैसे नेत्रके खोलनेकारि दृश्यका ग्रहण करता है, जब नेत्र मूंदि लिये, तब दृश्यरूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता उदय होती है, तब दृश्य भी होती है, जब अहंता नष्ट भई, तब संसारका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! अज्ञान किसका नाम है, सो सुन, अहंताका उदय होना, इसीका नाम अज्ञान है, अहंताकरिकै बंध है, अहंताते रहित मोक्ष है, आगे जो इच्छा होवै सो करहु ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं, इनविषे अहंता करनी मूर्खता है, अरु ज्ञानवान् अहंताको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारके इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक नहीं करता, जैसे आकाशविषे बादल हुए तौ भी ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानी ज्योंका त्यों है, इनविषे अहंकार नहीं, ताते सुखरूप है ॥ हे रामजी ! रूप दृश्य अरु इंद्रियां अरु मन उसके जाते रहते हैं, जैसे वंध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती, तैसे ज्ञानीके रूप अवलोकन नमस्कार नष्ट हो गये हैं, काहेते जो सर्व ब्रह्म तिसको भासता है, द्वैतभावना नष्ट हो गई है, अरु संसारका बीज अहंता ज्ञनीविषे दृढ है ॥ हे रामजी ! अहंताकरिकै इसकी बुद्धि बुरी हो गई है, अर्थ यह कि स्थूल हो गई है, ताते दुःख पाता है, इस दुःखके नाशका उपाय कहता हौं तू सुन, कि संतजनके वचनोंविषे भावना करनी, अरु विचार करिकै हृदय विषे धारणी, इसकारि अहंतारूपी दुःख नष्ट हो जाता है, अरु संतके वचनोंका निषेध करना इसको मुक्तिफलके नाश करनेहारा है, अरु अहंतारूपी वैतालके उपजानेहारा है, ताते संतकी शरणको प्राप्त होहु, अहंताको दूर करहु, इसविषे खेद कछु नहीं, यह अपने आधीन है, अपनाअभाव चिंतवना इसविषे क्या खेद है ॥ हे रामजी ! संतकी संगतिद्वारा इसको बहुत सुगम होता है, जो ज्ञानवान् होवैं, इनकी पृथक् पृथक् सेवा करनी, अरु बुद्धिको बढावनी, तिनके वाक्य श्रवण करिकै वचनोंको इकट्ठा करना, अरु विचार करिकै बुद्धिको तीक्ष्ण करनी, बुद्धि जब तीक्ष्ण होवैगी तब अहंतारूपी

विषकी वल्लीका नाश करैगी, यह विचार करिये कि मैं कौन हौं, यह जगत् क्या है, जब ऐसा विचार करैगा संत अरु शास्त्रोंके वचनोंकरि निर्णय कियेते सत् है सो सत् होता है, अरु असत् है, सो असत् हो जाता है, सत् जानकरि आत्माकी भावना करनी, अरु असत् जगत् मृगतृष्णाके जलवत् जानिकरि भावना त्यागनी, जिनको सुख जानकरि पानेकी भावना करता था, सो दुःखदाई भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल जानकरि मृग दौडता है, तौ दुःख पाता है, अधिष्ठानके अज्ञानकरिकै, तैसे अधिष्ठान सबका आत्मतत्त्व है, सो शुद्धरूप परम शांत परमानंदस्वरूप है, जिसको पायकरि बहुरि दुःखी न होवै ॥ हे रामजी ! इसको बंधनका कारण भोगकी वासना है, सो भोगकरि शांति नहीं होती, जब सन्तकी संगति होती है, तब इसका कल्याण होता है, अनात्माविषे अहंभाव छूटि जाता है, अपर प्रकार शांति नहीं होती ॥ हे रामजी ! बालककी नांई हमारे वचन नहीं, हमारा कहना यथार्थ है काहेते जो स्वरूपका भान हमको स्पष्ट है, जब इसकी अहंता मिटि जावै, तब सुखी होवै, ताते अहंताका नाश करहु, अहंता नाश हुई तब जानिये जो चैत्यकी भावना मिटि जाती है ॥ हे रामजी ! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, अरु ज्ञान तब होता है, जब संतका विचार प्राप्त होवै; विषयते वैराग्य होवै अरु स्वरूपका अभ्यास करै इसीकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनं नाम शताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५२ ॥

शताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः १५३.

शांतिस्थितियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंने अपना अज्ञान नाश नहीं किया, ज्ञानकरिकै तिनने कछु करने योग्य नहीं किया, अज्ञानकरिकै इसको अहंभावना होती है, तब आगे जगत् भासता है अरु लोक परलोककी भावना करता है, इसी वासनाकरि जन्म मरणको पाता

है ॥ हे रामजी ! जबलग संसारका शब्द अर्थ इसके हृदयमें दृढ है तबलग शब्द अर्थके अभावकी चिंतवना करै, जहां इसको जगत् भासता है, तहां ब्रह्मकी भावना करै, जब ब्रह्मभावना करैगा तब संसारके शब्द अर्थते रहित होवैगा, अरु आत्मपद भासैगा ॥ हे रामजी ! इस संसारविषे दो पदार्थ हैं, एक यह लोक, दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं, परलोकका नहीं करते, ताते दुःख पाते हैं, अरु तृष्णा मिटती नहीं, अरु जो विचारवान् पुरुष हैं सो परलोकका उद्यम करते हैं, सो यहांभी शोभा पाते हैं, अरु परलोकविषे भी सुख दुख पाते हैं, अरु दोनों लोकके कष्ट तिनके मिटि जाते हैं, अरु जो इसी लोकका उद्यम करते हैं, तिनको दोनोंही दुःखदायक होते हैं, यहां तृष्णा नहीं मिटती, अरु आगे जायकरि नरक भोगते हैं अरु जिन पुरुषोंने आत्म परलोकका यत्न किया है तिनको वही सिद्ध होता है, अरु सुखी होते हैं, अरु जिनने नहीं यत्न किया सो दुःखी होते हैं, ताते अहंकारसों रहित होना यही आत्मपदकी प्राप्ति है, जबलग इसको परिच्छिन्न अहंकार उपजता है, तबलग दुःखी होता है, अरु नाम इसका जीव है, जो कछु फुरता है, तिसकरि विश्वकी उत्पत्ति होती है, जैसे नेत्रके खोलनेकरि रूप भासता है, अरु नेत्रके मूदनेकरि रूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता फुरती है, तब दृश्य भासती है, अरु जब अहंताका अभाव होवै, तब दृश्यका अभाव हो जाता है, सो अहंता अज्ञानकरि सिद्ध होती है, ज्ञानके उपजेते निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष अपना प्रयत्न करै, अरु साथही सत्संग करै, इसकरि संसारसमुद्र उतर जावेगा, इतर नहीं तरता ॥ हे रामजी ! युक्तिकरिकै जैसे विष भी अमृत हो जाता है तैसे पुरुषार्थकरि सिद्धता प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! इस जीवको दो व्याधि रोग हैं, इस लोकका और पहलोकका तिसकरि जीव दुःख पाते हैं, जिन पुरुषोंने संतसाथ मिलापकरि इसका औषध किया है, सो मुक्तरूप हैं, अरु जिनने औषध नहीं किया, सो पुरुष पंडित हैं, तौ भी दुःख पाते हैं सो औषध क्या है, शम दम करना, अरु संतसंग करना, इन साधनकरि यत्नकरि

जिनने आत्मपद पाया है, सो कल्याणमूर्त्ति हैं ॥ हे रामजी ! चिकित्साका औषध भी यही है, जिनने किया, तिनने किया, अरु जिनने न किया, भोगविषे लंपट रहे, वह मूर्ख तहाँ पडेंगे, जहाँ फेर किसी औषधको न पावैंगे, ताते ॥ हे रामजी ! इन भोगोंका त्याग करहु, अरु आत्मविचारविषे सावधान होहु, यही औषध है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने मन नहीं जीता, सो मूढ है, भोगरूपी चीकडविषे मग्न है, वह आपदाका पात्र है, जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, तैसे आपदा तिसको प्राप्त होती हैं, अरु जिसकी तृष्णा भोगते निवृत्त भई है, अरु वैराग्य उपजा है; सो मुक्ति योगको प्राप्त होता है, जैसे जीनेकी आदि बालक अवस्था है, तैसे निर्वाण पदकी आदि वैराग्य है ॥ हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है, भ्रमकरि भासता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है अरु संकल्प नगर भ्रममात्र होता है, अरु मृगतृष्णाका जल भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है, संसारका बीज अहंता है, जब अहंता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं, ताते यही चिंतवना कर कि मैं नहीं, जब यही भावना करैगा तब शेष जो रहैगा, सो तेरा शांतरूप है, जिसविषे आकाश भी शून्य है; केवल आत्मत्वमात्र है, अहंके उत्थानते रहित है, अरु जड अजड है, अरु जडताका अभाव है, ताते अजड है, केवल ज्ञानमात्र है, अरु विश्व तिसविषे ऐसे है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, अरु जैसे पवनविषे स्पंद होता है, अरु आकाशविषे जैसे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, जो कछु आत्माते इतर होता, तौ प्रलयविषे नाश हो जाता, सो प्रलयकालविषे भी रहता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास सदा रहता है, तैसे आत्माविषे विश्वका चमत्कार रहता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है, तैसे यह जाग्रत्सृष्टि भी अनुभवरूप है, सो आत्मा अंतर बाहरते रहितहै, अरु शुद्ध है, अद्वैत है, अजर है, अमर है, चैत्यते रहित चेतन है, अरु सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान वही है, फुरणेकरिकै दूसरा भासता है, अरु फुरणा अफुरणा वही है, जैसे चलना ठहरना दोनों पवनके रूप हैं, जब चलता

हैं, तब भासता है, जब ठहरता है, तब नहीं भासता, तैसे जब चित्त-शक्ति फुरती है, तब विश्वरूप होकरि भासती है, जब अफुर होती है, तब केवलमात्रपद रहता है, सो निराभास है, अविनाशी अरु निर्विकल्प है, अरु सबका अपना आप है, अरु सत् असत् जड चेतन आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठान सत्ताविषे फुरते हैं, इतर कछु नहीं ताते उसी अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, जो परमार्थसत्ता आत्म-तत्त्व अपने स्वभावविषे स्थित है, अहं त्वंते रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोग-वासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शांतिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रि-पंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५३ ॥

शताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः १५५.

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिनको दुःख सुख चलावते हैं, इंद्रियके इष्टविषे सुखी होते हैं, अरु अनिष्टविषे दुःखी होते हैं, राग द्वेषके आधीन वर्त्तते हैं, तिनको ऐसे जान कि नष्ट हुए हैं, जिनका पुरुष-प्रयत्न नष्ट हुआ है, सो वारंवार जन्मको पावैंगे, अरु जिनको सुख दुःख नहीं चलावते, तिनको अविनाशी जान, वह जन्ममरणके फांसते मुक्त हुए हैं तिनको शास्त्रका उपदेश नहीं है ॥ हे रामजी ! राग द्वेष तब फुरता है, जब मनविषे इच्छा होती है, अरु इच्छा तब होती है, जब संसारकी सत्यता दृढ होती है, जिसको असत्य जानता है, तिसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती, अरु इच्छा भी नहीं होती, अरु जिसको सत्य जानता है, तिसविषे बुद्धि दौड़ती है ॥ हे रामजी ! अज्ञानीको संसार सत्य भासता है तिसकरि दुःख पाता है, जब शांतपदको यत्न करै, तब दुःखते मुक्त होवै, शांतपद कैसा है, जिसविषे अहं त्वं अरु जगत् ब्रह्म यह शब्द कोऊ नहीं, केवल चिन्मात्र आकाशरूप है, तिसविषे अहं त्वं जगत् ब्रह्म शब्द कैसे होवै, यह शब्द सब विचारके निमित्त कहे हैं, वास्तवते शब्द कोऊ नहीं, अद्वैत चैत्यते रहित चिन्मात्र है, जब

सर्व शब्दका बोध किया, तब शेष शांतपद रहता है, अभावते नहीं, इसीते आत्मत्वमात्र कहा है, अरु जगत् फुरणेकरि उसीविषे भासता है, तिस जगत्‌विषे जहाँ ज्ञप्ति जाती है, तिसका ज्ञान इसको होता है॥ हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है, अरु एक ज्ञप्तिज्ञान है, अधिष्ठान-ज्ञान सर्वज्ञ है, सो ईश्वरको है, अरु ज्ञप्तिज्ञान जीवको है, एक लिंगशरीरका जिसको अभिमान है, सो जीव है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुँचती है, तिसको जानता है, जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोये होवैं, एकको स्वप्न आया तिस-विषे मेघ गर्जते हैं, अरु दूसरा सोया है तिसको मेघका शब्द नहीं सुन पडता; काहेते जो ज्ञप्ति उसकेविषे नहीं आते, परंतु मेघ तो उसके स्वप्नमें है, जैसे सिद्ध विचरते हैं, अरु इसको दृष्ट नहीं आते, काहेते जो इसकी प्राप्ति नहीं जाती, अरु सब सृष्टि बसती है, तिसका ज्ञान ईश्वरको है, सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है, कछु बनी नहीं, भ्रमकरिकै भासती है, जैसे बादलविषे हस्ती घोड़ा मनुष्य आदिक विकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, तैसे आत्माके अज्ञानकरि यह सृष्टि नानाप्रकारकी भासती है॥ हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो आत्माविषे अहंका उत्थान होता है कि, मैं हौं, ऐसे जानता है, अरु वर्णाश्रम अपनेको मानता है, अरु विचारकरि देखिये तौ अहं कछु वस्तु नहीं सिद्ध होती, अरु अहं अहं फुरती है, यह आश्चर्य है, जो भूत कहांते उठा है, शुद्ध आत्मब्रह्मविषे यह कैसे हुआ है, अनहोते अहंकारने तुमको मोहित किया है, इसके त्यागनेविषे तौ यत्न कछु नहीं, इसका त्याग करहु॥ हे रामजी! यह संकल्प मिथ्या उठा है, जब अहंकारका उत्थान होता है, तब जगत् होता है, जब अहंता मिटि जावै, तब जगत्‌का भी अभाव हो जाता है, काहेते कि, बना कछु नहीं, भ्रममात्र है, जैसे संकल्प नगर भ्रममात्र है, अरु स्वप्नसृष्टि भ्रममात्र है, तैसे यह विश्व भी भ्रममात्र है, कछु बना नहीं, अरु आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे पवनके दो रूप हैं, चलता है, तौ भी पवन है, ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व भी आत्मस्वरूप है, जैसे पवन चलता है, तब भासता है, अरु ठहरि

जाता है, तब नहीं भासता, तैसे चित्त चैत्यशक्तिका चमत्कार है, जब फुरता है, तब विश्व भासता है, तौ भी चिद्घन है, जब ठहरि जाता है, तब विश्व नहीं भासता, परंतु आत्मा सदा एकरस है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो इतर कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माविषे विश्व इतर कछु हुआ नहीं आत्मस्वरूप है, ज्ञप्ति भी ब्रह्म है, अरु ज्ञप्तिविषे फुरा विश्व भी ब्रह्म है, विधिनिषेध अरु हर्ष शोक किसका करिये, सर्व वही है ॥ हे रामजी ! संकल्पको स्थित करिकै देख जो सब तेराही स्वरूप है, जैसे पुरुष शयन करता है, उसको स्वप्नसृष्टि भासती है, जब जागता है, तब देखता है, सब मेराही स्वरूप है तैसे जाग्रत् विश्व भी तेरा स्वरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे चितेरा काष्ठविषे कल्पता है, कि एती पुतलियां निकसैंगी, अरु जैसे मृत्तिकाविषे कुंभार घटादिक कल्पता है, कि एते पात्र बनैंगे, काष्ठ मृत्तिकाविषे तौ कछु नहीं ज्योंका त्यों काष्ठ है, अरु ज्योंकी त्यों मृत्तिका है, परंतु उनके मनविषे आकारकी कल्पना है, तैसे आत्माविषे संसाररूपी पुतलियां मन कल्पता है, जब मनका संकल्प निवृत्त हो जावै, तब ज्योंका त्यों आत्मपद भासै, जैसे तरंग जलरूप हैं, जिसको जलका ज्ञान है, सो तरंग भी जलरूप जानता है, अरु जिसको जलका ज्ञान नहीं, सो भिन्न भिन्न तरंगके आकार देखता है, तैसे जब निःसंकल्प होकरि स्वरूपको देखै, तब फुरणेविषे भी आत्मसत्ता भासैगी, अहं त्वं आदिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूपही है, तौ भ्रम कैसे होवै, अरु किस्को होवै, सब विश्व आत्मस्वरूप है, सो आत्मा निरालंब है, आलंबरूप जो चैत्य है, अहंकार, तिसते रहित है, केवल आकाशरूप है, जब तू तिसविषे स्थित होवैगा, तब नानाप्रकारकी भावना मिटि जावैगी, नानाप्रकारकी भावना जगत्विषे फुरती है, अरु जगत्का बीज अहंता है, जब अहंता नाश होवै, तब जगत्का भी अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अहंताका फुरणाही बंधन है, अरु निरहंकार होना मोक्ष है, एक चित्तबोध है, अरु एक ब्रह्मबोध है, चित्तबोध जगत् है, अरु ब्रह्मबोध मोक्ष है, चित्तबोध अहंताका नाम है,

जबलग चित्तबोध फुरता है, तबलग संसार है, अरु जब चित्तका अभाव होवै, तब मुक्त होवै, इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोध है ॥ हे रामजी ! जैसे पवन फुरताहै, तैसे ब्रह्मविषे चित्तबोध है, अरु जैसे पवन ठहरि जाता है, तैसे चित्तका ठहरना ब्रह्मबोध है, जैसे फुर अफुर दोनों पवनही हैं, तैसे चित्तबोध है, ब्रह्मबोध ब्रह्मही है इतर कछु नहीं, हमको तौ ब्रह्मही भासता है, चेतनमात्र शांतरूप है. अरु अपने स्वभावविषे स्थित है. जिसको अधिष्ठानका ज्ञान होता है, तिसको निवृत्त भी वही रूप भासता है, अरु जिसको अधिष्ठानका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल भासते हैं, अरु जिसको बीजका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे रामजी ! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है, ताते सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकारका विश्व भासता है, जन्म अरु मृत्यु भासते हैं ॥ हे रामजी ! सब शब्द आत्मतत्त्वविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, निराकार निर्विकार है, अरु शुद्ध है, सबका अपना आप है, ताते सब विश्व आकाशरूप है, इतर कछु हुआ नहीं, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है; अरु चित्त जो फुरता है, तिसके अनुभव करणेहारी चेतनसत्ता है, सो ब्रह्म है, अरु तेरा स्वरूप भी वही है, ताते अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप हैं, संशयको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुमको कहा है, द्वैत अद्वैत सब उपदेशमात्र हैं, एक चित्तकी वृत्तिको स्थित करिकै देख, सब ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, निषेध किसका करिये ॥ हे रामजी ! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं, एक मोक्षरूप है, एक बंधरूप है, जो वृत्ति स्वरूपकी ओर फुरती है, सो मोक्षरूप है, जो दृश्यकी ओर फुरती है, सो बंधरूप है, जो तुमको शुद्ध भासती है, सोई करहु, अरु जो द्रष्टा है, सो दृश्य नहीं होता, अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा नहीं होता, आत्मा तौ अद्वैत है, ताते द्रष्टाविषे दृश्य पदार्थ कोऊ नहीं, तुम क्यों दृश्यकी ओर फुरते हौ, अनहोती दृश्यको क्यों ग्रहण करते हौ, अरु द्रष्टा भी तेरा नाम दृश्यकरि होता है, जब दृश्यका अभाव जाना, तब

अवाच्य पद है, तिसको वाणीकरि कछु कहा नहीं जाता ॥ हे रामजी ! जैसे अंगी अरु अंगवालेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, कोऊ जगत् कहै, अथवा ब्रह्म कहै, तैसे एकही पर्याय है, जगतही ब्रह्म है, ब्रह्मही जगत् है, ताते आत्मपदविषे स्थित होहु, भ्रमकरिकै आपको कछु अपर मानते हैं, तिसको त्यागिकरि ब्रह्महीकी भावना करहु, अरु आपको मनुष्य कदाचित् नहीं जानना, जो आपको मनुष्य जानैगा तौ यह निश्चय अधोगतिको प्राप्त करनेहाराहै, ताते अधोगतिको मत प्राप्त होहु, अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५४ ॥

शताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः १५५.
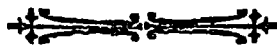
परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशते देशांतरको वृत्ति जब जाती है, तिसके मध्य जो संवित्तत्त्व है, तिसको जो अनुभव करता है, सो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जैसी चेष्टा आवै तैसी करहु, देख, सुन, स्पर्श कर, गंध ले, बोल, चाल, हँसहु, सब क्रिया करहु, परंतु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, यह जाग्रतविषे सुषुप्ति है, चेष्टा शुभ करहु, अरु अंतरते पत्थरकी शिलावत् फुरणेते रहित होहु ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप निराभासहै, भास जो दृश्य है, तिसते रहित है, अरु निर्मल शांतरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है, तैसे होहु, यह दृश्य अज्ञानकरिकै भासती है, तमरूप है, अरु आत्मा सदा प्रकाशरूप है, तिस प्रकाशविषे अज्ञानीको तम भासती है, जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है, अरु उलूकको नहीं भासता है, अज्ञानकरिकै तमही भासता है, तैसे अज्ञानीको अविद्यारूप जगत् भासता है, सो अविचारते सिद्ध है, अविद्याक-

रिकै इसकी विपर्ययदृष्टि हुई है, इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है, जो जायते अस्ति वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति इन षट् विकारोंते रहित है, ताते निर्विकार है, तिसको विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार निराकार है, तिसको साकार जानताहै, आत्माआनंदरूप है, तिसको दुःखी जानता है, आत्मा शांतरूप है, तिसको अशांत जानता है, आत्मा महत् है, तिसको लघु जानता है, आत्मा पुरातन है, तिसको उपजा मानता है, आत्मा सर्वव्यापक है, तिसको परिच्छिन्न मानता है, आत्मा-नित्य है, तिसको अनित्य देखता है, आत्मा चैत्यते रहित शुद्ध चिन्मात्र है, यह चैत्यसंयुक्त देखता है, आत्मा चेतन है, यह जड देखता है. आत्मा अहंते रहित सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, यह अनात्म अहंकारविषे अहंप्रतीति करता है, आत्माविषे अनात्मभावना करता है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना करता है, आत्मा निरवयव है, तिसको अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है, तिसको सक्रिय देखताहै, आत्मा निरंश है, तिसको अंशांशीभावकारि देखता है, आत्मा [illegible]मय है, तिसको रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है, तिसको कलंकसहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, तिसको परोक्ष जानता है, अरु जो परोक्षहै, तिसको प्रत्यक्ष जानताहै॥ हे रामजी! इत्यादिक जो विकारहैं, सो आत्माविषे अज्ञानकरिकै देखताहै, आत्मा शुद्ध है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु स्थूलते स्थूल है, अरु बड़ेते बडाहै, लघुते लघुभी है, सर्वशब्द अरु अर्थका अधिष्ठानहै ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बाहै, तिसविषे जगत्रूपी रत्न हैं, पर्वत अरु वनसहित भी जगत् दृष्ट आताहै, परंतु आत्माके निकट रुईके लोम जैसा लघुहै, आत्मरूपी वनहै, तिसविषे संसाररूपी मंजरी उपजी है, सो कैसी मंजरी है, पांचों तत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु आकाश इसके पत्र हैं, तिनकरिकै शोभती है, सो अहंताके उदय हुए उदय होती है, अरु अहंताके नाश हुए नाश होती है, अरु आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग हैं, सो उठते भी हैं, अरु लीन भी हो-जाते हैं, अरु आत्माकाशविषे संसार भ्रममात्र है, आकाश वृक्षकी नांई है, आत्माके प्रमादकरि भासताहै॥ हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमाहै तिसकी

किरणैं जगत् है, अरु नेति शक्ति नृत्य करनेहारी है, सो तीनों अविचार-सिद्ध हैं, विचार कियेते शांत हो जाते हैं, जैसे दीपक हाथविषे लेकारि अंधकार देखिये तौ दृष्ट नहीं आता तैसे विचारकारि देखिये तौ जगत्का अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध आत्माही प्रत्यक्ष भासता है ॥ हे रामजी! जगत् कछु बना नहीं, जैसे किसीने बरफ कही, किसीने शीतलता कही तिसविषे भेद कछुनहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अरु भेद जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे तंतु अरु पटविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछुनहीं॥हे रामजी! आत्मरूपी रंगविषे जगत्रूपी चित्र पुतलियां हैं, अरु आत्मारूपी समुद्रविषेजगत्रूपीतरंग हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माअरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, आत्मरूपही है, आत्माते इतर कछु बना नहीं, जिसकारि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु जिसकारि सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं, जो अनुभवरूप सदाअप्रौढ है, तिसको प्रौढ जानना यही मूर्खता है॥ हे रामजी! यह विश्व तेराही स्वरूप है; तू जागिकारि देख तूही खडा है, अरु स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्यक् ज्योति अपने आपविषे स्थित हैं ॥इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥१५५॥

शताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः १५६.

इच्छानिषेधयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनों संसार हैं, सो ज्ञानवान्को भ्रममात्र भासते हैं, वास्तव कछु नहीं मिथ्या हैं, जैसे जलविषे लहरी तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! यह शुद्ध परमात्माकाचमत्कार है, अरुआत्मा दृश्यते रहित है, शुद्ध है, चिन्मात्र है, निर्मल है, अद्वैत है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, हमको तौ सदा वही भासता है, जगत् कछु नहीं भासता, जैसे कोऊ आकाशविषे नगर कल्पता, अरु सब रचना तिसविषे देखताहै सो

उसके हृदयविषे दृढ होजाती है, अरु जो संकल्पकी सृष्टिको मिथ्या जानता है, तिसको शून्याकाशही भासता है, तैसे यह विश्व मूर्खके हृदयविषे दृढ भया है, अरु ज्ञानवान्‌को आत्मस्वरूपही भासता है, जैसे मट्टीके खिलौनोंकी सेना होती है, हस्ती घोडाआदिक दृष्ट आतेहैं, तिसविषे वह रागद्वेष नहीं करता जिसको माटीका ज्ञान है, अरु बालक माटीके ज्ञानते रहित हैं, तिसविषे रागद्वेष करते हैं, तैसे ज्ञानवान् इस जगत्‌विषे रागद्वेष नहीं करते, अरु अज्ञानी रागद्वेष करतेहैं, जैसेखिलौनेविषे सारभूत मृत्तिका होतीहै, तैसे इस जगत्‌विषे सारभूत चेतन आत्माहै, जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्माका निवृत्त है, मिथ्याही भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र होवै, तिसविषे सुखके निमित्त इच्छा करनी यही मूर्खता है ॥ हे रामजी ! हमको तौ इच्छा कछु नहीं काहेते जो हमको जगत् मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, ताते इच्छा किसकी करैं, जिसविषे सत्य प्रतीत होती है, तिसविषे इच्छा भी होती है, जो सत्यही न भासै तौ इच्छा कैसे करि होवै ॥ हे रामजी ! इच्छा बंधन है, अरु इच्छाते रहित होना इसीका नाम मुक्ति है, ताते ज्ञानवान्‌को इच्छा कछु नहीं रहती, अनिच्छितही चेष्टा होतीहै, जैसे सूखा बांस होता है, तिसके अंतर बाहर शून्य होता है, संवेदन उसको कछु नहीं फुरती, तैसे ज्ञानवान्‌के अंतःकरणविषे अरु बाह्यकारणविषे भी शांति होती है, अंतःकरणविषे संकल्प कोऊ नहीं उठता, अरु बाह्यविषे भी उपाधि कोऊ नहीं, निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषके अंतरते संसारका रस सूखि गया है, सो संसारसमुद्रते पार हुआ है, ऐसे जान, अरु जिसका रस नहीं सूखि गया, तिसको इष्ट अनिष्टकरिकै, रागद्वेष फुरते हैं, तब संसारबंधनविषे जान ॥ हे रामजी ! मैं तुझको ऐसी समाधि कहता हौं जो सुखेनही प्राप्त होवै, अरु जिसकरि मुक्ति होवै सो श्रवण करु, सर्व इच्छाते रहित होना यही परम समाधि है, जिस पुरुषको इच्छा फुरती है, तिसको उपदेश भी नहीं लगता, जैसे आरसीके ऊपर मोती नहीं ठहरता, तैसे हृदयपर उपदेश नहीं ठहरता, अरु इसको इच्छाही दीन करती है, अरु इच्छाते रहित हुआ तब शांत-

रूप होता है, बहुरि इसको शांतिके निमित्त कर्त्तव्य कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी! हम तौ निरिच्छित हैं, हमको अंतर बाहर शांति है, हमको कर्तव्य करने योग्य कछु नहीं, जो कछु प्रारब्ध तिसकरि चेष्टा होती है, रागद्वेषते रहित बोलते हैं, परंतु बाँसुरीकी नाईं जैसे बाँसुरी बोलती है, अहंकारते रहित, तैसे ज्ञानवान् अहंकारते रहित हैं, अरु स्वादको ग्रहण करते हैं, परंतु कडछीकी नाईं जैसे कडछीको सर्व व्यंजनविषे पाता है, अरु तिसी द्वारा सब निकास पाते हैं, परंतु उसको राग द्वेष कछु नहीं फुरता, जो यह होवै, यह न होवै, तैसे ज्ञानवान् अनिच्छितही स्वादको लेता है, अरु गंध भी पवनकी नाईं, लेता है जैसे पवन भली बुरी गंधको लेता है, परंतु रागद्वेषते रहित है, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकी संवेदनते रहित गंधको लेता है, इसीप्रकार सर्व इंद्रियोंकी चेष्टा करता है, परंतु इच्छाते रहित होता है, इसीते परम सुखरूप है, अरु जिसकी चेष्टा इच्छासहित है, सो परम दुःखी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषको भोग रस नहीं देते सो सुखी है, अरु जिसको रस देते हैं, रागकरि तृष्णा बढती जाती है, तिसको ऐसे जान जैसे किसीके मस्तक ऊपर अग्नि लगै, तिसके ऊपर बुझानेके निमित्त तृण डारै, तब वह बुझती नहीं, बढ़ती जाती है, तैसे विषयकी इच्छा भोगनेकरि तृप्त नहीं होनेकी, सो इच्छाही बंधनहै इच्छाकी निवृत्तिका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी! संसाररूपी विषका वृक्ष है, तिसका बीज इच्छाहै जिसकी इच्छा बढ़तीजातीहै, तिसका संसार बढता जाता है, तिसकरि वारंवार जन्म अरु मृतक होता है ॥ हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकविषे भी नहीं, जैसा सुख इच्छाकी निवृत्तिविषे है, ऐसा दुःख नरकविषे भी नहीं, जैसा दुःख इच्छाके उपजानेविषे है, इच्छाके नाशका नाम मोक्ष है, अरु इच्छाके उपजनेका नाम बंधन है, जिस पुरुषको इच्छा उत्पन्न होती है, सो दुःखको पाता है, संसाररूपी गर्त्त (खात) विषे पड़ता है, अरु इच्छारूपी विषकी वल्लीहै, तिसकोसमतारूपी अग्निकरि जलावहु, सम्यक्दर्शनकरि जलाए विना बड़े दुःखको प्राप्त करैगी, अरु बढ़ि जावैगी ॥ हे रामजी! जिस पुरुषने इच्छा दूर करनेका उपाय नहीं किया, तिसने अंधे कूपविषे प्रवेश किया है, शास्त्रका श्रवण

भी इसी निमित्त है, जो किसीप्रकार इच्छा निवृत्त होवै, अरु तप दान यज्ञ भी इसी निमित्त है,जो किसी प्रकार इच्छानिवृत्त होवै, जो एकही वार निवृत्त करि न सकिये, तौ क्षण क्षण निवृत्त करिये ॥ हे रामजी ! यह विषकी वल्ली बढी हुई दुःख देती है, जो पुरुष शास्त्रोंको पढ़ता भी है, अरु इच्छाको बढावता भी है, सो दीपक हाथ लेकरि कूपविषे गिरताहै अरु इच्छारूपी कंटिआरीका बूटा है, जिसमें सर्वदा कंटक लगे रहते हैं तिसविषे सुख कदाचित् नहीं, जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करै, अरु सुखी हुआ चाहै तौ नहीं होता, तैसे असारकरि कोऊ सुख पाया चाहै तौ कदाचित् नहीं होवैगा, जिसकरि इच्छा निवृत्त होवै सोई उपाय किया चाहिये, इच्छाके निर्वृत्त होनेविषे सुख है, अरु इच्छाके उत्पन्न होनेविषे बड़ा दुःख है ॥ हे रामजी! जो अनिच्छितपदविषे स्थित हुआ है,तिसको जब एक क्षण भी इच्छा उपजती है, तब रुदन करताहै,जैसे चोरते लूटा रुदन करता है, तैसे वह रुदन अरु पश्चात्ताप करता है,अरु तिसके नाश करनेका उपाय करता है ॥ हे रामजी ! इच्छारूपी क्षेत्र है, अरु रागद्वेषरूपी तिसविषे विषकी वल्ली है, जो पुरुष तिसके दूर करनेका उपाय नहीं करता, सो मनुष्यविषे पशु है, यह इच्छारूपी विषका वृक्ष बढा हुआ नाशका कारण है, ताते तुम इसका नाश करहु ॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५६ ॥

शताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः १५७.

जगदुपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इच्छारूपी विषयके नाश करनेका उपाय तुमको आगे भी कहा है, अब बहुरि स्पष्ट करि कहता हौं, तू श्रवण करु, इच्छाके त्याग करने योग्य संसार है, सो मिथ्या है, आत्मसत्ता भिन्न करिये तौ मिथ्या है, जो मिथ्या हुआ तौ तिसविषे इच्छा करनी क्या है, अरु जो आत्माकी ओर देखिये तौ सर्व आत्माही है,

जब सर्व आत्माही हुआ तौ इच्छा करनी क्याहै, इच्छा दूसरेविषे होती है, सो दूसरा कछु है नहीं. इच्छा किसकी करिये ॥ हे रामजी ! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है, द्रष्टा कहिये इंद्रियां, दृश्य कहिये विषय सो ग्राहक इंद्रियां हैं, अरु गाह्य विषय हैं; अविचारसिद्ध हैं, भ्रमकरिकै भासतेहैं, आत्माविषे कोऊ नहीं, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै रूप भासते हैं, यह ग्राह्य ग्राहक भ्रमकरिकै भासते हैं, अरु सुखदुःख भी इनहींकरि होता है, आत्माविषे कोऊ नहीं, भ्रमकरि भासता है ॥ हे रामजी ! द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनों ब्रह्मविषे कल्पित हैं, वास्तवते ब्रह्महीहै, चिरकाल हम खोजि रहे हैं, परंतु द्वैत हमको कछु दृष्ट नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है, अरु निराभास है, फुरणेते रहित ज्ञानरूप है, आकाशते भी सूक्ष्म है, अरु सर्व जगत्भी हुई है, सो मैं हौं ॥ हे रामजी ! जैसे जलविषे तरंग होते हैं, अरु आकाशविषे शून्यता है, अरु जैसे पवनविषे चलना है, अग्निविषे उष्णता है, सो सबही अनन्यरूप हैं, तैसेआत्माविषे जगत्अनन्यरूप है, आत्माही विश्व आकार होकरि भासता है, अपर कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी ! जो हुआ है, तौ इच्छा किसकी करता है, यह जो मैं तुझको मोक्ष उपाय कहता हौं, तू आपको क्यों बंधन करता है, बडा बंधन इच्छाहीहै, जिस पुरुषको इच्छा बढ़ती जाती है, सो जगत्रूपी वनका मृग है, तिसमृग अरु पशुका संग कदाचित् नहीं करना, मूर्खकासंगबुद्धिको विपर्ययकरि डारता है, ताते विपर्ययबुद्धिको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु विश्व भी सब तेरा अनुभवरूप है,अरु इसकासुखदुःख विद्यमानभी देखता है, परंतु आत्माविषे भ्रममात्र भासता है कछु है नहीं, विश्व भी आनंदरूप शिवही है, तू विचारि देख; दूसरा तौ कछु है नहीं; जैसेमृत्तिकाविषे नानाप्रकारकी सैन्य हस्ती घोडा आदिक होती है, परंतु मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, तैसे सब विश्व आत्मरूप है इतर कछु नहीं, तिसविषे कारण कार्यभाव देखनाभी मूर्खता है, जो दूसरी वस्तुही नहीं, तौ कारण कार्य किसका होवे, बहुरि इच्छा किसकी करता है, जिस संसारकी इच्छा करता है, सो है नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास

होता है, अरु सीपीविषे रूपा भासता है, सो दूसरी कछु वस्तु नहीं, अधिष्ठान किरणैं अरु सीपी हैं, तैसे अधिष्ठानरूप परमार्थसत्ताही है, न सुख है, न दुःख है, केवल यह जगत् शिवरूपहै, तिस शिव चिन्मात्रते मृत्तिकाकी सेनावत्, अन्य कछु नहीं तौ इच्छा कैसे उदय होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो सर्व ब्रह्मही है तौ इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं, इच्छा उदय होवै, भावै, न होवै बहुरि तुम कैसे कहत हौ कि इच्छाका त्याग करहु ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकी ज्ञप्ति जागी है, अर्थ यह कि, ज्ञानरूप आत्माविषे जागा है, तिसको सर्व ब्रह्मही है, इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, इच्छा भी ब्रह्म है, अनिच्छा भी ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों ज्ञानसंवित् होती है, त्यों त्यों वासना क्षय होती है, जैसे सूर्यके उदय भए रात्रि नष्ट हो जाती है, तैसे ज्ञानके उपजेते वासना नहीं रहती ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को ग्रहण त्यागकी इच्छा कर्तव्य नहीं, इच्छा अनिच्छा तिसको तुल्य हैं, यद्यपि ऐसेही है, परंतु स्वाभाविकही वासना तिसको नहीं रहती; जैसे सूर्यके उदय हुए अन्धकार नहीं रहता, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए द्वैतवासना नहीं रहती; ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है, त्यों त्यों द्वैत नाश हो जाता है, द्वैतके निवृत्त होनेकरि वासना भी निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों स्वरूपानंद इसको प्राप्त होता है, त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है, जब संसार विरस हो गया, तब वासना किसकी करै ॥ हे रामजी ! अमृतविषे इसको विषकी भावना भई थी, तब अमृत विष भासता था, जब विषकी भावनाका त्याग किया, तब अमृत तौ आगेही था, सोई हो जाता है, तैसे जो कछु तुझको भासता है, सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है, जब तिस ब्रह्मरूपी अमृतविषे अज्ञानकरिकै जगत्रूपी विषकी भावना हुई, तब दुःखको पाता है, अरु जब संसारकी भावना त्यागी, तब आनंदरूपी है, तिसको करना न करना दोनों तुल्य हैं; यद्यपि ज्ञानवान् विषे इच्छा दृष्ट आती है, तौ भी उसके निश्चयविषे नहीं, उसकी इच्छा भी अनिच्छा है; काहेते जो संसारकी भावना उसके हृदयविषे नहीं, तौ इच्छा किसकी रहै, हे रामजी !

यह संसार है नहीं, हमको तौ आकाशरूप भासता है, जैसे अपरके मनोराज्यका संकल्प तिसविषे आने जानेका खेद कछु नहीं होता, तैसे यह जगत् हमको अपरकी चिंतवनावत् है, जैसे किसी पुरुषने मनोराज्यकरिकै मार्गविषे कोऊ स्थान रचा होवै अरु तिसविषे किंवाड लगाए होवैं, अरु नानाप्रकारका प्रपंच रचा होवै, अरु जो कोऊ अपर पुरुष आता है, तिसको किंवाडविषे अटकावता कोऊ नहीं, अरु न कोऊ किंवाड है, न कोऊ पदार्थ है, उसका शून्यमार्गका निश्चय होता है, तैसे हमको सब प्रपंच शून्यही भासता है, अज्ञानीके हृदयविषे हमारी चेष्टा है, अरु हमको सब ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी ! जिसको जगत्ही न भासै, तिसको इच्छा किसकी होवै, जिसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है तिसको इच्छा भी फुरती है, अरु राग द्वेष भी उठता है, जिसको राग द्वेष उठता है, तब जानिये कि, संसारसत्ता हृदयविषे स्थित है, अरु जिसको नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है, सो मूर्ख है, अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है, जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नविषे पुरुष अपनी मृत्यु देखता है, तैसे जिसको यह जगत् सत् भासता है, सो निद्राविषे सोया है ॥ हे रामजी ! बहुत प्रकारके स्थान मैं देखे हैं, तैसे तिनविषे रोग औषध भी नानाप्रकारके देखे हैं, परंतु इच्छारूपी छुरीके घावका औषध अपर दृष्ट नहीं आया, न जापकरि, न तपकरि, न पाठकरि, न यज्ञ दान तीर्थकरि निवृत्त होता है, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं, तिनकरिकै इच्छारूपी रोग नाश नहीं होता, जब आत्मरूपी औषधकी ओर आवै, तबहीं नाश होता है, अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त हो जाती है, अरु आत्मज्ञानविना अनेक यत्नकरि न जावैगी, जैसे स्वप्नकी वासना जागेविना नहीं जाती, अपर अनेक उपाय करिये तौ भी दूर नहीं होती ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है, त्यों त्यों सुखकी प्राप्ति होती है, अरु ज्यों ज्यों वासनाकी अधिकता है, त्यों त्यों दुःख अधिक है अरु यह आश्चर्य है जो मिथ्या संसार सत्य हो भासता है, जैसे बालकको वृक्षविषे वैताल हो भासता है, तिसकरि भय पाता है

सो हैही नहीं, तैसे मूर्खताकारिकै आत्माविषे संसार कल्पता है, तिसी करि दुःखी होता है ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है ब्रह्मते इतर बना कछु नहीं, भ्रमकारिकै भिन्न भिन्न होय भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जलविषे द्रवता है, सत्यताविषे सत्यताही है, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो न सत् है, न असत् है, अनिर्वाच्य है ॥ हे रामजी ! दूसरा कछु बना नहीं तौ क्या कहिये, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सो सर्वका अपना आप वास्तवरूप है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहंरूप भ्रम मिटि जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमान रूपी अंधकारका अभाव हो जाता है, अरु परम निर्वाण भासता है, तिस विषे तहां एक कहना है न दो कहना है केवल, शांतरूप परम शिव है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जिनने ऐसे निश्चय किया है, तिनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, तो भी मेरे निश्चयविषे यह है, जो इच्छाके त्यागविषे सुख है, जिसकी इच्छा दिनदिन घटती जावै अरु आत्माकी ओरआवै, तिसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, काहेते जो संसार भ्रमकारिकै सिद्ध है, इसहीकी कल्पना जगत्रूप होकरि भासती है, विचार कियेते निकसता कछु नहीं, संसारके उदय होनेकारि आत्माको कछु आनंद नहीं, अरु नाश होनेकारि कछु खेद नहीं होता, काहेते कि, भिन्न कछु नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते विनशते हैं, तौ जलको हर्ष शोक कछु नहीं होता, काहेते कि, जलते इतर नहीं, तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तौ इच्छा क्या अरु अनिच्छा क्या ॥ हेरामजी! आदि जो परमात्मातेचित्त-शक्ति फुरी है, तिसविषे जब अहं ऐसे हुआ, तब स्वरूपका प्रमाद हुआ तब यह चित्तशक्ति मनरूप हुई बहुरि आगे देह इंद्रियां हुईं, अज्ञानकारिकै मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसीप्रकार अपने साथमिथ्या शरीरकोदेखता है, जैसे जल दृढ जडताकारिकै बरफरूप होजाता है, तैसे चित्तसंवित् प्रमादकी दृढताकारिकै मन इंद्रियां देहरूप होती हैं, जैसे कोऊ स्वप्नविषे

अपने मरनेको देखता है, तैसे अपने साथ शरीरको देखता है, जब चित्त-शक्ति नष्ट होती है, तब शरीर कहां अरु मन कहां, यह कोऊ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरिकै शरीरादिकभासतेहैं, तैसे यह जाग्रत् भी जान, जो मिथ्या भ्रमकरिकै उदय हुए हैं, जब अपने स्वरूपकी ओर आवै तब सबही भ्रममिटि जावैं ॥ हे रामजी ! जैसे भ्रमकरिकैआकाशविषेनीलता भासती है तैसे विश्व भी अनहोती भ्रमकरि भासती है, आत्माविषेकछु आरंभ परिणामकरिकै नहीं बना वही स्वरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेदनहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेदनहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जगत् आत्मा अनुभवते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! चेतन आकाश परम शांतरूप है, तिसविषे देह इंद्रियां भ्रमकरिकै भासती हैं, अरु क्रिया काल पदार्थ सब भ्रममात्र हैं, जब आत्मस्वरूपविषे जागकरि देखैगा, तब द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा, कैवल्य अद्वैत आत्माही भासैगा, दृश्यका अभाव हो जावैगा, यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है, जैसे स्वप्नविषे अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु हैं, नहीं तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी भी आकाशरूप है, अरु कंध कोट भी आकाशरूप है, अरु पर्वत भी आकाशरूप हैं, सब प्रपंच आकाशरूप है, जो सर्व आकाशरूप हैं, तौ ग्रहण त्याग किसका होवै, अरु आकाशरूप दिवारकेऊपर संकल्पने मूर्तियां रची हैं, अरु रंग तहां आत्मचैतन्यता है, ताते विश्व संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसी तैसी सृष्टि भासती है, जो कछु बना होता है, तौ अपरका अपर भासता , ताते बना कछु नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा आगे रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! सिद्ध पास एक चूर्ण होता है, तिसकरि जो चाहते हैं, सो करते हैं, पर्वतको आकाश करते हैं, अरु आकाशको पर्वत करते हैं, तैसे मैं तुझको चूर्ण कहता हौं, जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्णकरि फुरता है, तब आत्मरूपी आकाशविषे पर्वत हो भासते हैं, अरु जब चित्तरूपी

सिद्धका संकल्प उलटता है, तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प फुरता है, तब अनुभवविषे पर्वत आदिक पदार्थ भास आते हैं, अरु जब संकल्पते जागताहै, तब स्वप्नके पर्वत आकाशरूप हो जाते है, आकाशही पर्वतरूप हुआ अरु पर्वत आकाशरूप होताहै ॥ हे रामजी! तैसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है, कछु बना नहीं, जैसा संकल्प होताहै तैसा भासताहै अरु जब विश्वके अत्यंत अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासताहै जैसे विश्वका अभ्यास कियाहै, अरु विश्व भासीहै, तैसेआत्माका अभ्यास करिये तौ क्यों न भासै, वह तौ अपना आप है, जब आत्माका अभ्यास करिये तब आत्माही भासता है, विश्वका अभाव हो जाता है, अनेक सृष्टि अपने अपने संकल्पकरि आकाशविषे भासती हैं, जैसा किसीका संकल्प होता है, तैसी सृष्टि उसको भासती है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पवृक्षविषे दृढ संकल्प करता है, तब यथा इच्छित पदार्थ निकसि आते हैं, सो कछु बने नहीं, अरु चितामणि भी परिणामको प्राप्त भई ज्योंकी त्यों पडी है, संकल्पकी दृढताकरि भासि आते हैं, तैसे यह प्रपंचभी आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे रामजी! सिद्धके जो वचन फुरते हैं, सोही संकल्पकी तीव्रता होती है, जोचित्त शुद्ध होताहै, तौ दूसरी सृष्टिको भी जानता है, जो पुरुष वचनसिद्ध होनेके निमित्त सूक्ष्म वासना करता है, अर्थ यह कि, वासनाको रोकता है, सो तिसकरि वचनसिद्धताको पाता है, जैसा संकल्प करता है, तैसा सिद्ध होता है ॥ हे रामजी! जेता यह दृश्यकी ओरते उपरांत होकरि अंतर्मुख होताहै, तेती वचनसिद्धता होती जाती है, भावै वर देवै भावै शाप देवे, वह सिद्ध होताहै ॥ हे रामजी! एक प्रमाण ज्ञान है, जो यह पदार्थ इसप्रकार है, तिसका जो नामरूप है, सो सब आकाशरूप भ्रममात्र है, आत्माविषे अपर कछु नहीं अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगत् रूपी तरंग उठते हैं, सो आत्मरूपी हैं, जिनको ऐसा ज्ञान हुआ है, तिनको इच्छा अरु अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता, तिनको सब आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी! आत्मरूपी फूल है, तिसविषे जगत्रूपी गंध है, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं,

तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, जैसे पत्थरके ऊपर लकीर काढिये सो पत्थरते भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मते जगत् भिन्न नहीं ॥ हे रामजी ! देश काल पृथ्वी आदिक तत्त्व, अरु मैं मेरा सब आत्मरूप है, अरु अविनाशी है, काहेते कि, अजन्मा है, जिनको ऐसे निश्चय हुआ तिनको रागद्वेष नहीं रहता, सब आत्मरूपही भासता है ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशवर्णनं नाम शताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५७ ॥

शताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः १५८.

परमनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरी है तिस संवेदनकरि आगे जगत् भासा है, जैसे किसीके नेत्रविषे एक अंजन डारिकरि आकाशविषे पर्वत उड़ते दिखाते हैं, तैसे अनहोता जगत्‌फुरणेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मस्वर्गविषे अरु चित्तस्वर्गविषे भेद कछु नहीं. परमार्थते एकहीहै, दृष्टि सृष्टि अरु वस्तु पर्यायहैं, अरु नानातत्त्व भी इसकी भावनाकरि भासते हैं, आत्माविषे दूसरा कछु नहीं बना, चित्त अरु चैत्य आत्माते इतर नहीं, चित्तही चैत्य होकरि भासता है, ज्ञानकरिकै इनकी एकता होती है, इसीते दृश्य भी द्रष्टारूप है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवित्‌ही दृश्यरूप होकरि स्थित होती है, अरु जागेते एक हो जाती है, सो एकता भी तब होती है, जब वही रूप है, ताते तू अबभी वही जान, दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटी सब वहीरूप है ॥ हे रामजी ! जो सजाती है, तिसकी एकता होती है, विजातीकी एकता नहीं होती, जैसे जलविषे जलकी एकता होती है, तैसे बोधकरि सबकी एकता होती है, ताते दृश्य भी वहीरूप है, जो एकता हो जाती है, जो दृश्य कछु आत्माते भिन्न होती तौ एकता न होती ॥ हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं, जिसते यह सर्व है, अरु जो वह सर्व है, तिस सर्वात्माको नमस्कार है, बहुरि कैसा है आत्मा, सर्वव्यापी है, अरु सर्वगत है, सर्वको धारि रहा है, अरु सर्व वही है, ऐसे सर्वात्माको मेरा नमस्कार है, जो कछु भासता है, सब

वही है, जैसे जलविषे गलावनेकी शक्ति है अरु काष्ठविषे नहीं, तैसे ब्रह्मविषे भावना स्वभाव है, अपरविषे नहीं, जो ब्रह्मभावनाते सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी ! जड पदार्थ जो भासते सो भी ब्रह्म हैं, काहेते जो भासता है सो ब्रह्मही है, जो जड़ होवै तौ भासे नहीं, जड़ भी चेतनता शुद्ध संवित्‌विषे है, उसविषे शब्द चेतन है, इतर कछु नहीं भासता है, जैसे शुद्ध संवित्‌विषे स्वप्न फुरता है, तिसविषे जड़ भी अरु चेतन भी भासते हैं, परंतु जो जड़ भासते हैं, उस संवित्‌विषे वह भी चेतन हैं, जब चेतन हैं, तब फुरते हैं, जिनके शुद्ध संवित्‌विषे अहं प्रयत्न नहीं सो जान नहीं सकते अज्ञानी हैं; परंतु सब ब्रह्म है, जैसे समुद्रविषे जल होता है, सो ऊंचे आवै तौ भी जल है, अरु नीचेको आवै, तौभी जल है, जैसे जो कछु देखता है, अरु भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं अरु इंद्रियका ग्राम जो भासता है, सो भी आत्मा है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं, सो प्रथम आकाश फुरा है, बहुरि वायु फुरी है, बहुरि अग्नि फुरी है, तिसते अनंतर जल फुरा है, बहुरि पृथ्वी फुरी है, सो चमत्कारकी नांई अनिच्छित फुरे हैं, ताते सब आत्मरूप हैं, जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, तैसे आत्मरूपी बीजविषे जगत् होता है, अरु नानाप्रकार भासते हैं ॥ हे रामजी ! एक बीजही नानाप्रकारके रूप धारता है, परंतु बीजते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासती है, परंतु बीजकी नांई भी आत्मा परिणम्य नहीं, विश्व आत्माका चमत्कार है, ताते वहीरूप है, जैसे स्वर्णविषे अनेक भूषण होते हैं, स्वर्णते इतर कछु नहीं, तैसे विश्व आत्मरूप है, द्वैत कछु नहीं, जो आत्माते इतर होवै, तौ भासै नहीं, ताते भासती जो है, सो चेतनरूप है, इसते दृश्य अरु द्रष्टाते एकही रूप है, द्रष्टा दृश्यकी नांई हो भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे कोऊ पुरुष तुम्हारे निकट सोया होवै, अरु उसको स्वप्न आवै, तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, सो उसको भासती है अरु तुमको नहीं भासती, तैसे यह दृश्य तुम्हारी भावनाविषे स्थित है, अरु हमको आकाशरूप है ॥ हे रामजी ! चेतन आकाश शांतरूप है, तिसविषे सृष्टि कछु बनी नहीं, जो कछु उपजा नहीं तौ नष्ट

भी नहीं होता, केवल शांतरूप है, भ्रमकरिकै जगत् भासता है, जैसे कोऊ बालक मनोराज्य करिकै आकाशविषे पुतलियां रचै सो आकाशविषे कछु बना नहीं परंतु उसके संकल्पविषे है, तैसे यह विश्व मनरूपी बालकने रची है, तिसकी रची हुईविषे भी ज्ञानवान्को शून्यता भासती है ॥ हे रामजी! संकल्पमात्रही सृष्टि क्यों हुई जब इसका संकल्प नष्ट होता है तब शांतपद शेष रहता है सो कैसा पद है, निरहंकार सत्तामात्र पद है, अरु असत्की नांई स्थित है, बहुरि तिस चिन्मात्र अद्वैतविषे अहंताकरिकै जगत् भासि आता है, जब अहंता फुरती है, तब जगत् भासता है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है तब अहंतारूप भ्रम मिटि जाता है, जब अहंतारूप भ्रम मिटा, तब जगत्का भी अभाव होता है, अरु इच्छाका भी अभाव हो जाता है, ताते ज्ञानीको इच्छा वासना कोऊ नहीं रहती, जब प्रसन्नरूप अहंता नष्ट हुई, तब तिस पदको प्राप्त होता है, जिस पदविषे अणिमा आदिक सिद्धि भी सूखे तृणकी नांई भासती हैं, ऐसा आनंदरूप है, जिसविषे ब्रह्मादिकका सुख भी तृणसमान भासता है ॥ हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानंद प्राप्त हुआ है, तिसको बहुरि इच्छा किसीकी नहीं रहती, अरु तिसको मारनेहारे विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते, अरु जिवावने हारे पदार्थ अमृत आदिक जीवते नहीं, केवल निर्वाणपदविषे तिसकी स्थिति है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषको संपूर्ण संसारते वैराग्य हुआ है, तिसको संसारके पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त भया है, जिसकी संसारकी वासना अरु अहंता नष्ट भई है, तिसकी मूर्ति देखनेमात्र भासती है, सो निर्वासी ज्ञानवान् शांतरूप है ॥ हे रामजी! इच्छाही बंधन है, जब इच्छाका अभाव हुआ, तब आनंद हुआ, अरु इच्छा भी तब फुरती है, जब संसारको सत्य जानताहै, अरु संसारकी सत्यता अहंताकरि भासती है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै तब निर्वाणपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! संसार कछु बना नहीं भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, सर्वही ब्रह्म है, तिस परमात्माविषे जो परिच्छिन्न अहंता फुरी, सोई उपाधि है॥ हे रामजी! बुद्धिते आदि लेकरि जेती यह दृश्य है, जिसको अपनेविषे

स्वाद नहीं देती, आकाशकी नांई रहता है, तिसको संत मुक्तरूप कहते हैं ॥ हे रामजी ! यह अहं अविचारते सत् भासती है, विचार कियेते असत्य हो जाती है, अनहोती अहंताने दुःख दिया है, ताते तुम निरहंकार चेष्टा करहु, जैसे यंत्रीकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है, तैसे तुम निरहंकार होकरि चेष्टा करहु, अरु अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब व्यवहार अरु अव्यवहार तुझको तुल्य हो जावैगा, जैसे पवनको स्पंद दोनों तुल्य होते हैं, तैसे तुमको होवैगा, अरु अहंकारते रहित तेरी चेष्टा होवैगी, अहंताही दुःख है, जब अहंताका नाश हुआ, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा, अरु निर्मल अनामय पदको प्राप्त होवैगा, जो सर्व पदार्थका अधिष्ठान है, अरु सबका अपना आप है, तिसविषे न कोऊ सुख है, न दुःख है, न कोऊ इंद्रियोंका विषय है, परमशांतरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनं नाम शताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५८ ॥

शताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः १५९.

वसिष्ठगीतोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है सो निरावरणहै, दोनों आवरणते रहित है, एक असत्त्वापादक आवरण है, एक अभानापादक आवरण है, जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयविषे न भासै सो असत्त्वापादकहै, तिसको कहता है कि, है नहीं, अरु जो सत्यता आत्माकी हृदयविषे भासै, परंतु दृढ प्रत्यक्ष न भासै सो अभानापादक आवरण है, असत्त्वापादक आवरण अज्ञानीको भासता है, अरु अभानापादक आवरण जिज्ञासीको होताहै, ज्ञानवान्को यह दोनों आवरण नहीं रहते, ताते वह निरावरण शांतरूप होता है, आकाशवत् निर्मल अरु निरालंब है, सो किसी गुणतत्त्वके आश्रय नहीं होता, अरु एक द्वैतभ्रम तिसका नष्ट होजाता है, तिसने आत्मारूपी तीर्थका स्नान किया है, सो आत्मरूपीतीर्थ कैसा है, जो अपवित्रको भी पवित्र करता है, जिन पुरुषोंने

शरीरविषे आत्माका दर्शन किया है; तिनका शरीर भी पवित्र भया है, ऐसे पुरुषोंको शरीरकी सत्यता नहीं रहती, अरु संसार भी नहीं रहता, आत्माके साक्षात्कार हुए सब इच्छा नष्ट हो जाती है, अरु सर्व ब्रह्मही तिनको भासता है, द्वैत कछु नहीं भासता, सर्व आत्मस्वरूप है, तिस-विषे संकल्पकरि नानाप्रकार सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! तुम संक-ल्पकी ओर मत जावहु, काहेते कि, चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणविषे परिण-मती है, अनंत योजनपर्यंत चली जाती है, तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता मध्यविषे है; जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, जब तिसविषे स्थित होकरि देखेगा, तब फुरणेविषे भी ब्रह्म-सत्ता भासैगी ॥ हे रामजी! यह संवित् सदा प्रकाशरूप है, चित्तके क्षोभते रहित है, द्वैतरूप विकारते रहित शुद्ध है, अरु जेते कछु प्रकाश हैं, तिनके विरोधी भी है, दीपकका विरोधी पवन है, निर्वाणकरि लेता है, अरु सूर्यके विरोधी राहु केतु हैं, जो आच्छादि लेते हैं, अरु महाप्र-लयविषे सर्व प्रकाश तमरूप हो जाता है, अरु आत्मप्रकाश तत्त्वसिद्ध है, तमको भी प्रकाशता है, अरु सदा ज्ञानरूप एकरस है, तिसको त्यागिकरि तुम अपर कछु नहीं लगना ॥ हे रामजी ! यह दृश्य सब मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा कल्पित है, तैसे आत्माविषे विश्व कल्पित है, जब तू जागिकरि देखेगा, तब सबका अभाव हो जावैगा, जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका अभाव है, तैसे सब विश्व मिथ्या भासैगी, काहेते जो है नहीं, भ्रममात्र स्वप्नकी नांई अवि-चारसिद्ध है, विचार कियेते आत्माही हैं, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह विश्व भी आत्मस्वरूप ज्ञानमात्र है, अहं मम देह इंद्रियादिक सब ज्ञानमात्र हैं, दृश्यही दूसरी कछु वस्तु नहीं, जब ऐसे निश्चयको धारैगा, तब निःशोक होवैगा, अरु मोहते भी रहित होवैगा, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों भासैगी, जैसे समुद्र-विषे तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे दृश्य उठती है, सो वहीरूपहै, अरु जो इतर भासै सो मिथ्या है, अरु सब सृष्टि इसके अंतर स्थितहैं, अज्ञान-करिकै बाह्य भासती हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब इसके अंतर होतीहै, अरु

अपना स्वरूप होता है, निद्रादोष करिकै बाह्य भासती है, जब जागता है, तब अपनाही स्वरूप भासता है, तैसै जाग्रत् सृष्टि भी विचार कियेते अपने अनुभवविषे भासती है, ताते स्थित होकरि देख, जो सर्वदा जागती ज्योति है, तिसको त्यागिकरि अपर यत्न करना व्यर्थ है ॥ हे रामजी ! अपने अनुभवविषे स्थित होना क्या कष्ट है, अरु जो कठिन जानते हैं, सो मूढ हैं, तिनको मेरा धिक्कार है, काहेते जो गऊके पगको समुद्रवत् जानते हैं, तिनते अपर मूर्ख कौन है, अनुभवविषे स्थित होना, गऊपगकी नांईही तरणा सुगम है, अरु जो अपर पदार्थ हैं, जिनके पानेकी इच्छा करैगा, तिनविषे व्यवधान है, अरु आत्माविषे व्यवधान कछु नहीं काहेते कि, अपना आप है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंने आत्माविषे स्थिति पाई है, तिनको मोक्षकी इच्छा भी नहीं, तौ स्वर्गादिककी इच्छा कैसे होवै, मोक्ष अरु स्वर्ग आत्माविषे जेवरीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं, तिनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं, इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ता है, यह दोनों मिथ्या हैं, निर्वाण अरु जीना तिनको दोनों तुल्य हैं, ऐसे जानिकरि इच्छा किसीकी नहीं करते, प्रपंच उनको शशेके सींग अरु वंध्याके पुत्रवत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! हमको तो सदा आकाशरूप भासता है, अरु जो तू कहै, उपदेश क्यों करते हो तो हमको भास कछु नहीं, तेरी इच्छाही तुझको वसिष्ठरूप होकरि उपदेश करती है, हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है, अरु हमको चेष्टा करता भी अज्ञानी जानते हैं, हमारे निश्चयविषे चेष्टा भी नहीं, अरु हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कछु नहीं, अरु अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकार होती है, हमको चेष्टा सत् नहीं भासती, ताते अर्थाकार नहीं होती, जैसे ढोलका शब्द होता है, परंतु अर्थ उसका नहीं होता कि, क्या कहता है, अरु वाणीकरि शब्द बोलता है, तिसका अर्थ होता है, तैसे हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं, अर्थ यह कि, जन्मको नहीं देती, अरु अज्ञानकी चेष्टा जन्मको देती है, अरु हमको संसार ऐसे भासता है, जैसे अवयवी सर्व अवयवको अपना स्वरूपही देखताहै, हस्त पाद शीश आदिक

सब अपनेही अंग देखता है, तसे हमको जगत् अपना स्वरूपही भासता है ॥ हे रामजी ! जगत्विषे एक ऐसे जीव दृष्ट आते हैं कि, तिनको हम स्वप्नके जीव भासते हैं, अरु हमको वह शून्य आकाशवत् दृष्ट आतेहैं, अरु उनके हृदयविषे हम नानाप्रकारकी चेष्टा करते अपरकी नांई भासते हैं, अरु हमको तौ जगत् ऐसे भासता है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, मैं भी ब्रह्म हौं, तू भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है, रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, ताते तू भी ब्रह्मकी भावना करु, जो अपने स्वभावविषे स्थित होना परम कल्याण है, अरु परस्वभावविषे स्थित होना दुःख है ॥ हे रामजी ! अपना स्वभाव साधना इसीका नाम मोक्ष है, अरु न साधना इसीका नाम बंधन है ॥ हे रामजी ! अपर पदार्थ इस ऊपर उपकार कोऊ करि नहीं सकता, न धन, न कोऊ मित्र, न कोऊ क्रिया, एक अपना पुरुषार्थ उपकार करता है, सो पुरुषार्थ यही है कि, जो अपना चेतन स्वभाव है, तिसीविषे स्थित होना, परंतु स्वभावका त्याग करना, अरु जब अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा, तब सब अपना स्वरूपही भासैगा, अरु जो तू स्वरूपते इतर करि देखे तौ न मैं हौं, न तू है, न जगत् है, सब भ्रममात्र है, मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, अथवा ऐसे जान कि, मैं भी ब्रह्म हौं तू भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है. अथवा ऐसे जान, न तू है, न मैं हौं, न जगत् है, पाछे जो शेष रहैगा सो तेरा स्वरूप है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको ऐसे निश्चय हुआ है कि, मैं तू जगत् सब ब्रह्म है, अथवा मैं तू जगत् सब मिथ्या है तिसको बहुरि इच्छा कोऊ नहीं रहती; अरु जिनको इच्छा उठती है तौ जानिये कि ब्रह्म आत्माका साक्षात्कार नहीं भया. जब भोगकी वासना निवृत्त होवै, अरु संसार विरस हो जावै, तब जानिये कि, यह संसारके पारको प्राप्त भया, अथवा होवैगा ॥ हे रामजी ! यह निश्चय करिकै जान कि, जिसको भोगकी वासना क्षीण होती है, तिसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होताहै, अरु भोगकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है, यद्यपि तिसविषे प्रत्यक्ष भोगकी तृष्णा दृष्ट आती है, तौ भी उसकी भास जाती रहती है, अरु ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु संसारकी ओरते सुषुप्ति हो जातीहै, मृतककी

नांई होता है, अरु अपने स्वरूपविषे सदा जाग्रत् हैं, अपने स्वभावरूपी अमृतविषे मग्न होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ १५९ ॥

शताधिकषष्टितमः सर्गः १६०.

वसिष्ठगीतासंसारोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह परस्वभाव हैं, तिनको ब्रह्मरूप जान, परस्वभाव क्या अरु ब्रह्मरूप क्या है ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरै है, सो प्रकृतिकी मायाकरि फुरै है, सो मायास्वभावकरि ये परस्वभाव हैं, परंतु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है, ताते आत्मस्वरूप हैं, आत्माके जाननेते इनका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब इसको ज्ञान उपजता है, तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है, संसारकी सत्ता कछु नहीं भासती, अरु जब दृढ़ता हुई तब सुषुप्त हो जाता है, इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीयाविषे स्थित होता है, अरु जब तुरीयातीत होता है, तब अभावका भी अभाव हो जाता है, परम कल्याणरूप सत्तासमान पदको प्राप्त होता है, सो आदि अंतते रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हौं, अरु परम शांतरूप हौं, अरु निर्दोष हौं, अरु जगत् भी सब ब्रह्मरूप है, हमको सदा यही निश्चय रहता है; अरु ऐसा उत्थान नहीं होता, कि मैं वसिष्ठ हौं, सदा आत्मस्वरूपका निश्चय रहता है, परिच्छिन्न अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, ताते निरहंकार पदविषे हम स्थित हैं, जब तू ऐसे होकरि स्थित होवैगा, तब परम निर्मल स्वरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभताहै, तैसे तू शोभैगा॥ हेरामजी!ऐसे पुरुषको बंधन है,सो श्रवण कर,जिस बंधनकरिआत्मपदको नहीं प्राप्त होता, प्रथम धन मणिका बंधन है,भोगकी तृष्णाअरु बांधवका बंधन है, जिसको इन तीनोंकी वासना रहती है, तिसको मेरा धिक्कार है; बड़े अनर्थको देनेहारी यह वासना है, यह भोग है सो महारोग है, अरु

बांधव दृढ बधनरूप हैं, अरु अर्थकी प्राप्ति अनर्थका कारण है, ताते इस वासनाको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु, यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करनी व्यर्थ है, इसको सत् नहीं जानना, अरु यह जो तुझको संग मिलाप भासता है सो कैसा है, जैसे बैठे हुए स्मरण आवै; कि मैं अमुक साथ मिला था, तब वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदयविषे भासती है, अरु जैसे संकल्पकारि नगर रचि लिया तिसविषे मूर्ति मनुष्यादिक भासने लगैं, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे रामजी ! तू मैं अरु यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगरके समान है, जैसे भविष्यत् नगरकी रचना है, तैसे यह जगत् है, अरु कर्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं, सो भी भ्रममात्र हैं, केवल आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, आत्मरूपी आकाशविषे यह जगतरूपी पुतलियां हैं, अरु संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है, वास्तवते केवल शांतरूप आत्मतत्त्व है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं, तिनको आत्मतत्त्वही भासता है, अरु जिनको आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु आत्माविषे यह जगत् कछु आरंभ परिणामकारिकै बना नहीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अज्ञानकारिकै जलाभास भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरिकै जगत्की प्रतीति होती है, जब आत्माका सम्यक् ज्ञान होवै, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे सूर्यकी किरणैं जाननेते जलभ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नसृष्टि अपना आपही भासती है, तैसे अविद्याके नाश हुए सब अपना आपही भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नाम शताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ १६० ॥

शताधिकैकषष्टितमः सर्गः १६१.
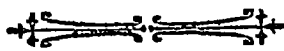
जगदुपशमयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, जिसको ज्ञान प्राप्त होता है, तिसको सब ब्रह्मरूप भासता है, यही

ज्ञानका लक्षण है, अरु ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है, त्यों त्यों भोगवासना क्षीण होती जाती है, जब पूर्ण बोधकी प्राप्ति होती है, तब इच्छा किसीकी नहीं रहती, जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता हैं, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता जाता है, जब पूर्ण प्रकाश हुआ, तब रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तिसको भोगकी वासना नहीं रहती, अरु संसार तिसको जले वस्त्रकी नांई भासता है, अरु अज्ञानीको सत्य भासता है, जैसे स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं होती, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं होता, स्वप्नका पुरुष सुषुप्तिको नहीं जानता, अरु सुषुप्तिवाला स्वप्नवालेको नहीं जानता, तैसे जिनको तुरीयापदकी प्राप्ति होती है, तिनको संसारका अभाव हो जाता है, अरु अपने स्वभावविषे स्थित होता है, अरु संसारको सत् जानता है, सो स्वप्ननगर है, सुषुप्तिको नहीं जानता ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है, तिसको अज्ञानी नहीं जान सकता, अरु जो जानै तौ परिच्छिन्न अहंकार तिसका नष्ट हो जावै, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब सर्व आत्मा हुआ ॥ हे रामजी ! इसको अहंताने तुच्छ किया है, ताते अहंतारूप दृश्यका तुम त्याग करहु, अरु अपने स्वभावविषे स्थित होहु, अरु संसाररूपी एक पुतली है, सो भ्रमकारि उठी है, तिसका शीश ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है, पाद अरु गिटे इसके पाताल लोक हैं, अरु दशों दिशा इसके वक्षःस्थल है, अरु चंद्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं, तारागण इसके रोम हैं, आकाश इसके वस्त्र हैं, अरु सुख दुःखरूपी स्वभाव है, अरु पवन इसका प्राणवायु है, बगीचे इसके भूषण हैं, द्वीप अरु समुद्र इसके कंकण हैं, लोकालोक पर्वत इसकी मेखला है ॥ हे रामजी ! ऐसी जो पुतली है, सो नृत्य करतीहै, सो क्या है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नाश होते हैं, परंतु जलही है, तैसे जलकी नांई सर्व ब्रह्मरूप हैं, अरु भ्रमकारिकै विकार दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी ! कर्त्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मस्वरूप है, जब तू आत्माकी भावना करैगा, तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावैगा, जैसे पत्थरको शिला जड होती है, तैसे तेरा हृदय जगतते जड शून्य हो जावैगा ॥ हे रामजी ! आत्मपद शांतरूप है, अरु आकाशवत् निर्मल है, जैसे आका-

शविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत् है, न उदय होता है, न अस्त होता है, केवल शांतरूप है, अरु उदयअस्त भी तब होता है, जब कछु दूसरी वस्तु होती है, सो जगत् कछु भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, द्वैत अरु एक कल्पनाते रहित आत्मा अपने आपविषे स्थित है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ १६१ ॥

शताधिकद्विषष्टितमः सर्गः १६२.
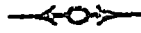
पुनर्निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, मृत्तिकाकी पुतली जैसे मृत्तिकारूप होती है, जैसे कागजकी पुतली कागजरूप होती है, तैसे विश्व आत्मरूप है, जैसे मृत्तिकाका दीपक देखनेमात्र होताहै, प्रकाशका कार्य नहीं करता, तैसे यह जगत् देखनेमात्र है, विचार कियेते आत्माविना इतर सत्ता कछु नहीं, ताते जगत्की सत्यता आत्माते भिन्न कछु नहीं, जगत्की आस्था आत्माके आश्रित होती है, जैसे जलविषे तरंग, अरु आकाशविषे शून्यता, अरु पवनविषे फुरना है, तैसे आत्माविषे जगत् अभिन्नरूप है, जैसे वायु चलती है, तबभी पवन है, उसको वायुका निश्चय है, तैसे चेतनविषे निश्चय है, कि जगत् वही स्वरूप है, ताते चेतन है, सो ज्ञानवान् जानता है कि, जगत् मेराही स्वरूप है ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य देख कि जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अरु भ्रमकरिकै भिन्न भासता है, जैसे कथाविषे कथाके पुरुष विद्यमान भासते हैं, जो युद्ध करते हैं इत्यादिक अपर क्रिया करते हैं, तैसे यह जगत् भी मनोमात्र जान ॥ हे रामजी ! जो विद्यमान है, सो अविद्यमान होजाता है, अरु जो अविद्यमान है, सो विद्यमान होजाता है, जैसे स्वप्नविषे जगत् अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत् जगत् विचारकरि देखैगा, तब ब्रह्मस्वरूपही भासैगा, जैसे जो पुरुष सोया होता है, अरु स्वप्न जगत् तिसहीका रूप है, परंतु जबलग निद्रादोष है, तबलग भिन्न

भासता है, अरु जब जागा तब सब अपनाही आप भासता है, तैसे जब यह पुरुष अपने स्वरूपविषे स्थित होकरि देखता है, तब सब अपना आपही भासता है ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है, अरु आत्मा इंद्रियोंका विषय नहीं, निराकार है, अरु मनके चिंतवनेते रहित है, संकल्पकारि आपही रूप अवलोकन मनस्कारकारि स्थित हुआ है, इतर नहीं, सर्व वही है, अरु तिसीको कई शिव कहते हैं, कई ब्रह्म कहते हैं, कई आत्मा कहते हैं, कई शून्य कहते हैं, इत्यादिक नाम तिसीके शास्त्रकारने कहे हैं, सो संकल्पविषे कई हैं, अरु आत्मा केवल चिन्मात्र है, वाणीका विषय नहीं, शांतरूप है, अरु चैत्य जो है दृश्य तिसते रहित है, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान है, अरु जगत् उसका चमत्कार है ॥ हे रामजी ! आत्मा विषे एक अरु द्वैतकल्पना कोऊ नहीं,काहेते जो आत्मत्वमात्र है,अरु जगत् भी आत्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषेभेद कछुनहीं,तैसे आत्माविषे अरुजगत्विषे भेदकछुनहीं हे रामजी ! ऐसे भी किसी देश अथवा किसी कालविषे होवै, जो स्वर्ण अरु भूषणविषे कछु भेद होवै, स्वर्ण भिन्न होवै, अरु भूषण भिन्न होवै, परंतु आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, ऐसेही आत्मा प्रकाशता है, अरु अपने स्वभावविषे स्थित है, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सैन्य नानाप्रकारकी संज्ञाको धारती है, परंतु मृत्तिकाते इतर कछु दूसरी वस्तु नहीं, तैसे फुरणेकरिके नाना प्रकारकी संज्ञा दृष्ट भी आती हैं, परंतु आत्माते भिन्न कछु नहीं, वहिरूप है ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभव करिके भासते हैं, पदार्थकी सत्ता अनुभवते इतर कछु नहीं, जब तू अनुभवविषे स्थित होकरि देखैगा, तब अनुभवरूप अपना आपही भासैगा, अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है, तिसके जाननेका नाम ज्ञान है ॥ हे रामजी ! ज्ञानविना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं,सब क्रियाकी सिद्धता ज्ञानकरि होती है, जैसे उलूककी क्रिया रात्रिविषे होती है, सो दिन हुएते मिथ्या हो जाती है, तैसे तप दान आदिक क्रिया ज्ञानके उदयविना व्यर्थ होती है ॥ हे रामजी ! जोकछु क्रिया ज्ञानके निमित्त करिये सो पुरुष-

प्रयत्न श्रेष्ठ है, अरु इनते अन्यथा है, सो व्यर्थ है, अरु धनके उपजावने-विषे भी अनर्थ होता है, अरु राखनेविषे भी नष्ट है, परंतु जो ज्ञानके साधननिमित्त इसको राखिये, अरु दीजिये, तब यह अमृत हो-जाता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे मलिन नेत्रवालेको रूपविपर्यय भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तिसविषे अज्ञ तज्ज्ञ भी भासते हैं, परंतु असत्रूप हैं, तैसे यह जगत् जो विद्यमान भासता है, सो अविद्यमान है, अरु आत्मा सदा विद्यमान है ॥ हे रामजी ! जो विद्यमान देव विष्णु है, तिसको त्यागिकरि अपर देवका पूजन करते हैं, तिनकी पूजा सफल नहीं होती, अरु विष्णु तिसपर कोपायमान भी होता है, सो विष्णु देव विद्यमान कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी ! आत्म अनुभवरूप सो विद्यमान देखै है, तिसको त्यागिकरि जो अपरका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनते मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसको अर्पण करिये, अरु ऐसी पूजाविषे भीस्थित नहीं होना, जो इसके जाननेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी ! इस आत्मदेवते इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेदपूजा है, सो तुच्छ है, जब तू आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अपर पूजा तुझको सूखे तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवको करणा है, सो किस-करिकै करनेयोग्य है, बोधकरिकै करने योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु संतोष होवै, यथा-लाभविषे संतुष्ट होना, अरु ब्रह्मविद्याका विचार करना, अरु संतका संग करना, इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्य उदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो ज्ञान उपजाहै सो भी शान्त हो जावैगा ताते उसी देवकी पूजा करु,जिसकरिकै आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु आत्मपदकी पूजाके निमित्त फूल भी चाहिये, सो आत्म-विचार करना, अरु सम जो है चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहना, संतकी संगति करनी, इन फूलनकरिकै निवे-दन करना, यह पूजा भी तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु

तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपजा, तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रते जो वस्तु सुनी है, तिसविषे स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है, तब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसको शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भावना करता है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो भासते हैं, सर्प अग्निविषे सब अपने अपने अर्थाकार भासते हैं, अरु जो सर्वमें आत्मभावना करता है तब सर्व आत्माही भासता है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं; तौ दिखाई कैसे देवै, अरु जो पुरुष कृतकृत्य नहीं भया, अरु आपको कृतार्थ मानता है, अरु दुःखनिवृत्तिका उपाय नहीं करता, तौ दुःखके आयेते दुःखही देवैगा अरु दुःख इसको चलाय ले जावैगा अरु सुख जब आवैगा तब सुख भी इसको चलाय ले जावैगा ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहता है, वाणीकरिकै अरु निश्चयते रहित है, अरु शास्त्र भी बहुत देखता है, तब वह महामूर्ख है; जैसे जन्मका अंध होता है, अरु सूर्यको नहीं जानता है, तैसे वह आत्मअनुभवते रहित है, जब आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब ऐसे आनंदको प्राप्त होवैगा जिसके पाएते अपर पदार्थ रसते रहित भासैंगे, ब्रह्माते आदिक काष्ठपर्यंत सब पदार्थ विरस हो जावैंगे ताते आत्मपरायण होहु, सदा आत्मपदकी भावना करहु ॥ हे रामजी ! जैसी भावना होती है, तैसा जगत् भासता है, जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसी वस्तु राखिये तैसा प्रतिबिंब होता है, तैसेही जैसी भावना करता है, तैसा रूप जगत् भासता है ताते जगत् ब्रह्मरूप जान, अपर दूसरा भासै सो भ्रममात्र जान, जैसे पत्थरकी शिलाके ऊपर पुतलियां लिखते हैं, सो शिलारूपही हैं; तैसे यह जगत् सब आत्मस्वरूप है, जब आत्मपदकी तुझको प्राप्ति होवैगी, तब सब पदार्थ विरस होवैंगे ॥ हे रामजी ! यह जगत्

मिथ्या है, जो पुरुष इस जगत्को पदार्थ कारि जानता है, अरु कहता है, हम मुक्त होवैंगे सो ऐसे है जैसे अंधकूपविषे जन्मका अंध गिरै अरु कहै, अंधकारके साथ मैं सचक्षु होऊंगा सो मूर्ख है, तैसे आत्मज्ञानविना मुक्त नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ १६२ ॥

शताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः १६३.

ब्रह्मैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अहंताते आदि लेकारि जो जगत् भासता है, सो मिथ्या भ्रमकारिकै उदय हुआ है, इसको त्यागिकारि अपने अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, इस मिथ्या जगत्विषे आस्था करनेकी मूर्खता है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको जगत् भ्रमका अभाव है, अब ज्ञानी अरु अज्ञानी दोनोंका लक्षण श्रवण कर ॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषको ताप चढता है, तिसका हृदय जलता है, अरु तृषा बहुत होती है, अरु जिसका ताप नष्ट हो गया, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु जलकी तृषा भी नहीं होती तैसे जिस पुरुषको अज्ञानरूपी ताप चढा हुआ है तिसका हृदय जलता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है, अरु जिनके हृदयते अज्ञानरूपी ताप मिटि गया है, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा मिट चाती है, अब ताप निवृत्त करनेका उपाय श्रवण कर, शास्त्रके अर्थवादकारि बुद्धि विभ्रम हो जाती है अरु मैं तुझको सुगम उपाय कहता हौं कि निरहंकार होना, यही सुगम उपाय है, न मैं हौं, न यह जगत् है, जब तू ऐसे निश्चयको धारैगा तब सब जगत् तुझको ब्रह्मरूप भासैगा अरु किसी पदार्थकी वांछा न रहैगी जब सब पदार्थको मिथ्या जानकारि अपना भी अभाव करैगा, तब पाछे प्रत्यक् चेतन परमानंदस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहैगा ॥ हे रामजी ! यह अहंतारूपी यक्ष जो उठा है सो मिथ्या है, अरु इस मिथ्या पुरुषने नानाप्रकारका जगत् कल्पा है सो

अहंकार भी मिथ्या है, अरु जगत् भी मिथ्या है, जब तू अपने स्वरूप-विषे स्थित होवैगा, तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है, अरु सुंदर पदार्थ भासते हैं, तिनकी इच्छा करताहै, जबलग जागा नहीं तबलग जानताहै कि, यह पदार्थ सदैव हैं, नाश कदाचित नहीं होते, अरु कहताहै कि, अमुकका रूप देखिये, अमुकका भोजन करिये, इत्यादिक इच्छा करताहै, जब जाग उठा तब जानता है, कि मेराही संकल्प था, बहुरि वह पदार्थ सुंदर स्मरण भी होते हैं, अथवा भासते हैं तौ भी उनको मिथ्या जानता है, तैसे जब आत्मस्थितिविषे जागता हैं तब सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी ! इस जगतका बीज अहंता है, जैसे दुःखका बीज पाप होताहै, तैसे जगत्का बीज अहंता है, ताते तुम निरहंकार पदविषे स्थित होहु, यह सब तेराही स्वरूप है, भ्रमकरिकै जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जगत्का अत्यंत अभाव है, जैसे जेवरीविषे सर्पका अत्यंत अभाव है, अरु भ्रमदृष्टिकरिकै सर्प भासता है, जब विचाररूपी दीपकसे देखता है, तब सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है, जब विचारकरिकै जगत्का अभाव निश्चय करैगा, तब आत्मपद ज्योंका त्यों भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है तब सब फूल फल टास दृष्टि आते हैं, सो एकही रस एती संज्ञाको धारता है, तैसे तू जब आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब तुझको सब आत्मरूपही भासैगा, अरु सर्व नाम भी आत्माही भासैगा॥ हे रामजी ! आदि भी आत्माही है, अरु अंत भी आत्माही होवैगा मध्य जो जगत्के पदार्थ भासते हैं, तिनकी ओर मत जावहु, जो इनके जाननेवाला है; जिसकरि सब पदार्थ प्रकाशते हैं, तिसविषे स्थित होहु, अरु यह मनुष्य सब मृगकी नांई हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल जानकरि दौडते हैं, तैसे जगत्रूपी मरुस्थलकी भूमिका शून्य है, अरु तीनों लोक मृगतृष्णाका जल है, तिसविषे मनुष्यरूपी मृग दौडते हैं, अरु दौड़ते दौडते हार पडते हैं, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होते काहेते कि जगत्के पदार्थ सब असत्य हैं ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार सब मृगतृष्णाका जल है, इनको जो सत्य जानता है सो मूर्ख है, अरु यह जगत् गंधर्वनगरकी नांई है, तू जागिकरि देख, इसको

सत्य जानिकरि काहेको तृष्णा करता है, इसको सत्य जानिकारि तृष्णा करनी यही बंधन है ॥ हे रामजी ! तू आत्मा है, इसकी इच्छाकरि बंधमान क्यों होताहै, जैसे सिंह पिंजरेविषे आया दीन होता है, अरु बलकारि जब पिंजरेको तोड़ि डारताहै, तब बडे वनविषे जाय निवास करताहै, अरु निर्भय होता है, तैसे तू भी वासनारूपी पिंजरेको तोडिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो आत्मा सर्वका अधिष्ठान है, अरु सबते उत्कृष्ट है, तिस पदको तू प्राप्त होवैगा, जब इस संसारकी वासना नष्ट होवैगी तब आनंद होवैगा, अरु तू निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा, अरु अफुर होवैगा, परम उपशम ज्ञेय पदको प्राप्त होवैगा, अरु द्वैतभास मिटि जावैगा, केवल परमार्थ सत्ता भासैगी, इसीका नाम निर्वाण है, अरु यह चारों भूमिका शांतिके स्थान हैं, जैसे कोऊ पैंढेंकारि तपता आवै, अरु तिसको शीतल स्थान प्राप्त होवै तब शांतिको पाता है, तैसे यह चारों शांतिके स्थान हैं, निर्वाणता, अरु निरहंकारता, अरु वासनाका त्याग, अरु परम उपशम इन करिकै ज्ञेयविषे स्थित होना यह शांतिका स्थान है, जब तू स्थित होवैगा तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीका अभाव होजावैगा, केवल द्रष्टाही रहैगा ॥ हे रामजी ! द्रष्टा भी उपदेश जतावनेके निमित्त कहा है, जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका होवे, केवल अपने आपविषे स्थित है, द्वैत जो है चैत्य, तिसते रहित अद्वैत चेतन है, शुद्ध है, तिसविषे स्थित होकारि जगत्का त्याग करु, यह जगत्बुद्धि जन्मके देनेहारीहै, जो जगत्केपदार्थ सुखदायी भासते हैं, सो दुःखके देनेहारे हैं, इनको विष जानकारित्याग कर, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे यह जगत् अनहोता भासता है, आत्माविषे दृश्य कछु नहीं, एकही पदार्थविषे दो दृष्टि हैं, ज्ञानी उसको आत्मा जानते हैं, अरु अज्ञानी जगत् जानते हैं ॥ दोहा ॥ सब भूतनकी रात्रि सो, संतनका दिन होय ॥ जो लोकन दिन मानिया, संत रहैं तब सोय ॥ १ ॥ ज्ञानी परमार्थतत्त्वविषे जागे हैं अरु संसारकी ओरते सोय रहे हैं, अरु अज्ञानी परमार्थतत्त्वते सोए हुए हैं, अरु संसारकी ओर सावधान हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् मनते फुरा है, अरु ज्ञानीका मन सत्पदको प्राप्त भया है. इसकरिकै जगत्की भावना नहीं

फुरती है, जैसे बालकको संसारके पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत् कछु वस्तु नहीं ॥ हे रामजी ! जब ज्ञान उपजता है, तब जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं भासता, जैसे जलकी बूँद जलविषे डारिये तौ भिन्न नहीं भासती, तैसे ज्ञानीको जगत् भिन्न नहीं भासता, जैसे बीज-विषे वृक्ष होता है, तैसे मनविषे जगत् स्थित होता है, जैसे वृक्ष बीज-रूप है, तैसे जगत मनरूप है, जब जगत् नष्ट होवै तब मन भी नष्ट हो जावैगा अरु मन नष्ट होवै, तब दृश्य भी नष्ट होवैगा, एकके अभाव हुए दोनोंका अभाव हो जाता है, अरु मन नष्ट होवै तौ फुरना भी नष्ट होवै अरु फुरना नष्ट होवै तौ मन भी नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह जगत अंतर बाहर जो भासता है, सोई मन है. ताते मनको स्थिर करि देखैगा तब जगत्की सत्यता नहीं भासेगी, अज्ञानीके हृदयविषे जगत् दृढ स्थित है ताते दुःख पाता है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे भूत भासता है, अरु दुःख पाता है, अरु अपर कोऊ निकट खडा है, तिसको नहीं भासता वह दुःख नहीं पाता॥ हे रामजी ! यह जगत् कछु सत् वस्तु होता तौ ज्ञान-वान्को भी भासता सो ज्ञानीको नहीं भासता, ताते जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष बैठे हैं अरु एकको निद्रा आई है, तिसको स्वप्न जगत् भासता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, अरु दूसरा जो जागता बैठा है, तिसको उसका जगत् नहीं भासता तैसे जो पुरुष परमार्थसत्ताविषे जागृत है, तिसको जगत् शून्य भासता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या है, तिसकी तृष्णा तू काहेको करता है, अपने स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत् परस्वभाव है, ऐसे जानि-करि भावै जैसी चेष्टा करु, तुझको बंधन न करैगी, अरु पूर्व पदकी प्राप्ति होवैगी, जैसे सूखे तृण अग्निके जले हुयेको पवन उडाय ले जाता है, तब नहीं जानता, कि कहां गया, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाया, अरु निरहंकारतारूपी पवनकरि उडाया, संसाररूपी तृण न जानैगा कि कहां गया, जैसे लाख योजनपर्यंत चला जावै, तौ भी आकाशही दृष्टि आता है, सब सृष्टिको धारि रहा है, तैसे सब दृश्य जगत्को आत्मा धारता है, संसारका शब्द अर्थ आत्माविषे कोऊ नहीं, इसको छोडि

करि देख जो सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं, ताते इनका त्याग करु जैसे मरुस्थलविषे जलाभास मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या भ्रममात्र है, इसके संबंधकरिकै दुःखी होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत् है, तू आत्मा ब्रह्म है, अरु दुःखते रहित है, अपने स्वभावविषे स्थित होहु, अरु आत्मदृष्टिकरिकै देख कि सर्व आत्मा है, अथवा जगत्को मिथ्या जान तौ भी शेष आत्मपद रहैगा, जैसे जागृत् स्वप्न सुषुप्तिविषे अभाव हुए शांतपद शेष रहता है, तैसे जगत्के अभाव कियेते आत्मपद शेष भासैगा, यह जगत् अत्यंत अभाव है, अरु जो दृष्टि आता है सो भ्रममात्र है, एक कालविषे होता है, अरु दूसरे कालविषे नष्ट हो जाता है, स्वप्नविषे जागृत्का अभाव हो जाता है, अरु जागृत्विषे स्वप्नका अभाव हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे दोनोंका अभाव हो जाता है, ताते भ्रममात्र है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, अहंता करिकै उदय होता है, अहंताके अभावते अभाव हो जाता है, जिनको अहंताका अभाव हुआ है, वही संत हैं, अरु उत्तम पुरुष हैं, जिन महानुभाव पुरुषोंका अभिमान नष्ट हो गया है, अरु भोगकी आशा नष्ट हो जाती है, वह निर्भ्रांतिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं ॥ इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ १६३ ॥

शताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः १६४.

हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह मनरूपी मृग भटकता है, अरु वनविषे जलता है, वह कौन वृक्ष है, समाधानरूप जिसके नीचे आया शांतपदको प्राप्त होवै उसके फूल फल लता कैसे होते हैं, अरु वृक्ष कहां होताहै, सो कृपा करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार

समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है, सो श्रवण कर, क्रमकरिकै इसके पत्र पुष्प लताते आदि सब समाधानरूप इस वृक्षका है ॥ हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवको कल्याणके निमित्त साधने योग्य है, सो अब तू इसका क्रम सुन, बलकरिकै उत्पन्न होता है, अरु संत जनोंके वनविषे यह ध्यानरूपी वृक्ष उपजता है, अरु चित्तरूपी पृथ्वीविषे लगता है, अरु वैराग्यरूपी इसका बीज है, सो वैराग्य दो प्रकारका होता है, जो कोऊ दुःख कष्ट प्राप्त होवै तिसकरि भी वैराग्य उपजि आता है, अथवा शुद्ध हृदय निष्काम होता है, तो भी वैराग्य उपजता है, तिस वैराग्यरूपी बीजको चित्तरूपी भूमिकाविषे पाता है, अरु जब वासनारूपी हल फेरता है, संतकी संगति अरु सच्छास्त्ररूपी जलकरि सिंचता है, मन-रूपी क्यारीविषे सो जल निर्मल है; शीतल है, अरु हृदयगम्य है, तिस कोमलता अरु दयारूपी जलकरि बीजको सिंचता है, तब बढनेकी आशा होती है, अरु सब क्रियारूपी जाड करिकै अशुभरूपी कुंडेको दूर करता है, अरु बहुत जलते भी रक्षा करता है, सो आत्मविचाररूपी सूर्यकी किरणोंकरि सूखता है, अरु तिसके चौफेर धैर्यरूपी वाणी करिये, अरु तप दान तीर्थ स्नानरूपी थडे ऊपर रख बैठना, जो बीज जलि न जावै, अरु आशारूपी पक्षीते रक्षा करनी, जो वैराग्यरूपी बीजको काढि न ले जावै, अरु अभिलाषारूपी बूढे बैलते रक्षा करणी कि क्षेत्रविषे प्रवेशकरिकै इसको मर्दन न करै, तिसके निमित्त संतोष अरु संतोषकी स्त्री मुदिता दोनों बैठाय रखने, अरु इस बीजका नाश करता जो मेघते उपजता है, गडा, तिसते भी रक्षा करनी, सो गडा क्या है, संपदा धनकी प्राप्ति होनी, अरु सुंदर स्त्रियोंकी प्राप्तिहोनी, सो वैरा-ग्यरूपी बीजका नाशकर्त्ता गडा है, एक इसकी रक्षाका सामान्य उपायहै अरु एक विशेष उपाय है, जो तप करना अरु इंद्रियोंको सकुचावना, अरु दुःखीपर दया करनी, अरु संतोषमात्र पाठ जाप करना इत्यादिक शुभ क्रिया करनी, यह शुभ क्रियारूपी पुतली यंत्री इसके विद्यमान राखिये तौ दूर हो जाता है, अरु दूसरा परम उपाय यह है कि संतकी संगति करनी, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करना, अरु प्रणव जो ॐकार

है, तिसका ध्यान जप करना, अरु तिसके अर्थको विचारणा यही जो है त्रिशूलरूप तिसका त्रिशूल करना, सो गडेके नाशका परम उपाय है, जब एते शत्रुते रक्षा करै तब बीजकी उत्पत्ति होवै, तिसको संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचाररूपी वर्षाकालके जलकरि सींचिये, तब अंकुर निकसता है, अरु बडा प्रकाश होता है, जैसे द्वितीयाका चंद्रमा होता है, अरु सब कोऊ तिसको प्रणाम करते हैं, तैसे संतोष दया अरु यशरूपी अंकुर निकसता है, तिसके दो पत्र निकसते हैं, एक वैराग्य, दूसरा विचार, सो दिन दिन प्रति बढता है, अरु शास्त्रते जो श्रवणकिया है, कि आत्मा सत्य है, अरु जगत् मिथ्या है, तिसको वारंवार अभ्यास करना, इस जलके सिंचनेकरि अंकुर दिन दिन प्रति बढता जावैगा, अरु तिसके स्तंभ बडे होवैंगे ॥ हे रामजी ! जब टास बडे होते हैं, तब वानर उसपर चढिकरि तोड डारते हैं, सो रागद्वेषरूपी वानर हैं, ताते इस वृक्षको दृढ वैराग्य अरु संतोष अभ्यासरूपी रसकरि पुष्ट करना, जैसे सुमेरु पर्वत होता है, तैसे संतोषकरि पुष्टि करनी, जब ऐसे हुआ तब सुंदर पत्र अरु टास लगैंगे, अरु फूल मंजरी इसके साथ लगैंगे, अरु बडे मार्गपर्यंत इसकी छाया होवैगी, शांति शीतलता शुद्धता अरु कोमलता दया यश कीर्त्ति इत्यादिक गुण आनि प्रगट होवैंगे, तिसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाता है, अरु शीतल होता है, अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ताप मिटि जाते हैं, अरु परमशांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको ध्यानरूपी वृक्ष कहा है, जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है तिस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती, जो इस वृक्षकी शरणको प्राप्त होता है, तिसके ताप मिटि जाते हैं, अरु शांतिवान् होता है अरु वृक्ष जो बढता है, सो ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढता है, अरु इसविषे वैराग्यरूपी रस है, अरु संतोषकरि इसकी छील है, तिसकरि पुष्ट होता है, जो पुरुष इसका आश्रय लेवैगा सो शांतिको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जबलग मनरूपी मृग इस ध्यानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता, तबलग भटकता फिरता है, अरु शांतिको नहीं प्राप्त होता जैसे मृग वनविषे भटकताहै, तसे भटकताहै,

तिसको द्वैत अज्ञान प्रमादरूपी वधिक मारने लगता है, तिसकरि दुःख पाता है, तिसके भयकरि गाँवके निकट आता है, तब वह अपोआप इसको पकडकरि खेद देते हैं, तिसकरि बड़े कष्टको पता है, सो गांववासी इंद्रियां हैं, जब इनकी ओर आता है, तब अपने अपने विषयकी ओर बंधायमान करती हैं, इनके भयकरि बहुरि वनको जाता है, तहां वनकी तप्तकरि दुःखी होता है, सो विषयकी अप्राप्तिरूपी तप्त है, तिसको त्यागिकरि रसरूप स्थानको शांतिके निमित्त दौडताहै, जब वहां जाताहै तब कामरूपी श्वान इसके मारनेको दौडता है, तिसके भयकरि बहुरि वनकी ओर धावता है, तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है, अरु वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं, अरु लोभ मोहरूपी अँधेरी चलती है, तिसकरि अंध हो जाता है, हरे तृणको देखकरि ग्रहण करता है, तब टोयेविषे गिर पड़ता है, वह टोया तृणकरि आच्छादित है, सो तृण कौन है, पुत्र धन तिसको सुंदर देखिकरि ग्रहण करती है, तब ममताविषे गिर पडता है, इसप्रकार दुःख पाता है ॥ हे रामजी! जब यह मन झूठ बोलता है, तब मृत्तिकाविषे लौटता है, ऐसी चेष्टा करता है, अरु जब मनरूपी व्याघ्र आता है, तब इसका भक्षण करि जाता है, जब ध्यानरूपी वृक्षते विमुख होता है, तब एते कष्टको पाता है, जब मनरूपी व्याघ्र छूटता है, तब आशारूपी जंजीरविषे बंधायमान होता है, जबलग इस वृक्षके निकट नहीं आता, तबलग बडे कष्ट स्थानोंको जाता है, तमाल वृक्षादिकके तले भी जाता है, अरु कंटकके वृक्षों तले भी जाता है, परंतु शांतिवान् किसी स्थानविषे नहीं होता, बडे कष्टको पाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हरिणोपाख्यानेवृत्तांतयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः ॥ १६४ ॥

शताधिकपंचषष्टितमः सर्गः १६५.
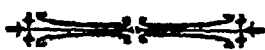
मनमृगोपाख्यनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार मूढबुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है. ताते मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुमको उस वृक्षका संग

होवै, जब उस वृक्षके निकट आता है, तब शांति प्राप्त होती है, अरु जब इसके नीचे आय बैठता है, तब तीनों ताप अंतःकरणते मिटि जाते हैं, अपर जेते कछु वृक्ष हैं, तिनके निकट गया मनरूपी मृग शांतिको नहीं पाता, सो अपर वृक्ष कौन हैं, विषयरूपी वृक्षके निकट गया शांतिवान् नहीं होता, जब ध्यानरूपी वृक्षके निकट आता है, तब शांतिको पाताहै, अरु बुद्धि प्रकाश आती है, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि खिल आता है, बहुरि उसके अनुभवरूपी फल हैं, अरु शास्त्रके विचाररूपी पत्र फूल हैं, तिनको देखकरि बडे आनंदको प्राप्त होता है, अरु वृक्षके ऊपर चढ जाता है, चढिकरि पृथ्वी भूमिका त्याग करता है, जैसे सर्प अपनी कंचुकीका त्याग करता है, अरु नूतन सुंदर शरीरकरि शोभता है, अरु जब उस वृक्षपर चढ़ता है, तब गिरता नहीं, पत्र उसके बहुत बली हैं, तिनके आश्रय ठहरता है, सो कौन पत्र हैं, ध्यानरूपी वृक्षके सच्छास्त्ररूपी पत्र हैं, जब ध्यानरूपी वृक्षते उतरता है, तब शास्त्रके अर्थविषे ठहरता है; अरु जेते विषय पदार्थ देखाई देते हैं, सो क्षारवत् दृष्ट आते हैं, अरु अपनी पिछली चेष्टाको स्मण करिकै पछिताता है, जैसे किसीने मद्यपान किया होवै अरु तिसविषे नीच चेष्टा करै, जब मद उतरता है तब पछताया करता है, तैसे मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टाको धिक्कार करता है, अरु कहता है कि, बडा आश्चर्य है, मैं एता काल इस वृक्षते विमुख हुआ भटकता फिरता हौं, अब मुझको शांति प्राप्त हुई है, जैसे दिनकी तप्त अभाव हुए चंद्रमुखी कमलिनीको शांति प्राप्त होती है, तैसे मनरूपी मृगको शांति प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! पुत्र धन स्त्रियादिक जो देखाई देतेहैं, तिनको संकल्पपुरकी नांई अरु स्वप्नवत् देखता है,जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नपुरको स्मरण करता है, परंतु तिसविषे अभिमान नहीं होता, तैसे इनविषे भी अभिमान नहीं होता, जब अनुभवरूपी फलका भक्षण करता है, तब बडे आनंदको पाता है, जिसविषे वाणी नहीं प्रवृत्त हो सकती, परम शांत अरु निर्मलपदको प्राप्त होता है, अरु निरतिशय पदको प्राप्त होता है, जो मनका विषय होवै, सो सातिशय पद है, अरु जो मनका विषय नहीं सो निरतिशय पद है, अरु जो इंद्रि-

योंका विषय है तिसका नाशभी होता है, अरु जो इंद्रियों अरु मनका विषय नहीं, तिसका नाश नहीं होता, सो अविनाशी पदको पाता है, अरु जैसे किसीको बाण लगता है, अरु तिसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख राखिये तौ निकस आता है, तैसे अनुभवरूपी बूटीके सन्मुख हुए मोह बंधनरूपी शर खुल पडते हैं, अरु परम पदको पाता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् जगत्‌ते मृतक होजाता है, उसको संसारका लेप कछु नहीं लगता, जैसे लकड़ीविना अग्नि शांत हो जाती है, तैसे वासनाते रहित ज्ञानवान्‌की चेष्टा शांत हो जाती है, अर्थ यह कि, संसारकी सत्यताते रहित चेष्टा होती है, बहुरि संसाररूपी अग्नि उदय नहीं होता, अरु द्वैत एक कल्पना भी मिटि जाती है, अरु उन्मत्तकी नांई अपने स्वरूपविषे घूर्म रहता है, जैसे मरुस्थलकी धूपकी इच्छा पैंडोई नहीं करता तैसे ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता, जिसने आत्मअनुभवरूपी अमृतपान किया है, तिसको विषरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती, वह पुरुष सदा निर्वासी है, जब यह पुरुष निर्वासी होता है, तब चंचल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है, केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है, अरु मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है, जबलग चित्तका संबंध होता है, तबलग मैं मेरा भासता है, जब चित्तका संबंध मिटा तब एकाकार हो जाता है, जैसे एक सूखा काष्ठ अरु एक गीला काष्ठ होता है, सो सूखा शुद्ध कहाता है, अरु गीला उपाधिक कहाता है, जब जल सूख गया, तब शुद्ध होताहै तैसे जब मनकी उपाधि नष्ट भई, तब शुद्ध आत्माही रहता है, अरु एकरस भासता है ॥ हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रमकरिके भासता है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे पुतली अनउपजतीभासती है, सो न सत् है, न असत् है, जब पत्थरते भिन्न करि देखिये, तब सत् नहीं, जो शिलाकरि देखिये तब वही रूप है, तैसे जगत् आत्माते भिन्न सत्य नहीं, आत्मसत्ताते आत्मरूप है, जैसे छोटेबालकके हृदयविषे जगत्‌का शब्द अर्थ नहीं होता तैसे ज्ञानीकी चेष्टाभी प्रारब्धवेगिकरिके होती है, परंतु उसके हृदयविषे जगत्‌के शब्द अर्थका अभाव है ॥ हे रामजी! जो कछु प्रारब्ध होतीहै

सो अवश्य उसको भी आनि प्राप्त होती है, मिटती नहीं, शुभ अथवा अशुभ, जैसे मेघते बूँदें गिरती हुई नष्ट नहीं होतीं मेघ मंत्रशक्तिकरिकै नष्ट होता है, तैसे प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होता, अपर नष्ट होते हैं परंतु वह तिनविषे बंधायमान नहीं होता, अज्ञानीके हृदयविषे संसार सत्य भासता है, अरु भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, पदार्थका ज्ञान है, अरु ज्ञानीके हृदयविषे आत्माका ज्ञान है, संसारकी सत्यता तिसको नहीं भासती ॥ हे रामजी ! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैं तुझको कहाहै, सो विधिसंयुक्त तिसकी सेवनाकरिये तौ अनुभवरूपीफल प्राप्त होताहै, अरु बोधते रहित होकरि करता है, तौ अनेक यत्नकरि भी फलकी प्राप्ति नहीं होती, काहेते ऐसी भावना उसको नहीं प्राप्त होती, कि आत्मा शुद्ध है, अरु सत् चिद् आनंद है, अरु जिनको यह भावना प्राप्त होतीहै, तिनको भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे किसीने अमृतपान किया होता है, तब अपर अमल अरु कटुक फलकी वांछा नहीं करता, तैसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता, जैसे रुईके पोवेको अग्नि लगी, अरु ऊपरते तीक्ष्ण पवन चला तौ नहीं जानता कि, कहां जाय पडा, तैसे जगत्‌रूपी रुईका पोवा ज्ञान अग्निकरि दग्ध किया हुआ, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि उड़ाया, नहीं जानाजाता कि, कहां जाय पडा, आकाशही आकाश भासता है, जगत् सत् नहीं भासता, तौ फिर तृष्णा किसकी करै, तृष्णाते रहित स्थित होता है ॥ हे रामजी ! दुःखका मूल तृष्णा है, तृष्णाकरि भटकता है, जैसे पर्वतके पक्ष थे, तबलग उडते थे, पक्षविना उडनेते रहित भये गंभीर स्थिर हो रहे, तैसे जब मनते वासना नष्ट हुई, तब मन स्थिर हो जाता है ॥ हे रामजी ! पैंई वांछित देशको तब जाय प्राप्तहोता है, जब इतर देशका त्याग करता है, तैसे आत्मा शुद्धस्वरूप परमानंद अपनाआप तब प्राप्त होता है, जब धन लोक पुत्र ईषणाका त्याग करै; जब आत्माकी प्राप्ति भई तब निर्विकल्प समाधिकरि निर्विकल्प चेतनका साक्षात्कारहोता है, जबसमाधिविषे साक्षात्कारहुआ, तबउत्थानकालविषेभीसमाधिस्थित होता है, अरु परम निर्वाणपदको प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी वल्ली दूर हो जाती है, जैसे रसडीको बल होती है तिसको खैंचिकरि बहुरि

छोडता है, तब वह सूधी हो जातीहै, तैसे जिसको समाधिविषे साक्षात्कार हुआ तब उसको उत्थानकालविषेभी वहीभासता है,अरु जिसको उसका प्रमाद है, तिसको जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! वस्तु एकहै,परंतु तिस विषे दो दृष्टि हैं, जैसे जेवरीएकहै, सम्यक्दर्शीको जेवरी भासती है, अरु असम्यक्दर्शीको सर्प हो भासता है, तैसे ज्ञानवान्को आत्मा भासताहै, अरु अज्ञानीको जगत् भासताहै, जिसपुरुषने ज्ञानकरि जगत्कोअसत् नहीं जाना तिसको ऐसे जान जो चित्रकी अग्नि है, तिसकरिकै कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, न शीतही दूर होतीहै, अरु जिसको स्वरूपकी इच्छा है, अरु तृष्णाके नाश करनेका प्रयत्न करता है, अरु जगत्को मिथ्या विचारता है, सो विचार कियेते आत्मपदको प्राप्त होवैगा, अरु तृष्णा भी तिसकी निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्की तृष्णा स्वाभाविक मिट जाती है, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार मिटिजाताहै, तैसे वस्तुकी सत्ताकरि तिसकी तृष्णा नष्ट हो जातीहै, अरु परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जिसको दृश्यविषे निरसता है, सो उत्तम पुरुष है, सो मनुष्य शरीरको पायकरि ब्रह्म होता है, तिसको मेरा नमस्कार है, वह मेरा गुरु है ॥ हे रामजी ! जब इसकी बुद्धि विषयते विरस हुई, तब कल्याण हुआ, वैराग्यकरिकै बोध होता है, अरु बोधकरिकै वैराग्य होता है, परस्पर दोनों संबंधी हैं, जब एक आता है, तब दूसरा आता है, जब यह आते हैं, तब तीनों ईषणा निवृत्त होजाती हैं,जब तीनों ईषणा गईं तब अमृतकी प्राप्ति होती है, सो कैसे प्राप्त होतीहै, श्रवण कर, संतका संग करना अरु सच्छास्त्रका श्रवण करना,तिसकरि अपने स्वरूपका अभ्यास करना इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है,यह तीनोंश्रेष्ठ परस्परही एक हैं, जैसे अष्ट चरणवाला कीट होता है,जो प्रथम चरणको राखिकरि अपर चरणको राखता है,तब सुखेन चला जाता है, तैसे संतके संग अरु सच्छास्त्रके श्रवणकरिआत्मपदकाअभ्यास करता है,तबशीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होता है, अरु जगत्का अभाव हो जाताहै ॥ हे रामजी! जगत्के भाव अरु अभावको ज्ञानी जानता है, जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको तुरीयावाला जानताहै, तैसे जगत्के भावअभावको ज्ञानीजानता

है, जैसे अग्निविषे सूखातृण डारा दृष्टनहीं आता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् दृष्ट नहीं आता ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को सर्वदा समाधि है, उत्थान कदाचित् नहीं होता, जबलग उस पदको प्राप्त नहीं भया, तबलग साधनाविषे जुडता रहै, जब उस पदको प्राप्त भया, तब फिरि यत्न कोऊ नहीं रहता ॥ हे रामजी ! इस चित्तके दो प्रवाह हैं, एक जगत्की ओर जाता है, अरु एक स्वरूपकी ओर जाताहै, जो जगत्कीओर जाताहै, सो उपाधिक है, अरु जो स्वरूपकी ओर जाताहै सोउपाधिको दूर करणेहारा है, जैसे एक लकडी गीली होती है, अरु एक सूखी होती है, जोगीलीहै तिस विषे उपाधि जल है, तिसकरि विस्तारको पाती है, जब जलनष्टहोजाता है, तब शुद्ध होती है, बहुरि प्रफुल्लितनहीं होती, तैसे संसारकीसत्यताकरि चित्त वृद्ध होताहै, जब संसारकी वासना नष्ट होतीहैतब शुद्धपदकोपाता है ॥ हे रामजी ! वाद जो करते हैं, सो दो प्रकारकेहैं, एक वाद जोकिसीको दुःख देवै सो मूर्ख करते हैं, अरु जो परस्पर मित्रभावकरिकै तत्त्वका निरूपण करना सो ज्ञानवान् करते हैं, जैसा वाद करता है तिसका दृढ अभ्यास करता है तैसाही रूप होजाता है, जो कष्टझगडा करताहै तिसका वहीरूप हो जाता है अरु जब स्वरूपका बाद मित्रताकरिकै करताहै तब वहीरूप होता है, उस पदको पायकरि परमशांतिको प्राप्त होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनमृगोपाख्यानयोगोपदेशवर्णनं नाम शताधिकपंचषष्टितमः सर्गः ॥ १६५ ॥

श्रीपरमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धं प्रारभ्यते ।

शताधिकषट्षष्टितमः सर्गः १६६.

स्वभावसत्तायोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने समाधानरूपी वृक्षके फलको जानकरि पान किया है, अरु तिसको पचाया है, उसको परम स्थिति प्राप्त होतीहै, जैसे पंख टूटेते पर्वत स्थित हो रहे हैं, तैसे यह तृष्णारूपी पंखके टूटेते स्थित हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब उसको फल प्राप्त होता है, तब चित्त भी आत्मरूप हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब जाना नहीं जाता कि कहाँ गया, तैसे आत्मपदके प्राप्त हुए चित्त भिन्न होकरि दिखाई नहीं देता ॥ हे रामजी ! जबलग वह अकृत्रिम आनंद प्राप्त नहीं भया, अरु तिस पदविषे विश्रांति नहीं पाई, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती. कैसा पद है, जो निर्गुण है, अरु शुद्ध है, स्वच्छ है, परम शांत है, जब तिस पदविषे स्थिति होती है, तब परम समाधि हो जाती है, ऐसा त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं जो तिसको उतारै, जैसे चित्रकी मूर्ती होती है, तैसे उसकी अवस्था होती है, चेष्टा भी सब होती है, परंतु इच्छाते रहित है, जैसे पंखते रहित पर्वत स्थित होता है, तैसे मन अमन हो जाता है, अरु शांत पदको प्राप्त होताहै ॥ हे रामजी ! जिसके मनविषे संसारका अभाव हुआ है, सो शांत पदको प्राप्त होता है, अरु जो वासनासंयुक्त है, तब मन है, जिस क्रमकरिकै अरु जिस युक्तिकरिकै इसकी वासनाक्षय होवै, सो इसको कर्तव्य है ॥ हे रामजी ! जब वासना क्षय होती है, तब बोधरूपी शेष रहता है, जिस

क्रमकरि वह प्राप्त होवै, सोई किया चाहिये, तिस पदके प्राप्त हुए विना शांति कदाचित् न होवैगी, जब चित्त तिस पदकी ओर आवै, तब शांत होवै, अरु दुःखते रहित होवै, अरु अविनाशी होवै, काहेते जो सर्व आत्मनिर्विभाग है अरु अंत है, परमशांतरूप है, सबको कर्मका फल देनेहारा है, ॥ हे रामजी! जब ऐसे पदको प्राप्त होता है, तब तिसको उत्थानकालविषे आत्माही भासता है, उसको द्वैत नहीं भासता, तब समाधिते उत्थान कैसे होवै ऐसा कोऊ समर्थ नहीं जो तिसकी समाधिते उतारै जब ऐसा पद प्राप्त होता है, तब संसार विरस हो जाता है॥ हे रामजी! जबलग यह पुरुष मूर्तिवत् पुतली नहीं हुआ, तबलग विषयका त्याग करै अरु जब ऐसी दशा हुई तब कर्तव्य कछु नहीं रहता, जो त्याग करै अथवा न करै, अरु यह मेरे निश्चय है, जब ज्ञान इसको उपजैगा तब विषयते विरक्त हो जावैगा, ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु पदार्थ हैं, सो तिसको विरस हो जाते हैं, ऐसा जो पुरुष है, तिसकी सदा समाधि है॥ हे रामजी! जिसको समाधिका सुख आया है, सो स्वाभाविक समाधिकी ओर आता है, जैसे वर्षाकालकी नदी स्वाभाविक समुद्रको जाती है, तैसे वह पुरुष समाधिकी ओर लगा रहता है, जो पुरुष विषयते अचाह हुआ है, अरु आत्मारामी भया है, तिसकी वज्रसारकी नांई स्थिति होती है, जैसे पंखते रहित पर्वत स्थित हुए हैं, तैसे जिस पुरुषने संसारको विरस जानकरि त्याग किया है, अरु आत्माविषे क्रीडा आत्माकरि तृप्त हुआ है, तिसका ध्यान चलायमान नहीं होता॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी चेष्टा भी होती है, अरु संकल्पविकल्पते रहित है, सो सदा मुक्तिरूप है, तिसको कोऊ क्रिया बंधायमान नहीं करती, क्रिया अरु साधनाका अभाव हो जाता है; जिस पुरुषको विषय जगत् विरस हो गया है, तिसको विषयहूकी तृष्णा कैसे होवै जब तृष्णा न रही, तब दुःख कैसे होवै, दुःख तबलग होता है, जबलग विषयकी तृष्णा होती है विषयकी तृष्णा तब होती है, जब अपने स्वभावको त्यागता है॥ हे रामजी! जब अपने स्वभावविषे स्थित होवै, तब परस्वभाव जो है इंद्रियोंके विषय सो रससंयुक्त कैसे भासै, दुःख अरु तृष्णा कैसे होवै॥

हे रामजी! जब अपने स्वभावको जानता है, तबे परम निर्वाण पदको प्राप्त होता है, जो आदि अरु अंतते रहित पद है, तिसको पाता है, सो तिसका उपाय श्रवण कर, वेदका अध्ययन करना अरु प्रणवका जप करना, जब इनते थकै तब समाधि जो है चित्तकी वृत्तिका रोकना, सो रोकै, जब बहुरि थकै, तब वही जाय पाठ करै, जब ऐसे दृढ अभ्यास होवै, तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जो संसारके पार गमनका मार्ग है, जब तिसको पाया तब परमशांतिको प्राप्त होवैगा अरु स्वच्छ निर्मल अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धेस्वभावसत्तायोगोपदेशो नाम शताधिकषट्षष्टितमः सर्गः १६६॥

शताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः १६७.

मोक्षोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह संसार बड़ा गंभीर है, जो तरना कठिन है, जिसको तरनेकी इच्छा होवै तिसको यह कर्तव्य है, जो वेदका अध्ययन, अरु प्रणवका जप, अरु चित्तको स्थिर करना, जब ऐसे उपाय करै, तब ईश्वर इसपर प्रसन्न होवैगा, तब इसके हृदयविषे विवेकका कणका उत्पन्न होवैगा तिसकरिकै संसार असत्य भासैगा, अरु संतजनोंका संग प्राप्त होवैगा. सो संतजन कैसे हैं, शुभ आचार है जिनका, अरु परम शीतल हैं, अरु गंभीर ऊंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं, अरु यश कीर्ति शुभ आचाररूपी फूल अरु पत्रोंसहित हैं, ऐसे संतजनकी संगति जब प्राप्त होती है, तब जगत्के रागद्वेषरूपी तम मिटि जातेहैं, जैसे पैंडोईके शीशके ऊपर भार होवै, अरु तप्तताकरि दुःखी होवै, अरु शीतल छाया वृक्षकी तिसको प्राप्त होवै, तब शीतल होता है, अरु फलके भक्षणेकरि तृप्त होता है, तब थकेका कष्ट दूर हो जाताहै, तैसे संतके संगकरि सुखको प्राप्त होता है, जैसे चंद्रमाका अमृत किरणोंकरि शीतल होता है, तैसे संतजनके वचनोंकरि शांति होती है॥ हे रामजी! संतजनके दर्शन कियेते पाप दग्ध होजाताहै, अरु जो पुरुष तप यज्ञ व्रत सकाम

करते हैं, तिनकी संगति न करिये, वह कैसे हैं, जैसे यज्ञका स्तंभ होता है, सो पवित्र भी होताहै, परंतु उसकी छाया कछु नहीं, ताते उसके नीचे सुख कोऊ नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जेते कछु सकाम कर्म हैं, सो जन्म-मरणको देनेहारे हैं, यद्यपि यज्ञ व्रत जिज्ञासी भी करते हैं, तौ भी उनमें विशेष है. काहेते कि, वे निष्काम हैं, अरु विषयविषे तिनको विरस-भावना है, अरु तिनका शुभ आचार है ॥ हे रामजी ! ऐसे जिज्ञासीकी संगति विपेश है, जिसकी चेष्टाको सब कोऊ स्तुति करते हैं, अरु सबको सुखदायक भासता है,अरु नवनीत कोमल सुंदर अरु स्निग्ध होता है, ऐसा जिज्ञासी होताहै, तिसको संतकी संगति प्राप्त होतीहै ॥ हे रामजी ! फूलके बगीचे अरु सुंदर फूलकी शय्या आदिक विषयते ऐसा निर्भय सुख प्राप्त नहीं होता, जैसा निर्भय सुख संतकी संगतिकरि प्राप्त होता है, अरु तिनका सदा आत्मविषे निश्चय रहता है ॥ हे रामजी ! ऐसे ज्ञानवान्की संगति करिकै इसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, परंतु जब हृदय शुद्ध होता है, जबलग हृदय मलिन है, तबलग नहीं प्राप्ति होती, जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, अरु लोहेकी शिला प्रतिबिंबको ग्रहण नहीं करती, तैसे जब इसका हृदय उज्ज्वल होता है, तब संतके वचन इसके हृदयविषे ठहरते हैं, जैसे वर्षाकालका बादल थोडेसे बहुत हो जाता है, जब इसका हृदय शुद्ध होता है, तब बुद्धि बढती जाती है, जैसे वनविषे केलेका वृक्ष बढता जाता है, तैसी बुद्धि बढती जाती है, जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है, तब वह रूप हो जाती है, बुद्धिकी भिन्न संज्ञाका अभाव हो जाताहै, जैसे लोहेको पारसका स्पर्श होता है, तब सुवर्ण हो जाता है, बहुरि लोहेकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे आत्मपदकी प्राप्ति हुए बुद्धिकी संज्ञा नहीं रहती, अरु विषयभो-गकी तृष्णा भी नहीं रहती ॥ हे रामजी ! इसको दीन जो किया है, सो विषयकी तृष्णा अभिलाषाने किया है, जब तृष्णाका त्याग किया, तब परमनिर्मलताको प्राप्त होता है, जैसे हस्ती शिरपर मृत्तिका डारता है तबलग मलिन है, अरु जब नदीविपे प्रवेश किया, तब निर्मल हो जाता है, तैसे जब तृष्णारूपी राखका त्याग किया, अरु आत्माविषे

स्थित भया, तब निर्मल होता है ॥ हे रामजी ! जब भोगकी इच्छा त्यागी, तब बडी शोभाको धारता है, जैसे सुवर्ण अग्निविषे पाया, तब मैल जालि जाता है, अरु उज्वल रूपको धारता है ॥ हे रामजी ! भोग-रूपी बडा विष है, तिसको दिनादिनविषे त्याग करना विशेष है, जब तृष्णाका त्याग करता है, तब मुख भी बडी शोभाकरि शोभता है, जैसे राहु दैत्यते रहित हुआ चंद्रमाका मुख शोभा पाता है, तैसे तृष्णाके वियोग हुए पुरुषका मुख शोभता है ॥ हे रामजी ! जब इसको भोगते वैराग्य होता है, तब दो पदार्थकी प्राप्ति होती है,जैसे नूतन अंकुरके दो पत्र होते हैं, तैसे एक संतकी संगति अरु एक सच्छास्त्रका विचार प्राप्त होता है, अरु तिनविषे दृढ भावना होती है, तब अभ्यासकरिकै वहीरूप होता है, अरु परमानंदरूप होता है, जिसको वाणीकी गम नहीं तब भोगकी इच्छाते मुक्त होता है, अरु परमशांतिसुखको पाता है, जैसे पिंजरेसों निकासि-करि पक्षी सुखी होता है, तैसे सुखी होता है ॥ हे रामजी ! इसको भोगकी इच्छाने दीन किया है, जब इच्छा निवृत्त होती है, तब गोप-दकी नांई संसारसमुद्रको लंघि जाता है, अरु तीनों जगत् सूखे तृणकी नाई भासते हैं ॥ हे रामजी ! जब भोगकी इच्छा त्यागी, तब यह ईश्वर हुआ, जिस पुरुषको आत्मसुख प्राप्त हुआ है, सो भोगकी इच्छा कदाचित् नहीं करता, जब भोग आन प्राप्त होते हैं, तब भी उसको विरस भासते हैं, अरु मिथ्या भासते हैं, ताते भोगको नहीं चाहता, जैसे जालते निकसा हुआ पक्षी बहुरि जालको नहीं चाहता, तैसे वह पुरुष भोगको नहीं चाहता, जब विषयकी तृष्णा निवृत्त होती है, तब परम शोभाको धारता है, संतका वचन उसको शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी ! मोक्षरूपी स्त्री है, अरु तिसके कानके भूषण संतकी संगति है, जब साधुकी संगति होती है, तब अशुभ क्रियाका त्याग हो जाता है, अरु विराने धनकी इच्छा नहीं रहती, अरु जो कछु अपना होता है, तिसकोभी त्यागनेकी इच्छा करता है, अरु भले भोग जो पानेनिमित्त आते हैं, तिनको विभाग देकरि खाता है, जो कछु होता है, तिसविषे भी देकरि खाता है, बडे उत्तम भोगते लेकरि सागपर्यंत देकरि खाता

है, यथाशक्ति प्रमाण जब यह ऐसे हुआ, तब फेर ऐसे हो जाता है, जब कोऊ शरीर माँगै, तब शरीर भी देता है, काहेते जो देनेका अभ्यास हो जाता है, अरु लोकते साग माँगनेकी इच्छा भी नहीं रखता, तिसकरि संतोषसाथ यथाप्राप्त चेष्टा करता है, तप करता है, दान करता है, यज्ञ व्रत ध्यानकरि पवित्र रहता है, अरु तृष्णाका त्याग किया है ॥ हे रामजी ! ऐसा दुःख क्रूर नरकविषे भी नहीं, जैसा दुःख तृष्णाकरिकै होता है, अरु जो धनवान हैं, तिनको धनकी चिंता बहुत रहती है उपजानेकी चिंता है, अरु राखनेकी चिंता है, उठते बैठते खाते पीते चलते सोते सदा धनकी चिंता रहती है, इसही चिंताविषे मचि मचि मरि जाते हैं, बहुरि जन्मते हैं ॥ हे रामजी ! निर्धनको भी चिंता रहती है, परंतु थोडी होती है, जबलग चिंता रहती है, तबलग दुःखी रहता है; जब चिंता नष्ट हुई, तब परम सुखी होता है ॥ हे रामजी ! यद्यपि धनी होवै, अरु संतोष नहीं, तब परमद्रारिद्री है, अरु जब धनते हीन है, परंतु संतोष है, तब परमईश्वर है, जिसको संतोष है, तिसको विषय बंध नहीं करि सकते ॥ हे रामजी ! जबलग धनकी इच्छा नहीं करी तबलग इसको भोगरूपी विष नहीं लगता, जब धनकी इच्छा उपजी, तब परमविष इसको स्पर्शकरि जाता है, इसको विपरीत भावनाविषे दुःख होता है, जो दुःखदायक पदार्थ हैं, तिनको सुखदायक जानता है ॥ हे रामजी ! जो कछु अर्थ है, सोई अनर्थ है, जिसको इसने संपदा जाना है, सो आपदा है, जिनको इसने भोग जाना है, सो सब रोगरूप हैं, इनको संपदा जानकरि विचरता है, इसकारि बडा दुःखी होता है ॥ हे रामजी रसायन सब दुःखका नाश करता है, परंतु यह देवताके पास होती है, अरु जब इसको अमृत चाहिये, तब संतोष परमरसायन है, जब विषयविषे दोषदृष्टि हुई, अरु संतोषको धारा, तब मूर्खता इसते दूर हो जाती है, अरु गोपदकी नाईं संसारसमुद्रको शीघ्रही तरिजाता है, जैसे गोपदको सुगमही लंघा जाता है, तैसे संसारसमुद्रको सुगमतासे तरिं जाता है ॥ हे रामजी ! जिसको संतोष प्राप्त होता है, तिसको परम शांति होती है, अरु वसंत ऋतु भी सुखका

स्थान है, नंदनवन भी सुखका स्थान है, उर्वशी आदिक अप्सरा होवैं, चंद्रमा विद्यमान बैठा होवै, कामधेनु विद्यमान होवै, जो यह सब इंद्रियोंके सुख हैं, सो सब विद्यमान होवै, तो भी शांति न होवैगी, परंतु एक संतोषकरि शांति होवैगी, तिसको यह विषय चलाय नहीं सकते ॥ हे रामजी ! जैसे अर्घ्य भरि भरि पायेते तलाव भरा नहीं जाता, अरु जब मेघजलकी वर्षा होवै, तब शीघ्रही भरा जाता है, तैसे विषयके भोगकरि शांति नहीं होती, अरु संतोषकरि पूर्ण आनंदकी प्राप्ति होवैगी अरु संतोषकरि इसको ओज प्राप्त होवैगा. कैसा प्राप्त होवैगा, जो गंभीर अरु निर्मल अरु शीतल अरु हृदयगम्य अरु सबका हितकारी ऐसा ओज संतोषी पुरुषको प्राप्त होता है, और जो ओज है, सो सात्त्विकी राजसी तामसी होते हैं, अरु यह जो है, सो शुद्ध सात्त्विकी है, जिस पुरुषको संतोष हुआ है, सो ऐसे शोभता है, जैसे वसंत ऋतुका वृक्ष फल फूल पत्रोंकरि शोभा पाता है, अरु जिसको तृष्णा है, सो कैसा है, जैसे चरणके नीचे आया कीट मर्दन होता है ॥ हे रामजी ! जिसको तृष्णा है, तिसको संतोष शांति कदाचित् नहीं, जैसे जलविषे तृणोंका पूला पाया, अरु ऊपर तीक्ष्ण पवन चला, तब बडे क्षोभको प्राप्त होता है; तैसे तृष्णावान् पुरुषको क्षोभ होता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अर्थके निमित्त सदा इच्छा करता है, सो अग्निविषे प्रवेश करता है, अर्थ यह कि, जो सर्वदा काल तपता रहता है जैसे गर्दभ विष्ठाके स्थानविषे प्रवेश करता है तैसे तृष्णावान् विषयरूपी स्थानविषे प्रवेश करता है, सो गर्दभ है, जैसे गर्दभसाथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसे तृष्णावान् गर्दभसाथ स्पर्श करना योग्य नहीं ॥ हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है, इस संसारके पदार्थको चाहते हैं, सो भी मूर्ख हैं, अरु इस जगत्का अधिष्ठान है सो इसको तब प्राप्त होता है, जब निर्वासनिक होता है, जब निर्वासनिक हुआ, तब संतोषको प्राप्त होता है, तब ऐसा होता है, जैसा तारेविषे चंद्रमा शोभा पाता है, ताते इच्छा नाश करनेका उपाय करौ ॥ हे रामजी ! जब इच्छा नष्ट होगई अरु संतोषरूपी गंभीरता प्राप्त भई, अरु द्वैतकलना मिटि गई, तब

इसीको परमपद पंडित कहते हैं, सो यह पद कैसे प्राप्त होता है श्रवण करु ॥ हे रामजी ! जब इसको संसारते वैराग्य होवै, अरु संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ हैं, इनविषे दृढभावना होवै, जब आत्माविषे दृढभावना भई, तब जगत् विरस हो जाता है. अर्थ यह कि, जगत् असत्य भासता है, अरु हृदयविषे शांति होती है, अरु स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगता है, परिच्छिन्नता मिटि जाती है, जबलग आपको परिच्छिन्न जानता था, तबलग सब दुःखका अनुभव करता था, जब संतकी संगति अरु सच्छास्त्रकरि जगत् विरस हुआ, तब परमपदको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपदेशावर्णनं नाम शताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः ॥ १६७ ॥

शताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः १६८.

विवेकदूतवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो क्रम है सो जब संसारते वैराग्य होताहै, तब संतकी संगति होती है, बहुरि शास्त्रका श्रवण होता है, तब संपूर्ण जगत् विरस हो जाताहै जब जगत् विरस हुआ अरु आत्माविषे दृढ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभावसत्ता प्रकाश आती है जब उसी स्वभावसत्ताविषे स्थित हुआ, तब परमानंदकी प्राप्ति होती है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं ॥ हे रामजी ! जब यह अवस्था प्राप्त हुई, तब मन अमन हो जाता है, अरु अर्थकी तृष्णा नहीं रहती, अरु जो अपनेपास होता है, तिसको राखनेकी इच्छा नहीं करता, सहज त्याग हो जाता है, अरु पुत्र धन स्त्रियादिक सब विरस हो जाते हैं, यद्यपि इनके बीच भी रहता है तौ इनविषे अहं मम अभिमान नहीं करता, जैसे पैंडोई किसी मार्गविषे आनि उतरता है, अरु मार्गवालेसाथ कछु संबंध नहीं राखता, तैसे किसी विषयसाथ नहीं रखता, अरु जो आनिच्छित इंद्रियके सुख आनि प्राप्त होते हैं, तिनाविषे राग द्वेष नहीं करता, जैसे किसी पत्थरकी शिलापर जल चला जाता है, तिसको रागद्वेष कछु नहीं होता,

तैसे ज्ञानवान्‌को रागद्वेष किसीविषे नहीं होता ॥ हे रामजी ! उसके शरीरकी यह स्वाभाविक अवस्था हो जाती है, जो एकांतको चाहता है, अरु वन कंदराविषे रहनेकी इच्छा करता है, अरु अज्ञानके जो स्थान हैं, स्त्री अरु भोगके स्थान अरु रागद्वेषके स्थान इष्ट अनिष्ट सो दैव-संयोगते मुमुक्षुको आनि प्राप्त भी होते हैं, तौ भी शीघ्रही तिसको त्यागि देता है ॥ हे रामजी ! जब बीज क्षेत्रविषे बोनेका होता है, तब तिसके आगे जो बूंटा कंटा होते हैं, सो कुल्हाडीसे काटि दूर करते हैं, तब खेत अच्छा सुंदर फलता है, तैसे जिस पुरुषको मनरूपी क्षेत्रविषे अनुभवरूपी फल देखना होवै, सो इच्छारूपी कंटक बूटेको अनिच्छारूपी कुल्हाडेसे काटै, अरु संतोषरूपी बीजको बोवै, तब क्षेत्र भी सुंदर फलैगा ॥ हे रामजी ! जब अनुभवरूपी फल इसको प्राप्त भया, तब यह पुरुष सूक्ष्मते सूक्ष्म हो जाता है, अरु स्थूलते भी स्थूल हो जाता है, अरु सर्व आत्मा होकारि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त अदृश्य होता है, तब द्वैतभावना मिटि जाती है, जब द्वैतभावना मिटी, तब चित्त अदृश्यको प्राप्त होते है, तिस चित्तको जो उपशमको सुख होता है, सो वाणीकारि कहा नहीं जाता, तिसका नाम निर्वाणपद तब प्राप्त होता है, जब ईश्वरकी भक्ति करता है, अरु जब दिन रात्रि चिरकालपर्यंत भक्ति करता रहता है, तब ईश्वर प्रसन्न होता है, अरु इसको निर्वाणपदकी प्राप्ति होती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ वह कौन ईश्वर है, अरु उसकी भक्ति क्या है, जिसकारि प्रसन्न होता है, अरु निर्वाणपदको प्राप्त करता है सो तत्त्व कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ईश्वर दूर नहीं अरु उसविषे भेद भी कछु नहीं, अरु दुर्लभ भी नहीं, काहेते जो अनुभव ज्योति है, अरु परम बोधस्वरूप है, बहुरि कैसा है, सर्व जिसके वश है, अरु जो सर्व है, अरु जिसते सर्व है; तिस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है ॥ हे रामजी ! जो कोऊ पूजता है, जप, मंत्र, तप, दान, होम जो कछु कोऊ करता है सो सर्वही उसको पूजते हैं, देवता दैत्य मनुष्य जो कछु स्थावर जंगम जगत् है सो सब उसीको पूजते हैं, अरु

सर्वको फल देनेहारा वही है, उत्पत्ति अरु प्रलयविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब उसीकरि सिद्ध होते हैं, ऐसा ईश्वर है, जब तिस ईश्वरकी प्रसन्नता होती है, तब अपना एक दूत भेजता है, सो कैसा दूत है, जो शुभ क्रिया सब उसीविषे पाती हैं, अरु अतिपवित्र है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ईश्वर जो अद्वैत आत्मा है, अरु शुद्ध ब्रह्म है, तिसका दूत कौन है, अरु कैसे आता है, सो मुझे कहो ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ईश्वर जो परमदेव है, तिसका दूत विवेक है, अरु हृदयरूपी गुफाविषे आनि उदय होता है, जब उदय होता है तब परम शोभाको प्राप्त करता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुए आकाश शोभा पाता है, तैसे वह पुरुष शोभा पाता है ॥ हे रामजी ! जब विवेकरूपी दूत आता है, तब इसको संसारते पवित्र करता है पवित्र करिकै देवके निकट ले जाता है, प्रथम वासनारूपी मैलसाथ भरा था, अरु चितारूपी शत्रुने बांधा था, जब विवेकरूपी दूत आता है, तब चित्तरूपी शत्रुको मारता है, अरु वासनारूपी मैलको नाश करिकै देवके निकट ले जाता है, जब इसको तिस देवका दर्शन होता है, तब परमानंदको प्राप्त होता है, बडा सुख पाता है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे मृत्युरूपी घुमरघेर हैं, अरु तृष्णारूपी लहरी तरंग हैं, अज्ञानरूपी जल है, अरु इंद्रियांरूपी तंदुए हैं, तिस समुद्रविषे यह जीव पडे हैं, जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् इसको प्राप्त होती है, तब यह संसारसमुद्रते पार होता है ॥ हे रामजी ! यह जीव प्रमादकरिकै जडताको प्राप्त हुए हैं, जैसे जल शीतलताकरिकै गडेकी संज्ञाको पाता है, तैसे प्रमाद-करिकै यह जीवत संज्ञाको पाता हैं, अरु वासनाके साथ आवरा गया है, जब अंतर्मुख होता है, तब उस देवके सन्मुख होता है, तब वह देव प्रसन्न होता है, सो कैसा देव है, सहस्र जिसके शीश हैं अरु सहस्र जिसके पाद हैं, अरु सहस्र भुजा हैं, अरु सहस्र नेत्र हैं, अरु सहस्र कर्ण हैं, अरु सर्व चेष्टाका वही कर्ता है, देखता सुनता बोलता चलता वही है, अरु अपने स्वभावसत्ताकरि प्रकाशता है, जैसे सब घटविषे चलनाशक्ति पवनकी है, तैसे प्रकाशशक्ति देवकी है, जब तिसके सन्मुख अंतर्मुख

होता है, तब विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसको संतकी संगति होती है, अरु सच्छास्त्रका श्रवण होता है, तिनके अर्थविषे दृढ भावना होती है, तब विवेकरूपी दूत उसको अदृश्यताविषे प्राप्त करता है, अरु शून्य हो जाता है, बहुरि शून्यको भी त्यागिकरि बोधमात्रविषे स्थित होता है, तब पूर्ण आनंद इसको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष आनंदस्वरूप है, अरु यह विश्व भी अपना आप है, परंतु अज्ञानकरिकै भिन्न पड़ भासता है, जैसे भ्रान्ति करिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, अरु मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु आकाशविषे तरुवरे भासते हैं तैसे भ्रांतिकरिकै जगत् भासता है, अरु भूतके अंतर बाहिर अध ऊर्ध्व सब ब्रह्मदेवही व्यापि रहा है, स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है, सो सब उसी आत्मतत्त्वके आश्रय फुरता है, ताते वही स्वरूप है, अरु सर्वको वही धारि रहा है, जैसे सर्व भूषणोंको सुवर्ण धारि रहा है, तैसे सर्व शब्द अर्थको वही धारि रहा है, वही ईश्वर ब्रह्म है, गंभीर साक्षी आत्मा ॐकार प्रणव सब उसीके नाम हैं, जब ऐसे ईश्वरकी कृपा होती है, तब अंतर्मुख होता है, अरु शुद्ध निर्मल होता है ॥ हे रामजी ! जब इसका हृदय शुद्ध होता है, तब आत्मपदकी ओर इसकी भावना होती है, जो सर्व आत्मा है, जब यह भावना होती है; सो यही भक्ति है, तब वह ईश्वर कृपा करिकै विवेकरूपी दूत भेजता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवेकदूतवर्णनं नाम शताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ १६८ ॥

शताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः १६९.

सर्वसत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसको विवेककी दृढता हुई, तब परम पदको प्राप्त होता है, जो चैत्यते रहित चेतनघन है, अरु चैत्यका संबंध टूटि जाता है, जब चैत्यका संबंध टूटा, तब विश्वका क्षय हो जाता है, जब विश्वक्षय भया, तब वासना भी नहीं रहती ॥

हे रामजी ! यह जगत् भी इस फुरणेविषे है, जब शुद्ध चेतनविषे चैत्योन्मुखत्व भया, तब इसका मनोमात्र शरीर होता है, जिसको अंतवाहक कहते हैं, अरु जब वासनाकी दृढता भई, तब अधिभूत भासने लगता है, जैसे स्वप्नविषे अपना शरीर भासता है, तैसे अपनेविषे शरीर देखने लगता है ॥ हे रामजी ! इसको उत्थानही अनर्थका कारण है, जब यह चैत्य होता है, तब इसको अनर्थकी प्राप्ति होती है, मैं मेरा इत्यादिक जगत् भासि आता है, जब यह होवै नहीं, तब जगत् भी न होवै, इसके होनेकरि जगत् भासता है, ताते मेरा यही आशीर्वाद है कि, तू चेतनताते शून्य होवै, अहंतारूपी चेतनताते रहित अपने बोधविषे स्थित रहै ॥ हे रामजी ! इस मनते जगत् हुआ है, सो मन अरु जगत् दोनों मिथ्या हैं, रूप अवलोकन मनस्कार तीनोंका नाम जगत् है, सो मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या शून्य हैं, जब इनका अभाव हुआ, तब शून्य भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र चेतन होता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शन द्रष्टा यह तीनों भावनामात्र हैं, जब यह होते हैं; तब जगत् भासता है, अरु जब अहंताका अभाव हुआ, तब आत्मपद शेष रहता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, वासना करिकै दृश्य भासती है, सो वासना मनते फुरी है, अरु मन अज्ञान करिकै हुआ है, जब मन अमनपदको प्राप्त होता है, तब दृश्य सब एकही रूप हो जाती है, जबलग वासना उठती है, तबलग मनविषे शांति नहीं होती, जैसे कोऊ पुरुष भँवरी लेता है, तब बल चढते जाते हैं, अरु जब ठहरता है, तब वह बल उतर जाते हैं, तैसे जबलग चित्त वासना करिकै भ्रमता है, तबलग जन्मरूपी बल चढते जाते हैं, अरु जब चित्त ठहरता है, तब जन्मका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जबलग चित्तका दृश्यसाथ संबंध है, तबलग कर्मते नहीं छूटता, जब चित्तका दृश्यते संबंध टूटै, तब शुद्ध अद्वैतपदको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जब शुद्ध चिन्मात्रविषे उत्थान होता है, तब तिसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है, वही अहंता दृश्यकी ओर फुरती जाती है, तब प्रमाद हो जाता है, अरु जड़ता होती है, जैसे

जल गदला हो जाता है, तैसे चित्तशक्ति प्रमादकरिकै जड़ हो जाती है, जब दृढ वासनाको ग्रहण करती है, तब अंतवाहकते अधिभूतक शरीर अपना दृष्टि आता है, बहुरि पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं, ज्यों ज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरती जाती है,त्यों त्यों संसार होता जाता है, जब फुरणेते रहित होकरि अपने स्वरूपकी ओर आती है, तब अपना आपही भासता है, अरु द्वैत मिटि जाता है, तब परमानंद अद्वैतपद भासता है, जब पूर्ण बोध हुआ, तब द्वैत अरु एक संज्ञा भी जाती रहती है, केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है,जब ईश्वरसाथ एकता होती है, जगत्की भास चलती रहती है, जब तिस पदकी प्राप्ति होती है, तब दृश्यका अभाव हो जाता है. काहेते कि, जगत् भावनामात्र है, जैसे भविष्य कालका वृक्ष आकाशविषे होवै, तैसे यह जगत् इसका अत्यंत अभाव है, कछु बना नहीं, भ्रांतिकरिकै भासता है ॥ हे रामजी ! मेरे वचनोंका अनुभव तब होवैगा, जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा, तब यह वचन हृदयविषे आनि फुरैंगे, जैसे कथावालेके हृदयविषे कथाके अर्थ आनि फुरते हैं, तैसे यह वचन आनि फुरैंगे ॥ हे रामजी ! जबलग यह मन फुरता है, तबलग जगत्का अभाव नहीं होता, जब मन उपशम होवै, तब जगत्का अभाव होता है, जैसे स्वप्नको स्वप्न जानता है, तब बहुरि स्वप्नके पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जबलग सत्य जानता है, तब-लग इच्छा करता है ॥ हे रामजी ! यह जीव वासनाके आवरे हुए हैं, जब वासना क्षय होवै, तब इसीका नाम ज्ञान है, अज्ञानरूपी भूत इनको लगा है, तिसकरि उन्मत्त होनेकरि जगत् भासता है, अरु जगत्के भासनेकरि नानाप्रकारकी वासना दृढ हो गई है, तिसकरि दुःख पाता है, जब यह चित्त उलटकरि अंतर्मुख होवै, अरु दृढ भावना आत्माविषे करै, जब ज्ञानरूपी मंत्र इसको प्राप्त होता है,तब अज्ञानरूपी भूत चलता रहता है ॥ हे रामजी ! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है, जैसी भावना इसविषे होती है, तैसा भान होता है ॥ हे रामजी ! प्रथम इसका शरीर अंतवा-हक था, अरु अपना स्वरूप भूला न था, आपको आत्माही जानता था, अरु जगत् अपना संकल्पमात्र भासता था, तिसका नाम अंतवाहक

है, जब उस संकल्पविषे दृढ़ भावना हुई, तब अधिभूत भासने लगा, जब तिसविषे दृढ़ भावना हुई, तब देह इंद्रियाँ सब अपनेविषे भासने लगे, जब अपनेविषे भासें, तब इनके सुखदुःखको जानने लगा, जब जगत्‌के सुखदुःख इसको भासैं तब सर्व आपदा इसको आय प्राप्त हुईं; वास्तवते न कोऊ सुख दुःख है, न जगत् है, केवल भावनामात्र है, जैसी चित्तकी भावना होती है, तैसेही आगे भासता है ॥ हे रामजी ! जब यह भावना उलटकारि अंतर्मुख आत्माकी ओर परिणाम होवै, तब एकही बोधका भान होवै, जब एक बोधका भान इसको हुआ, तब द्वैत सब मिटि जाता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अंतवाहक भी नहीं, यह जो शंभु ब्रह्मा है, सो भी बोधस्वरूप है, जब बोधते इतर अंतवाहक कछु होता, तब भासता, सो बोधते इतर कछु पाता नहीं, अंतवाहक भी तिसीकरि है, अंतवाहक कहिये जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्योन्मुख हुआ है, अरु चित्तशक्ति फुरी है, तब तिसको पंच तन्मात्राका संबंध हुआ, यही जड चेतन ग्रंथि है, चेतन है, चित्तशक्ति अरु जड है, पंचतन्मात्रा इनका इकट्ठा होना इसका नाम अंतवाहक शरीर है, जब यह भी आत्माविषे कछु हुआ होता, तब यह वचन न होते, ताते चिन्मात्र है, बना कछु नहीं. काहेते कि, आत्मा अद्वैत है ॥ हे रामजी ! दूसरा कछु बना नहीं, भ्रमकरिकै द्वैत भासता है, जैसे सोई पुरुष शयन करता है, अरु स्वप्न भ्रमकरिकै तिसको द्वैत भासता है, तैसे यह जाग्रत् भी भ्रांतिकरिकै भासता है, कछु है नहीं ॥ हे रामजी ! जड है नहीं, तब इच्छा किसकी करता है, एता सुख इंद्रियोंके इष्ट भोगते नहीं होता, जेता कछु सुख उनके त्यागनेते होता है ॥ हे रामजी ! एक यज्ञ है, जिसके कियेते पुरुष परमपदको प्राप्त होता है, सो यज्ञ तब होता है, जब एक स्तंभ गाडता है, तिसके नीचे बल करता है, जब यज्ञकारि रहताहै, तब सर्व त्याग करता है, तब इसको फलकी प्राप्ति होती है, इस क्रम कियेविना यज्ञ सफल नहीं होता, सो स्तंभ क्या है, अरु बल क्या है, अरु यज्ञ क्या है, अरु त्याग क्या है, अरु फल क्या है, सो श्रवण करु ॥ हे रामजी ! ध्यानरूपी स्तंभ करै, जो आत्मपदका सदा अभ्यास होवै, अरु तृष्णारूपी

तिसके आगे वल करै, अरु ज्ञानरूपी यज्ञ करै, जो आत्माके विशेषण वेदशास्त्रविषे कहे हैं, नित्य वेद शुद्ध है, बोधरूप है, अद्वैत है, निर्विकल्प है, देह इंद्रियां प्राण आदिकते रहित है, ऐसे जाननेका नाम ज्ञान है, सो यही यज्ञ है, ध्यानरूपी स्तंभ करिकै, अरु तृष्णारूपी वल करिकै, अरु मनरूपी दृश्यको जानकरि यह यज्ञ पूर्ण होता है, जब ऐसा यज्ञ हुआ, तब तिसके पाछे दक्षिणा भी करिये, तब यज्ञफल होवै, जो सर्व देना यह दक्षिणा है, सो क्या सर्वस्व है, अहंकार त्याग करना सर्वस्व त्याग है, जब सर्वस्व त्याग किया, तब यज्ञ सफल होता है, इसका नाम विश्वजितयज्ञ है, जब इस प्रकार यज्ञ हुआ, तब इसका फल भी होता है, सो फल क्या है, यद्यपि अंगारकी वर्षा होवै, अरु प्रलयकालका पवन चलै, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश होवैं, तब ऐसे क्षोभविषे भी चलायमान नहीं होता, यह फल इसको प्राप्त होता है, जो कदाचित् स्वरूपते नहीं गिरता, यह शत्रु नाश वज्रध्यान है ॥ हे रामजी ! अहंताका त्याग करना यह सर्वते श्रेष्ठ त्याग है, जो कार्य अहंताके त्याग कियेते होताहै, सो अपर उपायकरि नहीं होता, तप दान यज्ञ दमन उपदेश उन उपाधिहूते भी अहंताका त्याग करना बड़ा साधन है, सर्व साधन इसके अंतर्भूत होते हैं ॥ हे रामजी ! जब तू अहंताका त्याग करैगा, तब अंतर बाहर तुझको ब्रह्मसत्ताही भासैगी, द्वैतभ्रम संपूर्ण मिटि जावैगा ॥ हे रामजी ! मनके सर्व अर्थरूपी तृणोंको ज्ञानरूपी अग्नि लगाइये अरु वैराग्यरूपी वायुकरि जगाइये, तब इन तृणोंको भस्म करि डारै तब तू परमशांतिको प्राप्त होवैगा, मनके जलानेकरि परम संपदा प्राप्त होती हैं, इसते इतर सब आपदा हैं, मन उपशमविषे कल्याण है, यह जो अंतर बाहिर नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो मनके मोहते उत्पन्न हुए हैं, जब मन उपशमको प्राप्त होवै, तब नानाप्रकार जो भूतकी संज्ञा है, मनुष्य पशु पक्षी देवता पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह सर्व ब्रह्म है, ज्ञानीको एकसत्ता भासती है, दूसरा कछु अपर बना नहीं, भ्रमकरिकै जगत् भासता है, अरु तिसविषे नानाप्रकारकी वासना हुई है, अपनी अपनी वासनाके

अनुसार जगत्को देखते हैं, ताते तुम जागहु अरु वासनाके पिंजरेको काटिकरि आत्मपदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै जो आत्मपदते सोये पडे हैं, अरु वासनाके पिंजरेविषे पड़े हैं, तिन अज्ञानीकी नांई तुम नहीं होना, अज्ञान करिकै जीवका नाश होता है, जो कछु जगत् देखता है, सो भ्रममात्र है, अरु इनका बोलना भी ऐसे जान, जैसे बाँसुरीविषे पवनका शब्द होता है, तैसे यह प्राणवायुकरि बोलते दृष्ट आते जान, ताते जगत् भ्रममात्र है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वसत्तोपदेशो नाम शताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ १६९ ॥

शताधिकसप्ततितमः सर्गः १७०.

सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो जीव हैं, देशदेशविषे मनुष्य देवता नाग किन्नर पशु पक्षी अरु पर्वत कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सो सप्त प्रकारकी सृष्टि है, अरु सप्त प्रकारके जीव हैं, तिनको भिन्न भिन्न श्रवण कर, एक स्वप्न जागृत् हैं, दूसरे संकल्प जागृत् हैं, तीसरे केवल जागृत् हैं, अरु चौथे चिर जागृत् हैं, पंचम दृढ जागृत् हैं, षष्ठ जागृत् स्वप्न हैं, सप्तम क्षीण जागृत् हैं ॥ राम उवाच ! हे भगवन् ! तुमने जो यह सप्त प्रकारकी जीवसृष्टि कही है, सो बोधके निमित्त मुझको खोलकरि कहौ, यह ऐसे हैं, जैसे नदियोंके जलका समुद्रविषे भेद होवै, अरु इन्होंका पूछना भी ऐसे है, जैसे एक जलते फेन बुद्बुदे तरंग वायुकरि होते हैं, सो विस्तार करिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक तौ यह, जो किसी जीवको किसी कल्प अपनी जागृत्विषे सुषुप्ति हुई, तिसविषे जो स्वप्न हुआ तिस स्वप्नविषे उसको हमारी जागृत्का जगत् भासिआया, शब्द अर्थसंयुक्त तिसको सत्य जानकरि ग्रहण करने लगा, उसके लेखे हम स्वप्न नर हैं, परंतु उसके निश्चयविषे नहीं, वह अपनी जागृत् मानता है, हमारा अरु उसका कल्प एक हो गया है, इसीते वह भी जागृत् जानता है, अरु पूर्व कल्पविषे भी उसका शरीर चेतन

फुरता है, परंतु सोया पड़ा है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब वह पुरुष अपने कल्पविषे जागा, तब यह उसको क्या भासै, अरु जब वह न जागै, अरु वहां कल्पका प्रलय हो जावै, तब उसके शरीरकी क्या अवस्था होवै, अरु जब यहां ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तब उस शरीरकी क्या अवस्था होवै, सो क्रम करिकै कहौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब वह पुरुष अपने कल्पविषे जागै, तब यह जागृत् उसको स्वप्न भासै, जब वहां न जागै, अरु उस कल्पकी प्रलय होवै, तब वह जीव वहां चेष्टा करै, अरु जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तब उस शरीर अरु इस शरीरकी वासना इकट्ठी होकरि निर्वाणको प्राप्त होवै, अरु जब ज्ञान न प्राप्त होवै, तब उसी जीवको इस शरीरको त्यागिकरि अपर जगद्भ्रम भासि आवै, आपको पूर्वहीवत् जानै, भावै न जानै, परंतु जगत्भ्रम विना ज्ञान नहीं मिटता ॥ हे रामजी! यह अरु वह दोनों तुल्य हैं, ब्रह्म-सत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशती है ॥ हे रामजी! जैसे गूलरविषे मच्छर होता है, तैसे यह जीव भी भ्रमकरिकै फुरते हैं, सो यह जाग्रत् कही है, जो स्वप्नविषे जागृत् है, स्वप्न जागृत् इसका नाम है, अरु यह पुरुष बैठा है, अरु चित्तकी वृत्ति ठहर गई है ॥ १ ॥ अरु निद्रा नहीं आई तिसविषे मनोराज्य हुआ, तिस मनोराज्यविषे जगत् हुआ, तिसविषे दृढ़ भावना हो गई, अरु पूर्वकी वासना विस्मरण भई अरु यह सत्य भासी अरु मनोराज्यका शरीर रचा वही आधिभौतिकता दृढ हो गई, तिसका नाम संकल्प जागृत् है ॥ २ ॥ आदि परमात्मतत्त्वते फुरा, अरु निश्च-यात्मपदविषे रहा, अरु जगत् जो भासा तिसको संकल्पमात्र जाना. तिसका नाम केवल जागृत् है ॥ ३ ॥ आदि परमात्मतत्त्वते फुरणा हुआ, तिसविषे सृष्टि हुई, तिसको सत्य जानकरि ग्रहण किया, अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु आगे जन्मांतरको प्राप्त हुआ, तिसका नाम चिर जागृत् है ॥ ४ ॥ जब इसविषे दृढ घनीभूत वासना हुई, अरु पापकर्म करने लगा, तिसके वशते स्थावर योनिको पाया, तब तिसका नाम घनी जागृत् है, तिसीका नाम सुषुप्ति जागृत् है ॥ ५ ॥ अरु जब इसविषे संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके विचारकरि बोधको प्राप्त हुआ,

तब यह जागृत् उसको स्वप्न हो जाती है, तिसका नाम स्वप्न जागृत है ॥ ६ ॥ अरु जब बोधविषे दृढ स्थिति भई, तब इसको तुरीयापद कहते हैं, इसका नाम क्षीण जाग्रत् है ॥ ७ ॥ जब इस पदको प्राप्त हुआ, तब परमानंदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! यह सप्त प्रकारके जीव अरु सृष्टि सबही मैं तुझको कही है, तिसको विचारिकारिकै देख जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावै, अरु यह भी क्या कहना है, कि यह जीव है, यह सृष्टि है; सर्व ब्रह्मसत्ता है, दूसरा कछु हुआ नहीं, मनके फुरणे-करि दृश्य भासती है, मनको स्थिर करि देख तो सब शून्य हो जावैगी, अरु शून्य भी न रहैगा, शून्यका कहना भी न रहैगा, इस गिनतीका भी स्मरण करु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तप्रकारजीवसृ-ष्टिवर्णनं नाम शताधिकसप्ततितमः सर्गः ॥ १७० ॥

शताधिकैकसप्ततितमः सर्गः १७१.

सर्वशांत्युपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम जो केवल जागृत्की उत्पत्ति अकारण अकर्मक बोधमात्रविषे कही सो असंभव है, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं संभवता, तैसे आत्माविषे सृष्टि नहीं संभवती, काहेते जो आत्मा निराकार है, अरु निष्क्रियहै, न समवायकारणहै, न निमित्तकारणहै, जैसे मृत्तिका घट आदिकका कारण होती है, तैसे आत्मा सृष्टिका समवायकारण भी नहीं काहेते कि, अद्वैत है, अरु जैसे कुलाल घटादिकका निमित्तकारण होता है, तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्तकारण भी नहीं, काहेते कि अक्रिय है, तिस अकारणक अकर्मकविषे सृष्टि कैसे संभवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तू धन्य है, अब तू जागा है, आत्माविषे सृष्टिका अत्यंत अभाव है, काहेते जो निर्विकार है, निष्क्रिय है, न अंतर है, न बाहिर है, न ऊर्ध्व है, न अध है, केवल बोधमात्र है, तिसविषे न कोऊ आरंभ है, न परिणाम है, केवल बोधमात्र अपने आपविषे स्थित है, जैसे सूर्यकी

किरणोंविषे जल कल्पित है, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है ॥ महाबुद्धिवान्! आत्मा अकारणरूप जगत् है, तिसते कार्यरूप जगत् कैसे होवै, तिसते केवल जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, तिसके अभावते सबका अभाव है, न कछु उपजा है, न भास होता है, उपदेश अरु तिसका अर्थ आरोपित है, अरु कछु हैही नहीं, अरु आरोपित शब्द भी जिज्ञासीके जतावनेनिमित्त कहा है, है कछु नहीं, आत्मा सदा अद्वैतरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब आत्माविषे सृष्टिही नहीं, तौ पिंडाकार कैसे भासते हैं, उनको किसने रचा है, अरु मन बुद्धि इंद्रियोंका भान क्या होता है, चेतनको किसने मोहित किया है, भूतको स्नेह रागके बंधनकरि अरु आत्माविषे आवरण कैसे होता, सो समुझायकरि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! न कोऊ पिंड है, न किसीने इसको किया है, न कोऊ भूत है, न किसीने इनको मोहित किया है, अरु न किसीको आवरण किया है, भ्रांति करिकै आवरण भासता है, जब आत्माको आवरण होता, तब किसीप्रकार नष्ट होता, परंतु आवरणही नहीं तब नष्ट कैसे होवै ॥ हे रामजी ! जिसको आवरण होता है, तिसका स्वरूप एक अवस्थाको त्यागिकरि दूसरी अवस्थाको ग्रहण करता है, सो आत्मा तौ सदा ज्ञानस्वरूप है, अन्य अवस्थाको कदाचित् नहीं प्राप्त भया, सदा ज्योंका त्यों है, तिसविषे मन बुद्धि आदिक कछु बने नहीं, तब मोह कहां अरु आवरण कहां, सदा एकरस आत्मतत्त्व है, ज्ञानीको ऐसे भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकारका जगत् भासता है, आत्मा ज्ञानकालविषे भी एकरस है, अज्ञानकालविषे भी एकरस है, तिसविषे दो दृष्टि होती हैं, ज्ञानदृष्टिकरि सर्व आत्मा है, अज्ञानदृष्टिकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जैसे एक समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, सो उनका उत्पत्ति अरु लीन होना भी जलविषे है, जलते इतर कछु नहीं. तैसे जेते कछु विचार अरु इच्छा भासते हैं, सो सब आत्माविषे होते हैं, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, विकार अविकार सब परमात्मतत्त्व है, अरु समुद्रविषे लहरी बुद्बुदे परिणामकरि होते हैं, आत्मा

सदा ज्योंका त्यों है नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो भी वही रूप है, जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण होते हैं, सो सब स्वर्णही है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, भ्रांतिकरिकै नानाप्रकारकी संज्ञा होती है, जैसे कोऊ पुरुष जागृत् बैठा होवै, अरु नींद आएते स्वप्नसृष्टि भासि आवै, सो जागृत्के अज्ञानकारि स्वप्नसृष्टि भासी है, जब निद्रा निवृत्त भई तब जागृत् भासती है, सो जागृत भी परमात्वतत्त्वके अज्ञानकारि भासती है, जब तिस पदविषे जागैगा, तब जागृत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे रामजी ! संसार अपने फुरनेकरिकै हुआ है, जब फुरणा दृढ भया, तब दुःख पाने लगा, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकारि आपही दुःख पाता है, तैसे यह जीव अपने फुरणेकारि आपही दुःख पाता है, जब आत्मबोध होता है, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है, सो भावनामात्र है, जब यही भावना उलटकारि आत्माकी ओर आवै तब जगद्भ्रम मिटि जावैगा, अरु देह इंद्रियादिक जो आत्माके अज्ञान करिकै फुरे हैं, अरु तिनविषे अहंकार हुआ है, सो आत्मभावनाकारि निवृत्त हो जावैगा, जैसे वर्षाकालविषे घट्ट मेघ होते हैं, जब शरत्काल आया तब मेघ नष्ट हो जाते हैं, तैसे जब बोधरूपी शरत्काल आता है, तब अनात्मविषे आत्मअभिमानरूपी मेघ नष्ट हो जाता है, अरु परम स्वच्छता प्रगट होती है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् पिंडरूप होकारि भासता है सो सब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, तब पिंडबुद्धि जाती रहैगी, जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघकी घनता जाती रहती है, अरु आकाशरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह भ्रांतिकी कठिनता तबलग भासती है, जबलग स्वरूपते सुषुप्तिवत् है, जब जागैगा तब जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नजगत् आकाशरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! जेते कछु विकार अरु क्षोभ अरु नानात्व भासते हैं, सो प्रमादकारि भासते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब सब क्षोभविकार मिटि जाते हैं, सर्व प्रपंच एकताको प्राप्त होता है, द्वैतभाव मिटि जाता है, जैसे

प्रज्वलित अग्निविषे घृत अथवा इंधन अरु मिष्टान्न जो कछु डालिये सो एकरूप हो जाता है, तैसे जब बोधकी प्राप्ति होती है, तब सब जगत् एकरूप हो जाता है, जैसे नानाप्रकारके भूषण अग्निविषे डारिये तब एक स्वर्णही हो जाता है, अरु भूषणकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे मनको जब आत्मबोधविषे स्थित किया, तब जगत् संज्ञा नहीं रहती, केवल परमात्मतत्त्व हो जाता है ॥ हे रामजी ! इंद्रियां जगत् तबलग भासता है जबलग स्वरूपते सोया पडा है, जब जागैगा, तब संसारकी सत्यता मिटि जावैगी, अरु इच्छा भी कोऊ न रहैगी, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है, अरु तिस स्वप्नते जागता है, तब स्वप्नके स्वर्णकी इच्छा नहीं करता, जो मुक्तिको प्राप्त होवै, काहेते जो उसकी सत्यता नहीं भासती तौ इच्छा कैसे करै, तैसे जबलग स्वरूपते सोया पड़ा है, तबलग संसारके पदार्थको मिथ्या नहीं जानता, तब इच्छा करता है, अरु जब जागैगा, तब सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, जब ज्ञानकरिकै जगत्को मिथ्या स्वप्नवत् जानैगा, तब इच्छा भी न करैगा ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तकी चेष्टा सब दृष्टि आती है, परंतु उसके हृदयविषे जगतकी सत्यता नहीं, काहेते जो आत्मानुभव उसको हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जिसने सूर्यकी किरणैं जानी तिसको जल नहीं भासता, किरणैं भासतीं हैं, अरु जिसने किरणैं नहीं जानी, तिसको जल भासता है, अरु भासता दोनोंको तुल्य है, परंतु ज्ञानवान्के निश्चयविषे जगत् जलवत् नहीं, अरु अज्ञानीको जगत् जलवद् दृढ भासता है ॥ हे रामजी ! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है, तिसविषे ज्ञानरूपी जल डालिये तब निवारण हो जावै, जब मन निर्वाण हुआ तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहां जगत्का अभाव है, अरु अहंकारका भी अभाव है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अकेवल उदय अस्त दोनों नहीं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे पदको प्राप्त हुआ है, सो कृतकृत्य होता है, अरु रागद्वेषतें रहित परमशांतपदको प्राप्त होता है, अहंकार निर्वाण हो जाता है, केवल निर्वाच्यपदको प्राप्त होता है जहां उत्थान कोई नहीं॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत पदार्थ कोऊ नहीं, परंतु मनके संकल्पकरि भासते हैं, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है कि, एती पुतलियाँ इस स्तंभ-

विषे हैं, सो उसके निश्चयविषे हैं, स्तंभविषे पुतलियोंका अभाव है, तैसे मनके निश्चयविषे जगत है, आत्माविषे बना कछु नहीं, जिस पुरुषका मन सूक्ष्म हो गया है, तिसको जगत् स्वप्नवत् भासता है, जब स्वप्नवत् जाना तब इच्छा किसकी करै, अरु त्याग किसका करै ॥ हे रामजी ! जगत् तबलग भासता है, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, तब आत्मानुभव होवैगा, जब जगत् रससंयुक्त कदाचित् नहीं भासैगा, जैसे धूप अरु छाय इकट्ठी नहीं होती, तैसे ज्ञान अरु जगत् इकट्ठे नहीं होते, आत्मज्ञान हुए जगत्का अभाव हो जाता है, जैसे पूर्वकाल वर्तमानकालविषे नहीं होता है, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है, विचार कियेते इसका अभाव हो जाता है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो मिथ्या है, जैसे निद्रा दोष करिकै स्वप्नविषे तीनों भासते हैं, अरु जागेते अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरिकै यह भासते हैं, अरु ज्ञान-करिकै त्रिपुटीका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जैसे मनोराज्यकरिकै मनविषे जगत् स्थित होता है, तैसे यह पर्वत नदियाँ देश काल जगत् भी जान, ताते इस भ्रमका त्याग करि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत् भ्रमकरिकै उदय हुआ है, विचार कियेते नष्ट हो जावैगा, अरु परम शांति तुझको प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! जिसका मन उपशमभा-वको प्राप्त हुआ है सो पुरुष मौनी है, वह निरोधपदको प्राप्त हुआ है, वह संसारसमुद्रको तरा है, अरु कर्मोंके अंतको प्राप्त हुआ है, तिसको संपूर्ण जगत् पहाड़ नदियाँ संयुक्त लीन हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुए विद्य-मान जगत् भी वह शांत अंतःकरण है, परम शांतिरूपी अमृतकरि तृप्त है, वह ज्ञानवान् निरावरण होकारि स्थित होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वशांत्युपदेशो नाम शताधिकैकसप्ततितमः सर्गः ॥ १७१ ॥

शताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः १७२.

ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस क्रमकरि बोध आत्मा जगत्रूप हो भासता है, सो क्रम भेदके निवृत्ति अर्थ बहुरि मुझको कहौ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी ! जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो चित्तविषे निश्चय होता है, ज्ञानवान्को भी चित्तकरि भासता है, अरु अज्ञानीको भी चित्तकरि भासता है, परंतु एता भेद है जो अज्ञानी जगत्को देखता है, तब सत् मानता है, अरु ज्ञानवान् शास्त्रयुक्तिकरि देखता है, पूर्व अपर अर्थके विचारकरि भ्रांतिमात्र जानता है, अरु अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो कछु हैनहीं, तैसे अविद्या कछु वस्तु नहीं, जेता कछु स्थावर जंगम जगत् भासता है, सो कल्पके अंतविषे नष्ट हो जाता है, जैसे समुद्रते एक बुंद निकासिये तब नष्ट हो जाती है, काहेते जो विभागरूप है, तैसे माया अविद्या सत् असत् आदिक सर्व संबंधका अभाव हो जाता है, काहेते जो सब शब्द जगत्विषे हैं, जब जगत् लीन भया, तब शब्द कहाँ रहे, अरु वास्तवते न कछु उपजा है, न लीन होता है, एकही चिदाकाश है, अरु जब तू कहै देह तौ उपजी है सो देह अरु तत्त्व स्वप्नवत् तू जान, अरु जो तू कहै, जगत् प्रलयविषे लीन होता है, तौ कछु है क्यों, तब नाश वही होता है, जो असत्य होता है, अरु जो तू कहै, असत्य है तौ बहुरि क्यों उपजता है, तब उपजी वस्तु भी सत् नहीं होती, अरु जो तू कहै महाप्रलयविषे चिदाकाशही रहता है सोई जगत्रूप हो भासता है, तौ जगत् कछु इतर वस्तु नहीं भया, बोधमात्रही इसप्रकार हो भासता है, जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं तैसे जिसते जगत् भासता है, सो वहीरूप है, अपर कछु उपजा नहीं, जो उपजा नहीं तौ विकार अरु भेद कैसे होवै, ताते बोधमात्रही अपने आपविषे स्थित है, कारणकार्यते रहित परम शांतरूप आत्मसत्ता स्थित है, वही जगत्-रूप होकरि भासता है, देश काल पदार्थ सब महाप्रलयरूप हैं, जब महाप्र-

लय होता है, तब ब्रह्मदेवपर्यंत सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वीका नाम भी नहीं रहता, अर्थ भी नहीं रहता, केवल बोध मात्र बोधते भी रहित शेष रहता है, परम शांतरूप है, तिसविषे वाणी अरु मनकी गम नहीं, केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसको तत्त्ववेत्ते अनुभव कहते हैं, अपर कोऊ जान नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्राते जागा है, सो निराभास होता है. अर्थ यह कि, चित्तते चैत्यका संबंध टूटि जाता है,अरु परम प्रकाशरूप आत्मपद तिसको प्राप्त होता है, अरु स्वभावविषे स्थित होता है, परभाव जो प्रकृति है, तिसका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जेता,कछु जगत् परभावकरिकै भिन्न भिन्न भासता था, सो सब एकरूप हो जाता है, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं,अरु जागेते सब एकरूप हो जाते हैं, अपना आपही भासता है, तैसे जब इसको आत्माका अनुभव हुआ, तब जगत् अपना आपही भासता है ॥ हे रामजी ! एकरूप तब हो भासता है, जब अपर कछु नहीं बना, जैसे स्वर्णके भूषण अग्निविषे डारिये तब अनेक भूषणका एक पिंड हो जाता है, अरु एकही आकार भासता है, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ, तब सर्व एकरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! भूषणोंके होते भी स्वर्णही था, इसीते एकरूप हो गया, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ, तब सर्व एकरूप हो भासता है, ताते जगत्के होते भी जगत् आत्मरूप है, जगत है नहीं अरु हुएकी नांई भासता है, अरु भिन्न भिन्न दृष्टि आता है,जैसे सोम जलविषे तरंग हैं नहीं,अरु भासते हैं,तौ भी जलरूप है, असम्यक्दृष्टिकरिकै भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे रामजी ! ज्ञानीको जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्ति तुल्य है जैसे भूषणके होते भी स्वर्ण है, अरु भूषणके अभाव हुए भी स्वर्ण है, तैसे ज्ञानवान्को देहके होते भी ब्रह्म है, अरु देहके अभाव हुए भी ब्रह्म है, अरु जो अज्ञानी है, तिसको नानाप्रकारका जगत् फुरता है, सो अज्ञानी कौन है, जिसको मनका संबंध है ॥ हे रामजी ! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरता है, जैसे काष्ठके स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है, सो अपरको नहीं भासतीं, उसीके मनविषे होतीं हैं, तैसे भिन्न भिन्न पदार्थरूपी पुतलियाँ अज्ञानीके मनविषे फुरतीं हैं, अरु ज्ञानवान्को नहीं भासतीं है

अरु जब काष्ठका आकार होता है, तब चितेरा पुतलियाँ कल्पता है, अरु यह आश्चर्य देख कि, मनरूपी ऐसा चितेरा है, आकाशविषे पदार्थ-रूपी पुतलियाँ कल्पता है, खोदेविना भासते हैं॥ हे रामजी! अपर दूसरा कछु नहीं बना, जैसे किसी पुरुषने कागजकेऊपर पुतली लिखी होय, सो कागजरूप है, अपर कछु नहीं बनी, तैसे वह जगत् भी वहीस्वरूप है॥ हे रामजी! जब तुझको आत्मपदका अनुभव होवैगा, तब जेते कछु जगत्के शब्द अर्थ हैं; सो सब उसीविषे भासैंगे, जैसे जिनने स्वर्णको जाना, तिनको भूषणके शब्द अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसे जब आत्म-पदको जानैगा,तब तुझको जगत्के शब्द अर्थ आत्माहीविषे दृष्टि आवैंगे॥ हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप है, इन जीवविषे अपनी सृष्टि है, सो जबलग फुरना है तबलग सृष्टि है, जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आता है, तब सब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है, आकाश काल दिशा पदार्थ सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, अपने आपविषे स्थित है, अद्वैत चिन्मात्र पद है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनं नाम शताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः॥ १७२॥

शताधिकात्रिसप्ततितमः सर्गः १७३.

निर्वाणवर्णनम्।

राम उवाच॥ हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ, दृक् अरु दृश्यका संबंध कैसे हुआ है, अरु कालविषे कालत्व कैसे फुरा है आकाश-विषे शून्यता कैसे हुई है, वायुविषे वायुता कैसे हुई है, जड़विषे जड़ता अरु भूतविषे भूतता अरु संकल्पविषे स्पंद अरु सृष्टिविषे सृष्टिता कैसे हुए हैं, मूर्त्तिविषे मूर्त्तिता, भिन्नविषे भिन्नता, दृश्यविषे दृश्यता किसते हुए हैं, सो मुझको कहो. काहेते कि, अर्धप्रबुद्धको बोधके निमित्त कहना योग्य है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वरते आदिक जो सर्व पदार्थ हैं सो प्रलयकालविषे जिसमें लीन होते हैं, तिसका नाम

प्रलय है, तिसका शब्द यह है, जो प्रलय शब्द है, अरु सब निर्वाण हो जाते हैं, यह अर्थ है ॥ हे रामजी ! ऐसा जो अनंत आकाश है, सो सम है, अरु शुद्ध है, आदि अंतते रहित है, अरु मध्यते भी रहित है, चेतन-घन अद्वैत है, जहाँ एक अरु दो शब्द भी नहीं, जिसविषे आकाश भी पहाड़वत् स्थूल है, ऐसा सूक्ष्म है, अरु है नहीं, दोनों शब्दते रहित अपने आपविषे स्थित हैं, जैसे पाषाणका शिलाकोश होता है, तैसे चित्तके फुरणेते रहित है, ऐसे परमात्मतत्त्व अकारणते सृष्टिका उपजना कैसे कहिये, जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है, तैसे ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! एक निमिषके फुरणेकरि जो अनेक योजनपर्यंत वृत्ति जाती है, तिसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है, तिसविषे तू स्थित होकरि देख कि, जगत् कहाँ है, अरु जगत्की उत्पत्ति कहाँ है ॥ हे रामजी ! उत्पत्ति जो होती है, सो समवायकारण-करि अरु निमित्तकारणकरि होती है,सो आत्मा निराकार अद्वैत सन्मात्र है, न समवायकारण है, न निमित्तकारण है, ताते आत्मा अच्युत है, सो स्वरूपते कदाचित् नहीं गिरा, तौ समवायकारण कैसे होवै, अरु निमित्तकारण भी नहीं, जो निराकार है, ताते आत्माविषे जगत् कोई नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, अरु अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तु होवै नहीं, अरु प्रत्यक्ष भासै, सो अविद्या-करि जानिये ॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु तिसविषे तरंग आवर्त्त उठते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, जब तू अपने आपविषे स्थित होवैगा, तब जगत्का शब्द अर्थ इतर न भासैगा, काहेते जो दूसरी वस्तु कछु है नहीं ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अमूर्त है, तिसविषे यह मूर्त्तियां कैसे उत्पन्न होवैं, ताते यह भ्रांतिमात्र है, जो वस्तु कारणते उपजी होवै, सो सत् होती है, अरु जो कारणविना दृष्टि आवै, सो भ्रममात्र जानिये, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तिसका कोऊ कारण नहीं, ताते मिथ्याभ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् मिथ्यामात्र है, विचार कियेते नहीं रहता ॥ हे रामजी !

आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं, सो सब शून्य हैं, आत्माविषे न उदय हुए हैं, न अस्त होते हैं, ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिक-त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ १७३ ॥

शताधिकचतुःसप्ततितमः सर्गः १७४.

द्वैतैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे ब्रह्मरूपी आकाश अपने आपविषे स्थित है, सो कैसे किसीका कारण होवै, कारण काय तव होता है, जब द्वैत होता है, अरु आरंभ परिणाम होता है, सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, अरु निर्गुण है, तिसविषे आरंभ कैसे होवै ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सव काष्ठमौन है, काष्ठमौन कहिये जहां मनका फुरणा शून्य है ॥ हे रामजी ! जो कछु द्वैत भासता है, सो भ्रममात्र है, अरु जो कछु हुआ होता तौ ज्ञानीको भी प्रत्यक्ष होता,सो ज्ञानकालविषे नहीं भासता, ताते भ्रममात्र है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी जलते आदि लेकारि जो पदार्थ है, सो इनका फुरणा स्वप्नकी नांई है, जैसे स्वप्नविषे चेष्टा होती है, सो पास वैठेको नहीं भासती, ताते है नहीं, तैसे सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है ॥ हे रामजी ! जैसे शशेके शृंगका कारण कोऊ नहीं, तैसे जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो कछु होवै तौ कारण भी होवै, जो होवै नहीं तौ किसका कारण कौन कहिये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वटका वीज होता है, तिसविषे वृक्षका भाव होता है, कालपायकरि वीजते वृक्ष हो आता है, तैसे इस जगत्का कारण परमाणु क्यों न होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सूक्ष्मविषे जो स्थूल होता है, सो संकल्पमात्र होता है, मैं भी कहता हौं, सूक्ष्मविषे स्थूल होता है, परंतु संकल्पमात्र होता है, कछु सत् नहीं होता, जो कहिये सत्य होता है, तौ नहीं संभवता, जैसे राईके कणकेविषे सुमेरु पर्वतका होना नहीं संभवता, तैसे सूक्ष्म

परमाणुते जगत्का उत्पन्न होना असंभव है ॥ हे रामजी ! सूक्ष्म परमाणुका कार्य भी जगत् तब कहिये, जब सूक्ष्म अणु भी आत्माविषे पाय जावै, आत्मा तौ अद्वैत है, तिसविषे एक अरु दो कहनेका अभाव है, आत्माविषे जानता भी नहीं, केवल आत्मतत्त्वमात्र है; आधार आधेयते रहित है, वीज भी तब परिणमता है, जब उसको जल देता है, अरु रक्षा करनेका स्थान होता है, अरु आधार आधेयते रहित है, केवल अपने भावविषे स्थित है, अद्वैत सत्तामात्र है, जैसे वंध्याके पुत्रका कारण कोऊ नहीं, तैसे जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो वंध्याका पुत्रही नहीं, तौ तिसका कारण कौन होवै; तैसे जगत् है नहीं, तौ ब्रह्म इसका कारण कैसे होवै, अरु जिसको तू दृश्य कहता है, सो द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि स्थित भया है, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टाही दृश्यरूप होता है, तैसे यह जाग्रत् दृश्यरूप होकरि आत्माही स्थित है ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणैं जलाभास होकरि स्थित होतीं हैं, तैसे ब्रह्मही जगत् आकार होकरि दृष्टि आता है, दृश्य भी कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे समुद्रही तरंग आवर्त्तरूप होकरि भासता है, तैसे अनंतशक्ति होकरि परमात्मसत्ता स्थित है ॥ हे रामजी ! मैं अरु तू यह जगत्के पदार्थ सब फुरणेमात्र हैं, जैसे संकल्प नगर होता, जो मनकारि रचा है, तैसे यह जगत् आत्माविषे कछु बना नहीं, केवल अपने आपविषे ब्रह्म स्थित है, हमको तौ सदा वही भासता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे यह जगत् न उदय हुआ न अस्त होता है, सदा ज्योंका त्यों निर्मल शांतपद है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ १७४ ॥

शताधिकपंचसप्ततितमः सर्गः १७५.

परमशांतिनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्का भाव अभाव जड चेतन स्थावर जंगम सूक्ष्म स्थूल शुभ अशुभ कछु हुआ नहीं, तौ मैं तुझको

क्या कहौं, जो यह कार्य है, अरु इसको यह कारण है, यह हुआ नहीं, बहुरि कारण कार्य कैसे होवै; जो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु होवै, सो कारण कार्य कैसे होवै, केवल अपने आपविषे स्थित है, जो है अरु नहींकी नांई स्थित हुआ है, तिसविषे संवेदन है, जो जानना तिसके फुरणेकरिकै जगत् भासता है, सो फुरणा चेतनमात्रका विवर्त है, तिस विवर्त कारिकै जगद्भ्रम हुआ है, जब यही फुरणा उलट-करि अपनी ओर आता है, तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, अरु जब फुरता है, तब ध्यान ध्याता ध्येयरूप होकरि स्थित होता है, इसहीका नाम जगत् है, इसीविषे बंध भी होता है, अरु मुक्त भी होता है, आत्माविषे न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी! जब तरंग घनभूत होकरि वहते हैं, तब एक नदी होकारि चलती है, तैसे जब वासना दृढ होती है, तब जगत्‌रूप होकरि स्थित होता है, अरु भासता है, जब ऐसी वासना दृढ हुई तब रागदोष संकल्पकरि बंधायमान होता है, अरु जब वासना क्षय होती है, तब जगत्‌का अभाव हो जाता है, स्वच्छ आत्मा भासता है, जैसे शरत्कालका आकाश स्वच्छ होता है, तिसते भी निर्मल भासता है ॥ हे रामजी! यह जीव जो मरिजाता है, सो मरता नहीं मुआ तब कहिये जो अत्यंत अभावको प्राप्त होवै, अरु जीनेको न प्राप्त होवै, बहुरि जगत् न भासै, ताते यह मरना नहीं, काहेते जो बहुरि जगत् भासता है, यह मरना सुषुप्तिकी नांई भया, जैसे सुषुप्तिते जागे हुए जगत् भासता है, अरु वही चेष्टा करने लगता है; जैसे स्वप्न अरु जाग्रत होता है, तैसे मृत्यु अरु जन्म भी हैं, ताते मरना अरु जन्म हुआ, जब मरनेका शोक उपजै तब तिसविषे जीवनेका सुख आरोपिये, अरु जब जीवनेका हर्ष उपजे, तब तिसविषे मरणेका शोक अरोपित है, तब दोनों अवस्था शरीरकी सम रचीं हैं, जब यह अवस्था शरीरकी जानी, तब तेरा अंतर शीतल हो जावैगा, जब संवेदन फुरणेका अत्यंत अभाव हुआ, तब परमशांत हुए ध्यान ध्याता ध्येय तीनोंका अभाव हो जावैगा अरु अज्ञान भी न रहैगा, जब ऐसा अभाव हुआ, तब पाछे स्वच्छ निर्मल

पद रहैगा ॥ हे रामजी ! अब भी निर्मल पद है, परंतु भ्रमकरिकै पदार्थ सत्ता भासती है, जैसे निद्रादोषकरिकै केवल अनुभवविषे पदार्थसत्ता होकरि भासती है, अरु जागेते कहता है, केवल भ्रममात्रही थे, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र जान; परमार्थस्वरूपके प्रमादकरिकै यह जगत् भासता है, अरु स्वरूपविषे जागेते इसका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे अणहोते राज्य देखता है, तैसे तू यह जगत् जान, इसका फुरणाही इसको बंधनका कारण है, जैसे घुराण आपही स्थान बनाती है, अरु आपही फँस मरती है, अरु जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करिकै मुखते अपरका अपर बोलता है, अरु तिसकरिकै बंधायमान होता है, तैसे अपने संकल्पही करिकै बँधता है, जब संकल्प मिटै तब परमानंदको प्राप्त होवै, अरु परम स्वच्छ शांत उदय होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमशांतिनिर्वाणवर्णनं नाम शताधिकपंचसप्ततितमः सर्गः ॥ १७५ ॥

शताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः १७६.

आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जहां आकाश होता है, तहां शून्यता भी होती है, अरु जहां आकाश होता है, तहां आकाश भी होता है, अरु जहां आकाश है, तहां पदार्थ भी होते हैं, तैसे जहां चेतनसत्ता है, तहां सृष्टि भी भासती है, परंतु कैसे भासती है, जो बनी कछु नहीं, अरु सदा रहती है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल कदाचित् नहीं उत्पन्न भया, अरु जलाभास सदा रहता है. काहेते कि, उसीका विवर्त है, तैसे सृष्टि आत्माका विवर्त है, जहाँ चेतनसत्ताहै, तहाँ सृष्टि भी है, इसीपर एक इतिहास तुझको कहता हौं, सो कैसा इतिहास है, जिसके सुननेते अरु समुझनेते जरामृत्युते रहित होवै, परम सुंदर इतिहास है, अरु चित्तको मोहनेहारा आश्चर्यरूप है, अरु प्रकृतरूप है, अरु मेरा देखा हुआ है ॥ हे रामजी ! एक कालमें मेरा चित्त जगत्ते उपरत हुआ, जो किसी एकांत स्थानविषे जायकरि

समाधान करौं, जगत् कैसा है, जो मोहरूप व्यवहार करिकै दृढ हुआ है, अरु जेता कछु जानने योग्य है, तिसको मैं जाननेहारा हौं,परंतु व्यवहारकरिकै भी शांतरूप होऊं, ऐसे मैं विचारत भया,जो निर्विकल्प समाधि करौं, अरु परम शांतिको प्राप्त होऊं जो आदि अंत मध्यते रहित परमानंदस्वरूप है, अरु अविनाशी पद है, तिसविषे विश्राम करौं ॥ हे रामजी ! तब मैं भी ज्ञानवृत्तिवान् परमात्मस्वरूपही था, परंतु चित्तकी वृत्ति जब जगत्भावते उपरत भइ, तिस कारणते व्यवहारविषे भी एकांत समाधिकी इच्छा करी, जहां क्षोभ कोऊ न होवै, तहां स्थित होवैं, ऐसे विचार करिकै मैं आकाशविषे उड़ा एक देवताका पर्वत था, तहां जाय बैठा, वहां बहुत प्रकारके इंद्रियांके विषय देखे, अंगना गायन करतीं हैं, अरु चमर शिरपर होते हैं, अरु मंद मंद पवन चलता है, वह विषय भी मुझको आपातरमणीय भासै, किसी कालविषे किसीको सुखदायक नहीं, समाधिवालेके यह शत्रु हैं; तिनको विरस जानकरि बहुरि मैं उड़ा, एक और पर्वतकी कंदरा थी, अरु बहुत सुंदर थी, तहां आय प्राप्त भया, सुंदर वन है, अरु सुंदर पवन चलता है, ऐसे स्थानको मैं देखा, अरु मुझको शत्रुवत् भासा, काहेते जो पक्षीके शब्द होते हैं, अरु पवनका स्पर्श होता है, इत्यादिक अपर भी विषय हैं, तिनको देखिकरि मैं आगे चला, नागके देश देखे, अरु सुंदर नागकन्या देखी, अरु बहुत सुंदर इंद्रियोंके विषय भी देखे, सो विषय भी मुझको सर्पवत् भासैं, जैसे सर्पके स्पर्श कियेते विषकारि अनर्थको प्राप्त होता है, तैसे मुझको विषय भासैं, बहुरि आगे चला ॥ हे रामजी ! जेते कछु इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब अनर्थके कारण हैं, तिनविषे प्रीति मूढ अज्ञानी करते हैं, बहुरि समुद्रके किनारे गया, तिसके पास जो पुष्पके स्थान हैं, तिनविषे विचरा, कंदरा अरु वनको देखत भया, पर्वत पाताल दशों दिशा देखता फिरा; परंतु एकांतस्थान मुझको कोऊ दृष्ट न आया, तब मैं बहुरि आकाशको उड़ा, आकाशविषे पवन अरु मेघके स्थान लंघता गया, अरु देवगण विद्याधर अरु सिद्धके स्थान लंघता गया; आगे देखौं तौ केई ब्रह्मांड भूतके उड़ते

हैं, अपूर्व भूत देखे, अरु नानाप्रकारके स्थान देखे, अरु गरुडके स्थानको लंघता गया, कहूं सूर्यका प्रकाश होता है, तिसको भी लंघता गया, कहूं ऐसे देखा कि, सूर्यका प्रकाशही नहीं, बहुरि चंद्रमाके मंडलको लंघा, आगे एक अग्निका स्थान था, तिसको मैं लंघिकरि महा आकाशविषे गया, जहां इंद्रियोंको रोकना भी न रहै, काहेते जो इंद्रियोंके विषय कोऊ दृष्ट न आवैं, एक आकाशही आकाश दृष्ट आवै, अरु वायु अग्नि जल पृथ्वी चारोंका अभाव है ॥ हे रामजी ! तिस स्थानविषे मैं गया, जहां भूत स्वप्नवत् भी दृष्ट न आवैं, अरु सिद्धकी गम भी नहीं, तहां जायकरि मैं एक संकल्पकी कुटी रची अरु तिसकेसाथ कल्पवृक्ष फूल पत्रोंकरि पूर्ण रचे, तिस सुंदर कुटीके एक ओर छिद्र रक्खा मेरा जो सूक्ष्म संकल्प था सो प्रत्यक्ष आनि हुआ, तिस कुटीको रचकरि तिसविषे प्रवेश किया अरु संकल्प किया जो सौ वर्षपर्यंत मैं समाधिविषे रहौंगा, उसते उपरांत समाधिते उतरौंगा, ऐसे विचारकरि मैं पद्मासन बांधा, अरु समाधिविषे स्थित भया, अरु परमशांतिविषे स्थित भया, अरु जहां कोऊ क्षोभ नहीं, तिस निर्विकल्प समाधिविषे सौ वर्ष जब व्यतीत भये, तब वह जो भावी थी समाधिके उतरनेकी, सो संकल्प आनि फुरा, जैसे पृथ्वीविषे बीज बोया हुआ काल पायकरि अंकुर लेता है, तैसे संकल्प आनि फुरा, प्रथम प्राण आनि फुरे, जैसे सूखा वृक्ष वसंतऋतुविषे फुरि आता है, तैसे प्राण फुरि आए, तब ज्ञान इंद्रिय प्रगटि आईं, जैसे वसंत ऋतुविषे फूल खिल आते हैं, तैसे ज्ञानइंद्रिय खिल आईं बहुरि स्पंद जो है अहंकाररूपी पिशाच, सो आनि फुरा कि, मैं वसिष्ठ हौं, ऐसा जो अहंकाररूपी पिशाच अरु इच्छारूपी तिसकी स्त्री सो आनि फुरे ॥ हे रामजी ! सो वर्षा मुझको ऐसे व्यतीत हुआ, जैसे निमेषका खोलना होता है, काल भी बहुत प्रकारकरि व्यतीत होता है, किसीको थोड़ा हो जाता है, अरु किसीको बहुत हो जाता है, सुखी होता है, तब बहुत काल भी थोड़ा हो भासता है, अरु दुःखीको थोड़ा काल भी बहुत हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस समाधिका जो मैं वर्णन किया, सो यह शक्ति सब जीवविषे है, परंतु

सिद्ध नहीं होती काहेते जो नानाप्रकारकी वासनासाथ अंतःकरण मलीन है, जब अंतःकरण इनका शुद्ध होवै, तब जैसा संकल्प करै तैसा सिद्ध होवै, अरु मलिन अंतःकरणवालेका संकल्प सिद्ध नहीं होता॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीवासिष्ठसमाधिवर्णनं नाम शताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः ॥ १७६ ॥

शताधिकसप्तसप्ततितमः सर्गः १७७.

विदितवेदाहंकारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम निर्वाणस्वरूप हौ, तुमको अहंकार रूपी पिशाच कैसे फुरा, यह संशय मेरा दूर करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै, जबलग शरीरका संबंध है, तबलग अहंकार दूर नहीं होता. काहेते कि, जहां आधार होता है, तहाँ आधेय भी होता है, अरु जहां आधेय होता है, तहां आधार भी होता है, तैसे जहां देह होती है, तहां अहंकार भी होता है, अरु जहां अहंकार होता है, तहां देह भी होती है ॥ हे रामजी ! अहंकारविना शरीर नहीं रहता सो अहंकार अज्ञानरूपी बालकने कल्पा है, अरु ज्ञानीविषे जो विशेषता है सो श्रवण करु, तिसके जाननेते अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह अहंकार अविद्याकरि कल्पा है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तुते मिथ्या होवै, अरु भासै सो अविद्या है, अरु जो अविद्याही मिथ्या है तौ तिसका कार्य अहंकार कैसे सत्य होवै, यह मिथ्या भ्रमकरिकै उदय हुआ है, जैसे भ्रमकरिकै वैताल वृक्षविषे भासता है, तैसे भ्रमकरिकै अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है, अरु इसका कारण अविचार सिद्ध है, विचार कियेते इसका अभाव हो जाता है, जहाँ जहाँ विचार होता है, तहाँ तहाँ अविद्या नहीं रहती, जैसे जहाँ दीपक होता है, तहाँ अंधकार नहीं रहता, दीपकके जागते अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे विचारके उदय हुए अविद्याका अभाव हो जाता है, जो

वस्तु विचार कियेते न रहै सो मिथ्या जानिये, जो आपही मिथ्या है, तिसका कार्य कैसे सत्य होवै ताते अहंकारको मिथ्या जान ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वृक्षका कारण कोऊ नहीं, तैसे अहंकारका कारण कोऊ नहीं, मनसहित जो षट् इंद्रिय हैं, शुद्ध आत्मा तिनका विषय नहीं, काहेते कि सो साकार हैं, अरु दृश्य हैं, साकारका कारण निराकार आत्मा कैसे होवै, जो कछु आकार है सो सब मिथ्या है, जो बीज होता है, तिसते अंकुर उत्पन्न होता है, तब जानता हैकि, बीजते अंकुर उत्पन्न हुआ है, परंतु बीजही न होवै तौ तिसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न होवै, तैसे जगत्का कारण संवेदनही न होवै, तौ जगत् कैसे होवै, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा होवै तौ तिसका कारण भी मानिये, जो दूसरा चंद्रमाही न होवै, तिसका कारण कैसे मानिये ॥ हे रामजी ! ब्रह्म आकाश अद्वैत है, अरु शुद्ध है फुरनेते रहित है, अरु अच्युत है अविनाशी है, सो कारण कार्य कैसे होवै ॥ हे रामजी ! पृथ्वी आदिक तत्त्व सो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, भ्रमकरिकै भासते हैं, केवल शुद्ध आत्मा अपने आपविषे स्थित है, अरु जो तू कहै अविद्यमान हैं, तौ भासते क्यों हैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अनहोती सृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भी अनहोता भासता है, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे अनहोते वृक्ष भासते हैं, इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर रचि लीजै, तब उसविषे चेष्टा भी होती है, परंतु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है, वास्तव अर्थाकार कछु नहीं होता, परंतु अपने कालविषे सत् भासता है, जब संकल्पका लय होता है, तब उसका भी अभाव हो जाता है, तब आकाशके वृक्षकी नाई हुआ क्यों, जो आकाशके वृक्ष भावनाकरि भासते हैं, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है, स्वरूपते कछु नहीं, जो विचार करि देखिये तौ इसका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्व अपन आपविषे स्थित है, सोई जगत्का आकार हो भासता है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे जेते पदार्थ भासते हैं, सो सब अनुभवरूप हैं, तैसे जगत् भी ब्रह्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! हमको सदा वही भासता है, तौ अहंकार कहां होवै, न मैं अहंकार, न मेरा अहंकार है, केवल आकाशविषे

अहंकार कहां होवै ॥ हे रामजी ! न मैं हौं, न मेरेविषे कछु फुरना है, अथवा सर्व आत्मसत्ता मैंही हौं, तौ भी अहंकार न हुआ ॥ हे रामजी ! हमारा अहंकार ऐसा है, जैसे अग्निकी मूर्ति लिखी होती है, तिसते अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, दृष्टिमात्र हुई है, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका नहीं होता, अपने स्वभावविषे स्थित है, सर्व ज्ञानवान्का एकही निश्चय है, जो ब्रह्मही भासता है, अरु अहंकारका अभाव है, न आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, भ्रमकरिकै अहंकार शब्द जानता है ॥ हे रामजी ! जब ऐसे जानैगा तब अहंकार नष्ट हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ देखनेमात्र होता है, वर्षाते रहित, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र होता है, अपरकी बुद्धिविषे भासता है, परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे असंभव है, उसका अहंप्रत्यय आत्माविषे रहता है, परिच्छिन्न अहंकारका अभाव हो जाता है, जब अहंकार नाश हुआ, तब अविद्याका भी नाश हुआ, अरु यही अज्ञानका नाश है, ये तीनों पर्याय हैं ॥ हे रामजी ! अपने स्वभावविषे स्थित होकरि प्रकृत आचारको करने, अरु अंतरते शिलाकोशवत् हो रहु, अरु बाह्य इंद्रियोंकी क्रिया सब रहै अरु अपने निश्चयको गुप्त राखिये, अरु सर्व इंद्रियोंको इसप्रकार धारहु, जैसे आकाश सबको धाररहा है, अंतरते शिलाके जठरवत् रहो, देखनेमात्र तुम्हारेविषे भीअहंकार दृष्ट आवैगा, जैसे अग्निकी मूर्ति लिखी दृष्ट आती है तैसे तुम्हारेविषे अहंकार दृष्ट आवैगा, परंतु अर्थ कारण होवैगा, केवल ब्रह्मसत्ताही भासैगी, अपर कछु न भासैगा ॥ इति श्रीयो० निर्वा० विदितवेदाहंकारवर्णनं नाम शताधिकसप्तसततितमः सर्गः १७७ ॥

शताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः १७८.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है कि, तुमने अहंकारके त्यागेते परम सात्त्विकी प्राप्तिका उपदेश किया है, सो यह परम दशा

है, जो राग द्वेष मलते रहित निर्मल है, परम उत्तम है, अरु अविनाशी है, आदि अंतते रहित है, यह दशा तुमने परम विभुताके अर्थ कही है ॥ हे भगवन्! सर्वदा काल अरु सर्वप्रकार वस्तु वही ब्रह्मसत्ता है समरूपसत्ताके अनुभवते परम निर्मल है, तौ शिलाख्यान किस निमित्त कहा है, सो कहौ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी! सर्वविषे सर्वदा काल अरु सर्वते रहित है, तिसके बोध अर्थ मैं तुझको दृष्टांत शिलाख्यान कहा है ॥ हे रामजी! ऐसा स्थान कोऊ नहीं, जहां सृष्टि नहीं, सर्व स्थानविषे सृष्टि भासती हैं, अरु आदिते कछु बना नहीं, अरु सर्वदाकाल वसती है, शिलाके कोशविषे अनेक सृष्टि भासती हैं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे शिलाकोशविषे सृष्टि वसती हैं ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्वविषे सृष्टि वसती हैं, कुंद आदिकविषे यह तुमने कहा तौ आकाशरूप क्यों न होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यही मैं भी तेरे ताईं कहता हौं; जो कछु सृष्टि है, सो सब आकाशरूप है, स्वरूपते सृष्टि तौ उपजी नहीं, सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, आकाशकी वार्ता क्या कहनी है, जो शिलाकोशविषे सृष्टि वसती हैं, जो आकाशरूप हैं सो वसती हैं, अर्थ यह कि हुई कछु नहीं ॥ हे रामजी ! पृथ्वीविषे ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, अणु अणुविषे सृष्टि है, अरु सर्व ओरते वसती हैं, अरु परमार्थते कछु बना नहीं, केवल आत्मरूप हैं, सर्व सृष्टि शब्दमात्र हैं जैसे यह सृष्टि भासती है, तैसे वह भी है, जब यह शब्दमात्र है, तब वह भी शब्दमात्र है अरु जो यह सत् भासती है, तौ वह भी सत् भासती हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा कोऊ जलका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, वह सर्वविषे सृष्टि है, अरु यह आश्चर्य देख कि इसबिना कछु नहीं अरु ऐसा कोऊ अग्निका अरु वायुका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सर्वविषे सृष्टि है अरु आकाशरूप है, कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे सदा ज्योंकी त्यों स्थित है ॥ हे रामजी ! आकाशविषे ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सबविषे सृष्टि है, परंतु कछु उपजी नहीं, ऐसा ब्रह्म

अणु कोऊ नहीं, जहां सृष्टि न होवे, सबविषे हैं, परंतु स्वरूपते कछु हुई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे सदा स्थित है ॥ हे रामजी ! ऐसा अणु कोऊ नहीं, जिसविषे ब्रह्मसत्ता नहीं, अरु ऐसा कोऊ चिद्अणु नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, सो सृष्टि कैसे है, जैसे किसीने अग्नि कही, किसीने उष्णता कही, तिसविषे भेद कोऊ नहीं, तैसे कोऊ ब्रह्म कहै, कोऊ जगत् कहै, शब्द दो हैं, परंतु वस्तु एकहीहै, जगत्‌ही ब्रह्म है,अरु ब्रह्मही जगत्‌है, भेद कछु नहीं, जैसे बहते जलका शब्द होताहै तिसविषे अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे जगत् मुझको कछु पदार्थ नहीं भासता है, काहेते जो दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, मैं तू अरु यह जगत् सुमेरुते आदि लेकरि जो पर्वत हैं देवता किन्नर अरु दैत्य नाग इत्यादिक जो जगत् है, सो सब निर्वाणस्वरूप है, आत्मतत्त्वविषे कछु बना नहीं, यह बोलते चालते जो भासते हैं, सो स्वप्नकी नाईं जान, जैसे कोऊ पुरुष सोया है, अरु स्वप्नविषे नानाप्रकारके युद्ध होतेहैं, वाजित्र बाजते हैं, अरु अपर चेष्टा होती है; अरु जो उसके निकट जाग्रत् पुरुष बैठा है तिसको कछु नहीं भासता, काहेते जो बना कछु नहीं, अरु उसको सब कछु भासता है, तैसे ज्ञानीके हृदयविषे जगत् शून्य है, अरु अज्ञानीको भ्रमकरिकै जगत् नानाप्रकारका भासता है, ताते हे रामजी ! स्वप्नवत इस जगत्‌को जानकरि प्रकृत आचार करु, अरु अंतरते शिलाकी नाईं होहु, जो फुरै कछु नहीं, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे रंचक भी भेद नहीं, ब्रह्म ही जगत् है; जगत् ब्रह्म है, जगत्‌का स्पष्ट अर्थ ब्रह्मते भिन्न नहीं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ १७८ ॥

शताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः १७९.

जगज्जालसमूहवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आकाशकोशविषे जो कुटी बनायकरि समाधि लगाई, अरु सौ वर्षते उपरांत उतरी, तिसके अनंतर जो वृत्तांत

हुआ सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब समाधिते मैं उतरा, तब आकाशविषे मैं एक शब्द सुना, सो कैसा शब्द हुआ जो कोमल हृदय अरु सुंदर तुतरीकी तारवत् अंगनाका शब्द हुआ, तब मैं विचार किया कि, यह शब्द कहांते आया है, मैं तौ बहुत ऊर्ध्वको आया हौं, जहाँ सिद्धकी भी गम नहीं, सिद्धते भी तीन लाख योजन ऊँचा आया हौं, यह शब्द कहाँते आया ऐसे विचारि मैं देखने लगा, दशों दिशा आकाशही सर्व ओर देखे हैं, परंतु सृष्टिका कर्त्ता कोऊ दृष्ट न आवै, एक आकाशही भासै, अपर कछु न भासै, तब मैं विचार किया कि, जो सृष्टि आकाशविषे होती है, ताते मैं आकाशही हो जाऊँ अरु यह शब्दको पावौं कि, किसका शब्द है आकाशको भी त्यागिकारि चिदाकाश होजाऊं जहाँ भूताकाश भी कुटीवत् भासता है, तब इसका भी अंत भासैगा, अरु जानि लेवैगा, जो यह शब्द होता है, ऐसे विचार कारि मैं निश्चय किया कि,यह शरीरही यहां रहै, नेत्र मूँदे रहैं;तब पद्मासन बाँधिकारि बाह्यकी इंद्रियोंको भी रोकी, अरु जो इंद्रियोंकी वृत्ति शब्द आदिकको ग्रहण करती थी, तिसको रोंक लिया, अंतर बाहिरकी वृत्ति सब त्यागी,सर्व अहंवृत्तिको त्यागिकारि मैं आकाशरूपहोगया, जैसे इस ब्रह्मांडविषे आकाशको अंत नहीं पाता; तैसे मैं इसको त्यागिकारि चित्ताकाशरूप हो गया, मैं चित्ताकाशविषे आया, सो चित्ताकाश कैसा है, जो संकल्पही जिसका रूप है, तिसको भी मैं त्यागिकारि बुद्धिआकाशविषे आया,बहुरि तिसको भी त्यागिकरिकै चिदाकाशविषे आया, तिसशब्दके देखनेके संकल्पकारि चिदाकाशरूप हो गया, जैसे जलकी बूँद समुद्रमें मिली समुद्ररूप हो जाती है, तैसे मैं चिदाकाश हो गया, सो चिदाकाश निराकार निराधार है, अरु सबको धारि रहा है, परमानंदस्वरूप है,शांत है, अरु अनंत है,जिसविषे सर्व ब्रह्मांड प्रतिबिंबित होते हैं,आत्मा आदर्श है, तिसविषे मैं स्थित हुआ, तब मुझको अनंत सृष्टि अपने आपविषे भासने लगी, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे सृष्टि है,परंतु जीवकी अपनी अपनी सृष्टि है, इसकीसृष्टिको वह न जानै, उसकी सृष्टिको वह न जानै, जैसे मनुष्य सोए होवैं, अरु अपनी अपनी स्वप्नसृ-

ष्टिको देखैं, तिसविषे आकाश अरु काल अपना आप देखै, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, परंतु ज्ञानी सर्व सृष्टि देखता है, तैसे मुझको सर्व सृष्टि चिदाकाशविषे भासै अरु जीवको अपनी अपनी सृष्टि भासै अपरकी सृष्टि अपरको दृष्टि न आवै ॥ हे रामजी! एक सृष्टि ऐसे भासै, जो आवरण कोऊ नहीं, आवरण कहिये जैसे पृथ्वीके चौफेर समुद्र होते हैं, सो वहां आवरण कोऊ न था, अरु कहूं कहूं एकही भूतका आवरण है, अरु कहूं ऐसी सृष्टि आवै, जिनको पाँचही तत्त्वका आवरण है, प्रथम पृथ्वीका आवरण, दूसरा जलका, तीसरा अग्निका, चतुर्थ वायुका, पंचम आकाशका आवरण है, कहूं ऐसी सृष्टि देख आवैं, जिनको चार तत्त्वका आवरण है, कहूँ ऐसी देखी जिनको षट् आवरण, कहूं दश आवरण दृष्टि आवैं, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जिसको षोडश आवरणहै, अरु कहूं ऐसी दृष्टि आवैं जिनको चौंतीस आवरण हैं, कहूं छत्तीस आवरण तत्त्वके संयुक्त सृष्टि देखीं ॥ हे रामजी! इसप्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया, चिदाकाश विषे, परंतु कैसी हैं, जो आकाशरूप हैं, सो आत्माते इतर वस्तु कछु नहीं, मनके फुरणेते मुझको सृष्टि दृष्टि आवैं, काहेते जो संकल्पमात्रही हैं, अपर कछु बना नहीं, जैसे कंधके ऊपर मूर्तियां लिखीं होवैं, तैसे आत्मरूपी कंधके ऊपर मूर्तियां दृष्टि आवैं अपने अपने व्यवहारविषे मग्न रहे हैं ॥ हे रामजी! ऐसी अनंत सृष्टि देखी. एककी सृष्टिको दूसरा न जानै; सब अपनी सृष्टिको जानै, जैसे अनेक पुरुष एकही कालविषे शयन करैं, अरु स्वप्नसृष्टि अपनी अपनी देखैं दूसरी सृष्टिको वे नहीं जानते ॥ हे रामजी! कछु ऐसी सृष्टि देखी, जहां सूर्यका प्रकाश नहीं, अरु न चंद्रमाका प्रकाश है, न अग्निका प्रकाश है, अरु चेष्टा उनकी सब बड़ी होती हैं। कहूं ऐसी देखी जहां सूर्य चंद्रमा हैं, न कहूँ ऐसी देखी जो उनको कालका ज्ञान भी नहीं कि, कौन काल है, न वहां कोऊ दिन है, न रात्रिही है, सदा एकसमान रहते हैं, कहूं महाशून्यरूप तमही दृष्ट आवै, कहूं ऐसे दृष्ट आवैं जो देवताही रहते हैं, कहूं मनुष्यही रहते, हैं कहूं तिर्यकही रहते हैं, कहूँ दैत्यही दृष्ट आवैं, कहूँ जलही दृष्ट आवै अपर तत्त्व कोऊ न दृष्ट आवै, अरु कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जहां शास्त्रका विचारही

नहीं, कहूँ शास्त्र पुराण विपर्ययरूप हैं, कहूँ समान हैं, कहूं प्रलय होती दृष्ट आवै, कहूँ उत्पत्ति होती दृष्ट आवै ॥ हे रामजी! इत्यादिक अनंत सृष्टि मैंने देखी, परंतु जब स्वरूपकी ओर देखौं, तब केवल ब्रह्मरूपही भासै अपर कछु बना दृष्ट न आवै, अरु जब संकल्प करिकै देखिये तब अनंत सृष्टि दृष्ट आवै, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जहां बालकको वृद्ध यौवन अवस्थाकी मर्यादाही नहीं, जैसे जन्मै तैसेही रहे, कहूं ऐसी सृष्टि है, जो चंद्रमा सूर्यका प्रकाश नहीं अरु अग्निके प्रकाशसाथ उनकी चेष्टा होती है, कहूँ ऐसे देखे, जो ऊर्ध्वको चले जावैं, कहूं नीचे चले जावैं, कहूं ऐसे देखे जो शास्त्रकी मर्यादासाथ चेष्टा करैं, कहूं कृमिही वसते हैं, अपर कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! चेतनरूपी वनविषे मैं अनंत सृष्टिरूपी वृक्ष देखे, परंतु दूसरा कछु बना दृष्ट न आया, सब चेतनका आभासही दृष्ट आया, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, अरु बना कछु नहीं, तैसे सृष्टि बनी कछु नहीं, अरु दृष्ट आवैं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे अनहोती सृष्टि भासै, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु गंधर्वनगरकी सृष्टि भासती है, तैसे संपूर्ण सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसविषे चित्तरूपी गंधर्वने सृष्टि रची है, स्वरूपते इतर कछु उपजा नहीं, सब अकारण है, जो निमित्तकारण समवायकारणविना सृष्टि भासै सो भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्नसृष्टि कारणविना होती है, अरु अर्थाकार हो भासती है तौ भी अजातजात है, अर्थ यह जो उपजेविना उपजी भासती है, तैसे संपूर्ण सृष्टि आभासमात्र है ॥ हे रामजी! आभासविषे भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरता है, सो शांत चिदानंद ब्रह्म सबका अधिष्ठान है, अरु सर्व आत्मताकरिकै स्थित है, ब्रह्मसत्ताते इतर कछु नहीं चैत्यताकरिकै नानात्व भासता है, परंतु नानात्व हुआ कछु नहीं आत्माही सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे क्षीरसमुद्रविषे वायुकरिकै नानाप्रकारके तरंग उपजते भासते हैं, तौ भी क्षीरते इतर कछु नहीं, ऐसा क्षीरसमुद्रका तरंग कोऊ नहीं, जिसविषे घृत न होवै सब विषे घृत व्याप रहा है, तैसे जो कछु पदार्थ हैं, तिन सबविषे ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत

है, अरु जैसे क्षीरके मथनकियेते घृत निकसताहै,तैसे विचार कियेते जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, इतर कछु नहीं. काहेते जो कारणद्वारा कछु नहीं उपजा, परमार्थते केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेरूपी भ्रमकरिकै कछु हुआ दृष्टि आता है, जब फुरणेरूपी भ्रम निवृत्त हुआ, तब ब्रह्मही भासता है, ताते अविद्यारूप फुरणेको त्यागिकरि अपने निर्विकल्प स्वरूपविषे स्थित होहु, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगज्जालसमूहवर्णनं नाम शताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ १७९ ॥

शताधिकाशीतितमः सर्गः १८०.

जगज्जालवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मैं सृष्टि देखी, तब बहुरि विचार आनि हुआ कि वह शब्द करनेहारा कौन था, तिसको देखौं, तब मैं देखने लगा, देखते देखते तीतरीकी नाईं शब्द सुना, परंतु उसको न देखा, तब फेरि देखा, देखते देखते शब्दका अर्थ भासने लगा, बहुरि देखा तब अंगना दृष्टि आई सो कैसी है, स्वर्णवत् जिसका शरीर है, बहुत सुंदर वस्त्र पहिरे हुए है, अरु सर्व अंग भूषणोंकरि पूर्ण हैं, लक्ष्मीकी नाईं तिसको उपमा दीजिये, अरु भवानीकी उपमा दीजिये, ऐसी सुन्दर है, जब मैं उसको देखी, तब वह मेरे निकट आय प्राप्त भई अरु कहने लगी ॥ हे मुनीश्वर ! अपर संसार मैं देखा हैं, परंतु समानधर्मा मुझको दृष्ट आया है, अरु तुम उत्तमधर्मा भासते हौ, संसारसमुद्रके पार हुए दृष्ट आते हौ,संसारसमुद्रपरके तुम वृक्ष हौ; जो कोऊ तुम्हारी ओर आता है, तिसके आश्रयभूत हौ, अरु निकासि भी लेते हौ. अपर जो जीव हैं सो संसारसमुद्रविषे बहे जातेहैं, अरु तुम पारको प्राप्त हुए हौ, ताते तुमको नमस्कार है ॥ हे रामजी!जब इसप्रकार अंगनाने कहा, तब मैं आश्चर्यको प्राप्त हुआ कि, इसने मेरे ताईं कदाचित् देखा भी नहीं, अरु

सुना भी नहीं, बहुरि इसने क्योंकरि जाना तब मैं ऐसे विचार किया कि, यह मायाका कोऊ चरित्र है, अरु जो ब्रह्मांड मुझको दृष्ट आये हैं, सो इसकरके दृष्ट आये हैं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार किया तब उसको त्यागिकरि मैं बहुरि आकाशको उडा, तब अपर सृष्टि भासने लगी, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, अरु संकल्पकी सृष्टि होती है, अरु गंधर्व-नगरकी सृष्टि होती है, तैसे यह सृष्टि है, वास्तव कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नादिक सृष्टि अनहोती भासती हैं, तैसे यह जगत् है, केवल बोध-मात्र आत्मा अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! जब मैं बोधविषे स्थित होकरि देखौं, तब मुझको आत्माही भासै, अरु जब संकल्प करके देखौं तब नानाप्रकारका जगत् भासै, कहूं नष्ट होते भासै, कहूं नष्ट होकरि उत्पत्ति होती भासै, जैसे पीपलके पात पडते हैं, अरु बहुरि तैसेही उपजतेहैं, तैसे उपजते भासैं कहूं अर्ध स्वभाव तैसा होवै, कहूं ऐसे दृष्ट आवै,जो नाश होकरि अपरके अपर उत्पन्न होवैं, कहूँ उत्पन्न होतेही दृष्ट आवैं, कहूं भिन्न भिन्न सृष्टि अरु भिन्न भिन्न शास्त्र दृष्टि आवैं, कहूं सूर्य्य चंद्रमा अरु तारोंका चक्र ऐसेही फिरता दृष्ट आवै, अरु कहूं अपर प्रकार दृष्ट आवै, कहूँ नरककी सृष्टि दृष्ट आवै, कहूं स्वर्गके स्थान दृष्ट आवैं,इसीप्रकार अनंतही सृष्टि देखा अरु अनंतही रुद्र देखे, अनंतही ब्रह्मा देखे, अनंतही विष्णु देखे, कहूं प्रलयके मेघ गर्जते हैं, कहूँ सुमेरु आदिक पर्वत उडते दृष्ट आवैं, कहूं ब्रह्मांड जलते दृष्ट आवैं, अरु द्वादश सूर्य तपते दृष्ट आवैं, कहूँ ऐसे स्थान दृष्ट आवै, जो जन्मतेही पुष्ट हो जावैं, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जो एक सृष्टिविषे मुआ दूसरी सृष्टिविषे आवै अरु दूसरी सृष्टिविषे मुआ उसी सृष्टिविषे आवै, कहूं प्रलय होती दृष्ट आवै, कहूँ ज्योकी त्यों रहती सृष्टि दृष्ट आवै, उनके निकट उसको कष्ट कछु न होवै, जैसे दो पुरुष एकही शय्यापर सोए होवैं, अरु दोनों-को स्वप्न आवै, एककी सृष्टिविषे प्रलय होती है, अरु दूसरेकी ज्योंकी त्यों रहै, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं ॥ हे रामजी ! इस-प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखी परंतु तिनविषे सार ब्रह्मसत्ता मैं देखी, अपर सब स्वप्नवत् स्थान दृष्ट आये, जैसे केलेके वृक्षविषे

सार कछु नहीं निकसता, तैसे स्थानविषे सार कछु न देखा ॥ हे रामजी! क्रिया काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सब जलरूप हैं, तैसे जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं; जैसे क्षीर-समुद्रविषे तरंग आवर्त क्षीरते भिन्न कछु नहीं होते, तैसे तू अरु मैं जगत् सब ब्रह्महीं है, जब बोधकी ओर मैं देखौं, तब सर्व ब्रह्महीं दृष्ट आवै, जब संकल्पकी ओर देखौं, तब नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आवै, इसप्रकार मैं अनंत सृष्टि देखत भया, कहूँ कैसे सृष्टि देखी जो अधर्महीं है, कहूँ गुणकी सृष्टि देखी, अरु कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो धर्म अधर्म को जानतेही नहीं ॥ हे रामजी! एकसौ पचाश सृष्टि त्रेतायुगकी देखीं अरु जो भिन्न भिन्न सृष्टि हैं, अरु भिन्न भिन्न जगत् तिनविषे ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ भिन्न भिन्न देखे, जिनको मेरे समान ज्ञान है, अरु मेरेही समान मूर्त्ति है, बहुरि मुझते उत्तम भी हैं, अरु तू सुन, जो तिन एकसौ पचाश सृष्टिविषे तितने वसिष्ठ देखे, तिन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठे हैं, अरु त्रेतायुगविषे अनेकयुग, अरु अनेक द्वापर, अनेक त्रेता, अनेक सत्ययुग देखे, सो सब चेतन आकाशके आश्रय देखे ॥ हे रामजी! हुए विना सब दृष्ट आवैं, जैसे मरुस्थल विषे जल भासता है, जैसे आकाशविषे अनहोती नीलता भासती है, जैसे जेवरीविषे अनहोता सर्प भासता है, तैसे ब्रह्म करिकै अनहोता जगत् भासता है ॥ हे रामजी! मनके फुरणेकरि जगत् भासता है, अरु फुरणेके मिटेते सब ब्रह्महीं भासता है ॥ हे रामजी! अनन्त सृष्टि मैंने देखीं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अनंत त्रसरेणु दृष्ट आवैं, तैसे सृष्टि अनंत देखी, एक चेतनते अनेक चेतन दृष्ट आवैं, जैसे वृक्षते फल प्रगट होते हैं, तैसे संकल्परूपी वृक्षते सृष्टिरूपी फल दृष्ट आवैं, जैसे एक गुल्लरके फूलविषे अनंत मच्छर होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि संकल्पके फुरणेकरि मुझको दृष्ट आई, कहूं महाप्रलयके क्षोभ होते हैं, अरु समुद्र उछलते हैं, तिनके तरंग देवलोकको गिरातेहैं, कहूं श्यामरूप चंद्रमा उष्ण दृष्ट आवै, कहूं सूर्य शीतल दृष्ट आवै, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जो दिनको अंध होजावै, अरु रात्रिको उलूकादिककी

नाईं चेष्टा करैं, अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो उनको रात्रि अरु दिनका ज्ञान कछु नहीं, अरु कालका ज्ञान भी नहीं, धर्म अधर्मका ज्ञान भी नहीं, जैसी अपनी इच्छा होवै तैसे करते हैं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो पुण्य करनेहारे नरकको प्राप्त होते हैं, अरु पापकर्त्ता स्वर्गको जावैं. कहूँ ऐसी सृष्टि देखी कि बालूते तेल निकसता है, अरु विषपान कियेते अमर होते हैं, अरु अमृतके पान कियेते मरि जावैं ॥ हे रामजी ! जैसे जिसका निश्चय होता है, तैसाही आगे भासता है, यह जगत् संकल्प मात्र है, जैसी भावना होती है तैसा आगे होकारिभासता है, कहूं पत्थरविषे कमल उपजते दृष्ट आये हैं, अरु कछु वृक्षोंमें लगे रत्न हीरे दृष्ट आये हैं, अरु बडे प्रकाश संयुक्त आकाशविषे वृक्षके वन दृष्ट आये हैं कहूं ऐसी सृष्टि देखी कि मेघके बादलही तिनके वस्त्र हैं, वस्त्रोंकी नांई बादलोंको पकरि लेवैं, कहूं शीशके भार लेते दृष्ट आवैं, अरु सब चेष्टा भी करैं अंधे काणे दोरे इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि देखी हैं ॥ हे रामजी! जब मैं स्वरूपकी ओर देखौं, तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्ट आवै अरु जब संकल्पकीओर देखौं तब नानाप्रकारका जगत् भासै, कहूँ ऐसेही दृष्ट आवै, जो चंद्रमा सूर्यको जानतेही नहीं, कहूँ एक पृथ्वीकी सृष्टिदेखी पृथ्वीविषे अरु अग्निकी दृष्टि देखी अग्निविषे, जलकी सृष्टि जलविषे देखी, कहूं पांच भूतकी सृष्टि देखी, जैसे यह विद्यमान् है, कहूँ काष्ठकी पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी, जैसे यह विद्यमान् है, भोजन करती है, कहूँकहूँप्राणहु विना यंत्रीकी पुतलियांवत् चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी ! जब ऐसे सृष्टिको देखता देखता महा आकाशविषे अनंतयोजनपर्यंत चला गया, परंतु एक आकाशही दृष्ट आवै, अपर तत्त्व कोऊ दृष्ट न आवै, बहुरि ऐसी सृष्टि देखी जो खाना पीना सब चेष्टाकरै परंतु दृष्ट न आवै, वैतालकी नांई जैसे वैताल सब चेष्टा करते हैं, अरु दृष्ट न आवैं, तैसे वह दृष्ट न आवै अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी कि मैं अरु तू कल्पना भी नहीं, केवल निश्चित पद रहै, अरु कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो उनका मनही नहीं, कहूं निरहंकार सृष्टि देखी, कहूँ ऐसी सृष्टि देखी, जो सबविषे आत्मभावना करते हैं, कहूं सब अपना आपही जानै

भेदभावना किसीके नहीं, कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो सब मोक्षकी लक्ष्मी करि शोभते हैं, कहूँ ऐसी सृष्टि देखी जो उपजिकरि शीघ्रही नाश हो जावै, जैसे नख अरु केश उपजते हैं, कहूँ ऐसे देखे जो चिरकालपर्यंत रहैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनंत सृष्टि देखीं, सो कैसी सृष्टि हैं; जो अनहोती फुरती हैं, अरु संकल्पमात्र हैं, जब संकल्प लय हो जावै तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावै, चित्तके स्पंदविषे सब जगज्जाल देखे वस्तुते क्या दृष्टि आवै, सो सुन, मैं ऊर्ध्व गया, अधोगया, दशोंदिशा गया, परंतु मेरे तौ चेतनरूपी समुद्रके बुद्बुदे भासे हैं अपर कछु न भासे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगज्जालवर्णनं नाम शताधिकाशीतितमः सर्गः ॥ १८० ॥

शताधिकैकाशीतितमः सर्गः १८१.

बोधजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है, जैसे जल अपने जलभावविषे स्थित है, अरु तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसको मुनीश्वर चित्ताकाश कहते हैं, तिस मनविषे संकल्प विकल्प फुरणेकरि अनंतकोटि ब्रह्मांड बनगये हैं, तिसका नाम भूताकाश है, जो मनते उपजा है, इस कारणते इसका नाम भूताकाश है, सो संकल्पमात्र है, आत्माते इतर कछु नहीं ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो कल्प है, ब्रह्माका दिन अरु रात्रि जो दिनविषे भूत उत्पन्न होते हैं, अरु रात्रिविषे प्रलय हो जाते हैं, अरु जब महाप्रलय होता है, तब भूत कोऊ नहीं रहता सब ब्रह्मसत्ताविषे लीन हो जाते हैं, सब जीवन्मुक्त हो जाते हैं, सूक्ष्म ब्रह्मही शेषरहता है, तिस सूक्ष्म ब्रह्मते बहुरि कैसे उत्पत्ति होती है, सो कृपा करिकै कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब सब भूत नष्ट हो जाते हैं, अरु ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, तिसको भी मानता है, तुझनेभी

कहा जो पाछे ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, जब तुझने माना जो सबका कारण ब्रह्मशेष रहता है, सो ब्रह्मसत्ता शुद्ध स्वरूप है, आकाशते भी सूक्ष्म है, जो आकाशका एक अणु होवै,अरु तिसका सहस्र भाग करिये जैसे वह अणुका भाग सूक्ष्म होता है, तिसते भी ब्रह्मसत्ता अति सूक्ष्म है ॥ हे रामजी ! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्मते जगत्की उत्पत्ति कैसे कहौं,अरु जो उत्पत्तीही नहीं भई; तौ तिसकी प्रलय कैसे होवै, अरु यह जगत् जो दृष्ट आता है, सो ब्रह्मका हृदय है, अपनी जो स्वभाव सत्ता है, तिसका नाम हृदय है, सो यह जगत् ब्रह्मका वपु है, जैसे स्वप्नविषे अपनी संवित्‌ही देशकाल पर्वत आदिकरूप होती है, तैसे यह जगत् संवित्‌रूप है अरु अपने स्वरूपके अज्ञान करिकै हुएकी नांई दुःखदायक भासता है, जैसे अपने पडछायेविषे अज्ञानकरिकै भूत कलपता है,अरु भयको प्राप्त होता है, जब विचारकरि देखता है, तब भय निवृत्त हो जाता है, तैसे यह जगत् कछु उपजा नहीं॥ हे रामजी ! चेतनसंवित्‌ही जगत् आकार होकरि भासती है, अपर वस्तु कछु नहीं, जो सब वही हुआ तौ आदि सर्गका होना, अरु प्रलय सब उसीके अंग हैं, इतर कछु नहीं, अस्ति नास्ति उदय अस्तते आदि जो शब्द हैं, सो सब आकाशरूप हैं, अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है,अरु सर्व शब्द ब्रह्महीविषे होते हैं, अरु ब्रह्म सर्व शब्दते रहित भी है, जो सर्व शब्दते रहित हुआ तौ जगत्की उत्पत्ति प्रलय क्योंकरि कही जावै, आत्मा अच्छेद्य अरु अदाह्य अरु अक्लेद्य है, अदृश्य हैं, इंद्रियोंका विषय नहीं अशब्द पद केवल आत्मा है, अरु परमदेव है, अरु जगत्‌भी अविनाशी है, काहेते जो उपजाही नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् भी आत्माते इतर नहीं, आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ विकार कहां होवै, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, ताते जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जैसे अंगवाला सर्व अंग अपने जानता है,तैसे सब जगत् ब्रह्मके अंग हैं,अरु सबको जानता है,वास्तव ते सुस्वच्छ आकाशवत् है, अदेशकाल वस्तु सुख दुःख जन्म मरण साकार निराकार केवल अकेवल नाशी अविनाशी इत्यादिक सर्व शब्द अरु अर्थ सब ब्रह्महीके नाम हैं, जैसे अवयव अवयवी पुरुषके हैं, जो

पसारै तौ भी अपने स्वरूप हैं, जो संकोचै तौ भी अपने अवयव हैं, तैसे उत्पत्ति प्रलय सब ब्रह्महीके अवयवहैं, इतर कछु नहीं, परंतु इतरकी नाई जगत् हुआ भासता है, जैसे सूर्य किरणोंविषे जल कछु हुआ नहीं परंतु हुएकी नाईं दृष्ट आता है, किरणैंही जल होकरि भासती हैं, तैसे आत्मा जगत् आकार होकरि भासता है, सो आत्मस्वरूपही है ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे सो संवित फ़ुरणा हुआ है, सो दृढमूल है, अरु चित्त शरीररूपी तिसके स्तंभ हैं, अरु लोकपाल तिसके दास हैं, अरु शाखा तिसकी जगत्, अरु फल तिसका प्रकाश है, जिस करि जगत् प्रकाशता है, अरु अंधकार तिस वृक्षविषे श्यामता है, अरु वृक्षविषे जो पोल होतीहै, सो आकाश है, अरु फूलके गुच्छे हैं, सो प्रलय हैं, अरु गुच्छेके हिलावनेहारे जो भँवरे होते हैं, सो विष्णु रुद्रादिक हैं, अरु जडता तिसकी त्वचाहै, इसप्रकार सम सत्य आत्मब्रह्म है, ब्रह्मत्वभावते भी नहीं, कछु नहीं, सर्वदा अपने स्वभावविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी! जगत्का भाव अभाव उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व स्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थित है, अरु विकार तिसविषे कोऊ नहीं केवल शुद्ध निरंजन आत्मआकाश निर्मल है, जैसे चंद्रमाके मंडलविषे विषकी वल्ली नहीं होती, तैसे आत्माविषे विकार कोऊ नहीं, निर्मल आकाशरूप है, अरु आदि अंत मध्यकी कलनाते रहित है, तौ लोकपालभ्रम कैसे होवै, अरु जेते कछु विकार भासते हैं, सो आत्माके अज्ञानकरि भासते हैं, जब तू एकाग्रचित्त विचार करिकै देखेगा, तब जगद्भ्रम शांत हो जावैगा, यह जगद्भ्रम फ़ुरणेकरि भासा है, जब फ़ुरणा उलटिकरि आत्माकी ओर आवैगा, तब यह जगद्भ्रम मिटि जावैगा, जैसे पवनकरि दीपक जागता है, अरु पवनहीकरि लीन हो जाता है, तैसे चित्तके फ़ुरणेकरि जगत् भासता है, अरु चित्तका फ़ुरणा जब अंतर्मुख होता है, तब जगद्भ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी! जब ज्ञानकरके देखेगा, तब अज्ञानरूप फ़ुरणेका त्रिकाल अभाव हो जावैगा, बंध मुक्ति आत्माविषे कोऊ न भासैगी, इसविषे संशय कछु नहीं, यह जगज्जाल जो भासता है, सो आत्माविषे कछु उपजा नहीं

अज्ञान करिकै भासता है, जब विचार करिकै देखैगा; तब अष्ट सिद्धिका ऐश्वर्य तृणवत् भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणेबोधजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकैकाशीतितमः सर्गः ॥ १८१ ॥

शताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः १८२.

जगदेकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो जगज्जाल तुमने देखा चिद्रूप होकरि, सो एकस्थानविषे बैठिकरि देखा, अथवा सृष्टिविषे जायकरि देखा सो कहौ ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं अनंत आत्मा हौं, सर्वशक्तिसंपन्न सर्वव्यापी चिदाकाश हौं, मेरेविषे आना जाना कैसे होवै, न एक स्थानविषे बैठिकरि देखाहै, अरु न सृष्टिविषे जायकरि देखा है॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाश हौं, चिदाकाशविषे देखा है ॥ हे रामजी ! जैसे तू अपने अंगको शिखाते लेकरि नखपर्यंत देखता है, तैसे मैं ज्ञाननेत्रकरि अपने आपहीविषे जगत्को देखत भया हौं, सो कैसे जगत्को देखा है, जो निराकार निरवयव आकाशरूप निर्मल देखे हैं, अरु सावयव जो दृष्ट आये हैं सो फुरणेकरि दृष्ट आये हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे दृष्टिका अनुभव होवै, परंतु संवित्रूप है अपर कछु नहीं, जैसे वृक्षके पत्र टास फूल फल सब अपने अंग होते हैं तैसे ज्ञाननेत्रकरि जगत्को मैं देखत भया हौं ॥ हे रामजी ! जैसे समुद्र सब तरंग फेन बुद्बुदे अरु जल तरंगको अपने आपहीविषे देखता है, तैसे मैं अपने आपविषे जगत्को देखता भया हौं, अरु अब भी मैं इस देहविषे स्थित हुआ पर्वतविषे सृष्टियां ज्ञान करिकै देखता हौं, जैसे कुटीके अंतर बाहर आकाश एकरूप है, तैसे मुझको आगे भी अरु अब भी जगत् आकाशरूप अपने आपविषे भासते हैं, जैसे जल अपने रसको जानता है, जैसे बरफ अपनी शीतलताको जानता है, जैसे पवन अपने स्पंदताको जानता है, तैसे मैं ज्ञानकरि सृष्टि अपनेविषे देखत

भया हौं, जिस ज्ञानवान् पुरुषको शुद्ध बुद्धविषे एकता भई है, सो ऐसे देखता है, जो सर्वात्मा आकाशवत् अपना आप है, जिसको आत्मस्थिति भई है, सो वेदनको भी अवेदन देखता है, जो कदाचित् उपजा नहीं, जैसे देवता अपने अपने स्थानविषे बैठे हुए दिव्य नेत्रकारि कोटि योजनपर्यंत अपने विद्यमान देखते हैं, तैसे जगतोंको मैं सर्वात्म होकारि देखत भया हौं, जैसे पृथ्वीविषे निधि होती है, अरु औषधि रससहित पदार्थ होते हैं, सो पृथ्वी अपनेविषेही देखती है, तैसे मैं जगत्को अपनेविषेही देखत भया हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह जो कमलनयनी कांता थी, आर्या छंदके पाठ करनेहारी सो बहुरि क्या करत भई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशवपुको धारिकै मेरे निकट आनि स्थित भई, जैसे भवानी आकाशविषे आनि स्थित होवै, तैसे आनिस्थित भई, जैसे मैं आकाश वपु था, तैसे उसको मैं आकाश वपु देखत भया आकाशविषे प्रथम इस कारणते मैं देखत भया कि जो मेरा आधिभौतिक शरीरथा,जब चित्तपद होकारि मैं स्थित भया,तब कांताको देखा, मैं आकाशरूप हौं, अरु वह सुन्दरी भी आकाशरूप है, अरु जगज्जाल जो देखा सो भी आकाशरूप है ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम भी आकाशरूप थे, अरु वह भी आकाशरूप थी,अरु वचनविलास तब होता है, जब शरीर होता है, अरु तिसविषे बोलनेका स्थान कंठ तालु नासिका दंत ओठ आदिक होते हैं, अरु प्राण अन्तर प्रेरणेहारे होते हैं, तब अक्षरका उच्चार होता है, तुम तो दोनों निराकार थे, तुम्हारा देखना बोलना किसप्रकार भया, अरु बोलना अवलोकनरूप मनस्कारकारि होता है, रूप कहिये दृश्य, अवलोकन कहिये इंद्रियां, मनस्कार कहिये मनका फुरणा, इन तीनों विना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे रूप अवलोकन मनस्कार अरु शब्द पाठ परस्पर वचन होते हैं, सो आकाशरूप होते हैं, तैसे हमारा देखना बोलना आपसविषे परस्पर संवाद हुआ है, जैसे स्वप्नविषे देखते हैं, रूप अवलोकन मनस्कार आकाशरूप होते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, तैसे हमारा देखना अरु बोलना हुआ, यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता

कि, देखना बोलना कैसे हुआ अरु जैसे आकाशविषे मैंने सृष्टि देखी है, तैसे यह सृष्टि भी है, जैसे उनके शरीर थे तैसे उनके अरु हमारा शरीर जैसे यह जगत् है, तैसे वह जगत् है ॥ हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु नहीं भासती है, अरु जो असत् वस्तु है सो भासती है, जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी पर्वत समुद्र अरु जगत् व्यवहार है नहीं सो प्रत्यक्ष भासता है, अरु सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती, तैसे हम तुम जगत सब आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते भासते हैं, अरु शब्द होते हैं, अरु आना जाना भासता है सो सब आकाशरूप हैं, अरु हुआ कछु नहीं; तैसे यह जगत् भी है ॥ हे रामजी! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, बनी कछु नहीं, अरु कछु है सो अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं अरु तू कहै, स्वप्न क्या है, अरु कैसे होते हैं सो सुनआदि परमात्मतत्त्वविषे स्वप्न; वचन हुआ है, सो विराट आत्मा है, बहुरि तिसते यह जीव हुए हैं; सो आकाशरूप हैं, काहेते जो विराट आकाशरूप है, यह सब आकाशरूप है, अरु स्वप्न दृष्टांत भी मैं तेरे बोधके निमित्त कहा है, काहेते कि, स्वप्न भी कछु हुआ नहीं, केवल आत्ममात्र है,ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! वह कांता मैंने देखा, तब उसते पूछत भया, काहेते जो संकल्प मेरा अरु उसका एक हुआ जैसे स्वप्नविषे स्वप्न जनका होता है, तैसे हमारा हुआ ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे हम तुम सब जगत् आकाशरूप हैं, कछु हुआ नहीं, स्वप्नजगत् अरु जाग्रत्जगत् एकरूप है, परंतु जाग्रत दीर्घ कालका स्वप्न है,ताते इसविषे दृढ व्यवहार उत्पन्न प्रलय होते भासते हैं॥ हे रामजी! स्वप्नविषे भोग होते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, निर्मल आकाशरूप आत्माते इतर कछु बना नहीं, तैसे यह दृश्य अरु द्रष्टा स्वप्नकी नाईं अनहोते भासते हैं,जो हम तुम आदिक दृश्यको मनरूपी द्रष्टा सत्य मानता है, सो दोनों अज्ञानकरि भ्रममात्र उदय हुए हैं, अरु जो शुद्ध द्रष्टा है, सो दृश्यते रहित है, अरु जैसे द्रष्टा आकाशरूप है, तैसे दृश्य भी आकाशरूप है, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवते इतर कछु नहीं,तैसे यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है॥हे रामजी! चिदाकाश जो अनंत आत्मा है, सो इस जगत्का कारण कैसे होवै,

जैसे स्वप्नसृष्टिका कारण कोऊ नहीं, तैसे इस जाग्रत् जगत्का कारण भी कोऊ नहीं, काहेते जो हुआ कछु नहीं, अरु जो कछु है, सो अनुभवरूप है, ताते यह जगत् अकारण है ॥ हे रामजी ! यह जीव साकाररूपी है, अरु इनके स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारकी होती है, सो भी आकाशरूप है, कछु आकार नहीं, अरु जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसविषे आदि आभासरूप जगत् फुरा है, सो आकाशरूप क्यों न होवै, साकार क्या अरु निराकार क्या सो सुन, एक चित्त है, एक चैत्य है, चित्त नाम है शुद्ध चिन्मात्रका; अरु चैत्य नाम है दृश्य फुरनेका; अरु जिस चित्तको दृश्यका संबंध है, तिसका नाम जीव है, जिस चित्तको अज्ञान-करिकै द्वैतका संबंध है, अरु अनात्मविषे आत्माभिमान है, ऐसा जो जीव है, सो साकाररूप है, तिसके स्वप्नकी सृष्टि आकाशरूप है; सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है, तिसका स्वप्न आभासरूप जगत् आकाशरूप क्या न होवै ॥ हे रामजी ! यह जगत् निरुपादान है, अर्थ यह जो बना कछु नहीं, चिदाकाश निराकाररूप है, जैसे स्वप्नविषे जगत् अकृत्रिम होता है, तैसे यह जगत् है, न इसको कोऊ निमित्तकारण है, न समवायिकारण है, आत्मा अच्युत है, अरु अद्वैत है, सो दृश्यका कारण कैसे कहिये ॥ हे रामजी ! न कोऊ कर्त्ता है, न भोक्ता है, न कोऊ जगत् है, है अरु नहीं यह भी कहना नहीं बनता, ऐसा जो ज्ञानवान् है, सो पाषाणवत् मौनस्थित होता है, अरु जब प्रकृत आचार आनि पड़ता है, तब तिसको भी करता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः ॥ १८२ ॥

शताधिकत्र्यशीतितमः सर्गः १८३.

विद्याधरीविशोकवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कांता आई थी, सो अनेक कचटतादिक अक्षर शरीरविना कैसे बोली,

अरु जो तुम स्वप्नकी नांई कहौ, तब स्वप्नविषे केवल आकाश होता है, तहां यरलव आदिक कैसे बोलता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्वप्न-विषे जो शरीर होता है, सो आकाशरूप है, तिसविषे कचटतादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुए, जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता, तैसे आकाशरूप आत्माविषे शब्द कदाचित् नहीं हुआ, अरु जो तू कहै, स्वप्नविषे जो यरलवादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं, तिसका उत्तर यह है, जो कछु शब्द वहां सत हुए होते तौ निकट बैठेको भी सुनते ॥ हे रामजी ! निकट बैठे जगत्को नहीं सुने तौ ऐसे मैं कहता हौं जो आकाशहै, हुआ कछु नहींहुआ भासताहै, सो भ्रांतिमात्र है, केवलचिन्मात्र आकाशका किंचन है, सो आकाशविषे आकाशही स्थित है, तैसे यह जगत् भी हुआकछुनहीं॥ हे रामजी ! जैसे चंद्रमाविषे श्यामता है, अरु आकाशविषे वृक्ष होता है, अरु जैसे पत्थरविषे पुतलियां नृत्य करतीं भासैं सो मिथ्या हैं, तैसे यह जगत्का होना मिथ्याहै॥हे रामजी ! स्वप्नविषे जो जगत् भासताहै, सो चिदाकाशका किंचन है, सो किंचन भी आकाशरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नका जगत् आकाशरूप है, तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है, जैसे यह जगत् है, तैसे वह जगत् थे, अरु यह जो आकाश है, सो आत्माकाशविषे अनाकाश है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रमकरिकै प्रवृत्त भासती है, तैसे जगत् भी भ्रमकरिकै प्रत्यक्ष भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो यह जगत् स्वप्न है, तौ जाग्रत् क्यों भासता है, अरु जो असत् है, तौ सत्की नांई क्यों भासता है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! एक मृदुसंवेग है, एक मध्यसंवेग है, एक तीव्रसंवेग है, संवेग कहिये संक-ल्पका परिणाम, सो त्रिविध है, जैसे कोऊ पुरुष अपने स्थानविषे बैठा हुआ मनोराज्य करकै किसी व्यवहारको रचता है, सो तिसको जानताहै, जो संकल्पमात्र है, अरु जैसे नट स्वांग धारता है, तब वह जानता है, कि मेरा स्वांग है, अरु न मेरा यह स्वांग सत्य है, अपने स्वरूपको सत् जानता है, इसका नाम मृदुसंवेग है, काहेते जो अपना स्वरूप नहीं भूला, अरु मध्यसंवेग यह है, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है, तिस-विषे स्वप्नसृष्टि भासती है, अरु एक शरीर अपना भासता है, तब अपने

शरीरको सत् जानता है, अरु जगत्को भी सत् जानता है, काहेते जो स्वरूपका प्रमाद है; स्वप्नकालविषे, सृष्टिको सत् जानता है, अरु जागे हुए तिसको असत्य जानता है, तिसका नाम मध्यसंवेग है, काहेते जो सोया हुआ शीघ्रही जाग उठता है, अरु जो सोया अरु जागै नहीं तिसका नाम तीव्रसंवेग है ॥ हे रामजी ! आदि संकल्प स्वप्न विषयरूप भासते हैं, तिसविषे नाना प्रकारकी सृष्टि होकरि स्थित है, जिनको आदि स्वरूपका प्रमाद नहीं हुआ तिनको यह जगत् मृदुसंवेग है, काहेते सो अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं, अरु जिनको आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है, अरु बहुरि शीघ्रही स्वरूपविषे जागि उठते हैं, तब तिनको यह जगत् असत्य भासता है, उनकी इस जगत्विषे सत्यप्रतीति नहीं होती, अरु जिनको प्रमाद हुआ है, बहुरि जागै नहीं, तिनको यह जगत् सत् हो भासता है, काहेते जो चित्तकी वृत्तिका प्रमाण तीव्र हो गया है, इसकारणते अज्ञानीको यह जगत् स्वप्नरूप जागृत हो भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नकी सृष्टि सत्य हो भासतीहै ॥ हे रामजी ! चित्तके फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्त बहिर्मुख होता है, तब जगत् हो भासता है, अरु स्वरूपका अज्ञान होता है, जब अज्ञान हुआ, तब जगद्भ्रम दृढ होता जाता है, ताते इस जगत्का कारण अज्ञान है ॥ हे रामजी ! आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान होवैगा, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा अपना आप है, ताते आत्मपदविषे स्थित होउ, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै इस जगत्की सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे जैसी जैसी भावना होती है, तैसेही जगत् हो भासता है ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार जगद्भ्रम सत्य हो भासता है सो सुन, जो अज्ञानी जीव है, जब मृतक होता है, तब मुक्त नहीं होता, अज्ञानके वशते जड पत्थरवत् होता है, काहेते जो चेतनरूप है ॥ हे रामजी ! जब मृत्यु होता है, तब आकाशरूप चित्तविषेही जगत् फुरि आता है, अरु अपनी वासनाके अनुसार नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, अरु नानाप्रकारके व्यवहाररचना क्रियासहित होकरि भासती हैं, अरु कल्पपर्यंत सब क्रिया

जीवकी अंतवाहक होती हैं, जैसी हमारी हैं ॥ हे रामजी ! तू देख, वह जगत् क्या रूपहै, किसी कारणते तौ नहीं उपजा, जैसे वह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् भी जान ॥ हे रामजी ! यह जो तेरेताईं स्वप्न आता है, तिसविषे जो पुरुष पदार्थ है, सो भी सत् है, काहेते जो ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है ॥ हे रामजी ! प्रबोध हुए भी स्वप्नके पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीते कहा है कि, स्वप्नसंकल्प ब्रह्म अरु जाग्रत तुल्य हैं, जैसे आगे उदाहरण कहा है, शुक्रका अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका, लवण अरु गाधिका, इनको मनोराज्यभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है, आगे कहैंगे, दीर्घतपाको स्वप्न प्रत्यक्ष हुआ है, इसीते कहा है, जो सब तुल्य हैं, अरु जीव जीवप्रति अपनी अपनी सृष्टि है, काहेते जो संकल्प अपना अपना है, ताते सृष्टि भिन्न भिन्न है, अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु सर्व सृष्टिका प्रतिबिंब आत्मरूपी आदर्शविषे होता है, अरु सर्व सृष्टि आत्माका अनुभव है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, अरु तिस वृक्षते अपर वृक्ष होते हैं, तौहूँ विचारकरि देख जो बीज तौ एक था, अरु सब वृक्ष आदि बीजते उपजते हैं, तैसे एक आत्माते अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं, परंतु स्वरूपते इतर कछु नहीं, जैसे एक पुरुष सोया है, अरु तिसको स्वप्नकी सृष्टि भासि जाती है, बहुरि स्वप्नविषे जो बहुत जीव भासते हैं, तिसको भी अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! जिसते आदि स्वप्नसृष्टि भासती है, सो पुरुष एकही है, तिस एकहीविषे अनंत सृष्टि चित्तके फुरणेकरि होती हैं, तैसे आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि फुरती हैं, परंतु स्वरूपते कछु हुआ नहीं, सब आकाशरूप हैं, अरु जीवको अपनी सृष्टि अपनी अज्ञानकरिकै भासती है ॥ हे रामजी ! जीवको अपरकी सृष्टिका ज्ञान नहीं होता, अपनीही सृष्टिको जानते हैं; काहेते जो संकल्प भिन्न भिन्न हैं, एकको हम स्वप्नके नर हैं, अरु एक हमको स्वप्नके नर हैं, वह अपर सृष्टिविषे सोए हैं, अरु हमारी सृष्टि उनको स्वप्नविषे भासती है, तिनको हम स्वप्नके नर हैं, अरु जो हमारी सृष्टिविषे सोए हैं, तिनको स्वप्नविषे अपर सृष्टि भासि आई है, सो हमारे स्वप्नके नर हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार

आत्मतत्त्वके आश्रय अनंत सृष्टि भासती हैं, अरु सृष्टिको सत् जान-
करि जीव विचरते हैं, सो मोक्षमार्गते शून्य हैं, जैसे यह पुरुष शयन
करता है, तिसको स्वप्नविषे परिणाम हुआ, तिसविषे जो जीव हुए
तिनको बहुरि स्वप्न हुआ, तब अपनी अपनी सृष्टि उनको भासती है,
अरु बहुरि तिनको अपनी सृष्टि भासि आई तौ अनंत सृष्टि अनुभवते
आश्रय होती हैं, तैसे एक आत्माके आश्रय असंख्य सृष्टि फुरतीहैं, सो
सृष्टि कैसी हैं, कई समान हैं, कई अर्धसमान हैं, कई विलक्षण भासती
हैं, अपनी अपनी सृष्टिको जीव जानतेहैं, जैसे एक मंदिरविषे दशपुरुष
सोए हैं, अरु तिनको अपना अपना स्वप्न आया, तब उसकी सृष्टिको
वह नहीं जानता, उसकी सृष्टिको वह न जानता, तैसे यह सृष्टिभी अप
रको ज्ञान है, काहेते कि, संकल्प अपना अपना है, जैसे पत्थरको पत्थर
नहीं जानता, अरु जो अंतवाहकके शरीर योगीश्वर हैं, तिनको सृष्टिका
ज्ञान होता है ॥ हे रामजी ! वास्तवते सृष्टि भी निराकार आकाशरूपहै,
जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है,
जैसी जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे सृष्टि भासती है ॥
हे रामजी ! वास्तवते कछु हुआ नहीं, सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्माही
अपने आपविषे स्थित है, जिनको आत्माका प्रमाद हुआ, तिनकोजगत्
भासता है, वास्तवते जगत् किसी कारणकारि नहीं उपजा, आभासरूप
है, सम्यक् ज्ञानके हुएते ब्रह्म अद्वैत भासताहै, अरु असम्यक्ज्ञानते द्वैत
रूप जगत् हो भासता है, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते जेवरीहीभासतीहै
अरु असम्यक् ज्ञानकारि सर्पभासता है, तैसे आत्माके असम्यक्ज्ञानकारि
जगद्भान होता है ॥ हे रामजी ! मैं उस देवीसों प्रश्न कियाकि हे देवी !
तू कहांते आई है, अरु तेरा स्थान कौन है, अरु तू कौन है, अरु इहां
किसनिमित्त आई है, तब देवी बोली ॥ देव्युवाच ॥ हेमुनीश्वर !ब्रह्मरूपी
जो महाआकाश है, तिसका जो अणुहै, बहुरि तिस अणुकाभीजोअणु
हैं; तिसका जो छिद्र है, तिस छिद्रविषेभी जो छिद्र है, तिसविषे जो तुम
रहते हौ, तुम्हारा यह जगत् भी उसीविषे है, तुम्हारी सृष्टिका जो ब्रह्मा
है, तिसकी संवेदनरूपी कन्या है;तिसने यह जगत् रचाहै, तिस तुम्हारे

जगत्‌विषे पृथ्वी है, तिसके ऊपर समुद्र हैं, तिनकरि पृथ्वी आच्छादित है, तिसकेपरे दूना अपर द्वीप है, तिस द्वीपके परे दूना समुद्र है, इसप्रकार पृथ्वीको लंघि जाता है, तब आगे स्वर्णकी पृथ्वी आतीहै, सोदश सहस्र योजनपर्यंत महासुंदर प्रकाशरूप है, तिसने सूर्यचंद्रमाके प्रकाशको भी लज्जित किया है, तिसके परे अपर लोकालोक पर्वत है, सो सब ठौर प्रसिद्ध है, तिसविषे बहुत नगर बसतेहैं, अरु कहूं ऐसे स्थानहैं, जहां सदा प्रकाशही रहता है, जैसे ज्ञानीके हृदयविषे सदा प्रकाश रहता है, अरुकहूँ ऐसे स्थानहैं, जहां सर्वदा अन्धकारही रहता है, जैसे अज्ञानीके हृदयविषे अन्धकार रहता है, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जहां प्रत्यक्ष पदार्थ पाते हैं, जैसे पण्डितके हृदयविषे अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं, कहूँ ऐसे स्थानहैं, जहां पदार्थ नहीं पाते, जैसे मूर्खके हृदयविषे श्रुतिका अर्थ नहीं होता, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जिनके देखनेकारि हृदय प्रसन्न होता है, जैसे संतके दर्शनकारि हृदय प्रसन्न होता है, कहूँ ऐसे स्थान हैं, जिनविषे सदा दुःखही रहता है, जैसे अज्ञानीकी संगतिविषे सदा दुःख रहता है, कहूं ऐसे स्थान हैं, जहांसूर्य उदय नहीं होता, कहूँ सूर्य चंद्रमा दोनों उदय होते हैं, कहूँ पशुही रहतेहैं, कहूँ मनुष्यही रहते हैं, कहूँ दैत्यहीरहते हैं, कहूँ देवताही रहतेहैं, कहूँ जट कृषाणही रहते हैं, कहूँ धर्मका व्यवहार होता है, कहूँ विद्याधरही रहतेहैं, कहूँ उन्मत्त हस्ती रहते हैं, कहूँ बडे नंदन बाग हैं, कहूँ ऐसे प्रस्थान हैं, जहां शास्त्रका विचार नहीं, कहूँ शास्त्रके विचारवान्‌रहतेहैं, कहूँ राज्यही करते हैं, कहूँ बड़ी वसतियां हैं, कहूँ उजाड वन हैं, कहूँ पवन चलताहै, कहूँ बड़े खात छिद्र हैं, कहूँ ऊर्ध्व शिखरहैं, तहां विद्याधर देवता रहतेहैं हैं, कहूं यक्ष राक्षस मत्त रहतेहैं, कहूँ विद्याधरी देवियां महामत्त रहतीहैं, इसप्रकार अनंत देशस्थानकी वस्तियां हैं, तिस लोकालोकके शिखर ऊपर शत योजनका तलाव है, तिसविषे कमल फूल लगे हैं, अरु सब कल्पवृक्ष हैं, सब पत्थर चिंतामणि हैं, तिसविषे उत्तर दिशा एक स्वर्णकी शिला पड़ी है, तिसके शिखर ऊपर ब्रह्माविष्णु रुद्र आनि बैठते हैं, अरु विलास करते हैं, तिसके ऊपर शिला है, तिसविषे मैं रहतीहौं, अरु मेरा भर्त्ताभी रहता है, संपूर्ण परिवारभी वहां रहता है॥ हे मुनीश्वर!

तिसविषे एक ब्राह्मण रहता है, सो वृद्ध अवस्था अबलग जीवता है,सो ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरु सदा वेदका अध्ययन करता है, तिसने मुझको अपने विवाहके निमित्त अपने मनते उपजाई है, अरु अब मैं भी बडी हुई हौं, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी होती हैं, अरु मेरे मनका विवाह नहीं करता, जबका उपजा है, तबका ब्रह्मचारीही रहता है; अरु वेदका अध्ययनकारि विरक्तचित्त हुआ है ॥ हे मुनीश्वर ! उस ब्राह्मणने मुझको विवाहके निमित्त उपजाई है, अरु वस्त्र औ भूषणसंयुक्त मैं उत्पन्न भई हौं, अरु चंद्रमाकी नांई सुंदर हौं,सबअंग मेरे सुंदर हैं,सब जीवको मोहने हारी हौं, मुझको देखिकारि कामदेवभी मूर्छित हो जाता है, अरु फूलकी नांई मेरा हँसना है, अरु सब गुण मेरेविषे हैं, अरु महालक्ष्मीकी मैं सखी हौं, मेरा त्याग कारि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरु सदा वेदका अध्ययन करता है, अरु बडा दीर्घसूत्री है, जब मैं उत्पन्न भई थी तब कहता था कि, मैं तुझको विवाहौंगा जब मैं यौवन अवस्थाको प्राप्त भई हौं, तब त्यागिकारि एकांत जाय बैठा है ॥ हे मुनीश्वर ! स्त्रीको सदा भर्ता चाहिता है, अब मैं यौवन अवस्थाकारि परी जलती हौं, अरु जो बडे तलाव कमलसहित दृष्टि आते हैं, सो भर्ताके वियोगकारि अग्निके अंगारे भासते हैं, अरु बडे बाग नंदनवन आदिक मुझको मरुस्थलकी नाईं भासते हैं, इनको देखिकारि रुदन करती हौं; नेत्रते जल चला जाता है, जैसे वर्षा कालका मेघ वर्षावता है, तैसे मेरे नेत्रते जल चलता है, जब मैं मुख आदिक अपने अंगको देखती हौं, तब नेत्रके जलकारि निकट कम-लिनी डूबि जाती है, अरु जब कल्पतरु तमालवृक्षके फूल पत्र शय्या-पर बिछायकारि शयन करती हौं, तब अंगके स्पर्शकारि फूल जलावते हैं, जिस कमलसाथ मेरा स्पर्श होता है, सो जलि जाता है ॥ हे भगवन् ! भर्ताके वियोगकारि मैं तपीहुई हौं, जब बर्फके पर्वत ऊपरि जाय बैठती हौं, तब वही अग्निवत् हो जाता है, अरु मैं नानाप्र-कारके फूलको गलेविषे डारती हौं, तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती, मैं सुंदर हौं, अरु भर्ताको सुख देनेहारी हौं, अरु मेरे भर्ताकी देह त्रिलोकी है, तिसके चरणोंविषे सदा मेरी प्रीति रहती है, अरु मैं गृहके सब

आचार करती हौं, सब गुणों करके संपन्न हौं, अरु सर्वको धारि रहीहौं, अरु सर्वकी प्रतिपालक हौं, अरु ज्ञेयकी सदा मुझको इच्छा रहती है॥ हे मुनीश्वर ! मैं पतिव्रता हौं, जो पुरुष प्रतिव्रता स्त्रीकेसाथ स्पर्श करता है, सो बहुत सुख पाता है, तीनों तापते रहित होता है, अरु सब गुण जिसविषे पाते हैं, सदा भर्ताविषे प्रीति करती है, अरु भर्ताकी प्रीति उसीविषे रहै, ऐसी मैं हौं, तिसको त्यागिकरि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरु सर्वकाल वेदका अध्ययन अरु विचार करता रहताहै, अरु सर्व कामनाका जिसने त्याग किया है, कोऊ इच्छा तिसको नहीं रही, अरु मैं उसके वियोगकरि जलती हौं॥ हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है, जिसका भर्ता विवाहकरि मरि गया है, अरु जिसका भर्ता नहीं प्राप्त भया सो भी भली है, जो सदा कुँवारी है, अरु जो भर्ताके संयोगते प्रथमही मरिजाती है, सो भी श्रेष्ठ है, अरु जिसको भर्ता प्राप्त भया है, परंतु तिसको स्पर्श नहीं करता, तब उसको बडा दुःख होता है॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्माकी भावनाके संस्कारते रहित उत्पन्नहुआ है, सो निष्फल है, जैसे पात्रविना अन्न निष्फल होता है, अर्थ यह जो संतजन तीर्थ आदिकते रहित पापस्थानोंविषे डोया हुआ धन निष्फल होता है, जैसे समदृष्टिविना बोध निष्फल होताहै, जैसे वेश्याकी लज्जा निष्फल है, तैसे मैं पतिविना निष्फल हौं॥ हेभगवन्! जब शय्याबिछाय करि शयन करती हौं, तब फूल भी जलि जाते हैं, जैसेसमुद्रको वडवाग्नि जलाती है, तैसे कमलोंको मेरे अंग जलाते हैं॥ हे मुनीश्वर ! जो सुखके स्थान हैं, सो मुझको दुःखदायक भासते हैं, अरु जो मध्यस्थान हैं, सो न सुख देते हैं, न दुःख देते हैं, अरु जो सुखके स्थान हैं, सो भर्ताके वियोगकरिके दुःखकी नाईं हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीविशोकवर्णनं नाम शताधिकत्र्यशीतितमः सर्गः॥१८३॥

शताधिकचतुरशीतितमः सर्गः १८४.

विद्याधरीवेगवर्णनम् ।

विद्याधर्युवाच ॥ हे मुनीश्वर! इसप्रकार मैं तप करतीफिरतीहौं, अब मुझको भी भर्त्ताके वियोगकारि वैराग्य उपजा है, भर्त्ताका वैराग्यरूपी गड़ा मेरी तृष्णारूपी कमलिनी ऊपर पड़ा है, तिसकारि जलि गई हौं, तातै जगत् मुझको विरस भासता है॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसविषे स्थिर वस्तु कोऊ नहीं, इस कारणते मुझको भी वैराग्य उपजा है, अरु मेरा भर्त्ता जो स्वभूत है, सो संसारते विरक्त होकारि एकांत जाय बैठा है, वेदको विचारता रहता है, परंतु आत्मपदको नहीं प्राप्त भया, मनके स्थिर करनेका उपाय करता है, परंतु अबलग मन स्थिर नहीं भया, सर्व ईषणाते रहित होकारि शास्त्रको विचारता रहता है, अरु आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ, अरु मुझको भी वैराग्य उपजा है, अब दोनों वैराग्यकारि संपन्न हुए हैं, अरु परमपद पानेको मुझको इच्छा भई है, अरु शरीर हमको विरस हो गया है, जैसे शरत्कालकी वल्ली विरस होती है, इस कारणते मैं योगकी धारणा करने लगी हौं, यह शक्ति मुझको उत्पन्न भई है, आकाशमार्गको आऊं जाऊं योगधारणाकारि आकाशकेऊपर उड़नेकी शक्ति हुई है, बहुरि सिद्धमार्गकी धारणाकारि सिद्धोंके मार्गभी आऊं जाऊं परंतु अर्थ कछु सिद्ध न हुआ, पाने योग्य जो आत्मपद है, सो प्राप्त न हुआ, जिसके पायेते दुःख कोऊ न रहै, अब मुझको निर्वाणकी इच्छा भई है, अरु सिद्धोंके गण भी मैं देखे हैं, देवता अरु विद्याधर देखे हैं, ज्ञानीके स्थान भी देखे हैं, इत्यादिक बहुत स्थान देखे हैं, परंतु जहां जाऊं तहां तुम्हारी स्तुति करैं, वसिष्ठमुनि ऐसे हैं, जो वचनद्वारा बलकारि अज्ञानको निवृत्त करते हैं जैसे बड़ा मेघ वर्षता है, परंतु जब वायु चलताहै, तब मेघको दूर करता है, तैसे तुम्हारे वचन अज्ञानको दूर करते हैं, जब ऐसे मैं तुम्हारी स्तुति सुनी, तब मैं इस सृष्टिविषे आनेका अभ्यास किया, तब धारणाके

अभ्यासते तुम्हारी सृष्टिविषे आई हौं, ताते हे मुनीश्वर ! मेरे अरु मेरे भर्त्ताको शांति अर्थ आत्मज्ञानका उपदेश करौ, मेरा भर्त्ता जो मनके स्थिर करनेको यत्न करता है, तिसको तुम ऐसा उपदेश करौ, जो शीघ्रही स्थिर होवै, अरु आत्मपदको प्राप्त होवै, अरु मुझको भी आत्मज्ञानका उपदेश करौ ॥ हे भगवन् ! तुम मायाते परे मुझको दृष्टिआते हो, इस कारणते मैं तुम्हारी शरण आई हौं, अरु मैं स्त्रीबुद्धिकरिकै तुम्हारे निकट नहीं आई, शिष्यभावको लेकरि आई हौं, अरु मैं जानती हौं कि, मेरा अर्थ सिद्ध हो रहा है, काहेते जो कोई महापुरुषकी शरण आय प्राप्त होता है सो भी निष्फल नहीं जाता, सब अर्थ संपूर्ण होता है, जैसा जिसका अर्थ होता है सो महापुरुष सिद्धकरि देते हैं, जैसे कल्पवृक्षके निकट कोऊ जाता है, तिसका अर्थ पूर्ण होता है, तैसे मेरा अर्थ सफल हो जावैगा, ताते कृपा करिकै मुझको उपदेश करौ ॥ हे मुनीश्वर ! तुम दयाके मानौ समुद्र हौ, सबके अर्थ संपूर्ण करनेको समर्थ हौ, अरु सुहृद हौ, अर्थ यह कि, उपकारकी अपेक्षाविना उपकार करते हौ, ताते मैं अनाथ तुम्हारी शरणकोआनि प्राप्त भई हौं, मुझकोआत्मपदकी प्राप्ति करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीवेगवर्णनं नाम शताधिकचतुरशीतितमः सर्गः ॥ १८४ ॥

शताधिकपंचाशीतितमः सर्गः १८५.

विद्याधर्यभ्यासवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार विद्याधरीने मुझको कहा तब तिस कालमें आकाशविषे संकल्पका आसन मैंने रचा; तिसपर बैठा, अरु एक आधारभूतका आसन संकल्पकरि तिसको बैठाई काहेते जो हमारा शुद्ध संकल्प है; जो कछु चिंतवना करिये सो हो जाता है, तब मैं कहा ॥ हे देवी ! तू कैसे कहतीहै, कि शिटीविषे हमारी सृष्टि है, शिटीविषे तुम्हारी सृष्टि कैसे वसती है सो कहो ॥ ॥ विद्याधर्युवाच ॥

हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टिविषे जो लोकालोक पर्वत है, सो प्रसिद्ध है, तिसके उत्तरदिशा शिखरपर शिला है, तिस स्वर्णकी गिटीविषे हमारी सृष्टि है, जैसे तुम्हारी सृष्टि है, तैसे उस गिटीविषे सृष्टि वसती है, तिस सृष्टिका ब्रह्मा मेरा भर्ता है, मैं तिसकी स्त्री हौं, अरु त्रिलोकी इसप्रकार वसती हैं, ऊर्ध्वलोक देवता रहते हैं, पातालविषे दैत्य अरु नाग रहते हैं, मध्यमंडलविषे मनुष्य अरु पशु पक्षी रहते हैं समुद्र भी हैं, पर्वत भी हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश हैं, समुद्रने गंभीरता अंगीकार करी है, जीवहुने प्राण अंगीकार किये हैं, पवनने आकाश विषे चलना अंगीकार किया है, आकाशने पोल अंगीकार किया है, पृथ्वीने धैर्य अंगीकार किया है, विद्याधरने ज्ञान अंगीकार किया है, अग्निने उष्णता, सूर्यने प्रकाश अंगीकार किया है, दैत्योंने क्रूरता, विष्णुने अवतार अंगीकार किये हैं, जगत्की रक्षाके निमित्त नदीने चलना, पर्वतने स्थिरता अंगीकार करी है, इसप्रकार सब नीति परमात्माके आश्रय रची हुई हैं, कल्पपर्यंत ज्योंकी त्यों मर्यादा रहती है, इसप्रकार जीव जन्मते मरते हैं, देवता विमानपर आरूढ फिरते हैं, दिनका स्वामी सूर्य है, रात्रिका स्वामी चंद्रमा है, नक्षत्र तारेका चक्र पवनकरिकै फिरता है, अरु दो ध्रुव हैं, काल इस चक्रको फेरता है, फेरता फेरता नाशरूप जो काल है, सो कल्पके अंतविषे कालचक्रके मुखमें जाय रहता है ॥ हे मुनीश्वर! परमात्मा अनंत है, अंत कोऊ नहीं जान सकता, जब संवेदन फुरती है, तब जानाजाता है, कि यह जगत् ईश्वरकी सत्ताकरिकै है, जब फुरणेते रहित होता है, तब जाना नहीं जाता कि जगत् कहां गया ॥ हे मुनीश्वर! तुम चलो, हमारी सृष्टिका बिलास देखौ, तुम तौ जगत्के विलासते पारको प्राप्त हुए हौ, यद्यपि तुमको इच्छा नहीं तौ भी कृपा करिकै शिलाविषे हमारी सृष्टिको देखौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकरि आकाशमार्गमें ले चली, जैसे गंधको वायु ले जाता है, तैसे मुझको लेगई, तब दोनों आकाशमार्गमें उडे, भूताकाशविषे हम चिरकाल उड़ते गए, हमको लोकालोक पर्वत दृष्ट आया, तिसके निकट जायकरि

तिसके शिखर देखे, जो महाऊर्ध्वको गये हैं, अरु मेघ पडे विचरते हैं, अरु शिखर ऐसे सुंदरहैं, मानौ क्षीरसमुद्रते चंद्रमा निकसा है, ऐसे सुंदर शिखरको हम देखते भए, तहां जायकारि शिला देखी, कैसी शिला है,जो स्वर्णकी महासुंदर शिलाहै, तिसके निकट हम गये,तब मैंने कहा,हे देवी यहतौ शिला पडी है, तुम्हारी सृष्टि कहां है, इसविषे पृथ्वी कहां है, द्वीपकी मर्यादा कहां है, समुद्र कहां हैं, जिनका आवरण चहुँफेर होता है, अरु तिनके ऊपर दशसहस्रयोजनपर्यंत स्वर्णकी पृथ्वी होती है, सो कहां है, पर्वत कहां हैं, सप्तलोक कहां हैं, आकाश कहां है, दशो दिशा कहां हैं, तारामंडल कहां है, सूर्यचन्द्रमा कहा हैं, जो रात्रि दिनके प्रकाशक हैं, अरु भूतका संचार कहां होता है, देवगण कहां हैं, विद्याधर सिद्ध गंधर्व कहां हैं, योगीश्वर कहां हैं, वरुण कुबेर कहां हैं, जगत्की उत्पत्ति प्रलयका संचार कहां हैं, पातालकी भूमिका कहां हैं, अरु न्याय करनेहारे मंडलेश्वर कहां हैं, अरु मरुस्थलकी भूमिका कहां है, अरु नंदनवनादिक कहां हैं, देवता दैत्यके विरोधसंचार कहां है, यह तौ शिला दृष्ट आती है ॥ हे रामजी ! आश्चर्यको प्राप्त होकरि जब मैंने ऐसे कहा, तब विद्याधरी बोली ॥ हे भगवन् ! तुमको तौ प्रत्यक्ष इस शिला विषे अपनी सृष्टि भासती है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे अपना मुख भासता है, तैसे मुझको अपनी सृष्टि भासती है, जैसी मर्यादा देशदेशांतरकी मुझको भासती है, इसका संस्कार पूर्वका मेरे हृदयविषे है, इसीते मुझको प्रत्यक्ष भासती है; अरु तुम्हारे हृदयविषे इसका संस्कार नहीं, इसीते तुमको नहीं भासती, तुम्हारी सृष्टिकी अपेक्षाकरिकै यह शिला पडी है, तुमको शिलाका निश्चय है, इस कारणते तुमको इसविषे जगत् नहीं भासता ॥ हे भगवन् ! जिसका अभ्यास होताहै,सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है, अरु सोई भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! गुरु शिष्यको उपदेश करता है, जो कछु इसकी वांछा होती है, सो उपदेशमात्रते इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब तिसका अभ्यास करै, तब इसकी प्राप्ति होती है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसा शास्त्र कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते न पाइये, ऐसा न्याय अरु ऐसी सिद्धता कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते न पाइये,

ऐसी कला कोऊ नहीं जो अभ्यास किये ते न पाइये, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो अभ्यासकी प्रबलता करि सिद्ध न होवे, जो थककरि फिरै नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु सिद्ध होता दृष्ट आता है, सो सब अभ्यासके वशते होता है, प्रथम जो मैं तेरेसाथ आई हौं तब मुझको भी शिलाविषे सृष्टि न भासी थी, काहेते जो सृष्टि अंतवाहक शरीरविषे स्थित है, सो तुम्हारेसाथ द्वैतरूपी कथाके करनेते अंतवाहक शरीर मुझको विस्मरण हो गया था, जो विश्वकी चर्चा अरु तुम्हारी सृष्टिकी चर्चाकरिकै मुझको स्पष्ट नहीं भासती, जैसे मलीन आदर्शविषे मुख नहीं भासता, तैसे तुम्हारी सृष्टिके संकल्प-करि मुझको भी सृष्टि भासती नहीं, परंतु चिरकाल जो अभ्यास किया है; ताते बहुरि भासती है, काहेते जो कछु दृष्टि अभ्यास होता है, तिसकी जय होती है ॥ हे मुनीश्वर ! चिन्मात्रपदविषे फुरणेकरि आदि जीवके शरीर अंतवाहक हुए हैं, अर्थ यह जो आकाशरूप शरीर थे, जब उसविषे प्रमादकरिकै दृढ अभ्यास हुआ तब अधिभूत होकरि भासने लगे, जब भावना उलटीकरि बहुरि योगकी धारणा करिकै अभ्यास करता है, तब अधिभूतता क्षीण हो जाती है, अरु अंतवाहक प्रगट होता है, तिसकरि आकाशविषे पक्षीकी नांई उडता फिरता है, ताते तुम देखौ, कि अभ्यासके बलकरि सब कछु सिद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर ! अज्ञा-नकरके जगत् अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो दृढ़ स्थित हुआ है, बहुरि जब शास्त्रके वचनोंविषे दृढ अभ्यास होता है, तब क्षीण हो जाता है, हे मुनीश्वर ! तुम देखो जिस किसी सृष्टिको प्राप्ति होती है, सो अभ्या-सके बल करके होती है, जो अज्ञानी होता है, अरु ब्रह्म अभ्यास करता है, तौ ज्ञानी होता है, अरु पर्वत बडा है, परंतु जब अभ्यास-करि चूर्ण किया चाहै तौ चूर्ण होता है, अरु संपूर्ण वृक्षको भोजन करना कठिन हैं, परंतु अभ्यास करिकै शनैः शनैः घूणा खाय जाता है, आप तौ छोटा है, परंतु जो वस्तु पानी कठिन होवै सो अभ्यासकरि सुगम हो जाती है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरुके निकट जायकरि जिस पदार्थकी वांछा करता हैं, सो सिद्ध होता है, तैसे आत्मरूपी

चिंतामणी कल्पतरु है; तिसविषे जिस पदार्थका अभ्यास करता है, सो सिद्ध होता है, अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है, जो बालक अवस्थाते अभ्यास होता है, सो वृद्धअवस्थापर्यंत होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो पुरुष बांधव नहीं होता, अरु निकट आय रहता है, तब निकटके अभ्यासते बांधव हो जाता है, परंतु विदेश रहता है, तौ अभ्यासकी क्षीणताते अबांधव हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! विष होता है, अरु तिसविषे अमृतकी भावना करता है, तौ अभ्यासकरि अमृत हो जाता है, जो मिष्टान्नविषे कटुभावना होती है तौ कटु भासता है, अरु कटुविषे मिष्टान्नकी भावना करिये तौ मिष्टान्न भासता है, जैसे किसीको निंब प्रीतम है किसीको मिष्टान्न प्रीतम है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु सिद्ध होता है, सो अभ्यासके बलकरि सिद्ध होता है, पुण्य किया होता है, सो पापके अभ्यासकरि नाश हो जाता है, अरु पाप पुण्यके अभ्यासकरि नाश होता है, अरु माता भी अमाता हो जाती है, किसी अर्थके अनर्थ हो जाते हैं, अरु मित्र भी अमित्र हो जाता है, भाग्य अभाग्यरूप हो जाता है, इत्यादिक पदार्थ सब चल हो जाते हैं, परंतु अभ्यासका नाश कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ निकट पडा होता है, अरु इंद्रियाँ साधक भी विद्यमान हैं, तौभी अभ्यासविना प्राप्ति नहीं होती, जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है तहां दृष्टिरूप पदार्थकी प्राप्ति होती है, अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है, ब्रह्मचर्चाके अभ्यासकरि नाश हो जाता है, ॥ हे मुनीश्वर ! संसाररूपी समुद्र है, आदि अंतते रहित है, आत्म अभ्यासरूपी नौकाकरि तिसको तरि जाताहै, जब अभ्यासको न त्यागैगा, तब अवश्य तरैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ उदय होवै, तिसके अभावकी भावना करिये तौ अस्त हो जाता है, अरु जो अस्त होवै, तिसके उदय होनेकी भावना करिये तब उदय होता है, जैसे सिद्धके शापकरि उदय पदार्थकी नष्टता होती है, अरु वरते अप्राप्त पदार्थकी प्राप्ति होतीहै ॥ हे मुनीश्वर ! जो पुरुष शास्त्रके इष्ट पदार्थको श्रवण करता है, अरु तिसका अभ्यास नहीं करता, सो मनुष्यविषे नीच जानना, इष्ट पदार्थकी प्राप्ति तिसको कदाचित् नहीं होती, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं होता, तैसे उसको इष्ट

पदार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जो आत्मरूपी इष्टको त्यागि-कारि अपर किसी पदार्थकी वांछा करता है, सो अनिष्टते अनिष्टको पाता है नरकते नरकको भोगता है ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको अभ्यासका-भी अभ्यास प्राप्त भया है, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अभ्यासके बलकारि इष्टको पाता है, जैसे प्रकाशकारि पदार्थ देखिये जो वह पडा है, तिसका नाम अभ्यास है, अरु देखकारि जो तिसके निमित्त यत्न करना, तिसका नाम अभ्यासका अभ्यास है, जब यत्न अरु अभ्यास करता है, तब पदार्थको पाता है, वारंवार चिंतवनेका नाम अभ्यास है, जब ऐसा अभ्यास होवै, तब इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर ! चौदह प्रकारके भूतजात हैं, जैसा जैसे जिसको अभ्यास है, तिसके बलकारि तैसा तैसा सिद्ध होता है, अभ्यासरूपी सूर्य है, तिसके प्रकाशकारि अपने इष्टरूपी पदार्थको पाता है, अभ्यासके बलकारि भय निवृत्त होता है, पृथ्वी पर्वत वन कंदराविषे निर्भय होकारि विचरता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधर्यभ्यासवर्णनं नाम शताधिकपंचाशीतितमः सर्गः ॥ १८५ ॥

शताधिकषडशीतितमः सर्गः १८६.
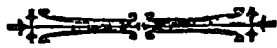
प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणवर्णनम् ।

विद्याधर्युवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो कोऊ पदार्थ सिद्ध होता है, सो निरंतर अभ्यासकारि सिद्ध होता है, तुम्हारा शिलाविषे दृढ निश्चय होता है, ताते तुमको शिला भासती है, अरु मुझको इसविषे सृष्टि भासती है; जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकल्पसाथ मिलै, तब तुमकोभी जगत् भासै, यह जगत् जो स्थित है, सो मेरे अंतवाहकविषे है, अरु आदि वपु सबका अंतवाहक है, सो अंतवाहकविषे सबकी एकता है, जैसेसमुद्र विषे सब तरंगकी एकता होती है ॥ हे मुनीश्वर ! जब तुम धारणाका अभ्यास कारिकै शुद्ध बुद्धिविषे प्राप्त होहुगे, तब तुमको शिलाविषे सृष्टि

भासैगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मुझको शुद्ध युक्ति कही, तब मैं पद्मासन बांधकरि विषयते त्याग किया, अरु विषय जो कथाका क्षोभ था, तिसको भी त्याग किया, अपने अधिभूत भी त्याग किया, अरु निरंतर शुद्ध बोधका अभ्यास किया, तिस अभ्यासके बलकरि मुझको बोधका अनुभव उदय हुआ, जैसे मेघके अभावते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाते रहित मुझको शुद्ध बोधका अनुभव उदय हुआ, सो कैसा बोध है, जो उदय अरु अस्तते रहित परम शांतरूप है, तिसविषे शिला मुझको आकाशरूप दृष्टि आई, अरु शिला तत्त्वकरके भी दृष्ट आई, केवल बोधमात्र दृष्ट आई है, पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोऊ दृष्ट न आवैं, केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्ट आवै, जब बोधमात्रते अंतवाहक-रूप होकरि स्पंद फुरा, तब अंतवाहक कारिकै शिलाविषे सृष्टि भासने लगी, जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है, अरु बोधते भिन्न भिन्न नहीं होती तैसे सृष्टि मुझको दृष्ट आई, अरु शिला क्यारूप भासी, जैसे स्वप्नके गृहविषे शिला दृष्ट आवै सो अनुभवही शिला अरु गृहरूप होकरि भासता है, इतर कछु नहीं होता, तैसे वह शिला दृष्ट आई ॥ हे रामजी! जैसे आकाशरूप वह शिला देखी, तैसे सब जगत् चिदाकाश है, कछु द्वैत बना नहीं, सर्वदा काल आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, अरु जो कछु द्वैत भासता है, सो आत्माके अज्ञानकरिकै भासता है, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे अपना शिर काटा देखता है, अरु रुदन करता है, बहुरि जाग उठा, तब आपको ज्योंका त्यों आनंद देखता है, तैसे जबलग अज्ञान निद्राविषे सोता पड़ा है, तबलग जगद्भ्रम मिटता नहीं, जब स्वरूप विषे जागिकरि देखैगा, तब सब भय मिटि जावैगा, केवल अपनाही आप भासैगा ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य देख, जो वस्तु सत्‌रूप है, सो असत्‌की नाईं भासती है, आत्मा सदा सत्‌रूप है, सो ज्ञानकरिकै भासता नहीं, अरु जो असत्‌रूप है सो सत्‌की नाईं हो भासती है, शरीरादिक दृश्य असत्‌रूप हैं सो सत्वत् होकारि भासते हैं ॥ हे राम-चंद्र ! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, अरु शरीरादिक परोक्ष हैं, अज्ञानकरिकै

शरीरादिक प्रत्यक्ष भासते हैं, अरु आत्मपद परोक्ष भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो कछु इस लोक अथवा परलोककी क्रिया सिद्ध होतीहै, सोआत्मसत्ताकरिकै सिद्धहोतीहै,अरु जो कछु प्रत्यक्ष प्रमाणकरि जगत् भासताहै,सो आत्मसत्ताकरिकै भासता है,आदि प्रत्यक्ष आत्माहीहै अपर सब कछु आत्माके पाछे जानाजाता है, जो पुरुष कहते हैं, आत्मा योगकरि प्रत्यक्ष होता है, अरु मनकरि प्रत्यक्ष होता है, सो मूर्ख हैं, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, अरु प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्माकरि सिद्ध होते हैं, यही माया है, जो सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा है, तिसको परोक्ष जानना, अरु जो शरीरादिक असत् हैं, तिनको सत् मानना ॥ हे रामजी ! जेते कछु जीव तिनका बास्तवरूप ब्रह्मही है, तिन विषे आदि फुरना अन्तवाहकरूप हुआ है, तिसके अनंतर अधिभूतक भासने लगा है, भ्रमकरिकै अधिभूतकको अपना आप जानते हैं, अरु जो सदा निर्विकार निराकार निर्गुण स्वरूप है, अपना आप अनुभवरूप है, तिसको कोऊ नहीं जानते, आदि शरीर सर्व जीवका अंतवाहक है, सो शुद्धआत्माका किंचन है, केवल आकाशरूप है, कछु बना नहीं, संकल्पकरिकै अधिभूतता दृढ़ हुई है, सो मिथ्या भ्रांतिकरि भासती है, जैसे स्वप्नविषे अधिभूतक शरीर भासता है, तैसे जाग्रतविषे अधिभूत शरीर भासता है, अरु अंतवाहक अविनाशी है, इसलोक परलोकविषे इसका नाश नहीं होता, वास्तव बोधस्वरूपते इतर कछु नहीं, भ्रमकरिकै अधिभूत दृष्ट आता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रमते अपनेविषे अधिभूत शरीर भासता है ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु है सो असत् हो भासती है, अरु जो असत् वस्तु है, सो सत् होकरि भासती है, सो अविचारते जीवको भासती है, यह मोहका माहात्म्य है, जो सबके आदि प्रत्यक्ष आत्मा है, तिसको अप्रत्यक्ष जानते हैं, अप्रत्यक्ष जगत्को प्रत्यक्ष जानते हैं ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो भ्रमकरिकै भासता है, स्वप्नकी नांई मिथ्या है, जिनविषे पदार्थको सुखरूप मानता है सो

सबका कारण है, काहेते जो परिणाम इनका दुःख होता है, जो प्रथम क्षीणसुख भासता है, बहुरि तिनके वियोगते दुःख होता है, इसी कारणते इनका नाम आपातरमणीय कहाता है, इनको पाइकरि शांतिमान् कोऊ नहीं होता, जैसें मृगतृष्णाके क्षीणसुख भासते हैं, बहुरि तिनके वियोगते दुःख होता है, जलको पाइकरि कोऊ तृप्त नहीं होता, तैसे विषयके सुखकरि तृप्त कोऊ नहीं होता तिनविषे लगते हैं, सो मूर्ख हैं, जो अनुत्तम सुख है, अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसको त्यागिकरि विषयके सुखविषे लगते हैं सो मूर्ख हैं, शुद्ध आकाशरूप अंतवाहकविषे जगत् देखते हैं ॥ हे रामजी ! हुआकी नाईं भासताहै, तौ भी हुआ कछु नहीं, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तौ भी हुआ नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तौ भी हुआ नहीं, तैसे यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी हुआ कछु नहीं, ॥ हे रामजी ! प्रत्यक्षप्रमाण भी है नहीं, असत्य है, तौ अनुमानादिक प्रमाण कहांते सत्य होवैं; जैसे जिस नदीविषे हस्ती बहे जाते हैं, तौ रुईके बहनेविषे क्या आश्चर्य है, तैसे सब प्रत्यक्षप्रमाण जगत्को असत् जाना तौ अनुमान प्रमाणकरि क्या सत् होना है ॥ हे रामजी ! केवल बोधमात्रविषे जगत् कछु बना नहीं, हमको तौ सदा ऐसेही भासता है, अरु अज्ञानीको जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषको स्वप्नविषे पर्वत दृष्ट आते हैं, अरु जागृत पुरुषको नहीं भासते, तैसे अज्ञानीको यह जगत् भासता है, हमको आकाश समुद्र पर्वत सब केवल बोधमात्र भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ श्रोताके हृदयविषे होते हैं, अरु जिसने नहीं सुनी, तिसके हृदयविषे नहीं होते, तैसे मेरे सिद्धांतको ज्ञानवान् जानते हैं, अपर अज्ञानी नहीं जान सकते ॥ हे रामजी ! जेता कछु अधिभूत जगत् भासता है, सो अप्रत्यक्ष है, अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो इसलोक अथवा परलोकका अर्थ है सो अनुभवकरि सिद्ध होता है, काहेते जो सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है, तिसको त्यागिकरि जो जो देहादिक दृश्यको अपना आप जानता है, अरु इनहीको प्रत्यक्ष जानते हैं, सो मूर्ख पशु पत्थरवत् हैं, सूखे तृणकी नाईं तुच्छ हैं, जैसे भ्रमतेको पर्वत आदिक पदार्थ भ्रमते भासते हैं तैसे अज्ञानीको अधिभूत

भासता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब परोक्ष है, काहेते जो इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष होता है, जो नेत्र होते हैं, तौ रूप भासते हैं, जो नेत्र न होवैं तौ न भासैं, इसप्रकार सब इंद्रियोंके विषय हैं, जो होवैं तौ भासैं, नहीं तौ न भासैं, अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, उसके देखनेविषे किसकी अपेक्षा नहीं चाहती ॥ हे रामजी ! जो इंद्रियोंकरि सिद्ध होवै सो असत्य क्यों हुआ, जगतही असत् हुआ, तिसके पदार्थ सत् कैसे होवैं, ताते इस जगत्की सत्यता त्यागिकरि शुद्ध बोधविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणं नाम शताधिकषडशीतितमः सर्गः ॥ १८६ ॥

शताधिकसप्ताशीतितमः सर्गः १८७.

शिलांतरवसिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं उस शिलाको देखत भया, जब बोध दृष्टिकरि देखौं, तब मुझको ब्रह्मरूप भासै, अरु जब संकल्प दृष्टि-करि देखौं तब जगत् दृष्ट आवै, पृथ्वी द्वीप समुद्र पर्वत लोक अरु लोक-पाल सूर्य चंद्रमा तारागण पाताल जगत् सब दृष्ट आवैं, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे आत्मरूपी आदर्शविषे जगत् भासै, तब देवीने शिलाविषे प्रवेश किया, मैंने भी संकल्परूपी शरीरकरि प्रवेश किया, दोनों जगत्के व्यवहारको लंघते गये; जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थान था, तहां हम जाय बैठे, तब देवीने कहा, हे भगवन् ! तुम ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है, उसके तांई तुम विवाह निमित्त उपजाई, बहुरि क्यों इसका त्याग किया, यह तुम पूछना ॥ हे मुनीश्वर ! इसने मेरे तांई विवाहके अर्थ उत्पन्न करी थी, जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है, तिसको वैराग्य उपजा है, तिसको देखिकरि अब मेरे तांई भी वैराग्य उपजा है, इसीते हम परमपदकी इच्छा रखते हैं, जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है, न शून्य है, केवल शांतरूप है, जो सर्गके आदि

अरु महाकल्पके अंतविषे रहता है, तिसविषे स्थित होनेकी इच्छा है, जिसविषे स्थित हुए पहाडवत् समाधि हो जावै, ऐसे परमपदका उपदेश करो ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि भर्ताको जगावनेनिमित्त निकट जाइकरि कहत भई ॥ हे नाथ ! तुम जागौ, तुम्हारे गृहविषे अपर सृष्टिके ब्रह्माका पुत्र वसिष्ठमुनी आयाहै, तुम उठकरि इसका अर्घ्यपाद्य पूजन करौ, काहेते कि हमारे गृहविषे अतिथि आए हैं, अरु महापुरुष पूजाकरि प्रसन्न होते हैं ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा, तब ब्रह्माजी समाधिते उतरा, प्राण आनि देहनाडीविषे स्थित हुए, जैसे वसंत ऋतुकरि सब वृक्षोंविषे रस हो आता है, तैसे दश इंद्रियां चतुष्ट भईं, अंतःकरणविषे शनैः शनैः करि प्राण आनि स्थित हुए, सब इंद्रियां खिल आईं तब मुझको अरु देवीको अपने सन्मुख देखत भया, अरु ज्ञानकरिकै ओंकारका उच्चार करि ब्रह्माजी सिंहासनपर बैठा, ब्रह्माजीके जागनेकरि बड़ा शब्द होने लगा, विद्याधर गंधर्व ऋषि मुनि आयकरि प्रणाम करत भये, स्तुति करने लगे, वेदकी ध्वनिकरि पाठ करने लगे, तब मुनिको कहत भये ॥ अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच ॥ हे ऋषि ! तुम कुशलतो हौ क्यों कि बडे मार्गकरि आये हौ अरु सार असारको जाननेहारे हौ, जैसे हाथविषे बिल्वका फल होता है, तैसे तुमको ज्ञान है, अरु ज्ञानरूपी समुद्र हौ ऐसे कहकरि अपने निकट आसन दिया, अरु नेत्रसे आज्ञा करी, कि इस आसनपर विश्राम करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मुझको कहा, तब मैं प्रणाम करिकै निकट जाय बैठा, एक मुहूर्त पर्यंत देवता सिद्ध ऋषिके प्रणाम होते रहे, तिसके अनंतर विद्याधर अरु देवता सब गये, तब मैं कहत भया, हे भूत भविष्य वर्तमान् तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठी ! ऊंचे आसनपर विराजमान् हौ, अरु साक्षात् ब्रह्मज्ञानके समुद्र हौ, अरु यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है, जिसको तुम भार्याके निमित्त उत्पन्न कीनी है, बहुरि विरस जानकरि त्याग किया है, तुम्हारे वैराग्य करनेकरि इसको भी वैराग्य उपजा है, इसनिमित्त मुझको ले आई है, कि परमात्मतत्त्वकी वाणीकरि हमको उपदेश करहु, सो इसका अभिप्राय क्या है ॥ अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! मैं शांत हौं,

अजर अमररूप हौं, अरु मेरेविषे उदय अस्त कदाचित् नहीं, मैं परम आकाशरूप हौं, अरु अपने आपविषे स्थित हौं, न मेरी काऊ स्त्री है, न मैंने किसीकी उत्पत्ति कीनी है, तथापि जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं कहता हौं, काहेते कि, महापुरुषके विद्यमान् ज्योंका त्यो कहना योग्य है ॥ हे मुनीश्वर! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, तिसका वचन अहं होकरि फुरा है, जो मैं हौं, तिसका नाम आदि ब्रह्मा है, सो मैं हौं, कैसा ब्रह्मा है, जैसा भविष्यत् सृष्टिका होवै, अर्थ यह जो संकल्परूप द्रष्टा अरु संकल्परूप मैं हौं, अरु वास्तवते क्या है, आकाशरूप हौं, सदा निरावरण हौं, अरु अपने आपहीविषे मेरी अहंप्रतीति है, तिसविषे आदि जो संकल्पका फुरणा हुआ है, तिसकरि जगद्भ्रम रचा है, तिस जगद्भ्रमविषे मर्यादा हुई है, अरु संकल्पका जो अधिष्ठाता यह ब्रह्म शक्ति है, सो भी शुद्ध है ॥ हे मुनीश्वर! तिस मर्यादाको सहस्र चौकडी युगकी बीती हैं, अब कलियुग है, कल्पकी भी अरु महाकल्पकी भी मर्यादा पूरी भई है, तिसकरि मुझको परमचिदाकाशविषे स्थित होनेकी इच्छा भई है, ताते इसको विरस जानकरि त्याग किया है, जब इसका त्याग करौं, तब निर्वाणपदको प्राप्त होवौं, काहेते कि, यह मेरी इच्छा वासनारूप है, जो वासनाका त्याग होवै तौ निर्वाणपद प्राप्त होवै, अरु यह जो चित्तकला शुद्ध है, इसने धारणा अभ्यास किया था, तिसकरि अंतवाहक शक्ति इसको प्राप्त भई है, अंतवाहक शक्तिकरि आकाशविषे फुरा है, अरु संसारते विरक्त भई है, आकाशमार्गविषे इसको तुम्हारी सृष्टि भास आई, अरु परमपद पानेकी जो इच्छा हुई थी तिस वासना-करि इसको तुम्हारी संगति प्राप्त भई, परमपद पानेकी इच्छा इसको हुई है, ताते तुम्हारी शरणको प्राप्त भई है, अरु तुमको ले आई है, जो श्रेष्ठ हैं, तो बडेकी शरण जाते हैं, अपने कल्याणके निमित्त तुमको ले आई है ॥ हे मुनीश्वर! यह मेरी वासनाशक्ति है, आगे मैं इसको मूर्ति-रूप उत्पन्न करी थी, तब इस जगज्जालको रची थी, अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपदकी इच्छा भई है, तिसकरिकै मैं इसका त्याग किया है, अब इसको भी वैराग्य उपजाहै, इस कारणते तुम बोधस्वरूपकी शर

णको प्राप्त भई है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगद्विलास संकल्पविषे हुआ है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, परमात्मतत्त्व ज्योंका त्यों अपनेआपविषेस्थित है,अरु मैं तू, मेरा तेरा इत्यादिक शब्द समुद्रके तरंगकी नाईं हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजकरि शब्द करते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं,तैसे हमारा तुम्हारा बोलना मिलाप होता है ॥ हे मुनीश्वर ! वास्तवते न कोऊ उपजा, न किसीमें लीन होना है, जैसे तरंग जलरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं. इंद्रियाँ मन बुद्धिआदिक सब वहीरूपहैं॥ हे मुनीश्वर ! मैं चिदाकाश हौं; अरु चिदाकाशविषेस्थितहैं अरु यह ब्राह्मी शक्ति है, जिसने जगत् किया है, सो यह भी अजर अमरहै, न कदाचित् उपजी है, न नाश होवैगा, शुद्ध आत्मा किंचनद्वारा जगत् हो भासता है, जैसे सूर्यकी किरणैं जल हो भासती हैं, अरु जल कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माही है, विश्व कछु हुआ नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जगत् जाल होकरि आत्मा भासता है, जगत्के उदय अस्त होनेकरि आत्माविषे कछु क्षोभ नहीं होता, ज्योंका त्यों एकरस स्थितहै, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, परंतु समुद्र ज्योंका त्यों रहता है, न तरंग उपजे हैं, न लीन होते हैं, तैसे जगत् कछु उपजा नहीं, संकल्पकरि उपजेकी नाईं भासता है, जैसे दृढताकरिकै जल गड़ा हो जाता है, तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यताकरिकै पिंडाकार भासता है, परंतु उपजे कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो शिला है. जिसविषे हमारी सृष्टि है, सो शिला केवल चिद्घनरूप है, तुम्हारी सृष्टिविषे यह शिला है, अरु हम चेतनघन हैं, आकाश चेतन आत्मा शिला होकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे पत्तनसृष्टि सब जाग्रत् भासती है, सो बोधरूप जगत्करि भासता है, तैसे यह जगत् अरु शिलारूप होकरि बोधही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे स्वप्नविषे ग्रहका चक्र फिरता दृष्टि आता है, सूर्य चंद्रमा पर्वत नदी वरुण कुबेर आदिक जगत् भ्रमकरिकै दृष्टआतेहैं, सो बने कछु नहीं, चेतनका किंचनही ऐसे भासता है तैसे यह जगत् शुद्ध आकाशका किंचन है जैसे सूर्यकी किरणोंविषे किंचित् जलाभास होता है, तैसे जहां आत्मसत्ता है, तहां जगत् भासता है, अरु जो पदार्थ

हैं सो आत्मसत्ताकरि भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सर्वविषे अनुस्यूत है ताते सबके उरविषे सृष्टि वसती हैं, जैसे एक शिलाविषे हमारी सृष्टिविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं, तिनविषे सृष्टि वसती हैं सो परिच्छिन्न दृष्टि-करि नहीं भासती हैं, जब अंतवाहकदृष्टिकरि देखिये तब सृष्टि भासती है, घटोंविषे सृष्टि है, गर्तोंविषे सृष्टि है, पृथ्वीविषे सृष्टि है, जल अग्नि पवन आकाशविषे सृष्टि है, सब ठौरविषे सृष्टि है अरु बना कछु नहीं, जैसे जहां समुद्र है, तहां तरंग भी होते हैं, परंतु समुद्रते भिन्न कछु तरंग हुए भी नहीं वहीरूप हैं, तैसे यह जगत् कछु उपजता नहीं, न मिटता है, ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् जो फुरता है, सो संकल्पशक्तिकरि फुरता है, संकल्पशक्ति अहंरूपी किंचन मात्र उदय हुई है, अरु जैसे कमलते सुगंधि लेकरि तरियां निसकती हैं, तैसे मूलते देवी जगत्रूपी सुगंधिको लेकरि उदय भई है, परंतु वास्तव जगत् कछु बना नहीं, संकल्पशक्तिकरि बनेकी नाईं भासता है ॥ हे मुनीश्वर! वास्तवते न कोऊ संकल्प है, न प्रलय है ज्योंका त्यों ब्रह्म अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, जैसे समुद्रविषे समुद्र स्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत् है, न असत् है, आत्माविषे न उदय हुआ, न अस्त होवैगा जैसे आकाशविषे नीलता न सत् है, न असत् है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् न सत् है, न असत् है, अरु मैं तिस ब्रह्मका किंचन ब्रह्मा हौं, यह जगत् मेरे संकल्पविषे उत्पन्न हुआ है, अब मैं संकल्पका निर्वाणकरता हौं, जब संकल्प निर्वाण हुआ, तब जगत्का आभास हो जावैगा, जैसे कम-लके नाश हुए सुगंधिका अभाव होता है, तैसे मेरेविषे इच्छा फुरी थी तिसविषे वासना है, वासनाविषे जगत् है, अब मैं इसको निर्वाण करता हौं, जब इच्छा निर्वाण हुई तब जगत्का भी स्वाभाविक अभाव हो जावैगा, अरु तुम्हारा जो शरीर भासता है, सो इस संकल्पविषे भासता है, ताते तुम अपनी सृष्टिविषे गमन करौ, नहीं तो तुम्हारा शरीर भी यहां निर्वाण हो जावैगा ॥ हे रामजी! इसप्रकार मुझको कहकरि

बहुरि देवीको कहत भया ॥ हे देवी ! अब-तू आत्मपदविषे अरु बोध आदिकको भी लीन कर अपनेविषे निर्वाण होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलांतरवसिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनं नाम शताधिकसप्ताशीतितमः सर्गः ॥ १८७ ॥

शताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः १८८.

अन्यजगत्प्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्मा कहिकरि पद्मासन किया, अपर भी सब जन संयुक्त तब अकार उकार मकारको छोडिकरि अर्धमात्राविषे स्थित भया, तब ब्रह्माजीकी मूर्ति ऐसी दृष्ट आवै, जैसी कागजऊपर मूर्ति लिखी होती है, अरु निर्वेदना हुआ, जेता कछु जगज्जालका ज्ञान था, तिसका विस्मरण किया, अरु देवीने भी उसीप्रकार पद्मासन किया, ब्रह्माजीके निश्चयविषे लीन हो जाने लगी, जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्माविषे लीन होने लगा, तब जेते कछु उपद्रव थे, सो अति उदय हुए मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रियां दुराचारिणी होत भईं, सब जीवने धर्मका त्याग किया, कामी पुरुष बहुत भए, परस्त्रियोंकेसाथ संग करैं, पुरुष स्त्रियां शंका किसीकी न करैं, काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेष बढि गए, शास्त्रकी मर्यादाको त्यागत भए, अनीश्वरवादी होत भए, वर्षा होनेते रहिगई, कुहिड परने लगी, अरु काल पडा, दुष्टजन धनपात्र होने लगे, धर्मात्मा आपदा भोगने लगे, चोर चोरने लगे, राजा मद्यपान करने लगे, जीवनको बडे दुःख प्राप्त होने लगे, तीनों तापकरि जलते रहैंही, राजा न्यायको त्यागत भए, इत्यादिक जो पाप आचार थे, सो उदय भए, धर्म छपन हो गया, अज्ञानी राज्य करैं, पंडित ज्ञानी टहल करैं, दुर्जनोंकी महान् पूजा होवै, सत्य पंडितका निरादर होवै, तब जीवके समूह इकट्ठे भए पृथ्वीकेऊपर पृथ्वी अपनी सत्ताको त्यागत भई काहेते जो पृथ्वी ब्रह्मके संकल्पविषे पड़ी थी; जब उसने अपना संकल्प खैंचा, तब निर्जीव हो गई, चैतन्यता निकस गई, जो स्थान भूतके विचरनेका होवै सो खाईंकी

नांई हो जावे, भूत नाश हो जावैं, पृथ्वी भी नाश होने लगी, पर्वत कंपने लगे, भूचाल हाहाकार शब्द होने लगे, जैसे शरत्कालविषे वल्ली सूखि जाती हैं, जर्जरीभाव होती है, तैसे पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त भई काहेते जो चेतनता शरीर सर्व जगत् ब्रह्मा है, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चेतनता क्षीण होती जावै, त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होवै, जैसे किसी पुरुषका अर्धांग मारि जाता है, तब वह अंग शव जैसा हो जाता है, फुरणा तिसविषे नहीं रहता, तैसे ब्रह्मके संकल्परूप चेतनता पृथ्वीसों निकसती जावै, इस कारणते पृथ्वी निघरी निघरी जावै, धूड उडै, नगर नष्ट होवैं, इसप्रकार उपद्रव उदय हुए, काहेते कि, पृथ्वीके नाशका समय निकट आया, अरु समुद्र जो अपनी मर्यादाविषे स्थित थे, सो भी अपनी मर्यादाको त्यागत भए, जैसे कामी पुरुष मद्यपान कियेते अपनी मर्यादाको त्यागताहै, तैसे समुद्र उछले किनारे गिराय दिये, पर्वत कंदरासों निकस जावै पृथ्वीको नाश करते भये, राजा अरु नगरवासी भागते जावैं, पाछे तीक्ष्ण वेगकारि जल चला जावै, बडे पर्वत गिरने लगे, अरु चक्रकी नांई फिरने लगे, समुद्रके तरंगसाथ पर्वत गिरैं, अरु उडैं, अरु तरंग उछलकारि पातालको गए, पातालका नाश होने लगा, अरु बड़े रत्नके पर्वत गिरैं, तब रत्नका ऐसा चमत्कार होवै जैसा तारामंडलका होता है, इसीप्रकार बड़ा क्षोभ होने लगा, अरु तरंग उछलकारि सूर्य चंद्रमाके मंडलको जावैं, अरु प्रकाश भूसल होगया, वडवाग्नि उदय भई तब वरुण कुबेर यम इनके जो वाहनथे सो भयको प्राप्त भए, जलके वेगकारि पर्वत नृत्य करने लगे, मानो पर्वतोंको पंख लगे हैं, स्वर्गविषे जो कल्पतरु थे, समुद्रविषे आनि पड़े, चिंतामणि अरु सिद्ध गंधर्व तब गिरने लगे, समुद्र इकट्ठे हो गए, जैसे गंगा यमुना सरस्वती एकत्र होतीं हैं, तैसे समुद्र मिलिकारि शब्द करने लगे, अरु ऐसे मच्छ निकसे, जिनके पुच्छ लगनेकारि पर्वत उडते जावैं, अरु कंदराविषे जो हस्ती थे सो पुकार करैं, सूर्य चंद्रमा तारागण क्षोभको प्राप्त भए समुद्रविषे गिरने लगे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार प्रलयके क्षोभकारि जेते कछु लोकपाल थे सो सब समुद्रके मुखमें आनि पडे,

वह मच्छ उनको भक्षण करते भए, अरु तरंग आपसमें युद्ध करैं, जैसे मतवारे हस्ती शब्द करते हैं, तैसे युद्ध करैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे, अन्यजगत्प्रलयवर्णनं नाम शताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ १८८॥

शताधिकैकोननवतितमः सर्गः १८९.

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह विराट्रूप जो ब्रह्मा था, जिसका देह सम्पूर्ण जगत् था, सो अपने प्राणको खैंचत भया, तब छत्र, चक्रके फेरनेहारा जो वायु है, सो अपनी मर्यादा त्यागिकरि क्षोभ करने लगा तब वह चक्र नाश होने लगे, काहेते जो ब्रह्माके संकल्पविषे थे, किसीकी समर्थता नहीं जो उनको रक्खै अरु तेजमें जो देवता थे सो पवनके आधार थे, वह पवनके निकसनेकरि निराधार भए; तब समुद्रविषे गिरने लगे, जैसे वृक्षसों फल गिरते हैं तैसे गिरते भए, जैसे संकल्पके नाश हुए, संकल्पका वृक्ष गिरता है, जैसे पक्व फल समयकरि गिरता है, तैसे सब गिरते भए, सुमेरुकी कंदरा गिरत भई, पवनका बडा क्षोभ हुआ, अरु शब्द हुआ, अपनी शांतिके निमित्त पवनका क्षोभ हुआ, जैसे पवनविषे तृण फिरता है, तैसे आकाशविषे पवन फिरने लगा देवताके रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सो गिरता भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! संकलपरूप जो ब्रह्मा था सो विराट् आत्मा है, सब जगत् उसका देह है, भूमंडल उसका कौन अंग है, पाताल कौन अंग है, स्वर्गलोक कौन अंग है, अरु संकल्परूप कैसे अंग होते हैं, संकल्प तौ आकाशरूप होते हैं, अरु जगत् प्रत्यक्ष पिंडाकार दृष्ट आवै, जो जिसते उपजता है, सो तिसही जैसा होता है, तौ यह जगत् ब्रह्माके अंग कैसे हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस जगत्‌ते पूर्व केवल चिन्मात्र था, तिसविषे जगत् न सत् था, न असत् था, केवल आत्मत्वमात्र अपने आपविषे स्थित था, जैसे आकाश अपने आपविषे स्थित है, एक अ

दो शब्दते रहित है, तिस केवल चिन्मात्रका किंचन अहं होकारि स्थित भया है, तिस अहंकारका चैत्य जो दृश्य है, तिस साथ संबंध हुआ, तिस दृश्यके अनुभव ग्रहणकारि निश्चय हुआ तिसका नाम बुद्धि है, बहुरि सो व्यतीत हुआ तिसका नाम मन है, तिस मनके फुरणेकारि जगत् दृष्ट हुआ है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्य है, सोई ब्रह्मरूप करि कहता है, तिसविषे फुरणेविषे आगे जगत् हो खड़ा भया है, तिस संकल्परूप जगत्का वह विराट् है, परंतु क्या है, आकाशरूप है, अपर बना तौ कछु नहीं, अरु यह जो आकार सहित जगत् भासता है, सो ब्रह्मकरि भासता है, सब संकल्प आकाशरूप है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप होता है, परंतु निद्रादोष करिकै पिंडाकार भासता है, अरु आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्योंका त्यों अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! अहं जो फुरा है, सो मिथ्या है, अज्ञान करिकै दृढ स्थित हुआ है, असम्यक्दर्शीको दृढ भासता है, सो केवल संकल्पमात्र है, अपर कछु नहीं बना, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिदाकाश है, एक अरु द्वैत कलनाते रहित है, सर्व शब्दते रहित आत्मामात्र है, मैं अरु तू शब्द कोऊ नहीं, यह जगत् तिसका किंचन है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है तैसे आत्माका आभास जगत् है, संकल्पकी दृढता करिकै दृश्य भासता है, अरु है नहीं, जैसे संकल्परूप गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार मैं, जगत् वर्णन किया है, जो पुरुष मेरे कहनेको ज्योंका त्यों धारै, तब उसकी वासना नष्ट हो जावै, अरु पूर्ववत् आत्मा ज्योंका त्यों भासैगा, जैसे जगत्के आदि आत्मत्वमात्र था, तैसेही भासैगा काहेते अपर कछु हुआ नहीं, केवल आत्मत्वमात्र ज्योंका त्यों स्थित है, जोआत्माही है, तौ समवायकारण अरु निमित्तकारण कैसे होवै, जगत्का उदय होना अरु नाश होना असत् है, अद्वैत अनंत कहना भी कोऊ नहीं, जब सर्व शब्दका अभाव हुआ, तब परमचिदाकाश अनुभवसत्ताही शेष रहैगी, इसीका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी ! हमको तौ अब भी संवित्सत्ताही भासती है,

कैसा हौ, मैं शुद्ध हौं, सर्वकल्पनाते रहित हौं, चिदाकाश हौं अरु मेरेविषे जो वसिष्ठ अहं फुरा है, सो फुरा नहीं, फुरेकी नांई भासताहै, एक भी आत्माका किंचन है, हुआ कछु नहीं, ताते तुम भी इसीप्रकार जानकरि निर्वासनिक होहु, अरु अपने प्रकृत आचारको करहु अथवा न करहु, जो इच्छा है सो करहु परंतु करने अकरनेका संकल्प न करहु, परम मौनविषे स्थित होहु,ज्ञानवान्‌को यह अनुभव होताहै,ताते तुमभी ऐसेधारहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकोननवतितमः सर्गः ॥ १८९ ॥

शताधिकनवतितमः सर्गः १९०.

विराडात्मवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बंध मोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है, न असत् है, उदय भी नहीं हुआ, अस्त भी नहीं होता, केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, ऐसे तुमने मुझको उपदेश किया है सो मैंने जाना है, आत्माविषे जगत् न उपजता है, न मिटता है, तुमने अमृतरूपी वचनोंसों उपदेश किया है, सो मैंने जाना है, सुनता मैं तृप्त नहीं होता, अमृतकी नांई पान करता हौं, अरु जगत् सत् असत्‌ते रहित सन्मात्र है, तिसको मैं जाना है, बहुरि कहौ कि, संसारभ्रम कैसे उपजता है, अरु अनुभव कैसे होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझको दृष्ट आता है, स्थावर जंगम जगत् सर्व प्रकार देश काल संयुक्त, तिसके नाशका नाम महाप्रलय है, तिसविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र भी लीन हो जाते हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो स्वच्छ है, अज है, अनादि है, केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं. कैसे कहिये, केवल अपने आपविषे स्थित हैं, परम सूक्ष्म है, तिस विषे आकाश भी सूक्ष्म है, जैसे सुमेरुपर्वतके निकट राईका दाणा सूक्ष्म है, तैसे आकाशते आत्मा सूक्ष्म है, कैसी सूक्ष्मता है, जो संवेदनते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे अहं किंचन होकरि फुरा है, अरु आत्मा

सदा निर्विकल्प है, सात समुद्र हैं, देशकालके भ्रमते रहित हैं, केवल चेतनघन अपने आपविषे स्थित है,जैसे स्वप्नविषे अपने भावको लेकरि स्थित होता है, तैसे आत्मा अपने भावको लेकरि चेतन किंचन होता है तिसका नाम ब्रह्मा है, सो भी चिद्रूप है ॥ हे रामजी ! चिद् अणु जो अपने भावको लेकरि उदय हुआ है, सो चैत्यनाम दृश्यको देखत भया है, तब उसका अनुभव क्या ?-मिथ्या हुआ जैसे स्वप्नविषे अपना मरण देखता है, सो अनुभव मिथ्या है,तैसे चिद् अणु दृष्टिकरि दृश्यको देखता है, सो मिथ्यादृष्टि है, जब चिद् अणु अपने स्वरूपको देखत भया,सो केवल निराकाररूपहै, परंतु अहं जो ऐसे बीज दृढ होते हैं, तिसकरि अपने आपसों निकसि दृश्यको संकल्पकरि देखता है, जैसे बीजते अंकुर निकसताहै, तैसे संकल्पके फुरणेकरि देश काल द्रव्य द्रष्टा दर्शन दृश्य होताहै, वास्तवते हुआ कछु नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु संकल्पकरि हुएकी नांई भासता है, सो देश है, जहां चिद् अणु भासै अरु जिस समय भासै सो काल है, अरु जो भान हुआ सो क्रिया हुआ, भानका ग्रहण हुआ सो द्रव्य है, देखनेको जो वृत्ति दौडती है, सो नेत्र होकरि स्थित हुए हैं, अरु देखने लगेते जिसको देखते हैं, सो भी शून्य है, देखेनेहारे शून्य हैं, सब असत्य है, कछु बना नहीं,जैसे आकाशविषे आकाश स्थितहै, तैसे आत्मा अपने आपविषे स्थित है, संकल्पद्वारा सब कछु बनता जाताहै, चिद् अणु जो भासा है, सो दृश्यरूप होकरि स्थितभयाहै, जब चिद्र अणुविषे रूपकी वृत्ति फुरती है, तब चक्षु इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब श्रवणकी वृत्ति फुरती है, तब श्रोत्र होकरि स्थित होते हैं, जब स्पर्शकी वृत्ति फुरती है, तब त्वचा इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब सुगंधि लेनेकी वृत्ति फुरती है, तब नासिका इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब रस लेनेकी इच्छा होती है, तब जिह्वा इंद्रिय होती है, अरु स्वाद लेती है॥ हे रामजी ! प्रथम यह चिद्र अणुनामते रहित फुरा है, अरु संपूर्ण जगत् भी तद्रूपही था, अब भी वही केवल आकाशरूप है, अरु संकल्पकरि अपनेविषे पिंड धनको देखाहै; बहुरि शरीरको देखा बहुरि

इंद्रियोंको देखा, अनादि सतस्वरूप चिद् अणु इंद्रियोंके संयोगते पदार्थोंको ग्रहण करता है, स्पंदरूप जो वृत्ति फुरी है, तिसका नाम मन हुआ, जब निश्चयात्मक बुद्धि होकरि स्थित भई, तब चिद् अणुविषे यह निश्चय हुआ कि, मैं द्रष्टा हौं, यह अहंकार हुआ, जब अहंकारसाथ चिद् अणुका संयोग हुआ तब देशकालका परिच्छेद अपनेविषे देखत भया आगे दृश्यको देखत भया, पूर्व उत्तर काल देखत भया, आपको ऐसे देखते हैं, इस देशविषे बैठा हौं, यह मैं कर्म किया है, यह विषमअहंकार हुआ, देशकाल क्रिया द्रव्यके अर्थको भिन्नभिन्नकारि ग्रहण करता है, आकाश होकारि आकाशको ग्रहण करता है ॥ हे रामजी। आदि फुरणेकारि चिद्अणुविषे अंतवाहक शरीर हुआ है, बहुरि संकल्पके दृढ़ अभ्यासकारि अधिभूतक भासने लगा है, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे अपर आकाश होवै, तैसे यह आकाश है, अणुहोते भ्रमकारिकै उदय हुए हैं, अरु सत्की नाईं भासते हैं. जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकारिकै नदी भासती है, तैसे अविचारकारिकै संकल्पकी दृढता है, पंचभूत आकार भासते हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय हुआ है, तिसकारि देखता है, यह मेरा शिर है, यह मेरे चरण हैं, यह मेरा अमुक देश है, इत्यादिक शब्द अर्थको ग्रहण करता है, नानाप्रकारका जगत् शब्द अरु अर्थ सहित ग्रहण करता है, भाव अभावको ग्रहण करता है, इसप्रकार कहता है कि, यह देश है, यह कालहै, यह क्रिया है, यह पदार्थ है ॥ हे रामजी। जब इसप्रकार जगत्के पदार्थका ज्ञान होता है, तब चित्त विषयकी ओर उड़ता है, अरु रागद्वेषको ग्रहण करता है, जो कछु देहादिक भूत फुरनेकारि भासतेहैं, सो केवल संकल्पमात्र हैं, संकल्पकी दृढताकारिके दृढ हुए हैं ॥ हे रामजी। इसप्रकार ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, इसीप्रकार विष्णु रुद्र हुए हैं, इसीप्रकार कीट उत्पन्न भये हैं परंतु प्रमाद अप्रमादका भेद है, जो अप्रमादी है, सो सदा आनंदरूप है, ईश्वर है, स्वतंत्र है, तिसको यह जगत् अरु वह जगत् अपना आप रूप है, अरु जो प्रमादी है, सो तुच्छ है, सदा दुःखी है, अरु वास्तवते परमात्मतत्त्वते इतर कछु हुआ नहीं, अपने आप स्वभा-

वविषे स्थित है; जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित हैं, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अरु सर्वका बीज है, अरु त्रिलोकरूप बुँदका मेघ है, कारणका कारण वही है, कालविषे नीति वही आत्मा है, क्रियाविषे क्रिया वही है, आदिविराट् पुरुषका शरीर भी नहीं, अरु हम तुम भी नहीं, केवल चिदाकाशरूप अब भी इनका शरीर आकाशरूप है, आत्मसत्ता इतर अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भए, केवल आकाशरूप जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते हैं, अरु मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं, इत्यादिक शब्द अर्थ भासते हैं, सो केवल आकाशरूप हैं, बना कछु नहीं, परंतु निद्रादोषकरि भासते हैं, जब जागता है, तब जानता है, जो हुआ कछु न था आकाशरूप है, तैसे जो पुरुष अनादि अविद्याते जागा है, तिसको जगत् आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! बहुत योजनपर्यंत विराट् पुरुषका देह है, तौ भी ब्रह्म आकाशके सूक्ष्म अणुविषे स्थित है, यह त्रिलोकी एक चिद्अणुविषे स्थित है, विराट् पुरुष इसका ऐसा है, जिसका आदि अंत मध्य नहीं भासता ऐसा स्थूल देह इसका है; तौ भी एक चावलके समान नहीं ॥ हे रामचंद्र ! यह जगत् अरु जगत्के भाग विस्तीर्ण दृष्ट आते हैं, तौ भी एक कणके समान नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतके एक अणुके समान नहीं, तैसे विचाररूपी तराजूकरके तौलिये तौ परमार्थसत्ताविषे कछु सत्यता इनकी नहीं पाईजाती, दृष्ट भी आते हैं, परंतु आत्मसत्ताते इतर कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, इसीका नाम स्वयंभू मनु कहते हैं, इसीको विराट् कहते हैं, इसीको जगत् कहते हैं, जगत् अरु विराट्विषे भेद कछु नहीं, वास्तवते आकाशरूप है, सनातन भी इसीको कहते हैं, रुद्र इंद्र उपेंद्र पवन मेघ पर्वत जल जेते कछु भूत हैं, सो तिसका वपु है ॥ हे रामजी ! आदिवपु जो इनका चिन्मात्ररूप है, तिसविषे चैत्यता करिकै अपना अणु जैसा वपु देखता है; जैसे तेजका कणका होता है, तिस तेज अणुते चैत्यताकरिकै क्रमकरि अपना बडा शरीर जगत्रूप देखत भया, जैसे स्वप्नविषे कोऊ पुरुष आपको पर्वत देखै, तैसे आपको विराट्रूप देखत भया है, जैसे पवनके दो रूप हैं, चलता है तौ भी पवन है, नहीं चलता तौ भी

पवन है, तैसे जब चित्त फुरता है, तब भी ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्योंकी त्यों है, परंतु जब स्पंद फुरता है, तब विराट्‌रूप होकरि स्थित होता है, जब चित्त अफुर होता है, तब अद्वैतसत्ता भासती है, अरु सदा अद्वैतही विराट् स्वरूप कैसा है ॥ हे रामजी ! इस दृष्टिकरि उसके शिर पाद नहीं भासते हैं, अरु जेते कछु ब्रह्मांडकी पृथ्वी है सो तिसका मांस है, अरु सब समुद्र तिसका रुधिर हैं, नदी तिसकी नाडी हैं, अरु दशों दिशा तिसके वक्षस्थल हैं, अरु तारागण रोमावली हैं, सुमेरु आदिक तिसकी अंगुलियां हैं, अरु सूर्यादिक तेज तिसके पित्त अरु चंद्रमा कफ हैं, अरु पवन तिसका प्राणवायु है, संपूर्ण जगज्जाल उसका शरीर है, ब्रह्मा तिसका हृदय है, सो आकाशरूप है, संकल्पकरिकै नानारूप हो भासता है, स्वरूपते कछु बना नहीं, आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप हैं, अरु अपने आपहीविषे स्थित हैं ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मवर्णनं नाम शताधिकनवतितमः सर्गः ॥ १९० ॥

शताधिकैकनवतितमः सर्गः १९१.

विराट्शरीरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आदि जो विराट् है, सो ब्रह्म है, तिसका तौ आदि अंत कछु नहीं, अरु यह जगत् उसका छोटा वपु है, तिस चेतन वपुका किंचन ब्रह्मरूप हुआ है, तिसके अंगके विस्तारका क्रम सुन, तिस ब्रह्माने संकल्पकरि एक अंड रचा है, कैसा ब्रह्मा है, जिसका संकल्पही वपु है, तिस अंडको फोडता भया, तब अंडेका जो ऊर्ध्व भाग था, सो ऊर्ध्वको गया, अरु जो अधोभाग था, सो अधको गया, सो पाताल ब्रह्मका चरण हुआ, अरु ऊर्ध्व शिर हुआ, अरु मध्य जो अवकाश है, सो ब्रह्माका उदर हुआ, दशों दिशा वक्षस्थल हुए, अरु हाथ सुमेरुआदिक पर्वत हुए, अरु मांस पृथ्वी हुई, अरु समुद्र आंत्रा हुए, सब नदियां तिसकी नाडी भईं, तिसविषे जल है सो रुधिर हुआ. प्राण अपान

वायु पवन हुआ, हिमालय पर्वत तिसका कफ है, सर्व तेज उसके पित्त हैं चंद्रमा सूर्य तिसके नेत्र हैं, अरु तरागण स्थूल लार है, अरु लार प्राणके बलकरि निकसती है, जैसे ताराचक्रको पवन फेरता है, अरु ऊर्ध्व लोक तिसकी शिखा है, मनुष्य पशु पक्षी उसके रोम हैं, अरु सब भूतकी चेष्टा उसका व्यवहार है, पर्वत उसके अस्थि हैं, ब्रह्मलोक इसका मुख है, सब जगत् विराट्का वपु है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुमने संकल्प रूप ब्रह्मा कहा अरु जगत् तिसका वपु कहा सो मैं मानता हौं, परंतु यह जगत् तौ तिसका शरीर हुआ, बहुरि ब्रह्मलोकविषे ब्रह्मा कैसे बैठता है, अपने शरीरहीविषे भिन्न होकरि कैसे स्थित होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसविषे क्या अश्चर्य है, जो तू ध्यान लगाइकरि बैठे, अरु अपनी मूर्ति अपने अंतर रचिकरि स्थित होवै तौ भी होता है, अरु जैसे पुरुषको स्वप्न आता है, तिसविषे जगत् भासता है, सो सब अपना स्वरूप है, परंतु अपनी मूर्ति धारिकारि अपरको देखत भया, तैसे ब्रह्माका एक शरीर ब्रह्मलोकविषे भी होता है, ब्रह्मा अरु जीवविषे एता भेद है कि, जीव भी अपनी स्वप्नसृष्टिका विराट् है परंतु उसको प्रमादकरिकै भासती नहीं, अरु ब्रह्मा सदा अप्रमादी है, तिसको सब जगत् अपना शरीर भासता है ॥ हे रामजी! देवता सिद्ध ऋषीश्वर विद्याधर सो विराट् पुरुषकी ग्रीवाविषे स्थित हैं, अरु भूत प्रेत पिशाच सब वैराट् पुरुषके मलते उपजे, कीटकी नांई उदरविषे स्थित हैं, स्थावर जंगम जगत् सब संकल्प करि रचाहुआविराट्विषेस्थित है, सबतिसीके अंगहैं, जोजगत् हैतौविराट् भी है अरु जगत् नहीं तौ विराट् भी नहीं, जगत् कहिये, ब्रह्मकहिये, विराट् कहिये तीनों पर्याय हैं, ताते संपूर्ण जगत् विराट्का वपु है, निराकार क्या अरु आकार क्या, अंतर बाहर सब विराट्का वपु है, जैसे अंतर बाहिर आकशविषे भेद नहीं, तैसे विराट् आत्माविषे भेद नहीं, जैसे पवनके चलने ठहरनेविषे भेद नहीं, तैसे विराट्अरु आत्माविषे भेद नहीं जैसे चलना ठहरना दोनों रूप पवनके हैं, तैसे साकार निराकार सब विराट्का शरीर है ॥ हे रामजी! इसप्रकार जगत् हुआ है, सो कछु उपजा नहीं, संकल्पकरिकै उपजेकी नांई भासता है, जैसे सूर्यकी किर-

र्णोविषे जल हुआ कछु नहीं, अरु हुएकी नाईं भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ताविषे जगत् उपजेकी नाईं भासता है, अरु उपजा कछु नहीं, केवल अपने आपविषे स्थित है, शिला जठरकी नाईं स्थित है, अर्थ यह जो संकल्पविकल्पते रहित चेतनरूप चैत्यते रहित चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, ताते कलनाको त्यागिकारि अपने स्वभावविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराट्शरीरवर्णनं नाम शताधिकैकनवतितमः सर्गः ॥ १९१ ॥

शताधिकद्विनवतितमः सर्गः १९२.

जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम प्रलयका प्रसंग बहुरि श्रवण करु, मैं ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्माके पास बैठा था, जब नेत्र खोलकारि, देखा तब मध्याह्नका समय है, जो दूसरा सूर्य पश्चिम दिशाविषे आनि उदय हुआ है, तिसका बड़ा प्रकाश देखा, मानो संपूर्ण तेज इकट्ठा हुआ है, अरु बड़ा अग्निकी नाईं प्रकाश हुआ, अरु बिजुरीकी नाईं स्थित हुआ तिसको देखिकारि मैं आश्चर्यवान् हुआ, ऐसे देखता था, तौ एक अपर सूर्य उदय हुआ, बहुरि उत्तर दिशाकी ओर अपर सूर्य हुआ, इसीप्रकार दश सूर्य आकाशविषे प्रगट हुए, अरु एक प्रथम था, एकादश सूर्य उदय होकारि तपाने लगे, द्वादशम वडवाग्नि समुद्रते उदय भई, तिसते एक सूर्य निकसा, द्वादश इकट्ठे होकारि विश्वको तपाने लगे ॥ हे रामजी ! प्रलयके तीन नेत्र आनि उदय हुए, एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वडवाग्नि, तीसरा अग्नि बिजुरी भई, तीनों नेत्र विश्वको जलाने लगे, दिशा सब रक्त भईं अट अट शब्द होने लगे, नगर वन कंदरा संपूर्ण जलनेलगे; पृथ्वी क्षुब्ध जलने लगी, देवताके स्थान जलि जलि डिगने लगे, पर्वत जलिकारि श्याम हो गये, ज्वालाके कणके निकसिकारि पातालको गए, पाताल जलने लगा, समुद्र जलिकारि सूख गये, चिकड हो रहा, हिमालयपर्वत बर्फका जल होकारि जलने लगा, जैसे दुर्जनोंके संगकारि साधुका हृदय

तप्त होता है, जब इसीप्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित भई तब मुझको भी तप्त आनि लगी, तब मैं वहांसों दौडिकरि अध जाय स्थित भया, तहां मैं देखत भया कि, अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वतके पास आय पडा, मंदराचल पर्वत जलिकरि गिरने लगा, सुमेरु गिरने लगा, अग्निकी ज्वाला ऊर्ध्वको जावै, भड भड शब्द करै ॥ हे रामजी! इसप्रकार संपूर्ण विश्व जलने लगा, बड़ा क्षोभ आनि उदय हुआ, जहां कछु रस था, सो सब विरसताको प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं, सो सब विरस हैं, परंतु अपने अपने कालविषे रससंयुक्त दृष्ट आते हैं, तिसकालविषे मुझको ऐसे भासै जैसे जली हुई बल्ली होतीहै, तैसे सब विरस दृष्ट आवैं॥हे रामजी ! इसप्रकार सब विश्व जलता देखा, परंतु ज्ञानकरि जिसका अज्ञान नष्ट हुआ है, सो सुखी दृष्ट आवै, अपर सब अग्निविषे जलते दृष्ट आए, अरु बड़े भयानक शब्द होवैं, अरु सदाशिवका जो कैलास पर्वत है, तिसके निकट अग्नि आती थी, तब सदाशिवने अपने नेत्रसों अग्नि प्रगटकरी, तिसकरि बडा क्षोभ हुआ, ब्रह्मांड जलने लगा, तब महापवन आनि चला, बडे बडे जो पर्वत थे सो उड़ने लगे, जैसे तृण उडते हैं, अरु जो स्थान जले थे तिनकी अँधेरी होकरि पुरियोंके स्थान भी उड़ते जावैं, बडा क्षोभ आनि उदय भया, अरु इंद्रादिक देवता अपने स्थानको त्यागिकरि ब्रह्मलोकको चले जावैं अरु बड़े मेघ जलकरि जो पूर्ण थे सो सूखकरि जलने लगे, चलको त्यागते भए, अरु कलपरूपी जो पुतली थी सो नृत्य करने लगी, जले स्थानोंते जो धूम्र निकसता है सो तिसके कैसा है, अरु प्रलयशब्द उसका बोलना है, बडा पवन चला, पर्वत जलकरि उडने लगे, सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उडते जावैं, जीवको बडा कष्ट प्राप्त हुआ, ऐसा दुःख कहनेविषे नहीं आता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनं नाम शताधिकद्विनवतितमः सर्गः ॥ १९२ ॥

शताधिकत्रिनवतितमः सर्गः १९३.

ब्रह्मजलमयवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अग्निकरि स्थान सब जलिगये, तिसके उपरांत पुष्कल मेघ प्रलयके गर्जने लगे, अरु वर्षने लगे, प्रथम मूसलकी नाई फेरि स्तंभकी नाई धारा वरषैं, बहुरि नदीकी वर्षा करने लगे, बहुरि महानद वर्षने लगे, जिनकी गंगा यमुना नदी लहरी हैं, सब स्थान शीतल होगये, जैसे अज्ञानी तीन तापकरि जला हुआ संतके संगकरि शीतल होता है, तैसे शीतल भये ॥ हे रामजी ! ऐसा जल चढा जिसकरि सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करैं, जैसे समुद्रविषे झाग होती है, तैसे हो गए, बहुरि कैसे लगे जैसे जलचर होतेहैं, तैसे पर्वत बहते जावैं ॥ हे रामजी ! ऐसे जल चढे जो कहनेविषे नहीं आता, बड़े बड़े स्थान बहते जावैं, देवता सिद्ध गंधर्व बहते जावैं, जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकरि सेवना करते हैं, सो भी बहुत दृष्ट आए, जैसे कोऊ पुरुष कंटके अंधे कूपविषे गिरते दुःख पावैं, तैसे दृष्ट आवैं, अरु मुझको सब ब्रह्म दृष्ट आवैं, जब संकल्पकी ओर देखौं तब महाप्रलय दृष्ट आवै, मेघ गर्जते जटा होकारि दृष्ट आवैं, अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जल चढि गया, मैं देखकारि आश्चर्यको प्राप्त भया ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजलमयवर्णनं नाम शताधिकत्रिनवतितमः सर्गः ॥ १९३ ॥

शताधिकचतुर्नवतितमः सर्गः १९४.

वासनाक्षयप्रतिपादनम् ।

वसिष्ट उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्माका जगत् मैं देखौं तो भी जलमय हो गया, जलते इतर कछु न भासै, सब शून्यही भासै, दिशा कोऊ न भासै, न ऊर्ध्व न अधो न मध्य भासै, न कोऊ तत्त्व भासै, न कोऊ पर्वत भासै, संपूर्ण जलही भासै, न कोऊ देवता न पशु पक्षी भासै,

तब मैं ब्रह्मपुरीको देखत भया कि, क्या दशा हैं, जैसे प्रातःकालका सूर्य अपनी प्रतिभाको पसारता है, तैसे ब्रह्मपुरीको दृष्टि पसारिकै देखत भया, तब ब्रह्माजी मुझको परम समाधिविषे दृष्ट आया, अरु अपर जो जीवन्मुक्त ब्रह्माका परिवार था, सब पद्मासनकरि परम समाधि लगाइ बैठे, जैसे पत्थरके ऊपर मूर्तियां होवैं, तैसेही सब परमसमाधिविषे अचल बैठे देखे, जो संवेदन फुरणेते रहित स्थित हैं सोकिंचन कौन हैं, चारों वेद मूर्तिधारी स्थित हैं, शुक्र अरु बृहस्पति अरु वरुण कुबेर इंद्र यम चंद्रमा अग्नि देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त जो थे तिन सबको मैं ध्यानविषे स्थित देखत भया, द्वादश सूर्य जो विश्वको तपाते थे सो पद्मासन बाँधकरि समाधिविषे स्थित हुये हैं, एक मुहूर्त-पर्य्यंत मैं इसी प्रकार देखत भया, जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्यविना सब अंतर्धान होगये, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने विद्यमान होती है, अरु जागेते अभावना हो जाती है, तैसे सब अंतर्धान हो गये, मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी शून्य वनकी नाईं होगई, जैसे पत्तन राजमार्ग प्रलय हो जाते हैं, तैसे प्रलय होगई ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे मेघ गर्जते दृष्ट आते हैं, अरु जागेते अभाव हो जाते हैं, यह दृष्टांत तो बालक भी जाने हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभवको छिपाते हैं, सो मूर्ख हैं, मैं अनुभवकारि भी जानता हौं अरु स्मृति भी होती है, अरु सुना भी है, जबलग निद्रा है, तबलग स्वप्नकी सृष्टि भासती है, जागेते स्वप्नकी सृष्टिका अभाव होता है, तैसे जबलग ब्राह्मीकी वासना थी, तबलग सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई, तब सृष्टि कहां रहै, जब वासना नष्ट भई तब अंतवाहक अधिभूत शरीर नहीं रहते ॥ हे रामजी ! जब शुद्ध मात्र पदते चित्त-शक्ति फुरती है, तब पिंडाकर हो भासती है, जबलग वह शरीर है, तबलग संसार उपजता भी है, नष्ट भी होता है, तैसे ब्रह्माकी सुषुप्ति-विषे जगत् लीन हो जाता है, अरु जाग्रत्‌विषे उत्पन्न होता है, काहेते जो ब्रह्माका शरीर सुषुप्तिविषे लीन होना इसीका नाम प्रलय है, अरु जो कहिये इस शरीरके नाशका नाम महाप्रलय होवै तौ ऐसे नहीं. काहेते जो मृतक हुए शरीरका नाश होता है, अरु बहुरि लोक भासता

है, ताते इसका नाम महाप्रलय नहीं, अरु जो कहिये वह परलोक भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रांतिमात्र है, अरु जो कहिये परलोक भ्रममात्र है, इसीका नाम महाप्रलय है, तौ ऐसे नहीं, काहेते जो श्रुति स्मृति पुराण सब कहेते हैं, जो महाप्रलयविषे रहता कछु नहीं, आत्मसत्ताही रहती है, अरु जो कहिये परलोक भ्रांतिमात्र है इसका नाम होना क्या है, तौ श्रुतिशास्त्रका कहना व्यर्थ होता है, अरु जो इनका कहना व्यर्थ होवै तौ इनके कहनेकरि ब्रह्माकार वृत्ति किसकी उत्पन्न न होवै अरु जो तू कहै, जैसे अंगवाला अंगको सकुचाय लेता है, तैसे स्थूल भूत सकुचिकारि अपने सूक्ष्म कारणविषे जाय लीन होते हैं, इसीका नाम महाप्रलय है तौ ऐसे भी नहीं, काहेते जो सूक्ष्म भूतके रहते महाप्रलय नहीं होता, अरु जो तू कहै संवेदन जो अज्ञान है, जिसविषे अहं फुरता है, तिस अज्ञानका नाम महाप्रलय है, तौ यह भी नहीं, काहेते जो मूर्च्छाविषे इसका अज्ञान होता है, परंतु बहुरि सृष्टि भासती है, अरु मृतक होती है, सो बड़ी मूर्छा है, तिसविषे भी बहुरि पांचभौतिक शरीर भासते हैं, अरु आगे जगत् भासता है, ताते इसका नाम भी महाप्रलय नहीं, अरु जो तू कहै, जबलग यह पांचभौतिक शरीर है, तबलग जगत् है, इसका अभाव होवे तब महाप्रलय है, तौ यह भी नहीं, काहेते जो शरीरको त्यागता है, अरु इसकी क्रिया नहीं होती तौ पिशाच जाय होता है, इसका शरीर निरूप होता है, अरु मनुष्य तब सब हो जाते हैं, अरु क्षत्रिय ब्राह्मणकी संज्ञा नहीं रहती, ताते तू देख जो इस देहका नाम भी महाप्रलय नहीं, अरु प्रमादकरिकै विपर्ययका नाम भी महाप्रलय नहीं, महाप्रलय तिसको कहते हैं, जो सर्वका अभाव हो जावै, अरु सर्वका अभाव तब होता है, जब वासना क्षय हो जातीहै, ताते वासनाक्षयका नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं, जैसे जबलग निद्रा है, तबलग स्वप्नका जगत् भासता है, जब जागा तब स्वप्न जगत्का अभाव हो जाता है, तैसे जबलग वासनाहै, तबलग जगत् है, जब वासनाका क्षय हुआ, तब जगत्का अभाव होता है ॥ हे रामजी ! वासना भी फुरी नहीं, आभासमात्रहै, अरु तू जो कहै भासता

क्यों है, तौ जो कछु भासता है, सो वही अपने आप भावविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! भावते उत्थान होनेका नाम बंधन है, अरु उत्थान मिटनेका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी ! नेत्रके खोलने अरु मूँदनेविषे भी कछु यत्न है, अरु मुक्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, जो वृत्ति बहिर्मुख हुई, तो बंधन हुआ, अरु वृत्ति अंतर्मुख भई तौ मुक्त भया, इसविषे क्या यत्न है, ताते निर्वासनिक सुषुप्तिकी नाईं स्थित होहु, जब अहं संवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्य हो भासता है, आगे जो इच्छा है सो करहु, जब अहं उत्थानते रहित होवैगा, तब परमनिर्वाणपदको प्राप्त होवैगा, जहां एक अरु दो कल्पना कोऊ नहीं, परमशांत निर्विकल्प पदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वासनाक्षयप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुर्नवतितमः सर्गः ॥ १९४ ॥

शताधिकपंचनवतितमः सर्गः १९५.

जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह ब्रह्माजी अंतर्धान हो गया, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण हो जावे, जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदविषे निर्वाण हुआ, तब द्वादशसूर्य बहुरि ब्रह्मपुरीको जलाने लगे, जब संपूर्ण ब्रह्मपुरी जलिगई तब वह सूर्य भी ब्रह्माकी नाईं पद्मासन करिकै स्थिर भये, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे द्वादश सूर्य भी निर्वाण हो गये॥ हे रामजी ! जब द्वादश सूर्य निर्वाण हुये, तब समुद्र उछले ब्रह्मपुरीको आच्छादि लिया, जैसे रात्रिविषे अंधकार नगरको आच्छादि लेता है, तैसे ब्रह्मपुरीको आच्छादि लिया, बड़े तरंग उछले; पुष्कर मेघ भी तरंगकरि छेदे गए जलरूप हो गए ॥ हे रामजी ! तब एक पुरुष आकाशते निकसा, सो मुझको दृष्ट आया, महा भयानक श्यामरूप उग्र आकाशको भी तिसने आच्छादि लिया, कृष्णमूर्ति मानो रात्र कल्पपर्यंत इकट्ठी होकरि तिसका रूप आनि स्थित हुआ है, अरु मुखते ज्वाला निकसती है, अरु शरीरका बड़ा प्रकाश मानो कोटिसूर्य स्थित

हैं, बिजलीका प्रकाश इकट्ठा हुआ है, अरु तिसके पंचमुख हैं, दश भुजा हैं, अरु तीन नेत्र हैं, मानौ तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं, अरु हाथविषे त्रिशूल है, अरु आकाशकी नाईं मूर्ति धारी है, जैसे क्षीरसमुद्रके मथनेको भुजा बड़ी करि विष्णुने शरीर धारा था, अरु क्षीरसमुद्रको क्षोभाया था, तैसे नासिकाके पवनकरि समुद्रको क्षोभावत भया, जैसा आकाश बड़ा वपु है, तैसाही स्वरूप धरा, मानौ प्रलयकालके समुद्र मूर्तिधारिके स्थित हुए हैं, मानौ सर्व अहंकारकी समष्टिता स्थित भई है, मानौ महाप्रलयकी वडवाग्नि मूर्ति धारिके आनि स्थित भई है, मानो प्रलयकालके मेघ मूर्ति धारिके स्थित भये हैं, ॥ हे रामजी ! मैं जानता भया कि, यह महारुद्र है, तिसके हाथविषे त्रिशूल है, अरु तीन नेत्र हैं, पंच मुख हैं; ताते रुद्र है, ऐसे जानिकारि मैं प्रणाम किया ॥राम उवाच॥ हे भगवन् ! उसका भयानक रूप क्या था ? अरु रुद्र किसको कहिये ? अरु बडा आकार क्या था ? दश भुजा अरु पंच मुख क्या थे ? तीन नेत्र क्या थे ? हाथविषे त्रिशूल क्या था? अरु किसका भेजा आया था ? क्या करता भया ? अरु कहां गया ? अरु एकला था अथवा अपर भी कोऊ साथ था ? अरु श्याम मूर्ति क्यों था ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! विषमविषे परिच्छिन्न जो अहंकार है, सो त्यागने योग्य है, अरु समष्टि अहंकार सेवने योग्य है, सर्व आत्मप्रतीतिका नाम समष्टि अहंकार है, तिसका नाम रुद्र है, अरु कृष्णमूर्ति इसनिमित्त है, जो आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता है, तैसे उसविषे कृष्णता है, अरु सर्व जो जीव अपने अहंकारको त्यागिकारि निर्वाण हुए तिनकी समष्टिता होकारि रुद्ररूप भासै, इसीते उग्र था, अरु पंचमुख ज्ञानइंद्रियोंके समष्टिता अरु दश भुजा कर्म इंद्रियां, पंचमुखकी समष्टिता अरु राजस तामस सात्विक तीन गुण तीनों नेत्र हैं, अथवा भूत भविष्य वर्तमान् अथवा ऋग् यजु साम तीनों वेद नेत्र हैं, अथवा मन बुद्धि चित्त तीनों नेत्र थे, ओंकारकी तीन मात्रा उनके नेत्र हैं, आकाशरूपी वपु था, अरु त्रिलोकीरूपी हाथविषे त्रिशूल थे, अरु चित्संवित्ते फुरा था; तिसीका भेजा आया था बहुरि तिसीविषे लीन होवैगा, केवल आका-

शरूप था, अरु जो कछु करता भया सो सुन ॥ हे रामजी ! ऐसा जो रुद्र था, मानौ आकाशको पंख लगे हैं, सोई उड़ा है, तिसने नेत्र प्राणोंको खैंच लिये तब सर्व जल मुखविषे प्रवेश करने लगे, जैसे नदी समुद्रविषे प्रवेश करती हैं,तैसे सब जल रुद्रविषे लीन भए,जैसे वडवाग्नि समुद्रको पान कारि लेतीहै;तैसे रुद्रने एक मुहूर्तविषे सब जलको पान कारि लिया, कहूँ जलका अंश भी दृष्ट न आवै, जैसे अंधकारको सूर्य लीन कारि लेता है, तैसे पान कारि लिया, जैसे अज्ञानीका अज्ञान संतके संगकारि नष्ट हो जाता है, तैसे जलको पान कारि लिया, केवल शुद्ध आकाश हो गया, न कहूं पृथ्वी दृष्ट आवै, न अग्नि न वायु न कोऊ तत्त्व कहूँ दृष्ट आवै, एक आकाशही दृष्ट आवै, जैसे उज्वल मोती होता है, तैसे उज्वल आकाश दृष्ट आवै, अपर चारों तत्त्व कहूँ न भासैं, एक अधोभाग दृष्ट आवै, मध्य भाग आकाश सो रुद्रही दृष्ट आवै, अरु एक ऊर्ध्व भाग दृष्ट आवै, चौथा चिदाकाश दृष्ट आवै, जो सर्वात्मा है, अपर कछु दृष्ट न आवै ॥ हे रामजी ! रुद्र भी आका-शरूप था, आकार कोऊ न था, भ्रांतिकारिकै आकार भासता था जैसे भ्रमकारिकै आकाशविषे नीलता तरुवरे भासतेहैं, जैसे स्वप्नविषे भ्रमका रिकै आकार भासते हैं, तैसे रुद्रका आकार दृष्ट आया, केवल आत्मा आकाशते इतर कछु न था, जैसे चिदाकाशविषे भूताकाश भ्रमकारिकै भासता है, तैसे रुद्रका शरीर भासा, वह रुद्र सर्वात्मा था, अरु आकाश होकारि भासा सोकिंचन था॥ हे रामजी!आकाशविषे रुद्र निराधार भासा था, जैसे मेघ निराधार होते हैं, तैसे निराधार दृष्ट आया था ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! इस ब्रह्मांडके ऊपर क्याहै, बहुरि तिसके ऊपरक्या है सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो ब्रह्मांडका आकाश है, तिसपर दशगुणा जल अवशेष है, जलके ऊपर दशगुणा अग्नि है, तिसके ऊपर दशगुणा वायु है, तिसके ऊपर दशगुणा आकाश है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तत्त्व पृथ्वीके ऊपर स्थित हैं, जैसे माताकी गोदविषे बालकआनि स्थित होता है, तैसे तत्त्व पृथ्वीके ऊपर

हैं, अरु पृथ्वी भागके आश्रय हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित ब्रह्मांड किसके आश्रय है, निराधार किसके आश्रय स्थित हुआ है तिनका चलना ठहरना कैसे हुआ, नाश कैसे हुआ यह कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! तू कहु आकाशविषे मेघ किसके आश्रय होते हैं, सूर्य चंद्रमा किसके आश्रय होते हैं, जैसे यह संकल्पके आश्रय हैं, तैसे ब्रह्मांड भी संकल्पके आश्रय है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तौ तू देखै, जो किसके आश्रय हैं, संकल्पहीके आश्रय है क्यों ? अरु संकल्प आत्माके आश्रय है, तैसे यह जगत् अरु तत्त्व भी आत्मसत्ताके आश्रय स्थित हैं अरु इनका ठहरना गिरना भी आत्माके आश्रय हैं, जैसे आदिचित्त स्पंद होकरि नीति हुई है तैसेही है, इसप्रकार गिरना है, इसप्रकार ठहरना है, इसप्रकार इसका नाश होना है, इसप्रकार रहना है, तैसेही परम स्वरूपते इतर कछु नहींकेवल भ्रममात्र है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चित्त संवितही जगदाकार हो भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है,जैसे तलवारविषे श्यामता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्र-दोषकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अरु मिथ्या जगत्की संख्या करिये तौ नहीं होती, जैसे सूर्यकी किरणोंका आभास अरु रेतके कणकेविषे संख्या नहीं होती तैसे जगत्की संख्या नहीं होती, अरु वास्तवते कछु बना नहीं, अजात-जात है, जैसे स्वप्नविषे अनहोतीसृष्टि भासतीहै, तैसे यह जगत् भासता है, ताते दृश्यको मिथ्या जानकरि जगत्की वासना त्यागहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचनवतितमः सर्गः ॥ १९५ ॥

शताधिकषट्नवतितमः सर्गः १९६.

देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रुद्र तौ बडा भयानकरूप मैं देखा था, अरु नेत्र बडे तेजकारि पूर्ण चंद्रमा सूर्य अग्नि यह तीनों नेत्रहैं, अरु बड़ा भयानकरूप मानौ महाप्रलयके समुद्र मूर्ति धारिकै स्थित हुए हैं, अरु रुंडकी माला कण्ठविषे धारी हुई ऐसा रुद्र स्थितथा, अरु तिसकी परछाया जो निकसै बडी अरु श्यामरूपी तिसको देखिकारि मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, यहां सूर्य भी नहीं, अग्नि भी नहीं, अपर किसीका प्रकाश भी नहीं, यह परछाया किसप्रकार है, अरु क्या है, ऐसे देखता था, जो परछाया नृत्य करने लगी, तब तिस परछायेते एक स्त्री निकसि आई, शरीर दुर्बल जैसा नाडी निकसी हुई दृष्ट आवै, अरु बडा ऊंचा आकार कृष्णवर्ण मानो अँधेरी रात्रि मूर्ति धारिकै स्थित भई है, सुमेरु पर्वतकी नांई आकार अरु तीन नेत्र बडी भुजा जिसकी ऊँची ग्रीवा मानों प्रलयकालके मेघ मूर्ति धारिकै आपही स्थित भये हैं, अरु गलेविषे रुद्राक्षकी माला अरु रुंडकी माला पडी हुई इत्यादिक विकराल स्वभाव तिसको देखत भया, अरु जिसकी बड़ी भुजा अरु हाथनविषे त्रिशूल खड्ग बाण ध्वज ऊखल मूशल आदिक आयुध हैं, ऐसा भयानक आकार देखिकारि मैं विचार किया कि, काली भवानी है, तिसको जानकारि नमस्कार किया, अरु बडा श्याम आकार है जिसका जैसे अग्निके जलेहुए पर्वतके शिखर श्याम होते हैं, तैसे श्याम आकार हैं, अरु मस्तकविषे तीसरा नेत्र वडवाग्निकी नांई तेजवान् निकसा है, कबहूँ दो भुजा दृष्ट आवैं, कबहूं सहस्र भुजा दृष्ट आवैं कबहूं अनंत भुजा दृष्ट आवैं, कबहूं एक एक भुजा दृष्ट आवै, कबहूं दो भुजा आवैं, कबहूं कोऊ भुजा दृष्ट न आवै, कबहूं शिर पाद कोऊ दृष्ट न आवैं, एकबुत जैसा भासै; इसप्रकार करिकै नृत्य करै, ज्यों ज्यों नृत्य करै, त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्ट आवै, मानौ आकाशको भी आच्छा-

दित करलिया है, अरु दशों दिशा आकार साथ पूर्ण करी हैं, नख शिखाकी मर्यादा कछु दृष्ट न आवै ऐसा आकार बढाया, जब भुजाको हिलावै, तब जानिये कि, आकाशको मापती है, पातलपर्यंत चरण अरु आकाश जिसका शीश है, अरु उदर तिसका पृथ्वी है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसका नाभिस्थान है, दशों दिशा तिसकी भुजा हैं, मानौ प्रलयकालकी मूर्ति धारकारि स्थित भई है, अरु बड़े पर्वतकी कंदरावत् जिसकी नासिका है, लोकालोक पर्वत तिसकी दाढ हैं, अरु कण्ठविषे नदियोंकी माला है, जो जलाती हैं, अरु कंठविषे वरुण कुबेरादिक देवताके शिरकी माला हैं, पवन नासिकाके मार्गते निकसता है, तिसकारि सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नांई उडैं अरु ब्रह्मांडकी माला गलेविषे हैं, हाथविषे बहुटे ब्रह्मांडरूपी भूषण हैं, कटिविषे ब्रह्मांडके घूँघरु तगडी हैं, जब नृत्य करे तब सब ब्रह्मांड नृत्य करैही, जैसे पवनकारि पत्र नृत्य करते हैं, तैसे सुमेरु आदिक नृत्य करैं, एक एक रोमविषे ब्रह्मांड है, जैसे तारागण वायुके अधीन हैं, अरु कानविषे धर्म अधर्मरूपी मुद्रा हैं, बडे कानहैं, अरु बडा मुखहै, मानौ संपूर्ण ब्रह्मांडको भक्षण करताहै, अरु धर्म अर्थ काममोक्ष चारों,स्थानहैं,अरु स्थान विषे चारों वेदहैं, अरु शास्त्रके अर्थरूपी दूधनिकसताहै; अरु अपरभी सब जगत्की मर्यादा मुझको तिसीविषे दृष्ट आवै,हँसे अरु नृत्य करणेकर कोई ब्रह्मांड नृत्य करैंअस्ताचल आदिक पर्वत तृणोंकीनांई नृत्यकरैं,सब कछु विपर्यय होता दृष्ट आवै तिसके शरीरविषे आकाश अधको दृष्ट आवै, अरु पृथ्वी ऊर्ध्वको दृष्ट आवै, तारामण्डल सिद्ध देवता विद्याधर गंधर्व किन्नर दैत्यस्थावर जंगम सब उसविषे दृष्टआवैं, मानौ संपूर्ण ब्रह्मांडोंका आदर्श है, अरु भुजाके उछलनेकारि चंद्रमाकी नांई नखका प्रकाशहोवै मन्दराचल उदयाचल पर्वत कानविषे भूषण दृष्ट आवैं, हिमालय पर्वत बर्फके कणकेवत् दृष्ट आवै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देवीके शरीर मुझको अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं, कहूँ इकट्ठी, कहूँ भिन्नभिन्न दृष्ट आवैं, कहूँएकही जैसी चेष्टा करैं, कहूँ भिन्न भिन्न चेष्टा करैं, मानौ ब्रह्मांडरूपी रत्नका डब्बा है ॥ हे रामजी ! जब संकल्पसहित देखौं, तब मुझको सृष्टि दृष्ट

आवै, जब आत्माकी ओर देखौ, तब केवल आत्मरूपही भासै अपर कछु दृष्ट न आवै, अरु संकल्प दृष्ट करिकै संपूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्ट आवैं, ऐसे समर्थता किसकी दृष्ट न आवै, जो नृत्य न करै, सब पर्वत तृणकी नांईं नृत्य करते दृष्ट आवैं, जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय सब तिसहीविषे दृष्ट आवै, जो कछु क्रिया है, सो तिसहीकरि होती दृष्ट आवैं सिद्ध देवता गंधर्व अप्सरा विमानपर आरूढ फिरैं, नक्षत्रके चक्र फिरते दृष्ट आवैं, मानौ ब्रह्मांड बहुरि उदय हुएहैं, जब आत्मदृष्टिकरि देखौं, तब ब्रह्मस्वरूप भासै, अरु संकल्पदृष्टिकरि जगत् भासै, वह चित्तकला जो संकल्परूप है, तिसविषे सबही दृष्ट आवैं ॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र अग्नि सूर्य चंद्रमा आदि सब उसविषेदृष्ट आवैं, जैसे मच्छर वायुकरि उड़ते हैं, तैसे अनंत सृष्टि उसके शरीरविषे उड़ती दृष्ट आवै, महाआश्चर्यको मैं प्राप्त भया जो वह भैरव था अरु यह भैरवी इसकी शक्ति है; दोनों मुझको दृष्ट आवै, बडे वपुधारी हैं, यह नित्यशक्ति सर्वात्मा है, परमात्माकी क्रियाशक्ति सर्व विश्वको अपने आपविषे जानै, जैसे तीर्थ समुद्र सब तरंगको अपनेविषे अपना आप जानताहै, तैसे सर्व ब्रह्मांडको अपनेविषे अपना आप जानतीथी, अरु सदाशिवते भी बडे अहंकारको धारा है, मानौ सर्व ब्रह्मांडकी माला कंठविषे डारी है, अरु यमादिकसब तिसकी मर्यादा हैं ॥हेरामजी! इसप्रकार मैं रुद्र अरु काली भवानीको देखत भया, रुद्रके शिरपर जो जटा है, सो मोरके पंखकी नांई है, अरु कालीको मैं देखत भया नानाप्रकारके भृंग दमदमते आदि लेकरि शब्द करती हैं, बहुरि शब्द करती भई सो श्रवण कर, दिग्वंदिग्वं तुदिग्वंपच मना वह संममप्रलय मिय तुय ॥ त्रि पंत्री त्रीलं त्रीषलुषलुमं षनुषंसुमं षषमष भ्रिगुही गुंहीगुंही उग्रु मियुगं दलुमददारी मीदीतंदती॥हे रामजी! इस प्रकारके शब्द करती हुई मशाणोंविषे नृत्य करै ॥ हे रामजी! ऐसी देवी तुम्हारे सहाय होवै, जो सर्वशक्ति परमात्मा है, सब ब्रह्मांड तिसके आश्रय क्षणविषे अंगुष्ठप्रमाण हो जावै, क्षणविषे बड़े दीर्घआकारकोधारै सब जगत्विषे जो क्रिया होती है, सो उसके आश्रय होती है, कहूँ उत्पत्ति होती है, कहूँ शुद्ध पडे होते हैं, नानाप्रकारकी क्रिया तिसकी

देवीके आश्रय पडी होती है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देवीविषे क्रिया होती है ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं नाम शताधिकषण्णवतितमः सर्गः ॥ १९६ ॥

शताधिकसप्तनवतितमः सर्गः १९७.
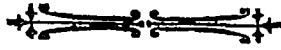
अंतरोपाख्यानवर्णनम्

राम उवाच ॥ हे भगवन् यह जो तुमने रुद्र अरु कालिकाका वर्णन कियाहै, सो कौन थे ?महाप्रलयविषे तौ रहता कछु नहीं;यह कालीकौन थी ? तिसके शरीरविषे तुमने सृष्टि कैसे देखी, महाप्रलय होकारि तिसके शरीरविषे सृष्टिने कैसेप्रवेश किया, अरु उसके हाथविषे बहुरियादिक शस्त्र क्या थे? कहाँते आईथी अरु कहां गई, अरु तिसका आकार क्याथा? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न कोऊ रुद्र है, नकाली है, न कोऊपुरुष न कोऊ स्त्री है, न कोऊ नपुंसक है, न पुरुष मिलिकारि कछु हुआ है,न ब्रह्मांड है, न पिंड है, केवलचिदाकाश है,संकल्पते उपजे आकारभासते हैं, जैसे स्वप्नविषेआकार भासते हैं,तैसे वह आकार भी भासै,वास्तवते केवल चिदाकाशज्योंका त्यों है ।।हे रामजी ! आत्मपद कैसा अनंतचेतन है, सत्य प्रकाशरूप है अविनाशी है, अपने आप स्वभावविषे स्थित है, अरु रुद्रदेवका आकार ज्यों भासा था, सो चेतन आत्माही ऐसे होकारि भासा था, कोऊ अपर आकार न था, जैसे स्वर्णहीभूषणहोकारि भासता है, तैसे परमदेव चिदाकाश ऐसे होकारि भासा था, काहेते जो चेतनस्वरूप है, जैसे मधुरता गन्नेका स्वरूप है, तैसे आत्माका चेतन स्वरूप है ॥ हे रामजी ! चेतनसत्ता अपने स्वरूपको नहीं त्यागती, अरु आकार होकारि भासती है, सदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे गन्नेके रसविषे मधुरता न होवै,तौ उसको रस नहीं कहते,तैसेआत्मसत्ताविषे चेतनता न होवै तौ चेतन कोऊ न कहै,जो आत्मा चेतनताको त्यागै तौ परिणामी होवै,तब चेतन कहिये, परंतु सदा अपने आप स्वभावविषे स्थित है, किसी अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त भया, इसीते कहा

है, जो कछु भासता है, सो आत्माका किंचन है ॥ हे रामजी ! जैसे गन्नेके रसविषे मधुरता होती है; तैसे आत्माविषे चेतनता है, चेतनमात्रविषे एक चैत्यताका लक्षण रहता है, चेतनतारूप इसकारि यह जगत् अभावरूप लखाता है, अरु जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तका उत्थान नहीं होता, तौ जगद्भाव नहीं लखाता, अरु आत्मसत्ता दोनों अवस्थाविषे सदा ज्योंकी त्यों है, जैसे वायु स्पंद होता है, तब स्पर्शरूप उसका लक्षण भासता है, अरु जब निस्पंद होता है, तब उसविषे शब्द कोऊ नहीं प्रवेश करिसकता, अरु वायु दोनों अवस्थाविषे तुल्य है, तैसे शुद्ध चेतनविषे किसी शब्दका प्रवेश नहीं, चेतनता भावविषे है, अरु आत्मसत्ता सदा तुल्य है, ताते वास्तव यह जगत्‌ही नहीं॥ हे रामजी ! आदि, मध्य, अंत, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्य, असत्य, प्रकाश, अंधकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी; नाम, कर्म, रूप, अवलोकन, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, बंध, मोक्ष, जड, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत्, अजगत्, है, नहीं, बढना, घटना, मैं, तू, वेद, शास्त्र, पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जय नाम आदिक स्थावर जंगम जगत् क्रिया सब ब्रह्मस्वरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे आवर्त सब जलरूप हैं, तैसे सब ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मते इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत भासते हैं, सो अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणैं जलरूप होकरि भासती हैं, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासती है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्र, वरुण, कुबेर, यम, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जेते कछु शब्द हैं सो सब ब्रह्मसत्ताही ऐसे होकरि स्थित भई है, परंतु सदा अपने आपविषे ज्योंकी त्यों है, कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्त भई, सो सत्तासर्वकी आत्मा है, जैसे समुद्र अपने तरंगभावको त्यागै, तब अपने सौम्यभावविषे स्थित होवै, तैसे ब्रह्मसत्ता फुरणेको त्यागै, तब अपने स्वभावविषे स्थित होवै, सो अनामय है, अर्थ यह कि, दुःखते रहित है, परम शांतिरूप है, अनंत है, निर्विकार है, जब इसप्रकार बोध

होवै, तब तिस ब्रह्मसत्ताको प्राप्त होवै, अरु बोध अबोध विधिनिषेधभी वही हैं, जैसे जल अरु समुद्रकी संज्ञा कही है, अरु तरंग शब्द कहनेकरि विलक्षण भासता है, जब जल तरंगबुद्धिको त्यागै, तब केवल समुद्ररूप है, तैसे यह जीव जब अपने जीवत्वभावको त्यागै,तब आत्मरूप समुद्रको प्राप्त होवै, जीवत्वका अर्थ यह जो जन दृश्यका संबंध त्याग करैगा, तब आत्मा होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम शताधिकसप्तनवतितमः सर्गः ॥ १९७ ॥

शताधिकाष्टनवतितमः सर्गः १९८.

पुरुषप्रकृतिविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! तुझको जो चिदाकाश कहा है, सो परम चिदाकाश है, अरु सदा अपने आपविषे स्थितहै ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिदाकाश मैं तेरे ताईं कहा है, सोई यह रुद्ररूप है,सोई नृत्य करता था, तहां आकार कोऊ न था, केवल चिद्घन सत्ता थी सोई ऐसे होकरि किंचन होती थी ॥ हे रामजी ! जब आत्मदृष्टिकरि देखता था, तबमेरे ताईं चिदाकाशरूपही भासा था ॥ हे रामजी ! मेरे जैसा होवै सोई तैसा रूप देखै, अपर नहीं देखिसकै ॥ हे रामजी ! जिसका नाम कल्पांत कहाता है, सोई रुद्र अरु भैरव है, वह कल्पांतकी मूर्ति नृत्य करिकै अंतर्धान हो गई, अरु वास्तवते क्या रूप था ? मायामात्र था, चेतनसत्ताके आश्रय पड़े नाचते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे सोनेविषे भूषण हैं, परंतु सोनेविना नहीं होते, तैसे चेतनता किंचनकरि जगत् भासता है, बहुरि वही प्रमादकरि अधिभूत होजाता है, अरु वास्तवते शुद्ध चिदाकाशरूप है, चेतनताकरिकै वही जगतरूप हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! प्रथम तुम आत्मतत्त्व अद्वैत कहा, यह जगत् प्रमादकरिकै नाम रूप कल्पित है, अरु जो है तौ कल्पके अंतविषे नाश हो जाता है,अद्वैतसत्ता रहती है, बहुरि कहा, चैत्यताकरिकै जगतरूप भासता

है, सो अद्वैतविषे चैत्यता कैसे हुई है, अरु चेतनेवाला कौन हुआ, प्रल-
यके अनंतर काली क्योंकारि भासी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न
कोऊ चेतन है, न कोऊ चैत्यता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे
स्थित है, चेतनघन है, परम निर्मल है, अरु शांतरूप है, अरु शिवतत्त्व
भी उसीको कहते हैं, वही शिवतत्त्व रुद्र आकारको धारे हुएदृष्ट आया
है, दूसरा कछु नहीं, केवल परम चिदाकाश है, सोई चिदाकाश आकार
हो भासता है, अरु आकार कछु हुआ नहीं, न भैरव है, न भैरवी है,
न काली है, न यह जगत् है, सब मायामात्र है, जैसे स्वप्नविषे आत्म-
सत्ता चैत्यताकरिकै जगत्‌रूप हो भासती है, स्वरूपते न कछु चैत्यता
है, न जगत् है, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तैसे यह जगत्
भी जान, कछु अपर हुआ नहीं अद्वैतसत्ताही है, तिसविषे चैत्य अरु
चेतनेहारे मैं तुझको क्या कहौं, सब वृत्तिकरिकै भासते हैं, आत्माविषे
कछु इनका उपजना नहीं भया, केवल स्वच्छ चिदाकाश है, हमको तौ
सदा वही स्वरूप भासता है, अज्ञानीको नानाप्रकारका जगत् भासता
है, अरु आत्मा सदा एकरस है, चिंतन करिकै तिसविषे आकार भासते
हैं, भैरव अरु काली सब निराकार हैं, भ्रांतिकरिकै आकार भासते हैं,
जैसे मनोराज्यविषे युद्ध भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, सो अन-
होते संकल्प विलासते हैं, तैसे चिदात्माविषे यह जगत भासता है,
जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे यह आकार भासते हैं ॥ हे
रामजी ! यह जो जगदिग्प्रलय महाप्रलयका शब्द हैं, तिनका नाश
करनेअर्थ तुझको कहता हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन हैं, सो चेतनताका
अभाव कबहूँ नहीं, अपने आपविषे स्थित है, अरु किंचन है, जैसे
सूर्यकी किरणैं किंचनरूप होती हैं, इनविषे जल भासता है, तैसे चैत-
न्यका किंचन जगत भासता है, सोई महाप्रलयविषे रुद्र अरु भैरवी
हो भासती है, न कछु रुद्र है न कालीहै, सर्व आत्माही है ॥ हे रामजी !
जो कछु कहना सुनना होता है, वाच्य वाचककरि कहता है, आत्मा-
विषे कहना अरु सुनना कछु नहीं, वही चिदाकाश संकल्पकरिकै रुद्र
नृत्य करता है, जैसे स्वर्ण भूषण होकरि भासता है, तैसे चिदाकाश

संकल्पकरिकै आकार होकरि भासता है, दूसरा कछु बना नहीं; मैं तू अरु जगत चैत्य अचैत्य सब वही रूप है, उसविषे कोऊ शब्द फुरा नहीं, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके शब्द भासते हैं, सो कछु वास्तव नहीं, पत्थरकी नाईं मौन हैं, तैसे जाग्रत जगत्‌विषे भी जेते कछु शब्द होते हैं, सो सब स्वप्न हैं, कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपने आप भावविषे स्थित है, जहां न एक है, न द्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न चित् है, न चैत्य है, न मौन है, न अमौन है, न कोऊ चेतनेवाला है, चैत्यके अभाववत् है, सो क्या है, केवल अचैत्य चिन्मात्र आत्मसत्ता है, निर्विकल्परूप है ॥ हे रामजी! सबते बड़ा शास्त्रका सिद्धांत यही है, तिस दृष्टि मौनविषे तुम स्थित होहु ॥ हे रामजी ! सर्व सिद्धांतकी समता यही है कि, निर्विकल्प होना, जिस निर्विकल्प समाधिविषे स्थित होना यह सबका सिद्धांत है, जैसे पत्थरकी शिला परममौन होती है, तैसे चैत्यते रहित होना अरु जो कछु प्रत्यक्ष आचार आनि प्राप्त होवै तिसविषे प्रवर्तना, सदा आत्मनिश्चय रहना, इसका नाम परम मौन है, सब क्रिया होती रहै; अरु अपनेविषे कछु न देखना, जैसे नट स्वांग ले आता है, तिसके अनुसार विचरता है, परंतु निश्चय उसका आदिही वपुविषे होता है, अरु चलायमान नहीं होता, तैसे जो कछु अनिश्चित आनि प्राप्त होवै, तिसको यथाशास्त्र करना परंतु अपने निर्गुण निष्क्रिय स्वरूपते चलायमान न होना, अद्वैत स्वरूपविषे स्थित रहना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! रुद्र क्या था, अरु काली शक्ति क्या थी, अरु उसके अंग जो बडते घटते थे, सो क्या थे, अरु नृत्य करना क्या था, वस्त्र क्या थे, सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! शिवतत्त्वही आकार होकरि भासता है, अपर आकार कोऊ नहीं, सो कैसा शिवतत्त्व है, चिन्मात्र है, अमल है, विद्याअविद्याके कार्यते रहित शांत अवाच्यपद है, यह संज्ञा भी संकल्पविषे तुझको कही है, आत्मवेत्ता आत्मपदको अवाच्यपद कहते हैं, तथापि कछु मैं कहता हौं ॥ हे रामजी! केवल आत्मत्वमात्र चिदाकाश है सोई शिवभैरव है; तिसके चमत्कारका नाम चित्तशक्ति है, तिसीका नाम

काली है ॥ तिसकेविषे अरु आत्माविषे अरु शिवरूपविषे अरुकाली-विषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं ॥ तैसे चित्तकला अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन जब निस्पंद होता है, तब तिसका लक्षण नहीं होता, अवाचकरूप होता है, अरु जब स्पंद होता है; तिसका लक्षण भी होता है, तिसविषे शब्द प्रवेश करता है, तैसे चित्तशक्तिकारि तिसका लक्षण होता है, आगे तिसके अनेक नाम हैं, तिसीका नाम स्पंद है, इच्छा है, तिसीको चैत्योन्मुखत्वकारि वासना कहते हैं, इसीके स्वादकी इच्छाते जब चित्त संवित्विषे वासना फुरी, तब तिसका नाम वासना करनेवाला वासक कहता है, बहुरि आगे दृश्य होती है, जब त्रिपुटी हुई वासना वासक वास, तब वासकको जीव कहते हैं, जीवत्वभाव लेकारि स्थित होती है, जब यह इच्छा इसको होती है कि, मैं जीव हौं, मेरा नाश कदाचित् न होवै, इस इच्छाकारि जीव कहता है, ऐसी संज्ञा चिच्छक्तिकी होती है, सो स्पंदविषे होती है, अरु शिवतत्त्व सो अफुर है, अचैत्यश-क्तिविषे फुरणेकी नाई स्थित है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल है नहीं, हुएकी नाई भासता है, तैसे यह जगत् है नहीं अरु हुएकी नाई भासता है, तिसविषे यह संज्ञा देते हैं, काली जो परमात्माकी क्रिया-शक्ति है, सो प्रथम तौ कारणरूप प्रकृति है, सब तिसते है, इसीते प्रकृतिरूप है, विकृति नहीं, अर्थ यह. किसका कार्य नहीं, अरु मह-दादिक पंचभूत महत्तत्त्व अरु बुद्धि अहंकार सप्त प्रकृति विकृति हैं, अर्थ यह, जो कार्य भी हैं, कारण भी हैं कार्य आदिक देवीके हैं, अरु कारण षोडश हैं, पंच ज्ञानइंद्रियां, पंच कर्मइंद्रियां, पंच प्राण, एक मन इनके कारण सप्तदश हैं, अरु षोडश हैं सो विकृत हैं, अर्थ यह कि कार्यरूप हैं, कारण किसीका नहीं, अरु पुरुष है जो परमात्मा, सो अद्वैत अचित्त चिन्मात्र है; न किसीका कारण है, न कार्य है, अपने आपविषे स्थित है, ताते जेते कछु द्वैतकलना हैं कारण कार्य-रूप, सो सब चित्तशक्तिविषे स्थित हैं, जब यह निस्पंद होती है, तब शिवपद तत्त्वविषे निर्वाण हो जाती है, कारणकार्यरूपी भ्रम सब मिटि

जाता है, केवल आकाशवत् शेष रहता है, सो शुद्ध है, अद्वैत है, अचैत्य चिन्मात्र सदा अपने आप भावविषे स्थित है, तिसकी क्रियाशक्ति स्पंदरूप एती संज्ञा हैं, प्रथम तौ सबका कारणरूप प्रकृति है, अरु सोख है, अर्थ यह जैसे वडवाग्नि समुद्रको सुखावती है, तैसेही जगत्को सुखाती है, अरु सिद्धि है अर्थ यह कि सिद्ध आश्रयभूतकारि सेवते हैं, अरु जयंती है अर्थ, यह कि, जय है जिसकी अरु चंडिका है, अर्थ यह कि, जिसके क्रोधकरि जगत् प्रलय होती है, अरु भय पाता है, अरु बीर्य है, अर्थ यह कि, जिसका अनंत वीर्य है, अरु दुर्गा है, अर्थ यह कि, इसका रूप जानना कठिन है, अरु गायत्री है, अर्थ यह कि, जिसके पाठकारि संसारसमुद्रते रक्षा होती है, अरु सावित्री है, अर्थ यह कि, जगत्की पालना करती है, अरु कुमारी है, अर्थ यह कि, कोमल स्वभाव है, अरु गौरी है, अर्थ यह कि, जिसके गौर अंग हैं, अरु शिवा है, अर्थ यह कि, जिसका शिवके डावे अंगविषे निवास है, अरु विजया है, अर्थ यह कि, सब जगत्को जीति रही है, अरु स्वशक्ति है, अर्थ यह कि, अद्वैत आत्माविषे जिसने विलास रचा है, अरु इंद्रसारा है, अर्थ यह कि, उकार है इंद्र आत्मा तिसका सार अर्धमात्रा है, तीनों मात्रा अकार उकार मकारका अधिष्ठान है ॥ हे रामजी ! राजसी तामसी सात्त्विकी तीन प्रकारकी क्रिया होती हैं, सो इसीते होती हैं, यह सब संज्ञा क्रियाशक्तिकी कही है, अब शस्त्र अरु बढना घटना तिसका सुन ॥ हे रामजी ! नित्य जो करती थी सो क्रिया है, सो क्रिया सात्त्विकी राजसी तामसी तीन प्रकारकी है, मुसल जो था सो ग्राम पुर नगर हैं, अंग तिसके सृष्टि है, जब शिवते व्यतिरेक होती थी, तब अंग बहुत हो जाते थे; अरु जब शिवकी ओर आती थी, तब सृष्टिरूप अंग थोरे हो जाते थे, अरु जब शिवको आय मिलती थी तब शिवही होतीथी, सृष्टिरूपी अंग कोऊ न रहते थे, यह तो आत्माकी काली शक्तिकी क्रियाका वर्णन तुझको सुनाया है, अब शिवका वर्णन सुन, वाणीते अतीत है, तथापि कछु कहता हौं, परम शुद्ध है, निर्मल अच्युत है, तिसविषे कछु हुआ नहीं, क्रियाशक्तिके फुरणेकारि जगत् हो भासता है, जब अपने अधि-

ष्ठानकी ओर देखता है, तब अपना स्वरूप दृष्टि आता है, क्रियाशक्ति अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, काहेते कि आकाशका अंग शून्यता है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्निका रूप उष्णता है, तैसे आत्माका स्वभाव चिच्छक्ति है, अरु इसका नाम काली है, जो कृष्णरूप है, जैसे आकाश ऊर्ध्वको श्याम भासता है, तैसे यह आकाशवपु है, जैसे आकाश निराकार है, तैसे काली निराकार श्यामा भासती है, आकाशकी नाईं इसका वपु है ताते इसका नाम कृष्णवपु है, अरु काली जगत्के नाशके अर्थ है, सो जब स्वरूपकी ओर आती है, तब जगत्का नाश करती है ॥ हे रामजी! स्पंदशक्ति जबलग शिवते व्यतिरेक है, तबलग जगत्को रचती है, जहां यह है तहां जगत् है, जगत्ते विलक्षण नहीं रहती, जैसे जहां सूर्यकी किरणैं हैं, तहां जलाभास होता है, किरणैंविना जलाभास नहीं रहता, तैसे स्पंदशक्ति जगत्विना नहीं रहती, जैसे आकाशके अंग आकाश हैं, तैसे इसके अंग जगत् हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप हैं, तैसे जगत् इसका रूप है, अरु यह शक्ति चिदाकाश है व्यतिरेक नहीं, जब यह फुरती है, तब जगदाकार हो भासती है जब शिवकी ओर आती है, तब शिवरूप हो जाती है, जगत्का भास कोऊ नहीं रहता, ताते हे रामजी! तुम्हारी चिच्छक्ति तुम्हारी ओर आवै तब जगद्भ्रम मिटि जावै, इस चिच्छक्तिने जगद्भ्रम रचा है, शिव पूजा है, सो निर्मल शांतरूप है, अजर अमर है, अचैत्य चिन्मात्र है, तिसविषे कछु क्षोभ नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तुम जो कालीके अंगकी सृष्टि देखी सो आत्माविषे सत्य है, अथवा असत्य है, सो कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह कालीदेवी आत्माकी क्रियाशक्ति है, अर्थ यह है कि, जो फुरणा शक्ति है, तिसकरिकै आत्माविषे सत्य है, अरु वास्तवते आत्माविषे कछु नहीं, मिथ्या है, जैसे तू मनोराज्यकरिकै अपनेविषे दूसरा चितवहि वह कछु वस्तु नहीं परंतु तिस कालविषे सत्य भासता है, तैसे जेती कछु सृष्टि है सो आत्माविषे सत्य कोऊ नहीं, परंतु चिच्छक्तिकरि वसती दृष्ट आती है, जैसे कछु

विधिनिषेध पदार्थ हैं, आकाश पर्वत समुद्र वन जगत् तीर्थ कर्म बंध मोक्ष गुरु अरु शास्त्र युद्ध शस्त्र आदिक जो भासते हैं, सो सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं, वास्तव इनका होना ब्रह्मते भिन्न नहीं, सर्व प्रकार सर्वदा काल आत्मा अपने आपविषे स्थित है, शुद्ध अद्वैत निराकार है, निर्विकार ज्योंका त्यों है, जगत् तिसविषे कोऊ नहीं उपजा, सब जगत् आत्माविषे क्रियाशक्ति रची है, सो मायाकालविषे सत्य है, वास्तवते कछु नहीं, जैसे किसी पुरुषको स्वप्नविषे सृष्टि भासती है तिसके शरीरको कोऊ हिलावे तौ वह नहीं जागता, जो कछु सृष्टि होती तौ, हिलावनेकरि कोऊ स्थान गिरि पड़ता है, इसीते नाश किसीका नहीं होता, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी । वह सृष्टि उसके चित्तस्पंदविषे स्थित है, प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है, परंतु जबलग निद्रा है, तबलग सृष्टि है, जब निद्रा निवृत्त भई; तब स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, तैसे यह सृष्टि कछु वास्तव नहीं, अज्ञान करिकै चिच्छक्तिविषे भासतीहै ॥ हे रामजी । जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो चित्तके फुरणेविषे भासते हैं, जिसका संकल्प शुद्ध होता है, तिसके मनोराज्यकी सृष्टि,देश कालकरि प्रत्यक्ष आनि होती है, तौ संकल्परूप होती है, बना कछु नहीं, जब संकल्प फुरता है, तब संकल्पके अनुसार सृष्टि भासतीहै, ताते संकल्परूप हुई, क्यों अदृष्ट पदार्थ होता है, जो उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब इसका अर्थ हृदयविषे अनुभव होता है, जैसे परलोक अदृष्ट है, जब उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब उसका राग द्वेष हृदयविषे फुरता है, काहेते जो संकल्पविषे उसका भाव खड़ा है, तैसे जबलग चित्त स्पंद फुरता है, तब लग जगत् सब खडा है, जब चित्त निस्पंद होताहै, तब जगत्की सत्यता नहीं भासती ॥ हे रामजी । जेता कछु जगत् भासता है, सो सर्व क्रियाशक्तिने आत्माविषे रचा है, जबलग यह काली क्रियाशक्ति शिवते व्यतिरेक होती है, तबलग नानाप्रकारके जगत् रचती है, अरु क्षोभको प्राप्त होती है, अरु जब शिवकी ओर आती है, तब शांतरूप हो जाती है, बहुरि प्रकृतिसंज्ञा उसकी नहीं रहती, अद्वैत तत्त्वविषे अद्वैतरूप हो जाती है,

जैसे जबलग पवन चलता है, तब शीत उष्ण सुगंध दुर्गंध बड़ा छोटा संज्ञा होती है, अरु जब ठहरताहै, तब कहा नहीं जाता कि ऐसा है, अथवाऐसाहै तैसे जबलग चिच्छक्ति स्पंदरूप होती है, तबलग जगत्को रचती है, अरु प्रकृत कारणरूप कहाती है, तिसविषे दो प्रकार शब्द होते हैं, विद्या अरु अविद्यारूप सो पड़े निकसते हैं ॥ हे रामजी ! जो कछु कहना होता है, सो स्पंदरूप जो चित्रलेखा है तिसविषे है, अरु जब शिवतत्त्वविषे अंकुर होतीहै; तब अद्वैतरूप हो जाती है, तहाँ किसी शब्दकी गम नहीं ॥ हे रामजी ! शिव क्या है, अरु शक्ति क्या है ? सो सुन. जेते कछु जीवहैं, सो शिवरूप हैं, अरु इनके जो चित्तका फुरणा है सो काली कहिये, चित्तशक्ति कहिये, जबलग इच्छाकरि चित्तशक्ति बाहिर फुरती है; तबलग भ्रमका अंत नहीं आता, नानाप्रकारके विकारका अनुभव होता है, शांत नहीं होता, अरु जब चित्तशक्ति उलटिकरि अधिष्ठानको देखती है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, परम शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! आत्मा अरु चित् संवित्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायुको स्पंदनिस्पंदविषे भेद कछु नहीं, परंतु स्पंद होता है, तब जानता है, अरु निस्पंदहोता है, तब नहीं जानता, तैसे चित् संवित् जब फुरता है, तब नहीं जानता, तैसे चित् संवित् जब फुरता है, तब जानता है, अरु नहीं फुरता तब नहीं जानता, अरु जानना न जानना दोनों नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जबलग इच्छाशक्ति शिवकी ओर नहीं देखती तबलग नानाप्रकारकी नृत्य करती है, अर्थ यह कि जगत्को रचती है, अरु जब शिवकी ओर देखती है, तब इसको नृत्यविरस हो जाता है, अरु सब अंग इसके सूक्ष्म हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! इस कालीका जो आकार था, सो अप्रमाण प्रमाणविषे आता न था, अरु शिवकी ओर देखनेते सूक्ष्म हो गया, प्रथम पर्वतसमान भया, बहुरि निकट आई, तब ग्रामके समान भया, बहुरि वृक्षके समान भया, बहुरि निकट आई, तब सूक्ष्म आकार भया, जब शिवके साथ मिली तब शिवरूप हो गई, इसका जो विलास है, सो शून्य हो जाता है अरु परम शांत शिवपदको प्राप्त होती है ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर !

यह जो परमेश्वरी काली शक्तिहै, सो तिसको मिलिकरि शांति कैसे भई सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देवी परमात्माकी इच्छाशक्ति है, अरु जगन्माता इसका नाम है, जबलग शिवतत्त्वते व्यतिरेक होती है; तबलग जगत्‌को रचती हैं, जब अपने अधिष्ठानकी ओर आती है, जो नित्यतृप्त है अरु अनामय है, निर्विकार है, परमशांतरूप द्वैतभावते रहित है, तब परमशांतिको प्राप्त होती है, प्रकृतिसंज्ञा इसकी जाती रहतीहै, जैसे नदी जबलग समुद्रको नहीं प्राप्त भई तबलग दौडतीहै,अरु शब्द करतीहै, जब समुद्रको मिली तब शब्द करना अरु दौडना नष्ट हो जाताहै, अरु नदीसंज्ञा भी नहीं रहती समुद्रको मिलिकरि परम गंभीर समुद्ररूप हो जाती है. तैसे जबलग चित्तशक्ति शिवते व्यतिरेक होती है, तबलग जगद्भ्रमको रचती है, जब शिवतत्त्वको मिली तब शिवरूप होजाती है, अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी ! जब यह चित्त-शक्ति शिवपदविषे लीन हो जाती है, तब प्रथम जो देह इंद्रियांसाथ तद्रूप भई थी, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे आपको सुखी दुःखी मानती थी, अरु रागद्वेषकारि जानती थी, जो नित्यतृप्त अनामय पदके मिलेते सुखदुःखते रहित होती है, काहेते जो अनात्म देह इंद्रियोंकी तद्रूपता अभाव हो जाती है, अरु आत्मतत्त्वसाथ तद्रूप होती है, जैसे पत्थरकी शिलासाथ मिलिकरि खड्गकी धारा तीक्ष्ण होती है, तैसे चित्त संवित् जब आत्मपदविषे मिलती है, तब एक अद्वैतरूप हो जाती है, आत्मपदके स्पर्श कियेते अनात्मभावका त्याग करती है, जैसे लोहा पारसके परसते स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहा नहीं होता, तैसे यह वृत्ति अनात्मभावको नहीं प्राप्त होती, अरु यह चित्तकला तबलग विषयकी ओर धावती है, जबलग अपने वास्तवस्वरूपको नहीं प्राप्त भई, जब अपने वास्तवस्वरूपको प्राप्त होती है, तब विषयकी ओर नहीं धावती, जैसे जिस पुरुषको अमृत प्राप्त भया है, अरु उसके स्वादका अनुभव भया है, तब वह नीम पान करनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसको आत्मानंद प्राप्त भया सो विषयके सुखकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! यह संसारभ्रम चित्तसंवित्‌विषे दृढ सत्य होकरि स्थित भया है, अरु संसारके सुखका त्याग

नहीं करि सकता, जब आत्मसुख प्राप्त होवेगा, तब त्यागि देवैगी, जैसे जिस पुरुषको जबलग पारस नहीं प्राप्त भया; तबलग अपर धनको त्यागि नहीं सकता, जब पारस प्राप्त भया, तब तुच्छ धनका त्याग करता है, बहुरि यत्न नहीं करता, तैसे जब इसको आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषयके सुखका त्याग करता है, अरु पानेका यत्न नहीं करता॥ हे रामजी! भँवरा तबलग अपर स्थानविषे भ्रमता है, जबलग कमलकी पंक्तिको नहीं प्राप्त भया, जब पंक्तिको प्राप्त भया, तब अपर स्थानको त्याग देता है, तैसे चित्तशक्ति जब आत्मपदविषे लीन भई तब किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करती, निर्विकल्प पदको प्राप्त होती है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुरुषप्रकृतिविचारो नाम शताधिकाष्टनवतितमः सर्गः॥ १९८॥

शताधिकनवनवतितमः सर्गः १९९.

अनन्तजगद्वर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अब पूर्वका प्रसंग बहुरि सुन जब काली नृत्यके निर्वाण हो गई, तब शिव एकलाही रहा, एक रुद्रही मुझको दृष्ट आवै, अरु दो खंड आकाशके दृष्ट आवैं, एक अधोभाग, एक ऊर्ध्वभाग, अपर कछु दृष्ट न आवै, तब रुद्रने नेत्रको पसारिकै दोनों खंड देखे, जैसे सूर्य जगत्को देखता है, तैसे देखकरि प्राणको अंतर खैंचत भया, तब ऊर्ध्व अध दोनों खंड इकट्ठे हो गए, तब ब्रह्मांडको अंतर्मुख पाय लिया, एक शिवही रहगया, अपर कछु दृष्ट न आवै॥ हे रामजी! जब एक क्षण व्यतीत भया तब रुद्र बड़े आकारको धरे हुए सो ब्रह्मांडको भी लंघ गया, सो एक वृक्षके समान हो गया, बहुरि अंगुष्ठमात्र शरीर हो गया बहुरि एक क्षणविषे सूक्ष्म अणु जैसा हो गया, बहुरि रेतीके कणकेते भी सूक्ष्म हो गया, बहुरि, नेत्रकरि दृष्ट न आवै, दिव्य दृष्टिकरि मैं देखता रहा, बहुरि वह भी नष्ट हो गया, केवल चिदाकाशही शेष रहा, अपर दूसरी वस्तु कछु भासै नहीं, जैसे वर्षाकालके

मेघ शरत्कालविषे नष्ट हो जाते हैं, तैसे रुद्र भी नष्ट हो गया ॥ हे रामजी! तिसकालविषे मुझको तीनों इकट्ठे शरण रहे एक देवी ब्रह्माकी शक्ति, दूसरी काली शक्ति, तीसरी शिला, तब मैं विचार किया कि, यह स्वप्ननगरवत् आश्चर्य था, अपर कछु नहीं तब क्या देखौं कि स्वर्णकी शिलाही पडी है, यह श्रेष्ठ शिलाके कोशविषे स्थित थी, तब मैं विचार किया कि, इस सृष्टि शिलाके एक कोशविषे अपर सृष्टि भी होवैगी, काहेते जो सर्व वस्तु सर्व प्रकार सर्व ठौर पूर्ण हैं, ताते इसविषे अपर सृष्टि भी होवैगी, हे रामजी ! उसविषे मैं सृष्टिको देखने लगा, तब नानाप्रकारकी सृष्टि देखी, जब बोधदृष्टिकारि देखौं तब सर्व ब्रह्म भासै, अरु संकल्पदृष्टिकारि देखौं तब आत्मरूपी आदर्शविषे अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, जब चर्मदृष्टिकारि देखौं तब शिलाही पड़ी है, इसप्रकार मैं शिलाकोशविषे चला, घास तृण विषे सृष्टि भासै, पत्थरविषे फलफूल विषे अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं, अरु निःसंकल्प आत्मदृष्टिकारि देखौं तब अद्वैत आत्माही भासै ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया, कहूँ ऐसी सृष्टि भासै कि, ब्रह्मा उपजा है, अरु रचना रचनेको समर्थ हुआ है, कहूँ ब्रह्माने चंद्रमा सूर्य उपजाये हैं, अरु काली मर्यादा करी है, अपर कोऊ नहीं उत्पन्न भया, कहूँ संपूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं, अरु प्राण नहीं हुए, कहूँ समुद्र नहीं उपजे कहूँ आचारसहित सृष्टि दृष्टि आवै, कहूँ चंद्रमा सूर्य नहीं उपजे, अरु कहूँ उपजते हैं, कहूं चंद्रमा शिवते निकसे, नहीं कहूँ क्षीरसमुद्र मथा नहीं अमृत नहीं निकसा, लक्ष्मी हस्ती घोडा धन्वंतरिवैद्य नहीं निकसे, कहूँ नहीं निकसा, अमृतनहीं निकसा, देवता पड़े मरते हैं, कहूँ क्षीरसमुद्र मथा है, तिसते अमृत निकसा, है, धन्वंतरि वैद्य निकसा है, लक्ष्मी भी निकसी है, कहूँ प्रकाश नहीं होता, कहूँ सदा प्रकाशही रहता है, कहूँ पृथ्वीकेऊपर पर्वतही दृष्ट आवै, अपर कछु नहीं कहूँ इंद्रके वज्रकारि पर्वत कटते हैं, अरु उडते हैं, कहूँ प्राणीको जरा मृत्यु नहीं होती, कल्प पर्यंत ज्योंके त्यों रहते हैं, कहूँ प्रलय होती है, कहूँ मेघ गर्जते हैं, कहूँ संपूर्ण जलही दृष्ट आवै, अपर कछु नहीं, कहूं आकाश दृष्ट आवै, अपर प्राणि कोऊ नहीं, कहूं देवताके युद्ध पड़े होते हैं, कहूं

देवको दैत्य जीतते हैं, कहूँ दैत्यको देवता जीतते हैं, कहूँ देव अरु दैत्यकी परस्पर प्रीति है, कहूँ बल अरु इंद्रका, रुद्र वृत्रासुरका युद्ध पडा होता है, कहूँ मधुकैटभ दैत्य ब्रह्माकी कन्याते उत्पन्न होता है, कहूँ सदा प्रसन्नता रहती है, अरु तीनों कालको जानते हैं, कहूँ सदा शोकवान् नहीं रहता है, कहूँ सतयुगका समय है, दान पुण्य तपश्चर्या करते हैं, कहूँ कलियुगका समय है, प्राणी पापविषे विचरते हैं, कहूँ अर्ध युग बीता है, कहूँ रामजी अरु रावणका युद्ध होता है, रावणको रामने मर्दन किया है, कहूँ रामजीको रावणने मर्दन किया है, कहूँ सुमेरु पर्वत तले है, पृथ्वी ऊपर है, कहूँ शेष नागके ऊपर पृथ्वी है, भूचालकरि भ्रमती है, कहूँ प्रलयकालका जल चढा है, अरु एक बालक वटके वृक्ष ऊपर बैठा अपने अंगुष्ठको चूसता है, सो विष्णु भगवान् हैं, कहूँ ब्रह्माके कल्पकी रात्रि है, महाशून्य अंधकार है, कहूँ कौरवपांडवकी सहायता कृष्ण करता है, कहूँ महाभारतका युद्ध होता है, दोनों ओरते अक्षौहणी सेना निकसे है; अरु कृष्णपाण्डवकी सहायता करता है, कहूँ एक सृष्टि नाश होती है; उसी सृष्टिविषे उसी जैसी अपर उत्पन्न होती है उसी जैसा कर्म उसी जैसे कुल जाति गोत्र होते हैं, कहूँ उसते अर्धभाग मिलता है, कहूँ चतुर्थ भाग उस जैसा मिलता है, कहूँ विलक्षण भाग होता है॥ हे रामजी! इसप्रकार मैं अनंत सृष्टि आत्मआदर्शविषे प्रतिबिंबित होती देखी हैं, अरु जब मैं आत्मदृष्टिकरि देखौं तब सब चिदाकाशही भासै, जब संकल्पदृष्टिकरि देखौं, तब जगत् भासै कहूँ ऐसी सृष्टि देखी, जहां दशरथका पुत्र राम अरु रावणके मारनेको समर्थ हुआ है, तुम्हारा रूप बडा तपस्वी रहता है, अरु सदा प्रसन्न है मन जिसका, ऐसी अनंत सृष्टि देखी॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! मैं आगे भी हुआ हौं, अरु ऐसाही हुआ हौं अथवा किसी अपर प्रकार हुआ हौं, सो कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! कई उसी जैसे होते हैं, कई अर्ध लक्षण होते हैं, कई चतुर्थ भाग लक्षण होते हैं, जैसे अन्नका बीज उसी जैसा होता है, कोऊ उसते विशेष भी होता है, तैसे यह पदार्थ सब पड़े परिणाम होते हैं॥ हे रामजी! तू भी आगे होवैगा,

अरु मैं भी आगे होऊंगा, परंतु आत्माका विवर्त्त है, जैसे समुद्रते तरंग भी होते हैं, विलक्षण भी दृष्टि आते हैं, परंतु वही रूप हैं, तैसे हमारे सदृश भी हमारे स्वरूपकी मूर्तिवत् बहुरि होवैंगे, परंतु आत्मतत्त्व भिन्न कछु नहीं, संकल्प करिकै इतरकी नाईं विलक्षणरूप भासते हैं; जैसे समुद्रविषे वायुकरि तरंग भासते हैं, तैसे आत्मा संकल्पकरिकै जगत्-रूप हो भासता है, यद्यपि नानाप्रकार हो भासता है, तौ भी दूसरा कछु हुआ नहीं यह जगत् चेतनका बिलास है, चित्तके फुरणेविषे अनंत सृष्टि भासती हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि बड़े आरंभकरि भासती है, परंतु स्वरूपते कछु इतर नहीं, तैसे यह जगत् आरंभ परिणामकरि बना कछु नहीं. आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है॥इति श्रीयोगवा० निर्वाणप्र० अनंतजगद्वर्णनं नाम शताधिकनवनवतितमः सर्गः ॥१९९॥

द्विशततमः सर्गः २००.

पृथ्वीधातुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार देखत भया, बहुरि दृश्य, भ्रमको त्यागिकरि अपने वास्तवस्वरूपविषे स्थित भया. मैं अनंत हौं नित्य शुद्ध बोध चिदाकाश सर्वदा अपने आपविषे स्थित हौं॥हे रामजी ! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थानविषे संवेदन अभास फुरी है, जैसे अनाजके कोठेते एक मुष्टिकरि निकासिये अरु क्षेत्रविषे डारिये उसीते किसी ठौरविषे अंकुर निकसै तैसे चेतनविषे संवेदन फुरी है, तिस संवेदनसों जगत् उपजा है, जैसे जलके दिये अंकुर निकसि आता है तैसे मेरेविषे सृष्टिका अनुभव होने लगा, अरु मैं जानत भया कि सृष्टि मेरेविषे फुरी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम जो आकाशरूप अपने आपविषे स्थित थे तिसविषे सृष्टि तुमको कैसे फुरी ? दृढ बोधके निमित्त मुझको कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी!वास्तव तौ कछु उपजा नहीं परंतु जैसे हुई है तैसे सुन, मैं जो अनुभव आकाश अनंत था,

तिसके किसी स्थानविषे संवेदन चित्त अहं फुरा. अर्थ यह कि, मैं हौं, तिसके अहंभावके होनेकरि आपको मैं सूक्ष्म तेज अणु जैसा जानत भया, तिस अणुविषे जो अहं फुरी तिसको तुमसारखे अहंकार कहते हैं तिस अहंकारकी दृढताते निश्चयात्मक बुद्धि फुरी, तिस बुद्धिते संकल्प विकल्परूप मन फुरा, तिस मनने आगे प्रपंच रचा, तिस मनविषे देखनेका स्पंद फुरा, तब चक्षु इंद्रिय भई, अरु जिसको देखने लगा, रूप दृश्य भई; बहुरि सुननेकी इच्छा फुरी, तब श्रवण इंद्रिय हुई, तब शब्दही सुनत भई, बहुरि रस लेनेकी इच्छा भई, तब जिह्वा इंद्रिय भई रसको ग्रहण करने लगी, जब सुगंधि लेनेकी इच्छा करी, तब नासिका इंद्रिय भई, अरु सुगंधिको ग्रहण करने लगी, बहुरि स्पर्श करनेकी इच्छा हुई, तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, अरु स्पर्शको ग्रहण करने लगी, इसप्रकार ज्ञान इंद्रिय मुझको आनि फुरी, तिनविषे शब्द स्पर्श रूप रस गंध उदय हुए, तब मैं अपनेसाथ स्थूल वपुको देखत भया, जैसे पुरुष सूक्ष्मते उठिकारि स्वप्न देखता है, तिसविषे अपना शरीर देखताहै, तैसे मैं देखता भया ॥ हे रामजी ! जिसको मैं देखत भया सो दृश्य हुआ, अरु जिसकारि मैं देखता भया सो इंद्रियां भईं, अरु जब दृश्य फुरणा हुआ, सो काल हुआ, अरु जहां हुआ, सो देश हुआ, अरु ज्योंकारि हुआ, सो क्रिया हुई, इसप्रकार सब देशकाल पदार्थ हुए हैं, सो मैं तेरे ताईं कहे हैं ॥ हे रामजी ! वास्तव न कोऊ देह है, न इंद्रिय है, न सृष्टि है, चित्तकलाविषे हुएकी नाईं दृष्ट आते हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासती है, जब वह सृष्टि मुझको फुरी, तब पूर्व स्वरूप विस्मरण भया, जैसी सुषुप्तिविषे मुझको अपना स्वरूप विस्मरणकी नाईं होता है, तैसे मुझको विस्मरण हुएकी नाईं भासा, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत् स्वरूपका विस्मरण होता है, जाग्रत्विषे स्वप्नस्वरूपका विस्मरण होता है, तैसे पूर्वके स्वरूपका मुझको विस्मरण भया, जब शरीर इंद्रियां मुझको अपनेसाथ भासीं, तिसविषे मैं अहंप्रत्यय कारिकै शब्द ओंकार उच्चार किया, जैसे बालक माताके गर्भते उत्पन्न होकारि शब्द करता है, तैसे मैं ॐ शब्दका उच्चार किया, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे उठता है, अरु शब्द करता है,

तैसे मैं ओंकारका उच्चार किया, कैसा ओं है, आदि मध्य अंतते रहित पर ब्रह्म है, सर्व ब्रह्मांडरूपी तरंगका आधार समुद्र है ॥ हे रामजी ! जब मैं अधिभूत दृष्टिकारि देखौं, तब मुझको शिलाही भासै, अरु जब अंतवाहक दृष्टिकारि देखौं, तब अनंतब्रह्मांड दृष्ट आवैं, अरुनानाप्रकारकी क्रिया मर्यादासहित भासैं, अरु आत्मत्वदृष्टिकारि देखौं, अद्वैतअपना आपही भासै ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणोंविषे मरुस्थलकी नदी भासती है, तैसे मुझको सृष्टि भासै, जैसे मरुस्थलकी नदी मिथ्या है, तैसे ग्रहण करनेहारी वृत्ति मिथ्या है, जैसे संवेदनविषे मनन फुरताहै, सोभीमिथ्या है, काहेते जो नदी मिथ्या है, तौ मनन तिसका सत्य कैसे होवै, जैसे वह मिथ्या है, तैसे यह भी रूप अवलोकन मनुष्यका मिथ्या है, भ्रांतिकरिकै सत्य भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टि भ्रांतिमात्र है, जैसे संकल्प पुरी मिथ्या है, जैसे मनोराज्यका नगर अरु कथाका वृत्तांत अणहोता भ्रांतिकरिकै प्रत्यक्ष भासता है, तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै सत्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, संकल्प विलासविषे बने दृष्टि आते हैं ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुन, जब मेरेविषे पृथ्वी धारणा भई, तब पृथ्वी मुझको शरीर होकारि भासने लगी, काहेते जो मैं विराट् आत्मा था, तिस पृथ्वीके ऊपर वन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फूल, फल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य, नाग आदिक जो स्थित हैं, सो पृथ्वी मेरा शरीर भया, अरु पर्वत मेरे मुख भए, अरु सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा भईं, अरु सप्त समुद्र मेरा आद्रा भया, अरु सर्व नदी मेरे कंठविषे माला भासैं, अरु वन मेरी रोमावली भई, अरु मरुस्थलकी नदी मेरे ऊपर विस्तार भासै, अरु देवता मनुष्य पशु पक्षी दैत्य यह सब मेरेविषे कीट भासैं, शरीरविषे जुआं लीखां आदिक हैं, अरु किसी ठौर मेरे ऊपर हिलावते हैं, अरु बीज बोते हैं, खेती उगती है, प्राणी खाते हैं, कहूँ खोदते हैं, कहूँ पूजा करते हैं, कहूँ समुद्र स्थित हैं, कहूं नदी चलती है, कहूँ राजा राज्य करते हैं, मेरे ऊपर झगड मरते हैं, वह कहता है पृथ्वी मेरी है, वह कहता है मेरी है, इसप्रकार ममताकरिकै युद्ध करते हैं, हस्ती चेष्टा करते

हैं, कई रुदन करते हैं, कई हांसी करते हैं, कहूं वृत्ति पसारते हैं, कहूं सुगंधि है; कहूं दुर्गंधि है, नदियां चलती क्षोभ करती हैं, देवता अरु दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं, शीतलताकरिकै जल मेरे ऊपर बर्फ हो जाता है, इत्यादिक इष्ट अनिष्ट स्थान मैं अपने ऊपर देखत भया, राजसी तामसी सात्त्विकी जेती कछु जीवकी क्रिया होती हैं, सो सबका आधार मैं होता भया, अरु पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाको संज्ञा होत भई, संवेदन फुरणेकरिकै इसप्रकार मैं आपको जानता भया ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्याने पृथ्वी-धातुवर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

एकाधिकद्विशततमः सर्गः २०१

जलरूपवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमको जो धारणा करिकै पृथ्वीका अनुभव हुआ, तिसविषे जगत् उत्पन्न हुआ, सो संकल्परूप था, अथवा मनते उपजा था, अथवा अधिभूत रूप था, पृथ्वीते उत्पन्न कैसे हुआ सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो संकल्परूप है, अरु अधिभूतकी नांई भासता है, सो केवल चिदाकाश अपने आपविषे स्थित है, सो चिदाकाश मैं हौं, न कदाचित् उपजा हौं, न नाश होऊंगा, सर्वदा अद्वैत अचैत्यचिन्मात्ररूप हौं, तिसके संकल्पका नाम मन है, आभासका नाम संकल्प है, तिसीका नाम ब्रह्मा है, तिसीका नाम इच्छा है, तिसविषे जगत् स्थित है, सो जगत् आकाशरूप है, बना कछु नहीं ॥ हे रामजी! जिसको सत्य कहता है, अरु असत्य कहता है, सो शुभ अशुभरूप जगत् मनविषे स्थित है, अरु जेते आकार भासते हैं, सो निराकाररूप हैं, आकाशरूप भ्रांतिकरिकै पिंडाकार भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे शुभ अशुभ पदार्थ भासते हैं, सो निराकार हैं, भ्रांतिकरिकै पिंडाकार भासते हैं, तैसे यह जगत् भी

निराकार है, भ्रमकरिकै पिंडाकार भासता है, विचार कियेते शून्य हो जाता है, जैसे मनोराज्य करिकै आकार रचित हैं, तैसे हमारे आकार जान, स्वरूपते कछु उपजे नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे बालक नानाप्रकारकी सेना रचते हैं, सो मृत्तिकामें भी उनको भिन्न भिन्न भाव निश्चय होते हैं; तैसे अद्वैत आत्माविषे मनरूपी बालकने जगत् कल्पा है, वास्तव कछु नहीं, आत्मत्व सदा अपने आपविषे स्थित है, मृगतृष्णाका जलही नहीं तौ तिसविषे डूबा कौनको कहिये, तैसे मन आभासरूप है, तिसका रचा जगत् कैसे सत् होवै ॥ हे रामजी ! सब चिदाकाशरूप है, दूसरा कछु बना नहीं आत्मारूप आकाशविषे मनरूपी नीलता है, सो अविचारसिद्ध है, विचार कियेते नीलता कछु वस्तु नहीं; जैसे दीपकके विद्यमान अंधकार नहीं रहता तैसे विचार कियेते मन अरु मनकी रचना जगत् नहीं रहती, मनका निर्वाण करना परमशांति है, अपर उपाय कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! जेते कछु क्षोभ हैं, तिनका कर्ता मन है, अरु जेती कछु शब्द अर्थ कल्पना उठती हैं, सो मनकरि उठती हैं, मनके निर्वाण हुए कोऊ नहीं रहती ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम जो अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भये, सो कछु अपररूप भी भए अथवा न भए सो कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी जो जाग्रत् है, तिसविषे मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भया, मैं चेतन था, अरु जडकी नाईं स्थित भया, वास्तवते न कछु मैं जगत् था, केवल चिदाकाश है, तिसविषे न कछु नाना है, न अनाना है, जगत् न अस्ति, न नास्ति है, अहं त्वं इदंका अभाव है, केवल परमआकाश है, आकाशते भी निर्मल चिदाकाश है, जरु जो है, सो सर्व शब्दब्रह्म है, जगत्के होते भी अरूप है, काहेते जो कछु आरंभपरिणामकरि नहीं बना, केवल आत्माका चमत्कार है॥ हे रामजी! जहां जहां पदार्थसत्ता है, तहां तहां जगत् वस्तु है, सर्व काल सर्व पदार्थका स्पंद ब्रह्म है, जहां ब्रह्मसत्ता है, तहां जगत् है, इसप्रकार अनंत ब्रह्मांडको देखत भया, जब मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भया, जब जलकी धारणा करी, तब जलरूप होकर पसरा

वृक्ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, टास, तमालपत्रविषे मैं रस होकरि स्थित भया, स्तंभविषे मैंही बल हुआ, समुद्र हुआ, नदियोंके प्रवाह होकरि बहने लगा, तिनविषे गडगड शब्द करने लगा, तरंग बुद्बुदे फैनको पसारिकरि विलास करत भया, उसके कणके होनेकरि मैंही स्थित भया, आकाशविषे मेघ होकरि स्थित भया, वर्षा करने लगा, प्राणीको तृप्त करने लगा, तिनविषे रुधिरतेआदि रस होकरि मैंही स्थित भया तिनकी नाडी-विषे मथन करिकै आपही प्रवेश किया, जैसीजैसी नाडी होतीहै, तैसा तैसा रस होकरि स्थित भया, रस बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब नाडीविषे मैंही स्थित भया, सर्वप्राणीकीजिह्वा अग्रविषेरस होकरि स्थित भया, स्वादको ग्रहण करने लगा, आपने आपको आपकरि अरु हिमालय विषे बर्फ होकरि स्थित भया ॥ हे रामजी ! मैं चेतनही जडकी नाईं स्थित भया, बीज होकरि मैंही उत्पत्ति करत भया, प्रलय मेघ होकरि मैंही नाश करत भया, इसप्रकार जल होकरि स्थावर जंगम जगत् सर्व-विषे मैं स्थित भया, अरु सदा अपने आपविषे स्थित होकरि अपने स्वरूपको त्यागता न भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अनुभवरूप है, अणु-होता भासता है, तैसे मैं जलरूप होकरि जगत्को धारता भया ॥ हे रामजी ! इसते आदि लेकरि जो नानाप्रकारके स्थान हैं तिनविषे मैं स्थित भया, अरु फूलकी शय्याके ऊपर चिरकालपर्यंत विश्राम करत भया, अरु गंध होकरि फूलविषे स्थित भया, मेघ होकरि आकाशविषे विचरता भया, गडा होकरि वर्षा करता भया, पर्वतपर प्रवाहवेगकरि उतरता भया, कणके कणके हो गया, समुद्र नदियोंविषे विचरता भया, यह प्रतिभास चिद् अणुविषे मुझको भई ॥ इति श्रीयोगवा-सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्याने जलरूपवर्णनं नाम एकाधिकद्वि-शततमः सर्गः ॥ २०१ ॥

द्विशताधिकद्वितीयः सर्गः २०२.

अंतवाहकचिदचिद्वर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जलके अनंतर मैं तेजकी भावना करी, अर्थ यह कि तेजको धारा तब मेरे एते अंग उदय भये, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि इन अंगकरि जगत्की क्रिया सिद्ध होने लगी, जैसे राजाके अंग अनुचर हरकारे होते हैं, जहां तमरूपी चोरको दीपकरूपी हरकारे मारते हैं, आकाशरूपी जो मैं हौं, तिसके कंठविषे तारेरूपी माला पडी है, सूर्य होकरि मैं जलको सोखने लगा, अरु दशों दिशाको मैं प्रकाशता भया, आकाश जो ऊर्ध्वताकरि श्याम भासता है, सो मेरे निकट प्रकाशमान होरहता है, सब जगत्विषे मैं पसर रहा हौं, जहां मैं होऊं तहांते तमका अभाव हो जावै, चंद्रमासूर्यरूपी डब्बा है, तिसविषे दिनरात्रिरूपी रत्न हैं, दिनरात्रि काल वर्षरूपी अनेक रत्न हैं, सो सर्वदा निकसते रहतेहैं ॥ राजसी सात्त्विकी तामसी क्रियारूपी कमलिनीका मैं सूर्य हुआ, अरु सर्व देवता पितरको तृप्त करत भया॥ यज्ञकी अग्निहोकरि अग्नि रत्न मोती मणि आदिक जो प्रकाश्य पदार्थ हैं, तिनविषे प्रकाश मैं हौं, अरु प्राणके अंतर मैं स्थित हुआ, प्राण अपानके क्षोभकरि अन्नको पचावता है, जैसे आत्माके प्रकाशकरि रूप अवलोकन नमस्कार प्रकाशते हैं, तैसे सब पदार्थ मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, काहेते कि तेजरूप मैं हौं, मानो चेतनसत्ताका मैं दूसरा भाई हौं, जैसे सर्व पदार्थ आत्माकरि सिद्ध होते हैं,तैसे मुझकरि सिद्ध होते हैं ॥ हे रामजी ! राजाविषे तेज मैं हौं, सिद्धविषे वीर्य होकरि स्थित मैं हौं, बलरूप होकरि जगत्की पुष्टि मैं करता हौं, वडवाग्नि दाहकशक्ति होकरि जगत्को मैं नष्ट करता हौं, तेजवान्विषे मैं तेज हौं, बलवान्विषे मैं बल हौं, तले भी मैं हूं, अरु मध्य भी मैं हूं, अरु चंद्रमा सूर्यते रहित जो स्थान हैं, तिनविषे मैं हूं, अग्निरूपीदीपक करिकै अरु चंद्रमा सूर्यरूपी नेत्रकरिकै मध्य मंडलविषे स्पष्ट मैंही देखता हौं, ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तेजरूप होकरि अंतर बाहिर स्थावर जंगम पदार्थविषे मैं स्थित भया, अरु जब बोधदृष्टिकरि

देखौं तब सर्व आत्माही भान होवै, अरु जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखौं तब आपको विराट्रूप जानौं, जो सर्व जगत्विषे मैंही पसर रहा हौं, सर्व पदार्थ मेरे अंग हुएहैं, तेजवान्विषे तेज मैं हुआ, क्रोधवान्विषे क्रोध भी मैं हुआ, अरु यतीविषे यती मैं हुआ, अरु अजित हुआ, सर्व ओर मेरीही जय है, काहेते कि जय तिसकी होती है, जिसविषे बल अरु तेज होता है, सो बल मैं हौं, ओज मैं हौं, ताते मेरी जय है ॥ हे रामजी! स्वर्ण अरु रत्नमणिविषे प्रकाश हुआ, अपर जो रूप है सो मैं हुआ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इसप्रकार जो तुम जगत्की क्रियाको अनुभव करने लगे, जलरूप होकारि अग्निको बुझाने लगे, अग्नि होकारि जलको जलाने लगे, इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर होती रही, इष्ट अनिष्ट सो तिसका सुखदुःखकरि अनुभव किया, अथवा न किया, सो मेरे बोधके निमित्त कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे चेतन पुरुष स्वप्नविषे पर्वत वृक्ष देह इंद्रियां नानाप्रकारके जड पदार्थ देखते हैं, सो उसविषे तौ नहीं; केवल अनुभवरूप है, परंतु निद्रादोषकरि वह द्वैतकी नाईं स्वप्नसृष्टिको जानता है, तिसका रागद्वेष अपनेविषे मानता है, अरु अपर कछु है नहीं, द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि स्थित होता है, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जान सकता, जब जागता है तब सब स्वप्नसृष्टिको अपना आपही जानता है, तैसे यह जगत् अपने स्वरूपविषे नहीं, जब बोध स्वरूपविषे जागैगा तब पदार्थभावना जाती रहैगी सब जगत् बोधस्वरूप भासैगा ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित अखंड सत्ता उदय भई है, तिसको ज्ञानी कहते हैं, जब यह पुरुष परमात्मा अवलोकन करता है, तब सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जिस पुरुषको स्वप्नसृष्टिविषे पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं भया तिसको अंतवाहक कहते हैं, तिसको पत्थरके प्रवेश करनेविषे भी खेद नहीं होता, अरु जल अग्निविषे प्रवेश करनेकारि भी खेद नहीं होता ॥ हे रामजी! मैं जो आकाशविषे उडता फिरता हौं, अरु आकाशको भी लंघिकारि ब्रह्मांडके खपर ऊपर जाय फिरा हौं सो अंतवाहक कारिकै फिरा हौं; जिसको अंतवाहक शरीर प्राप्त

होता है, तिसको आवरण कोऊ रोकि नहीं सकता. काहेते कि, सब अंग उसके होते हैं, ताते मुझको शुद्ध आत्माविषे स्वप्न हुआ है; अरु पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं भया, तिसकरि मुझको सब जगत् अपना स्वरूपही भासता है, अपने संकल्पकरि कल्पे अपने अंगही भासते हैं, जैसे किंपुरुषने मनोराज्य करिकै अग्निका समुद्र रचा अरु उसविषे स्नान करै तौ क्यों होता है, उसको खेद भी नहीं होता, सब अपने संकल्पविषे उसको भासते हैं, अंतवाहक शरीरकरिकै विराट् सबको अपना आप देखता है, तैसे सब जगत् मुझको अपना आप भासै तौ खेद कैसे होवै, जैसे स्वप्नवाला स्वप्नविषे पर्वत नदियां अग्नि होतीहै सो वहीरूप है, अरु एक आप भी आकार धारिकै बन जाता है, पूर्वका स्वरूप उसको भूल जाता है, परिच्छिन्नता करिकै राग द्वेषसाथ जलता है, अरु मैं तत्त्वरूप बना जो आपको जडरूप देखत भया, मैं आपको चेतनरूप देखता था, अरु जडकी नाईं भी मैं आपको जानत भया, इसप्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न भया, तब मैं वैराट्रूप सबको अपने अंग देखत भया, ताते खेद कैसे होवै, खेद तब होता है, जब अपना स्वरूप भूलता है, अरु परिच्छिन्न बनि जाता है, सो मैं तौ बोधवान् रहा, जो मैं स्पंद करिकै सब रूप धारे हैं ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय है, तिसको दुःख कहाँ होवै, सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं सो मैं अपने विषे ऐसे देखत भया, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जिसको यह सृष्टि होवै, तिसको दुःख कहां है ॥ हे रामजी ! जिसको अंतवाहकशक्ति प्राप्त होती है, वह समर्थ होता है, पातालविषे जावै आकाशविषे उडै, जहाँ प्रवेश किया चाहै, सो सब होताहै, काहेते कि, सृष्टि संकल्पमात्र है ॥ हे रामजी ! अपर कछु सृष्टि बनी नहीं, आत्माका किंचनही सृष्टिरूप होकरि भासता है ॥ हे रामजी ! यह सृष्टि सब ब्रह्मरूप है, हमको तौ सदा ऐसेही भासती है, जब तू जागैगा तब तुझको भी ऐसेही भासैगी, सो तू भी अब जागा है, इसप्रकार मैं अग्नि होकरि स्थित भया, जिसकी शिखाते कालप निकसती है, सो प्रकाश मैंही भया, चिद्रूप अपने स्वरूप अनुभवविषे मुझको जगत् भासै, तिनविषे मैं स्थित हुआ,

अंधकार भी अरु उलूकादिक भी मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु भावरूप पदार्थ भी मैं अपनेविषे जानत भया. काहेते कि, भावरूप पदार्थ तब भासते हैं, जब उनका रूप होताहै, सो रूपवान् पदार्थ मैंही था. इस कारणकरि सब मेरेहीकरि सिद्ध होते हैं, इसप्रकार मुझको प्रतिभा हुई ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतवाहकचिदचित्वर्णनं नाम द्विशताधिकद्वितीयः सर्गः ॥ २०२ ॥

द्विशताधिकतृतीयः सर्गः २०३.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बहुरि मैं पवनकी धारणाका अभ्यास किया, तब पवनरूप होकरि विचरने लगा, कमल फूल अरु वृक्षको हिलावने लगा, तारानक्षत्रका आधारभूत भया, तब मेरेकरि फिरने लगे, चंद्रमा सूर्यके चलानेहारा मैंही भया, समुद्र नदियोंके प्रवाह मेरेहीकरि चलते हैं, मनका बड़ा वेग भी मैंही हौं, प्राणी उसके शरीरविषे मेरा निवास है, मैंही प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान पंचरूप होकरि स्थित भया हौं, अरु सब नाडीविषे मेरा निवास है, अरु सब नाडीके रस अपना अपना भाग मैंही पहुँचावता हौं, हलना, चलना, बोलना, लेना, देना सब मुझहीकरि सिद्ध होता है, सर्व पदार्थविषे स्पर्शशक्ति मैंही हौं, सर्व शब्द मेरेहोकरि सिद्धहोते हैं, क्रियारूपी बूँदका मैं मेघ हौं, आकाशरूपी जो ग्रह है, तिसविषे मेरा निवास है, दशों दिशा सब मेरेविषे फुरी हैं, देवताको गंधकरि सुख मैंही देता हौं, दीपकको प्रज्वलित मैंही करता हौं, पक्षीविषे मेरा सदा निवास है, जैसे अग्निविषे उष्णता रहती है, सबके सुखावनेहारा मैंही हौं, हरियावल करनेहारा भी मैंही हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मैं पवन होकरि स्थित भया, ताते रूप अवलोकन मनस्कार सर्व पदार्थ मैंही भया, चंद्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इंद्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वरुण कुबेर, यम आदिक जगत् होकरि मैंही स्थित भया, पंचभूतकरि भूतके अंतर भी मैंही हौं, अरु बाहिर भी मैं हौं, प्राण

अपानके क्षोभकारिकै दुःख होता है सो मैंही साकार निराकाररूप हौं, रक्त पीत श्यामरंग पदार्थ सब मैंही हौं, पंचभूत चिद्गुणते फुरे हैं, सो उसीका रूप हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब अपनाही रूप होती है, इतर कछु नहीं, हाड़ मांस पृथ्वीकारि भूतविषे स्थित भया हौं, वायुरूप प्राण होकारि स्थित भया हौं, अग्निरूप क्षुधा होकारि स्थित भया हौं, आकाशरूप अवकाश होकारि स्थित भया हौं, इसप्रकार मैं सर्वविषे स्थित भया हौं, सो मैं भी चेतन वपु हौं, वह तत्त्व भी चेतनवपु हैं, जैसे स्वप्नविषे जगत् आकाशरूप है, तैसे वह भी आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! सर्वका सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वात्मा स्थित है, दूसरा कछु नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, इसते इतर जानना भ्रांतिमात्र है. यह दृष्टि ज्ञानवान्की है, जो असम्यक्दर्शी हैं, तिनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, इसप्रकार मैं संपूर्ण जगत् अपनेविषेही देखत भया ॥ हे रामजी ! मैं कौन हौं, मैं जो ब्रह्मरूप था, तिसविषे जगत् उत्पन्न होते दृष्ट आये, अरु जो मैं ब्रह्मते इतर कहौं, एक तृण न उत्पन्न होवै, मैं जो ब्रह्मरूप था, तिसते सृष्टि उत्पन्न होती हैं ॥ हे रामजी ! जब मैं बोधदृष्टिकारि देखा तब आत्माते इतर कछु न देखा, जब अंतवाहकदृष्टिकारि देखौं, तब मेरे ताईं स्पंदकारिकै अणु अणुविषे सृष्टि भासती हैं, जैसे जहां चंदनका अणु होता है, तहां सुगंधि होती है, तैसे जहां जहां तत्त्वके अणु हैं, तहां तहां सृष्टि है ॥ हे रामजी ! एक अणुविषे अनंत सृष्टि मुझको भासै हैं, जैसे एक पुरुष शयन करता है, अरु तिसको स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बहुरि स्वप्नते स्वप्नांतरकी सृष्टिको देखता है, तौ एकही जीवविषे बहुत क्यों भासै, तैसे अणुविषे अनेक सृष्टि हैं ॥ हे रामजी ! जो सृष्टि है सो आभासरूप है, अरु आभास अधिष्ठानके आश्रय होता है, सो सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, देश कालके परिच्छेदते रहित है, अरु अखंड अद्वैतसत्ता है, इसीते कहाहै, जो अणुअणुविषे सृष्टिहै, काहेते कि, कोऊ अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताहीहै, जो सर्व ब्रह्म है, तौ सृष्टि भी ब्रह्मरूप है, ताते सर्व ब्रह्मही जान, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं ॥ इति श्रीयोगवा० निर्वाण० ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकतृतीयः सर्गः ॥२०३॥

द्विशताधिकचतुर्थः सर्गः२०४.

आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब मेरेविषे सृष्टि फुरीं, तब मैं तिनके भ्रमको त्यागि अरु संकल्पको खैंचिकारि अंतर्मुख हुआ, अरु अपनी जो कुटी थी तिसकी ओर आया, जब कुटी देखी, तब तिसविषे एक पुरुष बैठा मुझको दृष्टि आया, तब मैं विचार किया कि, यह किंचन है, अरु मेरा शरीर था सो कहां है, तब मैं विचार करि देखा कि, यह कोऊ महासिद्ध है, अरु मेरा शरीर इसने मृतक जानकारि गिराय दिया है, सो सिद्ध कैसे बैठा है, जो पद्मासन बाँधिकारि दोनों गिटे पटके ऊपर किये है, अरु शिर ग्रीवा सूधे किये हैं, दोनों हाथ पटते ऊर्ध्व किये है, मानौ कमलफूल है, मानौ अंतरका प्रकाश बाह्य आनि उदय हुआ है, अरु नेत्र मूँदेहैं, मानौ सब वृत्ति मूँदी छोंडी हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार समाधि लगायकारि पद्मासनकारि आत्मपदविषे स्थित बैठा है, बहुरि कैसा है, निरावरण बादलते रहित सूर्यकी नांई प्रकाशता है; जैसे धूमते रहित अग्नि प्रकाशता है, तैसे वह सिद्ध प्रकाशवान् स्थित है, इसप्रकार मैं उसको आत्मपदविषे स्थित देखत भया, जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, तैसे स्थित देखिकारि मैं विचार किया जो यह इहांही बैठा रहै, मैं अपने स्थान सप्तर्षिविषे जाऊं, इसीप्रकार कुटीके संकल्पको त्यागिकारि मैं उड़ा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उड़ते हुए मार्गविषे मुझको विचार उपजा कि, अब सिद्धकी क्या दशा है, बहुरि उलटिकारि देखौं तौ कुटीसह सिद्ध वहां नहीं, काहेते जो कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरे संकल्पविषे स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब कुटी गिर पड़ी, तब तिसविषे सिद्ध कैसे रहै, वह भी गिर पड़ा ॥ हे रामजी ! उसको गिरता देखकर मैं भी उसके पाछे हुआ कि, इसका कौतुक देखौं, तब आगे वह चला जावै, मैं पाछे अधको चला जावौं, परंतु मैं स्वाधीन चला जावौं, अरु वह पराधीन

चला जावै, जैसे मेघते बूँदें गिरती हैं, सो ठहरतीं नहीं, जैसे आकाशते वटा गिरै तैसे वह चला जावै, सप्तद्वीपके पार दशसहस्र योजन स्वर्णकी धरती है, तिसके ऊपर आनि पड़ा जैसे आकाशते रुईका फोहा गिरै तैसे सुखेन आनि पडा, अरु उसीप्रकार पद्मासन बाँधे हुए शीश ग्रीवा उसीप्रकार सम ठहरे रहे. काहेते कि, उसके शीश ग्रीवा ऊर्ध्वको रहे॥ हे रामजी ! शरीर हलता चलता प्राणकरि है, जब प्राण ठहर जाते हैं, तब शरीर हलता चलता नहीं, इसकारणते शरीर उसका समही रहा, जैसे कुटीविषे बैठा था, तिसी प्रकार आसनकरि पृथ्वीऊपरि आनि पडा तब मेरे मनविषे आया कि इसके साथ कछु चर्चा भी कीन्हीं चाहिये, परंतु यह तौ समाधिविषे स्थित है, किसप्रकार इसको जगावों हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै मैं मेघ होकरि वर्षा करने लगा, अरु बड़ा शब्द करने लगा, जिस शब्दकरि पहाड फूटने लगे, तिस शब्द अरु वर्षाकरके भी वह न जागा, तब मैं गडा होकरि तिसके ऊपर वर्षा करने लगा, जैसे पत्थरकी वर्षा होती है, जब ऐसी वर्षा करी तब वह नेत्र खोलकरि देखने लगा जैसे पर्वतपर मोर मेघको देखने लगै, तब मैं वपुको त्यागिकरि उसके आगे आय स्थित भया, तब उसने समाधि खोली, अरु प्राण इंद्रियां अपने स्थान विषे आये॥ हे रामजी ! तब मुझको अपने अग्र देखत भया, तब मैं अद्वैतभावको त्यागिकरि बोलत भया ॥ हे साधो ! तू कौन है, अरु कहां स्थित है, अरु क्या करता था, अरु किसनिमित्त कुटीविषे स्थित था ॥ सिद्ध उवाच॥ हे मुनीश्वर ! मैं अपने प्रकृतभावविषे स्थित हौं, अरु सब कछु कहौंगा, परंतु काहली मत कर, मैं स्मरण करिकै कहता हौं॥ हे रामजी ! मुझको इसप्रकार कहकर स्मरण करने लगा, बहुरि स्मरण करिकै कहत भया ॥ हे ब्राह्मण ! वसिष्ठजी ! मुझपर क्षमा करनी, संतका शांत स्वभाव है, मेरे पासते तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है, परंतु तुम क्षमा करहु, मेरा तुमको नमस्कार है॥ हे रामजी ! इसप्रकार नमस्कार करिकै निर्मल आनंदके उपजावनेहारे वचन कहत भया, हे मुनीश्वर ! यह संसाररूपी नदी है, अरु इसका बडा प्रवाह है सो कदाचित सूखता नहीं, अरु चित्तरूप समुद्रते प्रवाह निकलता है, जन्ममरण दोनों इसके किनारे

हैं, रागद्वेषरूपी इसविषे तरंग हैं, अरु भोगकी तृष्णा इसविषे चक्र फिरता है, तिसविषे मैं बडा दुःख पाया है ॥ हे मुनीश्वर! अपने सुखके निमित्त देवके स्थानोंविषे भी गया हौं, अरु दिव्य भोग भोगे हैं, जो स्पर्श आदिक भोग हैं, सो सब मैं भोगे हैं, परंतु शांति नहीं मुझको प्राप्त भई, जिस सुखको मैं चाहता था, सो न पाया सो सुन, जैसे पपीहा मेघकी बूंदको चाहता है, अरु मरुस्थलकी भूमिकाविषे उसको शांति नहीं होती, तैसे मुझको विषयके सुखविषे शांति प्राप्त भई नहीं ॥ हे मुनीश्वर! इस जगत्को असार जानिकरि मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि, एता काल मैं भोग भोगे, परंतु मुझको शांति न प्राप्त भई, असत् जानकरि मैं फिरा, अरु विचार किया जो सार होवै तिसविषे स्थित भया होऊं तब मैं जाना कि सार अपना अनुभवरूप ज्ञान संवित् है, ऐसे जानकरि मैं तिसविषे स्थित भया हौं ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु विषय हैं, सो विषरूप हैं, विषके पान कियेते भी मृतक होता है, जैसे स्त्री धन आदिक सुख हैं, सो मोह अरु दुःखके देनेहारे हैं, ऐसा कौन पुरुष है, जो इनविषे आया सावधान रहता है, यह स्वरूपते नष्ट करनेहारे हैं ॥ हे मुनीश्वर! देहरूपी एक नदी है, तिसविषे बुद्धिरूपी एक मच्छी रहती हैं, सो जब शिर बाहर निकासती है, अर्थ यह कि जो इच्छा करती है, तब भोगरूपी बगुला इसको खाय जाता है, अर्थ यह कि आत्ममार्गते शून्य करता है, अरु यह जो भोगरूपी चोर है, जब इनका संग यह करता है तब इसको लूटि लेते हैं, अर्थ यह कि, आत्मज्ञानते शून्य करते हैं, जब आत्मज्ञानते शून्य हुआ तब जन्मका अंत नहीं आता, अनेक शरीरको धारता है, जैसे चक्रके ऊपर चढी हुई मृत्तिका अनेक बासनके आकार धारती है, तैसे आत्मज्ञानते रहित अनेक शरीरको धारता है, सो अब मैं जागा हौं, मुझको अब लूटि नहीं सकते ॥ हे मुनीश्वर! भोगरूपी बड़े नाग हैं, अपर जो नाग हैं, तिनके दंशते शरीर मृतक होते हैं, अरु विषयरूपी सर्पके फूत्कारेकरि मृतक होता है, अर्थ यह कि, इच्छा करनेकरि आत्मपदते शून्य होता है, जब इसको विषयकी इच्छासाथ संबंध होता है, तब इसका क्षणक्षणविषे निरादर

होता है, जैसे कदलीबनते रहित हुआ हस्ती महावतके वश आया निरादरको पाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जिस शरीरके निमित्त यह विषयकी इच्छा करता है, सो शरीर भी नाशरूप है, तिसविषे अहंप्रतीति करनी परम आपदाका कारण है, अरु शरीरविषे अहंप्रतीति न करनी परम सुखका कारण है, जैसे सर्पके मुखमें पडा हुआ दर्दुर मच्छरकी खानेकी इच्छा करता है, सो महामूर्ख है, किसी क्षणविषे काल इसको ग्रासि लेवैगा, ताते इसकी इच्छा करनी व्यर्थ है, अरु दुःखका कारण है ॥ हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था व्यतीत होती है, तब युवावस्था आती है, युवाते उपरांत वृद्धावस्था आती है, तब जर्जरीभावको प्राप्त होता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे सूखि जाती है, तैसे वृद्धावस्थाविषे शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है, अरु दुःख पाता है, बालक अवस्थामें क्रीडाविषे मग्न होता है, यौवन अवस्थाविषे कामादिककरि मग्न होता है, वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, इसप्रकार यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं, बहुरि मृत्यु हो जाता है, जीवकी अवधि इसप्रकार पडी व्यतीत होती है, परमपदते अप्राप्त रहते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! यह आयुबल बिजलीके चमत्कारकी नांई है, तिस क्षणभंगुर अवस्थाविषे जो भोगकी वांछा करते हैं, सो महादुःखको प्राप्त होते हैं, इनविषे सुख देखकरि कहै, कि मैं स्वस्थ रहौंगा, सो कदाचित् न होवैगा, जैसे जलके तरंगकी गोदविषे बैठकरि स्थित हुआ चाहै, सो नहीं रहैगा. अवश्य मरैगा, तैसे विषयभोगोंकरि शांतिसुख नहीं होता, जैसे कोऊ महाधूमकरि तपा हुआ, सर्पके फणिकी छायातले बैठिकरि सुखकी वांछा करै सो न होवैगा, जब आत्मज्ञानरूपी वृक्षकी छायाके नीचे बैठे, तब शांत सुखी होवैगा, जिन पुरुषोंने विषयकी सेवना करी है, सो परमदुःखको प्राप्त होते हैं, जिनने आत्मपदकी सेवना करी है, सो परमानदंको प्राप्त होते हैं, जैसे नदीका प्रवाह अधोको चला जाता है, तैसे मूर्खका मन विषयकी ओर धावता है, यह संसार मायामात्र है, इसविषे शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलकरि तृषा निवर्त नहीं होती, तैसेविषयभोगकारि शांति कदा-

चित् नहीं होती, जो आत्मपदते विमुखहैं, सो विषयकीओर धावतेहैं, अरु जो आत्मपदविषे स्थित हैं, सो विषयकी ओर नहीं दौडते, जैसेसमुद्रविषे तरंग उपजिकारि नष्ट होतेहैं, जैसे नदीका वेग समुद्रकी ओर गमन करता है, अरु पत्थरकी शिला गमन नहीं करती तैसे भोगरूपी समुद्रकीओर अज्ञानरूपी नदी गमन करतीहै, ज्ञानीरूपी पत्थरकी शिला नहीं गमन करती॥ हे मुनीश्वर! कमलविषे सुगंधि तबलग होतीहै, जबलग सर्पके मुखका वायु नहीं लगा, तैसे बुद्धिविषे तबलग विचार है, जबलग चित्त-रूपी सर्पके भोगइच्छारूपी वायु नहीं लगा, जब लगता है, तब विचार रूपी सुगंधिको ले जातीहै, अरु विषरूपीतृष्णाको छोड़ि जातीहै अरु बाण निसानकी ओर तब धावता है, जब धनुष्य अरु चिलेको त्यागता है, त्यागेते बहुरि नहीं मिलता, तैसे आत्मारूपी चिलेते जब चित्तरूपी बाण छूटता है, तब भोगरूपी निसानकी ओर धावता है, जब जाताहै, तब फेरि आना कठिनहोताहै; अर्थ यह कि, अंतर्मुख होना कठिन होता है॥ हे मुनीश्वर! यह आश्चर्य है, जो पदार्थ सुखदायक नहीं, तिनकी ओर यह बडा यत्न करता है, तो भी सिद्ध नहीं होते, अरु जो अयत्न-सिद्ध आत्मपद है, तिसको त्यागता है, जिनको यह सुख जानता है, सो सब दुःखके स्थान हैं, जिस अपने होनेको यह भला जानता है, सो अनर्थका कारण है, जिस देहको यह सुखरूप जानताहै, सो सर्व रोगका मूल है, जिनको यह भोग जानता है, सो इसको दुःख देनेहारे परमरोग हैं, जिनको यह सत् जानता है, सो सब मिथ्या हैं, जिनको यह स्थिर जानता है, सो स्थिर नहीं, चलरूप हैं, जिनको यह रस जानता है, सो सब विरसहैं, जिनको बांधव जानताहै, सो सब अबांधव हैं, दृढबंधनरूप हैं, अरु जिसको यह सुख देनेहारी स्त्री जानता सो सर्पिणी है, परम विषके देनेहारी है, तिसका मृत्यु होता है, बहुरि नहीं जीवता, अर्थ यह कि, आत्मपदविषे स्थित नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! मैं परम आपदाका कारण देहको जानता हौं, इसके निवृत्त हुए परमपदको प्राप्त होता है, जिस पुत्र धन आदिकको यह संपदा जानता है, सो परम दुःखरूप आपदा हैं, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, यह श्रवणकरि वार्त्ता मैं नहीं

कहता, देखिकारि विचार किया है, विचार कारिके अनुभव किया है, अनुभव कारिके कहा है कि, यह संसार मायामात्र है, अरु बडे बडे स्थानोंविषे भी मैं गया हौं, परंतु सार पदार्थ मुझको कोऊ दृष्टि नहीं आया, स्वर्गविषे नंदनवनते आदि काष्ठरूपही दृष्टि आयेहैं, अरु पृथ्वीविषे आयकारि देखा तौ पंचभूतही दृष्टि आयेहैं, अरु शरीरविषे रक्त मांस हाड मूत्र आदिक दृष्ट आये हैं, ताते देखिकारि मैं तिनको धिक्कार करता हौं, जो ऐसे शरीरविषे अहंप्रत्यय करते हैं, इनकी आयुर्बल ऐसी है, जैसे दोनों हाथविषे जल लीजिये सो चला जाता है, ठहरता नहीं, अरु जैसे जलविषेतरंग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होतेहैं, जैसे बिजलीकाचमत्कार होकारि नष्ट हो जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है, अरु जो ऐसे शरीरको पायकारि सुखकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं बालक अवस्था तरंगकी नांई नष्ट हो जाती है, यौवन अवस्था बिजलीके चमत्कारवत् छपन होती जाती है, वृद्ध अवस्थाविषे केश श्वेत हो जातेहैं, दंत घसिकारि गिर पड़ते हैं, जैसे नीचेस्थानविषे जल आनि स्थित होताहै, तैसे सब रोग वृद्ध अवस्थाविषे आनि स्थित होते हैं, अरु तृष्णा दिनदिन बढ़ती जातीहै॥ हे मुनीश्वर! सब पदार्थ जर्जरीभूत हो जातेहैं अरु तृष्णा ज्वान होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी बढती जाती है, अरु जो सुख भोग प्राप्त होकारि बिछुरि जाते हैं, तिनका दुःखहोताहै ॥ हे मुनीश्वर! इसप्रकार इनको असत् जानकारि मैं स्वरूपविषे स्थित भया हौं, जब पांचो इंद्रियोंके इष्टविषे बड़ी उत्तम मूर्त्ति धारिकै आनि स्थितहोवै तौ भी हमको खैंचि नहीं सकते, जैसे मूर्तिकी लिखी कमलिनी भँवरेको खैंच नहीं सकती, तैसे हम सारखेको विषय चलाय नहीं सकते ॥ हे मुनीश्वर! तुम्हारा शरीर मैं अवज्ञाकारि डारि दिया है, विचार कारिके नहीं डारा, जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक त्रिकालज्ञ हैं, तौ भी इस चर्मदृष्टि कारि नहीं जान सकते, जब विचारकारि देखते हैं, तब जानते हैं, इस कारणते विचारविना मैं तुम्हारा शरीर डारि दिया है, अब तुम क्षमा करौ, विचार कारिके भूत भविष्य वर्त्तमानको जानता है, अरु इन नेत्र

करि सोई जानता है, जो अग्रभाग होता है विशेष नहीं जानता, इसकार-णकरि मुझते तुम्हारा शरीर गिरा है ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनंनामद्विशताधिकचतुर्थःसर्गः॥२०४॥

द्विशताधिकपंचमः सर्गः २०५.

अंतरोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! मुझते भी तेरा गिरना विचारविना हुआ है, जो विचारना मैं उठि गया था, यह कुटी मेरे अंतवाहक संकल्पविषे थी, सो अपने स्थानको चला, इसकारणते कुटी गिर पडी, तू भी गिर-पडा, जो व्यतीत गई सो भली, तिसकी क्या चिंतवना करिये, ज्ञानवान् बीतीकी चिंतवना नहीं करते, जो हानी हुई सो भली ॥ हे साधो ! अब चलिये, जहां तुम्हारेको जाना है, तहां जावहु, जहां हमको जाना है, तहां हम भी जाते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चर्चा करिकै हम दोनों आकाशमार्गको उडे, जैसे पक्षी उडता है, तब परस्पर नमस्कार करिकै हम भिन्न भिन्न हो गये, वह अपने स्थानको गया; अरु मैं अपने स्थानको चला, मैं बहुतेरे स्थान देखता आऊं, परंतु मुझको कोऊ न जानै ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण वृत्तांत मैं तेरेताईं कहा है, तू इसको विचार ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम जो सिद्धके साथ समागम किया था, सो आकाशमार्गविषे कैसे शरीरसाथ फिरे पांच-भौतिक शरीर तौ पृथ्वीपर डारा था, वह तौ पृथ्वीविषे अणुरूप हो गया, विचरे किस करिकै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अंतवाहक शरीरसाथ मैं विचरता फिरा हौं, तिसकरि मैं सिद्ध देवताके स्थानोंविषे इंद्र वरुण कुबेरके स्थानोंविषे फिरा हौं, परंतु मेरेताईं कौन देखै, मैं सबको देखौं संकल्पपुरुषसाथ मेरा व्यवहार हुआ, अपर किससाथ कहौं, जो अपर किसीको भासा नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! अंतवाहक शरीर इंद्रियोंका विषय तौ नहीं, सिद्ध साथ चर्चा कैसे करी,

अरु तुमको उसने कैसे देखा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जो तू कहता है तौ सुन, सिद्धको मैं इसनिमित्त दृष्टि आया हौं जो मेरा सत्य संकल्प है, मेरे यह फुरणा हुआ कि, सिद्ध मुझको देखै अरु चर्चा करे, इसकारि उसने मुझको देखा उसका संकल्प भी मेरेविषे आया तब जाना; अरु जो दोनों सिद्ध होवैं, अरु उनका संकल्प भिन्न भिन्न होवै, तौ एक दूसरेके संकल्पको नहीं जानते, परंतु किसीका विशेष संकल्प होवै, तब वह दूसरेके संकल्पको जानताहै, ताते उसका संकल्प मेरे देखनेको न था, अरु मेरा जो दृढ संकल्प था, तिसकारि उसके संकल्पको खैंचि अपने ओर ले आया, जो बली होता है, तिसकी जय होती है, इसकारि उसने मुझको देखा ॥ हे रामजी ! जो अंतवाहकविषे स्थित होता है, तिसको तीनोंकालका ज्ञान होता है, परंतु व्यवहार विषे लगै, तब भूलि जाता है, जो वर्तमान पदार्थ होता है, तिसका ज्ञान होता है, इसी कारणते उसने मेरा शरीर डारि दिया था सो समाधिके व्यवहारविषे लगा था, अरु मेरे संकल्पकारि वह कुटी भी तब गिरी थी, जो मैं अपने स्थानके व्यवहारको चलाथा, ऐसी चिंतना करिके जो में चिंतवनाविषे न होता, अरु अंतवाहकशरीरविषे होता, अरु उस कुटीके भविष्यत् विचारि देखता, अरु उस संकल्पको रहने देता तौ सिद्ध न गिरता, जों अपर व्यवहारविषे लगा, इसकरिके अंतवाहक विस्मरण हो गया, तब कुटी गिर पड़ी, अरु सिद्ध भी गिर पडा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सिद्ध गिरा अरु चर्चा हुई तब मैं वहांते चला, अंतवाहक शरीरकी आकाशमार्गविषे फिरने लगा, सिद्धके समूह देखे, देवता विद्याधर गंधर्व किन्नर ऋषि मुनि वरुण कुबेर इंद्र यमते आदि लेकरि सबके स्थान देखे, मैं सर्वको देखता फिरा परंतु मुझको कोऊ न देखै, मैं बडे बडे शब्द करौं कि, किसीप्रकार शब्द कोऊ सुनै, अरु मुझको देखै, परंतु मेरा शब्द कोऊ न सुनै, अरु न कोऊ देखै, जैसे स्वप्नविषे कोऊ शब्द करै, तब उसका शब्द जाग्रतवाले कोऊ नहीं सुनते, जैसे असंकल्पवाला दूसरेकी सृष्टि व्यवहार शब्द कोऊ नहीं जानता तैसे मुझको कोऊ न जानता भया ॥

हे रामजी! इसप्रकार मैं, आकाशपिशाच होकरि विचरा बहुरि देवताके स्थानोंका पिशाच होकरि विचारा मैं सबको देखौं, अरु मुझको कोऊ न देखत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पिशाचका शरीर कौन होता है, अरु पिशाचकी जाति क्या होती है, अरु पिशाचकी क्रिया क्या होती है, अरु तिनके रहनेका स्थान क्या होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पिशाचकी कथासाथ प्रयोजन कछु न था तथापि तैंने प्रसंग पायकरि पूछा है, ताते मैं कहता हौं, पिशाचका आकार नहीं होता, अरु जो जो रूप धारते हैं, सो सुन, एक तौ आकाशकी नाईं शून्य होते हैं, एक बिछावेकी नाईं भयको देते हैं, एक मेघ होकरि स्थित होते हैं, एक कामरूप धारिकरि स्थित होते हैं, ऐसे रूप धारिकै विचरते हैं, वह सबको देखते जानते हैं, अरु उनको चलते बैठते कोऊ नहीं जानते परंतु शीत उष्ण करिकै वहभी दुःख पाते हैं, अरु इच्छा द्वेष लोभ मान मोह क्रोध आदिक विकार उनविषे भी रहते हैं, शीतल जल भले भोजनकी इच्छा वह भी करते हैं, अरु नगरविषे भी रहते हैं, वृक्षविषे भी रहते हैं, दुर्गंध स्थानोंविषे भी रहते हैं, कहूं गीदड होकरि दिखाई देते हैं, कहूं श्वान होकरि दिखाई देते हैं, मनविषे भी जायकरि प्रवेश करते हैं, बहुरि मंत्र पाठ दान आदिककरि वश भी होते हैं, सो भी अपनी अपनी वासनाके अनुसार होता है, इनविषे भी कई उत्तम होते हैं, कई मध्यम होते हैं, कई नीच होते हैं, जो उत्तम हैं सो देवताके स्थानविषे रहते हैं, अरु जो मध्य हैं सो मनुष्यके स्थानविषे रहते हैं, जो नीच हैं सो नरकके स्थानविषे रहते हैं, अरु इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्य तिसते रहितहै, शुद्ध चेतन तिसते हुई है ॥ हे रामजी! सबका अपना आप वही चेतनसत्ता है, कल्पवृक्षकी नाईं उसविषे जैसी जैसी वासना होतीहै, तैसा तैसा पदार्थ हो भासता है ॥ हे रामजी! न कहूं पिशाच है, न जगत् है, ब्रह्मसत्ताही ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, शुद्ध आत्मत्वमात्रविषे जो किंचन हुआ है, जो अहं होकरि फुरा है, तिसको जीव कहते हैं ॥ तिस अहंकी दृढता करिकै मन फुरा है, सो मन ब्रह्मारूप होकरि स्थित भया है, तिस

ब्रह्माने मनोराज्यकरिकै आगे जगत् उत्पन्न किया है, ब्रह्माही जगत्-रूप होकरि स्थित भया है, सो ब्रह्माविषे ब्रह्माही स्थित है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है, केवल आकाशरूप है, तिसके दृढ संकल्प करि अधिभूत जगत् दृढ भया है, तिसी मनते अपर मन हुआ है ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है, तैसे सबका शरीर अंत-वाहक है, परंतु संकल्पकी दृढताकरिकै अधिभूत भासता है, सब मनरूप है; परंतु दीर्घकालका स्वप्न सो जाग्रत् होकरि स्थित भया, तिसकरिकैदृढ भासता है, जिनोंको संकल्प ब्रह्मशरीरविषे अहंकार है, तिन अज्ञानीको जगत् अधिभूत भासता है; अरु जो प्रबोधरूप हैं, तिनको सब जगत् संकल्परूप है, अरु वास्तवते कहै, तौ उपजा कछु नहीं, न तू है, न मैं हौं, न ब्रह्मा है, न जगत् है, सर्वही ब्रह्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्य-ताविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्म शब्द अरु जगत् दोनों अज हैं, न ब्रह्महि उपजा है, न जगत् उपजा है, दोनों ब्रह्मरूप हैं, जो ब्रह्मते इतर भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, हे रामजी ! पंचभूत अरु छठा मन इनका नाम जगत् है, जबलग यह भूत उसविषे दृष्टि आते हैं, तबलग भ्रांति है, जब इनते रहित केवल चेतन भासै, तब इसीका नाम परमपद है ॥ हे रामजी ! जब आत्मप-दविषे जागैगा, तब पंचभूत भी आत्माते इतर भासैंगे, सबका अधिष्ठान चेतनसत्ता है, जबलग आत्माका प्रमाद है, तबलग संसारभ्रम न मिटै-गा, अरु सब जगत् निराकार संकल्पमात्र है, परंतु संकल्पकी दृढताक-रिकै आकाशविषे स्थूल भूत दृष्टि आते हैं, ज्ञानकालविषे और अज्ञान-कालविषे भी जगत् उपजा नहीं, परंतु अज्ञानीके हृदयविषे दृढ भासताहै, जैसे किसीने मनोराज्यकरिकै नगर रचा होवै, सो उसीके हृदयविषे है, अपर कहूं नहीं भासता, तैसे जबलग अज्ञान निद्राविषे सोया है, तबलग जगत् भासता है, जब जागैगा तब आकाशरूप देखेगा ॥ हे रामजी ! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता, जबलग स्वरूपका प्रमाद नहीं भया, तबलग ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माको नहीं बंधन करता, स्वरूपकी

अहंप्रत्ययकरिकै तौ संकल्परूप है, अपर दूसरी वस्तु सत्य कछु नहीं, आत्माही है, वास्तवते न जगत्की आदि है, न मध्य है, न अंत है, न जगत्का होना है, न अनहोना है, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! सो सर्वात्मा है, तौ रागद्वेष किसका होवै, सब अपना आपही है, अपना आप जो आत्मतत्त्व है, तिसका किंचन संवेदन फुरणे करिकै जगत्रूप होके स्थित भया है, जैसे किसी पुरुषने मनोराज्य करिकै एक स्थान रचा, जब उसविषे दृढभावना हुई, तब अधिभूत भासने लगजाता है, तैसे यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्प है, चंद्रमा सूर्य अग्नि रुद्र वरुण कुबेर आदिक सब संकल्परूप हैं संकल्पकी दृढताकरिकै अधिभूत पडे भासते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी एक ताल है, तिसविषे चेतनरूपी जल है, तिसविषे फुरणेरूपी चिकड है, तिसविषे चौदह प्रकारके भूतजात दर्दुर रहते हैं, सो संकल्पमात्र हैं ॥ हे रामजी ! आकाशविषे एक आकाश क्षत्र है, तिसविषे शिला उत्पन्न होती है, स्वर्गलोक देवता बडी शिला है, एक तिनविषे उज्वल शिला है सो ज्ञानवान् है, मध्यम शिला मनुष्यलोक है, तिर्यक् आदिक योनी नीच शिला हैं, सो सबही निर्बीज हैं, अर्थ यह कि कारणते रहित हैं, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है, कछु उत्पन्न नहीं भया, परंतु भ्रांतिकरिकै भिन्न भिन्न पडा भासता है, जैसे फेन बुद्बुदे तरंग सब जलरूप हैं, तैसे यह जगत् सब आत्मरूप है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि अकारणरूप होती है, जैसे संकल्प, सृष्टि कारणविना होती है, तैसे यह जगत् कारणविना संकल्पते उत्पन्न हुआ है, जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हुआ है, तैसे पिशाच भी उदय हुए हैं ॥ हे रामजी ! जैसा किंचन आत्माविषे होता है, तैसा होकरि भासता है, वास्तवते पृथिव्यादिक तत्त्व कहूं नहीं, न कहूं ब्रह्मा उपजा है, न कोऊ जगत् उपजा है, सब भ्रममात्र है, जेते कछु वपु भासते हैं, सो सब निर्वपुहैं, चेतनता करिकै फुरेहैं, सब जीवका आदि अंतवाहक शरीर है, जैसे ब्रह्माका अंतवाहक शरीर था, तैसे सर्व जीवका अंतवाहक शरीर होता है, परंतु संकल्पकी दृढता करिकै अधिभूत हो भासता है,

अरु सब जीवका अपना अपना भिन्न संकल्प है, तिसके अनुसार अपनी सृष्टि होती है, अरु जो तू कहै भिन्न भिन्न है तौ जीव इकट्ठे क्यों दृष्ट आते हैं, ऐसा चहिए जो अपनी अपनी सृष्टिविषे होवैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे एक नगरवासी अपर नगरविषे जावै अरु एक नगरवासी अपरविषे आवै, दोनों जाय इकट्ठे बैठैं, तैसे सब जीव इकट्ठे भासते हैं, तिनके इकट्ठे हुए उसकी सृष्टि वह नहीं देखता, अरु उसकी सृष्टि वह नहीं देखता, जैसे स्वप्नविषे भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं; अनुभवविषे इकट्ठे दृष्ट आते हैं, अरु एक अनुभवविषे भिन्न भिन्न होते हैं; एक दूसरेकी सृष्टिको नहीं जानते, जीव अंतवाहक भूलि गया है, अधिभूत दृढ हो रहा है, जैसा अनुभवविषे अभ्यास होता है तैसाही भासता है, जहां पिशाच होता है, तहां अंधकार भी होता है जो मध्याह्नका सूर्य उदय होवै अरु पिशाच आगे आवै तौ अंधकार हो जाता है, ऐसा तमरूप होता है, जैसे उलूकादिकको प्रकाशविषे अंधकार होता है, तैसे अनेक सूर्यका प्रकाश होवै तौ भी पिशाचका अंधकारही रहता है ॥ हे रामजी ! जैसा उनविषे निश्चय होता है, तैसाही भान होता है, काहेते जो उनका ओज तमरूप है, जैसा किसीका निश्चय होता है, तैसा भासता है, हमको तौ सदा आत्माका निश्चय है, ताते सदा आत्मतत्त्वका भान होता है, जैसे पिशाच पांचभौतिक शरीरते रहित चेष्टा करते हैं, तैसे मैं पांचभौतिक शरीरते रहित आकाशविषे चेष्टा करता रहा हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचमःसर्गः २०५॥

द्विशताधिकषष्ठः सर्गः २०६.

अन्तरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं, सो पांचभौतिक शरीरते रहित अंतवाहक शरीरसाथ विचरता रहा हौं, परंतु मुझको देखै कोऊ नहीं, चंद्रमा सूर्य इंद्र जो सहस्र नेत्रवालेहैं, अरु सिद्ध गंधर्व ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्रह्मा विष्णु रुद्र भी इस चर्मदृष्टिसाथ देखि कोऊ न सकै,

अरु मैं सबको देखता फिरौं, इंद्रके निकट जायकरि मैं उसके अंग हिलावत भया, परंतु मुझको जानै नहीं, जैसे संकल्पनगर किसको हिलावै, अरु वह देखै, अरु आधिभौतिक शरीर न हलै, तैसे उनके शरीर मेरे हिलावनेकरि हिले नहीं, तब मैं अतिमोहको प्राप्त भया कि बडा आश्चर्य है, एता काल मैं रहा अरु मुझको देखि कहूँ नहीं सकता, तब यह इच्छा मैं करी कि मुझको देखै, तब मेरा जो सत्यसंकल्प रूप था तिसकरि देखने लगे, जैसे कहूँ इंद्रजालको देखै तैसे मुझको देखने लगे, जिनने पृथ्वीते उपजा देखा तौ पृथ्वीते उपजा वसिष्ठ जानैं,मनुष्यलोकविषे कई जलते उपजा जानैं, जो वारंवार वसिष्ठ है, जिन ऋषीश्वरने तीर्थ जो जलरूप है, तिनते उपजा देखा ताते वारिवसिष्ठ जाना, कि यह वारिवसिष्ठ है,कई वायुते उपजा जानैं सिद्धादिक कई जानैं कि यह सप्तर्षिके मध्य वसिष्ठ है,जो तेज वसिष्ठ है, इसप्रकार जगत्‌विषे मुझको देखने लगे, तब सबसाथ व्यवहार करने लगा, जब बहुत काल व्यतीत भया तब भावनाकी दृढता करिकै पांचभौतिक शरीर मुझको देखते भये, प्रथम वृत्तांत सबको विस्मरण हो गया, अधिभौतिकता दृढ होत भई, जैसे अज्ञान करिकै स्वप्ननरको आधिभौतिक देखता है; तैसे मेरे साथ आकारको देखते भये, अरु मुझको सदा अपने स्वरूपाविषे अहंप्रत्ययते इतर द्वैत कछु भासता न था, काहेते कि मैं ब्रह्मरूप हौं, अरु वसिष्ठ नाम मेरा ऐसा है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, सो मैं चिदाकाशरूप हौं, अरु अपरको वसिष्ठप्रतीत उपजी है ॥ हे रामजी! जैसे तुमसारखेको मेरा आकार दृष्ट आता है, अरु मुझको आधिभौतिक अंतवाहक दोनों शरीर चिदाकाशका किंचन भासता है, मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हौं, चेष्टा तुम्हारी हमारी समान है, परंतु मुझको सदा आत्मपदका निश्चय है, इस कारणते मैं जीवन्मुक्त होकरि विचरता हौं, अज्ञानीको क्रियाविषे द्वैत भासता है, अरु हमको क्रियाविषे भी अद्वैत भासता है, ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है, अरु तिसका संकल्प जो जगत् है सो भी ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं, भिन्न

कछु नहीं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, भिन्न कछु नहीं सर्व ब्रह्महीं है, ताते मैं चिदाकाशरूप हौं, द्वैत कछु नहीं फुरता, जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकरि भासता है, जैसे अहंके फुरणेते स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे जाग्रत्सृष्टि होती है सो संकल्पमात्र है, ब्रह्मा अरु ब्रह्माका जगत् संकल्पकी दृढताकरिकै आधिभौतिककी नांई हो भासता है, वास्तवते न ब्रह्मा उपजा है, न जगत् उपजा है, चिदानंद ब्रह्म अपने आपविषे स्थित है, सदा एकरस है ॥ हे रामजी ! सृष्टिकी आदि अरु प्रलयपर्यंत जो कछु क्षोभ है, तिसविषे आत्मा सदा एकरस है, उसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, काहेते कि वास्तव कछु उपजा नहीं, अरु जो कछु भासता है, सो अज्ञानकरिकै सिद्ध है, ज्ञानकरि जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे इसको कहूं निधि भासी, तिसके प्राप्ति निमित्त यत्न करता है, अरु जब जागा तिसको स्वप्न जाना, बहुरि तिसके पानेका यत्न नहीं करता, तैसे जब आत्मबोध इसको हुआ, तब फेरि इस जगत्विषे जगत्बुद्धि नहीं रहती, अज्ञानही जगत्भ्रमका कारण है, तिस अज्ञानकी निवृत्तिका उपाय यही है, कि इस महारामायणका विचार करना, तिसकरि संसारभ्रम निवृत्त होवैगा, यह संसार अविद्याकरि वासनामात्र है, इसको सत्य जानिकरि जो इसकी ओर धावते हैं, सो परमार्थते शून्य हैं, अरु मूढ हैं, कीट हैं, अरु वानरकी नांई चंचल हैं, जिनको भोगविषे सदा इच्छा रहती है, सो नीच पशु हैं, तिनको संसार निवृत्त होना कठिन है, तृष्णा अंतर सदा रहती है, वैराग्यको नहीं, प्राप्त होते ॥ हे रामजी ! भोग तौ ज्ञानवान् भी भोगते हैं, परंतु भोगबुद्धिकरि नहीं भोगते, प्रवाहपतित जो कछु प्रारब्धवेग करिकै आनि प्राप्त होता हैं, तिसको भोगते हैं, अरु जानते हैं कि गुणविषे गुण वर्त्तते हैं, अरु इंद्रियोंसहित भोगको भ्रांतिमात्र जानते हैं, अरु जो अज्ञानी सो आसक्त होकरि भोगते, अरु तृष्णा करते हैं, भोगकी तृष्णाकरि अंतर जलता है, इसीका नाम बंधन है, अरु भोग दुःखरूप हैं, जो इनको सेवते हैं, सो अंतरते सदा तृष्णाकरि जलते हैं, तिनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता, अरु जो ज्ञानवान् हैं, सो सदा आत्माकरि तृप्त रहते हैं, ताते शांतरूप हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे पदार्थ शीतल हो जाता है,

तैसे आत्मज्ञानकरि अंतर शीतल हो जाता है, अरु आत्मानंदकी प्राप्ति होती है, दुःख कोऊ नहीं रहता, अरु जिनका चित्त सदा स्त्री पुत्र धनविषे आसक्त है, अरु इच्छा करते हैं, सो महामूर्ख हैं, अरु नीच हैं, तिनको धिक्कार है, जिसको आत्मपदकी इच्छा होवै, तिसको सदा संतनका संग करना चाहिये, सो शास्त्रोंका श्रवण विचार करै, इस अभ्यासकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामचंद्र ! यह शास्त्र विचार कियेते परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जो पुरुष इस शास्त्रको त्यागिकरि अपरकी ओर लगते हैं, सो मूर्ख हैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सर्व श्रोता परस्पर नमस्कार करि गये, बहुरि सूर्यकी किरणैं उदयकरि आनि स्थित भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिक षष्ठः सर्गः ॥ २०६ ॥

द्विशताधिकसप्तमः सर्गः २०७.
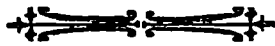
जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुझको अंतरोपाख्यान श्रवण कराया है, तिसके विचारते जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, ऐसे जब तू विचारकरि देखैगा, तब अनंत ब्रह्मांड आत्माविषे वसते दृष्ट आवैंगे ॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं हुआ, ताते मिटना भी नहीं, चित्तके फुरणेकरि भासता है, जब चित्तका फुरणा अधिष्ठानविषे लीन हो जावैगा, तब अद्वैत तत्त्व आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! अद्वैत तत्त्वविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सदा अद्वैत भासता है, जगत् भी सब चिदाकाशरूप है, मैं भी चिदाकाश हौं, तू भी चिदाकाश है, आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही जगत् होकरि भासती है, जैसे अपना अनुभव स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि हो भासती है, सो अनुभवरूपही है, तैसे यह जगत् भी चिदाकाशरूप है, नानाप्रकारके विकार भी दृष्ट आते हैं, तौ भी आत्मसत्ता अनुस्यूत अखंडरूप है,

आत्मसत्ता अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्मही चेतनता-करिकै जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपनेही अनुभवते वृथा हो भासते हैं, सो इतर कछु हुए नहीं, अनुभवते जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् अरु अनुभव तीनों-विषे भेद कछु नहीं, असम्यक् दृष्टिकारि भेद भासता है, सम्यक् दृष्टिकारि भेद कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे प्रथम आभास फुरा है, सो ब्रह्मरूप होकरि स्थित भया है, सो ब्रह्मा चिदाकाशरूप है, सोई ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उसी ब्रह्मसत्ताने अपने भावको नहीं त्यागा, अरु ब्रह्मरूप होकारि स्थित भई है, बहुरि तिसने जगत् रचा है, सो जगत् भी आकाशरूप है, वास्तवते न जगत् उपजा है, न ब्रह्मा उपजा है, न स्वप्न हुआ है, परमार्थसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, सो शुद्ध अनंत अविनाशी है, अचेत चिन्मात्र है, अरु जगत् भी वही स्वरूप है ॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं, न मेरेसाथ कोऊ आकार है, न मैं कदाचित् उपजा हौं, न मैं कदाचित् मृतक होता हौं, नित्य शुद्ध अजर अमर सदा अपने स्वभावविषे स्थित हौं, अनेक विकारविषे भी एकरस हौं, जैसे स्वप्नविषे बडे क्षोभ होते हैं, तौभी जाग्रत् वपुको स्पर्श नहीं करते, काहेते जो उसविषे कछु हुए नहीं, आभासमात्र है, तैसे जग-त्‌की उत्पत्ति प्रलयादिक क्षोभविषे आत्मसत्ताको स्पर्श नहीं, अर्थ यह कि क्षोभते रहित सदा अनुभवरूप है, जिस पुरुषने ऐसे अनुभवको नहीं पिछाना, जो सब कछु जिसकारि सिद्ध होता है, अरु तिसको छुपाया है, सो महामूर्ख है, वह आत्महत्यारा है, वह महाआपदाके समुद्रविषे डूबैगा, अरु जिसको अपने स्वरूपविषे अहंप्रत्यय हुई है, तिसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता जैसे पर्वतको चूहा नहीं चूर्ण करिसकता तैसे उसको दुःख नहीं स्पर्शकरता, अरु जिसको आत्माविषे अहंप्रत्यय नहीं, तिसको शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे वायु विरोलेविषे तृण उडाहुआ स्थिर नहीं होता, तैसे देहाभिमानीको शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, अपने शुद्ध स्वरूपको त्यागिकरि देहसाथ आपको मिलाहुआ जानता है, सो क्या

करता है, जैसे कोऊ चिंतामणिको त्यागिकरि राखको अंगीकार करै, तैसे शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूपको त्यागिकरि देहविषे आत्मअभिमान करता है, हे रामजी ! जब यह पुरुष अनात्मविषे आत्मअभिमान करता है, तब आपको विचारवान् जानता है, अरु जन्मता मरता आपको मानता है, अरु जब देहाभिमानको त्यागिकरि आत्माको आत्मा मानता है, तब न जन्मता है, न मरता है, न शस्त्रकरि कटता है, न अग्निकरि दग्ध होता है, न जलकरि डूबता है, न पवनकरि सूखता है, निराकार अविनाशी चिदाकाशरूप है ॥ हे रामजी ! जब चेतनको भी मृत्यु होवै, तब पिताके मरे पुत्र भी मर जावैं, एकके मरे सब जगत् मरि जावै, काहेते जो आत्मसत्ता चेतन एक है, अनुस्यूत है, सो एकके मरे सब नहीं मरते ताते चेतन आत्माको मृत्यु कदाचित् नहीं, शरीरके काटेते आत्मा कटता नहीं, शरीरके दग्ध हुए आत्मा दग्ध होता नहीं, संपूर्ण विश्व भस्म हो जावै तौ भी आत्मा भस्म नहीं होता, आत्मा नित्य शुद्ध अनंत अच्युतरूप है, कदाचित् स्वरूपते अन्यथाभावको नहीं प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! मैं ब्रह्म हौं, अहंरूप हौं, अर्थ यह कि सबविषे अहंरूप निराकार अंड मैं हौं, न मुझको जन्म है, न मृत्यु है, सुखकी इच्छा नहीं, न कछु हर्ष है, न शोक है, न जीवनेकी इच्छा है, न मरणेकी इच्छा है, जैसे जेवरीविषे सर्प कल्पते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पते हैं, तैसे आत्माविषे वसिष्ठ नाम रूप हैं, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध बोधरूप हौं, सर्वका स्वरूप आत्मतत्त्व है, परंतु वास्तवस्वरूपके प्रमादकरिकै अपर अवस्तुको प्राप्त हुयेकी नाईं भासता है, अरु जो पुरुष स्वरूपविषे स्थित नहीं हुए; संसारमार्गकी ओर दृढ भये हैं, तिनका जीना वृथा है, कहना चैतन्य है नहीं तौ पाषाणकी शिलावत् है; जैसे लुहारकी खलकाते पवन निकसता है, तैसे उनका जीना वृथा है, घटीयंत्रकी नाईं वासनाविषे भटकते हैं, आत्मानंदको नहीं प्राप्त होते, सदा तपते रहते हैं, अरु जिनको आत्मपदविषे स्थिति भई है, तिनको दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता, जब प्रलयकालका पवन चलै, अरु पुष्कर मेघकी वर्षा होवै, वडवाग्नि लगै, अरु द्वादश सूर्य तपैं तौ ऐसे क्षोभविषे भी

चलायमान नहीं होता, काहेते कि सर्व ब्रह्मस्वरूप जानता है, जैसे तृणकरि पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे वह बडे दुःखकरि भी चलायमान नहीं होता, दुःख तब होता है,जब आत्माते इतर कछु भासता है, सो उसको आत्माते इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! यह सब जगत् आत्मअनुभवरूप है, काहेते जो परमात्माका स्वरूप है, स्वप्नविषे अनुभवते इतर कछु वस्तु नहीं होती, इसीकारणते सब जगत् अनुभवरूप है, अरु जो इतर भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, यह जगत् जो नानाप्रकारका भासता है, सो आत्माविषे अव्यक्तरूप है, भ्रमकरिकै प्रगट भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि सिद्ध है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तवते ब्रह्मते इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही जगत्रूप होकरि भासती है, तिसविषे जैसाजैसा निश्चय होता है,तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है, अरु जिनके कारण करिकै सृष्टिका अधिष्ठान दृढ हो रहा है, तिनको तैसाही भासता है, जिनको परमाणुते सृष्टि उत्पत्ति निश्चय भई है, तिनको तैसेही सत्य भासती है, माध्यमिक सत्य असत्यके मध्य वस्तुको मानते हैं, एक म्लेच्छ हैं चार्वाकी, सो चारौं तत्त्वते सृष्टिकी उत्पत्ति मानते हैं, बौद्ध कहते हैं जो कछु वस्तु है सो बोध है, इसके अभाव हुए शून्यही रहता है, एक अनेक ब्राह्मण हस्ती गौ श्वान घोडा सूर्यादिकविषे भिन्न भिन्न प्रतीति होरही है,जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं सो सर्वविषे एक ब्रह्मसत्ताअनुस्यूत देखते हैं ॥ हे रामजी! वस्तु तौ एक है, तिसविषे जैसा निश्चय जिसका भया है, तैसाही भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरुविषे जैसी भावना करीजाती है, तैसा रूप हो भासता है ॥ हे रामजी! बुद्धिमान्करि निर्णय किया है, कि सारभूत आत्मसत्ता है, जब तिसविषे दृढ अभ्यास करैगा, तब आत्मसत्ताही भासैगी, तिस निश्चयकरि चलायमान न होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बुद्धिवान् कौन हैं, जगत्विषे पातालविषे कौन हैं, भूतलविषे कौन हैं, स्वर्गविषे कौन हैं,जिनके पूर्वापरके विचारकरि परावरका साक्षात्कार हुआ है, अरु आत्मस्वरूपका कैसा निश्चय करते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है सो इंद्रियोंके विषयकी तृष्णाकरि जलते हैं,

इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक करते हैं, ऐसा कोऊ जो जगत्‌विषे सूर्यकी नाईं प्रकाशता है, नहीं तौ सब तृणवत् भोगरूपी वायुविषे भटकते हैं, जो सबते श्रेष्ठ कहाता है, सो भी विषयरूपी अग्निविषे जलता है, जैसे कृम अरु शुभ स्थानविषे रहते हैं, अरु तिनकरि आपको प्रसन्न मानते हैं, तैसे देवता भी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानविषे आपको प्रसन्न मानते हैं, सो मेरे मतविषे दुर्गंधके कृमि हैं, अरु गंधर्व तौ मूढ हैं, तिनको तौ कछु शुद्धि नहीं, अर्थ यह कि, आत्मपदकी गंध भी नहीं, वह तौ मेरे मतविषे मृग हैं, जैसे मृगको रागकरि आनंद भासता है, तैसे गंधर्व रागकरि उन्मत्त रहते हैं, आत्मपदते विमुख हैं, अरु विद्याधर भी मूर्ख हैं, काहेते कि, वेदके अर्थरूपी चतुराईको अग्निविषे जलाते हैं, अरु वेदका सारभूत अमृत है, तिसको नहीं जानते, आत्मपदते विमुख हैं, अरु सिद्ध हैं, सो मेरे मतविषे पक्षी हैं, जो पक्षीकी नाईं उडते फिरते हैं, अभिमानरूपी पवनके चलनेकरि अनात्मरूपी गर्त्तविषे आनि पडते हैं, वास्तवस्वरूपविषे स्थित होते नहीं, अरु यक्ष धनके अभिमानकरि चतुराई मूर्खकी प्रीतिकरिकै जलते हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पाते, योगिनी भी मदकरिकै सदा उन्मत्त रहती हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पातीं, अरु दैत्योंको भी सदा देवताके मारनेकी इच्छा रहती है, सदा शोकमें रहते हैं, आत्मपदते विमुख हैं, तुम तौ आगे भी जानते हौ, आगे भी मारे हैं, अरु अब भी मारौगे, अरु मनुष्य भी आत्मपदते गिरे हुए हैं, इनको भी सदा इच्छा रहती है, कि गृह बनाइये अरु खाने अरु धन संचनेके निमित्त जगत् करते हैं, इंद्रियोंके अर्थविषे डूबे हुए हैं, अरु पातालविषे नाग रहते हैं, जिनका जलविषे निवास है, सुंदर नागिनीविषे आसक्त रहते हैं, सो भी आत्मानंदते गिरे हुए हैं, इत्यादिक जो भूतप्राणी हैं, सो विषयसुखविषे लगे हुए हैं, आत्मपदते विमुख हैं, अरु सब जातविषे विरले जीवन्मुक्त भी हैं, अरु ज्ञानवान् भी हैं, सो श्रवण करु. देवताविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र सदा आत्मानंदविषे मग्न हैं, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इंद्र, धर्म राजा, वरुण, कुबेर; बृहस्पति, शुक्र, नारद, कचते आदि लेकरि जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सप्त

ऋषि अरु दक्ष प्रजापतिते आदि लेकरि जीवन्मुक्त हैं, सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार चारौ जीवन्मुक्त हैं, अपर भी मुक्त बहुत हैं, सिद्धविषे कपिलमुनि आदिक जीवन्मुक्त हैं, यक्षविषे विद्याधरविषे योगिनीविषे जीवन्मुक्त हैं, अरु दैत्यविषे हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि, बिभीषण, इंद्रजित, स्वरमेय, चित्रासुर, नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं, मनुष्यविषे राजर्षि, ब्रह्मर्षि, नागविषे शेषनाग, वासुकि आदिक जीवन्मुक्त हैं ॥ ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक हैं कोई कोई विरले जीवन्मुक्त हैं ॥ हे रामजी ! जाति जातिविषे संक्षेपते तुझको जीवन्मुक्त हुए हैं, सो कहे हैं, अरु जहां जहां देखा है, तहां तहां अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोऊ विरला दृष्ट आता है, जैसे जहां तहां अपर वृक्ष बहुत हैं, परंतु कल्पवृक्ष कोऊ विरला होता है, तैसे संसारविषे अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोऊ विरला है ॥ हे रामजी ! शूरमा अपर कोऊ नहीं, जिसको आत्मपदविषे स्थिति भई है, सोई शूरमे हैं, अरु संसारसमुद्र तरणा तिनहींको सुगम है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तमः सर्ग ॥ २०७ ॥

द्विशताधिकाष्टमः सर्गः २०८.

जीवन्मुक्तव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त हैं, जिनको स्वरूपविषे स्थिति भई है, तिनके एते विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार स्वाभाविक निवृत्त हो जाता है, जैसे बाणको देखिकारि कौआ भागि जाता है, तैसे विवेकरूपी बाणको देखिकारि विकाररूपी कौए भागि जाते हैं, अरु एते गुण उनके हृदयविषे स्वाभाविक आनि स्थित होते हैं, वह पुरुष किसीपर क्रोध नहीं करता, अरु जो करते दृष्ट आते हैं, सो किसी निमि-

त्तमात्र जानना, उनके हृदयविषे कछु नहीं, सदा शीतलता अरु दया उनके हृदयविषे रहती है, जो कोऊ उनके निकट आता है, सो भी शीतल हो जाता है, काहेते जो निरावरण स्थित हैं, जैसे चंद्रमाके निकट आयेते शीतल होता है, तैसे ज्ञानवान्‌के निकट आयेते हृदय शीतल होता है, कोऊ पुरुष उनते उद्वेगवान् नहीं होता, अरु जो कोऊ निकट आता है, तिसको विश्रामके निमित्त स्थान देते हैं, अरु उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं, जैसे कमलके निकट भँवरा जाता है तिसको विश्रामका स्थान देते हैं, अरु सुगंधिकरि तिसका अर्थ पूर्ण करते हैं; तैसे संतजन अर्थ पूर्ण करते हैं अरु यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं, अरु हेयोपादेयकी विधिको भी जानते हैं, जो कछु स्वाभाविक आनि प्राप्त होवै, तिसको शास्त्रकी विधि सहित अंगीकार भी करते हैं, अरु हृदयविषे सबकी भावनाते रहित हैं, अरु दान स्नान आदिक शुभ क्रिया तिनविषे स्वाभाविक होती हैं, अरु उदारता वैराग्य धैर्य शम दम आदिक गुण उनविषे स्वाभाविक होते हैं, इस लोकविषे भी सुख देनेहारे हैं, परलोकविषे भी सुख देनेहारे हैं ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंविषे ऐसे गुण पाइये सो संत हैं; संसारसमुद्रके पार करनेहारे संतजन बहुत हैं, जैसे जहाजको आश्रय करके समुद्रते पार होता है, तैसे संसारसमुद्रके पार करनेहारे संतजन हैं, जिनको संतजनका आश्रय हुआ है, सो तरे हैं, बहुरि कैसे हैं संतजन, जो संसारसमुद्रके पारके पर्वत हैं, जैसे समुद्रविषे बहुत जल होता है, अरु बडे तरंग उछलते हैं, तिसविषे बडे मच्छ रहते हैं, जब प्रवाह उछलता है, तब पर्वत उस प्रवाहको रोकता है, उछलने नहीं देता, तैसे चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे इच्छारूपी तरंग हैं, रागद्वेषरूपी मच्छ रहते हैं, जब इच्छारूपी तरंगका प्रवाह उछलता है, तब संतरूपी पर्वत तिसको रोकते हैं, सो संत अपने चित्तको भी रोकते हैं, अरु उनके निकटको जाता है, तब उसकी भी रक्षा करते हैं, अरु शरीर नष्ट होने लगै, अथवा नगर नष्ट होने लगै, अथवा निकट अग्नि लगै तौ भी ज्ञानवान्‌का हृदय स्वरूपते चलायमान नहीं होता, वह सदा अपने स्वरूपविषे स्थिर रहता है, जैसे भूकंपकरिकै सुमेरु चलायमान नहीं होता, तैसे वह नहीं चलायमान होता, यह जो मैं तुझको शुभ गुण कहे हैं, स्नान दान

सो जीवको सुख देनेहारे हैं, अरु दुःखको निवृत्त करते हैं, इनकरि सुखकी प्राप्ति होती है, अरु दुःख नष्ट हो जाता है, सो श्रवण कर, जब स्नानदानकी ओर यह पुरुष आता है, तब संतकी संगतिविषे भी इसका चित्त लगता है, जब संतकी संगतिविषे चित्त आया, तब क्रमकरिकै इसको परमपदकी प्राप्ति होती है, ताते इस पुरुषको यही कर्तव्य है, कि जो शास्त्रकारि कहा है, तिसके अनुसार शुभगुणविषे चेष्टा होवै, अरु संतके निश्चयका अभ्यास होवै ॥ हे रामजी ! जिसको संतकी संगति प्राप्त होती है, सो भी संत हो रहता है, संतका संग वृथा नहीं जाता, जैसे अग्निसाथ मिला पदार्थ अग्निरूप हो जाता है, तैसे संतके संगकारि असंत भी संत हो जाता है, अरु जो मूर्खकी संगति करता है, तब साधु भी मूर्ख हो जाता है, जैसे उज्वल वस्त्र मलके संगकारि मलिन हो जाता है, तैसे मूढके संगकारि साधु भी मूढ हो जाता है, काहेते जो पापके वशते उपद्रव भी आनि होते हैं, तैसे पापके वशते साधुको भी दुर्जनोंकी संगतिकारि दुर्जनता आनि उदय होती है, ताते ॥ हे रामजी ! दुर्जनोंकी संगति सर्वथा त्यागनी है, अरु संतकी संगति कर्तव्य है, जो परमहंस संतजन पाइये तौ जो साधु होवै जिसविषे एक गुण भी शुभ होवै, तिसका भी अंगीकार करिये परंतु साधुके दोष न विचारिये, उसका शुभ गुण अंगीकार करिये, जैसे भँवरा केतकीके कंटकके ओर नहीं देखता है, उसकी सुगंधका ग्रहण करता है, ताते ॥ हे रामजी ! संसारमार्गको त्यागिकरि संतकी संगति करौ, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिव्यवहारो नाम द्विशताधिकाष्टमः सर्गः ॥ २०८ ॥

द्विशताधिकनवमः सर्गः २०९.

परमार्थरूपवर्णनम् ।

राम उवच ॥ हे भगवन् ! हमारे दोष तौ सच्छास्त्र अरु सत्संग अरु तिनकी युक्तिकारि दूर होते हैं, अरु समानदुःख तीर्थ स्नान दान जप

पूजाकरि निवृत्त होते हैं, अपर जीव जो कीट पतंग पशु पक्षी आदिक हैं, तिनके दुःख कैसे निवृत्त होवैंगे, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो वास्तवसत्ता है, तिसका नाम ब्रह्म है, अखंड है, अद्वैत है, तिसविषे कछु द्वैतका विभाग नहीं, परंतु तिसविषे चित्त किंचन आभास फुरा है सो फुरणा नानात्व हुएकी नांईं स्थित भया है, वास्तव कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि भासती है, परंतु वास्तव कछु हुई नहीं, निद्रा-दोष करिकै भासती है, तैसे जाग्रतसृष्टि भी कछु वास्तव हुई नहीं, अज्ञानकरिकै जीवको भासती है, वास्तवते सब ब्रह्मरूप है, अपने स्वरूपके प्रमादकरिकै जीवत्वभावको अंगीकार किया है, तिस जीवत्व-के अंगीकार करनेकारि जैसा निश्चय करता है, अनात्मदेहादिकविषे आत्मअभिमान करिकै तैसीही गतिको पाता है; बहुरि देश काल क्रिया द्रव्यका संकल्प जैसा दृढ होता है, अनुभवसत्ताविषे तैसा हो भास-ता है, तिसविषे चार अवस्था कल्पित होती हैं, जैसी जैसी भावना होती हैं, तिसके अनुसार अवस्थाका अनुभव होता है, सो अवस्था कौन कौन हैं, सो श्रवण कर, एक घन सुषुप्ति है, दूसरी क्षीण सुषुप्ति है, तीसरी स्वप्नअवस्था है, चौथी जाग्रत् है, अब इनके भेद सुन ॥ हे रामजी ! पर्वत पाषाण जो हैं, सो घन सुषुप्तिविषे हैं, जैसे सुषुप्तिअवस्थाविषे कछु फुरता नहीं, जड़ीभूत हो जाता है, तैसे तिनको फुरणा कछु नहीं फुरता, घन सुषुप्तिविषे स्थित हैं, अरु वृक्ष क्षीण सुषुप्तिविषे स्थित हैं, जैसे क्षीण सुषुप्तिविषे कछु फुरणा फुरता है, तैसे वृक्षविषे भी फुरणा होता है, ताते क्षीण सुषुप्तिविषे तिर्यग् जो पक्षी कीट पतंग जीव हैं, सो स्वप्न-अवस्थाविषे स्थित हैं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासता है, परंतु दृढ समष्टि नहीं भासता है, तैसे इनको थोडा सूक्ष्म ज्ञान है, ताते स्वप्नअवस्थाविषे स्थित हैं, अरु मनुष्य देवता हैं, सो जाग्रतरूप जगत्का अनुभव करते हैं ॥ हे रामजी ! यह चारों अवस्था आत्माविषे स्थित हैं, अरु आत्म-सत्ताहीविषे स्थित हैं सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है, बड़ेका क्या अरु छोटेका क्या, तिसविषे जैसा संकल्प दृढ होता है तैसाही हो भासता है॥ हे रामजी ! हमको एक दिन व्यतीत होता है, अरु कीटको युगका अनुभव होता है, अरु इनके युगविषे हमको एक क्षणका अनुभव होता है,

अरु हमको सूक्ष्म अणु होता है, तिनको वह पर्वतके समान भासताहै॥
हे रामजी ! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है, परंतु भावनाकारि भिन्न भासता है, अरु एक कीट है, सो बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलता है, तब वह जानता है कि, मेरा गरुडकासा वेग है, उसको वही सत् हो रहा है, अरु वालखिल्यका अंगुष्ठप्रमाण शरीर है, तिनको वही बडा भासता है विराट्को वही अपना बड़ा शरीर भासता है, जैसी जिसको भावना होती है, तैसाही तिसको भासता है, मनुष्य देवता पशु पक्षी सबको अपना भिन्न भिन्न संकल्प है, जैसा संकल्प किसीको दृढ हो रहा है, तिसको तैसाही स्वरूप भासता है, जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक विकारकारि आसक्त होता है, तैसे कीट पतंग पक्षी आदिको भी होते हैं, परंतु एता भेद है कि, जैसे हमको यह जगत् स्पष्ट रूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता, संसारी सब हैं, परंतु वासनाके अनुसार घटवत् भासते हैं, अरु दुःखका अनुभव स्थावर जंगमको भी होता है, जो किसी स्थानको अग्नि लगती है, उसविषे वृक्ष पाषाण जलते हैं, तब उनको भी दुःख होता है, परंतु सूक्ष्म स्थूलका भेद है, जैसे अपर जीवको शस्त्रप्रहार कियेते शरीर नष्ट होनेका दुःख होता है, तैसे वृक्षादिक को भी होता है, परंतु घन सुषुप्ति क्षीणसुषुप्ति स्वप्न जाग्रत्का भेद है, पर्वत पाषाणको सूक्ष्म जैसा दुःख होता है, वृक्षको पाषाणते विशेष होता है, परंतु स्पष्ट मान अपमानका दुःख नहीं होता; स्वप्नकी नांई होता है, अरु मनुष्य देवताको स्पष्ट रागद्वेष जाग्रत्की नांई होता है, काहेते जो जाग्रत् अवस्थाविषे स्थित हैं, अरु वृक्ष पाषाण आदिकको स्पष्ट दुःखका विकल्प नहीं उठता, जडता स्वभावविषे स्थित है, अरु दुःख कहिये तौ सबको होता है, अरु तू अपर आश्चर्य देख कि, कीट महादुःखी रहते हैं, जब मृतक होवैं तब सुखी होवैं, अरु अज्ञानकरिकै जो इस शरीरविषे आस्था हुई है, तिसको भी मरणा बुरा भासताहै, तौ अपर जीवको भला कैसे लगै ? हे रामजी ! अपने स्वरूपके प्रमाद करिकै भय क्रोध लोभ मोह जरा मृत्यु क्षुधा तृषा राग द्वेष हर्ष शोक इच्छादिक विकारकी अग्निकारि जीव जलते हैं, आत्मानंदको

नहीं प्राप्त होते घटीयंत्रकी नांई वासनाके अनुसार भटकते हैं, जब वासना दृढ पापकी होती है, तब पाषाण वृक्ष योनिको पाते हैं, जब क्षीण वासना तामसी होती है, तब तिर्यक् पक्षी सर्प कीट योनिको पाते हैं॥ हे रामजी! राजसी वासनाकरि मनुष्य होते हैं, सात्त्विकी वासनाकरि देवता होते हैं, अरु जब मनुष्य शरीर धारिकरि निर्वासनिक होते हैं, तब मुक्तिको पाते हैं, जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब जीवका दुःख नष्ट हो जाता है, अपर दुःखके नाश करनेका उपाय कोई नहीं, यह जगत्‌के दुःख तबलग भासते हैं, जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं उपजा, जब आत्मज्ञान उपजा तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, अरु जो मुझते पूछौ तौ वास्तव न कोऊ देवता है, न मनुष्य है, न पशु पक्षी है, न पाषाण है, न वृक्ष है, न कीट है, सब चिदाकाशरूप है, दूसरा कछु बना नहीं, भ्रांतिकरिकै नानास्वरूप हो भासता है, सदा सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! न कछु जगत्‌का होना है, न अनहोना है, न आत्मता है, न परमात्मता है, न मौन है, न अमौन है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अचैत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जन्म अरु जन्मांतर भ्रमकरिकै भासते हैं, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतर भ्रमकरिकै भासता है, अरु जैसे स्वप्नविषे एक अपना आप होता है, निद्रादोषकरि द्वैत भासता है, तैसे एक अब भी आत्मा अद्वैत-रूप है, अविचार करिकै नानात्व भासता है, अरु दुःख भी ज्ञानकरिकै भासता है, विचार कियेते दुःख कछु नहीं पाता, जो यह पुरुष मृतक होकरि उत्पन्न होता है, तौ शांति हुई, दुःख कोऊ नहीं, अरु जो मृतक होकरि शांत हो जाता है, उपजता नहीं, तौ भी दुःख कोऊ नहीं, मुक्त हुआ, अरु जो मरता नहीं तौ भी ज्योंका त्यों हुआ, दुःख कोऊ नहीं हुआ, अरु जो सर्व चिदाकाश है, तौ भी दुःख कोऊ नहीं हुआ॥ हे रामजी! अज्ञानीके निश्चयविषे दुःख है, विचार कियेते दुःख कोऊ नहीं, अरु यह जगत् आत्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित है, परंतु यह जगत्‌रूपी कैसा प्रतिबिंब है, जो अकारणरूप है, इसका कारणरूप बिंब कोऊ नहीं, कारणते रहित है, जैसे नदीविषे नीलताका प्रतिबिंब

पडता है, सो अकारणरूप है, तैसे यह जगत् अकारणरूप है, अज्ञानीको तिसविषे सत्यता है, प्रमाददोषकरिकै ज्ञानीको द्वैत नहीं भासता, अज्ञानीको द्वैत भासता है ॥ हे रामजी ! हमको तौ सदा चिदाकाशही भासता है, हम जागे हुए हैं, ताते द्वैत कछु नहीं भासता, जैसे सूर्यको अंधकार नहीं भासता, तैसे हमको द्वैत नहीं भासता, जो ज्ञानी है, तिसको ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता, सर्व ब्रह्महीं भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनं नाम द्विशताधिकनवमः सर्गः॥२०९॥

शताधिकदशमः सर्गः २१०.

नास्तिकवादनिराकरणम् ।

श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो कछु तुमने कहा है, सो मैं जानता भया हौं, परंतु नास्तिकवादीका कल्याण भी किसीप्रकार होता है, जो नास्तिकवादी कहते हैं, कि जबलग जीव है, तबलग सुखी जीवै, जब मर जावैगा तब भस्मीभूत होवैगा, न कहूँ आना है, न कहूं जाना है, तिनका कल्याण किस प्रकार होवैगा॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता आकाशकी नांई अखंडित सर्वत्र पूर्ण है, जबलग तिसका भान नहीं होता, तबलग मनकी तप्तता नष्ट नहीं होती, जब आत्मसत्ताका भान होता है, तब शांति प्राप्त होती है, आपको अमर जानता है, अरु जिस पुरुषने अखंड निश्चयको अंगीकार किया है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करता, वह ब्रह्मदर्शी होता है, अरु जिसको ब्रह्मसत्ताका निश्चय नहीं भया तिसके मनको ताप नहीं छोडते, स्वरूपके प्रमादकरि आपको मरता जानता है, अरु महाप्रलयरूप आत्माविषे सर्व शब्दका अभावहै, जैसे महाप्रलयविषे सर्व शब्दका अभाव होता है, तैसे आत्माविषे सर्व शब्दका अभाव है, जिसको आत्माविषे निश्चय हुआ है, तिसको सर्व शब्दका अभाव हो जाता है, सो महा ज्ञानवान् है, उसको आत्मसत्ताही भासती है, जो वास्तव है, तिसको हमारा उपदेश नहीं, वह ज्ञानी है॥ हे रामजी!आत्म-

सत्ताविषे द्वैत जगत् कछु बना नहीं, परमार्थसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जो सृष्टि भासती है, सो स्वप्नवत् अकारण है, ताते ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थको नहीं जानता है, ऐसा पुरुष हमारे उपदेशके योग्य नहीं, काहेते कि जो सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत आत्मपद है, जो तिसको जाना है, तिसको बहुरि कर्तव्य कछु नहीं, अरु जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्त भई सो उपदेशका अधिकारी है, अरु यह जगत् आत्माका किंचन है, अज्ञानीको सत् भासता है, अरु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु नहीं, जैसे संकल्पकारि एक वृक्ष रचा, तिसके पत्र टास फूल फल उसको भासते हैं, अपरके मनविषे शून्य होते हैं, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् होता है, ज्ञानीके निश्चयविषे विलास है, आत्माते इतर कछु नहीं॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वव्यापी है, तिसविषे जैसा निश्चयफुरना होता है, अहंप्रत्यय भावनाकी दृढताते तैसे हो भासता है, जिस पदार्थका निरंतर दृढ अभ्यास होता है, शरीरके त्यागे हुए भी यही अभ्यासरूप धारि लेता है, अरु आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है, केवल अद्वैत संवित् सबका अपना आप है, जैसे इसको स्वरूपका ज्ञान हुआ है, सो शास्त्रके दंडते रहित होता है, अरु वेद शास्त्र जो पदार्थको भला बुरा सांच अरु झूठ वर्णन करते हैं, जिस पुरुषको तिसविषे निश्चय होता है, तिसको वासनाके अनुसार वेद फल देते हैं, अरु जिसके निश्चयविषे आत्मते भिन्न सर्व शब्दका अभाव हुआ है, तिसको आत्म अनात्मविभागकलना भी नहीं रहती; देह रहै अथवा न रहै॥ हे रामजी ! जिसकी संवित् जगत्के शब्द अर्थविषे बँधी हुई है, तिसको पदार्थविषे रागद्वेष उपजता है, जैसे सुषुप्तिविषे आत्मसत्ता है, अरु अभावकी नांई स्थित है, तैसे नास्तिकवादी भी अपने जडस्वरूपको देखते हैं, काहेते कि, तिनको जड शून्यका अभ्यास है, तिसकारि उनकी संपत्ति दृश्य सुखसाथ वेधीहुई है, इसकारि तिनका जगत्भ्रम नहीं मिटता, उस मलीन वासनासाथ जो संवित् मिली है, इसकारि उनको जड़ पत्थररूप प्राप्ति होते हैं, तिस जडताको भोगिकारि वासनाके अनुसार बहुरि परिणमैंगे, अरु सुखदुःखको भोगैंगे उस भावनाकारि कछुक जगत्भान शून्य हो जाता है,

केतेक कालपीछे चेतन होकरि बहुरि उनहीं कर्मको भोगते हैं, जैसे सूर्यके आगे बादल आवै, बहुरि निवृत्त होवै, तैसे जगत् होता है, अरु फुरणारूप जो जीव है, जैसा तिसविषे निश्चय होता है, तैसाही भासता है, जिसको एक आत्माविषे निश्चय होता है, सो जन्म मृत्यु आदिक विकारते रहित होता है, अरु जिसको नानास्वरूप जगत्विषे निश्चय होता है, सो जन्ममरणते नहीं छूटता ॥ हे रामजी। जिसबुद्धिविषे पदार्थका रंग चढता है, सो रागद्वेषरूप नरकते मुक्त नहीं होता, अरु जिसको एक आत्माका अभ्यास होता है, तिसके अभ्यासके बलते सब जगत् आत्मत्वकरि भासता है, अरु राग द्वेषते मुक्त होता है, जैसे स्वप्नविषे किसीको अपना जाग्रत् स्वरूप स्मरण आता है, तब सर्व स्वप्नका जगत् तिसको अपना आप भासता है, तैसे जिसको आत्मज्ञान होता है, तिसको सर्व जगत् अपना आप भासता है, सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है,जिसको ऐसे आत्मसत्ताविषे नास्तिभावना होती है, सो ऐसी अवस्थाको प्राप्त होता है, गर्त्तविषे कीट होता है, पाषाण वृक्ष पर्वत आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होता है, चिरकालपर्यंत तिनविषे रहता है, जबलग उसकी बुद्धिको द्वैतका संयोग होता है, तबलग जगत् भ्रमको देखता है, अरु भ्रम नहीं मिटता, जब उसकी संवित्को द्वैतका संयोग मिटि जावै, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! सम्यक्ज्ञानकरि जगत्भ्रमका अभाव हो जावैगा, अभावका निश्चय फुरै, तब बहुरि जगत् नहीं भासता, अरु जब संसारके पदार्थकरि संवित वेधी हुई है, तब जैसा निश्चय होवैगा तैसाही प्राप्त होता है, तिस निश्चयके अनुसार गतिको पावैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! नास्तिकवादीका वृत्तांत तुमने कहा सो मैं जाना, अरु जिस पुरुषके हृदयविषे जगतकी सत्यता स्थित है, अरु आत्मबोधके मार्गते शून्य है, शुद्धस्वरूपको नहीं जानता, तिसको अज्ञान है, तिसके मोक्षकी युक्ति अरु तिसकी अवस्था क्या होती है, सो मेरे दृढबोधनिमित्त कहो ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! इसका उत्तर तो मैं प्रथमही तुझको कहा है, अब फेरि

तुझने जो पूछा है, ताते बहुरि कहता हौं, प्रथम तौ पुरुषका अर्थ सुन; कि पुरुष किसको कहते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् नेत्रविषे स्थित नहीं, न श्रवणविषे है, न नासिका आदि इंद्रियविषे स्थित है, चेतन संवित्‌विषे स्थित है जगत्, सो चेतन संवित्‌ही पुरुषरूप है जिस पुरुषको तिसविषे निश्चय है, सो ज्ञानवान् है, तिसको द्वैतकलना नहीं फुरती, जो प्रत्यक्ष दृष्टि भी आती है, परंतु उसके निश्चयविषे नहीं होती है, जैसे आकाशविषे धूड भी दृष्ट आती है, परंतु स्पर्श नहीं करती तैसे ज्ञानवान्‌को द्वैतकलना स्पर्श नहीं करती, अरु जिस चेतन संवित्‌साथ फुरणेका संबंध है, तिसको जगत्‌का आकार भासता है, अरु जिस पुरुषकी संवित्‌विषे देश काल क्रिया द्रव्यका संबंध है सो कलंक दृढ हो रहा है, अरु अपने वास्तव अद्वैत स्वरूपके अभ्यासकरि मार्जन नहीं करता, सो वास्तव चेतन आकाशरूप भी है, तौभी कलंककरि वासनाके अनुसार जगत् तिसको आपते भिन्न भासता है, द्वैतभ्रम नहीं मिटता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐसा भी है, कि देहके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहता है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों नहीं भासती तौ अज्ञानी है, आत्मसत्ता जाननेविना संसार तिसका निवृत्त नहीं होता, जब आत्मसत्ताका साक्षात्कार होवैगा तब सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी ! यह पुरुष न जीव है, न फुरना है, न शरीरके नाश होनेसे नाश होता है, यह पुरुष केवल चिन्मात्रस्वरूप है, अरु वासनाकरि भ्रमको देखता है, अरु जो शून्यवादी हैं सो वृक्षपर्वत जडादिक योनिको पाते हैं, जो सदा अनुभव तिसको त्यागकरि अपर कछु इष्ट जानते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता, आत्माके प्रमादकरि अहं त्वं अंतर बाहर आदिक शब्द भासते हैं, अरु जब आत्मज्ञान हुआ, तब सर्व शब्द आत्मारूप हो जाताहै, अरु जिन पुरुषोंने आत्मअनात्मका निर्णय करि नहीं देखा, सो पुरुषविषे नीच हैं अरु जिन पुरुषोंने निर्णय करिकै आत्माविषे अहंप्रतीति करी है, अनात्माका त्याग किया है, सो महापुरुष हैं, तिनको मेरा नमस्कार है, अरु जिसने अनात्माविषे आत्माको त्यागिकरि अहंप्रतीति करी

है, सो बालक है, जैसे आकाशविषे बादलके चक्र हस्ती घोडे आकार भासते हैं अरु जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो द्वैत कछु नहीं, जैसे स्वप्नके नगर अपने अपने अनुभवविषे स्थित होते हैं, अरु बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं, सो आभासमात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आभासमात्र है, वास्तव कछु नहीं, जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआ है, तिसको जगत्के शब्द अर्थ राग द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती, पुण्य पाप फल तिसको स्पर्श कछु नहीं करता ॥ हे रामजी ! ज्ञानसंवित्का नाश कदाचित् नहीं होता, ताते विश्व भी अनुभवरूप है, इस जगत्का निमित्तकारण अरु समवायिकारण कोऊ नहीं, काहेते कि अद्वैत है, अरु जो तू कहै प्रत्यक्ष घटादिक समवाय अरु निमित्तकारण उपजते दीखते हैं, तौ जैसे स्वप्नविषे कारण कार्य अणहोते भासते हैं, तैसे यह भी जान, प्रथम स्वप्नविषे बने हुए दृष्ट आते हैं, पाछे कारणकरि होते दृष्टि आतेहैं तैसे यह भी जान, केवल भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नसृष्टिका जागे हुए अभाव होता है, तैसे ज्ञानकरि इसका अभाव हो जाता है, यह दीर्घकालका स्वप्न है, ताते जागृत् कहाता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने आप होती है, निद्रादोष करिकै भिन्न भासती है, तैसे यह जगत् अपना आप है, परंतु अज्ञान करिकै भिन्न भासताहै, ज्ञान जागृत्ते सब अपना भासता है, तिसविषे रागद्वेषका अभाव होजाता है, जैसे चंद्रमा अरु चंद्रमाकी चाँदनीविषे भेद कछु नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, आत्माही जगत्रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! तू अपने अनुभवविषे स्थित होकरि देख, कि सर्व ब्रह्मरूप है, जगत् कछु नहीं भासता, सर्वात्मा रूप है, अरु साध्य है, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे आत्मसत्ता फुरणेरूपी बादलते परम शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे स्थित हुएते मान अरु मोहका अभाव हो जाता है, तृष्णा किसी पदार्थविषे नहीं रहती, प्रारब्धवेगकरि जो कछु आनि प्राप्त होता है तिसको भोगता है, आत्मदृष्टिकरि दुःखते रहित हुआ प्रत्यक्ष

आचारको करता है, तिसको शास्त्रका दंड नहीं रहता, परम शांतरूप विराजता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नास्तिकवादनिराकरणं नाम द्विशताधिकदशमः सर्गः ॥ २१० ॥

द्विशताधिकैकादशः सर्गः २११.

परमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं, अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा, त्रिपुटी जो भासती है, सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्ताही त्रिपुटीरूप हो भासती है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, अरु नास्तिकवादी कहते हैं, कि परलोक कोऊ नहीं, अर्थ यह कि जो आत्मसत्ता कोऊ नहीं, सो मूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! जो अनुभव आत्मसत्ता न होवै तौ नास्तिक किसकरि सिद्ध होवे, जिसकरि नास्तिकवाद भी सिद्ध होता है, सो आत्मसत्ता है, जो इष्टअनिष्ट पदार्थविषे राग द्वेष करते हैं, अरु आत्माका नाश कहते हैं, सो महामूर्ख हैं, जैसे जागृत्के प्रमादकरिकै स्वप्नमें इष्टअनिष्टविषे राग द्वेष करता है, इष्टको ग्रहण करता है, अनिष्टको त्यागता है, अरु जागेते सर्व अपनाही स्वरूप भासता है, ग्रहण त्याग राग द्वेष किसी पदार्थविषे नहीं रहता, तैसे आत्माके अज्ञान करिकै किसी पदार्थविषे राग करता है, किसीविषे द्वेष करता है, जब आत्मज्ञान होता है, तब सब अपनाही स्वरूप भासता है, राग द्वेष किसीविषे नहीं रहता, अरु चित्तके फुरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके शांत हुए जगत् लय हो जाता है, ताते जगत् मनविषे स्थित है, सो मन आत्माके अज्ञानकरि हुआ है, जब आत्मज्ञान हुआ तब मनुष्य देवता हस्ती नाग आदिक स्थावर जंगम सब जगत् आत्मरूप भासताहै, राग द्वेष किसीविषे नहीं रहता, अरु नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं, सो नास्तिका साक्षी सिद्ध होता है, जिसकरि नास्ति भी सिद्ध होता है, सो अस्ति आत्मपद है, तिस अस्ति अनुभवके एते नाम शास्त्रकार कहते हैं, सत्, आत्मा, विष्णु,

शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म अस्मि कहते हैं, एक कहतेहैं, शून्यही रहता है. एक कहते हैं, अस्तिपद रहता है ॥ हे रामजी ! यह सर्व संज्ञा आत्मसत्ताकी हैं, सो आत्मसत्ता अपनाही आप स्वरूप है, सो मैं आत्मा हौं, यह अंग जो मेरेसाथ दृष्ट आते हैं, इनको दृष्ट पदार्थसाथ लेपन करिये अथवा चूर्ण करिये तौ मुझको हर्ष शोक कछु नहीं, इनके बढ़नेकरि मैं बढ़ता नहीं, इनके नष्ट हुए मैं नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी ! तीन शब्द होते हैं, जो मैं जन्मा हौं, अरु जीवता हौं, अरु मरौंगा, जो प्रथम न होवै, अरु उपजै तिसको जन्म कहते हैं, मध्यविषे जीवता कहते हैं, बहुरि नाश होवै तिसको मृतक कहते हैं, सो आत्माविषे तीनों विकार नहीं, आत्मा उपजा भी नहीं, काहेते कि, आदिही सिद्ध है, अरु मृतक भी नहीं होता काहेते कि अविनाशी है, चेतन आकाश सबका अधिष्ठान है, कालका भी अधिष्ठान है, बहुरि तिसका नाश कैसे होवै, अर्थ यह कि, उदय अस्तते रहित है, जिसविषे देश काल जगत्का किंचन होता है, तिसकरि आत्माका नाश कैसे होवै ? ताते आत्मा अविनाशी है ॥ हे रामजी ! जिस वस्तुको देशकालका परिच्छेद होता है, तिसका नाश भी होता है, सो देश काल वस्तु तीनों आत्माविषे कल्पित हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल कल्पित होता है, तैसे आत्माविषे तीनों कल्पित हैं, कल्पित वस्तुसाथ सत्यका अभाव कैसे होवै, ताते आत्मा अविनाशी है, अरु अद्वैत है, तिसविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे शून्य स्थानविषे वैताल कल्पित होता है, तैसे आत्माविषे जगत् कल्पित है, तिस अभावरूप जगत्विषे प्रमादकरिकै एकको अभाव जानता है, एकको सद्भाव जानता हे, जब इस निश्चयको त्यागिकरि अंतरमोक्ष होवै, तब इसको शांति प्राप्त होवैगी, अरु विचार करिकै देखिये तौ इस संसारविषे दुःख कहूं नहीं, जो मरिकै बहुरि जन्म लेता है, तौ भी दुःख कहूं न हुआ, काहेते जो शरीर वृद्धिभावको प्राप्त होकरि क्षीण भया, तब तिसको त्यागिकरि नूतनको ग्रहण किया तो उत्साह हुआ, जो मृतक होकरि बहुरि नहीं उपजता तो भी आनंद हुआ, काहेते जबलग जीता था तबलग इसको ताप था तिसीका भाव जानता था, किसीको ग्रहण करता

था, किसीका त्याग करता था, तिनकरि तपता था, जब तिनते छूटा तब बडा आनंद हुआ, अरु जो सर्व चिदकाशरूप है, तौ भी अपना आप आनंदरूप है, दुःख कछु न हुआ ॥ हे रामजी! एक प्रमादकरि दुःख होता है, अपर किसीप्रकार दुःख नहीं होता, यह जगत् सब आत्मरूप है, जो आत्मरूप हुआ तौ दुःख कैसे होवै, अरु जो तू कहै मैं अपने कर्मते डरता हौं, परलोकविषे मुझको भयका कारण होवैगा ऐसे जान, कि बुरे कर्मका दुःख यहां भी होता है, अरु परलोकविषे भी होवैगा, ताते बुरे कर्म मत करु, मैं तुझको ऐसा उपाय कहता हौं, जिसकरि सर्व दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, सो उपाय यह जो कहौ मैं नहीं अथवा ऐसे जान कि; सर्व मैंही हौं, सर्व वासना त्यागिकरि आपको अविनाशी जान अरु आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, यह जगत् भी सब तेरा स्वरूप है, जब ऐसे आत्माको जानैगा, तब शरीरके त्याग कियेते भी दुःख कोऊ न रहैगा, अरु शरीरके होते भी दुःख कहूँ नहीं, जब पूर्व शरीरको त्यागिकरि नूतन जन्म लिया, तब भी आनंद हुआ, परम शांति प्राप्त भई, अरु जो चिदाकाशरूप है तौ भी परम आनंद हुआ ॥ हे रामजी! सर्व प्रकार आनंद है, परंतु भ्रांतिकरिकै दुःख भासताहै, जब स्वरूपका साक्षात्कार होवैगा, तब सर्व जगत् ब्रह्मानंदस्वरूप भासैगा ॥ हे रामजी! जिसको आत्मसत्ताका प्रकाश है, सो पुरुष सदा आनंदविषे मग्न रहता है, अरु प्रकृत आचारको भी करता है, परंतु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे स्वरूपते चलायमान कदाचित् नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता तैसा ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता परम गंभीरताविषे रहता है, ताते जो कछु आत्माते इतर उत्थान होता है, तिसको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, जो चिन्मात्रसत्ता शरत्कालके आकाशवत् निर्मल है, जब ऐसे स्वच्छ केवल चिन्मात्रका अनुभव होवैगा, तब जगत् द्वैतरूप होकरि न भासैगा, व्यवहारविषे भी द्वैत न फुरैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमोपदेशवर्णनं नाम द्विशताधिकैकादशः सर्गः ॥२११॥

द्विशताधिकद्वादशः सर्गः २१२.

चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनम्।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिन पुरुषोंको आत्मा परमात्माका साक्षात्कार हुआ है, सो कैसे हो जाते हैं, अरु कैसा उनका आचार होता है सो मेरे तांई कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा अरु जैसे उनका निश्चय है, सो सुन, सबके साथ उनका मित्रभाव होता है, पाषाणसाथ भी मित्रभाव होता है, अरु बांधवको ऐसे जानते हैं, जैसे वनके वृक्ष पत्र होते हैं, स्त्री पुत्रादिकसाथ ऐसे होते हैं, जैसे वनके मृग पुत्रसाथ होते हैं, जैसे उनविषे स्नेह नहीं होता, तैसे पुत्रादिकविषे भी स्नेह नहीं करते, अरु जैसे माताकी पुत्रविषे दया होती है, तैसे वह सबके ऊपर दया करते हैं, अरु निश्चयते उदासीन रहते हैं, जैसे आकाश किसीके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे वह स्पर्श किसीसाथ नहीं करते, अरु जेती कछु आपदा हैं, सो उनको परमसुख है, अरु जेते कछु जगत्विषे रस हैं, सो तिनको विरस हो जाते हैं, न किसीविषे राग करते हैं, न किसीविषे द्वेष करते हैं, तृष्णा करते दृष्टभी आते हैं, परंतु अंतरते जड पत्थरकी नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं, परंतु निश्चयते परमशून्य मौन होते हैं, अर्थ यह कि सदा समाधिविषे स्थित होते हैं, अरु सब क्रिया करते दृष्ट आते हैं सो किस प्रकार करते हैं,जो सबको स्तुति करनेयोग्य हैं, यत्नते रहित सब क्रियाका आरंभ करते भी हैं, परंतु निश्चयते सदा आपको अकर्त्ता जानते हैं, अरु जो कछु प्रारब्धवेग करि आनि प्राप्त होता है, तिसको भोगते हैं, अरु देश काल क्रिया सबको अंगीकार करते हैं, अरु जो परस्त्रीआदिक अनिष्ट आय प्राप्त होवै, तिसका त्याग भी करते हैं, परंतु निश्चयते सदा अकर्त्ता ज्योंके त्यों रहते हैं, अरु सुखदुःखकी प्राप्तिविषे समबुद्धि रहते हैं, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरते हैं, परंतु स्वरूपते कदाचित् चलायमान नहीं होते, जैसे फूलके मारनेकारि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे दुःखसुखकी

प्राप्तिविषे चलायमान नहीं होते, सदा स्वभावविषे स्थित रहते हैं, सुख दुःखको भोगते वहभी दृष्टि आते हैं, अरु उनके निश्चयविषे कछु नहीं होता, जैसे स्फटिकमणिविषे कोऊ रंग राखिये तब तिसविषे रंग भासता है, परंतु उसका रूप कछु अपर नहीं हो जाता, स्फटिक मणि ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे सुखदुःखके भोग ज्ञानवान्विषे दृष्टआते हैं, परंतु स्वरूपते चलायमान कदाचित् नहीं होता, चेष्टा अज्ञानीकी नांई करते हैं, परंतु निश्चयते परम समाधि है, जैसे अज्ञानीको भविष्यत्का राग द्वेष सुख दुःख कछु नहीं होता, तैसे ज्ञानीको वर्तमानका राग द्वेष नहीं होता, अरु स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसे होती है, कि सर्व साथ मित्रभाव है, न उसते कोऊ खेदवान् होता है, न वह किसीते खेदवान् होता है, अरु जब उसको सुख आनि प्राप्त होता है, तब रागवान् दृष्ट आता है, अरु दुःखकी प्राप्तिविषे दोषवान् दृष्ट आताहै, परंतु निश्चयते उसको हर्षशोक कछु नहीं,जैसे नट स्वांग लाता है,जैसे स्वांग होता है,तैसी चेष्टा करताहै, राजाका स्वांग होवै, अथवा दरिद्रका होवै, परंतु निश्चयअपने रूपविषे होता है, तैसे ज्ञानवान्विषे सुख दुःख दृष्ट आते हैं, परंतु निश्चय उनका आत्मस्वरूपविषे होता है, अरु पुत्र धन बांधव आदिकको बुद्बुदेकीनांई जानता है, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं, परंतु जलको राग द्वेष कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्को राग द्वेष कछु नहीं; होता, अरु सबके ऊपर दयास्वभाव होता है; अरु पतित प्रवाहविषेजो सुख दुःख आनि प्राप्त होता है, तिसको भोगता है, जैसे वायु चलता है तब दुर्गंध सुगंधको साथ ले जाता है, परंतु वायुको रागद्वेष कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्को रागद्वेष कछु नहीं, बाहर अज्ञानीकी नाईं व्यवहार करता है, परंतु निश्चय जगत्को भ्रांतिमात्र जानता है, अथवा सर्व ब्रह्म जानता है, सदा स्वभावविषे स्थित होता है, अनिच्छित प्रारब्धको भोगता है, परंतु जाग्रत्विषे सुषुप्तिकी नांई स्थित है, पूर्व अरु भविष्यत्की चिंतवना नहीं करता, वर्तमानविषे विचरता है, सो अंतरते शीतल रहता है, बाह्य इष्ट अनिष्ट दृष्ट आते हैं, अंतरते अद्वैतरूप है, ज्ञानवान् कर्म करता है, परंतु कर्मविषे अकर्मको जानता है, अरु जीवताही मृत-

ककी नाईं है ॥ हे रामजी ! जैसे मृतक होता है. तिसको बहुरि जगत्की कलना नहीं फुरती, तैसे जिसको आत्मपदकी अहंप्रत्यय हुई है, तिसको द्वैत नहीं भासता; प्रत्यक्ष व्यवहार उसविषे दृष्ट भी आताहै, परंतु निश्चयविषे अर्थ शांत हो गया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह ज्ञानीके लक्षण जो तुमने कहे सो तिनको वही जानै, अपर कोऊ नहीं जानता, काहेते कि, बाहिरकी चेष्टा अज्ञानीके तुल्य है, अरु अंतरते शांतरूप है, जो ब्रह्मचर्यकरि भी अंतर धैर्य होता है, तपस्याकरि भी रागद्वेष कछु नहीं फुरता अरु एक मिथ्या तपस्वी है; तिसी प्रकार हो बैठते हैं, उनका निश्चय सत् हैं, अथवा असत्य है, उनको कैसे जानिये सो कृपाकरिके कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह निश्चय सत् होवै, अथवा असत्य होवै, यह लक्षण संतके हैं, अरु आत्माका जो साक्षात्कार है, यह निश्चय अपने आपकरि जानता है, अपर किसीकरि नहीं जानता, इसी कारणते तिसका लक्षण ज्ञानीही जानता है, अपर कोऊ नहीं जानता, जैसे सर्पके खुदको सर्पही जानता है, अपर कोऊ नहीं जानता, तैसे ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेद्य है ॥ हे रामजी ! यह जो गुण कहे हैं, सो ज्ञानवान्‌विषे स्वाभाविक भी रहते हैं, अपरको यत्नसाध्य हैं, अरु सर्व जगत् तिसको भ्रांतिमात्र हैं, अथवा अनुभव दृष्ट करिके अपना आपही भासता है, इस कारणते परमशांत है, रागद्वेष उसके निश्चयविषे नहीं फुरता, अरु अपने निश्चयको बाह्य प्रगट नहीं करता, अरु जो अधिकारी होता है, तिसको जनावता भी है, अरु जो अनधिकारी अज्ञानी है, तिसको जान भी नहीं सकता, जैसे बावनचंदनकी बड़ी सुगंधि है, परंतु दूरते नहीं भासती, तैसे अज्ञानी उसके निश्चयते दूर है, इस कारणते वह जान नहीं सकता, जो उसको चर्मदृष्टिकरि देखै सो उसको देखि नहीं सकता, अरु वह अधिकारीविना जनावता भी नहीं, जैसे अमोलक चिंतामणि होवै, अरु नीचको दीजे तौ भी उसके माहात्म्यको वह नहीं जानता ताते उसका निरादर करता है, तैसे आत्मरूपी चिंतामणि है, अरु अनधिकारी जो अज्ञानी है; सो तिसका माहात्म्य नहीं जानता, उसते इसका निरादर होता है, इसी कारणते ज्ञानवान् प्रगट नहीं करता ॥

हे रामजी! अपने ऐश्वर्यको जो प्रगट करता है कि, हमको अर्थकी प्राप्ति होवैगी, अरु हमारी मान्यता होवैगी, अरु हमारे चेले बनैंगे, हमारी पूजा होवैगी, सो अज्ञानी है, और ज्ञानवान् पदार्थको गंधर्वनगर अरु इंद्रजालकी नाईं जानते हैं, बहुरि वांछा किसकी करैं, इस कारणते अनधिकारीको अपना इष्ट नहीं प्रगट करते, जो कोऊ निकट बैठता है, तौ भी अपने निश्चयरूपी अंगको सकुचाय लेते हैं, जैसे कच्छू अपने अंगको सकुचाय लेता है, तैसे वह निश्चयरूपी अंगको सकुचाय लेता है, अरु जो अधिकारी देखता है, तिस प्रति प्रगट करता है ॥ हे रामजी! पात्रविषे पदार्थ पाया शोभता है, अपात्रविषे पाया अनिष्ट हो जाता है, जैसे गऊको घास देता है, तब वह भी क्षीर होता है, अरु सर्पको क्षीर दिया तौ विष हो जाता है, तैसे अधिकारीको दिया शुभ होता है, अनधिकारीको अनिष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! अणिमाते आदिलेकरि जो सिद्धि हैं, सो जपकरि द्रव्यकरि अरु कालकरि अथवा देशकरि प्राप्त होती हैं, सो अभ्यासके बलकरि अज्ञानीको भी प्राप्त होती हैं, अरु ज्ञानीको भी होती हैं, परंतु ज्ञानका फल नहीं, यह जप आदिकका फल है, अरु जिसकी सिद्धताके निमित्त जो पुरुष दृढ होकरि लगता है, सोई सिद्ध होता है, जो इन सिद्धियोंका दृढ अभ्यास करता है, तब उनकरिकै आकाशमार्गविषे उड़ने आने जाने लगता है, सो यह पदार्थ तबलग रस देते हैं, जबलग आत्ममार्गते शून्य है ॥ हे रामजी! परम सिद्धता इनकरि प्राप्त नहीं होती, सो परम सिद्धता आत्मपद है, जिसको आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो इनकी अभिलाषा नहीं करता, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोऊनहीं, आकाशविषे देवताके स्थानोंविषे भी नहीं, जिसविषे ज्ञानीका चित्त मोहित होवै, सब पदार्थ ज्ञानवान्को मृगतृष्णाके जलवत् भासते हैं, अरु मेरे सिद्धांतविषे तौ यही है, कि सदा विषयते उपरांत होना, अरु आत्माको परम इष्ट जानना, इसीका नाम ज्ञान है, अरु जो प्रारब्धकरिकै आनि प्राप्त होवै, तिसको करता है, परंतु करणेकरि तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु अकरणेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, न किसी अर्थका आश्रय करता है न तिसके निमित्त किसी भूतका

आश्रय करता है, सर्वदा अपने आप स्वभावविषे स्थित होता है, ऐसे निश्चयको पायकरि आश्चर्यवान् होता है, कहता है कि, बड़ा आश्चर्य है, सदा अपना आप स्वरूप है, तिसको मैं विस्मरण करिकै एता काल भ्रमता रहा हौं, अब मुझको शांति प्राप्त भई है, अरु जगत्को देखिकै वह हँसता है, काहेते कि यह जगत् अनायासरूप है, अपनीही संवित्विषे स्थित है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब स्थित होता है, तैसे अपनी संवित्विषे जगत् स्थित है, तिसको वह द्वैत जानते हैं, अरु रागद्वेषकरि जलते हैं, ऐसे अज्ञानीको देखिकरि हँसता है, अरु व्यवहार करता भी हँसता है, जैसे किसीने स्वप्नविषे हाथमें स्वर्ण दिया अरु देकरि बहुरि लिया, अरु इसने उसको स्वप्नजाना, तब चेष्टा करता है, परंतु हँसता है, कहता है कि, यह मेराही स्वरूप है, तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चयविषे हँसता है, अरु जैसे किसी ग्रामको अग्नि लगती है, तिस गांवते निकसिकरि एक पुरुष पर्वतपर जाय बैठे, तब जलतेको देखिकरि हँसताहै तैसे ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी नगर जलतेसों निकसकरि आत्मरूपी पर्वतपर जाय बैठा है, सो अज्ञानीको दग्ध होता देखिकरि हँसता है, जो आप अशोक होकरि उनको सशोक देखता है ॥ हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टिकरि देखता है, तब अद्वैत सत्ता भासती है, अरु जब अंतवाहकविषे स्थित होकरि देखता है, तब जैसे स्थित होते हैं तैसे उनको देखता है, आपको शांतरूप देखता है, अर्थ यह कि आत्मतत्त्व परमानंदस्वरूप है, तिसते इतर जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब दोषरूप हैं, सिद्धताते आदि लेकरि जेती कछु क्रिया हैं, सो संसारका कारण हैं, जैसे समुद्रविषे कई तरंग बड़े होते हैं, कई छोटे होते हैं, परंतु समुद्रहीविषे हैं, जिस तरंगका आश्रय करैगा, सो सिद्धताको प्राप्त होवैगा, हलने डोलने कहनेते मुक्त होवैगा, तैसे सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं, सो कहूं बड़ा ऐश्वर्य है, कहूँ छोटा ऐश्वर्य है, परंतु संसारहीविषे है, जो पुरुष इस क्रियाके त्यागकरि अंतर्मुख होवैगा, सो संसाररूपी समुद्रको त्यागिकरि आत्मरूपी पारको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको जिस पदार्थका अभ्यास होता है सोई तिसको प्राप्त होता है, जैसे पाषाणको नित्यप्रति घसावते रहिये

तब वह भी चूर्ण हो जाता है,तैसे जिस पदार्थका सर्वदा अभ्यास करताहै, सो प्राप्त होता है,जिसको आत्मपद अभ्यासकरि प्राप्त होताहै,सोपरमश्रेष्ठ हो जाता है, अरु सब जगत्‌के ऊर्ध्व विराजता है, अरु परमदयाकी खान होता है, जैसे मेघ समुद्रते जल लेकरि वर्षा करते हैं, सो जलका स्थानक समुद्र होता है,तैसे जेते कछु दया करते दृष्ट आतेहैं,ज्ञानवान्‌केप्रसादकरि करते हैं, सर्व दयाका स्थान ज्ञानवान् है,अरु ज्ञानवान् सबकासुहृद् है, जो कछु प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होता है,तिसको करता है अरु जो शरीरको दुःख अनि प्राप्त होता है, तिसको ऐसे देखता है, जैसेअन्य शरीरको होता है; अपनेविषे सुख दुःख दोनोंका अभाव देखता है,अरु जिसको अभ्यास नहीं प्राप्त भया, सो शरीरके रागद्वेषकरि जलता है, अरु ज्ञानीको शांतिमान् देखिकरि अपरको भी प्रसन्नता उपज आती है, जैसे पुण्यकरिकै जो स्वर्ग गया है, तिसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं, कल्पवृक्ष सुंदर मंजरियोंसंयुक्त अरु सुंदर अप्सरा आदिक दृष्ट आते हैं, तिन पदार्थनको देखिकरि प्रसन्नता उपजती है,तैसे ज्ञानवान्‌की संगतिविषे जो पुरुष जाता है, तिसको प्रसन्नता उपजि आती है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतलता उपजाता है, तैसे ज्ञानवान्‌की संगति शीतलता उपजाती है, ज्ञानवान् आत्मपदको पायकरि आनंदवान् होता है सो आनंद दूर नहीं होता, काहेते कि आपही तिस आनंदकरि अष्ट सिद्धि स्वयं तृणसमान भासती हैं ॥ हे रामजी! ऐसे पुरुषका आचार अरु जिस स्थानोंविषे रहते हैं, सो सुन,कई तौ एकांत जाय बैठते हैं, कई शुभस्थानविषे रहते हैं, कई गृहस्थहीविषे रहते हैं, कई अवधूत हुए सबको दुर्वचन कहते हैं, कई तपस्या करते हैं, कई परमध्यान लगाय बैठते हैं; कई नंगे फिरते हैं, कई बैठे राज्य करते हैं, कई पंडित होकरि उपदेश करते हैं, कई परम मौन धारि रहे हैं, कई पहाडकी कंदराविषे जाय बैठते हैं, कई ब्राह्मण हैं, कई संन्यासी हैं, कई अज्ञानीकी नांई विचरते हैं, कई नीच पामर होते हैं, कई आकाशविषे उडते हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकी क्रिया करते दृष्ट आते हैं, परंतु सदा अपने स्वरूपविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी! जिसको पुरुष

कहते हैं, सो देह इंद्रियां पुरुष नहीं, अरु अंतःकरणचतुष्टय भी पुरुषनहीं, पुरुष केवल चिदाकाशरूप है, सो न कछु करता है, न किसीकारि उसका नाश होता है, जैसे नट स्वांग ले आता है, अरु सब चेष्टा करता है, परंतु नटभावते आपको असंग देखता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहार भी करता है, परंतु आपको अकर्त्ता असंग देखता है, अच्छेद्य हौं, अदाह्य हौं, अक्लेद्य हौं, अशोष्य हौं, नित्य हौं, सर्वगत हौं, स्थिर हौं, अचल हौं, सनातन हौं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार आत्माविषे जिसको अहंप्रतीति भई है, तिसका नाश कैसे होवै, अरु बंधमान कैसे होवै ? वह पुरुष भावै जैसे आरंभ करै, अरु भावै जैसे स्थानविषे रहै, तिसको बंधन कछु नहीं होता, पातालविषे चला जावै, अथवा आकाशविषे उड़ता फिरै, अथवा देशांतरविषे भ्रमता फिरै, तिसको न कछु अधिकता है, न कछु ऊनता है, पहारविषे चूर्ण हो जावै तौ भी चूर्ण नहीं होता, यह तौ चेतन पुरुष है, शरीरके नाश हुए इसका नाश कैसे होवै, ऐसे अपने स्वरूपविषे सदा स्थित है, आकाशवत् परम निर्मल है, अजर अमर शिवपद है, ताते ॥ हे रामजी ! ऐसे जानिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्वादशः सर्गः ॥ २१२ ॥

त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१३.

सर्वपदार्थाभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक भावमात्र है, एक भासमात्र है, एक भासितमात्र है, भावमात्र कहिये केवल चेतनमात्र, तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार उत्थान हुआ, तिसका नाम भास है, बहुरि तिसविषे जो जगत् हुआ, तिसका नाम भासित है, सो भासित कल्पितका नाम है, सो कल्पितके नाश हुए अधिष्ठानका तौ नाश नहीं होता क्यों कि, जो अधिष्ठान कछु अपरभाव होवै तौ नाश भी होवै, सो तौ कछु अपर बना नहीं, तिसके फुरणेविषे तीन संज्ञा हुई हैं, सो फुरणा भी

तिसका किंचन है, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे ज्योंका त्यों है, जैसे स्पंदनिस्पंदविषे वायु एकही है, तैसे बोधअबोधविषे आत्मा एकही है, बोध अबोध फुरणा अफुरणा एकही अर्थ है ॥ हे रामजी! सो आत्मा किसकरि अरु कैसे नाश होवै, चेतन भी मरता होवे तब इसका किंचन जगत् कैसे रहै, किंचन कहिये आभास, सो आभास अधिष्ठानविना नहीं होता ताते आत्माका नाश नहीं होता, अरु तुम जो चेतनको भी मरता मानौ जो मरिकै बहुरि नहीं उपजता, तौ भी आनंद हुआ; मेरा भी यही उपदेश है, जो चेतनता मिटै, जब चेतनता उपजती है, तब जगत् भासता है, तिसके मिटेते आत्माही शेष रहैगा, ब्रह्मचेतनका तौ नाश नहीं होता, अरु जो तू कहै वह चेतन नाश हो जाता है, यह अपर चेतन है, जिसते जगत् होता है तो ॥ हे रामजी! अनुभव तौ एक है, उसका नाश कैसे मानिये, जैसे बरफ शीतल है, भावे किसी ठौरते पान करिये वह सबको शीतलही है, अरु अग्नि उष्णही है, जिस ठौरते स्पर्श करिये तहां उष्णही है, तैसे आत्माका स्वरूप चेतन है, सो एक अखंडरूप है, जहां कोऊ पदार्थ भासता है, सो तिसी चेतनताकरि प्रकाशता है, अरु चेतनसत्ता स्वच्छ निर्मल है, अद्वैत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसका नाश कैसे होवै, अरु जो तू शरीरके नाश हुए आत्माको नाश होता मानै तौ ऐसे नहीं, काहेते कि, शरीर यहां अखंड पडा है, वह परलोकविषे चेष्टा करता है, अरु पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्ट आता, जो शरीरबिना अभाव होता होवै, तौ उनका भी अभाव हो जावै, ताते शरीरके अभाव हुए आत्माका अभाव नहीं होता, काहेते कि शरीरके मृतक हुए कछु चेष्टा शरीरसाथ होती नहीं, काहेते जो पुर्यष्टका जीवकला बीज नहीं, शरीर तौ अखंड पड़ा है, उसते कछु नहीं होता, जीव परलोकविषे सुख दुःख भोगता है तौ शरीरके नाश हुए नाश क्यों न हुआ अरु जो तू कहै, सब स्वभाव उसविषे रहता है, तौ सर्वकाल उसको क्यों नहीं देखता, उसी समय आपको मृतक देखता है, अरु बांधव भाई जन सब उसी समय मृतक जानते हैं, अरु जो तू कहै, जीवित धर्मकरि वेष्टित है, इसीते सब अवस्थाका अनुभव

नहीं करता, मृत्यु समय जब जीवत्वभाव नष्ट हो जाता है, तब मृतक होता है, जो ऐसे होवै तौ परलोकका अनुभव न करै सो ऐसा नहीं, जब शरीरपात होता है तब सब अवस्थाको भी जानता है, बहुरि परलोकविषे शब्द होता है, तिसका अनुभव करता है, अपने कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है, अरु देशस्थानको प्राप्त होता है, यह वार्त्ता शास्त्रकारि भी प्रसिद्ध है, जो वेद शास्त्र पढ़े करते हैं, अरु अनुभवकरिकै भी प्रसिद्ध है, कि मृतकको किसने जाना, अरु अभावको किसने जाना, जिसने जाना सो आत्मा है, एक अखंड है ताते ॥ हे रामजी ! शरीरके नाशविषे आत्माका नाश नहीं, सो नित्य शुद्ध है जैसा जैसा निश्चय उसविषे होता है, तैसाही हो भासता है, जैसा मिलता है, तैसा प्रकाशता है, ऐसा जो सत्य आत्मा है, सो किसीविषे बंधमान नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्प आकार भासता है, सो जेवरी सर्प तौ नहीं हो जाती, सर्प कल्पितका अभाव हो जाता है, अरु जेवरी ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे आत्मसत्ता आकार हो भासती है परंतु आकार तौ नहीं होती, आकारका अभाव हो जाता है अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है, इसी कारणते बंधमान नहीं होती, ऐसी आत्मसत्ताविषे जो विकार भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, अरु भ्रांतिहीकारि दुःख पाते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्र है, तिस आभासमात्रविषे जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं सो तिनकी निवृत्तिका उपाय मैं तुझको कहता हौं, अरु जो कछु उपदेश मैंने किया है, तिसके विचारनेकारि भ्रांति निवृत्त होजावैगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अभ्यासविना आत्मपदकी प्राप्ति चाहे तौ कदाचित् न होवैगी, जब वारंवार अभ्यास करैगा, तब द्वैतभ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मपद प्राप्त होवैगा, जिसका नित्य अभ्यास करता है, अरु यत्न भी तिसका करता है, सो प्राप्त होता है, वह कौन पदार्थ है, जो अभ्यासकारि प्राप्त न होवै? जो थककर फिरै नहीं, अरु दृढ अभ्यास करै, तौ प्राप्त होता है; राज्यकी लक्ष्मी तब प्राप्त होती है, जब रणविषे दृढ होकारि युद्ध करता है, तब जय होती है, अरु मुखते कहै मेरी जय होवै, तब तौ नहीं होती, तैसे

आत्मपद भी तब प्राप्त होवैगा, जो दृढ अभ्यास करैगा अभ्यास विना कहनेमात्रकरि प्राप्त नहीं होता ॥ हे रामजी ! इस मनके दो प्रवाह हैं, एक जगत्का कारण है, एक स्वरूपकी प्राप्तिका कारण है, जो असत्य शास्त्र हैं, जिनविषे आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा तिनको त्याग, यह जो महारामायण है, मोक्ष उपाय, सो चार वेद, षट् शास्त्र, सर्व इतिहास पुराणका सिद्धांत मैंने कहा है, कि इसके समान अपर कोऊ न कहैगा, न किसीने कहा है, ऐसा जो शास्त्र है, इसके विचारविषे मनको लगावै तब शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञान वर शापकी नाईं नहीं, जो कहनेमात्रते सिद्ध प्राप्त होवै, इसकी प्राप्ति तब होवैगी, जब वारंवार विचार करिकै दृढ अभ्यास करैगा, जब भावना होवैगी, तब मुक्तिपद प्राप्त होवैगा ऐसा कल्याण पिता अरु माता नहीं करते, अरु मित्र भी ऐसा कल्याण न करैंगे, तीर्थ आदिक सुकृत भी न करैंगे, जैसा कल्याण वारंवार विचारणेते मेरा उपदेश करैगा, ताते अपर सब उपायको त्यागिकरि इसीका विचार करु, तब भ्रांति सब मिटि जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है, तिसकरि जीव पडे जलते हैं, जो मेरे शास्त्रको विचारैगा, तिसका रोग नष्ट हो जावैगा, अरु ईश्वरकी महामाया है, जो मिथ्याभ्रमकरि दुःखी होते हैं, जो अपना दुःख नाश करणा होवै, तौ मेरा शास्त्र विचारै, जेते कछु सुंदर पदार्थ दृष्ट आते हैं सो मिथ्या हैं, तिनके निमित्त यत्न करना परम आपदा है, यह कैसे पदार्थ हैं, आपातरमणीय हैं, जो देखनेमात्र सुन्दर हैं, अरु अंतरते शून्य हैं, इनकी प्राप्तिविषे मूर्ख आनंद मानते हैं ॥ हे रामजी ! यह पदार्थ तबलग सुन्दर भासते हैं, जबलग इसको मृत्यु नहीं आया, जब मृत्यु आवैगा, तब सब क्रिया रह जावैंगी, इनके निमित्त जो बडे यत्न करते हैं, सो मूर्खहैंजिस कालविषे मृत्यु आता है, तिसी काल इसको कष्ट आनि प्राप्त होताहै, चंदनका लेप इसको करिये तौ भी शीतल नहीं होता, अरु जिस द्रव्यके निमित्त बड़ा यत्न करता है, अरु प्राणको त्यागता है, युद्ध करताहै धनके निमित्त, सो धन स्थिर नहीं रहता, धनका अरु प्राणीका वियोग हो

जाता है, जब वियोग होता है, तब कष्ट पाता है, अरु मैं ऐसे उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी थोड़ा होवै, अरु सुगम प्राप्त होवै, जो सो जब शास्त्रके अर्थविषे दृढ अभ्यास होता है, तब अजर अमरपद प्राप्त होता है, ताते तू बोधवान् होहु, बोधकरिकै अभ्यासका अजरपदके निमित्त यत्न करु, अरु जो यत्न न करैगा तौ अज्ञानरूपी शत्रु लातैं मारैगा, अरु जो शत्रुको मारना होवै, तौ निर्मान निर्मोह होकारि आत्मपदका अभ्यास करु ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अबलग अज्ञानरूपी शत्रुके मारनेका यत्न नहीं करता, अरु आत्मपद पानेका यत्न नहीं करता, सो परम कष्टको पावैगा, संसाररूपी दुःखते कदाचित् मुक्त न होवैगा, अरु निकसनेका उपाय यही है, जो महारामायण ब्रह्मविद्याका उपदेश, तिसको विचारि-करिकै अपने हृदयविषे धारणा, इस उपाय करिकै भ्रांति मिटि जावैगी, कैसा महारामायण उपदेश है, जो सर्व सिद्धांतका सार है, अरु अपर शास्त्रकरि प्राप्त होवै, अथवा न भी होवै, परंतु इसके विचारकरि अवश्य आत्माको प्राप्त होवैगा, जैसे तिलकी खलते तेल निकसना कठिन है, अरु तिलते तेल काढिये तौ निकसता है, तैसे मेरा उपदेश तिलकी नाईं है, अरु इतर है सो खलकी नाईं है ॥ हे रामजी ! जेते कछु शास्त्र हैं, तिनविषे जो मुख्य सिद्धांत है, तिसविषे सार जो सिद्धांत है, सो मैं तुझको कहा है, जो आत्मा सदा विद्यमान है, तिसको भ्रांतिकरिकै अवि-द्यमान जानता है, तिसीके विद्यमान करनेको सर्व शास्त्र प्रवर्त्ते हैं, जो तिनके विचार करिकै भी आत्मपदको विद्यमान नहीं जानता, सो मेरे उपदेश विचारनेसों आत्मपदको विद्यमान नहीं जानैगा, यह निश्चय है॥ हे रामजी ! अपर शास्त्रके दृढ विचार अरु यत्न करिकै जो सिद्धता होनी है, सो इस शास्त्रके विचार करिकै सुखेनही प्राप्त होवैगी, शास्त्रकर्त्ताका अपर लक्षण नहीं विचारना; शास्त्रकी युक्ति विचारि देखनी है, जो कछु सर्व शास्त्रका सार सिद्धांत है, सो मैं तुझको सुगम मार्गकारि कहा है, इसके विचारकरि इसकी युक्ति देखैं, अरु जो कछु अज्ञानी मुझको कहते हैं, अरु हँसते हैं, सो मैं सबही जानता हौं, परंतु मेरा जो कोऊ दयाका स्वभाव है, तिसकारि मैं चाहता हौं, कि किसी प्रकार नरकरूप

संसारते निकसैं, इस कारणते उपदेश करता हौं ॥ हे रामजी! मैं तुझको जो उपदेश करता हौं, सो मैं किसी अपने अर्थके निमित्त नहीं करता, कि मेरा कछु अर्थ सिद्ध होवैगा, जो कोऊ तुझको उपदेश करता है सो सुन, तेरा जो कोऊ बडा पुण्य है, सोई शुद्ध संवित् होकारि मलीन संवित्को उपदेश करता है, सो संवित् न देवता है, न मनुष्य है, न यक्ष है, न राक्षस है, पिशाच आदिक भी नहीं, केवल जो ज्ञानमात्र है, सो भी तूही है, अरु मैं भी वही हौं, अरु जगत् भी वही है, जो सर्व वही है तौ वासना किसकी करनी है ॥ हे रामजी! इसको दुःखका कारण वासनाही है, जो पुरुष इस संसारबंधन दुःखकी चिकित्सा अब न करैगा, सो आत्महत्यारा है, अरु बडे दुःखविषे जाय पडैगा, जहांते निकसनेको कभी समर्थ न होवैगा, तब क्या करैगा, ताते अबहीं उपाय करै, जबलग सर्व भावकी वासना निवृत्त नहीं होती, तबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता. इसीका नाम बंधन है, जब वासना क्षय होवैगी, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो अविचारते सिद्ध हैं, विचार कियेते कछु नहीं रहते, जो विचार कियेते न रहैं, तिनकी अभिलाषा करणी व्यर्थ है, जो वस्तु होती होवै तिसके पानेका यत्न भी करिये तौ बनता है, अरु जो वस्तु होती होवे तिसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है, यह जगत्के पदार्थ असत्यरूप हैं, जैसे शशेके शृंग असत् हैं, अरु जैसे मरुस्थलकी नदी असत् होती है, तैसे यह जगत् असत् है, जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है, सो जानता है, यह जगत् शशेके शृंगवत् असत् भ्रांतिमात्र है, इसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है, जो पदार्थ कारणविना दृष्ट आवै, तिसको भ्रांतिमात्र जानिये, आत्मा जगत्का कारण नहीं, ताते जगत् मिथ्या है, आत्मपद सब इंद्रियां अरु मनते अतीत है, अरु जगत् पांचभौतिक है, सो मन इंद्रियोंका विषय है, अरु आत्मपद है सो मन इंद्रियोंका विषय नहीं, तौ जगत्का कारण कैसे कहिये, जो अशब्द पद है, सो नानाप्रकार शब्दका कारण कैसे होवै, जो निराकार आत्मपद है, सो पृथ्वी आदिक भूत नानाप्रकारके आकारका कारण कैसे होवै ॥ हे रामजी! जैसा कारण होता

है, तिसते तैसा कार्य उपजता है, सो आत्मा निराकार अरु जगत् साकार है, तौ निराकार साकारका कारण कैसे होवै, जैसे वटका बीज साकार होता है, तिसका कार्य वट भी साकार होता है, अरु साकारते निराकार कार्य तौ नहीं होता, तैसे निराकारते साकार कार्य भी नहीं होता, ताते इस जगत्का कारण आत्मा नहीं, न समवायिकरण है, न निमित्तकारण है, निमित्तकारण तब होता है, जब कछु द्वितीय वस्तु होती है, जैसे मृत्तिकाके कुलाल घट बनाता है, सो आत्मा अद्वैत है, निमित्तकारण कैसे होवै, अरु समवायिकारण भी तब होता है, जब साकार वस्तु होती है, जैसे मृत्तिका परिणामिके घट होता है, सो आत्मा निराकार अपरिणामी है, जगत्का कारण कैसे होवै, दोनों कारणते जो रहित भासै सो जानिये कि, भ्रांतिमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो कारणविना भासते हैं, ताते भ्रांतिमात्र हैं, तैसे यह जगत् भी कारणविना भ्रांतिमात्र भासता है, आत्माविषे जगत् कदाचित नहीं हुआ, जैसे प्रकाशविषे तम नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं, अरु जो तू कहै भासता क्यों है, तौ उसीका किंचन भासता है, सो वहीरूप है, जैसे चलती है तौ भी वायु है, अरु ठहरती है तौ भी वायु है, चलने अरु ठहरनेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं. वही आत्मसत्ता फुरणेकरि जगत्रूप हो भासती है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अपर कछु द्वैत वस्तु है नहीं, जो कहते हैं, जगत् कर्मोंकरि होता है, सो असत्य है, कर्म भी बुद्धिकरि होते हैं, सो आत्माविषे बुद्धिही नहीं, तौ कर्म कैसे होवैं, जो कर्मही नहीं, तौ जगत् कैसे होवै, जैसे शशेके शृंगके धनुषसाथ बाण चलाना असत्य है, तैसे कर्मकरि जगत्का होना असत्य है, अरु एक कहते हैं, सूक्ष्म परमाणुते जगत् हो जाता है, सो भी असत् है, काहेते कि जो सूक्ष्म परणाणु परिणामीकरि जगत्रूप हुए होते तौ बुद्धिरूप जगत् न भासता, यह तौ बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्ट आती है, जो परमाणुते जगत् होता तौ

इनहीकरि बढता जाता काहेते कि परमाणु जड हैं, वही बढते जाते हैं सो ऐसे तौ नहीं, बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आती है, इसीते कहा है, कि असत् कहते हैं; काहेते कि सूक्ष्म भी किसीते उत्पन्न हुआ चाहिये, अरु कोऊ रहनेका स्थान भी चाहिये, सो आत्माविषे देशकाल वस्तु तीनों कल्पित हैं, जो आत्माविषे यह न हुए तौ परमाणु कैसे होवै, जगत् कैसे होवै, आत्मा अद्वैत है, ताते जगत् न उपजा है, न नष्ट होता है, जो उपजा होता तौ नष्ट भी होता, जो उपजा नहीं तौ नष्ट कैसे होवै, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, ताते हे रामजी ! मैं भी आकाशरूप हौं तू भी आकाशरूप है, सब जगत् भी आकाशरूप है, किसीके साथ आकार नहीं; सब निराकाररूप है, अरु जो तू कहै, बोलते चालते क्यों हैं, तौ जैसे स्वप्नविषे सब आकाशरूप होते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करते दृष्ट आते हैं, अरु बोलते चालते हैं, तैसे यह भी बोलते चालते हैं, परंतु आकाशरूप हैं, अरु जो तेरा स्वरूप है सो श्रवण कर, देशको त्यागिकरि जो देशांतरको संवित् जाता है; अरु तिसके मध्य जो ज्ञान संवित् है, सो तेरा स्वरूप है, सो अनामय सर्व दुःखते रहित है, जैसे जाग्रत देशको त्यागिकरि स्वप्नमें जाती है, जाग्रत त्यागि दिया, अरु स्वप्न आया नहीं, मध्य जो अचेत चिन्मात्रसत्ता है, तैसे ब्रह्मसरूप है, तिसविषे पंडित ज्ञानवान्का निश्चय है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक तिसीविषे स्थित रहते हैं, तिनको कदाचित् उत्थान नहीं होता, जैसे बरफते अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसे तिनको स्वरूपते उत्थान कदाचित् नहीं होते, सो आत्मसत्ता कैसी है, न उपजती है, न विनशती है, न अपरकी अपर होती है, सर्वदा अपने स्वभावविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, भ्रमकरिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आरंभ होते दृष्ट आते हैं, अरु जागेते अत्यंत अभाव भासते हैं, तैसे यह जगत् भी है, आदि जो अद्वैततत्त्वविषे स्वप्न हुआ है, तिसविषे ब्रह्मा उपजा है, तिसने आगे जगत् रचा है, सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है, स्वरूपते

इतर कछु हुआ नहीं, सब असत्यरूप है, जैसे स्वप्नविषे नदी पर्वत दृष्ट आते हैं, परंतु कछु उपजे नहीं अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जगत् सब असत्यरूप है, जिसको तू ब्रह्मा कहता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, तौ जगत्की उत्पत्ति मैं तुझको कैसे कहौं, जैसे मरुस्थलकी नदी ही उपजी नहीं; तिसविषे मच्छियां कैसे कहिये, तैसे आदि ब्रह्म नहीं, तिसविषे जगत् उपजा कैसे कहिये ? केवल आत्मचेतनसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु यह जगत् भी वही रूप है परंतु अज्ञानकरिकै विपर्ययरूप भासता है जैसे स्वप्नविषे पुरुष अनुभवरूप होता है, अरु अपने प्रमादकरिकै नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, पर्वत जल पृथ्वी जन्ममरणादिक विकार देखता है, परंतु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै विषयरूप भासतेहैं तैसे यह जगत् भी जान, आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अज्ञानकरिकै आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है॥ ताते हे रामजी ! जिसके अज्ञानते यह जगत् भासता है, अरु जिसके ज्ञानकरि निवृत्त हो जाता है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, तिसके पानेका यत्न कर, सो कैसा पद है, नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप है, अरु सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, सो तेरा अनुभवरूप है, जो सदा अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसविषे स्थित होनेमें क्या कायरता करनी ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रांतिमात्र है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रममात्र है, तिसको त्यागिकारि अपने स्वभावविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनं नामत्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः २१४.

जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार यह जगत् आभास फुरा है अरु भासता है, सो सुन, आदि जो शुद्ध है, अचिंत चिन्मात्र है, तिसविषे

जब चेतनता फुरती है, तब सो वेदन होती है, तिसविषे शब्दतन्मात्र होती है, शब्दतन्मात्रते आकाश उत्पन्न होता है, बहुरि स्पर्शकी इच्छा होती है तब वायु उपजती है, जब आकाशविषे उत्थान हुआ; तब तिस वायु अरु आकाशके संघर्षण भावते अग्नि उपजता है, जब अग्निविषे उष्णस्वभाव होता है, तब जल उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि जब तेजकी अधिकता होती है, तब जल उत्पन्न होता है, स्वेदवत् जब जल बहुत इकट्ठा होता है,तब तिसते पृथ्वी उत्पन्न होती है,इसप्रकार आकाश वायुते जल पृथ्वी उत्पन्न होते हैं, तब तत्त्वते शरीर उपजते हैं, स्थावर जंगमभूत नानाप्रकार जगत् दृष्ट आता है, सो पांचभौतिक है, अरु वास्तवते न पंचभूत हैं, न कोऊ उपजता है, न नष्ट होता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारका जगत् आरंभ परिणामसहित भासता है, परंतु वास्तव कछु उपजा नहीं, आत्मसत्ताही चित्तके फुरणेकरि जगत्रूप हो भासती है, तैसे यह जागृत् जगत् भी जान ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब अपना अनुभवरूप है, भ्रमकरिकै आकारसहित भासता है, जब भली प्रकार करके विचारि देखिये तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल चेतन आत्मत्वमात्र शेष रहता है, जैसे निद्रादोष करिकै स्वप्नविषे नानाप्रकारके क्षोभ भासते हैं, जब जागता है तब एक अपना आपही भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागेते अद्वैतही अद्वैत भान होता है ॥ हे रामजी ! जो बोधसमय द्वैत कछु न भासै तौ अबोध समय भी जानिये कि, द्वैत कछु नहीं हुआ, अरु जो बोधसमय सत्य भासै तौ जानिये कि, सर्वदा काल यही सत्त है ॥ हे रामजी ! यह निश्चय धार कि, अपर जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, जैसे किरणोंविषे जल भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, विचार कियेते कछु नहीं पाता ॥ हे रामजी ! अपनी कल्पनाही इसको जगत्रूप हो भासती है, अपर कछु नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि अपनी कल्पनारूप है, परंतु निद्रादोषकारि भिन्न हो भासती है, तिसविषे रागद्वेष उपजता है, अरु जागेते सब क्षोभ मिटि जाते

हैं, तैसे अज्ञान करिकै जगत् सत्य भासता है, तिसविषे राग द्वेष भासते हैं, ज्ञान करिकै सब शांत हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है, ज्ञानवान्के निश्चयविषे सब चिदाकाश है, अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् है, जो बड़े क्षोभ आनि प्राप्त होवैं तौ भी ज्ञानवान्को चलाय नहीं सकते, उसके निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, सदा एकरस रहता है, जो प्रलयकालके मेघ आनि गजैं, अरु समुद्र उछलैं, अरु पहाडके ऊपर पहाड पडै, ऐसे भयानक शब्द होवैं, तौ भी ज्ञानवान्के निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, जैसे कहूँ पुरुष सोया पड़ा है, तिसके स्वप्नविषे बड़े क्षोभ होते हैं, अरु जागृत्को निकट बैठे नहीं भासते, तैसे ज्ञानवान्के निश्चयविषे द्वैत कछु नहीं भासता, काहेते जो है नहीं अरु अज्ञानीको होते भासते हैं,जैसे वंध्या स्त्री स्वप्नविषे अपने पुत्रको देखती है सो अनहोता भ्रमकरि उसको भासता है, तैसे अज्ञानीको अनहोता जगत् सत्य होकरि भासता है ॥ हे रामजी ! भ्रमकरिकै अनहोता भासता है, अरु होतेका अभाव भासता है, जैसे वंध्या अनहोते पुत्रको देखती है, अरु पुत्रवाली स्वप्नविषे पुत्रका अभाव देखती है, तैसे अज्ञान-करिकै अनहोता जगत् सत्य भासता है अरु सदा अनुभवरूप आत्माका अभाव भासता है, सो भ्रमकरिकै अपरका अपर भासता है, जैसे दिनको सोयाहुआ स्वप्नविषेकहूँ रात्रिको देखता है,अरु रात्रिको सोया हुआ स्व-प्नविषे दिनको देखता है, अरु शून्य स्थानविषे नानाप्रकारका व्यवहार देखता है, अरु अंधकारविषे प्रकाशको देखता है, सो भ्रमकरिकै देखता है, अरु पृथ्वीपर सोया है, अरु स्वप्नविषे आकाशमें दौडता फिरता है, अरु गर्त्तविषे गिरता आपको देखता है, सो भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जागृत् जगत् भी विपर्ययरूप भ्रम करिकै देखता है, जागृत् अरु स्वप्न-विषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे मुए हुए भी बोलते चालते दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे तुमको नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु जागिकरि कहते हौ, सब भ्रममात्र था, तैसे हमको यह जागृत् जगत् भ्रममात्र भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे जागृत् अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं, जैसे दो मनुष्य एकही

जैसे होते हैं, जैसे दो सूर्य होवैं, तिनविषे भेद कछु नहीं होता, तैसे जागृत् अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं जानना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्नकी प्रतिभा अल्पमात्र भासती है,शीघ्रही जागकर कहता है, एक भ्रममात्र थी; अरु जाग्रत् दृढ होकारि भासती है, तुम दोनोंको समान कैसे कहते हौ ? ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस प्रतिभाका प्रत्यक्ष अनुभव होता है,सो जाग्रत् कहाती है, अरु जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, चित्तविषे स्मृति होती है, सो स्वप्न है, सो जाग्रत्अरु स्वप्न दो प्रकारका है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो जाग्रत् है, तिसविषे जब सोय गया तब स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे जगत् भास आया, सो जहां जगत् भास आया वही तिसको जाग्रत् हो गई, अरु जहांते सोया था, वह स्वप्न हो गया, अरु यहां जो स्वप्न भासा, तिसको जाग्रत् जान चेष्टा करने लगा भाई जन लोकसाथ, जब वहांते मृतक हो गया, बहुरि उसविषे आया, आयकारि पिछलीको स्वप्न जानने लगा, तो चित्तके भ्रमकारिकै स्वप्नको जाग्रत् देखत भया था, अरु जाग्रत्को स्वप्न देखत भया था ॥ हे रामजी ! सो क्या भया, जैसे किसीको स्वप्न आया, तिसविषे अपनी चेष्टा व्यवहार करने लगा, बहुरि तिसविषे स्वप्न हुआ, तिस स्वप्नांतरते जब जागा, बहुरि उस स्वप्नविषे आया, आयकारि उसको स्वप्न जानने लगा, अरु उस स्वप्नको जाग्रत् जानने लगा ॥ हे रामजी ! जैसे वह स्वप्नांतरते जागकारि तिसको स्वप्न कहता है, अरु स्वप्नको जाग्रत् कहता है, तैसे इहां जाग्रत् स्वप्नरूप है, अरु आगे जो होता है, सो स्वप्नांतर है, एक अपर प्रकार है, जो इस जाग्रत्विषे मृतक हुआ शरीर छूटि गया, तब परलोकको देखता है, सो परलोक जाग्रत् हो गया, अरु इस जाग्रत्को स्वप्न जानने लगा, जैसे स्वप्नते जागा स्वप्नको भ्रम कहता है, तैसे इस जाग्रत्को परलोकविषे भ्रम जानता है, बहुरि परलोकविषे स्वप्न आया, तब परलोककी जाग्रत् स्वप्नवत् हो गई, अरु जो स्वप्नविषे सृष्टि भासी, तिसको जाग्रत् जानत भया, बहुरि वहांते मृतक होकारि यहां आया, तब यह जाग्रत् हो गई, परलोक स्वप्न हो गया, ताते हे रामजी ! स्वप्न अरु

जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं, अरु मूर्ख स्वप्नते जब जागता है, तब जानता है, इसका नाम जागना है, इसको जाग्रत् मानता है, उसको स्वप्न जानता है, अरु है वह स्वप्नांतर, अरु यह स्वप्न है, इसविषे जो तीव्र संवेदन हो रहा है; इसते उसको जाग्रत् जानता है, अरु उसको स्वप्न जानता है, अरु हैं दोनों तुल्य, भेद कछु नहीं, आत्माविषे एक दोनों असत्यरूप हैं, इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है, अरु आत्मा न कदाचित् उपजता है न मरता है, अरु उपजताभी है, मरता भी है, उपजता इस कारणते नहीं कि पूर्वसिद्ध है, अरु मरता इस कारणते नहीं, कि भविष्यत्-कालविषे भी सिद्ध है, परलोकविषे सुखदुःखको भोगता है, अरु भ्रमकालविषे जन्मता भी है, मरता भी है, सो प्रत्यक्ष भासता है, अरु वास्तवते ज्योंका त्यों है ॥ हे रामजी ! यह जगत् तिसका आभास है, चेतनका चमत्कार चैत्य होकरि भासता है, जैसे घट मृत्तिकारूप है, मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, तैसे चेतन भी चेतनरूप है, चेतनते इतर जगत् कछु नहीं, स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है ॥ हे रामजी ! जैसे तुमको स्वप्न आता है, तिसविषे पत्थर पहाड भासते हैं, सो तुम्हाराही अनुभव रूप है, इतर तौ कछु नहीं, तैसे यह दृश्य सब चिन्मात्ररूप है, जैसे घट मृत्तिकाते भिन्न नहीं, तैसे जगत् चिदाकाशते भिन्न नहीं, जैसे काष्ठके पात्र काष्ठते भिन्न नहीं, सब काष्ठरूप हैं, तैसे जगत् चेतनरूप हैं, चेतनते इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी मूर्त्ति पाषाणरूप है, तैसे जगत् भी चेतनरूप है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे चेतन जगत्रूप हो भासता है, जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसे चैत्य चेतनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप है, तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे वायु निस्पंदरूप है, तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे पृथ्वी घनरूप होती है, जैसे आकाश शून्यरूप होता है, जहां शून्यता है, तहां आकाश है, तैसे जहां चैत्य है, तहां चेतन है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवित् पहाड़ नदियांरूप हो भासती हैं, तैसे चिन्मात्रसत्ता जगत्रूप हो भासती है ॥ हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुझको भासते हैं, तिनको त्यागिकरि आत्माकी ओर देख, यह विश्व सब आत्मरूप है, शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाशविषे निर्मल है, ऐसे जान-

करि तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जब तुझको स्वभावसत्ताका अनुभव साक्षात्कार होवैगा, तब जेती कछु द्वैतकलना भासती हैं, सो सब शांत हो जावैंगी, केवल आत्मतत्त्व मात्र शेष रहैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१४ ॥

पंचदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१५.

जगत्निर्वाणवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चिदाकाश कैसा है, जिसको तुम परमब्रह्म कहते हो, तिसका क्या रूप है, तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंको पान करता मैं तृप्त नहीं होता, ताते कृपा करिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे एक माताके गर्भते दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं, उनका एक जैसा आकार होता है, सो जगत्व्यवहार निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है, अपर भेद कछु नहीं, अरु जैसे दो पात्रविषे जल राखिये तौ जल एकही है, अरु पात्रके नाम भिन्न भिन्न होते हैं, तैसे स्वप्न अरु जाग्रत् नाम दो हैं, परंतु एकही जैसे हैं, सो अत्माविषे दोनों कल्पित हैं, जिसविषे दोनों कल्पित हैं, सो चिदाकाश है, अरु वृत्ति जो फुरतीहै, देश देशांतरको जाती है तिसके मध्यविषे जो संवित् ज्ञानरूप है, जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है, सो चिदाकाश संवित् है, अरु वृक्ष जो रसकोखैंचिकरि ऊर्ध्वको जाते हैं, सो तिसके आश्रय जाते हैं, ऐसी जो सत्ता है, सो चिदाकाशरूप है ॥ हे रामजी ! जेते कछु वृक्ष हैं, फूल फल टास सो सब रसके आश्रय फुरते हैं, तैसे यह जगत् सब चिदाकाशके आश्रय फुरता है, तिसके आश्रय वृत्ति फुरती है, ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है, अरु जिसकी इच्छा सब निवृत्त हो गई है, अरु राग द्वेषरूपी मल निवृत्त भया है, शरत्कालके आकाशवत् जो शुद्ध संवित् है, तिसको चिदाकाश जान ॥ हे रामजी ! जगत्का जब अंत होता है, अरु जडता आई नहीं, तिसके मध्य जो अद्वैतसत्ता है, सो चिदाकाश है, अरु वह्नी

फूल फल गुच्छे वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं, सो चिदाकाश है, अरु रूप अवलोकन मनस्कार इन तीनोंका जहां अभाव है,ऐसी शुद्ध संवित् है, सो चिदाकाश है,अरु पृथ्वी पर्वत नदियां सर्वका आश्रय है,सोचिदाकाश है, अरु द्रष्टा दृश्य दर्शन यह तीनों जिसते उपजे हैं,बहुरि जिसविषे लीन होते हैं, ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है, सो चिदाकाश है, अरु जिसते सर्व उपजते हैं, अरु जो यह सर्व हैं,ऐसा जो सर्वात्मा है, सो चिकाकाश है, अर्धरात्रिको जो उठता है, इंद्रियोंकी चपलताका विषयते अभाव होता है; अफुरसत्ता तिसकालमें होती है,सो चिदाकाश है ॥ हे रामजी । जिस संवित्‌विषे स्वप्नसृष्टि फुरती है,बहुरि जाग्रत् भासती है,दोनोंके करनेहारेमें शोभता है,सो चिदाकाश है, अरु जैसा फुरणा होताहै, तैसाही जगत्‌विषे भासता है,वही द्रष्टा दर्शन दृश्य होकारि भासता है, दूसरा कछु नहीं, अरु आत्मरूपी सूत्र हैं, अरु असत् संत् जगत्‌रूपी माणिक जिसविषे पिरोये हुए हैं, जिसके आश्रय इनका फुरणा होता है, सो चिदाकशहै ॥ हे रामजी । जिसके अश्रय निमेषविषे जगत् उपजता है, अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है, ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है, तिसको चिदाकाश जान, यह सब जगत् मिथ्या है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, इसते जो रहित है, जिसविषे संकल्प विकल्प क्षोभ नहीं, अरु सदा अपने आपविषे स्थित है, दुःखते रहित निर्विकल्प सत्ता है, सो चिदाकाश है ॥ हे रामजी । नेतिनेतिकरि जो पाछे अनाद्य पद शेष रहता है, तिसको तू चिदाकाश जान, अरु आत्मसत्ता शुद्ध चेतन सबका अपना आप है, सबका अनुभवरूप होकारि प्रकाशता है, जैसा तिसविषे फुरणा होता है, जो यह ऐसे है, तैसा हो भासता है, सो चिदाकाशरूप है, ताते शुद्ध आत्मसत्ताही फुरणेकारि जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे जाग्रत्‌के अंतविषे अद्वैतसत्ता होती है,बहुरि तिसते स्वप्नसृष्टि भासि आती है, तौ स्वप्नसृष्टि वास्तव कछु उपजी नहीं, वही अनुभव स्वप्नसृष्टि हो भासती है, तैसे यह जगत जो कार्यरूप दृष्ट आता है, सो अविद्याकारिकै भासता है, वास्तव कछु उपजा नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण भासती है, तैसे यह सृष्टि अकारण है, ब्रह्माते आदि

चींटीपर्यंत जेता कछु स्थावर जंगम रूप भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, कछु उत्पन्न नहीं भया, जो दूसरा कछु न हुआ तौ कारण कार्य भी कछु न हुआ ॥ हे रामजी ! न कोऊ द्रष्टा है, न दृश्य है, न भोक्ता है, न भोग है, सब कल्पनामात्र हैं, आत्मअज्ञानकरि कल्पना उठती है, आत्मज्ञानकरि लीन हो जाती है, जैसे समुद्रके जाननेते अपर तरंगकल्पना मिटि जाती है, अनुभव आत्माविषे कारण कार्य कछु नहीं, अरु जो तू कहै, कारण कार्य भासते क्यों हैं, तौ जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके पदार्थ दृष्ट आते हैं, परंतु वास्तव कछु बने नहीं, तैसे यह जगत् कारण कार्य कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभवही नगररूप हो भासता है, तैसे यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताही फुरणेकरि जगत्की नाई भासती है, जिस जगत्को यह इंद्ररूपकरि कहता है, सो भी अहंरूप है, जिसको यह समुद्र कहता है, सो भी अहंकाररूप है, जिसको यह रुद्र कहता है, सो भी इसका अनुभवरूप है, इत्यादिक जेता कछु जगत् भासता है सो भावना मात्र है, जैसी इसकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप होकरि भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पांतरविषे जैसी भावना होती है, तैसेही सिद्ध होता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है, तैसी हो भासती है, ताते चिदाकाशका निश्चय दृढ होता है, तब अज्ञानकरिकै जो विरुद्ध भावना भई थी सो निवृत्त हो जाती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत्निर्वाणवर्णनं नाम पंचदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१५ ॥

द्विशताधिकषोडशः सर्गः २१६.

कारणकार्याभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी जब मन थोड़ा भी फुरता है, तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है, अरु जब फुरणेते रहित होता है, तब जगत्भावना मिटि जाती है, इसप्रकार जो जानता है, सो ज्ञान-

वान् पुरुष है, इंद्रियोंकरि देखता सुनता ग्रहण करता भी निर्वासनिक हो जाता है, अरु जगत्की ओरते घन सुषुप्ति होता है ॥ हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक शांत भया है, सो बोलता चालता खाता पीता भी पाषाणवत् मौन हो जाता है, ताते यह जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, जैसे मृगतृष्णाकी नदी अणहोती भासती है, जैसे भ्रमकरिकै आकाश-विषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मनके भ्रमकरिकै आत्माविषे जगत् भासता है, आदिकारणते कछु उत्पन्न नहीं भया, जिसका आदिकारण नहीं पाइये सो कार्य भी असत् जानिये, ताते सब जगत् कारणविनाही भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ हे रामजी! जो पदार्थ कारणविना भासता है, अरु जिसविषे भासता है, सो अधिष्ठानसत्ता है, अधिष्ठान-विषे भासा, तिसको भी वह रूप जानिये, अरु जो अधिष्ठानते व्यति-रेक भासै सो भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्नविषे इंद्रियादिक पदार्थ भासि-आते हैं, तिसविषे दृश्य दर्शन सब मिथ्या है, हुआ कछु नहीं, तैसे यह जागृत् जगत् भी मिथ्या है, न कछु उपजा है, न स्थित भया है, न आगे होना है, न नाश होना है, जो उपजाही नहीं तौ नाश कैसे होवै, न कोऊ द्रष्टा है, न दर्शन है, न दृश्य है, केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आप-विषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह द्रष्टा दर्शन दृश्य क्या है, अरु कैसे भासता है, यह आगे भी कहा है, अरु बहुरि भी कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह दृश्य सब अदृश्यरूप है, कारणरहित दृश्य हो भासती है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जेता कछु जगत् विस्तारसहित भासता है, सो आदि स्वरूपते सब परात्मस्वरूप है, जैसे स्वप्नविषे आकाशका वन भासै, अरु अपर पदार्थ भासैं सो सब चिदाकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् भी चिन्मात्ररूप है, कारणकार्यभाव कहूं नहीं, जैसे वायु स्पंदरूप होता है, तब भासता है, निस्पंद हुए नहीं भासता, तैसे आत्माविषे चित्त फुरता है, तब आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है, सो क्या वस्तु है, वही आत्मसत्तारूप भावविषे भाव है, जैसे आकाशविषेशून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, ताते कछु भासता है, सो चेतनका आभास प्रकाश है, परमार्थसत्ता केवल अपने आपविषे स्थित है अरु

तिसते इतर कहिये तौ न द्रष्टा है, न दृश्य है, आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों है ॥ राम उवाच ॥ ब्राह्मण ब्रह्मके वेत्ता ! जो इसप्रकार है, तौ कारणकार्यका भेद कैसे प्रवर्त्तता दीखता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसा तैसा रूप हो भासता है, चेतन आकाशही जगत्‌रूप हो भासता है,अपर न कहूँ कारण है, नकार्य है, जैसे स्वप्नसृष्टि कारणकार्यसहित भासती है, सो किसी कारणते तौ नहीं उपजी; अकारणरूप है, तैसे यह सृष्टि किसी कारणते नहीं उपजी अकारणरूप है, न कहूँ करता है, न भोगता है, भ्रम करिकै कर्त्ता भोक्ता भासता है, स्वप्नकी नांई विकल्प उठते हैं, वास्तवते ब्रह्मसत्ताही है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे नगर अरु जगत् भासताहै, सो चिदाकाश अनुभवसत्ताही ऐसे हो भासतीहै, अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् संपूर्ण चिदाकाश है,जब ऐसे जानैगा, तब जगत भी भ्रमतत्त्व भासैगा॥ हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरणेकरिकै उपजा है, जैसे मूर्ख बालक अपने परछायेविषे वैताल कल्पता है, तैसे चित्तके भ्रमकरि जगत्‌को कल्पता है, सो इसका कारण ब्रह्मही है, अपर कारण कहूँ नहीं, काहेते कि महाप्रलयविषे चिदाकाशही रहता है, सो कारण किसका होवै, वही सत्ता इंद्ररूप है, वही रुद्ररूप है, नदियां पर्वत आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो वहीरूप है, तिसते इतर तौ द्वैतरूप कछु नहीं जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसा रूप भासता है, जैसे चिंतामणि कल्पवृक्षविषे जैसे भावना कहूँ करता है, तैसा रूप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है,तैसाही पदार्थरूप हो भासता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कारणकार्याभाववर्णनं नाम द्विशताधिकषोडशः सर्गः ॥ २१६ ॥

द्विशताधिकसप्तदशः सर्गः २१७.

अभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अचैत्य चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है, सो इस जगत्‌रूप हो भासती है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जब

अहं फुरणा होता है, तब जगत् हो भासताहै, सो अहंरूपी जीव है, जगत्विषे जीवता दृष्ट आता है, परंतु मृतककी नांई स्थित है, अरु तू मैं आदिक सब जगत् जीवता बोलता चलता व्यवहार करताभी दृष्टआता है, परंतु काष्ठ मौनवत् स्थित हैं,आत्मरूपी रत्नका जगत्रूपी चमत्कार है, जो प्रकाश आत्माते भिन्न कछु नहीं; जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे धुँएका पर्वत मेघ भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, तैसे यह जगत् लक्षण भी भासता है, परंतु वास्तवते कछु नहीं, अवस्तुभूत है, उपजा कछु नहीं ॥ हे रामजी। चित्तरूपी बालकने जगत्जालरूपी सेना रची है, सो असत् है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आदिक भूत भ्रांतिमात्र हैं, तिनविषे सत् प्रतीति करनी मूर्खता है, बालककी कल्पनाविषे सत् प्रतीति बालकही करते हैं, इस जगत्को आश्रय करिकै जो सुखकी इच्छा करते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कहूँ आकाशके धोनेका यत्न करै, तैसे उनका यत्न व्यर्थ है, यह सब जगत् भ्रांतिरूप है, इसविषे जो आस्था करते हैं,अरु इसके पदार्थ पानेका यत्न करते हैं, सो क्या करते हैं,जैसे कहूँ पुत्र पानेका यत्न करै सो व्यर्थ है, तैसे जगत्विषे जो सुखके पानेका यत्न करते हैं, सो व्यर्थ यत्न है ॥ हे रामजी ! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं,जो भ्रांतिमात्र हैं, तौ इनकी उत्पत्ति किसकरि कैसे कहिये,जो मूर्ख बालक हैं,तिनको पृथ्वी आदिक जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं, ज्ञानवान्को सत्य नहीं भासते, अज्ञानीको सत्य भासते हैं, तिनसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, जैसे सोएको स्वप्नविषे आत्म-अनुभवसत्ताही पृथ्वी पहाड नदियां जगत् हो भासती है, सो सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं, तैसे यह जगत् आकार सहित भासता है,परंतु आकार कछु बना नहीं, वही निराकारसत्ता जगत्रूप हो भासती है, सो निराकारही है, अपर जगत् कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र० अभावप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तदशः सर्गः ॥ २१७ ॥

द्विशताधिकाष्टादशः सर्गः २१८.

विपश्चितसमुद्रप्राप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ जगत् अविद्यमान है, अरु अज्ञानकरिकै स्वप्नकी नाईं सत् भासता है, विद्यमान भी स्वप्न-नगर शून्यरूप है, तैसे यह जगत् अज्ञानरूप है, सो अज्ञान क्या है, अरु केते कालकी अविद्या हुई है, अरु किसको है, अरु इसका प्रमाण क्या है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझको जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्या है, सो अविद्या अनंत है, देश अरु काल-करि इसका अंत कदाचित् नहीं होता, ताते अनंत है, जिसको अपने वास्तवस्वरूपका अज्ञान है, तिसको सत्य दिखाई देता है, इसके ऊपर एक इतिहास है सो सुन ॥ हे रामजी ! आत्मरूप चिदाकाश है तिस चिदाकाशके अणुविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं, तिन विषे एक ब्रह्मांड इसी जैसा है, तिस ब्रह्मांडके जगत्विषे तुरमत नाम देश है, तिसका राजा विपश्चित था, सो एकसमय अपनीसभाविषे बैठा था, अरु चारोंदिशा उनकी सेना है, अरु बडा तेजवान् अरु अग्निदेवताको पूजता था,अपर किसी देवताको पूजता न था, अग्निहीको देवता जानिकरि पूजता था, अरु बडी लक्ष्मीकरि शोभता था, अरु बहुत गुणकरि संपन्न था, अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न था.एक कालमें सभाविषे बैठा था कि पूर्व दिशाकी ओरते हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा जो मंडलेश्वर पूर्व दिशाका था, सो जराकरि मृतक भया है, सो कहां गया, मानौं यमको जीतने गया है, ताते पूर्व दिशाकी रक्षा करौ, वहां अपर मंडलेश्वर आता है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वह कहताही था कि अपर हरकारा शीघ्रतासों आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन् ! तुमने जो पश्चिमदिशाका मंडलेश्वर किया था, सो तपकरि मृतक भया है, अरु तहां एक अपर मंडलेश्वर आता है, ताते वहांकी रक्षा करौ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दूसरा हरकारा कहता था, कि अपर हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन् ! दक्षिण दिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिमकी

रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गहीविषे मृतक भया, ताते दोनोंकी रक्षाके निमित्त सेना भेजो कि शत्रु दृढ आनि हुआ है, विलंबका समय नहीं, शीघ्रही सेना पठावहु ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा सुनकरि बाहर निकसा, अरु कहने लगा, सब सेना मेरेपास आवै, अरु दिशाकी रक्षाके निमित्त जावै, बडे शस्त्र ले जावहु, हस्ती घोडा रथ आदिक सेना ले जावहु ॥ हे रामजी ! इसप्रकार राजा कहता था, कि एकअपर पुरुष आया, अरु कहत भया॥हे भगवन्! उत्तर दिशाकी ओरजोतुम्हारा मंडलेश्वर था, तिसके ऊपर अपर शत्रु आनि पड़ा है, बडा युद्ध होता है, ताते उसकी रक्षाके निमित्त सेना भेजहु विलंबका समय नहीं, शीघ्रही भेजहु, अरु आगे कई दुष्ट चले आते हैं, मैं बहुरि जाता हौं; कि, मेरा स्वामी युद्ध करता है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकारि वह गया, तब द्वारपाल आयकरि कहत भया ॥ हे भगवन् ! उत्तर दिशाका मंडलेश्वर आया है, आज्ञा होवै तौ ले आऊं, जब राजाने कहा, ले आवहु, वहां ले आया, राजाके सन्मुख आयकरि प्रणाम किया, राजा देखत भया, कि अंग टूटि गये हैं; अरु मुखते रुधिर चला जाता है, ऐसी अवस्थामें भी धैर्यसंयुक्त मंडलेश्वर कहत भया ॥ हे भगवन् ! यह मेरे अंगका हाल भया है, मैं तुम्हारा देश राखनेको चला था, अरु मेरे ऊपर शत्रु आनि पडा, मेरी सेना थोडी थी, इस कारणते दौडिकरि तुम्हारे पास आया हौं कि प्रजाकी रक्षा करहु ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने कहा, तब राजाने सब मंत्री बुलाये, मंत्री राजापास आये, अरु कहत भये ॥ हे भगवन् ! अब तीन उपाय छोडहु, अरु एक उपाय करहु, एक नम्रता छोडहु, दूसरा धन देना छोडहु, अरु बुद्धिभेद भी छोडहु ये तीनों अब नहीं चाहिये काहेते कि, नम्रता माननेवाले नहीं, यह नीच पापी है, अरु धन देना इसकारणते नहीं चाहिये कि, यह आधीन है, अरु बुद्धिकरि भेद भी नहीं जानते, जो सबमिलि इकट्ठे भये हैं, ताते यह तीनों उपाय छोडहु, अरु एक उपाय करहु, कि युद्धही होवै, विलंबका समय नहीं, उनकी सेना अब निकट आई है, अब उत्साह सहित कर्म करना है, जो प्राणकी रक्षा नहीं चाहनी ॥

हे रामजी ! इसप्रकार जब मंत्रीने कहा, तब राजाने वचन कहा, कि सब सेना मेरे संभवकरि उनके सन्मुख जावे, निशान नगारे हस्ती घोडा रथी पियादा सेनाके साथ जावैं, इसप्रकार जब राजाने कहा, तब सब सेना विद्यमान् आनि स्थित भई, नौबत नगारे बाजने लगे नानाप्रकारके शस्त्रसहित चारों प्रकारकी सेना इकट्ठी भई, तब राजाने कहा ॥ हे साधो ! तुम आगे जावो, सेना आगे होवै, तिसके पाछे सेनापति जावै, तिसके साथ युद्ध करहु, स्नान करिकै मैं भी चला आता हौं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहकर मंत्रीको चलाय अरु पाछे गंगाजलसे राजाने स्नान किया, एक स्थानविषे अग्निका कुंड था, तिसके निकट जायकरि हवन किया, जब अग्नि बहुत प्रज्वलित भई तब राजाने कहा ॥ हे भगवन् ! एता काल मुझको व्यतीत भया है, कि यथाशास्त्र विचरता रहा हौं अरु अपनी प्रजाको सुखी राखी है, अरु अभय किया है, अरु शत्रुको नाश करनेहारा हौं, शत्रुको मार सिंहासनके तले दिया है, आप सिंहासनपर बैठा हौं, पातालवासी दैत्य सब मैं जीति राखे हैं, अरु दशों दिशा अपने आधीन करी हैं, सात समुद्रपर्यंत मेरे भयकरि कँपते हैं, अरु सब ठौर मेरी कीर्ति हो रही है, अरु रत्नोंके स्थान मेरे भरे हुए हैं, वस्त्र सेना घोडे हाथी भी बहुत हैं, अरु बडे भोग भी मैं भोगे हैं, अरु दान भी बडे बडे किये हैं, सिद्ध देवताविषे भी मेरा यश हुआ है, सब ओर मेरा यश हुआ है, अरु शरीर भी बडा हुआ है, अरु क्षोभ भी बडा आनि प्राप्त भया है. अब मेरा जीवनेते मरणा भला है ॥ हे भगवन् ! मैं तुमको शीश निवेदन करता हौं, कृपा करिकै लेवहु, अरु जब मुझपर प्रसन्न होवोगे, तब एककी चार मूर्ति देना जो चारों ओरको जावैं, अरु जहां मुझको कछु कष्ट होवै तहां दर्शन देना ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकरि खड्ग निकास अपना शीश काटिकरि अग्निविषे डारि दिया अरु धड आपही अग्निविषे जाय पडा, शीश धड दोनों भस्म होगये अग्निने भक्षण करिलिये, बहुरि उसी जैसी चार मूर्तियां निकस आईं, उसी जैसे आकार वस्त्र भूषण मुकुट कवच पहिरे हुए नानाप्रकारके शस्त्र धारे हुए उदय

भये ॥ हे रामजी ! इसप्रकार बडे तेजसंयुक्त चारों राजा विपश्चित प्रगट भये, रथ हस्ती घोडा प्यादा चारों प्रकारकी सेना भी प्रगट भई, अरु चारों ओरते वहां शत्रु आनि युद्ध करनेलगे बडा युद्ध होना है, नगर जलाते हैं, अरु हाहाकार शब्द होता है, शूरवीर युद्धविषे प्राणको त्यागते हैं, अरु उछलकर लडते हैं, बडे रुधिरके प्रवाह चलते हैं, खड्ग बरछीकी वर्षा होती है, अग्निका अट्ट अट्ट शब्द होता है, मानो समयविना प्रलय आने लगी है, बडा युद्ध होताहै, जो शूरमे हैं, सो युद्धविषे मरणेको जीवना मानते हैं, अरु जीवणेको मरण जानते हैं, ऐसे निश्चयको धारिकै युद्ध करते हैं, अरु कायर हैं सो भाग भाग जाते हैं, जैसे गरुडके भयकरि सर्प भागि जाते हैं, अरु शूरमे सन्मुख होकरि लडते हैं, इसप्रकार बडा युद्ध होने लगा, रुधिरकी नदियां चलीं, तिनविषे हस्ती घोडा रथ शूरमे बहते जावैं, अरु बडे बडे वृक्ष नगर गिरते बहते जावैं, अरु मांसभक्षणके निमित्त योगिनी आनि स्थित भई हैं, जो जो युद्धविषे मृतक होवैं, तिनको अप्सरा विद्याधरी विमानके ऊपर चढा-यकरि स्वर्गको ले जावैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब युद्ध हुआ, तब राजा विपश्चितकी सेना सब शून्य हो गई, अर्थात् थोडी हो गई, अरु राजानें सुना कि सेना बहुत मारी गई है, तब राजाने असवार होकर आय देखा कि सेना थोडी हो गई है, एक एक राजा एक एक ओरको गया, चारों राजा चारों ओरको गये, अरु विचार किया कि, यह महा-गंभीर सेनारूपी समुद्र है, तिसविषे शस्त्ररूपी जल है, धारारूपी तरंग हैं, अरु मच्छरूपी शूरमे हैं, ऐसा जो समुद्र है, तिसको अगस्त्य होकरि मैं पान करौं, ऐसे विचार करि उद्यम किया, काहेते कि विशेष सेना देखी, एक तौ आगेहीको चले आवैं, अरु एक शूरमे तेजकरि सेनाको जलावैं, अरु तीसरी बहुत हैं ऐसी तीन प्रकारकी सेनाके तीन उपाय किये, प्रथम तौ वायव्यास्त्र हाथ लिया, परमात्मा ईश्वरको नमस्कार किया अरु मंत्र पढिकै पवनका अस्त्र चलाया तिसकरि अंधेरी आई, तब जेती सेना आगे चली आती थी, सो सब पाछे उलट उडने लगी, बहुरि मेघरूपी अस्त्र चलाया, तब वर्षा होने लगी,

तिसकरि जो तेज उनकी सेनाको जलाता था सो शीतल हो गया, तिसके अनंतर शिव अस्त्र चलाया, सो कैसा चलाया, प्रथम शस्त्रकी नदी चली, बहुरि त्रिशूलकी नदी चली, बहुरि चक्रकी नदी चली, बहुरि वज्रकी नदी चली, बरछीकी नदी चली, बिजलीकी नदी चली, अग्निकी नदी चली इत्यादिक जो शस्त्र अरु अस्त्र हैं तिनकी वर्षा हुई, जब इसप्रकार नदियां चलीं तब जो कछु सेना सन्मुख आती थी सो मृतक हो गई, जैसे कमलिनी काटी जाती है, तैसे शूरवीर काटे जावैं, पहाडकी कंदरा गिरि बहुत उडते जावैं, समुद्रविषे जाय पडैं, सुमेरु कंदराविषे जाय छुपै, समुद्रविषे जायकरि सेना डूबै, जैसे अज्ञानी विषयमें डूबते हैं, इसप्रकार दोनों ओरते सेना शून्य भई, चारों दिशाकी सेना नाशको प्राप्त भई, चीन महाचीन देशके अरु पहाड़ कंदराके रहनेवाले सब बहते जावैं ॥ हे रामजी ! कई शस्त्रकरि अरु आंधीकरि उडे सो सब क्षेत्रविषे जाय पडे, कई वनविषे, कई नीचे देशविषे, जो पुण्यवान् थे, सो उत्तम क्षेत्रविषे जाय पडे, मृतक हुए वह स्वर्गको गये अरु पापी नीच देशविषे जाय पडे तिसकरि दुर्गतिको प्राप्त हुए. कई पिशाच हुए, कितनेको विद्याधारी ले गईं, कई ऋषीश्वरके स्थानोंविषे जीते जाय पड़े तिनकी उनने रक्षा करी इसी प्रकार बाणकरि छेदे हुए नाशको प्राप्त भए, रुधिरकी नदियोंविषे बहते समुद्रकी ओर चले जावैं॥ हे रामजी ! जब सब सेना शून्य हो गई, तब आकाश शुद्ध हुआ जैसे ज्ञानीका मन निर्मल होता है, तैसे आकाश अधिक क्षोभते रहित भया, जब सब सेना शून्य भई, तब चारों राजा आगेको चले जावैं ॥ हे रामजी ! चारों विपश्चित चारों दिशाके समुद्रके ऊपर जाय प्राप्त ये, तब क्या देखे कि बड़े गंभीर समुद्र हैं, रत्न चमकते हैं, कहूं हीरा मोती चमकते हैं, इत्यादिक रत्नमणिकी जात सब देखत भये, अरु बड़े गंभीर समुद्रविषे बड़े मच्छ देखते भये, अरु तरंग उछलते हैं, अरु रेतीविषे नानाप्रकारके वृक्ष लगे हुए हैं, लौंग एलाचीके वृक्ष चंदनके वृक्ष हैं, इत्यादिक वृक्ष समुद्र ऊपर जायकरि देखते भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रक० विपश्चितसमुद्रप्राप्तिनाम द्विशताधिकाष्टादशः सर्गः ॥२१८॥

द्विशताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः २१९.

जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार राजा विपश्चित समुद्रपार जाय प्राप्त भये, तब उनके साथ जो मंत्री पहुँचे थे, सो राजाको सब स्थान दिखाते भये, कैसे स्थान हैं, बड़े गंभीर स्थान अरु बड़े गंभीर समुद्र, जो पृथ्वीके चौफेर वेष्टित हैं, अरु बडे तमाल वृक्ष अरु बावलियां पर्वतकी कंदरा हैं, तलाव हैं, नानाप्रकारके स्थानोंको देखत भये, ऐसा स्थान राजाको मंत्री दिखाइकारि कहत भये ॥ हे रामजी ! तीन पदार्थ बडे अनर्थके कारण हैं, अरु परमसारका कारण हैं, एक तौ लक्ष्मी, अरु दूसरा देह आरोग्य अरु तीसरी यौवनावस्था; जो पापी जीव हैं सो लक्ष्मीको पापविषे लगाते हैं, अरु देह अरोगकारि विषयको सेवते हैं, अरु यौवन अवस्थाविषे भी सुकृत नहीं करते, पाप करते हैं, अरु जो पुण्यवान् हैं, सो मोक्षविषे लगाते हैं, लक्ष्मीकारि यज्ञादिक शुभ कर्म करते हैं, देह अरोगकारि परमार्थ साधते हैं, यौवनअवस्थाविषे भी शुभ कर्म करते हैं, पाप नहीं करते ॥ हे राजन् ! समुद्र अरु पर्वतके किसी ठौर-विषे रत्न होते हैं, किसी ठौरविषे दर्दुर होते हैं, तैसे संसाररूपी समुद्रविषे कहूँ रत्नोंकी नाईं ज्ञानवान् होते हैं, अरु अज्ञानीरूपी दर्दुर होते हैं ॥ हे राजन् ! यह समुद्र कैसा है, मानो जीवन्मुक्त है, काहेते जो जलकारि भी मर्यादा नहीं छांडता, अरु रागद्वेषते रहित है, किसी स्थानविषे दैत्य रहते हैं; कहूं पंखसंयुक्त पर्वत हैं, कहूं वडवाग्नि है, कहूँ रत्न हैं, परंतु समु-द्रको न किसी स्थानविषे राग है, न द्वेष है, जैसे ज्ञानवान्को किसीविषे रागद्वेष नहीं, परंतु सबमें ज्ञानवान् कोऊ विरला होता है, जैसे जिस बांसते मोती निकसता है, सो बांस विरला होता है, अरु जिस सीपमें मोती निकसता है, सो सीप भी विरली होती है, तैसे तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोऊ विरला होता है॥ हे रामजी ! संपूर्ण रचना यहांकी देख, पर्वत कैसे हैं, जिनके किसी स्थानविषे पक्षी रहते हैं, किसी स्थानविषे विद्याधर हैं,

देवियां विलास करती हैं, कहूं योगी रहते हैं, कहूं ऋषीश्वर मुनीश्वर रहते हैं, कहूं ब्रह्मचारी वैरागी रहतेहैं,इत्यादिक पुरुप रहते हैं, यह द्वीप हैं, अरु शांत समुद्र हैं, जिनके बडे तरंग उछलते हैं, अरु पर्वतका कौतुक देख, आकाश देख, चंद्रमा सूर्य तारे देख, ऋषि मुनि देख,सर्वको ठौरआकाश दे रहा है, महापुरुषकी नांई, अरु आप सदा असंग रहता है, शुभअशुभ दोनोंविषे तुल्य है, स्वर्गादिक शुभ स्थान हैं, अरु चांडाल पापी नरक स्थान हैं, अरु अपवित्र हैं परंतु आकाश दोनोंविषे तुल्य है, असंगता करिकै निर्विकार है,जैसे ज्ञानीका मन सर्व स्थानते निर्लेप होता है, तैसे आकाश सर्व पदार्थते असंग अरु न्यारा है, अरु महात्मा पुरुषकी नांई सर्वव्यापी है॥ हे आकाश! तू कैसा है, सर्व प्रकाश तेरेविषे अंधकार दृष्ट आता है, यह आश्चर्य है॥ हे आकाश! तू सबका आधारभूत है, तुझको शून्य कहते हैं, सो मूर्ख हैं, दिन तुझविषे श्वेत भासते हैं, और रात्रिको अन्धकार भासता है, अरु संध्याकालमें तेरेविषे लाली भासती है, अरु तू तीनोंते न्यारा है, यह तीनों राजसी तामसी सात्त्विकी गुण हैं, तू इनके होते भी असंग है॥ हे आकाश! तू निर्मल है, प्रकाश अरु तप तेरेविषे दृष्टि आते हैं, परंतु तू सदा ज्योंका त्यों है, यह अनित्यरूप है, चंद्रमा तेरेविषे शीतलता करता है, अरु सूर्य दाहक होता है, अरु तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं, पापी आदिक अपवित्र स्थान हैं, परंतु सबविषे एक समान ज्योंका त्यों रहता है, वृक्षके बढने ऊंचे होनेको तूही स्थानदेता है,अपनी महिमाको तू आपही जानै अपर कोऊ तेरी महिमाको पाय नहीं सकता, तू निष्किंचन अद्वैत है, अरु सर्वको धारि रहा है, अरु सर्वका अर्थ तेरेकारि सिद्ध होता है, तृण जल नीचेको जाता है, अरु तू सबते ऊंचा है, अरु विभु है, अनेक पदार्थ तेरेविषे उत्पन्न होते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तू सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, अरु अग्निही-विषे लीन हो जाते हैं, तैसे तेरेविषे अनंत जगत् उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, तू सदा ज्योंका त्यों रहता है, जो तुझको शून्य कहते हैं, सो मूढ हैं॥ हे राजन्! ऐसा आकाश कौन है, सो सुन, ऐसा आकाश

आत्मा है, जो चेतन आकाश है, तिसविषे अनंत जगत् उत्पन्न होतेहैं, अरु लीन हो जाते हैं, तिसको जो शून्य कहते हैं, सो महामूर्ख हैं, जो सर्वका अधिष्ठान है, अरु सर्वको धारि रहा है, अरु सदा निःसंग है, सो ऐसे चिदाकाशको नमस्कार है ॥ हे राजन्! यह आश्चर्य है, जो सदा एकरस है, तिसविषे नानातरंग भासते हैं, यही माया है॥ हे राजन्! एक विद्याधर अरु विद्याधरी थे, तिनके मंदिरविषे एक ऋषि आय निकसा, तिसका विद्याधरने आदरभाव न किया, तब ऋषीश्वरने शाप दिया कि, तू द्वादश वर्षपर्यंत वृक्ष होवैगा, तब वह विद्याधर वृक्ष होगया, अब जो हम आये हैं; हमारे देखतेही वह शापते मुक्त हुआ, वृक्षभावको त्यागिकरि बहुरि विद्याधर हुआ है, यह ईश्वरकी माया है, कबहूं कछु हो जाता है,कबहूँ कछु हो जाता है ॥ हे मेघ! तू धन्य है, तेरी चेष्टा भी सुंदर है, अरु तीर्थविषे सदा तेरा स्नान होता है, तू सबते ऊंचे विराजता है, सब आचार तेरा भला दृष्ट अता है, परंतु एक तेरेविषे नीचता है, जो गडेकी वर्षा करता है, तिसकरि खेतियां नष्ट हो जाती हैं, बहुरि उगतीं नहीं, तैसे अज्ञानकी चेष्टा देखने मात्र सुंदर है, अरु अंतरते मूर्ख है, तिनकी संगति बुरी है, अरु ज्ञानवान्की चेष्टा देखने मात्र भली नहीं तौ भी उनकी संगति कल्याण करती है ॥ हे राजन्! सबते नीच श्वान है, काहेते कि, जो कोई तिसके निकट आता है, तिसको काटता है, अरु घरघरविषे भटकता फिरता है, अरु मलीन स्थानोंविषे जाता है, तैसे अज्ञानी जीव श्रेष्ठ पुरुषकी निंदा करता है, अरु मनविषे तृष्णा रहती है, अरु विषयरूपी मलीन स्थानोंविषे गिरते हैं, सो मूर्ख मनुष्य मानौ श्वान हैं, अरु श्वान नीचते नीच है, जो ब्रह्माने संपूर्ण जगत्को रचा है, शुभ भी अरु अशुभ भी तिसविषे श्वान नीच है, सो श्वान क्या समझा है? एक पुरुष श्वानसों प्रश्न करता भया ॥ हे श्वान! तुझते कोई नीच है अथवा नहीं, तब श्वानने कहा, मुझते नीच मूर्ख मनुष्य हैं, उनते मैं श्रेष्ठ हौं, प्रथम तौ मैं शूरमा हौं, अरु जिसका भोजन खाता हौं तिसकी रक्षा करता हौं, अरु उसके द्वारे बैठा रहता हौं, अरु मूर्खते यह तीनों कार्य नहीं होते तातै मैं उसते श्रेष्ठ हौं, काहेते कि मूर्खको देहाभिमान

है, ताते श्वानसों नीच है ॥ हे राजन् ! परम अनर्थका कारण देहाभिमान है, देहके अभिमान करिकै परम आपदाको प्राप्त होता है, सो मूर्ख नहीं मानौ कौआ है, कौआ क्या करता है, सबते ऊंचे टासपर जाय बैठता है, अरु कां कां करता है, मानौ मुखकी ध्वजा विराजती है॥ हे राजन् ! कमलकी खान तालके निकट एक कौआ जाय निकसा सो क्या देखा कि भँवर कमलनकी सुगंधि बैठे ले रहे हैं, तिनको देखकर हँसने लगा अरु कां कां शब्द करत भया, तिसको देखि भँवरे हँसे कि यह- कमलकी सुगंधिको क्या जानै, तैसे जिज्ञासी भँवरेवत् हैं;परमार्थरूपी सुगंधिको लेते हैं, अरु जो अज्ञानीरूपी कौए हैं,सो परमार्थरूपी सुगंधिको नहीं जानते इस कारणते मूर्खको देखिकारि जिज्ञासी हँसते हैं, जो आत्मरूपी सुगंधिको नहीं जानते अरे कौआ ! तू क्यों हंसकी रीस करता है, हंस तौ हीरा मोती चुगनेहारे हैं अरु तू नीच स्थानोंके सेवनेहारा है, मंत्रीने कहा हे भँवरे ! कोयल ! तुम कमलको देखकरि क्या प्रसन्न होते हो, प्रसन्न तब होवहु, जब वसंत ऋतु होवै, यह तौ वर्षाकालका समय है, यह फूल गड़ेकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे राजन् ! कोयलरूपी जिज्ञासी हैं, तिनको यह उपदेश है ॥ हे जिज्ञासी ! जो सुंदर पदार्थ तुमको दृष्ट आते हैं, इनको देखिकारि तुम क्यों प्रसन्न होतेहौ, तब प्रसन्न होवै जो यह सत्य होवै, यह तौ मिथ्या हैं, अविद्या करिकै रचे हैं, तुम क्यों प्रसन्न होते हौ अपने कुलविषे जाय बैठहु, अज्ञानीका मार्ग छोड़ि देवहु, जैसे कौआ हंसविषे जाय बैठता है, तौ भी उसका चित्त अपने गंदगीके भोजनविषे होता है, जो हंसका आहार मोती है, तिन मोतीकी ओर देखता भी नहीं, तैसे अज्ञानी जीव कदाचित् संतकी संगतिविषे जाय भी बैठता है, तौ भी उसका चित्त विषयकीओर भ्रमता फिरताहै, स्थिर नहीं होता, अरु जैसे कोयलका बच्चा कौआको माता पिता जानकरि उनविषे जाय बैठता है, तब उनकी संगतिकरि यह भी गंदगीके भोजन करनेहारा हो जाता है, तिसको वर्जन करते हैं, रे बेटा ! तू कौआकी संगति मत बैठहु, अपने कुलविषे बैठ,काहेते कि तेराभी नीच आहार हो जावैगा, तैसे जिज्ञासी जो अज्ञानीका संग करता है, तब

उनके अनुसार तिसको विषयकी तृष्णा उत्पन्न होती है, तिससे वर्जन करते हैं, रे जिज्ञासी! तू मूर्ख अज्ञानीविषे मत बैठ अपने संतजन कुल हैं, तिनविषे बैठ, जैसे कोयलके बच्चेको कौए सुख देनेहारे नहीं होते तैसे मूर्ख तुझको सुख देनेहारे नहीं होवैंगे, मंत्री बहुरि कहता है, अरी ईल! तू क्यों हंसकी रीस करती है, तू भी बहुत ऊंचे उड़ती है, परंतु हंसका गुण तेरेविषे कोऊ नहीं, जब तू मांसको पृथ्वीपर देखती है, तब वहां गिरते पडती है, अरु हंस नहीं गिरते, तैसे जो मूर्ख हैं सो संतकी नांई ऊंचे कर्म भी करते हैं, परंतु विषयको देखकर गिरते हैं, अरु संत नहीं गिरते तौ मूर्ख संतकी कैसे रीस करैं, बहुरि मंत्री कहता है॥ हे बगला! तू हंसकी रीस क्या करता है, अपने पाखंडको छिपायकारि तू आपको हंसकी नांई उज्वल दिखाता है, जब मच्छ निकसता है, तब तू ग्रासिलेताहै, यह तेरेविषे अवगुण है, अरु हंस मानस सरोवरके मोती चुगनेहारे हैं, तू टोएमेंते तृष्णा करिकै मच्छी खानेहारा है, तू क्यों आपको हंस मानता है? तैसे अज्ञानी जीव विषयकी तृष्णा करते हैं, अरु ज्ञानवान् विवेक करि तृप्त हैं, तिनकी रीस अज्ञानी क्या करता है॥ हे राजन्! जो हंस हैं सो सदा अपनी महिमाविषे रहते हैं, अरु अपना जो मोतीका आहार है, तिसको भोजन करते हैं, अपर किसी पदार्थको स्पर्श नहीं करते जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमाको देखकारि शोभा पाते हैं, चंद्रमाविना शोभा नहीं पाते तैसे बुद्धि भी तब शोभा पाती है, जब ज्ञान उदयहोता है, आत्मज्ञानविना बुद्धि शोभा नहीं पाती, अरु बड़े बड़े सुगंधिवाले वृक्ष हैं, तिनका माहात्म्य भँवरेही जानते हैं, इतर जीव नहीं जानते॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! समुद्रके कांठेपर राजा विपश्चितको मंत्री ऐसे कहकारि बहुरि कहत भये॥ हे राजन्! अब पृथ्वी नगरके मंडलेश्वर स्थापन करौ॥ हे रामजी! जब ऐसे मंत्रीने कहा तब सर्व दिशाके मंडलेश्वर स्थापन किये; चारों राजा जो बैठे थे, अपनी अपनी दिशाके समुद्र ऊपर सो आपसमें कहत भये अपने मंत्रीसों॥ हे साधो! अब हम दिग्विजय करी है, समुद्रपर्यंत अब हमारी जय हुई है, अब चैत्य जो है दृश्य सो दृश्य विभूतिको देख, समुद्रके पार द्वीप है, बहुरि समुद्र है, बहुरि

द्वीप है, बहुरि समुद्र है, सप्त द्वीप सात समुद्र हैं, तिनके पार क्या है, इसप्रकार सर्व दृश्य देखनेकी इच्छा करिकै अग्निदेवताका आवाहन किया तब इनकी दृढ भावना करिकै अग्निदेवता सन्मुख आनि स्थित भया अरु कहत भया ॥ हे राजन्! जो कछु तुमको वाछां है सो मांगौ तब राजाने कहा॥ हे भगवन्! जो ईश्वरकी माया पांचभौतिक दृश्यविषे भूत हैं, तिनके देखनेकी हमारी इच्छा पूर्ण करणेहारे तुम हौ ॥ हे देव! हम इस शरीर साथ दृश्य देखने जावैं, जब यह शरीर चलनेते रहित होवै, तब मंत्र सत्ता करिकै जावैं, जहां मंत्रकी गम भी न होवै, तहां सिद्धता करिकै जावैं, जहां सिद्धताकी गम भी न होवै, तहां मनके वेगकरि जावैं, मृत भी होय न जावैं, यह वर हमको देवहु ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार राजाने कहा, तब अग्निने कहा ऐसेही होवै, इसप्रकार कहिकरि अग्नि अंतर्धान हो गया, जैसे समुद्रसों तरंग उठिकरि बहुरि लय हो जावै, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, जब राजा विपश्चित वरको पायकरि चलनेको समर्थ भये, तब जेते कछु मंत्री मित्र थे सो रुदन करने लगे ॥ हे राजन्! तुमने यह क्या निश्चय किया है, ईश्वरकी मायाका अंत किसीने नहीं पाया, तुम चलौ अपने स्थानको, यह क्या निश्चय तुमने धारा है॥ हे रामजी! इसप्रकार मंत्री कहते रहे, परंतु राजा उनको आज्ञा देकरि एक एक दिशाके समुद्रविषे प्रवेश किया, चारों दिशाविषे चारों राजा प्रवेश करत भये, जो बड़े बड़े शक्तिवान् गुणज्ञ मंत्री थे सो साथही चले, तब राजा मंत्रशक्ति करिकै समुद्रको लंघि गया, जैसे कहूँ पृथ्वी ऊपर चलै तैसे चला गया; अपर द्वीपविषे जाय निकसा, बहुरि बड़ा समुद्र आया तिसविषे जाय प्रवेश किया, अरु बड़े तरंग उछले जिनका सौ योजनपर्यंत विस्तार है, कभी अधको कभी ऊर्ध्वको जावै ॥ हे रामजी! ऐसे तरंग उछले मानौ पर्वत उछलते हैं, जब ऊर्ध्वको उछलैं तब स्वर्गपर्यंत उछलते भासैं, अरु जब अधको जावैं तब पातालपर्यंत चलते भासैं, जैसे तृण फिरता है, तैसे राजा फिरै, इसप्रकार कष्टते रहित समुद्रको लंघि गये, अरु दिशाको लंघि गये परंतु मध्य जो वृत्तांत हुआ है, सो सुन, क्षीरसमुद्रविषे एक मच्छ रहता था, कैसा मच्छ था कि, सर्वदेवता

तिसको प्रणाम करते थे, विष्णु भगवान्के मच्छ अवतारके परिवारविषे था, जब राजाने क्षीरसमुद्रविषे प्रवेश किया, तब राजाको मुखमें डारि लिया, तब राजा मंत्रके बलकरि तिसके मुखते निकस गया, आगे बहुरि एक मच्छ था, तिसनेभी मुखमें लिया, तिसते भी निकस गया, बहुरि आगे पिशाचनीका देश था, वहां राजाको काम करिकै पिशाचने मोहित किया, अरु दक्षप्रजापतिकी कछु अवज्ञा करी, तिसने शाप दिया, तिस-करि राजा वृक्ष हो गया, केता काल वृक्ष रहा, बहुरि छूटा, एक देशविषे दर्दुर जाय हुआ, सौ वर्षपर्यंत खाईंविषे पडा रहा, बहुरि तिसते छूटा मनुष्य आय भया, तहां किसी सिद्धके शापकरि शिला हो गया, सौ वर्षपर्यंत शिलाही रहा, तिसते उपरांत अग्निदेवताने शिलाते छुडाया, बहुरि मनुष्य हुआ, तब वह सिद्ध आश्चर्यमान हुआ कि मेरे शापको दूर करिकै मनुष्य हुआ है, यह तौ मुझसों भी बडा सिद्ध है, ऐसे जानकरि तिसके साथ मैत्री करी, इसप्रकार दूसरे समुद्रको लंघता भया, क्षीरसमुद्र, खारी समुद्र, इक्षुके रसके समुद्र-को, द्वीपको लंघता गया, बहुरि एक अप्सरा करिकै मोहित हुआ, बहुत कालकरि वहांते छूटा. बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, बहुत कालपर्यंत पक्षी होकरि छूटा, बहुरि एक गोपी पिशाचनी थी, तिसने बैल करिकै राखा, तब दूसरे विपश्चितने बैल विपश्चितको उपदेशकरि जगाया ॥ हे रामजी ! चारों दिशाविषे चारों विपश्चित भ्रमते फिरे, दक्षिण दिशाका तौ पिशाचिनी करिकै मोहित हुआ, कामुक भया, इसते लेकरि वह जन्मोंको पावत भया, अरु पूर्वका बहता हुआ मच्छके मुखमें चलागया उसने निकास डारा, इसते लेकरि तौ वह अवस्था देखत भया, अरु उत्तर दिशाका जो होत भया, इसी लेकरि अवस्था देखत भया, अरु पश्चिम दिशाका हेमचूपक्षीकी पीठपर जो प्राप्त हुआ तिसने कुशद्वीपविषे जाय डारा, इसते लेकरि वह भी अनेक अवस्थाको प्राप्त हुआ ॥ हे रामजी ! एक एक विपश्चित अनेक योनि अरु अव-स्थाका भिन्न भिन्न अनुभव करत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ विपश्चित एकही था, उनकी संवित् भी एकही थी आकार-

भी एकही था, तौ भिन्न भिन्न रुचि कैसे भई, जो वह पक्षी हुआ, वह वृक्ष हुआ, इनते लेकरि वासनाके अनुसार शरीरको पाते फिरे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसविषे क्या आश्चर्य है, उनकी संवित् एक थी, परंतु भ्रमकरिकै भिन्नता हो जाती है, जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है, तिसविषे पशु पक्षी हो जाते हैं, अरु भिन्न भिन्न रुचि भी हो जाती है, तैसे उनकी भिन्न भिन्न रुचि हो गई, अरु अपर देख जो शरीर एकही होता है, तिसविषे नेत्र श्रवण नासिका जिह्वा त्वचाकी रुचि भिन्न भिन्न हो जाती है, अपने अपने विषयको ग्रहण करती है, सो एकही शरीरविषे अनेकता भासती है, तैसे उनकी एकही संवित थी, परंतु संकल्प भिन्न भिन्न हो गया, मनके फुरणेकरि एकविषे अनेक भासे, जैसे एकही योगेश्वर होता है, सो इच्छा करिकै अपर अपर शरीरको धारि लेता है, एकविषे अनेक हो जाता है, अरु एक सहस्रबाहु अर्जुन था, सो एक भुजासाथ युद्ध करता था, दूसरी भुजासाथ दान करता था, अरु एकसाथ लेता था, इसी प्रकार सब भुजासाथ चेष्टा करता था, वह भी भिन्न भिन्न हुए, एकही शरीरविषे भिन्न भिन्न चेष्टा होती है, अरु विष्णु भगवान् कहूँ दैत्यसाथ युद्ध करता है, कहूँ कर्म करता है, कहूँ लीला करता है, कहूँ शयन कर रहता है, सो संवित् तौ एकही है, परंतु चेष्टा भिन्न भिन्न होती है, तैसे उनकी संवित्‌विषे अनेक रुचि हुई, इस-विषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जन्मते जन्मांतरको अविद्यक संसारविषे देखत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह तौ बोधवान् विपश्चित थे, बोधवान् तौ जन्म नहीं पाते, उनका जन्म किस प्रकार हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह विपश्चित बोधवान् न थे, परन्तु बोधके निकट थे, धारण अभ्यासवाले थे, जो ज्ञानवान् होते तौ दृश्यभ्रम देखनेकी इच्छा काहेको करते, ताते वह ज्ञान-वान् न थे, धारणा अभ्यासी थे, अरु समुद्रको लंघि गये, अरु मच्छके उदरते बलकरि निकसे, सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है, ज्ञानका लक्षण स्वसंवेद है, परसंवेद नहीं, राजा विपश्चित ज्ञानवान् न थे इस कारणते देशदेशांतरविषे भ्रमते रहे, ज्ञानबिना अविद्यक संसारविषे

जन्ममरणमें भटकते रहे ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् । ज्ञानवान् योगीश्वरको भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालका ज्ञान कैसे होता है, जैसे तीनों काल उसको विद्यमान हैं, अरु एक देशविषे स्थित हुआ सर्वत्र कर्मोंको कैसे करता है, सो सब मेरे तांई कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । अज्ञानीकी वार्त्ता यह मैं तुझको कही है, अरु जेता कछु जगत् है, सो सब चिदाकाशस्वरूप हैं, जिनको ऐसी सत्ताका ज्ञान हुआ है, सो महापुरुष हैं, जैसे स्वप्नते कोई पुरुष जागा है तौ स्वप्नकी दृष्टि सब उसको अपनाही स्वरूप भासती है, उसविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी । जेती कछु नानात्व भासती है सो नाना नहीं अरु अनाना भी नहीं, केवल आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपनी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपने आपविषे स्थित है, अरु यह तीनों काल भी ज्ञानवान्को भ्रमरूप हो जाते हैं, सब जगत् भी ब्रह्मरूप हो जाता है, द्वैतभाव उसका मिटि जाता है, ऐसे ज्ञानवान्को ज्ञानीही जानता है, अपर कोऊ जान नहीं सकता, जैसे अमृतको जो पान करता है, सोई स्वाद जानता है, अपर कोऊ जान नहीं सकता ॥ हे रामजी । ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तौ तुल्य भासती है, परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु अपर है अज्ञानीके निश्चयविषे अपर है, जिसका अंतर शीतल भया है सो ज्ञानवान् है, अरु जिसका अंतर जलता है सो अज्ञानी है, वह बांधा हुआ है, अरु ज्ञानवान् है तिसका शरीर चूर्ण होवै, अथवा राज्य आनि प्राप्त होवै, तौ भी उसको राग द्वेष नहीं उपजता, सदा ज्योंका त्यों एकरस रहता है, वह जीवन्मुक्त है, परंतु यह उसका लक्षण अपर कोऊ नहीं जान सकता वह आपही जानता है, शरीरको दुःख भी आय प्राप्त होता है, सुख भी आय प्राप्त होता है, मरता भी है अरु रुदन भी करता है, हंसता भी है, लेता भी है, देता भी है, इसते लेकरि सब चेष्टा करता दृष्ट आता है, अपने निश्चयविषे न दुःखी होता है, न सुखी होता है, न देता है, न लेता है, सदा ज्योंका त्यों रहता है ॥ हे रामजी । व्यवहार तौ उसका भी अज्ञानीकी नाईं दृष्ट आता है, परंतु अंतरते उसका यह निश्चय होता है, अद्भुत पदविषे स्थित रहता

है, गिरता कदाचित् नहीं, परम उदितरूप होताहै, रागसहित दृष्ट भी आता है, परंतु अंतरते राग किसीविषे नहीं, क्रोध करता भी दृष्ट आता है, परंतु उसको क्रोध कदाचित् नहीं, जैसे आकाश शुभ पदार्थको धारता है, धूम अरु बादलकरि आच्छादित भी दृष्ट आता है, परंतु किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानविषे सब क्रिया दृष्ट आती हैं, परंतु अपने निश्चयविषे किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, जैसे नटवा स्वांग लेआता है, चेष्टा करता देखता है, अरु अंतरते अपने नटत्वभावविषे निश्चय होता है, तैसे ज्ञानवान्को भी सर्व क्रियाविषे अपना आत्मभाव निश्चय होता है, जैसे जिनको स्वप्न आता है, अरु स्वप्नविषे अपना पूर्वरूप स्मरण आता है, तब स्वप्नके पदार्थविषे वर्त्तता है, तौ भी उनके सुखविषे आपको सुखी नहीं मानता अरु दुःखविषे आपको दुःखी नहीं मानता, सब सृष्टि उसको अपना स्वरूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्को अपने स्वरूपके निश्चय करिकै सुख दुःखका क्षोभ नहीं होता, अरु जो ऐसे पुरुष हैं तिनको क्या दुःखसाथ होता है, जैसे उनकी इच्छा होती है, तैसेही सिद्ध होकरि भासती है ॥ हे रामजी! यह जेती सृष्टि हैं, सो सब चित्सत्ताविषे हैं, जो योगीश्वर पुरुष तिसविषे स्थित होकरि जहां प्राप्त हुआ चाहते हैं, तहां अंतवाहकसाथ जाय प्राप्त होते हैं, अरु तीनों काल उनको विद्यमान होते हैं, वह साधन कछु नहीं, परंतु ज्ञानी अवश्यकरि किसनिमित्त यत्न नहीं करता, जैसा आनि प्राप्त होता है तिसविषे प्रसन्न रहता है ॥ हे रामजी! एक कालमें ब्रह्माजी सामवेदको ऊर्ध्वमुख करिकै गायन करते थे, अरु सदाशिवका मान न किया, अपमान किया, तब सदाशिवने अपने नखसे ब्रह्माके पंच शीश काटि डारे, परंतु ब्रह्माजीके मनविषे कछु क्रोध न फुरा, अरु विचारत भया कि, मैं तब भी चिदाकाश था, अब भी चिदाकाश हौं, मेरा तौ कछु गया नहीं, शिरसे मेरा क्या प्रयोजन है, न कछु हानि है, न कछु लाभ है ॥ हे रामजी! इसप्रकार सर्व विश्व रचनेहारे ब्रह्माजीका शिर काटा, जो बहुरि भी शिर लगाइ लेता तौ समर्थ था, परंतु उसको लगानेका कछु प्रयोजन न था, न लगानेविषे कछु हानि थी, उसका भी निश्चय सदा आत्मपदविषे है, इस कार-

णते क्षोभ कछु न हुआ॥ हे रामजी! काम जैसा अपर कोऊ विकार नहीं जो सदाशिव पार्वतीको डावे अंगपर धारते हैं,अरु कामदवके पांच बाण चलनेकरि सर्व विश्व मोहित होती है,तिस कामको सदाशिवने भस्म करि छोडा है,तौ स्त्रीके त्यागनेको समर्थ नहीं क्या,परंतु तिनको राग द्वेष कछु नहीं, इस कारणते त्याग नहीं करते, त्यागनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता,रखनेकरि कछु अनर्थ नहीं होता,जो कछु प्रवाहपतित कार्य हुआ है, तिसको करताहै, खेद कछु नहीं मानता, ताते जीवन्मुक्त है,अरु विष्णुजी सदा विक्षेपमें रहताहै,आपभी कर्म करताहै, अरु लोकसोंभी करावताहै, शरीरको धारताहै, अरु त्यागी होताहै, वृद्धि करताहै,इत्यादिक क्षोभविषे रहता है, सो त्यागनेको समर्थ भी है, परंतु त्यागनेविषे उनका कछुकार्य सिद्ध नहीं होता, अरु करनेविषे कछु हानि नहीं होती, उसको कईगुण-कारि गुणवान् जानते हैं, अरु मुझको तौ शुद्ध चिदाकाशरूप भासता है, मूर्ख कहते हैं, श्याम है, सुंदर है, विष्णु तौ शुद्ध चिदाकाशरूप है, सदा शुद्ध स्वरूपविषे उनको अहंप्रत्यय है, अरु आकाशमार्गविषे जो सूर्य स्थित है, सो कबहूं ऊर्ध्वको जाता है, कबहूं नीचेको जाता है, तिसको स्थिति होनेकी क्या समर्थता नहीं? परंतु चलना अरु ठहरना तिसको दोनों सम हैं, खेदते रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे रहता है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु जीवन्मुक्त चंद्रमा भीहै, सो घटता घटता सूक्ष्म होता दृष्ट आता है,कबहूं बढता जाता है, शुक्ल अरु कृष्ण दोनों पक्ष तिसविषे रहते हैं, सो रात्रिको प्रकाशताहै, वह अपनी क्रियाको त्याग नहीं सकता परंतु क्षोभते रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे विचरता है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु अग्नि सदा दौड़ता रहता है, यज्ञ होमके भोजन करनेको सर्व ओर जाता है, उसको गृहविषे बैठनेकी क्या समर्थता नहीं परंतु जो अपना आचार है तिसको त्यागता नहीं ठहरनेविषे कछु कार्य सिद्ध नहीं होता अरु चलनेविषे कछु हानि नहीं होती, दोनोंविषे तुल्य जीवन्मुक्त है॥ हे रामजी! बृहस्पति अरु शुक्रको बडा क्षोभ रहता है, बृहस्पति देवताकी जयके निमित्त यत्न करता है, अरु शुक्र दैत्यके जयके निमित्त यत्न करता रहता है, क्या इनको त्यागनेकी समर्थता नहीं

परंतु दोनों इनको तुल्य हैं, इस कारणते खेदसों रहित होकरि अपने कानविषे विचरते हैं, सो जीवन्मुक्त पुरुष हैं ॥ हे रामजी ! राज्यविषे बडे क्षोभ होते हैं, सो राजा जनक आनंद सहित राज्य करता है, अरु जीवन्मुक्त है, प्रह्लाद बलि वृत्रासुर अरु मुर इनते आदि लेकरि जो दैत्य जीवन्मुक्त हुये हैं, समताभावको लिये खेदते रहित नानाप्रकारकी चेष्टा करत भये हैं, परंतु अंतरते शीतल जीवन्मुक्त रहे हैं, राजा नल अरु दिलीप अरु मांधाताते लेकरि जो हुये हैं, समताभावको ले राज्य किया है, सो जीवन्मुक्त हैं, ऐसे अनेक राजा हुये हैं, राज्यविषे रागवान् भी दृष्ट आवे हैं परंतु अंतर रागद्वेषते रहित शीतलचित्त रहे हैं ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, परंतु एता भेद है कि ज्ञानीका चित्त शांत है, अरु अज्ञानीका चित्त क्षोभविषे है, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, अनिष्टकी प्राप्तिविषे द्वेष करता है, ग्रहण त्यागकी इच्छा कर जलता है, संसार उसको सत्य भासता है, अरु जिसका चित्त शांत हो गया है, तिसके अंतर न राग है, न द्वेष है, स्वाभाविक शरीरकी जो प्रारब्ध है सो होती है, तिसविषे कछु अपना अभिमान नहीं होता, तिसके निश्चयविषे सब आकाशरूप है, जगत् कछु बना नहीं भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रममात्र है, अरु दूर नहीं होती तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है परंतु है नहीं, जैसे आकाशविषे नानाप्रकारके तरुवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठरूप होती है, तैसे जगत् भ्रमरूप है, जो कछु भ्रमते इतर भासता है, सो सब भविष्यत् नगरविषे असत् है, अरु जो कछु तुझते दृष्ट आता है सो कछु नहीं, सर्व कलनाते रहित शुद्ध संवित् जडताते मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है, केवल आकाशरूप है, तिसविषे जगत् भी वहीरूप है, पाषाणकी शिलावत् घन मौन है, तूभी तिसी रूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २१९ ॥

द्विशताधिकविंशतितमः सर्गः २२०.

विपश्चितोपाख्यानवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह राजा विपश्चित बहुरि क्या करत भये ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो उनकी दशा हुई है सो तू श्रवण करु, पश्चिम दिशाका विपश्चित वनविषे विचरता फिरता था, सो एक मत्त हस्तीके वश पडा, तिसने पहाडकी कंदराविषे मार डारा, अरु दूसरे विपश्चितको राकडी ले गया, तिसने वडवाग्निविषे डारि दिया, वहां अग्निने भक्षण करि लिया, अरु तीसरे विपश्चितको एक विद्याधर स्वर्गविषे ले गया, उसने इंद्रको मान न किया, तिसको शाप दिया, वह भस्म होगया, इसी प्रकार चौथा भी हुआ, उसके मच्छने अष्ट टुकडे करि डारे, जैसे प्रलयकालविषे लोक भस्म हो जावै, तैसे चारोंही विपश्चित मरि गये, तब उनकी संवित् आकाशरूप हुई, परंतु इनके विषे जो जगत् देखनेका संस्कार था, तिसकरि उनकी आकाशरूप संवित् बहुरि आनि फुरी, तिसकरि जाग्रत् भासने लगे, पृथ्वी द्वीप समुद्र स्थावर जंगमरूप जगत्को देखत भये, अरु अंतवाहक शरीर साथ चेष्टा करने लगे, तिनसों एक पश्चिम दिशाका विष्णु भगवान्‌के स्थानविषे मुआ निर्वाण होगया, तिसकी संवित्‌विषे सर्व अर्थ शून्य हो गये, वह तहां मुक्त हुआ, अरु एक मच्छके उदरविषे सहस्र वर्षपर्यंत रहा, तिसते उपरांत निकसा, बहुरि एक देशका राजा हुआ, अरु तहां राज्य करने लगा, एक चंद्रमाके निकट आया, तहां वह मरिके स्वर्गविषे चंद्रमाके लोकको प्राप्त हुआ, अरु एक बहता समुद्रके पाटको प्राप्त हुआ, आगे चौराशी हजार योजन पृथ्वी भूत तिसको लँघता गया, इसी प्रकार चारों बहुरि जीवते भये, समुद्र वन पर्वतको लँघते गये, सबके आगे दश सहस्र योजन स्वर्णकी पृथ्वी आई, तहां देवताके विचरनेके स्थान हैं, तिनको भी लंघते गये, आगे लोकालोक पर्वत आया, जिसने सर्व पृथ्वीको आवरण किया है, जैसे वृक्षके वनका आवरण होता है, तैसे तिसने पंचाशत्‌कोटि योजन पृथ्वीको आवरण किया है, पचाश हजार योजन लोकालोक पर्वत

ऊंचा है, तहां ताराका नक्षत्रचक्र फिरता है, तिसको भी लंघि गये तिसके आगे एक शून्य नक्षत्र था, सो कैसा था, जो महाशून्य जैसा, जहां पृथ्वी जल आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, एक शून्य आकाश है, न कोऊ स्थावर पदार्थ है, न कोऊ जंगम पदार्थ है, न कोऊ उपजै न कोऊ मिटै तिसको देखत भये, इसीप्रकार संपूर्ण भूगोलको देखत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! भूगोल क्या है अरु किसके आश्रय है, अरु तिसके ऊपर क्या है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे गेंद होता है, तैसे भूगोल है, अरु संकल्पके आश्रय है, सर्व ओर तिसके आकाश है, सूर्य चंद्रमा नक्षत्र सहित चक्र फिरता है ॥ हे रामजी! यह बुद्धिकरिकै बना नहीं, संकल्पकरिकै बना है, जो वस्तु बुद्धिकरिकै बनी होती है सो क्रमकरि स्थित होती है, अरु यह तो विपर्ययरूपकरि स्थित है, पृथ्वीके चौफेर दशगुण जल है, तिसते परे दशगुण अग्नि है, तिसते परे दशगुण वायु है, तिसते परे ब्रह्मांडखपर है, सो खपर एक अधको एक ऊर्ध्वको गया है, तिसके मध्यविषे जो पोल है सो आकाश है, वह वज्रसारकी नांई है, अनंतकोटि योजनका विस्तार है, तिस ब्रह्मांडका तिसविषे भूगोल है, तिसते उत्तरदिशा सुमेरु पर्वत है, पश्चिमदिशा लोकालोक पर्वत है, ऊपर नक्षत्रोंका चक्र फिरता है, जहां वह आता है, तहां प्रकाश होता है, जहां नहीं होता, तहां तमरूप भासता है, सो संकल्प रचना है, जैसे बालक संकल्पकरि पत्थरका वटा रचै तैसे चेतनरूपी बालकने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है ॥ हे रामजी! जैसे जैसे उस समय तिसविषे निश्चय हुआ है, तैसेही स्थित भया है, जहां पृथ्वी स्थित रही है, तहां स्थित है, जहां खात रची है, तहां खातही है, अरु है क्या जैसे स्वप्नपिषे अविद्यमान प्रतिभा होती है, तैसे भूगोल है ॥ हे रामजी! जिनको ऐसे भासता है, जो सुमेरुविषे देवता हैं, उत्तर दिशा अरु अपर दिशा मनुष्यते आदि लेकरि जीव रहते हैं, ऐसे जिनको ज्ञान है, सो पंडित हैं, तौ भी मूर्ख हैं, यह तौ भ्रममात्र है, बना कछु नहीं, जो हमते आदि लेकरि तत्त्ववेत्ता हैं, जिनको ज्ञाननेत्रकरि आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है, जो मनसहित षट् इंद्रियोंकरि अज्ञानी देखते हैं, तिनको जगत् भासता है

अरु ज्ञानवान्को परब्रह्म सूक्ष्म ज्योंका त्यों भासता है, जगत्को असत् जानता है, जैसे आकाशविषे अनहोती नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे अनहोता जगत् भासता है; जैसे नेत्र दूषणकरि आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे जगत् भासता है, सो केवल आभासमात्र है, हे रामजी। जगत् उपजा भी दृष्ट आता है, अरु नष्ट होता भी दृष्ट आता है, परंतु बना कछु नहीं, जैसे संकल्पका रचा फुरणा अपने मनविषे भासता है तैसे यह जगत् मनविषे फुरता है, यह संपूर्ण भूगोल संकल्पविषे स्थित है, जैसे बालक संकल्पकरिकै पत्थरका वटा रचै तैसे भूगोल यह ब्रह्मांड सौ कोटि योजनपर्यंत है, तिसका एक भाग अधको गया है, एक ऊर्ध्वको गया है, तिसविषे चेतनरूपी बालकने यह भूगोल रचा है, सो संकल्पके आश्रय खडा है, जैसे आदिनीति हुई है, तैसे भासता है, इस पृथ्वीके उत्तर दिशाविषे सुमेरु पर्वत है, अरु पश्चिम दिशाकी ओर लोकालोक पर्वत है, अरु ऊपर तारा नक्षत्रचक्र फिरता है, लोकालोकके जिस ओरते आता है, तिस ओर प्रकाश होता है, अरु भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है, तिसके एक ओर पाताल है, अरु एक ओरते स्वर्ग है, एक ओर मध्यमंडल है, अरु आकाश सर्व ओर है, पातालवासी जानते हैं, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं, कि हम ऊर्ध्व हैं, मध्यमवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं, इस प्रकार भूगोल है, तिसके परे एक खात है, शून्य जैसा महातमरूप, जहां न पृथ्वी है, न कोऊ पहाड है, न स्थावर है, न जंगम है, न कछु उपजा है, कबी महात्मा जैसा है, अरु तिसके परे स्वर्णकी कंथ है, दश सहस्र योजन तिसका विस्तार है, तिसके परे दशगुण जल है, पृथ्वीके चौफेर वेष्टन है, तिसते परे दशगुण अग्नि है, तिसते परे दशगुण वायु है, तिसते परे साकाश है, तिसते परे ब्रह्माकाश महाकाश है, तिसविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित है, सो क्या हैं, अरु कैसे स्थित हैं, तत्त्व हैं, जैसे कपूरके आश्रय तृण ठहरते हैं, तैसे पृथ्वी भागके आश्रय तत्त्व हैं, वस्तुते क्या है शुद्ध चेतन ब्रह्मका चमत्कार है, सो ब्रह्म आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे

कोऊ क्षोभ नहीं, परम शांत है, अरु अनंत है, अरु सर्वका अपना आप है ॥ हे रामजी ! अब बहुरि विपश्चितकी वार्त्ता सुन, जब वह लोकालोक पर्वतपर जाय स्थित भये, तब एक शून्य जैसा खांत दृष्ट आया, पर्वतसों उतरकर खातविषे जाय पड़ा, खात भी पर्वतके शिखर ऊपर था, अरु तहां पक्षी भी शिखरकी नांई बडे थे उन पक्षियोंने चंचसों इसका शरीर चूर्ण किया, तब यह अपने स्थूल शरीरको त्यागि-कारि सूक्ष्म अंतवाहक शरीर अपना जानत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आधिभौतिकता कैसे होती है, अरु अंतवाहक क्या है, बहुरि क्या करत भया सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे संकल्प-करिकै दूरते दूर चला जावै, अरु जिस शरीरसाथ जावै सो अंतवाहक है, अरु जो पांचभौतिक शरीर यह प्रत्यक्ष भासता है, सो आधिभौतिक है, जहां मार्गकरि जानेको चित्तका संकल्प उठता है, तब स्थूल शरीर गयेविनां वह पहुँच नहीं सकता, जब मार्गकारि चलै तब पहुँचता है, सो आधिभौतिक है, अरु यह प्रमादकरि होता है, जैसे जेवरीके भूलनेकारि सर्प भासता है, जैसे आत्माके अज्ञानकारि आधिभौतिक शरीर भासता है, जैसे मनोराज्यके पुर बनावै, तिसविषे आप भी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरै, सो जबलग पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं भया, तबलग संकल्पशरीरसाथ चेष्टा करता है, सो अंतवाहक है, तिसको संकल्पमात्र जानना सो विशेषबुद्धि कहाती है, अरु आत्म-बोध नहीं भया, जब तिस संकल्पशरीरविषे दृष्ट भावना होती है, तिसका नाम आधिभौतिक होता है, सो घट बढ कहाता है, ताते जबलग शरीरका स्मरण है, तबलग आधिभौतिकता नहीं होती, अरु जब विस्मरण होता है, तब आधिभौतिकता हो जाती है; अरु विप-श्चित जो आधिभौतिक थे, सो आत्मबोधते रहित थे, अरु जहां चाहैं तहां चले जाते थे, अरु स्वरूपते न कछु अंतवाहक है, न कछु आधिभौतिक है, प्रमाद कारिकै आकार भासते हैं, वास्तव सब चिदा-काशरूप है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, सब वही है, तिसके प्रमाद-करिकै विपश्चित अविद्यक जगत्‌को देखने चले थे, सो अविद्या कछु

वस्तु नहीं, ब्रह्महीहै, तौ ब्रह्मका अंत कहां आवै, वहांते चला परंतु जानै कि मेरा अंतवाहक शरीर है, सब पृथ्वीको लंघि गया, तिसके परे जलको भी लंघि गया, तिसते परे जो सूर्यवत् दाहक अग्निका आवरण है प्रकाशवान्, तिसको भी लंघि गया, मेघ अरु वायुके आवरणको भी लंघा, आकाशको लंघि गया, तिसके परे ब्रह्माकाश था, तहां इसको संकल्पके अनुसार बहुरि जगत् भासने लगा, तिसको भी लंघि गया, बहुरि तिसके आगे ब्रह्माकाश है, फेरि पांचभौतिक भास आये तिसके आवरणको भी लंघि गया, बहुरि तिस ब्रह्मांड कपाटके परे तत्त्वको लंघिकरि ब्रह्माकाश आया, बहुरि तिसविषे अपर पांचभौतिक ब्रह्मांड था, तिसको लंघि गया, अरु अत न पाया, स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यके अंत लेनेको भटकता फिरा सो अविद्यारूप संसार अंत कैसे आवै, जबलग अंत लेनेको भटकता फिरता है, तबलग अविद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तबहीं अविद्यारूप संसारका अंत आवैगा ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बना नहीं, वही ब्रह्माकाश ज्यों ज्यों स्थित है, तिसका न जाननाही संसार है, जबलग उसका प्रमाद है, तबलग जगत्का अंत न आवैगा, जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा, तब अंत आवैगा, सो जानना क्या है, चित्तको निर्वाण करनाही जानना है, जब चित्त निर्वाण होवैगा, तब जगत्का अंतआवैगा, जबलग चित्त भटकता फिरता है, तबलग संसारका अंत नहीं आता, ताते चित्तका नामही संसार है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब जगत्का अंत होवैगा, इस उपायविना शांति नहीं प्राप्त होती ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकविंशतितमः सर्गः ॥ २२० ॥

द्विशताधिकैकविंशतितमः सर्गः २२१.

विपश्चितशरीरप्राप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह जो दो विपश्चित थे, तिनकी क्या दशा भई वह भी कहौ, वह तौ दोनोंकी एकही कही ॥ वसिष्ठ उवाच॥

हे रामजी! एक तो निर्वाण हुआ था, अरु दूसरा ब्रह्मांडको लंघता गया, लंघता लंघता एक ब्रह्मांडविषे गया, तब वहां उसको संतका संग प्राप्त भया, तिनकी संगतिकरि तिसको ज्ञान प्राप्त हुआ, ज्ञानको पायकरि वह भी निर्वाण हो गया, अरु एक अबलग दूर फिरता है, अरु एक यहां पहाड़की कंदराविषे मृग होकरि विचरता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् आत्माका आभास है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है; जबलग किरणें हैं, तबलग जलाभास निवृत्त नहीं होता, तैसे जबलग आत्मसत्ता है, तबलग जगत्का चमत्कार निवृत्त नहीं होता, आत्माके जाननेते जगत्सत्ता नहीं रहती जैसे किरणोंके जाननेते जलाभास नहीं रहता, जो भासता है तौ भी किरणोंहीकी सत्ता भासती है, तैसे आत्माके जाननेते आत्माकी सत्ताही भासती है, भिन्न जगत्की सत्ता नहीं भासती ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! विपश्चित एकही था, एकही संवित्विषे भिन्न भिन्न, वासना कैसे हुई है? अरु मुक्त एक हो गया, एक मृग होकरि फिरता रहा एक आगे निर्वाण हो गया यह भिन्नता कैसे हुई है, संवित् एकही थी, तिसविषे घट बढ फल कैसे प्राप्त हुए सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वासना जो होती है सो देश काल पदार्थ करिकै होती है, तिसविषे जिसकी दृढ भावना होती है, तिसकी जय होती है, जैसे एक पुरुषने मनोराज्य करिकै चार मूर्तिं अपनी कल्पीं, तिनविषे वासना भिन्न भिन्न स्थापन करी; वह संवित् तौ एक है, परंतु पूर्वका शरीर भूलिकरि वह दृढ हो गये, तौ जैसी जैसी भावना तिन शरीरविषे दृढ होती है सोई प्राप्त होती है, तैसे संवित्विषे नानाप्रकारकी वासना फुरती है, जैसे एकही संवित् स्वप्नविषे नानाप्रकार धारती है, अरु भिन्न भिन्न वासना होती है, तैसेही आकाशरूप संवित्विषे भिन्न भिन्न वासना होती है ॥ हे रामजी ! संवित् एक थी परंतु देश काल क्रिया करिकै वासना भिन्न भिन्न हो गई, पूर्वकी संवित्स्मृति भूलि गई, तिसकरि घट बढ फलको पाते भये, सो संवित् क्या रूप है ॥ हे रामजी ! देशते देशांतरको संवेदन जाती है, तिसके मध्य जो संवित्सत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है, जैसे एक जाग्रतके आकारको छोडा, अरु स्वप्न पाया नहीं, तिसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है, वह

किंचनरूप जगत् होकरि भासती है, परंतु किंचन भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, एक है, न दो है, एक कहना भी नहीं होता, दो कहां होवै, अरु जगत् कहां होवै, यही अविद्या है, जो है नहीं अरु भासती है, जिस जिस आकारविषे जैसी जैसी वासना फुरती है, बहुरि जो दृढ हो जाती है, तिसीकी जय होती है, तिस कारणते एक विपश्चित जनार्दन विष्णुके स्थानविषे निर्वाण हो गया, दूसरा दूरते दूर ब्रह्मांडको लंघता गया, तिसको संतका संग प्राप्त भया, तिसकरि ज्ञान उदय हुआ, वासना मिटि-गई, अरु अज्ञान तिसका नष्ट हो गया, जैसे सूर्यके उदय हुये अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञान नष्ट हो गया, वह पदको प्राप्त भया; तीसरा अज्ञानकरिकै दूरते दूर भटकता है, अरु चौथा पहाड़की कंदराविषे मृग होकरि विचरता है ॥ हे रामजी ! जगत् कछु वस्तु नहीं, अज्ञानके वशते भटकते हैं, ताते अज्ञानही जगत् है, जबलग अज्ञान है तबलग जगत् है, जब ज्ञान उदय होता है, तब अज्ञानको नाश करताहै, तब जगत्का भी अभाव हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो मृग हुआ है, सो कहां कहां फिरा है, अरु कहां स्थित है, अरु कौन स्थानविषे फिरै-है सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दो ब्रह्मांडको लंघते दूरते दूर चले गये थे, एक अबलग चला जाता है, पृथ्वी समुद्र वायु आकाश उसकी संवित्‌विषे फुरते हैं, यह तौ दूरते दूर चला गया है, सो हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषय नहीं, अरु एक ब्रह्मांडको लंघता गया था, अब इस जगत्‌विषे पहाडकी कंदराका मृग हुआ है, सो हमारी इस दृष्टि-का विषय है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दूर गये थे, अरु एक इस जगत्‌विषे अब मृग हुआ है, तुम कैसे जाना जो आगे ब्रह्मांडविषे था, अब इस जगत्‌विषे है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं ब्रह्म हौं, जेते कछु ब्रह्मांड हैं सो मेरे अंग हैं, मुझको सबका ज्ञान है, जैसे अवयवी पुरुष अपने अंगको जानता है कि यह अंग फुरता है, अरु यह नहीं फुरता तैसे मैं सबको जानता हौं, जहां जहां यह फुरता लंघना गया है, सो बुद्धि नेत्रकरि मैं जानता हौं, परंतु तुमको जाननेकी गम नहीं, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग फुरते हैं, अरु समुद्र सबको जानता है, तैसे

मैं समुद्ररूप हौं अरु ब्रह्मांडरूपी मेरेविषे तरंग हैं,ताते मैं सबको जानता हौं ॥ हे रामजी ! वह जो मृग है, सो दूर ब्रह्मांडविषे फिरता है, वह विपश्चित यह मृग नहीं, परंतु वह जैसा है सो सुन ॥ हे रामजी ! एक ब्रह्मांड इस हमारे ब्रह्मांड जैसा है, एकही जैसा आकार है, एकही जैसी चेष्टा, एकही जैसा जगत् है, स्थावर जंगम सब एकही जैसे हैं, वहां जो देशकाल क्रियाका विचारना होता है, सो इसके समान होता है, जैसे नामरूप आकार यहां होते हैं, जैसे बिंबका प्रतिबिंब तुल्यही होता है, जैसे एकही आकारका प्रतिबिंब जलविषे होता है, अरु द्वितीयप्रतिबिंब दर्पणविषे होता है, सो दोनों तुल्य हैं, तैसे दोनों ब्रह्मांड एकसमान हैं; ब्रह्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित होताहै, तैसे इसकारणते यह मृग विपश्चित है, इसी निश्चयको धारे हुये हैं, यह अरु वह दोनों तुल्य हैं, सो पहाड़की कंदराविषे है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वह विपश्चित अब कहां है, अरु उसका क्या आचार है, अब मैं जानता हौं, कि उसका कार्य हुआ है, अरु चलिकारि मुझको दिखावहु, अरु उसको दर्शन देकारि अज्ञान फांसते मुक्त करहु॥ वाल्मीकिरुवाच ॥हे अंग! जब रामजीने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वसिष्ठ बोलत भया ॥ हे रामजी ! तुम्हरा जो लीलाका स्थान जहां है, तुम क्रीडा करतेहौ,तिसठौरविषे वह मृग बांधा हुआ है, तुमको तिरग देशके राजाने आनि दिया है, सो बहुत सुंदर है, इसकरिकै तुमने रक्खा है, तिसको मंगावहु, तब रामजीके सखा बालकविषे जो निकटवर्त्ती थे, तिनसे कहा कि तिस मृगको सभाविषे ले आवहु ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब सभाविषे मृगको ले आये, जेते कछु श्रोता सभाविषे बैठे थे सो बड़े आश्चर्यको प्राप्त भये, बड़ी ग्रीवा सुंदर अरु कमलकी नांई नेत्र घासको खाता कबहूँ सभाविषे खेलै, कबहूं ठहरि जावै, तब रामजीने कहा, हे भगवन्! इसको उपदेश करिकै जगावहु, कि हमारे साथ प्रश्न उत्तर करै, कृपा करहु जो मनुष्य होवै, अब तौ प्रश्न उत्तर नहीं करता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उपदेश इसको लगैगा नहीं, काहेते कि जिसका कोऊ इष्ट होता है, तिसकरि सिद्धता तिसको होती है, ताते

मैं इसके इष्टका ध्यान करिकै विद्यमान करता हौं, तिसकरि इसका कार्य सिद्ध होवैगा ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे अंग! इसप्रकार कहकर वसिष्ठजीने कमंडलु हाथविषे लेकरि तीन आचमन किये, अरु पद्मासन बांधकरि नेत्र मूंदि लिये, ध्यानविषे स्थित होकरि अग्निका आवाहन किया अरु कहा, हे वह्नि! यह तेरा भक्त है, इसकी सहायता कर, इसके ऊपर दया कर, तुम संतका दयालु स्वभाव है, जब ऐसे वसिष्ठजीने कहा तब सभाविषे बड़े प्रकाशको धरे अग्निकी ज्वला प्रगट भई, काष्ठ अंगारते रहित बड़े प्रकाशको लिये पड़ी जलै, जब ऐसी अग्नि जागी, तब मृग देखकरि बहुत प्रसन्न भया, अरु चित्तविषे बड़ी भक्ति उत्पन्न भई, तब वसिष्ठजीने नेत्र खोलकरि अनुग्रहसहित मृगकी ओर देखा, तिसकरि संपूर्ण पाप उसके दग्ध हो गये, अरु वसिष्ठजीने अग्निसे कहा कि ॥ हे भगवन्! वह्नि! यह तेरा भक्त है, अपनी पूर्वकी भक्ति स्मरण करिकै इसपर दया करहु, इसके मृगशरीरको दूर करिकै इसको विपश्चित शरीर देवहु, जो यह अविद्या भ्रमते मुक्त होवै ॥ हे राजन्! इसप्रकार वसिष्ठजीने अग्निसे कह रामजीसे कहत भये ॥ हे रामजी! अब यह मृग अग्निविषे प्रवेश करैगा, तब इसका मनुष्यशरीर हो जावैगा, ऐसे वसिष्ठजी कहते थे, कि अग्निको मृग देखिकरि एक चरण पाछेको धरा, अरु उछलिकरि अग्निविषे आय प्रवेश किया, जैसे बाण निशानविषे आय प्रवेश करते हैं, तैसे प्रवेश किया ॥ हे राजन्! तब उस मृगको खेद कछु न भया, उसको अग्नि आनंदवान् दृष्ट आया, तब उसका मृगशरीर अंतर्धान हो गया, अरु महाप्रकाश मनुष्य शरीरको धारे अग्निते निकसा, जैसे पटके ओटसों स्वांगी स्वांग धारि निकसि आता है, तैसे निकस आया, भले वस्त्रको पहिरे हुये शीशपर मुकुट, कंठविषे रुद्राक्षकी माला, अरु यज्ञोपवीत हुआ, अग्निवत् प्रकाश तेजवान् सभाविषे जो बैठे थे, तिनते भी अधिक तेज मानौ अग्निको भी लज्जित किया है, जैसे सूर्यके उदय हुये चंद्रमाका प्रकाश लज्जित होता है, तैसे सर्वते जल जल हो गया, तब जैसे समुद्रसों तरंग निकसिकरि लीन हो जाता है, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तिसको देखिक

रामजी आश्चर्यको प्राप्त हुये, सर्व सभा विस्मयको प्राप्त भई, तब बडे प्रकाशको धारनेहारा विपश्चित निकसिकारि ध्यानविषे जुडि गया, विपश्चितते आदि लेकरि इस शरीरपर्यंत सर्व स्मरण करिकै नेत्र खोलि दिये, वसिष्ठजीके निकट आयकारि साष्टांग प्रणाम किया, अरु कहत भया ॥ हे ब्राह्मण ! ज्ञानके सूर्य ! हेप्राणके दाता ! तुमको मेरा नमस्कार है, हे राजन् ! जब इसप्रकार उसने कहा, तब वसिष्ठजीने उसके शिरपर हाथ रक्खा अरु कहा ॥ हे राजन् ! तू उठ खडा हो, अब तेरी अविद्या मैं दूर करौंगा, तू अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, तब राजा विपश्चितने उठिकारि राजा दशरथको प्रणाम किया, अरु कहा, हे राजन् ! तेरी जय होवै, तब राजा दशरथ आसनते उठिकारि कहत भया ॥ हे राजन् ! तुम बहुत दूर फिरते रहे हौ, अब यहां मेरे पास बैठो, तब राजा विपश्चित बैठि गया, विश्वामित्र आदिक ऋषि बैठे थे, तिनको यथायोग्य प्रणाम करिकै बैठि गया, तब राजा दशरथने विपश्चितको भास करिकै बुलाया, बडे प्रकाशको धारे हुए जो विपश्चित था, इस कारणते दशरथने कहा, हे भास ! तुमतौ संसारभ्रमके लिये चिरकाल फिरते रहे हौ, थके होहुगे, विश्राम करौ, अरु जो जो देश कालक्रिया करी है, देखा है, सो कहो, यह आश्चर्य है कि अपने मंदिरविषे सोया होवै, अरु निद्रादोष करिकै गर्त्तविषे गिरता फिरै, अरु देशदेशांतरको भटकता फिरै, यही अविद्या है ॥ हे भास ! जैसे वनका विचरनेवाला हस्ती संकलकारि बंधायमान होवै, जैसे यह बांधा हुआ दुःख पाता है, तैसे तू विपश्चित भी था, अरु अविद्याकरिकै तू जगत्के देखने निमित्त भटकता है ॥ हे राजन् ! जगत् कछु वस्तु नहीं, अरु भासता है, वही माया है, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे नानाप्रकारके रंग भासतेहैं, तैसे अविद्या करिकै यह जगत् भासता है, अरु सत्यप्रतीत होता है सो है क्या, आकाशरूपही आकाशविषे स्थित, तिस आकाशविषे जो कछु तुझने देखा है, आत्मरूपी चिन्तामणिका चमत्कार साथ सो कहो ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितशरीरप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ २२१ ॥

द्विशताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः २२२.

वटधानोपाख्यानवर्णनम् ।

दशरथ उवाच ॥ हे भास ! बडा आश्चर्य है, किं तू विपश्चित बुद्धिमान् था, अरु चेष्टाते तू अविपश्चित हुआ, बुद्धि करी है, सो अविद्याके देखनेको तू समर्थ हुआथा, यह जगत् प्रतिभा तौ मिथ्या उठी है. असत्यके ग्रहणकी इच्छा तुझने क्यों करी ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार राजा दशरथने कहा, तब प्रसंगको पायकारि विश्वामित्र बोलत भया ॥ हे राजादशरथ ! यह चेष्टा सोई करता है, जिसको परमबोध नहीं होता अरु केवल मूर्ख अज्ञानी भी नहीं होता, काहेते कि जिसको परमबोध आत्माका अनुभव होता है, सो जगत्को अविद्यक जानता है, अविद्यक जगत्के अंत लेनेको एता यत्न नहीं करता, वह तौ असत्य जानता है, अरु जो देहअभिमानी मूर्ख अज्ञ है, तौ भी यह यत्न नहीं करता, काहेते कि उसको देखनेकी समर्थता भी नहीं होती, ताते तू मध्यभावी है, सो आत्मबोधते रहित है, अरु आधि-भौतिक शरीर त्याग किया है, सो यत्न करता है, अरु जिनको उत्तम बोध नहीं हुआ, तौ बहुत इसप्रकार भटकते फिरते हैं ॥ हे राजन् ! इसीप्रकार वटधाना भी फिरते हैं, सत्तर लक्षवर्ष उनके व्यतीत भये हैं, जो इसी ब्रह्मांडविषे फिरते हैं, उनने भी यही निश्चय धारा है, कि, पृथ्वी कहांलग चली जाती है, इस निश्चयते निवृत्त नहीं होते, अरु इसी ब्रह्मांडविषे भ्रमते हैं परंतु उनको अपनी वासनाके अनुसार विपरीत अपरही अपर स्थान पड़े भासते हैं ॥ हे राजन् ! जैसे किसी बालकको संकल्पका रचा वृक्ष आकाशमें होवै, तैसे यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी इन पांचों तत्त्वका ब्रह्मांड रचा है, संकल्पकारिके जैसे एक खेन होवै, तिसके चौफेर कीड़ी फिरै, सो जिस ओरते वह जाती है, सोई ओर ऊर्ध्व भासता है, सो अपरही अपर निश्चय होता है, तैसे यह संकल्पका रचा भूगोल है, तिसके किसी कोण-विषे वटधाना इसप्रकार जीव होत भये हैं, एक राजा था, तिसके तीन

पुत्र थे, तिनको संकल्प आनि उदय हुआ कि हम जगत्‌के अंतको देखें इसी संकल्पकारि फिरते हैं, पृथ्वी लंघते हैं, बहुरि पृथ्वी जल आताहै, जल लंघते हैं, बहुरि आकाश आता है, बहुरि पृथ्वी जल वायु आते हैं, बहुरि उसी भूगोलके चौफेर फिरते हैं, सो यह भूगोल कैसा है, जैसे आकाशविषे खेन होवै, तैसे यह पृथ्वी आकाशविषे है, इसका अध ऊर्ध्व कोऊ नहीं, अरु चरण सो अधं शिरका पास ऊर्ध्व तिसीके चौफेर भ्रमते रहे, परंतु अपने निश्चयकारि अपरका अपर जानते हैं; अरु जबलग स्वरूपका प्रमाद है तबलग जगत्‌का अभाव नहीं होता, जब आत्माका साक्षात्कार होता है, तब जगत् ब्रह्मरूप हो जाता है, जगत् कछु बना नहीं, कछुक फुरणकारिकै भासता है, सो जैसे स्वप्नविषे अज्ञानकारिकै अनंत जगत्‌को देखता है, यह हुआ है, सो फुरणा परमब्रह्मविषे हुआ है, जो फुरणेविषे हुआ है सो भी परमब्रह्म है, अपर कछु बना नहीं, आत्म-सत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जैसे पत्थरकी शिला घनरूप होतीहै तैसे आत्मतत्त्व चेतनघन है; जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, कल्पना परमब्रह्मरूप है, अरु ब्रह्मही कल्पनारूप है, इस जड़ अरु चेतनविषे कछु भेद नहीं॥ हे राजन्। जिसको जगत् शब्दकारि कहता है सो ब्रह्मसत्ताही है, न कछु उत्पन्न हुआ है, न प्रलय होता है, सर्व ब्रह्मही है, जैसे पहाडविषे पत्थरते इतर कछु नहीं, तैसे जगत् ब्रह्मसत्ताते इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी पुतली पाषाणरूपही है, तैसे जगत ब्रह्मरूपही है, एक सूक्ष्म अनुभव अणुते अनेक अणु होतेहैं, जैसे एक पहाड़ते अनेक शिला होती हैं ॥ हे राजन्। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको जगत् ब्रह्मरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है सो जगत् कछु वस्तु नहीं, परंतु जबलग संकल्प है, तबलग जगत् फुरता है, जैसे रत्नका चमत्कार होता है तैसे जगत् आत्माका चमत्कार है; अरु चेतन आत्माके आश्रय अनंत सृष्टि फुरती हैं, सो सृष्टि सब आत्मरूप हैं, आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, जो जागृत पुरुष ज्ञानवान् हैं, तिनको ब्रह्मरूपही भासता है, जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे राजन् । कईएक

इसको शून्य कहते हैं कि, शून्यही है, अपर कछु नहीं, अरु कई इसको जगत् कहते हैं, अरु कई ब्रह्म कहते हैं, जो किसीको निश्चय होता है, तिसको सोई रूप भासता है, अरु आत्मरूपी चिंतामणि है; जैसा संकल्प फुरता है तैसा तैसा हो भासता है, सर्वका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जैसा जैसा तिसविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा होकरि वही भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य यह त्रिपुटी जो भासती है, सो भी ब्रह्म होकरि भासती है, अपर द्वितीय कछु वस्तु नहीं अरु अपर जो भासताहै, सोई अज्ञान है, हे राजन् ! जबलग इसकी वासना नष्ट नहीं होती, तबलग इसके दुःख भी नहीं मिटते, जब वासना मिटि जावै तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासै, रागद्वेष किसीविषे न रहै, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, जो पूर्व स्वरूप स्मरण आता है, तौ सर्वरूप आप हो जाता है, रागद्वेष उसका मिटि जाता है, तैसे ज्ञानवान्को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासता है, अरु समानरूप विचारते रहित होताहै, जो पूर्व अपूर्व अपरको विचारणा कै यह शुभ है, यह अशुभ है, अशुभका त्याग करना, यह गुणविचार है, जबलग पूर्व अपर विचार मनविषे रहता है, तबलग जगत्विषे भटकता है, अरु बांधा रहता है, काहेते जो शुभ अशुभ दोनों जगत्विषे हैं, जब इनका विस्मरण हो जावै, संपूर्ण जगत्को भ्रममात्र जानिकरि आत्मपदविषे सावधान होवै तब मुक्त होवैगा, अरु इस जीवको अपनी वासनाही बंधनका कारण है, जबलग जगत्विषे दुःखकी वासना होती है, तबलग रागद्वेष उपजता है, तिसकरि बांधा रहता है, जिनको जगत्के सुखदुःखविषे रागद्वेषकी भावना नहीं उपजती, अरु वासना भी नष्ट भई है, तिनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासता है, जगत्विषे दुःखदायक कछु नहीं भासता, उनको सब ब्रह्म भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वटधानोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२२ ॥

द्विशताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः २२३.

विपश्चितकथावर्णनम् ।

दशरथ उवाच ॥ हे भास ! तुम चिरकालपर्यंत जगत्विषे फिरते रहे हौ, जिसप्रकार तुमने चेष्टा करी है, अरु जो देश काल पदार्थ देखे हैं, सो सबही कहौ ॥ भास उवाच ॥ हे राजन् ! मैं जगत्को देखता फिरा हौं, फिरता फिरता थक गया हौं, परंतु देखनेकी जो इच्छा थी इस कारणते मुझको दुःख नहीं भासा, जो कछु मैं चेष्टा करी है, अरु जो देखा है,सो कहता हौं ॥ हे राजन् ! मैं बहुत जन्म धारे हैं,अरु बहुतवार मृतक भया हौं, बहुतवार शाप पाया है, ऊंच नीच जन्म धारे हैं, अरु मर मरगया हौं, अरु बहुत ब्रह्मांड देखे हैं, परंतु अग्नि देवताके वरकरिकै, अरु एक वारविषे मैं वृक्ष हुआ हौं, सहस्र वर्षपर्यंत फूल फल टाससंयुक्त रहा हौं, जब कोऊ काटै तब मैं दुःखी होऊं, अंतरते मन मेरा पीडा पावै, बहुरि वहांते शरीर छूटा तब सुमेरु पर्वतपर स्वर्णका कमल हुआ, वहांका जल पान किया, बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, सौ वर्ष पक्षी रहा, बहुरि गीदड हुआ, वहां हस्तीने चूर्ण किया तब मृतक भया,बहुरि सुमेरु पर्वतपर मैं सुंदर मृग हुआ, देवता अरु विद्याधर मेरे साथ प्रीति करैं, तब केता काल रहकरि मृतक भया, बहुरि देवतोंके वनविषे मंजरी हुआ, देवियां विद्याधरियां मुझको स्पर्श करैं,अरु सुगंधि लेवैं, तब मैं देवतोंकी स्त्री भया, बहुरि मैं सिद्ध हुआ, मेरा वचन फुरणे लगा, बहुरि अपर शरीर धारा, एक ब्रह्मांड लंघि गया, बहुरि अपर बहुरि अपर इसीप्रकार केते ब्रह्मांड मैं लंघि गया, एकब्रह्मांडविषे जो आश्चर्य देखा है सो सुनहु, एक स्त्री देखी, तिसके शरीरविषे कई ब्रह्मांड देखे, देखकर मैं आश्चर्यको प्राप्त भया, अरु देशकाल क्रियाकारि पूर्ण त्रिलोकियोंको देखता मैं विस्मयको प्राप्त हुआ, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब दृष्ट आता है,तैसे मुझकोजगत् भासै, तब उसको मैं कहा हे देवी ! तू कौन है, अरु यह शरीरविषे तेरे क्या है ॥ देव्युवाच ॥ हे साधो ! मैं शुद्ध चिच्छक्ति हौं,अरु यह सब मेरे अंग हैं, मेरेविषे स्थित हैं, अरु मेरी क्या बात पूछनी है, जेता कछु जगत्

तू देखता है, सो सब चिद्रूप है, चेतनते इतर कछु अपर नहीं, अरुसब-विषे ब्रह्मांड त्रिलोकी आय स्थित है, जो अपना आपही है, जो पूर्व अपने स्वभावविषे स्थित हैं, तिनको अपनेहीविषे भासते हैं, अरु अपनाही स्वरूप भासता है, अरु जो स्वभावविषे स्थित नहीं, तिनको जगत् बाहर भासते हैं, अरु आपते भिन्न भासते हैं॥हे राजन्! यह जगत् कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे नगर भासता है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, तरंग कछु इतर वस्तु नहीं होते, तैसे सब जगत् चिद्रूपविषे भासता है, सो चेतनते इतर कछु नहीं, परंतु जब स्वभावविषे स्थित होकरि देखैगा तब ऐसे भासैगा, अरु जो अज्ञान दृष्टिकरि देखैगा तौ नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आवैगा ॥ हे राजन् दशरथ ! इसप्रकार उस देवीने मुझको कहा, तब मैं वहांते चला, आगे अपर सृष्टिविषे गया, तहां देखौं कि, सबही पुरुष रहते हैं, स्त्री कोऊ नहीं, पुरुषसों पुरुषउत्पन्न होते हैं,तिसते भी आगे अपर सृष्टिविषे गया, तहां न सूर्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न अग्नि है, न दिन है,न रात्रि है, जैसे चंद्रमासूर्यतारेका प्रकाश होता है, तैसे सब अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, तिनको देखि-कारि मैं आगे अपर सृष्टिविषे गया, तहां क्या देखे कि,आकाशहीते जीव उत्पन्न होते हैं, अरु आकाशहीविषे लीन होते हैं, इकट्ठेही सब उपजतेहैं अरु इकट्ठेही सब लीन हो जाते हैं, न वहां मनुष्य हैं, न देवताहैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत् है, इनते विलक्षणही प्रकार है ॥ हे राजन्! इसप्रकार मैं कई सृष्टि देखी हैं, सो मुझको स्मरण आती हैं, आगे अपर सृष्टिविषे मैं गया, तहां क्या देखा कि सब जीव एकही समान हैं, न किसीको रोग है, न दुःख है, सब एक जैसे गंगाके तीरपर बैठे हैं ॥ हे राजन् ! एक अपर आश्चर्य देखा है सो सुन, एक सृष्टिविषे मैं गया तहां क्षीरसमुद्र मंदराचलकरि मथाजाता है, एक ओरते विष्णु भगवान् अरु देवता हैं, रत्नसाथ जड़ा हुआ मंदराचल पर्वत है, शेषनाग करिकै रसडी-की नाईं लपेटा हुआ है, मथनेके निमित्त दूसरी ओरते दैत्य लगे हैं, बडा सुन्दर शब्द होता है,तहां महाकौतुक देखिकरि मैं आगेआया, एक

अपर सृष्टि देखी, तहां मनुष्य अरु देवता आकाशविषे उडते फिरते हैं, पृथ्वीके ऊपर मनुष्य विचरते हैं, वेद शास्त्र जानते हैं ॥ हे राजन्! एक अपर आश्चर्य देखा, कि एक सृष्टिविषे मैं जाय निकसा तहां मंदराचल पर्वत ऊपर कल्पतरु मंदार वृक्षका वन है, तिसविषे मंदरका नाम एक अप्सरा रहती थी, तहां मंदराचल पर्वतपर जायकरि मैं सोइ रहा, रात्रिका समय था, वह अप्सरा मेरे कंठसे आय लगी, तब मैं जागकरि देखा अरु कहा, हे सुंदरी! तैंने मुझको किसनिमित्त जगाया, मैं तौ सुखसाथ सोया था, तब अप्सराने कहा ॥ हे राजन्! मैं इसनिमित्त तुझको जगाया है, कि चंद्रमा आनि उदय हुआ है अरु चंद्रकांतमणि चंद्रमाकी देखिकरि स्रवैगी, अरु नदीकी नांई प्रवाह चलैगा, तिसविषे तू बहिजावैगा, इस कारणते मैं तुझको जगाया है ॥ हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार उसने कहा, तब तत्कालही नदीका प्रवाह चलने लगा, तब वह प्रवाहको देखिकरि मेरेको आकाशविषे ले उड़ी, पर्वतके ऊपर गंगाका प्रवाह चलता था, तिसके कांठेपर मुझको स्थित किया, सप्तवर्षपर्यंत मैं वहां रहा, बहुरि एक ब्रह्मांडविषे गया, तहां तारा नक्षत्रचक्र सूर्य कछु न था, तिसको देखिकरि मैं आगे गया, इस प्रकार अनंत ब्रह्मांड मैं देखता फिरा हौं ॥ हे राजन्! ऐसा देश कोऊ न होवैगा, अरु ऐसी पृथ्वी कोऊ न होवैगी, ऐसे नदी पहाड़ कोई न होवैंगे जिसको मैंने न देखा होवैगा, अरु ऐसी चेष्टा कोऊ न होवैगी, जो मैंने न करी होवैगी, कई शरीरके सुख भोगे हैं, कई दुःख भोगे हैं, वन कंदरा अरु गुप्तस्थान मैं सब फिरि देखे हैं, परंतु अग्नि देवताके वरको पायकरि ॥ हे राजन्! फिरता फिरता मैं थकि गया तौ भी आगे चला जाऊं, अनेक ब्रह्मांड अविद्यक मैं देखे हैं, अरु अंत अब आया है, कि यह जगत् भ्रममात्र है, अरु मैं शास्त्र सुने हैं, कि यह जगत् है नहीं, यद्यपि है नहीं तौ भी दुःखको देता है, जैसे बालकको अपने परछायेविषे वैताल भासता है, तैसे यह जगत् अविचार करिकै भासता है, अरु विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, अरु एक आश्चर्य सुन, एकब्रह्मांडविषे मैं गया, तहां महाआकाश था, तिस महाआकाशसे गिरा, पृथ्वीऊपर आनि पडा, तब तहां सोइ गया महागाढ

सुषुप्तिरूप हो गया, अरु सब जगत्का विस्मरण हो गया, तब गाढ सुषुप्ति क्षीण भई, तब एक स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे यह जगत् तुम्हारा मुझको भास आया, तिसविषे पहाड कंदरा देश गुप्त प्रगट स्थान मुझको भासि आये, जहां सिद्धकी गम है तहां भी मैं गया हौं, अरु जहां सिद्धकी गम नहीं है तहां भी मैं गया हौं, इसप्रकार यत्न देखे हैं, परंतु आश्चर्य है, कि स्वप्नकी सृष्टि प्रत्यक्ष जागृत्विषे दृष्ट आवै है; अरु स्वप्नके शरीर जागृत्विषे पडे भासते हैं, ताते सब जगत् भ्रममात्र है, असत्‌ही सत् होकारि दिखाई देता है, इसप्रकार देखिकारि मैं आश्चर्यको प्राप्त भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितकथावर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २२३ ॥

द्विशताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः २२४.

महाशववृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चित उवाच ॥ हे राजन् ! एक सृष्टि जो मैंने देखी है सो किस आकाशमें है, इस महाआकाशमें है, जो इस महाआकाशते भिन्न नहीं अरु तहां तुम्हारी भी गम नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि कोऊ जागृत्विषे देखना चाहै सो दृष्ट नहीं आती, तैसे वह सृष्टि है॥हे राजन् ! पृथ्वीका एक स्थान था सो मेरे देखते देखते पच्छावेकी नांई फुरणे लगा, बहुरि वह आकाशविषे पहाडकी नांई भासने लगा अरु मनुष्यका शरीर अरु दशों दिशा रोकि लिया, अरु आकाशते भी बड़ा भासने लगा, सो आकाशविषे भी समावै नहीं, बहुरि सूर्य चंद्रमाको मेरे देखते देखते आच्छादि लिया, बहुरि भूकंप जैसा आया, मानौ प्रलयकाल आया है, तब मैं अपने इष्ट अग्नि देवताकी ओर देखत भया अरु कहा ॥ हे भगवन् ! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हौ, अब भी मेरी रक्षा करौ, मैं नष्ट होता हौं तब अग्निने कहा तू भय मत कर, तब मैं अग्निविषे जीव प्रवेश किया, बहुरि अग्निने कहा, मेरे वाहनपर आरूढ होकारि मेरे स्थानविषे चल, तब मुझको अपने वाहन तोतेपर चढायकारि मेरे तांई आकाशमार्गमें

लेउड़ा, जब हम उड़े तब पाछेते वह शवत्रितक पृथ्वीपर गिरा तिसके गिरनेकरि सुमेरु जैसे पर्वत पातालको चले गये, महाबडा शरीर गिरा जैसे सैकडों सुमेरु गिरैं तैसे गिरा, अरु मंदराचल मलयाचल अस्ताचलते लेकरि जो पर्वत थे सो अधको चले गये अरु पृथ्वी जर्जरीभावकरि फटि गई, टोए पड़ि गये, अरु तिसके शरीरके नीचे वृक्ष मनुष्य दैत्य स्थावर जंगम जो आये सो सब नष्ट हो गये बडा उपद्रव आनि उदय हुआ तिसके शरीरसाथ सर्व दिशा पूर्ण हो गईं अरु अंग उसके ब्रह्मांडते भी पार निकस गये ॥ हे राजन् दशरथ ! जब इसप्रकार मैं भयानक दशा देखी, तब अपने इष्ट अग्निको कहा ॥ हे देव ! यह उपद्रव क्योंकरि हुआ है, अरु यह सब कौन हैं, सो ऐसा शरीर पडा आगे तौ कोऊ देखा सुना नहीं, तब अग्निने कहा, तू अब तूष्णीं होहु यह सब वृत्तांत मैं तुझको कहौंगा, इसको तू शान्त होनेदे एता काल तू विलंब करु, इस प्रकार अग्नि कहता था, कि देवता विद्याधर गंधर्व सिद्ध जेते कछु स्वर्गके वासी थे सो सब आनिकरि मिल स्थित हुए अरु विचार करत भये कि, यह उपद्रव प्रलयकालविना हुआ है, इसके नाश करनेको देवीजीकी आराधना करिये ॥ हे राजन् ! ऐसे विचार करिकै देवीजीकी स्तुति करने लगे ॥ हे देवी शववाहिनी काकदेशी चंडिका हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रवते हमारी रक्षा करहु, ऐसे कहिकरि स्तुति करने लगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशववृत्तांतवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २२४ ॥

द्विशताधिकपंचविंशतितमः सर्गः २२५.

स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चित उवाच ॥ हे राजन् दशरथ ! वह देवता स्तुति करिकै शवकी ओर देखते भये, कि सप्तद्वीप इसके उदरविषे समाय गये हैं, अरु भुजाकरिकै सुमेरु आदिक पर्वत आच्छादित होगये हैं, अपर अंग उसके ब्रह्मांडको भी लंघि गये हैं, अरु साथही पातालको गये हैं, तिनकी मर्यादा

कहूँ पाई न जावै, एक अंगहीकरिकै कहूँ पृथ्वी छपि गई, ऐसे देखकरि विद्याधर देवता गंधर्व सिद्ध इनते लेकरि नभचर स्तुति करने लगे ॥ हे अंबे चंडिका ! अपने गणको साथ लेकरि इस उपद्रवते हमारी रक्षा करहु; हम तेरी शरण आये हैं ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार स्तुति करिकै देवता आराधन करने लगे, तब चंडिका अपने गणनको लेकरि आकाश-मार्गसों आती भई, यक्ष वैताल भैरव आदिक गण साथ ले आई, जैसे मेघ सर्व दिशाको आच्छादि लेता है, तैसे सर्व ओरते गण आये अरु आकाशको आच्छादि लिया, अरु चंडिका बडे तेजरूपको धारे हुए चली आवै, मानौ अग्निकी नदी चली आती है, रक्त नेत्र हैं, शिर उपर पक्के केश हैं, अरु श्वेत दंत हैं, अरु बडे शस्त्र धारे हुए है, अरु कई कोटि योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, सब दिशा आकाश शरीरकरि आच्छादित कर लिया है,अरु कंठविषे रुंडकी माला है,अरु सब मुडदे वाहनपर आरूढ हुई है, अरु परमात्मपदविषे तिसकी स्थिति है, अरु हृदय प्रकाशसंयुक्त शरीर है, सूर्य चंद्रमा अग्नि आदिकके प्रकाशको भी लज्जित किया है. अरु हाथविषे खड्ग मुशल ध्वजा ऊखल आदिक नानाप्रकारके शस्त्र धारे हैं, अरु आकाशविषे तारागणकी नांई गये हैं, इसप्रकार गणनसहित चली आती है, मानौ समुद्रते निकसी वडवाग्नि चली आती है, जब इसके निकट आये तब देवता बहुरि प्रार्थना करने लगे॥हे अंबे। इस शवको नाश करहु, अपने गणनको आज्ञा करहु जो इसको भोजन करैं, हम इसको देखकरि बडे शोकको प्राप्त हुए हैं, हम तेरी शरण हैं, इस उपद्रवते हमारी रक्षा करु ॥ हे राजा दशरथ ! जब इसप्रकार देवतोंने कहा, तब चंडिका प्राणवायुको खैंचती भई, तिसकरि देवीके खैंचनेते जेता कछु शवविषे रक्त था सो सब पान करि लिया, जैसे समुद्रको अगस्त्यने पान किया है, तैसे पान करि लिया, तिसकरि देवीका उदर अरु अंग सब भरे पूर्ण हो गये, अरु नेत्र लाल हो आये, तब देवी नृत्य करने लगी अरु अपर सब शवको भोजन करने लगे, कई मुखको लगे, कई भुजाको, कई उदरको, कई वक्षःस्थलको, कई टंगको, कई चरणको इसप्रकार सब अंगको गण भोजन करने लगे, कई गण आज्ञा लेकरि आकाशविषे

गये, सूर्यके मंडलको गये, कई गण अंगके अंतपावनेको उडे, सो मार्गहीमें मरगये परंतु अंत कहूं न पाया, अरु देवी उस शवकी ओर देखै, तिस देखनेकरि नेत्रते अग्नि निकसै, तिस अग्निकरि मांस परिपक्क होवै, अरु गण भोजन करैं, अरु पकनेके समय जो शरीरते कहूं रक्तकी बूंद निकसै, तिसकरि मंदराचल अरु हिमाचल पर्वत लाल हो गये, मानौ पर्वतने लाल वस्त्र पहिरे हैं, अरु रक्तकी नदियां बहै हैं; बडे जो सुंदर स्थान थे, अरु दिशा सब भयानक होत भईं, अरु पृथ्वीऊपर जीव सब नष्ट हो गये, पहाडकी कंदराविषे जाय देव रहे सो बचि गये, अपर सब नष्ट हो गये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, उसके नीचे आय प्राणी सब नष्ट हो गये, अरु अंग उसके ऐसे कहते हौ, जो ब्रह्मांडको भी लंघि गये, बहुरि कहते हौ देवता बचि रहे सो क्या कारण है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो उसके शरीर अरु अंगके नीचे आये सो नष्ट हो गये, अरु मुख अरु ग्रीवाविषे कछु भेद हीं तिसविषे जो पोल है, अरु गोदी अरु टंगके नीचे जो कछु पोल हैं, अरु सुमेरु मंदराचल उदयाचल अस्ताचल पर्वतविषे कछु पुलाव है, तिनकी कंदरा विषे बैठे देवता बचि गये, अंगके छिद्रविषे रहे हैं, इसकरि बचि रहे हैं, अरु कहने लगे, बडा कष्ट है, हमारे बैठनेके स्थान कई नष्ट हो गये हैं, वृक्ष कहां गये, बर्फका पर्वत हमारा कहां गया, इनकी सुंदरता कहां गई; वन अरु बगीचे कहां गये, चंदनके वृक्ष कहां गये, अरु जनके समूह कहां गये, जो हमको यज्ञकरि पूजते थे, वह ऊंचे वृक्ष कहां गये, कि ब्रह्मलोकपर्यंत जिनके फूल अरु टास जाते थे, अरु वह क्षीरसमुद्र कहां गया, जिसके मथनेकरि बडा शब्द उदय होता था, अरु तिसके पुत्र जो रत्न कल्पतरु अरु चंद्रमा थे सो कहां गये, अरु जंबूद्वीप कहां गया, जिस जंबूके फलकी नदी चलाई थी, अरु स्वर्णवत् जलके चक्र उठते थे, सो नहीं है कहां गई, अरु गन्नेके रसका समुद्र कहां गया, हा कष्ट ! हा कष्ट आपडा है, खंडके पर्वत अरु मिसरीके पर्वत, अप्सराके विचरणेके स्थान कहां गये, पृथ्वी कहां गई, यह नंदनवनके स्थान कहां गये, जहां हम अप्सरासाथ विलास करते थे, तिन विषयका अभाव नहीं हुआ, मानौ

हमको शूल चुभते हैं, जैसे फलको कंटक चुभते हैं, तैसे विषयके आभासरूपी हमको कंटक चुभते हैं ॥ हे रामजी ! शोकवान् हुए, अरु कहते भये, हा कष्ट ! हा कष्ट ! है, इसप्रकार विषय स्मरण करिकै देवता शोक करते हैं, अरु गण वहां शवको भोजन करते हैं, जेते कछु अंग तिसके थे सो गणनने भोजन करि लिये, तिसकरि अघाय रहे, अरु कछु मेदाका शेष रह गया, अरु सुगंध बहुत तब तिसका जो पिंड रहा, सो धराकी पृथ्वी हुई, तिसकरि तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी हो गया; अरु मोटे जो हाडे हुए होते हैं, तिसके सुमेरु आदिक पर्वत हुए, तब ब्रह्माजीने देखा कि, सब विश्व शून्य जैसा हो गया है, ताते बहुरि मैं रचौं, तब पूर्वकी नांई सृष्टिको रची, जगत्का सब कर्मव्यवहार चलने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वयंमाहात्म्यवृत्तांतवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ २२५ ॥

द्विशताधिकषड्विंशतितमः सर्गः २२६.
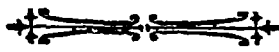
मच्छरव्याधवर्णनम् ।

विपश्चित उवाच ॥ हे राजन् ! जब यह कर्म हो रहा था; तब मैं अपने इष्ट देवतासों प्रश्न किया, तोते वाहनपर आरूढ हुए मैं कहा ॥ हे महादेव ! सर्व जगत्के ईश्वर अरु जगत्के भोक्ता ! यह सब कौन था अरु कहां स्थित था अरु किस प्रकार गिरा है ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन् ! अनंत त्रिलोकी जिसका आभास है, तिसविषे वृत्तांत वर्णन होवैगा, एक त्रिलोकीविषे इस सबका वृत्तांत नहीं होता, ताते सुन ॥ हे राजन् ! एक परम आकाश है, सो चिन्मात्र पुरुष है, सर्वज्ञ है, अनामय है, अरु अनंत है, सो आत्मतत्त्व केवल अपने आपविषे स्थित है, तिसका जो आभास है, सो संवेदन फुरणा है, सोई किंचन होता है, सो तिसके किसी स्थान विषे फुरता है तब ऐसे भावना होती है, कि मैं तेज अणु हौं, तिस भावनाके वशते अणु जैसी हो जाती है, जैसे कोऊ पुरुष सोया है, अरु स्वप्नमें आपको मार्गविषे चलता देखता है, जैसे तुम

स्वप्नविषे आपको पौढे देखहु तैसे चिद् संवेदन आपको अणु जानत भई है, जैसे फुरणा ब्रह्माको हुआहै, तैसे धूड़के किणकेका हुआहै,अधिष्ठानविषे फुरणा तुल्य हुआ है,तब उस अणुको शरीरकी भावना होतीहै, जो अपने साथ शरीर देखती है, शरीरके होनेकरि नेत्र आदिक इंद्रियां घन होती हैं, तब शरीर अरु इंद्रियोंसाथ आपको मिला हुआ जानता है, अपना आप जानकरि तिनको ग्रहण करता है, इंद्रियोंकरि विषयको ग्रहण करता है, तब वही चिद्रूप जीव प्रमादकरिकै आधाराधेय भावको मानता है, अरु अधिष्ठान सत्ताविषे कछु हुआ नहीं, अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे प्रमादकरिकै आपको किसी गृहविषे बैठे देखता है, तैसे यहां प्रमादकरिकै आधाराधेयभावको देखता है, प्राण अरु मन अहंकारको धारता है, अरु जानता है, मेरे माता पिता हैं, अरु मैं अनादिका जीव हौं, अरु अपना शरीर जानकारि आगे पांचभौतिक जगत्शरीरको देखता है, अपने फुरणेके अनुसार है, अंग इसीप्रकार जो आदिक शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वविषे फुरणा हुआ, तब चित्तकला फुरी, यह आपको तेज अणु जानत भई,तिसविषे अहंवृत्तिकरि अहंकार हुआ, अरु निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैत्यतारूप चित्त हुआ,संकल्पविकल्परूप मन हुआ,यह उत्पत्ति होकरि बहुरि तन्मात्र उत्पत्ति भई, फेरि तिनके इच्छाद्वारा शरीर इंद्रियां उत्पन्न भई, बहुरि तिन इंद्रियोंके वशते देखनेकी इच्छा हुई, तिस संवित्कालविषे तब आगे दृश्य भासि आई,तब संवित्शक्ति आपको प्रमाददोषकरिकै दैत्य जानत भई, कि मैं दैत्य हौं, अरु साथही तिसके अपने माता पिता फुर आये; कि यह मेरी माता है, यह पिता है, यह कुल है, सो चिरकालकी चली आती है,इसप्रकार एक दैत्य अहंकारसहित विचरने लगा,तब एक कुटीविषे एक ऋषि बैठा था, तिस कुटीकी ओर दैत्य गया, सो किस प्रकार गया, कि उसकी कुटीका चूर्ण करत भया, जब ऋषिके निकट गया तब ऋषिने कहा, हे दुष्ट! तुझने क्या चेष्टा ग्रहण करी है, अब तू मारि जावैगा, अरु मच्छर होवैगा ॥ हे विपश्चित! तिस ऋषिके शापरूपी अग्निकारि उसका शरीर भस्म हो गया, तब उसकी निराकार चेतनसंवित्

भूताकाशरूप हो गई, तब आकाशविषे तिसका वायुसाथ संयोग हुआ तब उस ऋषि मौनीके शापकी वासना आनि उदय भई, जैसे पृथ्वीविषे समय पायकरि बीजते अंकुर उत्पन्न होता है, तैसे पंच तन्मात्रा उदय भईं, अरु मच्छरका शरीर अपना भासि अया, अज्ञान करिकै मच्छर हुआ, जिस मच्छरकी दो अथवा तीन दिन आयुर्बल होती है, तिसका शरीर पाया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जीव जो जन्म पाते हैं, सो जन्मते जन्मांतरको चले आते हैं, अथवा ब्रह्मते उपजे होते हैं, यह कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कई जन्मते जन्मांतर चले आतेहैं, अरु कई ब्रह्मते उपजते होते हैं, जिनको पूर्ववासनाका संसरना होता है सो वासनाके अनुसार शरीरको धारते हैं, सो जन्मते जन्मांतरको चले आते हैं, अरु जिनको संस्कार विना भूत भासि आते हैं, सो ब्रह्मते उत्पन्न होते हैं ॥ हे रामजी ! आदि सब जीवसंस्काररूपी जो कारण है, तिसविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछेते जन्मांतर इनको होता है, जिसको संस्कार-विना भूत भासै सो जानिये ब्रह्मते उपजा है, अरु जिसको संस्कार-करि सृष्टि भासै सो जानिये इसके जन्मान्तर हैं, जो ये दो प्रकार भूतकी उत्पत्ति मैं तुझको कही है, अब बहुरि उस मच्छरका क्रम सुन ॥ हे रामजी ! जब वह मच्छरके जन्मको प्राप्त हुआ, तब कमलनिया अरु हरे घास तृण पत्रविषे मच्छरको साथ लिये रहे, तब वहां एक मृग आनि प्राप्त हुआ, तिसका चरण मच्छरपर आय गया, जैसे किसीके ऊपर सुमेरु पर्वत आय पडै, तब वह मच्छर चूर्ण हुआ, अरु मृतक भया, अरु मृतक होनेके समय मृगकी ओर देखा, उसके देखनेकरिकै उसका शरीर मृगरूप हो गया, तब वह मरिकै तत्कालही मृग हुआ, वनविषे विचरने लगा, तब एक कालमें तिसको वधिकने देखा, अरु बाण चलाया, तिस बाणकरि मृग वेधा गया, वेधा हुआ मृग वधिककी ओर देखता भया, तिस देखनेकरि वह मरिकै वधिक हुआ, तब धनुष अरु बाण लेकरि मृग अरु पक्षीको मारने लगा, बहुरि एक समय वनविषे गया, तब एक मुनीश्वर वनविषे देखा, तिसके निकट जाय बैठा, मुनीश्वरने कहा, हे भाई ! तू यह क्या पापचेष्टाका

आरंभ करता है, इस चेष्टाकरि नरकको प्राप्त होवैगा, ताते तू किसी जीवको दुःख न दे, अरु जिन भोगके निमित्त तू यह चेष्टा करता है सो भोग बिजुलीके चमत्कारवत् हैं, जैसे मेघविषे बिजुलीका चमत्कार होता है बहुरि मिटि जाता है, तैसे भोग होयकरि मिटि जाताहै, अरु जैसे कमलके पत्र ऊपर जलकी बुन्द ठहरती है, सो उसकी आयुर्बल कछु नहीं, क्षण पलविषे वायुकरिकै गिर पडती है, तैसे इस शरीरकी आयुर्बल कछु नहीं, जैसे अंजलीविषे जल पाया ठहरता नहीं; तैसे यौवनअवस्था चली जाती है, क्षणभंगुररूप वृक्ष है, अरु यौवन असार है, तिसविषे भोगना क्या है; इनकरि शांति कदाचित् नहीं होती, जो तुझको शांतिकी इच्छा होवै तौ निर्वाणका प्रश्न कर, तब तू दुःखते मुक्त होवै, अपने हिंसा कर्मको त्यागि देहु, इसके करणेकरि नरकको चला जावैगा कदाचित् भी शांति तुझको न प्राप्त होवैगी, तू अपने हाथकरि अपने चरणपर कुल्हाडा क्यों मारता है, अरु अपने नाशके निमित्त तू विषका बीज क्यों बोता है, इस कर्मकरि तू संसारदुःखविषे भटकता फिरैगा, शांतिवान् कदाचित् न होवैगा, ताते सो उपाय कर जिसकरि संसार-समुद्रते पार होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र० मच्छरव्याधवर्णनं नाम द्विशताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ २२६ ॥

द्विशताधिकसप्तविंशतितमः सर्गः २२७.

हृदयांतरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनम् ।

अग्निरुवाच ॥ हे राजन्! जब इसप्रकार ऋषीश्वरने उस वधिक-को कहा, तब वधिकने धनुष अरु बाणको डारि दिया अरु बोला, हे भगवन्! जिसप्रकार संसारसमुद्रते पार होऊं सो उपाय कृपा करिकै मुझको कहौ, परंतु कैसे होवै जो न दुःसाध्य होवै, न मृदु होवै; मृदु कहिये जो अल्प भी न होवै, न दृढ होवै॥ ऋषीश्वर उवाच ॥ हे वधिक! मनको एकाग्र करना इसका नाम शम है, अरु इंद्रियोंको रोकना इसका नाम दम है, सोई मौन है, यह दोनों जो हैं तप अरु मौन, मनको एकाग्र

करना इसकारि अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु अंतःकरणशुद्धविषे आत्मज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानकारि संसारभ्रम निवृत्त होजाता है, अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब ऋषीश्वरने कहा, तब वह वधिक उठ खडा हुआ, प्रणाम करिकै जाय तप करने लगा, कैसा तप जो इंद्रिय संयमविषे राखी, अरु जो अनिच्छित यथाशास्त्र आनि प्राप्त होवै, तिसका भोजन करना अरु सब क्रियाका अंतरते मौनव्रत धरना, जब केता काल उसको तप करते व्यतीत भया, तब अंतःकरण शुद्ध हुआ, ऋषीश्वरके निकट आय कारि प्रणाम करि बैठ गया अरु कहत भया ॥ वधिक उवाच ॥ हे भगवन् ! बाहर जो दृश्य है सो अंतर किसप्रकार प्रवेश करती है, अरु स्वप्नविषे सृष्टि जो भासती है, सो अंतरकी बाह्यरूप हो भासती है, सो कैसे भासती है, यह कृपा करिकै कहौ॥ऋषीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह बडा गूढ प्रश्न तुमने किया है, यही प्रश्न प्रथम मैं भी संदेहसंयुक्त होकारि गणपतिसे किया था, तब जो कछु उनके कहनेकारि मैं ग्रहण किया है सो सुन ॥ हे वधिक ! एक समय इसी संदेहके दूर करनेका उपाय मैं करत भया, पद्मासन बांधिकारि बाह्य इंद्रियोंको रोका, रोकिकारि मनविषे जोडी अरु मन बुद्धि आदिकको पुर्यष्टकाविषे स्थित किया, स्थित करिकै पुर्यष्टकाको शरीरते विरक्त किया, अरु आकाशविषे निराधार तिसको ठहरावत भया, जब विलक्षण हुआ चाहै तब विलक्षण हो जावै, अरु जब शरीरविषे व्यापा चाहै तब व्यापि जावै ॥ हे वधिक ! इसप्रकार जब मैं योगधारणा करिकै पूर्ण भया, तब एक कालमें एक पुरुष हमारी कुटीके पास सोया था, तिसके श्वास अंतर बाहर आते जाते थे, तिसको देखिकारि मैंने यह इच्छा करी कि, इसके अंतर जायकारि कौतुक देखौं कि, अंतर क्या अवस्था होती है, ऐसे विचार करिकै मैं पद्मासन बांधा, अरु योगकी धारणा करिकै उसके श्वासमार्गसों मैं अंतर प्रवेश जाय किया, जैसे उष्ट्र ऊंघता होवै अरु उसके श्वासमार्गते जैसे सर्प जाय प्रवेश करै, तैसे मैं जाय प्रवेश किया, तिसके अंतर अपने अपने रसको ग्रहण करनेहारी नाड़ियां मुझको दृष्ट आईं, कई

वीर्यको ग्रहण करनेहारी हैं, कई रक्तको, कई कफको ग्रहण करती हैं, कई मलमूत्रवालियां हैं, सो सब मैं देखत भया, अपर अनेक विकार जो उसके अंतर थे सो सब देखत भया, देखकरि मैं अप्रसन्न भया, महासंकल्परूप स्थान है, रक्त मज्जाकरि संयुक्त अंधकार महानरकके तुल्य जीवको गर्भवास है, बहुरि आगे गया तहां एक कमल देखा, तिस हृदयकमलविषे तिनकी संवेदन फुरती देखी तिस संवेदन फुरणेविषे जो कछु मैं देखा है सो सुन, अरु कैसी वह संवेदन है, संवित्शक्ति जो महातेजवान् है, हृदयाकाश तहां वह स्थित है, कैसी स्थित है, त्रिलोकीका आदर्श है, त्रिलोकीविषे जो पदार्थ हैं, तिनका दीपक है, अरु सर्व पदार्थकी सत्तारूप है, ऐसी जो संवित्रूपी जीवसत्ता है, सो तहां स्थित है, तिस सत्तासाथ मैं तद्रूपताको प्राप्त हुआ, तहां तिसके अंतर मैं देखा है सो सुन, सूर्य, चंद्रमा अरु पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता, गंधर्व इनते आदि लेकरि जो नानाप्रकारका जगत् है; स्थावर जंगम सब विश्वको मैं देखता भया, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सहित संपूर्ण सृष्टिको देखकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ, उसके अंतर सृष्टि क्योंकरि भासी सो सुन ॥ हे वधिक ! जाग्रतविषे उस सृष्टिको इंद्रियकरिकै अनुभव किया था, अरु अंतर चित्तत्त्वविषे उसका संस्कार हुआ था, वही अंतर भास भासने लगा, अरु अंतर जो भूतसत्ता थी, सो उसके स्वप्नविषे यह सृष्टिरूप बाह्य बनी; अरु मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी, जैसे जाग्रत् प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसे मुझको यह सृष्टि भासने लगी ॥ हे वधिक ! इस जाग्रत् सृष्टि अरु उस सृष्टिविषे भेद कछु न देखा, दोनों तुल्य हैं, अरु चिरपर्यंत प्रतीतिका नाम जाग्रत् है, अरु अल्पकालकी प्रतीतिका नाम स्वप्न है, अरु स्वरूपते दोनों तुल्य हैं, जो उसके स्वप्न अनुभवविषे था सो मुझको जाग्रत् भासी, अरु जो मुझको जाग्रत् भासी सो उसको स्वप्न भासा, निद्रादोष करिकै उसको स्वप्न हुआ, उसको भी तिस कालविषे जाग्रतरूप भासने लगी, काहेते कि स्वप्नरूप है, सो जाग्रतविषे स्वप्न है, स्वप्नविषे तौ जाग्रत् है, तैसे जाग्रत् भी अपने कालविषे जाग्रत् है, नहीं तौ स्वप्नरूप है, सो जाग्र-

तविषे भी जो सत्यप्रतीत है, सोई प्रमाद है,इनदोनोंविषे भेद कछु नहीं काहेते कि जाग्रत् अरु स्वप्नका अधिष्ठान चेतनसत्ता परब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि इसको प्राणके साथ संबंध हुआ, जब प्राणसाथ चित्तसंवेदन मिली, तब तिस फुरणेरूपके एते नाम भये, तिसका नाम जीव हुआ, मन हुआ, चित्त बुद्धि अहंकार आदिक सब तिसके नाम हैं, वही संवेदन जो बाह्यरूप हो फुरती है, तब जाग्रतरूप जगत् हो भासता है, पंच ज्ञान इंद्रियां, पंच कर्म इंद्रियां, चतुष्टय अंतःकरण यह चौदह इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, इसका नाम जाग्रत् है, जब चित्तस्पंद निद्रादोष करिकै अंतर्मुख फुरता है, तब नानाप्रकारकी स्वप्नसृष्टि देखता है, निद्रादोष करिकै तिस कालमें वही जाग्रतरूप हो भासता है, अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, जब संवेदन तिसकी ओर फुरती है, बाह्य विषयके फुरणेते रहित अफुरण होती है, तब न जाग्रत् भासती है, न स्वप्न भासता है, केवल आत्मसत्ता निर्विकल्प शेष रहती है ॥ हे वधिक । मैं विचार देखा, कि जगत् अपर कछु वस्तु नहीं, फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्त संवेदन फुरणारूप होती है, तब जगत् भासता है, अरु जब चित्तसंवेदन फुरणेते रहित होती है, तब जगत्कल्पना मिटि जाती है, ताते मैंने निश्चय किया है, कि वास्तव केवल चिन्मात्र है, जगत् कछु वस्तु नहीं, मिथ्या कल्पनामात्र है ॥ हे वधिक । जगत्भावना त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अब वही वृत्तांत बहुरि सुन, जब उसके अंतर स्वप्न जाग्रत् अवस्था देखी तब मैंने यह इच्छा करी कि सुषुप्त अवस्था भी देखौं, अरु विचार किया कि सुषुप्ति नाम है प्रलयका, जहां द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका अभाव हो जाता है, परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ,तहां महाप्रलय कैसे होवैगी, अरु जो मैं जाननेवाला न होऊं तब सुषुप्तिको कौन जानैगा ॥ हे वधिक । तब मैं विचारि देखा, कि अपर सुषुप्ति कोऊ नहीं, जहां चित्तकी वृत्ति फुरती नहीं तिसीका नाम सुषुप्ति है, ऐसे विचार करिकै चित्तको फुरणेते रहित किया तब सुषुप्ति तिसकी देखी, तहां क्या देखा सो सुन, न कोऊ वहां अहं त्वं शब्द है, न शुभ है, न अशुभ है, न जाग्रत् स्वप्न है, न सुषुप्तिकी

कल्पना है, सर्व कल्पनाते रहित चित्सत्ता मैं देखत भया, अरु जो तू कहै, सुषुप्ति निर्विकल्प तुझने कैसी देखी तिसका उत्तर यह है॥ हे वधिक। अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा कालविषे ज्योंकी त्यों है, तिसविषे जैसा आभास फुरता है, तैसा ज्ञान होता है, यह जो तुम भी दिन दिन प्रति देखते हो, सुषुप्तिते उठिकरि जानते हौ, कि मैं सुखसों सोया था, सो अनुभव करिकै देख, तैसे मैं भी वह देखता भया, यहां चित्त संकल्प कोऊ नहीं फुरता, निर्विकल्प है, परंतु कैसा निर्विकल्प है, जो सम्यक् बोधते रहित है, तिस अभाव वृत्तिका नाम सुषुप्ति है, अरु बहुरि मुझको तुरीया देखनेकी इच्छा भई, सो तुरीया देखनी महा कठिन है, तुरीया नाम है साक्षीभूत वृत्तिका सो सम्यक् ज्ञानते उत्पन्न होती है, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीभूत अवस्था है, अरु सुषुप्तिकी नांई है, जैसे सुषुप्तिविषे अहं त्वं आदिक कल्पना कोऊ नहीं, तैसे तुरीयाविषे भी नहीं, ब्रह्मका सम्यक् बोध होता है, अरु सुषुप्ति जडीभूत तमरूप अविद्या होती है, तुरीयाविषे जडता नहीं होती, सो सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे एताही भेद होता है, सच्चिदानंद साक्षीवृत्ति होती है, सम्यक्बोधका नाम तुरीयापद है, अपर तुरीया इसके भिन्न कोऊ नहीं ऐसे निश्चयकरि मैं तिसको देखता भया॥ हे वधिक। चारौं अवस्था मैं भिन्न भिन्न देखता भया, अरु माया जो है फुरणा, तिससहित मैं देखता भया अरु आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न कोऊ जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, न तुरीया है, इनका भेद तहां कहूँ नहीं, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है, अरु यह चारौं चित्तसंवेदनविषे होती हैं॥ हे वधिक। ऐसे अनुभव करिकै बाहर आया, बाहर भी मुझको भासने लगा, तब मैं कहा, यही जगत् मुझको उससे अंतर भासा था, बाहर कैसे आया तब मैं बहुरि उसके अंतर प्रवेश किया, प्रथम जो उसके अंतर प्रवेश किया था अरु तिसके अंतर सृष्टि देखी थी, तब उसकी संवेदन अरु मेरी संवेदन मिल गई थी, जब मैं अपनी संवेदन उसते भिन्न करी तब ब्रह्मांड भासने लगा, एक उसकी संवेदन फुरणेको अरु एक मेरी संवेदनविषे भासने लगा, काहेते कि प्रथम उसकी सृष्टिको देखकरि

मैं अर्थरूप जान ग्रहण किया, तिसका संस्कार हो गया, आत्मसत्ताके आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई, तैसे होकरि भासने लगा, उसका स्वप्न मुझको जागृत् होकरि भासने लगा, जैसे एक दर्पणविषे दो प्रतिबिंब भासैं तैसे एक अनुभवविषे दो सृष्टि भासने लगीं; तब मैंने विचार किया कि सृष्टि संकल्परूप है, संकल्प जीवका अपना अपना है, अरु अपने संकल्पकी भिन्न भिन्न सृष्टि है, अरु अनुभवके आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है, तैसी सृष्टि भासती है, सृष्टिका कारण अपर कोऊ नहीं ॥ हे वधिक ! अष्ट निमेषपर्यंत मुझको दो सृष्टि भासती रहीं, बहुरि मैं उसके चित्तकी वृत्ति अरु अपने चित्तकी वृत्ति इकट्ठी करि मिलाई, तब दोनों तद्रूप हो गये जैसे जल अरु दूध मिलिकरि एक रूप हो जाता है, तैसे दोनों चित्त मिलिकरि एक हो गये, तब दूसरी सृष्टिका अभाव हो गया, जैसे भ्रम-दृष्टिकरि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, भ्रमके गयेते दूसरे चंद्रमाका भाव अभाव हो जाता है, तैसे द्वितीया वृत्तिके अभाव हुए दूसरी सृष्टिका अभाव हो गया, एक इसीकी सृष्टि भासने लगती है, नानाप्रकारके व्यव-हार होते दृष्ट आवैं, चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासने लगे, केते कालते उपरांत तिसके चित्तकी वृत्ति सुषुप्तिकी ओर आय स्वप्नसृ-ष्टिका विस्तार लीन होने लगा, जैसे संध्याके समय सूर्यकी किरणें सूर्यविषे लय होती जाती हैं, जब सृष्टि चित्तविषे लय होने लगी, तब स्वप्नविषे मिटि गई, सुषुप्ति अवस्था हुई, सर्व इंद्रियां स्थिर हो गईं ॥ हे वधिक ! सुषुप्ति जो होती है, जब अन्न भोजन करता है तब वह समवाही नाडीके ऊपर आनि स्थित होता है, जागृत्वाली ठहर जातीहै, तिसकरि प्राण भी ठहर जाते हैं, तब मन भी ठहर जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति होता है, जब मन बहुरि फुरता है, तब जागृत् होता है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब मन प्राणोंहीकरि चलता है, तब मनका अपना रूप तौ कहूँ न हुआ क्यों ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! परमार्थते कहिये तौ देह भी नहीं तौ मन क्या है, जैसे स्वप्नविषे पहाड भासते हैं, तैसे यह शरीर भासता है, काहेते कि सबका आदि कारण कोऊ नहीं, ताते जगत् मिथ्या भ्रम है, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो तत्त्ववेत्ता हैं,

तिनको तौ ऐसे भासता है, अरु अज्ञानीके निश्चयको हम नहीं जानते, जैसे सूर्य उलूकके अनुभवको नहीं जानता, अरु उलूक सूर्यके निश्चयको नहीं जानता, तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय भिन्न होताहै,अरु शुद्ध चिन्मात्र आकाशविषे जगत्भ्रम कोऊ नहीं, अरु फुरणे भावकरिकै अपने चेतन वपुको ज्ञानविनाही मनभावको प्राप्त होता है, तब मन आत्मसत्ताके आश्रय होकरि प्राणवायुको अपना आश्रयभूत कल्पता है, कि मेरा प्राण है ॥ हे रामजी ! बहुरि जैसी जैसी मन कल्पना करताहै, तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासते हैं, परमब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है, तिसविषे जैसी जैसी भावना करि मन फुरता है, तैसा रूप होभासता है, वास्तवते अपर कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है,मनका फुरणा जैसे जैसे दृढ हुआ है,तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासनेलगता है, जैसे स्वप्नविषे कल्पनामात्र जगत् भासता है, तैसे यह जान॥हे रामजी! जेते कछु विकल्प उठते हैं, सो सब मनके रचे हुये हैं, जब मन उदय होता है, तब यह फुरणा होता है, कि यह पदार्थ सत्य है,यह असत्य है, जब चित्तशक्तिका मनसाथ संबंध होता है, तब प्रथम प्राण उदय होते हैं, प्राणको ग्रहण करिकै मन कहता है, मैं जीव हौं, प्राणही मेरी गति हैं, प्राणविना मैं कहां था, अरु बहुरि कहता है; जब प्राणका वियोग होवैगा तब मैं मरि जाऊंगा, बहुरि न रहूंगा, बहुरि ऐसे कहता है, मुआ हुआ भी मैं जीवौंगा ॥ हे रामजी ! जबलग चाहिये तबलग यह तीन विकल्प उठते हैं, अरु संशयवालेको न इस लोकविषे सुख है, न परलोकविषे सुख है, जबलग आत्मबोधका साक्षात्कार नहीं हुआ, तबलग चित्त निर्वाण नहीं होता, अरु तीन विकल्प भी नहीं मिटते ॥ हे रामजी ! मनके मरनेका उपाय आत्मज्ञानते इतर कोऊ नहीं, अरु मनके शांत हुयेविना कल्याण नहीं होता, दोनों उपायकरि मन शांत होता है, मनकी वृत्ति स्थित करनी, अरु प्राणस्पंद रोकना, जब मन स्थित होताहै तब प्राण रोका जाता है, अरु प्राणके स्पंद रोकेते मन स्थित होता है, अरु जब प्राण क्षोभते हैं, तब चित्त भी क्षोभता है, तब आध्यत्मिक आधिभौतिक तापकरि अग्नि जलता है, अरु मनके स्थित करणेते परम सुख

प्राप्त होता है, सो मनकी स्थिति दो प्रकारकी है, एक ज्ञानकी स्थिति है, अरु एक अज्ञानकी स्थिति है, जब प्राणी अन्न बहुत भोजन करते हैं तब नाडीके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है, अरु प्राण ठहर जाते हैं, जब प्राण ठहरैं तब मन भी जडीभूत हो जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति है सो नाडी कौन हैं, जिनके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है, सो नाड़ी वही हैं, जिनके मार्ग जाग्रतविषे प्राण निकसते हैं, वासनासहित वही नाडी जब रोंकी जाती हैं, तब मन सुषुप्त हो जाता है, यह अज्ञानीके मनकी स्थिति है, काहेते कि जड़ता संसारको लिये शीघ्रही बहुरि उठ आते हैं, जैसे पृथ्वीविषे बीज समय पायकरि अंकुर ले आता है, तैसे वह संस्कारकरिकै बहुरि सुषुप्तिते उठता है, अरु जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी हैं, तिनका चित्त चेतनतके लिये स्थित होता है, सो चेतनता दो प्रकारकी है, एक योगीको चेतनता है, जिस समाधिकरि मनको स्थित किया है, सो समाधिनिष्ठ चित्त है, वह जडता नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे जड़ता होती है, तैसे जड़ता नहीं, अरु ज्ञानवान् जीवन्मुक्तकी सम्यक्ज्ञानकरि चित्तकी वृत्ति स्थित है, उनका चित्त वासनाते रहित स्थित है, जिसका चित्त इसप्रकार स्थित है, तिस पुरुषको शांति है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, तिसको शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, अरु दुःख भी नहीं मिटते, सो निर्वासनिक चित्त करणेको सम्यक्ज्ञानका कारण यह मेरा शास्त्र है, इसके समान अपर कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! यह जो मोक्षउपाय शास्त्र मैंने कहा है, तिसके विचारकरि शीघ्रही स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, ताते सर्वदा इसका विचार कर्तव्य है, जब इसको भली प्रकार विचारैगा, तब चित्त निर्वासनिक हो जावैगा, अब वही प्रसंग जो वधिकको कहता है ॥ हे वधिक ! जब मैं उस पुरुषके चित्तविषे प्राणके मार्ग प्रवेश किया, तब क्या देखौं कि इसके प्राण रोके गये हैं, अन्न करिकै जागृत् नाडी जो फुरती थी सो रोंकी गई है, काहेते जो अन्न पचा नहीं, इस कारणते वह सुषुप्तिविषे है, तिसकी सुषुप्तिविषे मुझको भी अपना आप विस्मरण हो गया, जब कछुक अन्न पचा तब तिसके प्राण फुरणे लगे, जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कछुक

जड़ताको त्यागती भई, संपूर्ण जड़ताका त्याग नहीं किया, परंतु कछु अल्प त्यागा तब फुरणेकरिकै चंद्रमा सूर्य आदिक जो कछु विश्व हैं सो फुर आया तब मैं नानाप्रकारके जगत्को देखता भया, मेरे ताईं अपना पूर्व संस्कार भूलि गया, तहां मैं भी अपने कुटुंबविषे रहने लगा, साथही मेरे ताईं अपनी कुटी भासी, अरु स्त्री पुत्र भाई जन बांधव सब भासि आये बहुरि मेरेविषे देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्जने लगे, अरु मूसलधारा वर्षने लगे, अरु सातों समुद्र उछले; अपर जो प्रलय-कालके उपद्रव होते हैं, सो आनि उदय हुये, प्रथम अग्नि लगी, जब अग्नि लग चुकी, अरु सब स्थान जल रहे थे, तब जलका उपद्रव उदय हुआ, तब मैं क्या देखौं कि नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पक्षी सब बहते जाते हैं, अरु हाहाकार शब्द करते हैं, बडा क्षोभ आनि हुआ, तब एक आश्चर्य मैं देखा, मेरी कुटीभी बहती जाती है,स्त्री, पुत्र, भाई जन इत्या-दिक सब वहां देखता भया,सो सब जलके प्रवाहविषे बहते जाते हैं,अरु जिस स्थानविषे थे, सो स्थान भी बहते जाते हैं, अरु मैं लुढता जाता हौं, बहते बहते ऐसे मुझको कष्ट प्राप्त हुआ जो कहनेविषे नहीं आता, एक तरंगसाथ ऊर्ध्वको चला जाऊं, अपर तरंगसाथ अधको चला जाऊं जब पूर्व शरीर मुझको स्मरण आय पडा, तब जेता कछु जगत् है, सो मुझको सब भासने लगा, मिथ्या राग द्वेष सब मिटि गया, अरु शरी-रकी चेष्टा सब उसप्रकार होवै, जो तरंगके साथ कबहूँ ऊर्ध्व कबहूँ नीचे आइ पडा, परंतु अंतर मेरा शांत हो गया, तिस कालमें नगर देश मंडल बहते जावैं, अरु त्रिनेत्र सदाशिव बहते जावैं, विद्याधर गंधर्व यक्ष किन्नर सिद्ध इनते आदिलेकारि अपर भी सब बहते जावैं, अष्टदल कमलकी पंखडीपर बैठा ब्रह्माजी बहता जावै,, इंद्र कुबेर अपनी पुरियोंसहित बहते जावैं, अरु विष्णुजी अपनी वैकुंठपुरीसहित बहता जावै, बडे पहाड़ द्वीप लोकपाल सब बहते जावैं, पातालवासी सब प्रलयके जलविषे बहते जावैं, यम भी अपने वाहनसाथ बहता जावै, ऐसी समर्थता किसीकी नहीं कि किसीको कोऊ निकासै, जो आपही बहते जावैं बहुरि डूब जावैं, इसीप्रकार गोते खावैं, तैसे बडे ऐश्वर्यसहित देव बहते जावैं, जो

संसारसुखनिमित्त यत्न करते हैं, सो महामूर्ख हैं, अरु जिनके निमित्त यत्न करते हैं, सो सुख भी अरु सुखके देनेहारे भी सब बहते जावैं, तैसे सप्त ऋषीश्वर बहते जावैं ॥ हे वधिक ! इसप्रकार महाप्रलय होती तिसके स्वप्नविषे मैं देखता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयांतरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तविंशतितमः सर्गः ॥२२७॥

द्विशताधिकाष्टाविंशतितमः सर्गः २२८.

हृदयान्तरप्रलयाग्निद्वारवर्णनम् ।

वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो महाप्रलय तुमने कही, जिसविषे ब्रह्मादिक भी बहते जावैं,सो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक तौ स्वतंत्र हैं, ईश्वर हैं, यह परतंत्र हुए बहते जाते तुम कैसे देखे, अंतर्धान क्यों न हुये ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह जो प्रलय हुई है सो एक क्रमकरिकै नहीं हुई, जब क्रमते होवै तब यह ईश्वर समाधिकरिकै शरीरको अंतर्धान करि लेते हैं, परंतु अंतर्धान होनेका जल चढ़ि जाता है, उनका कछु नियम नहीं, काहेते कि यह जगत् भ्रमरूप है, इसविषे क्या आस्था करनी है, अरु स्वप्नविषे क्या नहीं बनता,सभी बन जाता है, स्वप्नभ्रांतिकरिकै विपर्यय भी होते हैं, इसके लिये उनको बहते देखा है॥ व्याध उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब वह स्वप्नभ्रम था, तौ तिसका क्या वर्णन करना ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! तेरे ताईं इसको समानता अर्थ कहता हौं, ताते सुन, स्थावर जंगम जगत् बहता देखा, साथही मैं बहता जाऊं अरु जलकी लहरी उछलैं, इन तरंगविषे मैं उछलता हौं, परंतु मुझको कष्ट कछु न होवै, तब मैं बहता बहता एक किनारे जाय लगा, तिसके पास एक पर्वत था, तिसकी कंदराविषे मैं जाय स्थित भया, तहां देखत भया, कि जीव बहते हैं, अरु जल भी सूखता जाता है, तब जलके सूखनेकरि चीकड हो गया, किसी ठौरविषे जल रहा, तिसविषे कई डूबते दृष्ट आवैं, ब्रह्माके हंस दृष्ट आवैं, कहूँ यमके वाहन,कहूँ विष्णुके वाहन गरुड दृष्ट आवैं, चीकडविषे पहाडकी नाईं डूबे दृष्ट आवैं,

कहूँ इंद्रके हस्ती, कहूँ विद्याधर दृष्ट आवैं, इनते आदि लेकरि वाहन चीकडविषे डूबते दृष्ट आवैं, देवता सिद्ध गंधर्व लोकपाल दृष्ट आये, देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ ॥ हे वधिक। इसप्रकार देखताहुआ मैं पहाड़की कंदराविषे सोय गया, तब मुझको अपनी संवित्‌विषे स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे मुझको चंद्रमा सूर्य आदिक नानाप्रकार भूत जलते दृष्ट आवैं, नगर पत्तन जलते हैं, जगत् बडे खेदको प्राप्त हुआ है, तब वहां रात्रि हुई, तहां मैं सोया हुआ अपर स्वप्नको देखत भया, दूसरे दिन तिसविषे मैं बहुरि जगत्‌को देखत भया, सूर्य चंद्रमा देश पत्तन नदियां समुद्र मनुष्य देवता पशु पक्षी नानाप्रकारकी क्रियासंयुक्त दृष्ट आने लगे, अरु षोडश वर्षका शरीर मैं आपको देखत भया, अपने पिता अरु माता मुझको दृष्ट आवैं, उनको मैं माता पिता जानौं, अरु मुझको वह अपना पुत्र जानैं, स्त्री कुटुंब बांधव समस्त मुझको दृष्ट आने लगे, अरु वह जो मैं कैसा, बोधते रहित अरु तृष्णासहित अहंममका अभिमान आनि फुरा, तब एक ग्रामविषे मेरा गृह था, तिसविषे हम सब कुटी बनाई, तिसके चौफेर बूटे लगाये, तहां मैं एक आसन बनाया, तहां कमंडलु अरु माला पडी रहैं, मैं ब्राह्मण था, मुझको धन उपजानेकी इच्छा भई, जो कछु ब्राह्मणका आचार चेष्टा है, सो मैं करौं, बाहिर जायकरि ईंटैं काष्ठ ले आऊं, आनिकरि कुटी बनाऊं, वह चेष्टा हमारी होने लगी, शिष्य सेवक हमारी पूजा करैं, यथायोग्य मैं उनको आशीर्वाद करौं, इसप्रकार गृहस्थाश्रमविषे मैं चेष्टा करौ, अरु मुझको यह विचार उपजे, कि यह कर्तव्य है, इसके करणेकरि भला होता है, नदियां अरु ताल-विषे स्नान करौं, गऊकी टहल करौ, आये अतिथिकी पूजा करौ ॥ हे वधिक। इसप्रकार चेष्टा करता मैं सौ वर्षपर्यंत रहा, तब एक कालमें मेरे गृहविषे मुनीश्वर आया, प्रथम उसको मैं स्नान कराया, बहुरि भोजन-करि तृप्त किया, अरु रात्रिके समय उसको शय्याऊपर शयन कराया, इसप्रकार उसकी टहल करी रात्रिको वार्त्ता चर्चा करने लगे, तिस-विषे मुझको उसने बडे पर्वत कंदरा अरु सुंदर देश स्थान चित्तके मोहनेहारे सुनाये, अरु नानाप्रकारके स्वाद सुनाये, अरु कहने लगा, कि

हे ब्राह्मण ! जेते कछु सुंदर स्थान अरु संवाद तुझको सुनाये हैं, तिनविषे सार चिन्मात्ररूप है, ताते सब चिन्मात्रस्वरूप है, सब जगत् तिसका चमत्कार है, आभास किंचन है, तिसते इतर वस्तु कछु नहीं, ताते हे ब्राह्मण! उसी सत्ताको ग्रहण करु, सो सत्ता सबका अनुभवरूप है, अरु परमानंदस्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे वधिक ! जब इसप्रकार उस मुनीश्वरने मुझको कहा, तब आगे जो मेरा मन योगकरि निर्मल था, तिस कारणते उसके वचन मेरे चित्तविषे चुभि गये, अपने स्वभावसत्ताविषे मैं जागि उठा, तब क्या देखौं कि सब मेराही संकल्प मुझसों भिन्न कोऊ नहीं, मैं तौ मुनीश्वर हौं, यह स्वप्न पाया था, मैं जागिकरि देखौं, तब उसी पुरुषका स्वप्न था, तब मेरे चित्तविषे आई कि किसी प्रकार इसके चित्तते बाहर निकसौं अरु अपने शरीरविषे जाय प्रवेश करौं, तब बहुरि विचारा, कि यह जगत् तौ उस पुरुषका वपु है, वही पुरुष विराट् है, जिसके स्वप्नविषे यह जगत् है, परंतु तिस पुरुषको अपने विराट्स्वरूपका प्रमाद है, तिसकरिकै जैसा वपु हमारा बना है, तिसके स्वप्नविषे वह भी तैसा एक विराट्ते इतर बनि पडा है, बहुरि उस विराट्को कैसे जानिये, जो उसके चित्तसों निकसि जावै ॥ हे वधिक ! इसप्रकार विचार करिकै मैं पद्मासन बांधा, अरु योगकी धारणा करी, उस विराट् स्वरूपके शरीरको देखता भया, देखिकरि जहां चित्तकी वृत्ति फ़ुरती थी, तिसके साथ मिला, अरु प्राणके मार्गते निकसिकरि अपनी कुटीको देखता भया, बहुरि तिसविषे मैं अपने शरीरको पद्मासन देखत भया, तिसविषे प्रवेश करिकै नेत्र खोले, तब अपने सन्मुख शिष्य बैठे देखे, अरु वह पुरुष सोया था, तिसको देखिकरि एक मुहूर्त्त व्यतीत भया, तब मैं आश्चर्यवान् हुआ, कि भ्रमविषे क्या चेष्टा दीखती है, यहां एक मुहूर्त्त व्यतीत भया है, अरु वहां मैं सौ वर्षका अनुभव किया है, बडा आश्चर्य है, कि भ्रमकरिके क्या नहीं होता, बहुरि मेरे मनविषे उपजी कि उसके चित्तविषे प्रवेश करिके कछु अपर कौतुक भी देखौं, तब बहुरि प्राणके मार्गसों उसके चित्तविषे प्रवेश किया, तब क्या देखौं जो आगला कल्प व्यतीत हो गया है, अरु

बांधव पुत्र स्त्री माता पिता आदिक नष्ट हो गये, हैं, अरु दूसरा कल्प हुआ है, तिसकी भी प्रलय होती है, बारह सूर्य आनि उदय हुये, विश्वको जलावने लगे हैं; अरु वडवाग्नि जलावने लगी, मंदराचल अरु अस्ताचल पर्वत जलिकारि टूक टूक हो गये, पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त हुई, स्थावर जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं, बिजुली चमत्कार करती है, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ है ॥ हे वधिक ! मैं अग्निविषे जाय पडा, मेरा शरीर भी जलै परंतु मुझको कष्ट कछु न होवै, जैसे किसी पुरुषको अपने स्वप्नविषे कष्ट आनि प्राप्त होवै अरु जागि उठै तौ कछु कष्ट नहीं होता, तैसे अग्निका कष्ट मुझको कछु न होवै, मैं आपको वहीरूप जागृत्वाला जानौं अरु जगत्प्रलयको भ्रममात्र जानौं इस कारणते मुझको कष्ट कछु न होवै, अरु चेष्टा तौ मैं भी उसी प्रकार देखता भया अरु करता भया, परंतु अंतरते ज्योंका त्यों शीतलचित्त रहौं, अरु अपर लोक जो थे सो अग्निके क्षोभकारि कष्ट पावैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयांतरप्रलयाग्निदाहवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २२८ ॥

द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २२९.

कर्मनिर्णयवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! प्रलयके क्षोभविषे मैं भी भटकौं, बहुरि जलविषे बहता जाऊं, परंतु पूर्वशरीर मुझको विस्मरण न भया, इस कारणते शरीरका दुःख मुझको स्पर्श न करै, अरु मैं विचारत भया कि, यह जगत् तौ मिथ्या है, इसविषे विचरणेकरिकै मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, यह तौ स्वप्नमात्र है, इसविषे किसनिमित्त खेद पाऊं; ताते इस जगत्ते बाह्य निकसौं ॥ वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम जो उसके स्वप्नविषे जगत्को देखत भये सो जगत् क्या वस्तु था, अरु स्वप्न क्या था, उसकी संवितविषे जगत् था, अरु तिस जगत्का

उसका ज्ञान था, वह प्रमादी था, तुम तौ जागृत होकारिकै उसका स्वप्न देखा, उसके हृदयविषे पहाड कहांते आया, अरु नदियां वृक्ष नानाप्रकारके भूतजात अरु पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि आदिक विश्वकी रचना कहांते आई; वह क्या थे, यह संशय मेरा दूर करहु, अरु जो तुम कहौ अपने स्वप्नविषे तू भी अपनी सृष्टि देखता है ॥ हे भगवन्! हमको जो स्वप्न आता है, तिसको हम अपने स्वरूपके प्रमादकारि देखते हैं, अरु तुमने जागृत् होकारि देखा है, सो कैसे देखा? ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक! प्रथम जो मैं देखा था, सो आपको विस्मरण करिकै तिसके हृदयविषे जगत् देखा था, बहुरि दूसरी वार जो देखा था सो आपको जानकारि जगत् देखा था, सो क्या वस्तु है, श्रवण कर ॥ हे वधिक! जो वस्तु कारणते होती है सो सत्य होती है अरु कारणविना भासती है सो मिथ्या होती है, अरु मुझको सृष्टि जो उसके स्वप्नविषे भासी सो कारणविना थी, काहेते कि कारण दो प्रकारका होता है, एक निमित्तकारण है, जैसे घटका कारण कुलाल होता है, अरु दूसरा समवायिकारण है, जैसे घट मृत्तिकाका होता है, दोनों कारणकारि उत्पन्न होवै सो सकारण पदार्थ कहाता है, सो आत्मा दोनों प्रकार जगत्का कारण नहीं, आत्मा अद्वैत है, ताते निमित्तकारण नहीं अरु समवायि कारण इसते नहीं, कि अपने स्वरूपते अन्यथाभाव नहीं हुआ, जैसे मृत्तिका परिणमीकारि घट होता है, तैसे आत्माका परिणाम जगत् नहीं, आत्मा अच्युत है अरु वह जगत् कारणविना भासि आया, ताते भ्रममात्रही था ॥ हे वधिक! वस्तु सोई होती है, अरु जगत्की भ्रांति आत्माविषे भासी तौ जगत् आत्मरूप क्यों हुआ, जब सृष्टि फुरी नहीं तब अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे संवेदन फुरणे करिकै जगत् हुएकी नाईं उदय हुआ, सो क्या हुआ, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो किरणें जलरूप भासती हैं, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, सो आत्माही जगत्रूप हो भासता है, तहां न कोऊ शरीर था, न कोऊ हृदय था, न पृथ्वी जल वायु अग्नि आकाश था, न उत्पत्ति प्रलय न अपर कोऊ था, केवल चिन्मात्ररूपही था ॥ हे वधिक! ज्ञानदृष्टिकारि हमको

सच्चिदानदही भासता है, सो शुद्ध है, सर्व दुःखते रहित परमानंद है, जगत् भी वहीरूप है, तुमसारखेको जो जगत भासता है, शब्द अर्थरूप सो आत्माबिषे कछु हुआ नहीं, केवल चिन्मात्रसत्ता है, सर्वदा हमको आत्मरूपही भासता है, जो तू चाहै तौ तुझको भी चिन्मात्रही भासै तौ सर्व कल्पना मनते त्यागिकरि तिसके पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मसत्ता है, सबका अनुभवरूप वही है, सो प्रत्यक्ष है, अरु शुद्ध है, सर्वदा स्वभावसत्ताविषे स्थित है, अरु अमर है, तुम भी तिस स्वभावविषे स्थित होहु ॥ हे वधिक ! आत्मसत्ता परम सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे सूक्ष्म अणुते पर्वत स्थूल होता है, तैसे आत्मासों आकाश भी स्थूल है, सो आत्माविषे क्या सूक्ष्मता है, यही सूक्ष्मता है, जो आत्मत्वमात्र है, जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं, केवल निर्मल स्वभावसत्ता है, अरु निराभास है, तिसविषे यह जगत् भासता है, ताते वहीरूप है, जैसे काल होता है, तिसीविषे क्षण, पल, घड़ी, प्रहर, दिन, मास, वर्ष, युग संज्ञा होती है, सो कालही है, तैसे एकही आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है, जैसे एक बीजविषे पत्र, टास, फूल, फल नाम होते हैं, तैसे एक आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है, सो आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं; सब आत्मस्वरूप है, जो आत्माते इतर भासै तो भ्रममात्र जान, जैसे संकल्पपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे वधिक ! आत्माविषे जगत् कछु बना नहीं, सो आत्मा तेरा अपना आप अनुभवरूप है अरु परमशुद्ध है, तिसविषे न जन्म है न मरण है, चिदाकाश अपनाआप है, जो तेरा है, आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ता है, तिसको नमस्कार है ॥ हे वधिक ! तू तिसविषे स्थित होहु, तब तेरे दुःख नष्ट हो जावैंगे, अरु यह जगत अज्ञानीको सत् भासता है, ज्ञानवान्को सदा आकाशरूप भासता है, जैसे एक पुरुष सोया है, अरु एक जागता है, जो सोया है तिसको स्वप्नविषे महल माडी जगत् भासता है, अरु जाग्रत्को आकाशरूप है, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्को आत्मरूप है ॥ वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक कहते हैं, यह जीव कर्मकरि होता है, अरु एक कहते हैं, कर्मविना उत्पन्न होता है, दोनोंविषे सत्य क्या है ?

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक! आदि जो परमात्माते ब्रह्मादिक फुरे हैं,सो कर्मकारि नहीं हुए, वह कर्मविनाही उत्पन्न हुए हैं, न कहूँ जन्म है, न कर्म है, वह ब्रह्मही स्वरूप हैं, उनका शरीर भी ज्ञानरूप है, वह अपर अवस्थाको नहीं प्राप्त हुआ, सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्माविषे अहंप्रतीति है ॥ हे वधिक ! सृष्टिके आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं,सो ब्रह्मते इतर नहीं, अरु अपर जो अनंत जीव फुरे हैं, जिनका आदिही आत्मपदते प्रगट होना भया है, सो भी ब्रह्मरूप हैं,ब्रह्मते इतर कछु नहीं,आदि सब ब्रह्मा चेतन स्वयंभू हैं, परंतु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिकको अविद्याने स्पर्श नहीं किया, वह विद्यारूप हैं, अरु जीव अविद्याके वशते प्रमादकरिके परतंत्र हुए हैं, बहुरि कर्मकारि कर्मके वश हुए हैं, संसारविषे शरीर धारते हैं, जब उनको आत्मज्ञान प्राप्त होता हैं, तब कर्मके बंधनते मुक्त होकारि आत्मपदको पाते हैं; हे वधिक ! आदि जो सृष्टि हुई है, सो कर्मविना उपजी है,अरु पाछे अज्ञानके वशते कर्मके अनुसार जन्म मरणको देखते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कर्मविना उत्पन्न होती है, पाछे कर्मकारि उत्पन्न होती भासती है, तैसे यह जगत् है, आदि जीव कर्मविना उपजे हैं,पाछे कर्मके अनुसार जन्म पाते हैं, अरु ब्रह्मादिकके शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं, ईश्वरविषे जीवभाव दृष्ट आता है तौ भी तिस कालविषे भी ब्रह्मही स्वरूप हैं, उनको कर्म कोऊ नहीं, केवल आत्माही उनको भासता है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टाही दृश्यरूप होता है, अरु नानाप्रकारके कर्म दृष्ट आते हैं, परंतु अपर कछु हुआ नहीं, तैसे जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, अपर कछु नहीं, सुख दुःख भी वही भासता है, परंतु अज्ञानीको जगत्प्रतीति होती है, तब-लग कर्मरूपी फांसीकारि बांधा हुआ दुःख पाता है,जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब कर्मके बंधनते मुक्त होवैगा, वास्तवते न कोऊ कर्म है, न किसीको बंधन है, यह मिथ्याभ्रम है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, दूसरा कछु होवै तौ मैं कहौं कि यह कर्म है, इसको बंधन किया है, यह जगत् आत्माविषे,ऐसे है जैसे जलविषे तरंग होता है,सो भिन्न कछु नहीं,जलते तरंग उत्पन्न होता है सो किस कर्मकारि होता है

अरु क्या उसका रूप है, जैसे वह जलहीरूप है, तैसे यह जगत् आत्मस्वरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं,जो कछु कल्पना करिये सो अविद्यामात्र है ॥ हे वधिक ! जबलग यह संवित् बहिर्मुख फुरती है तबलग जगत् भासता है, अरु कर्म होते दृष्टि आते हैं, अरु जब संवित अंतर्मुख होवैगी,तब न कोऊ जगत् रहैगा,न कोऊ कर्म दृष्ट आवेगा,सब आत्मसत्ता भासैगी, जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसे तुझकोभी भासैगी ॥ हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको जगत् आत्मत्वकरि दिखाई देता है, अरु जो अज्ञानी हैं,तिनको प्रमादकरि द्वैतरूप भासता है, तिसविषे पदार्थको सुखरूप जानकरि पानेका यत्न करताहै, सुखकरि सुखी होता है, दुःखकरि द्वेष करता है,जो परमानंद आत्मपद है,तिसके पानेका यत्न नहीं करता है, अरु ज्ञानवान् सदा परमानंदविषे स्थित हैं, अरु सब जगत् तिनको ब्रह्मस्वरूप भासता है ॥ हे वधिक ! जेता कछु जगत् तुझको दृष्ट आता है सो सबही ब्रह्म चिन्मात्रस्वरूप है, न कोऊ स्वप्न है, न कोऊ जाग्रत् है, न कोऊ कर्म है, न कोऊ अविद्या है, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अपर कछु नहीं, जैसे जलविषे आवर्त्त स्थित होता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् हुएकी नाईं भासता है, परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं, सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, तू विचारकरि देख तब तेरे दुःख मिटि जावैंगे, जबलग विचार करके स्वरूपको न पावैगा,तबलग दुःख न मिटैगा, जब स्वरूपको पावैगा, तब सब कर्म नष्ट हो जावैंगे, जेता जेता विचार होता है, तेता तेता सुख है, जहां विचार उत्पन्न होता है, तहांते अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे जहां प्रकाश होता है, तहां अंधकार नहीं रहता, तैसे जहां सत् असत्का विचार उत्पन्न होता है, तहां अविद्याका अभाव हो जाता है, बहुरि संसारचक्रविषे न गिरैगा, अरु परमपदको प्राप्त होवैगा, जिस ज्ञानवान्को यह पद प्राप्त भया है, सो दुःखी नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २२९ ॥

द्विशताधिकत्रिंशत्तमः सर्गः २३०.

महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो परमानंदको प्राप्त होते हैं, जिस आनंदके पायेते जो इंद्रियका आनंद है सो सूखे तृणवत् तुच्छ भासता है, अरु जैसा सुख पृथ्वी आकाश पातालविषे भी कहूँ नहीं, तैसा सुख ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, जिसको ऐसा आनंद प्राप्त भया है, सो किसकी इच्छा करै, अरु आत्मानंद तब प्राप्त होता है, जब आत्मअभ्यास होवै, आत्मा शुद्ध है, अरु सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, अरु जो कछु आगे दृष्ट आता है, सो अविद्याका विलास है, जब तू अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब सब ब्रह्म तुझको भासैगा ॥ हे वधिक ! पृथ्वी आदिक जो तत्त्व हैं सो हैं नहीं, जो कछु होते तौ इनका कारण भी कोऊ होता, जो यह भी नहीं तौ कारण किसको कहिये, अरु जो इनका कारण कहूं नहीं तौ कार्य किसका कहिये, तातें यह भ्रममात्र है, विचार कियेते जगत्का अभाव हो जाता है,आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है, जैसे किसीको जेवरीविषे सर्प भासता है, जब वह भली प्रकार देखै, तब सर्पभ्रम मिटिजाता है, ज्योंकी त्यों जेवरीही भासती है, तैसे विचार कियेते आत्मसत्ताही भासती है, जैसे कहूँ आकाशविषे संकल्पका वृक्ष रचैं तौ आकाशविषे होवै, तैसा भासता है, जैसे किसी पुरुषने संकल्पकारि देवताकी प्रतिमा रची अरु तिसके आगे अपनी प्रार्थना करने लगा, तिस भावनाकारि उसका कार्य सिद्ध हुआ, सो कैसे सिद्ध हुआ, अनुभवहीते सिद्ध हुआ, जिसके आश्रय वह प्रतिमा हुई, तिसकारि कार्य सिद्ध भया ॥ हे वधिक ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, सो स्वप्नमात्र है, तैसे यह सर्व विश्व ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आदि जो परमात्माते फुरणा हुआहै, सो कर्म विना सृष्टि उपजी है, वह किंचन आभासरूप है, बहुरि आगे जो

ब्रह्माने रचा है, सो संकल्परूप है, बहुरि आगे अज्ञानकरिकै कर्म करने लगे, तब कर्मकरि उत्पत्ति होती दृष्ट आई है,जैसे स्वप्नविषे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्रही दृढ हो भासती है, जबलग स्वप्न अवस्थाविषे है, तबलग जैसा वहां कर्म करैगा तैसाही भासैगा, अरु जो जागि उठै तौ न कहूँ कर्म है, न जगत् है, तैसे यह सब संकल्पमात्र है, ज्ञानवान्करि अभाव हो जाता है ॥ हे वधिक! यह जो मुझको मनुष्य भासतेहैं, सो मनुष्य नहीं, तिनके कर्म तुझको कैसे कहौं, जैसे स्वप्नके निवृत्त हुए स्वप्नसृष्टिका अभाव होता है, तैसे अविद्याके निवृत्त हुए अविद्यक सृष्टिका अभाव हो जाता है, अरु आत्मसत्ता अद्वैत है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, वहीरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अरु जब चित्तसंवित् फुरती है, तब जगत् होकरि भासती है, अरु जब नहीं फुरती, तब अद्वैत होकरि स्थित होती है, अरु आत्मसत्ता फुरणे अफुरणेविषे ज्योंकी त्यों है, जन्म मरण बढना घटना जो नाम होते हैं, सो मिथ्या हैं, काहेते कि दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे किसीने जल कहा किसीने अंबु कहा, दोनों एकहीके नाम होते हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् एकहीके नाम हैं, परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासते हैं, जैसे स्वप्नमें कार्य भासते हैं, परंतु हैं नहीं, तैसे जागृत्विषे कारण कार्य भासते हैं, परंतु हैं नहीं, वास्तवते आत्मतत्त्व है, तिस आत्माविषे जो चित्त फुरता है अहं मम तिस उत्थानते आगे जो कछु फुरणा होता गया सोई जगत् भया है, तिस जगत्विषे जैसा जैसा निश्चय हुआ है, तैसा तैसा भासने लगा है, तिसका नाम नेति है, तिस विषे देश काल पदार्थकी संज्ञा होने लगी है, अरु कारण कार्य दृष्टआते हैं सो क्या हैं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अपर कछु हुआ नहीं, परंतु हुयेकी नांई भासती है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु कारण कार्य भी दृष्ट आता है, परंतु जागे हुए कछु दृष्ट नहीं आता, काहेते कि है नहीं, तैसे यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्ट आता है, परंतु है नहीं, आत्माकरि दृष्ट आता है, ताते आ-

त्माही है, जैसे संकल्पनगर दृष्ट आता है, तैसे आत्माविषे घन चेतनता-करिकै जगत् भासता है सो वहीरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसा उसविषे निश्चय होता है, तैसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है, जेता कछु जगत् दृष्ट आता है सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पही जहां तहां उडते फिरते हैं, अरु अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों है, संकल्पही मरिकै परलोक देखता है ॥ वधिक उवाच ॥ हे भगवन्! परलोकविषे जो यह मरिकै जाता है, तिस शरीरका कारण कौन होता है, अरु तहां हंती अरु हंता कौन होता है, अरु यह शरीर तौ यहांही रहता है, वहां भोक्ता शरीर कौन होता है, जिसकरि सुख दुःख भोगता है, अरु जो कहौ, तिस शरीरका कारण धर्म अधर्म होता है तौ धर्म अधर्म तौ अमूर्त्ति हैं, तिनते समूर्त्ति साकाररूप क्योंकरि उत्पन्न हुआ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, तिसके फुरणेकी एती संज्ञा होती हैं, कर्म आत्मा, जीव, फुरणा, धर्म, अधर्म, –इनते आदि लेकरि नानाप्रकारके नाम होते हैं, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहंका उत्थान होता है, तब देहकी भावना होती है, अरु देहही भासने लगती है, आगे जगत् भासता है, स्वरूपके प्रमादकरि संकल्परूप जगत् दृढ हो जाती है, बहुरि तिसविषे जैसा जैसा फुरणा होता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे वधिक ! यह जगत् संकल्पमात्र है, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि सत् भासता अरु प्रमादकरि शरीरविषे अभिमान हो गया है, तिसकरिकै कर्तव्य भोक्तव्य अपनेविषे मानता है, वासना दृढ हो जाती है, तिस वासनाके अनुसार परलोकको देखता है ॥ हे वधिक ! वहां न कोऊ परलोक है, न यह लोक है, जैसे एक स्वप्नको छांड़िकरि अपर स्वप्नको प्राप्त होवै, तैसे अविदित वासनाकरिकैं इस लोकको त्यागिकरि परलोकको देखता है, जैसे स्वप्नविषे निराकारही साकार शरीर उत्पन्न होता है, तैसे परलोकविषे है, वास्तवते क्या है, संकल्पही पिंडाकार होकरि भासता है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही तिसके अनुसार होकरि भासता है, अरु शरीर पदार्थ सबही आकाशरूप है ॥ हे वधिक ! असत्‌ही सत् होकरि जन्म मरण भासता है, जैसा जैसा फुरणा होता है,

तैसा तैसा भासता है, जगत् आभासमात्र है, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको आत्मभावही सत् है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा होकरि भासता है, ज्ञान ज्ञेय ज्ञातारूप जगत् भासता है, सो अनुभवते भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो अनुभवही अनेकरूप हो भासता है, अरु प्रलयविषे एक हो जाते हैं, तैसे ज्ञानरूपी प्रलयविषे सब एकरूप हो जाते हैं, जब संवित् फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु संवित् अफुर होती है, तब प्रलय हो जाती है, तब एकरूप हो जाता है, एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, पृथ्वी आदिक पदार्थ तिसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है, तिसविषे निराकार अरु साकार भी कल्पित हैं, इनते रहित निराकार है, जो पुरुष दृश्यसाथ मिले चेतन हैं,सो जडधर्म हैं, तिनको नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, ज्ञानवान्को सत्रूप चिन्मात्रही भासता है ॥ हे वधिक ! यह जगत् सब चिन्मात्र है,जब चित्तसंवित् फुरती है, तब स्वप्नरूप जगत् भासता है, अरु जब चित्त संवित् फुरणेते रहित होती है, तब सुषुप्ति होती है, तैसे चित्तसंवित् फुरणेकारि सृष्टि होती है, अरु चित्तके स्थिर होनेकारि प्रलय हो जाती है, जैसे स्वप्नअरु सुषुप्ति आत्माविषे कल्पित हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि अरु प्रलय कल्पित आभासमात्र हैं, अपर कछु जगत् बना नहीं, फुरणेकारिकै जगत् भासता है, ताते जगत् भी आत्मरूप है, पंचतत्त्व भी आत्माका नाम है, अरु सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्र है, जैसे आत्माविषे साकार कल्पित हैं, तैसेही निराकार कल्पित हैं, जैसे स्वप्नविषे किसीको साकार जानता है, किसीको निराकार जानता है, दोनों फुरनेमात्र हैं, जो फुरनेते रहित हैं, सो आत्मसत्ता है, अरु साकार भी निराकार वही है, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, निराकारही साकार हो भासता है ॥ हे वधिक! जेता कछु जगत् तुझको दृष्ट अता है, सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, इतर कछु नहीं, परंतु अज्ञानकारिकै नानाप्रकार कार्य कारण भासता है,अरु जन्म मरण आदि विकार भासता है, वास्तवते न कोऊ जन्म है,न मरण है, न कोऊ कार्य है, न कारण है, अरु जो यह पुरुष मरता होवै, तौ

परलोक भी देखै, अरु अपने मरणेको भी न जानै, जो परलोक देखता है, अपने मरणेको देखता है, सो मरता नहीं, जब यह मृतक होवै, तब पूर्व संस्कारको न पावै, अरु पूर्वस्मृति इसको न होवै, सो तौ पूर्व संस्कारकरिकै क्रियाविषे प्रवर्त्तता है अरु प्रतियोगी करिकै पदार्थकी स्मृति भी हो आती है, बहुरि कर्मको भोगता है, पूर्वलोक तौ यह पुरुष मृतक नहीं होता, भ्रमकरि मरण भासता है, अरु कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं, जब मरिकै परलोक देखता है, अरु सुखदुःखको भोगता है, तौ शरीर किसी कारणकरि नहीं बना, जैसे वह शरीर अकारण है, तैसे अपर जो आकार दृष्ट आते हैं, सो भी अकारण हैं, इसीते आभासमात्र है, जैसे स्वप्नके शरीरसाथ नानाप्रकारकी क्रिया होती हैं, अरु देशदेशांतरको देखता है, सो सब मिथ्या है, तैसे यह जगत् मिथ्या है, अरु मरण भी मिथ्या है, अरु जो तू कहै इसके साकारका अभाव देखता है सो मृतक है, तौ हे वधिक ! जो यह पुरुष परदेश जाता है, तौ भी इसका आकार दृष्ट नहीं आता, जैसे दृष्टिके अभावविषे असत् होताहै, तैसे देहके त्यागविषे भी इसका असत्भाव होता है, इस पुरुषका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो तू कहै परदेश गया बहुरि भी आय मिलता है, शरीरके त्यागते बहुरि नहीं मिलता, परदेश गया बहुरि मिलकरि वार्त्ताचर्चा आनि करता है, अरु मुआ तौ कदाचित् चर्चा नहीं करता, तौ मुआभी चर्चा करता है, सो श्रवण करु, जिसके पितर प्रीतिकरि बांधे हुए मरते हैं, अरु यथाशास्त्र उनकी क्रिया नहीं होती, तब वह स्वप्नविषे आय मिलते हैं, अरु यथार्थ कहते हैं, कि हमारी क्रिया तुमने नहीं करी, हम अमुक स्थानविषे पड़े हैं, अरु अमुक द्रव्य अमुक स्थानविषे पड़ा है, तुम काढि लेहु, तौ जैसे परदेश गये मिलते हैं, अरु वार्त्ता चर्चा करते हैं, तैसे मुए भी करते हैं, क्यों ॥ हे वधिक ! वास्तते न कोऊ जगत् है, न मरता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसा जैसा तिसविषे फुरना फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे धिक ! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है, एक संकल्पसिद्ध वस्तु है, अरु पर दृष्टिसिद्ध वस्तु है, जब उनकी दृढ भावना

होती है, तब यह दोनों सिद्ध होती हैं, जो इंद्रियके विषे द्रव्य पदार्थ है, सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है, जो इसकी भावना होती है तौ यह प्राप्त होती है, अरु जो अपने मनविषे आपही मान छोडिये कि, मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्ण हौं अथवा गृहस्थ वानप्रस्थ ब्रह्मचारी संन्यासी आश्रम हौं,इत्यादिक मानना संकल्पसिद्ध है, जबलग इनविषे अभ्यास होता है, तबलग आत्मसत्ताकी प्राप्ति नहीं होती, अरु जो आत्मसत्ताका अभ्यास होवे तब इन दोनोंका अभाव हो जाता है, आत्माही प्रत्यक्ष अनुभवकरिकै भासता है ॥ हे वधिक! जिस वस्तुका अभ्यास होता है तिसीकी सिद्धता होती है, जो भावना करै अरु थककरि फिरै नहीं तौ अवश्य प्राप्त होता है, अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे कोऊ पुरुष कहै,मैं अमुक देशको जाता हौं,तौ जबलग उसकी ओर चलै नहीं तबलग अनेक उपायकरि भी नहीं प्राप्त होता, जब उसकी ओर चलैगा तब पहुँचि रहैगा,तैसे जब आत्माका अभ्यास बहुत एकाग्र होकरि करैगा तब उसको प्राप्त होवैगा,अन्यथा आत्मपदको न प्राप्त होवैगा ॥ हे वधिक! जिस पुरुषको जगत्के पदार्थकी इच्छा है तिसको आत्मपद प्राप्त नहीं होता,अरु जिसको आत्मपदकी इच्छा है,तिसकोवही प्राप्त होवैगा,जगत्के पदार्थ न भासैंगे, जैसी भावना होवैगी कि मेरीदेवताकी मूर्ति होवै,तिसकरि मैं स्वर्गविषे विचरौं,अरु एक स्वरूपकरि भूलोकविषे मृग होनेकी भावना होवै,तब दृढ़ अभ्यासकरि वही होजाताहै,काहेते जो जगत् संकल्पमात्र है,जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसाही भासि आता है ॥ हे वधिक! दो स्वरूपकी क्या वार्त्ता है, जो सहस्र मूर्त्तिकी भावना करै,तो वही तद्रूप हो जावैगा, जैसी यह पुरुष भावना करता है, तैसाही रूप होजाता है,अरु यह अविद्यक भ्रममात्र जगत् है,इसकी भावना त्यागिकरि आत्मपदका अभ्यास करहु, तब तेरे दुःख मिटि जावैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशो नाम द्विशताधिकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३० ॥

द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमः सर्गः २३१.

कार्यकारणाकारनिर्णयवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! जैसे अगाध समुद्रविषे अनेक तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि फुरती हैं, जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, परंतु परस्पर अज्ञात हैं, एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता, अरु दूसरेकी सृष्टिको वह नहीं जानता, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष सोये होवैं, उनको अपने अपने फुरणेकी सृष्टि भासि आतीहै, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता, उसकी सृष्टिको वह नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं, तैसेही सब सृष्टि आत्माविषे फुरती हैं, परंतु एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता, अरु जो धारणाभ्यासी योगी होता है, तिसको अंतवाहक शरीर प्रत्यक्ष हुआ है, सो दूसरेकी सृष्टिको भीजानता है, जैसे एक तलावका दर्दुर होता है अरु एक कूपका दर्दुर होता है, अरु एक समुद्रका दर्दुर होता है, सो स्थान तौ भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु जल एकही है, भावै कैसा दर्दुर होवै; तिसको जल जानताहै, कि मेरेविषे है; तैसे जगत् भिन्न भिन्न अंतःकरणविषे है, परंतु आत्मसत्ताके आश्रय है; आदि जो संवेदन तिसविषे फुरी है, सो अंतवाहक है, जब अंतवाहकविषे योगी स्थित होता है, तब अपरके अंतवाहकको भी जानता है, इस प्रकार अनंत सृष्टि आत्माके आश्रय अंतवाहकविषे फुरती हैं, सो आत्माका किंचन है, फुरती भी हैं, अरु मिटि भी जाती हैं, संवेदनके फुरणेते सृष्टि उत्पन्न होती है, अरु संवेदनके ठहरणेते मिटि जाती है, आकाशरूप होती है, अरु वायुके ठहरनेते जल एकरूप हो जाता है, जलते इतर कछु नहीं भासता, तैसे फुरणेकारि आत्माविषे अनंत सृष्टि भासती हैं अरु संवेदनके ठहरनेते सब आत्मरूप हो जाती हैं, आत्माते इतर कछु नहीं भासती हैं, तिसते इतर प्रमादकारि भासती हैं, बहुरि कारणकार्यभ्रम भासता है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है, सो कारणकार्यके क्रमते रहित फुरी है, पाछे कारणकार्यक्रम भासा, बहुरि तिसका संस्कार हृदयविषे हुआ, तब संस्कारके वशते भासने लगी, प्रथम संस्कारते रहित अकस्मा-

त्ते भासी है, तिसविषे जिनको स्वरूपका प्रमाद नहीं भया, तिनको सदा परब्रह्मका निश्चय रहता है, अरु जगत् अपना संकल्पमात्र भासता हैं, अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद भया है, तिनको संस्कारपूर्वक जगत् भासता है, अपर संस्कार भी कछु वस्तु नहीं ॥ हे वधिक ! जो जगत्‌ही मिथ्या है तौ तिसका संस्कार कैसे सत् होवै, परंतु ज्ञानवान्‌को इसप्रकार भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको स्पष्ट भासता है ॥ हे वधिक ! जैसे तुम संकल्पके रचे पदार्थको असत् जानते हौ, जैसे स्मृतिसृष्टिको असत् जानते हौ, जैसे स्वप्नसृष्टिको असत् जानते हौ, तैसे हम इस जाग्रत् सृष्टिको भी असत् जानते हैं, जैसे मृगतृष्णाका जल असत् भासता है, तैसे हमको यह जगत् असत् है, बहुरि कारण कार्य कर्म संस्कार हमको कैसे भासैं, अरु अज्ञानीको तीनों भासते हैं ॥ हे वधिक ! जब चित्तसंवित् बहिर्मुख होती है, तब जगत् हो भासता है, अरु जब अंतर्मुख होती है, तब अपने स्वरूपको देखती है, जब आत्मतत्त्वका किंचन संवेदन फुरती है तब स्वप्न जगत् हो भासता है, अरु जो ठहरि जाती है तब सुषुप्ति प्रलय हो जाती है, फुरणेका नाम सृष्टिकी उत्पत्ति है, अरु ठहरनेका नाम प्रलय है, जिसके आश्रय फुरणा फुरता है सो शुद्ध सत्ता अव्यक्त निराकार है, सोई आकाररूप भासता है, अरु जो अकारण निराकार है, तिसविषे अकारण आकार भासता है, ताते जानता है कि वहीरूप है, अपर कछु नहीं, आकार भी निराकार है, सृष्टिही दृश्यरूप हो भासती है, जगत् आभासमात्र है, जैसे समुद्रका आभास तरंग होते हैं, तैसे आत्माका आभास जगत् है, सो आत्मानंद चिदाकाश है, अरु सर्व जगत्‌का अपना आप है ॥ वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम जगत्‌को अकारण कहते हौ, सो कारणविना उत्पत्ति कैसे संभवती है, जो प्रत्यक्ष भासता है, अरु जो कारणकरिकै उत्पत्ति कहौ, तौ स्वप्नवत् क्यों कहते हौ, स्वप्नसृष्टि तौ कारणविना होती है, ताते यह सृष्टि कारणसहित है, अथवा कारणते रहित अकारण है सो कहौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह जगत् आदि अकारण है, आत्माका आभासमात्र है; प्रथम कारणते रहित है, सो आत्माविषे

अत्यंत अभाव है, अपर पदार्थ कछु बनै नहीं, आत्मसत्ताही अपने आप-विषे स्थित है, सो चिदाकाश चिन्मात्र है, तिसका किंचन चेतनता है, जैसे सूर्यकी किरणोंका आभास जल भासता है, परंतु जड़ है, तैसे आत्माका किंचन भी चेतन है, सो किंचन संवेदन अहंभावको लेकरि फुरती गई है, जैसे जैसे फुरती है, तैसा तैसा जगत् हो भासता है, जो जो तिसविषे निश्चय किया है, जो यह कर्तव्य है, इसके करणेकरि पुण्य है, इसके करणेकरि पाप है, यह करना है, यह नहीं करना, देश काल क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है, यह ऋषि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इसकरि इनको बंधन है, इसकरि इनको मोक्ष है ॥ हे वधिक ! जो आदि नेति रची है, तैसेही अबलग स्थित है, अन्यथा नहीं होती, तिसविषे कारण कार्य क्रम है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है, सो बुद्धिपूर्वक नहीं बनी, आकाशमात्र फुरी है, जैसे फुरी है तैसेही स्थित है, बहुरि पदार्थ जो एकभावको त्यागिकरि अपर भावको अंगीकार करते हैं, सो कारण करिकै करते हैं, कारणविना नहीं होते; काहेते कि प्रथम सृष्टि अकारण हुई है, पाछेते सृष्टि भावविषे कारण कार्य हुए हैं, परंतु हे वधिक ! जिन पुरुषोंको आत्माका साक्षात्कार हुआ है तिनको यह जगत् कारणविना ब्रह्मस्वरूप भासता है अरु जिनको आत्मसत्ताका प्रमाद है, तिनको जगत्कारण असत् भासता है, परंतु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है; तिसविषे संवेदनके फुरणेकरि अब्रह्मता भासतीहै, अरु निराकारविषे आकार भासताहै, अरु अकारणविषे कारणता भासती है, अरु जब संवेदन जो मनका फुरणा है सो स्थिर होता है, तब सर्व जगत् कारणकार्यसहित भासता है, प्रथम अकारण फुरा है, पाछेते देवता मनुष्य पशु पक्षी पृथ्वी जल तेज वायु आकाश पदार्थकी मर्यादा भई है, बंध अरु मोक्षकी नेति हुई है, सो ज्योंकी त्यों है, जो जल शीतलही है, अग्नि उष्णही है, इत्यादिक जैसे नेति है, तैसे स्थित है, अरु जब आत्मसत्ताविषे जागता है, तब जगत् कारण-कार्यसहित नहीं भासता, जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है, जब दृढ होजाती है, तब कारणसों कार्य होता है, दृढ हो आता है

जो मृत्तिकाविना घट नहीं बनता, अरु जागि उठै तब सर्व जगत् आत्मरूप हो जाता है ॥ हे वधिक ! यह जगत् संवेदनविषे स्थित है, जबलग अहंभावका फुरणा है, तबलग जगत् है, जब अहंभाव मिटता है, तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है, जबलग अहं फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, जैसी भावना होती है, तैसा भासता है, अरु सर्व पदार्थ सर्वदा काल अपनी अपनी शक्तिविषे जैसे आदि नेति हुई है, तैसेही स्थित हैं, जो जीव जैसी क्रियाका अभ्यास करैगा तिसके फलको पावैगा, जो बंधनके निमित्त करैगा सो बंधनको पावैगा अरु मोक्षके निमित्त करैगा तो मोक्षको पावैगा, ऐसेही आदि नेति हुई है ॥ हे वधिक ! इसप्रकार किंचन होकरि मिटि जाता है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु जगत्की उत्पत्ति प्रलय ऐसे हैं, जैसे हाथी अपनी शुंडको पसारै अरु खैंचै, तैसे चित्त संवेदनके पसरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, अरु निस्पंदविषे प्रलय हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कार्यकारणाकारणनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३१ ॥

द्विशताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः २३२.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविचारवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह संपूर्ण जगत् चिद् अणुके ओजविषे है, अरु तिस संबंधके अभ्यासकरिकै आत्मा चिद् अणुकी संज्ञाको पाता भया है, ओज अंतःकरण हृदय तीनों अभेद हैं, तिसविषे स्थित चेतनसत्ता है, बाहरते मृतक रूपवत् होती है, अरु तिसविषे जीवितरूप है, अरु तहां बड़े प्रकाशकरि प्रकाशती है, तिस सत्ता आगे चित्तसाथ संयोग हुआ है, चित्त अरु प्राणकलाका संयोग हुआ है ॥ हे वधिक ! जब प्राण क्षोभते हैं, तब चित्त खेदको प्राप्त होता है, अरु जब चित्त खेदको प्राप्त होता है, तब प्राण भी खेदको पाते हैं, जब प्राण

स्थित होते हैं तब जीव शांतिको प्राप्त होता है, अरु जो प्राण स्थित नहीं होते तब जीव जागृत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जागृत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था भिन्न भिन्न आती है सो सुन ॥ हे वधिक ! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है, सो अन्न जागृत्वाली नाडीके ऊपर जाय स्थित होता है, तब वह नाडी रोकी जाती है, तिसकरि सुषुप्ति आती है, जिन नाडीविषे चित्तकी वृत्ति गई हुई जागृत् जगत्को देखती है, सो जागृत् नाडी कहाती हैं, तिनके ऊपर अन्न जाय स्थित होता है, अरु चित्तसत्ता जो चित्तविषे प्रतिबिंबित है, सो चित्तनाडी तिसके तले आय जाती है, तब प्राणवायु भी इस नाडीविषे ठहरि जाता है, अरु चित्तस्पंद भी ठहरि जाता है, तब सुषुप्ति होती है, अरु जो पित्त बहुत होता है, तब सूर्य अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ स्वप्नविषे देखता है, अरु जब वह अन्न पचता है, अरु उन नाडीविषे प्राण जाते हैं, तब स्वप्न अवस्था आती है, जब जलके शोषणेको वायु बहता होता है, तब जीव स्वप्नविषे उडता है, अरु जो कफ बहुत होता है, तब किसको देखता है, नदियां अरु ताल देखता है, तिनविषे जाता है, डूबता है, जब उष्ण नाडीविषे अन्न जल जाय पहुँचता है, तब जागृत् अवस्था होती है, इसप्रकार जीव तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जगत् न कछु अंतर है, न बाहर है, केवल अद्वैत सत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसके प्रमादकरिकै चित्तकी वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है, तब जगत्को जाग्रत् करि देखता है, अरु जब बाहिरकी इंद्रियोंको त्यागि करिकै अंतर आता है, तब अंतर स्वप्नजगत्को देखता है, अरु जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब अपर कल्पना मिटि जाती है, सर्व ब्रह्मही भासता है ताते सर्व कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जागृत्स्वप्नसुषुप्तिविचारो नाम द्विशताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३२ ॥

द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः २३३.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह तीनों अवस्था होती हैं, अरु जाती हैं, इनके अनुभव करनेवाली जो सती है, सो आत्मसत्ता है, अरु सदा एकरस है, जिस पुरुषको अपने स्वरूपका अनुभव भया है, तिसको अपना किंचन भासता है, अरु जिसको प्रमाद है, तिसको जगत् भासता है, अरु यह जगत चित्तका कल्पा हुआ है, इंद्रियोंका जिसको प्रमाद है, तिसको जगत् भासता है, अरु यह जगत् चित्तका कल्पा हुआ है, जब इंद्रियां विषयके सन्मुख होती हैं, तब जगत्को देखती हैं, तिस संकल्प जगत्को देखिकारि रागद्वेषवती होती हैं, बहुरि इंद्रियके अर्थको पाइकारि जीव हर्ष अरु शोकवान् होता है ॥ हे वधिक ! जिस चिद् अणुका इंद्रियसाथ संबंध है, तिसको संसारका अभाव नहीं होता, नेत्र त्वचा जिह्वा नासिका श्रोत्र-कारिकै आपको देखता स्पर्श करता रस लेता सूंघता सुनता मानता है, तब संसारी होकारि देखता दुःख पाता है, जब इनके अर्थको त्यागिकै अपने स्वभावकी ओर आता है, तब सर्व जगत्को आत्मरूप जानिकारि सुखी होता है ॥ हे वधिक ! चित्तके फुरणेका नाम जगत् है, अरु चित्तके स्थित होनेका नाम ब्रह्म है, जगत् अपर कछु वस्तु नहीं इसीका आभास है, चित्तके आश्रय सब नाडियां हैं, तिनविषे स्थित होकारि जीव तीनों अवस्थाको देखता है, वास्तवते यह जीव चिदाकाश आत्मा है, अज्ञानकारि जीवसंज्ञाको प्राप्त भया है ॥ हे वधिक ! ओज धातु जो है हृदय तिसविषे चिद् अणु स्थित होकारि दीपक ज्योतिवत् प्रकाशता है, तिस ओजके आश्रय सब नाडियां हैं, सो अपने रसको ग्रहण करती हैं, जब यह प्राणी भोजन करता है, अरु अन्न जागृत् नाडीविषे पूर्ण होता है, तब जाग्रत्का अभाव हो जाता है, चित्तकी वृत्ति अरु प्राण आनेजानेते रहित हो जाते हैं, वह नाडी मूँदी जाती हैं, बहुरि जब कफनाडीविषे प्राण फुरते हैं, तब स्वप्न भासता है ॥ हे वधिक ! जब इंद्रियके

ग्रहण करिकै चित्तकी वृत्ति बाह्यनिकसती है,तब जाग्रत् जगत् हो भासता है,अरु जब तन्मात्राको लेकरि चित्तकी वृत्ति ओजधातुविषे फुरतीहै,तब स्वप्न भासताहै,अरु जब ओज धातुके ऊपर अन्न आदिक द्रव्यकाबोध आनि पड़ता है,तब सुषुप्ति होती है, अरु जब निद्राका अरु जाग्रत्का बल होता है,तब दोनों भासतेहैं,अरु जब दोनोंविषे एकका बलअधिक होता है, तब वही भासता है, जाग्रत् अथवा सुषुप्ति अरु जब निद्राते रहित मंद संकल्प होता है, तब तिसको मनोराज्य कहता है, अरु जब बाह्य विषयको त्यागिकरि चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है, तब स्वप्न होता है, तहां फिरि जिस सिद्धांतविषे जाता है, तिस अनुसार अंतर जगत् भासता है, कफके बलकरि चंद्रमा अरु क्षीरसमुद्र नदियां ताल जलसाथ पूर्ण अरु वृक्ष फूल फल बगीचे सुंदर वन हिमालय कल्पवृक्ष तमाल सुन्दर स्त्रियां अरु वल्लियां बावलियां इत्यादि सुन्दर अरु शीतल स्थान देखता है, जब पित्तका बल अग्नि होता है, तब सूर्य अग्नि अरु सूखे वृक्ष फल टास देखता है, अरु संध्याकालके मेघकी लाली देखता है, वन स्थानको अग्नि लगी देखता है, पृथ्वी अरु रेत तपी हुई देखता है, मरुस्थलकी नदी दृष्ट आती है, जल उष्ण लगता है, हिमालयका शिखर उष्ण लगता है, इनते आदि लेकरि उष्ण पदार्थ दृष्ट आते हैं, अरु जब वायुका बल अधिक होता है, तब स्वप्नविषे आँधी वायुको देखता है,पाषाणकी वर्षा होती दृष्ट आती है, अरु अंधे कूपविषे गिरता है, हस्ती घोडे उड़ते दृष्ट आते हैं, आपको उड़ता फिरता देखता है, अप्सराके पाछे दौडता है, पहाड़की वर्षा होती है, वायु तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, अन्नते आदि लेकरि पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं, विपरीत होकरि दृष्ट भासते हैं, इसप्रकार वात पित्त कफकरिकै स्वप्नविषे जगत् देखता है, जिसका बल विशेष होता है, तिस धर्मविषे दृष्ट आता है, वासनाके अनुसार घट बढ राजसी तामसी सात्त्विकी पदार्थको देखता है, जब तीनों इकट्ठे होकरि कोपते हैं, तब प्रलयकाल दृष्ट आता है ॥ हे वधिक ! जबलग वात पित्त कफके अंश साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफके स्थान-विषे प्रवेश करता है, तबलग समान जलके क्षोभ भासते हैं, इसप्रकार

वात पित्त कफ जिसके स्थानविषे अपरके स्वभावको लेते हुए जाते हैं, तबलग समान क्षोभ भासता है, अरु जब केवल वातका क्षोभ होता है, तब महाप्रलयकालके पवन चलते हैं, अरु पहाडपर पहाड गिरते, भूकंप आते हैं, इसते आदि लेकरि क्षोभ होते हैं, अरु जब कफका क्षोभ होता है, तब समुद्र उछलते हैं अरु पित्तकरि अग्नि लगती है, महाप्रलयकी नाईं तत्त्व क्षोभवान् होते हैं, जब प्राण जागृत् नाड़ीविषे जाते हैं, अरु वह अन्नकरि पूर्ण होती है, तब जीव उसके नीचे आइ जाते हैं, जैसे कंधके नीचे दर्दुर आवैं, जैसे पाषाणकी शिलाविषे कीट आय जावैं, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठविषे होवै, जैसे इनविषे अवकाश नहीं रहता, तैसे तिस नाडीविषे फुरणेका अवकाश नहीं रहता, रुक जाती है, तब इसको सुषुप्ति होती है, जब कछु अन्न पचता है, तब चित्तसंवित् अपने अंतर स्वप्न देखती है, जिसको सततका विकार विशेष होता है; तिसीका कार्य देखता है, जब अन्न अरु जल पचता है, तब फिरि जाग्रत् जगत्को देखता है, अरु जब जाग्रत् अरु स्वप्न दोनोंका बल सम होता है, तब दोनोंको देखता है, अरु अनुभव करता है ॥ हे वधिक ! इस प्रकार तीनों अवस्था होती, अरु मिटि जाती हैं, सो तीनों गुणकरि होती हैं, इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवाला है, सो गुणते अतीत है, अरु सर्वका आत्मा है, यह जगत् अरु स्वप्नजगत् संकल्पमात्र है, बना कछु नहीं, ब्रह्मसत्ताही किंचन करिकै जगत्‌रूप हो भासती है, परंतु अज्ञानी तिसको जगत् जानते हैं, जगत्को सत् जानिकरि इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष करते हैं, इष्ट रागसंयुक्त ग्रहण करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे द्वेष करते हैं, जब बाह्यकी इंद्रियां सुषुप्ति हो जाती हैं, तब अंतर स्वप्नविषे भटकता है, तिसविषे सूर्य, चंद्रमा, वन, फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत्को देखता है, अरु जब स्वरूपका अनुभव होता है, तब सर्व भटकना मिटि जाता है, अरु शांतिपदको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवा० निर्वाण प्र० जागृत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥२३३॥

द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः २३४.

सुषुप्तिवर्णनम् ।

वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुम जगत् अरु प्रलय देखी थी, तिसके अनंतर क्या होता भया, अरु क्या अवस्था देखी ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! तिसके चित्तस्पंदविषे मैं देखता भया, कि बड़े बड़े पहाड प्रलयकी वायुसाथ सूखे तृणकी नाईं उडते हैं, अरु पाषाणकी वर्षा होती है, इस प्रकार मैं प्रलयके क्षोभको देखत भया. मेरे देखते देखते जागृत्वाली नाडीविषे अन्न आनि स्थित हुआ, तहां जो अन्नके दाणे गिरैं, सो पर्वतवत् भासैं तब चित्तस्पंद जो संवित् थी सो रुक गई, तिसविषे मैं था सो तामस नरक विषे जाय पडा, मानो वहां मैं भी जड हो गया, मुझको ज्ञान कछु न रहा, जब कछु अन्न पचा अरु कछु अवकाश हुआ, तब प्राणका स्पंद फुरा, जैसे वायु निस्पंद हुई स्पंद होकरि चलै तैसे वहां संवित् फुरी, तब सुषुप्ति सो दृश्य होकरि भासने लगी, कैसी है, ज्यों आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि भासने लगा, परंतु अपर कछु बना नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु दृश्यविषे कछु भेद नहीं ॥ हे वधिक ! इसप्रकार मैं जगत्को देखता भया, सुषुप्ति जाग्रत् दृश्य सो दृश्य उपजी मुझको दृष्ट आई, जैसे कुंआरी कन्याते संतान उपजै तैसे उपजत भई ॥ वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुमने जो कहा सुषुप्ति आत्माते दृश्य उपजी सो सुषुप्ति क्या है, जिसविषे तुम दब गये थे वही सुषुप्ति है, जिसते जगत् उपजता है, सो मुझको कहौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! जहां सर्व संबंधका अभाव है, केवल आत्मसत्तते इतर कछु कहना नहीं, तिसका नाम सुषुप्ति है, तिसविषे जो फुरणा हुआ तिस फुरणेके तीन पर्याय हैं, सो सब सन्मात्रके हैं, जो वस्तु स्वरूप है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, अरु तीनोंके परि-

च्छेदते रहित है, सो सन्मात्र है, तिस सन्मात्रविषे अपर कछु बना नहीं, तिसके सब पर्याय हैं, सो वही रूप हैं, वही सत् वस्तु अपने आपविषे विराजता है, कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त होता, किंचनविषे भी वहीरूप है, अरु अकिंचनविषे भी वहीरूप है, आत्माहीका नाम सुषुप्ति है, तिसीते सब जगत् होता है, तिस सत्ताका नाम सुषुप्ति है, वही स्वप्न दृश्य होकरि भासता है, उसते इतर कछु नहीं; जैसे वायु निस्पंद स्पंदविषे वहीरूप है, तैसे आत्मा दोनों अवस्थाविषे एकही है ॥ हे वधिक ! हमसारखेकी बुद्धिविषे अपर कछु बना नहीं, सदा ज्योंका त्यों स्थित है, शरीरके आदि भी अंत भी वहीरूप है, तिसविषे जो किंचन-द्वारा करि भासा है, सो भी वहीरूप है, जैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे मुझको अद्वैतका अनुभव होता है, अपर कहूँ फुरणा नहीं होता, तिससों जो स्वप्न अरु जाग्रत् भासि आती है, सो भी वहीरूप है, जिसते फुरती है अरु जिसविषे भासती है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते यह जगत् आत्माका किंचन है सो आत्मरूप है, जब तू जागिकरि देखैगा, तब तुझको आत्मरूप भासैगा, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरका अनु-भव होता है, अरु आकाशरूप है, तैसे यह जगत् आकाशरूप है, शक्ति भी वही है, सर्वशक्ति आत्मा है, निष्किंचन भी वही है, अरु किंचन भी वही है, अरु शून्य भी वही है, जो वाणीते कहा नहीं जाता तिस अवस्थाविषे ज्ञानी स्थित है ॥ हे वधिक ! ज्ञान-वान्‌को अनुभव प्रत्यक्ष करिकै अनुभवरूपही भासता है, जैसे स्वप्नविषे जीव अरु ईश्वर भिन्न भिन्न भासता है, उपाधिकरिकै अनुभव भेद भासता है, वास्तवते भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रत्‌विषे अज्ञान उपाधिकरिकै भेद भासता है, स्वरूपते आत्मा एकरूप है, जब अज्ञान निवृत्त होता है, तब सर्व आत्मरूप भासता है ॥ हे वधिक ! सर्व जगत् अपना स्वरूप है, परंतु अज्ञानकरिकै भेद होता है, जब आपको जानै तब द्वैत भेद भी मिटि जावै, जैसे कहूँ पुरुष अपनी भुजापर सिंहकी मूर्ति लिखै अरु उसके भयकरि दौडते फिरैं, अरु कष्ट पावैं सो प्रमादकरिकै भय-मान होते हैं, वह तौ अपनाही अंग है, ऐसे जानै तब भय मिटि जाता

है, तैसे स्वरूपके ज्ञान करिकै जगत्भय मिटि जाता है, जैसे स्वप्नविषे अज्ञानकरिकै नानात्व भासता है, अरु बना कछु नहीं, तैसे जाग्रत्विषे नानात्व भासता है, परंतु बना कछु नहीं, जब यह पुरुष अंतर्मुख होता है, तब इसको बोधकी दृढता हो आती है, जैसे प्रातःकालको ज्यों ज्यों सूर्यकी किरणैं प्रगट होती हैं, त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे ज्यों ज्यों अंतर्मुख होता है, त्यों त्यों बोध खिलता है, विषयते वैराग्य करना अरु आत्माका अभ्यास करना इसकरि बुद्धि अंतर्मुख होती है, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब आत्मा सर्व एकरस भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३४ ॥

द्विशताधिकपञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः २३५.
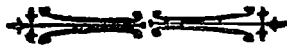
सुषुप्तिवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! तब मैं उसकी सुषुप्तिसों जागिकरि जगतको देखत भया, जैसे कोऊ पुरुष समुद्रसों निकस आवै, अरु जैसे संकल्पसृष्टि फुरि आवै, जैसे आकाशते बादल फुरि आते हैं, जैसे वृक्षते फल निकसि आते हैं, तैसे उसकी सुषुप्तिसों सृष्टि निकस आई, मानौ आकाशते उड आई, मानौ कल्पवृक्षते चिंतामणि निकस आई है, जैसे शरीरके रोम खडे हो आते हैं, जैसे गंधर्वनगर फुरि आता है, जैसे पृथ्वीते अंकुर निकसि आता है, तैसे सृष्टि फुरि आई है, जैसे कंधके ऊपर पुतलियां लिखी होवैं, जैसे स्तंभविषे अणउकरि पुतलियां होवैं, तैसे मैं सृष्टिको देखत भया, जैसे स्तंभविषे पुतलियां निकसीं नहीं परंतु शिल्पी कल्पता है, कि एती पुतलियां निकसैंगी, तैसे अनहोती सृष्टि आत्मरूपी स्तंभते निकसि आती है, अरु आत्मरूपी माटीते पदार्थरूपी वासना निकसते हैं, परंतु यह आश्चर्य है कि आकाशविषे चित्र होते हैं, अरु निराकार चैतन्य आकाशविषे पुतलियां मनुष्य कल्पता है ॥ हे वधिक ! जैसे आकाशविषे मकडीके समूह निकस आतेहैं,

तैसे शून्य आकाशते सृष्टि निकसकरि पुरुषके हृदयविषे मुझको स्पष्ट भासने लगी, अरु देश काल क्रिया द्रव्य करिकै अकस्मात्ते सत् असत् पदार्थ भासने लगते हैं, अरु असत् पदार्थ सत् हो भासते हैं, जैसे मणि मंत्र ओषधि द्रव्यके बलकरि असत् पदार्थ सत् हो भासने लगते हैं, अरु सत् पदार्थ असत् भासते हैं, तैसे अभ्यासके बलकरि मुझको पुरुषके हृदयविषे सृष्टि भासने लगी ॥ हे वधिक ! जैसा निश्चय संवित्‌विषे दृढ होता है, तैसा रूप होकरि भासताहै, वास्तवते न कोऊ पदार्थ है, न अंतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह सब सृष्टि इसके अंतरही स्थित है, अरु प्रमाददोषकरिकै बाहरसे फल उत्पत्ति होते देखता है, जैसे स्वप्नविषे सब पदार्थ अपने अंतर बाहर होते भासते हैं, तैसे यह पदार्थ अपने अंतरसों बाह्य फुरते भासते हैं ॥ हे वधिक ! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्ट आता है, सो सब निराकार है, अपर कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ताही अज्ञानकरि जगत्‌रूप हो भासती है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको जगत् सत् असत् कछु नहीं भासता, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित भासती है, अरु जो अज्ञानी हैं; तिनको भिन्न भिन्न नामरूप भासता है, अरु जब चित्तकी वृत्ति बाहिर फुरती है तिसको जाग्रत् कहता है, अरु जबअंतर्मुख फुरती है, तब तिसको स्वप्न कहता है, अरु जब वृत्ति स्थित होती है, तब तिसको सुषुप्ति कहता है, तौ एकही चित्तवृत्तिके तीन पर्याय हुए, अपर कछु वास्तव तौ नहीं, इसी जगत्‌के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी तिसविषे चित्तसंवित् फुरी, तब जगत्‌रूप भासने लगी, अपर किसी कारणते जगत् उपजा नहीं जिसका कारण कोऊ नहीं, तिसको असत् जानिये, वास्तवतेजगत् कछु बना नहीं, सर्व जगत् शांतरूप ब्रह्मही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३५ ॥

द्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः २३६.

स्वप्ननिर्णयवर्णनम् ।

वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! प्रलयके अनंतर तुमको क्या अनुभव हुआ था ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! तब मुझको तिसके अंतर सृष्टि फुरि आई, अपने पुत्र कलत्र स्त्री संपूर्ण कुटुंब भासि आये, तिनको देखिकरि मुझको ममत्व फुरि आई, अरु पूर्वकी स्मृति भूल गई, षोडश वर्षका आयुर्बल मुझको अपना भासा, गृहस्थाश्रमविषे स्थित भया, रागद्वेषसहित मुझको जीवके धर्म फुर आये, काहेते जो दृढ मुझको हुआ न था ॥ हे वधिक ! जब दृढ बोध होता है, तब राग द्वेष आदिक जीवधर्म चलाय नहीं सकते, संसारको सत्य जानकरि वासना कोऊ नहीं होती, इसी कारणते चलायमान नहीं होता, अरु जिसको बोधकी दृढता नहीं, तिसको जगत्की वासना खैंचि ले जाती है ॥ हे वधिक ! अब मुझको दृढ बोध हुआ है, इसको तरना महाकठिन है, यह पिशाचिनी महाबली है, काहेते कि चिरकाल दृश्यका अभ्यास हुआ इस कारणते चलाय ले जाती है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग जीवको प्राप्त होता है, अरु अभ्यास दृढ होता है, तब दृश्यका सद्भाव निवृत्त हो जाता है, जबलग यह मोक्षका उपाय नहीं प्राप्त भया तबलग यह भ्रम दृढ हो रहा है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि इसको यह विचार उपजे कि मैं कौन हौं, अरु यह जगत् क्या है, इसको विचारिकरि आत्मपदका दृढ अभ्यास होवै, तब दृश्यभ्रम मिटि जाता है, काहेते कि असम्यक् ज्ञान करिकै जगत् सत् भासा है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ तब जगत्का सद्भाव कैसे रहै, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजी, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, जब अपने स्वरूपविषे जागता है, तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, जबलग स्वरूपविषे जागा नहीं, तबलग जगत्भ्रम मिटता नहीं ॥ वधिक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम सत् कहते हौ, कि जगत्भ्रम मिटना कठिन है, मैं

तुम्हारे मुखते वारंवार सुनता हौं अरु विचरता हौं, अरु पदपदार्थका ज्ञान मुझको दृढ भया है, परंतु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता, यह मैं जानता हौं, अरु सुनता हौं, कि संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारविना शांति नहीं प्राप्त होती, यह संशय मुझको होता है कि तुम जाग्रत् जगत्को स्वप्नवत् कैसे कहते हौ ? कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह जेता कछु जगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत् भासते हैं, अरु शशेके शृंग आदिक असत् भासते हैं सो सब मिथ्यारूप हैं, जैसे स्वप्नविषे सत् असत् पदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्रूप हैं, तैसे यह जगत् असत्रूप है, तिसविषे अल्पप्रतीतिका अरु चिरकालकी प्रतीतिका भेद है, जाग्रत् चिरकालकी प्रतीति है, तिसकरि पदार्थ सत् भासतेहैं, अरु स्वप्न अल्पकालकी प्रतीति है, तिसकरि स्वप्नपदार्थ असत् भासते हैं, परंतु दोनों भ्रमरूप हैं, अरु असत् हैं, इस कारणते मैं तुल्य कहता हौं, असत्ही पदार्थ भ्रमकरिकै सत्की नांई भासते हैं, अरु यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है, तिसविषे सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं ? जैसे स्वप्नविषे कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, सो सबही असत्य हैं, तैसे जागृत्विषे कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, परंतु दोनों भ्रममात्रहैं, ताते असत्य हैं ॥ हे वधिक ! प्रतीतिका भेद है, पदार्थविषे भेद कछु नहीं, जिसविषे प्रतीति दृढ हो रही है, तिसको सत् कहता है, अरु जिसविषे प्रतीति दृढ नहीं, तिसको असत् कहता है, एक ऐसे पदार्थ हैं, जो स्वप्नविषे उनकी भावना दृढ हो गई है, सो जागृत्विषे भी प्रत्यक्ष आनि भासता है, अरु मनोराज्यकी दृढता जागृत्रूप हो जाती है, सो भावनाकी दृढता है, अपर भेद कछु नहीं, जिसविषे भावना दृढ हो गई है, सो सत् भासने लगा है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको जगत् संकल्पमात्रही भासता है, संकल्पते इतर कछु जगत्का रूप नहीं, तिसविषे मैं सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं, सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सत् असत् कछु नहीं, तिनको सब ज्ञानरूप भासता है, अरु जिसको स्वप्नविषे जागृत्की स्मृति आई है, तिसको बहुरि स्वप्न नहीं भासता है, तैसे जिसको

जागृतरूप स्वप्नविषे बोधस्मृति भई है, सो बहुरि मोक्षको नहीं प्राप्त होता, ताते न कोऊ जागृत् है, न कोऊ स्वप्न है, न कोऊ नेति है, काहेते कि, नेति भी कछु अपर वस्तु नहीं निकसती; जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, तिनकी मर्यादा नेति भी भासती है, तौ वह नेति किसीकरि है, सब ज्ञानरूप होती है, तैसे जागृत्विषे भी सब ज्ञानरूप हैं, संवित्के फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, तिनविषे नेति भी भासती है, ताते न कोऊ जगत् है, न नेति है, इसका कारण कोऊ नहीं, कारणविनाही जगत् अकस्मात् फुर आता है, अरु मिटि भी जाता है, संवेदनके फुरणेकरि जगत् फुरि आता है, संवेदनके मिटेते मिटि जाता है, ताते जागृत् संवेदनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप होता है, तैसे संवेदनही जगत्रूप हो भासता है, वायु स्पंदरूप होती है, तब फुरणरूप हो भासती है, अरु निस्पंद कोऊ नहीं जानता, परंतु वायुको दोनों तुल्य हैं, तैसे चित्त संवेदनके फुरणेविषे जगत् भासता है, अरु ठहरनेविषे जगत् किंचन मिटि जाता है, फुरना अरु ठहरना दोऊ उसके किंचन हैं, आप दोनोंविषे तुल्य है ॥ हे वधिक ! नेति भी अज्ञानीके समुझावनेनिमित्त कही है, स्वप्न भी असत् हैं, सब कोऊ जानता है, अरु स्वप्नका वृत्तांत जाग्रत्विषे सिद्ध होता दृष्ट आता है, कोऊ कहताहै, कि रात्रिविषे मुझको स्वप्न आया है, अमुक कार्य इसी प्रकार होवैगा, सो जाग्रत्विषे होता दृष्ट आता है, अरु पुत्रको पिता कहि जाता है, मेरी गति करहु अरु अमुक स्थानविषे द्रव्य पडा है, तुम काढि लेवहु, सो उसीप्रकार होता दृष्ट आता है, जो नेति होती तौ कार्य कोऊ सिद्ध न होता, सो तौ होता है; ताते नेति भी कछु वस्तु नहीं, आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं, जाग्रत् नाम तिसका है जिसको आत्मशब्द कहता है, अरु जिसको तुम जाग्रत् कहते हौ सो कछु वस्तु नहीं, जाग्रत् नाम जो मनसहित षट् इंद्रियोंकी संवेदन होती है सो स्वप्नविषे मनसहित षट् इंद्रियोंकी संवेदन होती है, तिनकेविषे ग्रहण होता है, ताते जाग्रत् वस्तु कछु नहीं, जो जाग्रत्विषे अर्थ सिद्ध होता है, अरु स्वप्नविषे भी होवै तौ जाग्रत्विषे कछु वस्तु न हुई, अरु जो तू कहै स्वप्न कछु वस्तु है तौ स्वप्न भी नहीं, स्वप्न तहां

होता है, जहां निद्रा भ्रम होता है, केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ता है, जगत् तिसका किंचन है, जैसे रत्नकी लाटका चमत्कार होता है, सो लाट इतर कछु वस्तु नहीं, रत्नही व्यापा है, तैसे जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्माका चमत्कार है, सो बोधसत्ता केवल अपने आपविषे स्थित है, सो अनंत है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, जो आत्माते इतर जगत् भासता है, सो नाशरूप है, आत्मा सदा अविनाशी है ॥ हे वधिक ! जब यह पुरुष शरीरको छांडता है, तब परलोकविषे सुख दुःख कैसे भोगता है, जैसे जलविषे एक तरंग उठिकरि मिटि जाताहै, अपर ठौर अपर प्रकार लेकरि उठता है, सो जलही जल है, आगे भी जल था, पाछे भी जल है, तरंगभी जल है, जलहीका विलास इसप्रकार फुरताहै, तैसे यह शरीर भी अनुभवरूप है, अनुभवते इतर कछु नहीं, जैसे एक स्वप्नको छांडिकरि दूसरा स्वप्न देखता है तौ क्या है, अपनाही आप है, तैसे यह जगत् आत्मरूप है ॥ हे वधिक ! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया यही चारौं वपु हैं, जाग्रत् जो सृष्टिकी समष्टिता है, तिसका नाम विराट् है, अरु स्वप्न जो लिंगशरीरकी समष्टिता है, तिसका नाम हिरण्यगर्भ है, अरु सुषुप्ति शरीरकी समष्टिता अव्याकृत माया है, अरु तुरीया सर्व शरीरकी समष्टिता है, सो चेतनरूप आत्मा है, तुरीया कहिये साक्षीभूत जानना, तिसकी समष्टितारूप चेतनवपु है, चारों शरीर इसके हैं, अरु सदा निराकार है, अचेत चिन्मात्र है ॥ हे वधिक ! यह चारों परमात्माके शरीर हैं, सो परमात्मा निराकार है, अरु आकार जो दृष्ट आते हैं, सो भी वहीरूप हैं, सो आकार कल्पनामात्र हैं, अरु आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है, ताते सब जगत चिदाकाशरूप है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे कमल फूल नहीं लगते, तिनका होना असंभव है, तैसे आत्माविषे जगत्का होना असंभव है ॥ हे वधिक ! आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तू जागिकरि देख, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो संकल्पमात्र हैं, जिसविषे कल्पित हैं सो नामरूपते रहित है, तिसको देखैगा तब आत्मरूप सब जगत् भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्ननिर्णयो नाम द्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३६ ॥

द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः २३७.

स्वप्नविचारवर्णनम्।

व्याध उवाच ॥ हे मुनीश्वर! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुम सृष्टि देखी थी, तिसविषे तुम किस प्रकार विच रतेथे, अरु क्या देखाथा सो कहौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक! जो कछु वृत्तांत है सो तू सुन, जब मैं उसके हृदयविषे नानाप्रकारका जगत् देखा, तब मैं अपने कुटुंबविषे रहने लगा, पूर्वकी स्मृतिका विस्मरण किया, अरु चेष्टा करत भया, षोडश वर्षपर्यंत सत् जानिकरि मैं चेष्टा करी तब मेरे गृहविषे एक उग्रतपा नाम ऋषीश्वर मान्य करने योग्य आया, तिसका मैं बहुत आदर किया चरण धोइकरि सिंहासनपर बैठाया, अरु नानाप्रकारके भोजनकरि तिसको तृप्त किया, तिस ऋषिने भोजन करिकै विश्राम किया तब मैं कहा, हे परमबोधवान्! अदृष्टक्रोधको मैं जानता हौं, अरु तुम परमबोधवान् हौ, तुम आपको आपही जानते हौ, अरु जब तुम आये तब थके हुये थे, परंतु तुम्हारेविषे क्रोध दृष्ट न आया, अरु नानाप्रकारके तुम भोजन किये, तब तुम हर्षवान् भये, इस कारणते मैंने जाना कि तुम परमबोधवान् हौ तुम्हारेविषे राग द्वेष कछु नहीं, ताते मैं एक प्रश्न संशयसंयुक्त होकरि करता हौं, तिस संशयको कृपा करि दूरि करौ ॥ हे भगवन्! इस जगत्नगरविषे दुर्भिक्ष आनि पडता है, अरु मृत्यु प्राप्त होती है, इकट्ठे मारि जाते हैं, अरु कष्ट पाते हैं सो क्या कारण है, यह तौ मैं जानता हौं, कि जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ जीव करता है, तैसे फलको पाता है, जैसे धान्यको बोता है, तब समय पायकरि फल भी अवश्य आता है, तैसे कर्मका फल अवश्य प्राप्त होना है, सो जिसने किया है सोई भोगता है, अरु इकट्ठा कष्ट क्योंकरि आनि प्राप्त होता है ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे साधो! प्रथम सुन, कि जगत् क्या वस्तु है, यह जगत् कारणविना उत्पन्न भया है, जो कारणविना दृष्ट आवै सो भ्रममात्र जानिये, ताते तू विचारकरि देख कि यह जगत् क्या है, अरु तू कौन है, अरु इसविषे क्या है, अरु इसका अंत परिमाण कहांलग है

हे व्याध ! यह जगत् स्वप्नमात्र है, अरु यह शरीर भी स्वप्नमात्र है, तू मेरा स्वप्ननगर है, अरु मैं तेरा स्वप्ननगर हौं, सब जगत् स्वप्ननगर है, करण कार्य कोऊ नहीं, सब आभासमात्र है, आभासविषे कछु अपर वस्तु नहीं होती, ताते सब जगत् आत्मस्वरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र होता है, तौ सर्प कछु नहीं जेवरी होती है; तैसे सब जगत् चिन्मात्ररूप है, तिसविषे कछु बना नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अहं होकरि इसप्रकार चेतनता संवेदन फुरती है, तब जगत्आकारका स्मरण होता है, जैसे जैसे संकल्प फुरता है, तैसा तैसा जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि नानाप्रकार हो भासतीहै, परंतु अनुभवते इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है, सो अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् भासता है, जिस संवित्विषे अपना स्वरूप स्मरण होता है, तिसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है, सोई जीव है, जिस संवित्को कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तिसको तिन कर्मका फल नहीं लगता, कर्तव्य दृष्ट भी आता है, परंतु उसके हृदयविषे कर्तव्यका अभिमान नहीं स्पर्श करता, अरु जिसके हृदयविषे कर्तव्यका अभिमान होता है तिसको फल भी होता है ॥ हे साधो ! यह जो सृष्टि है, तिसका एक विराट् पुरुष है, तिसका शरीर है, अरु यह विराट् भी अपर विराट्के संकल्पविषे है, यह विराट् उसविराट्का रोमांच है, जब विराट् पुरुषके अंगविषे क्षोभ होता है, अरु जीवकी पापवासना इकट्ठी आनि उदय होती है, जब वासना अरु अंगका क्षोभ इकट्ठा होता है, तब तिस स्थानविषे उपद्रव कष्ट होता है, जैसे वनविषे बहुत वृक्ष होते हैं, तिनपर वज्र आनि पडै, तिसकरि सब चूर्ण हो जावैं, तैसे इकट्ठे पापकरि तैसे इकट्ठेही मरि जाते हैं, अरु इकट्ठे दुर्भिक्षकरि कष्ट पावैं जैसे किसी पुरुषके अंगपर माखी लडैं, तिसकरि वह अंग कँपता है, उस अंग कँपनेकरि रोम कँपने लगि जाते हैं, अरु जो सर्पादिक जीव कहूं दंशता है तो सारा शरीर कष्ट पाता है, अरु सब रोम कष्ट पाते हैं, तैसे यह जगत् विराट् पुरुषका शरीर है, जब किसी नगरविषे पाप उदय होताहै, तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्ट पाते हैं, अरु जो सारे अंगरूपी देशविषे

पाप आनि उदय होता है, तब सर्पके काटनेवत् सारा शरीर विराट्का क्षोभवान्होता है, तिसके शरीर ऊपर रोमरूपी जीव सब कष्ट पातेहैं, केवल आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि यह आपदा दृष्ट आतीहै, कि यह जगत् कारणते उपजा होता तौ सत् होता, सो तौ कारणते उपजा नहीं, सत् कैसे होवै, इस जगत्विषे सत्प्रतीति करनी यही अज्ञान है ॥ हे साधो! इस आकाशका कारण कोऊ नहीं, पृथ्वीका कारण कोऊ नहीं, अविद्याका कारण भी कोऊ नहीं, स्वयंभू भी अकारण है, स्वयंभू तिसका नाम है, जो अपने आपकरि प्रगट है, तिसका कारण कौन होवै, जल अग्नि वायुका कारण भी कहूं नहीं, जो तू कहै, सबका कारण आत्मा है, तौ आत्मा निमित्तकारण कहैगा, अथवा समवायि कारण कहैगा, सो प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहिये तौ नहीं बनता, काहेते कि आत्मा अद्वैत है, जो दूसरी वस्तु नहीं तौ निमित्तकारण किसका होवै, अरु समवायिकारण कहिये तौ भी नहीं बनता, काहेते कि समवायिकारण आप परिणामीकरि कार्य होता है, सो आत्मा अच्युत है, अपने स्वरूपको त्यागता नहीं, सो समवायिकारण कैसे होवै, ताते आत्माविषे कारण-कार्यभाव नहीं, बहुरि जगत् किसका कार्य होवै, हे अंग! जो कारणते दृष्ट आवै तिसको जानिये कि भ्रममात्र भासता है, अरु जो तू कहै कारणबिना पिंडाकार नहीं होते, कहूँ कारण भी होवैगा, तौ हे अंग! जो यह पुरुष देहको त्यागता है, अरु परलोक जाय देखता है, कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है, उस शरीरका कारण कौन कहैगा, वह तौ कारणते नहीं उपजा, भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रममात्र जान, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासि आते हैं, सो किसी कारणते नहीं उपजे, जैसे आकाशविषे तरुवरे अरु रंग भासते हैं सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे बालकको अणहोता वैताल भासता है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे यह जगत् अणहोता स्वरूपके प्रमादकरि भासता है, वास्तवते परमात्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, सोई संवेदन करिकै जगत्रूप हो भासती है, ताते जगत् वहीरूप है, जैसे वायु चलने ठहरनेविषे एकहीरूप है, परंतु चलनेकरि भासता है, ठहरनेकरि नहीं भासता, तैसे

चित्तसंवित् फुरणेकरिकै जगत् आकार हो भासती है, तिसविषे नानाप्रकारके शब्द अर्थ दृष्ट आते हैं, अरु जब फुरणेते रहित होती है, तब अपने स्वभावको देखती है, जब संकल्पकी दृढता हो गई, तब कारण-कार्य भासने लगे, जिसको कारणकार्य भासता है, तिसको जगत् सत् भासता है, अरु जिसको कारणकार्यते रहित भासता है, तिसको जगत् आत्मरूप है, जिसको कारणकार्यबुद्धि है, तिसको वही सत् है, पुण्य करैगा, तब स्वर्गसुख भोगैगा, पाप करैगा, तब नरकदुःख भोगैगा, ताते उसको पुण्य करना भला है, जब जीवके पाप इकट्ठे आनि होते हैं, तब दुर्भिक्ष पड़ती है. अरु मृत्यु आती है, जैसे पत्थरकी वर्षा होवै, तैसे कष्ट पाते हैं, अरु जो मेरा निश्चय पूछैं तौ न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख है, न जगत् है, जब स्वरूपके प्रमाद करिकै अहंता उदय होती है, तब नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब प्रमाद निवृत्त होता है, तब सब आत्मारूप भासता है, ताते तू सर्व कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब सर्व संशय मिटि जावैंगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्नविचारो नाम द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥२३७॥

द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमः सर्गः २३८.

रात्रिसंवादवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! इसप्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर उपदेश करत भया, तिसकरि मैं अपने स्वभावविषे स्थित हुआ, अरु अकृत्रिम पदको प्राप्त हुआ, उग्रतपाके साथ मानौ विष्णु भगवान् उपदेश करने आनि बैठा है, तिसके उपदेशकरि मैं जागा, जैसे कोऊ रजकरि वेष्टित स्नान करिकै उज्वल होवै, तैसे मैं हुवा,अपनी पूर्व स्मृति अरु अवस्थाको स्मरण करत भया, समाधिवाले शरीरको भी जाना, अरु आत्मवपुको भी जाना, सो उग्रतपा यह तेरेपास बैठे हैं ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब वधिक विसमयको प्राप्त भया, अरु कहा, हे मुनीश्वर ! बड़ा आश्चर्य है; जो तुम कहते हो कि, स्वप्नविषे

मुझको उग्रतपाने उपदेश किया था, बहुरि जाग्रत्‌विषे कहते हौ कि, यह बैठा है, सो यह वार्त्ता तुम्हारी कैसे मानिये, जैसे बालक अपने परछाये-विषे वैताल कल्पे, अरु कहै, प्रत्यक्ष बैठा है, जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता, तैसे तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता यह अपूर्व वार्त्ता सुनिकरि मुझको संशय उपजा है, सो तुम दूर करौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! यह बात आश्चर्यके उपजावने हारी है, परंतु जैसा वृत्तांत हुआ है, सो संक्षेपते तुझको कहता हौं, सो सुन, जब उग्रतपाने मुझको उपदेश किया, तब मैंने कहा ॥ हे भगवन् ! तुम यहां विश्राम करौ; जिस प्रकार मैं रहता हौं, तैसे तुम रहौ, तब रहने लगा, अरु मैं उसका उपदेश पायकरि विचारत भया कि, यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है, इसके सुखनिमित्त मैं क्या यत्न करता हौं, इंद्रियां तौ ऐसी हैं, जैसे सर्प होते हैं, इनके सेवनेवाला संसाररूपविषे बंधनते कदाचित् मुक्त नहीं होता, मेरे जीनेको धिक्कार है, सो महामूर्ख है, मृगकी नांई मरुस्थलके जलपान करनेनिमित्त दौडते हैं, अरु थक पड़ते हैं, सो तृप्त कदाचित् न होवैंगे, सो मैं अविद्याकरिकै सुखके निमित्त यत्न करता था, इनकरि तृप्ति कदाचित् नहीं होती ॥ हे वधिक ! ममताका रूप जो बांधव है, सो चरणाविषे जंजीर है, अंधकूपविषे गिरनेका कारण है, तिनसाथ बांधा हुआ इंद्रियोंके विषयरूपी कूपाविषे मैं गिरा था, विचार किया कि जो बंधनका कारण कुटुंब है, तिसको मैं त्यागि जाऊं, बहुरि विचार किया कि, इनके त्यागविषे भी सुख नहीं प्राप्त होता, जब अविद्याको नष्ट करौं ॥ हे वधिक ! ऐसे विचार करि मैं गुरुकेपास गया, अरु मनविषे विचारा कि जगत् भ्रममात्र है, गुरु भी स्वप्नमात्र हैं, इनसों क्या प्राप्त होना है, बहुरि विचार किया कि, यह ज्ञानवान् पुरुष हैं, इनको अहंब्रह्मका निश्चय है, ताते यह ब्रह्मस्वरूप हैं, कल्याणमूर्त्ति हैं, इनसों जाय प्रश्न करौं, अरु पूछौं, तब मैं जायकरि प्रणाम किया, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! उस अपने शरीरको देखि आऊं अरु इसके शरीरको भी देखौं, कि कहां है, जो इस जगत्‌का विराट् पुरुष है ॥ हे वधिक ! जब इस प्रकार मैंने कहा, तब ऋषिने हँसिकरि मुझको कहा ॥ हे ब्राह्मण ! वह तेरा शरीर कहां है,

वह शरीर दूर गये हैं, अब कहां देखैगा, आपै तू जानैगा, तब मैं हाथ जोडिकरि ऋषिको कहा ॥ हे ऋषि! अब मैं जाता हौं; मेरे आनेपर्यंत तुम यहां बैठे रहना ॥ हे वधिक! ऐसे कहकरि मैं आधिभौतिक देहके अभिमानको त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ उड़ा, तब आकाशमार्गविषे मैं उड़ता उड़ता थका, परंतु शरीर कहूं न पाये, तब बहुरि ऋषिपास आया, अरु कहा ॥ हे पूर्व अपरके वेत्ता, भूतभविष्यके जाननेहारे, वह दोनों शरीर कहां गये, न इस सृष्टिके विराट्का शरीर भासता है, जिसके स्कंध मार्ग राह हम आये थे अरु न अपना शरीर भासता है ॥ हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य! सो कहहु ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे कमलनयन! अरु तपरूपी कमलकी खाणके सूर्य, हे ज्ञानरूपी कमलके धारणेहारा विष्णुकी नाभि, हे आनंदरूपी कमलकी खाण, तू भी सब कछु जानता है, अरु आत्मपदविषे जागा हुआ है, अरु योगीश्वर है, ध्यान करिकै देख, जो सब वृत्तांत तुझको दृष्ट आवै ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूप है, इसविषे स्थिर वस्तु कोऊ नहीं, तू विचारकरि देख जो शरीरकी अवस्था तुझको दृष्ट आवै, अरु जो मुझसे पूछता है, तौ मैं कहता हौं ॥ हे मुनीश्वर! जिस वनविषे तुम रहते थे, तुम्हारे शरीर वहां थे, एक कालमें तिस वनविषे अग्नि लगी, तहां जो नानाप्रकारकी वृक्ष वल्ली थी, सो सब जलि गई, अरु जल भी अग्निकरि क्षोभने लगे, अरु वनचारी पशु पक्षी सब जलि गये, महाकष्टको प्राप्त भये, तहां तुम्हारे शरीर जलि गये, कुटी भी जलि गई॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे भगवन्! उस अग्निसाथ जो संपूर्ण वन जलि गया, तिस अग्निका कारण कौन था, जो अग्नि लगगई ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् जो है, जिसविषे हम अरु तुम बैठे हैं, इसीका विराट् सोई है, जिसके शरीरविषे तुम प्रवेश किया था, अरु जिसविषे उसका शरीर है, अरु तेरा समाधिवाला शरीर है, तिसका विराट् और है, वह सृष्टि उस विराट्का शरीर है ॥ हे मुनीश्वर! उस विराट्के शरीरविषे जो क्षोभ हुआ, इस कारणते अग्नि उत्पन्न भई, शरीर अरु वृक्ष सब जलि गये, इस सृष्टिके विराट्का नाम ब्रह्मा है, तिस ब्रह्मका विराट् अपर

है, तिसका विराट् आत्मा है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अपर कछु बना नहीं, जिस पुरुषको उसका प्रमाद है, तिसको उपद्रव होते भासते हैं, अरु कारणकार्यरूप पदार्थ भासते हैं, तिसकरि कर्मके अनुसार दुःखसुखको भोगता है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार है, तिसको जगत् आत्मकरिकै भासता है, सर्व ओरते ब्रह्म भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! जब इसप्रकार वनके पशु पक्षी सब जले, तब तुम्हारी कुटीको आग लगी, कुटी अरु तुम्हारे शरीर अग्निकरि जलि गये, जिसके शरीरविषे तुम प्रवेश किया था, सो भी जलि गया, अरु तुम्हारे शिष्य भी जलि गये, उसका ओज भी जलि गया, तुम दोनोंकी संवित् आकाशरूप हो गई, वह अग्नि भी वनको जलायकरि अंतर्धान हो गई, जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रका आचमन करिकै अंतर्धान हो गया था, तैसे अग्नि वनको जलायकरि अंतर्धान हो गये, तुम्हारे शरीरकी राख भी नहीं, रही जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत्विषे दिखाई नहीं देती, तैसे तुम्हारे शरीर अदृष्ट हो गये ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् दीखता है, सो सब स्वप्नमात्र है, मैं तेरे स्वप्नविषे हौं, अरु जगत्का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, सो सबका अपना आप है, जगत् तिसका आभास है, जैसे संकल्पसृष्टि होती है, जैसे स्वप्ननगर होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत् तेरे स्वप्नविषे स्थित है, अरु तुझको चिरकालकी प्रतीति करिकै जाग्रत्विषे कारण कार्य नानाप्रकारका सत् होकरि भासता है ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे भगवन् ! जो यह स्वप्ननगर सत् हो गया है, तौ सबही स्वप्ननगर सत् होवैंगे ? ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! प्रथम तू सत्को जान, कि सत् क्या वस्तु है, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सबही स्वप्ननगर हैं, इनविषे कोऊ पदार्थ सत् नहीं, इस जगत्को तू समाधिवाले शरीरकी अपेक्षाकरि असत् कहता है, अरु जिसको तू जाग्रत्वपु कहता है, सो किसकी अपेक्षाकरि कहैगा, यह तौ अदृष्टरूप है क्यों ताते इसको स्वप्न जान, अरु जिस सत्ताविषे यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्न है तिसकी सत्ताको तू जान, तब तुझको सत्पदकी प्राप्ति होवै, जैसे यह जगत् आत्मसत्ता

विषे आभास फुरी है, तैसे वह भी है, तू जागिकारि देख, इस अरु सव- विषे भेद कछु नहीं, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आत्मरूप रत्नका चमत्कार है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि अनहोता जल भासता है, तैसे सब जगत् आत्माविषे अनहोता भासता है, आत्माके प्रमादकरि सत् भासता है, तू अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देख ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रिके समय कहता हुआ, शय्यापर शयन करि रहा, जब केते कालमैंते जागा तब मैंने कहा ॥ हे भगवन् ! अपर वृत्तांत मैं पाछे पूछौंगा, परंतु यह संशय प्रथम दूर करो कि, व्याधका गुरु मुझको तुम किस निमित्त कहा, मैं तौ व्याधको जानता भी नहीं, कि व्याध कौन है ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे दीर्घतपस्वी ! तू ध्यान करिकै देख, तू तौ सब कछु जानता है, जिस प्रकार वृत्तांत है, तिसको जानैगा, अरु जो मुझसों पूछता है, तौ मैं भी कहता हौं, अरु यह वृत्तांत तौ बडा है, मैं तुझको संक्षेपते कहता हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे ! देशमें राजाकी वंधी अरु लोक धर्मको छोड देवैंगे, तब दुर्भिक्ष्य आनि पड़ैगी, मेघ होनेते रहि जावैंगे, लोक दुःख पावैंगे, अरु मरि मरि जावैंगे, तेरा कुटुंब भी मरि जावैगा, कुटी भी नष्ट हो जावैगी,वृक्ष फल फूलते रहित होवैंगे, एक तू अरु मैं दोनों वनविषे रहि जावैंगे, काहेते कि, हमको सुख अरु दुःखकी वासना नहीं, हम विदितवेद हैं, विदितवेदको दुःख कैसे होवै ॥ हे मुनीश्वर ! कोऊ काल तौ इसप्रकार चेष्टा होवैगी, बहुरि कुटीके चौफेरि फूल फल तमालवृक्ष कल्पतरु कमल ताल इनते आदि लेकारि नानाप्रका- रकी सामग्री होवैगी, बडी सुगंधि हो रहैगी, मोर अरु कोकिला आनि विराजैंगे, भँवरे कमल आनि गुंजार करैंगे, ऐसा विलास प्रकट होवैगा, मानौ इंद्रका नंदनवन आनि लगा है, ऐसी दशा बहुरि होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रात्रिसंवादो नाम द्विशताधिकाष्ट- त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३८ ॥

द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः २३९.

रात्रिप्रबोधवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! इसप्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर मुझको कहत भया ॥ कि हे मुनीश्वर ! इसप्रकार वह वन होवैगा, तब तू अरु मैं एक समय तप करते बैठे होवैंगे, तहां एक व्याध मृगके पाछे दौडता तेरी कुटीके निकट आवैगा, तिसको तू सुंदर पवित्र कथा उपदेश करैगा, तिसविषे स्वप्नका प्रसंग चलैगा, तिस प्रसंगको पायकरि स्वप्न अरु जागृत्का वृत्तांत वह पूछैगा, तिसको तू स्वप्नका प्रसंग कहैगा, तिस स्वप्नप्रसंगविषे उसको परमार्थ उपदेश करैगा, काहेते कि, संतका स्वभाव यह है, अरु मेरे समागमका वृत्तांत उपदेश करैगा, तेरे वचनोंको पायकरि वह पुरुष विरक्तचित्त होकरि तप करैगा, तिसकरि अंतःकरण उसका निर्मल होवैगा, अरु सम्रपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार वृत्तांत होना है, सो मैं तुझको संक्षेपते कहा है; तू भी ध्यानकरि देख, तौ इसप्रकार होना है, इस कारणते मैं तुझको व्याधका गुरु कहा है ॥ हे व्याध ! इसप्रकार जब उग्रतपाने मुझको कहा तब मैं सुनिकरि विस्मित भया, कि इसनें क्या कहा, वडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नेति जानी नहीं जाती, कि क्या होना है ॥ हे वधिक ! इसप्रकार मेरी अरु उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत हो गई, तब मैं स्नान करिकै भली प्रकार उसकी प्रीति बढावनेके निमित्त, टहल करी, अरु वहां रहने लगा, बहुरि मैं विचारत भया, कि यह जगत् क्या है, अरु इसका कारण कौन है, मैं क्या हौं, तब विचार किया, कि यह जगत् अकारण है, किसीका बनाया नहीं, स्वप्नमात्र है, आत्मारूपी चंद्रमाकी जगत्रूपी चांदनी है, तिसका चमत्कार है, वही आत्मसत्ताही घट पट आदिक आकार हो भासती है, ताते न कोऊ कर्म है, न क्रिया है, न कर्त्ता है, न मैं हौं, न जगत है, अरु जो तू कहै है क्यों नहीं, सर्व अर्थ सिद्ध होते हैं, ग्रहण त्याग सिद्ध होते हैं, तौ सुन, ग्रहण त्याग

जो होता है, सो पिंडकरि होता है, अरु पिंड तत्त्वका होता है, सो तौ वह पिंड न किसी तत्त्वकरि बना है, न अपर किसी मातापिताकरि, यह तौ स्वप्नविषे फुरि आया, इसका कारण कौन कहिये अरु जो कहिये भ्रममात्र है, तौ भ्रमका कारण कौन है, भ्रांतिका द्रष्टा कौन है, जिस शरीरकरि दृष्ट आता था, इसका द्रष्टारूप मैं सो तौ भस्म हो गया, ताते जगत अपर कछु वस्तु नहीं केवल आदि अंतते रहित आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सो, यह मेरा स्वरूप है, वहां यह जगत्‌रूप होकरि भासता है, अपर जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूप हैं, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, परंतु कछु अपर नहीं, तैसे नानाप्रकार हो भासता है. आत्मा कछु अपर नहीं, अरु ब्रह्मसत्ताही निराभास है, आभास भी कछु हुआ नहीं, केवल चेतनसत्ता ऐसे रूप होकरि भासती है॥ हे वधिक ! इसप्रकार मैं विचार करिकै विगतज्वर हुआ मुनीश्वरके वचनोंकरि पर्वतकी नांई अचल अपने स्वभावविषे स्थित हुआ, जो कछु इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहौं, अभिलाष रहित सब अपनी चेष्टाको करौं, परंतु अपने स्वभावविषे स्थित रहौं॥ हे वधिक ! सुख भोगनेके निमित्त न मुझको जीनेकी इच्छा है, न मरनेकी इच्छा है न जीनेविषे हर्ष है, न मरनेविषे शोक है, सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, कछु संशय मुझको नहीं संपूर्ण संशय फुरणेविषे हैं, सो फुरणा मेरेविषे नहीं, ताते संसार भी नहीं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रात्रिबोधो नाम द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ २३९॥

द्विशताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः १४०.

यथार्थोपदेशवर्णनम्।

मुनीश्वर उवाच॥ हे, व्याध ! इसप्रकार मैं निर्णय किया, तब तीनों ताप मेरे नष्ट भये, अरु वीतराग निःशंक हुआ, किसी पदार्थकी

तृष्णा मुझको न रही, अरु निरहंकार हुआ, आत्माविषे जो आत्माभिमान था सो निवृत्त हो गया; परम निर्वाण हुआ, निराधार अरु निराधेय हुआ अपने स्वभाव आत्मत्वविषे मैं स्थित सर्वात्मा हुआ ॥ हे वधिक ! जो कछु शरीरका प्रारब्ध आनि प्राप्त होवै तिसाविषे यथाशास्त्र विचरौं, परंतु निश्चय कर्तृत्वका अभिमान न होवै, अरु जगत् मुझको आत्मरूप भासै, अरु तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्र है, सो आभास कछु वस्तु नहीं चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ हे वधिक ! मुनीश्वरका कहा वृत्तांत होता गया है तू मेरे पास आनि प्राप्त भया है, जो कछु उपदेश किया है, सो मैं तुझको कहा है, जो परम पावन सबका सार है, सो मैं उपदेश किया है, जिस प्रकार जगत्के पदार्थ तू अरु मैं जाग्रत् वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहा है ॥ व्याध उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार हुआ तब तू अरु मैं अरु ब्रह्मादिक भी सब स्वप्नके हुये क्यों, सो असत्ही सत्की नाईं भासते हैं ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे व्याध ! तू अरु मैं अरु ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत्के पदार्थ हैं, न यह जगत् सत है, न असत् है, न मध्य है, अनिर्वचनीय है, काहेते जो अनुभवरूप है ॥ हे व्याध ! जो अनुभव करिकै देखिये तौ वहीरूप है, जो अनुभवते भिन्न कहिये तौ हैही नहीं जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवविषे फुरती है, जो अधिष्ठानकी ओर देखिये तौ वहीरूप है, उससे इतर कहनेविषे नहीं आता ॥ हे वधिक ! जैसे कहूं नगर देखा है, अरु अब दूर है, जो स्मृति करिकै देखिये तौ भासता है परंतु कछु बना नहीं, स्मृतिमात्र है, तैसे जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब संकल्पमात्र हैं, कछु बने नहीं, तू अपने स्वभावविषे स्थित होकारि देख, तु तौ बोधवान् है, मिथ्याभ्रमविषे क्यों पडा है ॥ हे व्याध ! म तुझको उपदेश किया है, तिसकारि तुझको विश्राम हुआ है, कि नहीं हुआ, जो पदपदार्थविषे विश्राम हुआ है, जो ऐसी सत्ता है, परमपदविषे क्षण भी विश्राम नहीं पाया, काहेते जो दृढ भावना नहीं हुई ॥ हे वधिक ! परमपद पानेका मार्ग यह है, कि संतकी संगति अरु सच्छास्त्रको विचारणा, तिनके अभ्यास-

विषे दृढ अभ्यास करना, इस मार्गविना शांति प्राप्त नहीं होती, जव दृढ अभ्यास होवै तब शांति प्राप्त होवै, अरु चित्त निर्वाण हो जावै द्वैत अद्वैत कल्पना मिटि जावैं,इसीका नाम निर्वाण कहते हैं,अरु जवलग चित्त निर्वाण नहीं भया, तवलग राग द्वेष नहीं मिटता, अरु जव अभ्यासके वलकरि चित्त निर्वाण हो जाता है, तव अविद्या नष्ट हो जाती है, अरु आत्मपद प्राप्त होता है, शांत शिवपदको पाता है, जो मान अरु मोहते रहित है, अरु संगका दोष जिसने जीता है, किसीके संगकरि वंधमान नहीं होता, अरु अध्यात्मविचार नित करता है, सर्व कामना जिसकी निवृत्त हुई हैं, अरु इष्टके रागदोषद्वंद्वते मुक्त है, सुख दुःखविषे सम रहता है, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो अविनाशी आत्मपदको पाता है ॥ इति श्रीयोग॰ निर्वाणप्र॰यथार्थोपदेशो नाम द्विशताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥२४० ॥

द्विशताधिकैकचत्त्वारिंशत्तमः सर्गः २४१.

भविष्यत्कथावर्णनम् ।

अग्निरुवाच ॥ हे राजन् विपश्चित् ! जव इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तव वधिक वडे आश्चर्यको प्राप्त हुआ, मुनीश्वरके वचन सुनिकरि मूर्त्तिवत् हो गया, जैसे कागजकेऊपर मूर्त्ति लिखी होती है, तैसे आश्चर्यकरि स्थित भया, अरु संशयके समुद्रविषे डूवि गया, जैसे चक्रके ऊपर चढ़ा वासन भ्रमता है, तैसे वह संशयविषे भ्रमणे लगा, मुनीश्वरका उपदेश सुना, परंतु अभ्यासविना आत्मपदविषे विश्रांति न पाई ॥ हे राजन् ! परम वचनोंका तिसने अंगीकार न किया, जैसे राखविषे आहुति पाई निरर्थक होती है, तैसे मूर्खको उपदेश करना निरर्थक होता है, मूर्खता करिकै वह संशयविषे रहा, अरु विचारत भया, कि यह संसार अविद्यक है, जो मैं इसका अंत लेऊं जो मुझको आत्मपद भासै, ताते तप करौं ॥ हे राजन् विपश्चित् ! इसप्रकार विचारकरि उठा, उठिकरि उनके पास फिरने लगा, अरु पवित्र चेष्टा करने लगा, व्याधका धर्म तिसने त्याग किया, जिस प्रकार वह चेष्टा करै तैसे वह भी अधिक चेष्टा करै, वडा

उग्र तप करने लगा, जब सहस्र वर्ष तप करते व्यतीत भया, परंतु मन-विषे कामना यही रक्खी, कि मेरा शरीर बड़ा होवै, दिन दिनविषे बहुत भोजन बढ़ै, मैं अविद्यक संसारका अंत लेऊं कि, कहांलग चला जाता है, जब अविद्याका अंत आवैगा, तब आगे आत्माका दर्शन होवैगा, तब सहस्र वर्ष उपरांत समाधिते उतरा, अरु गुरुके निकट आयकरि प्रणाम किया अरु कहा ॥ हे भगवन्! मैं एता काल तप किया है, परंतु शांति मुझको प्राप्त नहीं भई ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! तुझको उपदेश किया है, तिसका तुझने भली प्रकार अभ्यास न किया, इस कारणते तुझको शांति नहीं प्राप्त भई ॥ हे वधिक ! मैं तेरे हृदयविषे ज्ञानरूपी अग्निकी चिणगारी डारी थी, परंतु तुझने अभ्यासरूपी पवन करिकै प्रज्वलित न करी ताते यह भी आच्छादित हो गई, जैसे बडे काष्ठके नीचे रंचक चिणगारी आच्छादित हो जाती है ॥ हे वधिक ! तू न मूर्ख है, न पंडित है, जो तू पंडित होता तौ आत्मपदविषे स्थिति पाता, अरु यह भी जब नष्ट नहीं होवैगा, तब अभ्यासकी दृढता होवैगी, तब वह ज्ञान अरु शांति आनि उदय होवैगी, अब जो तेरे हृदयविषे है, भविष्यत् भी होनी है सो मैं तुझको कहता हौं ॥ हे व्याध ! यही तुझने भली प्रकार विचारा है, कि संसार अविद्यक है, इसका मैं अंत लेऊं, कि कहांलग चला जाता है, इस कारणते मैं शरीर बढावौं, अरु इसका अंत किसी प्रकार देखौं, अब तेरे चित्तविषे यही निश्चय है, अरु आगे तेरे यह करना है, जो सौ युगपर्यंत उग्र तप करैगा, तब तुझ ऊपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होवैगा, तब देवतोंसहित तेरे गृहविषे आवैगा, तुझसे कहैगा, कछु वर माग तब तू कहैगा ॥ हे देव ! कैसा अविद्यक जगत् है, अविद्या किसी अणुविषे है. जैसे दर्पणविषे किसी ठौर मलिनता होती है, तिसके नाश हुए दर्पण शुद्ध होता है, तैसे आत्माके किसी कोणविषे अविद्या-रूपी मलिनता है, तिसके नाश हुए उल्लंघि गये, चिदात्माका साक्षात्कार मुझको होवैगा, जब अविद्यारूपी जगत्का अंत देखौंगा तब आत्मा मुझको भासैगा, मेरा शरीर घडी घडीविषे योजनपर्यंत बढ़ता जावै, जैसे गरुडका वेग होता है तैसे बढ़ता जावै, अरु मृत्यु भी मेरे वश होवै,

शरीर भी आरोग्य होवै, अरु ब्रह्मांड खपरको भी लंघि जावौं, अरु जहां मेरी इच्छा होवै, तहां चला जाऊं, मुझको रोकै कोई कहूं नहीं, जब संसारका अंत देखौंगा, तब आत्माको प्राप्त होऊंगा ॥ हे देव ! एता वर देहु, जो मेरा मनोरथ पूर्ण होवै, अपर कछु नहीं कहना ॥ हे वधिक ! जब इसप्रकार तू वर मांगैगा, तब ब्रह्माजी कहैगा, कि ऐसेही होवै, तब तेरा तप करिकै दुर्बल हुआ शरीर बहुरि चंद्रमा अरु सूर्यकी नांई प्रकाशवान् होवैगा, अरु घड़ीघड़ीविषे योजनपर्यंत बढता जावैगा, जैसे गरुडका तीक्ष्ण वेगकरि चलना है, तैसे तेरा शरीर वेगकरि बढ़ता जावैगा, जैसे प्रातःकालका सूर्य उदय होता है, अरु प्रकाश बढ़ता जाता है, तैसे तेरा शरीर बढ़ता जावैगा, अरु चंद्रमा सूर्य अग्निकी नांई प्रकाशवान् होवैगा, ब्रह्माजी वर देकरि अंतर्धान हो जावैगा, अपनी ब्रह्मपुरीविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु तेरा शरीर प्रलयकालके समुद्रकी नांई बढ़ता जावैगा, अरु जैसे वायुकरि सूखे तृण उडते हैं, तैसे तुझको ब्रह्मांड उड़ते भासैंगे, तब तेरा शरीर बढ़ता ब्रह्मांड खपरको भी लंघि जावैगा, तिसके परे आकाश भासैगा, बहुरि ब्रह्मांड भासैगा, आगे बहुरि ब्रह्मांड, इसी प्रकार तू कई ब्रह्मांड लंघता जावैगा, परंतु तुझको खेद कछु न होवैगा, महाआकाशको भी तू आच्छादित कर लेवैगा, जहां किसी तत्त्वका आवरण आवैगा, तिसको तू वरप्राप्त देहकरि सूक्ष्मता करिकै लंघता जावैगा ॥ हे वधिक ! इसी प्रकार कई सृष्टि लंघि जावैगा, कैसी सृष्टि हैं, जो इंद्रजालवत् हैं, जो दीर्घदर्शी हैं, सो इनको असत् जानते हैं, अरु जो प्राकृत जन हैं, तिनको जगत् सत् भासता है, अरु ज्ञानवान्‌को मिथ्या भासता है, तिस मिथ्या जगत्‌को तू लंघता जावैगा, तहां जाय स्थित होवैगा, जहां अनंत सृष्टि फुरती भासैंगी, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं, तैसे तुमको सृष्टि फुरती भासैगी, परंतु जिसविषे सृष्टि फुरती है, तिस अधिष्ठानका तुझको ज्ञान न होवैगा, तहां तू देखेगा कि, मैं बडा उत्कृष्ट हुआ हौं, अरु ऐसा अभिमान तुझको उदय होवैगा, तब तपका फल वैराग्य भी आनि उदय होवैगा, अरु साथही यह संस्कार तेरे हृदयविषे आनि फुरैगा, तिसकरि शरीरका तू निरादर करैगा, अरु कहैगा, हा

कष्ट हा कष्ट ॥ हे देव ! यह क्या शरीर तुझने मुझको दिया है, जगत्के अंत कहूं लेनेको मैं शरीर बढ़ाया था, सो तौ अंत कहूं न आया, काहेते कि, अविद्या नष्ट न भई, अविद्या तब नष्ट होती है, जब ज्ञान होता है, आत्मज्ञान तब होता है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग होता है, जो संतसंग अरु सच्छास्त्र मुझको प्राप्त होवै, तब ज्ञान उपजैगा, यह तौ मुझको ऐसा शरीर प्राप्त भया है, जो बड़ा भार उठाये फिरता हौं, अनेक सुमेरु पर्वत होवैं, तौ भी इसके पास तृणवत् हैं, ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है, इस शरीरसाथ मैं किसकी संगति करौं, अरु किस प्रकार शास्त्रका श्रवण करौं, यह शरीर मुझको दुःखदायी है, ताते इस शरीरका त्याग करौं ॥ हे वधिक ! ऐसे विचारकरि तू प्राणायाम करैगा, तिसकी धारणा करिकै शरीरको त्यागि देवैगा, जैसे पक्षी फलको खायकरि गिटेको त्यागि देता है, जैसे इंद्रके वज्रकरि खंडित हुयेते पर्वत गिरते हैं, तैसे एक सृष्टिभ्रमविषे तेरा शरीर गिरैगा, तिसके नीचे कई पर्वत नदियां जीव चूर्ण होवेंगे, तहां बड़ा खेद होवैगा, तब देवता चंडिकाका आराधन करैंगे, सो चंडिका भगवती तेरे शरीरका भोजन करि जावैगी, तब सृष्टिविषे बहुरि कल्याण होवैगा, इस वनविषे जो तमाल वृक्ष हैं, तिसके नीचे तू तप करेगा, यह तेरी मैं भविष्य कही है, अब जैसी तेरी इच्छा हो तैसे करो ॥ व्याध उवाच ॥ हे भगवन् ! बड़ा कष्ट है कि, मैं एते खेदको प्राप्त होऊंगा, ताते सोई उपाय करहु, जिसकरि यह भावना निवृत्त हो जावै ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! जो कछु वस्तु होनी है, सो अन्यथा कदाचित् कछु भी नहीं होती, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, जैसे चिल्लाते छुट्या बाण तबलग चला जाता है, जबलग उसविषे वेग होता है, वेग जब पूर्ण होता है, तब पृथ्वीपर गिर पडता है, अन्यथा नहीं होता, तैसेही जैसा प्रारब्धका वेग उछलता है, तैसेही होवैगा, जो भावी फिरनेकी शक्ति होवै जीव उपासि, तौ वांया चरण दाहने करही, दाहना बांये करही, तौ ऐसे नहीं होता, तौ हुआ है सो होना है, सो यह है, ज्योतिष शास्त्रवाले जो भविष्यत् दशा आगे कहते हैं, अरु तैसेही होता है, तब उसी प्रकार होता है, क्योंकि जो

होनी होती है, जो न होवै, तौ क्यों कहै, ताते भावी मिटती नहीं ॥ हे वधिक! मैं तुझको दो मार्ग कहे हैं, जवलग इसको कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तवलग कर्मके बंधनते छुटता नहीं, अरु जो कर्मकी कल्पना आत्माको स्पर्श न करै, तौ कर्म कोऊ नहीं बंधन करता, काहेते कि, उसको आत्मा अद्वैतका अनुभव होता है, द्वैतरूप कर्म दिखाई नहीं देते सुखदुःख सर्व आत्मरूप हो जाते हैं, अरु कर्म तवलग बंधन करते हैं, जवलग आत्मबोध नहीं हुआ, जब आत्मबोध होता है, तब सर्व कर्म दग्ध हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भविष्यत्कथावर्णनं नाम द्विशताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४१ ॥

द्विशताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः २४२.

सिद्धनिर्वाणवर्णनम् ।

व्याध उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुम मुझको कहा, सो सुनि करिकै आश्चर्यको प्राप्त हुआ हौं; भला शरीर गिरनेते उपरांत मेरी अवस्था क्या होवैगी, जब विस्ताररूप वासनाशरीर आकाशरूप होवैगा ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक! तेरा शरीर गिरैगा, तब तेरी संवित् प्राणवासनासहित आकाशरूप हो जावैगी, महासूक्ष्म अणुवत् हो जावैगी, तिस संवित्विषे तुझको बहुरि नानाप्रकारका जगत् भासैगा, पृथ्वी देश काल पदार्थ सब भासि आवैंगे, जैसे सूक्ष्म संवित्विषे स्वप्नका जगत् भासि आता है; तैसे तुझको जगत् भासि आवैगा, तहां तेरी संवित्विषे यह आनि फुरैगा, कि मैं राजा हौं, अष्ट वर्षका हौं, अरु मेरे पितामहका नाम इंद्र है, अरु माताका नाम प्रद्युम्नकी पुत्री बधलेखा है, अरु मेरा पिता मुझको राज्य देकरि वनको गया है, अरु तप करने लगा है, अरु चारों ओर समुद्रपर्यंत हमारा राज्य है ॥ हे वधिक! तहां तेरा नाम सिद्ध होवैगा, तहां तू कई शतवर्षपर्यंत राज्य करैगा, अरु नानाप्रकारके विषयको भोगैगा ॥ हे वधिक! एक विदूरथ नामा राजा पृथ्वीविषे होवैगा, तेरे साथ शत्रुभाव करैगा, तेरी पृथ्वीसीमा लेनेका यत्न करैगा, तब तू मनविषे

विचार करैगा कि बडा सिद्ध हौं, बहुत शत वर्षमैं निर्विघ्न भोग भोगे हैं, परंतु एक विदूरथ नामक शत्रु है, तिसका नाश करौं ॥ हे वधिक ! तिसके मारणेनिमित्त तू सेनाको ले चढैगा, सो चार प्रकारकी सेना नाशको प्राप्त होवैगी हस्ती घोडे रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना है, दोनों ओरकी सेना नष्ट होवैंगी, अरु तुम रथते उतरिकरि परस्पर युद्ध करोगे, तुझको भी बहुत शस्त्र लगैंगे, शरीर काटा जावैगा, तौ भी तू उसके सन्मुख जाय युद्ध करैगा, उसको मारैगा, टंगा काटि देवैगा, कुहाडेसाथ तिसको मारिकैं बहुरि अपने गृहविषे तू आवैगा, सब दिक्पाल तुझसों भय पावैंगे तू बडा तेजवान् होवैगा, कि बडा आश्चर्य है, विदूरथको जीतिकरि तुझने यमपुरी पठाया है, बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, तब सिद्ध राजा कहावेगा ॥ हे मंत्री ! इसविषे क्या आश्चर्य है, मेरे भयकरि तौ दिक्पाल भी कंपते हैं, अरु प्रलयकालके समुद्र मेघवत् मेरी सेना है, किसी ओरते आदि अंत नहीं आती, विदूरथके जीतनेविषे मुझको क्या आश्चर्य है, तब मंत्री कहैगा ॥ हे राजा ! एती सेना तेरेसाथ है तौ क्या हुआ उस विदूरथकी स्त्रीको तुम नहीं जानते, सो कैसी देवी है, जिसके क्रोध फुरणेकरि संपूर्ण विश्व नाश हो जाती है, तिसको तिसकी स्त्री लीलाने तप करनेते वश किया है, जो वह माता सरस्वती ज्ञान शक्ति है, अरु सर्व भूतके हृदयविषे स्थित है, जैसा तिसविषे कोई अभ्यास करता है, सोई सरस्वती सिद्ध करती है ॥ हे राजन् ! वह राजा अरु तिसकी स्त्री लीला सरस्वतीसों मोक्ष माँगते थे, कि किसी प्रकार हम संसारबंधते मुक्त होवैं, इस कारणते वह मोक्षभाव हुये, अरु तेरी जय हुई ॥ राजोवाच ॥ हे अंग ! जो सरस्वती मेरे हृदयविषे स्थित है, तौ मुझको मुक्त क्यों नहीं करती, मैं भी सदा सरस्वतीकी उपासना करता हौं ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन् ! सरस्वती जो चित्तसंवित् है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तिसकी सिद्धता होती है ॥ जो हे राजन् ! तू अपनी जयही सदा माँगता था, इस कारणते तेरी जय हुई, अरु वह मुक्ति माँगता था, उसको मुक्ति हुई, उसका संस्कार पिछला उज्ज्वल था, तिसकरि मुक्त भया, अरु तेरा संस्कार पिछले जन्मका तामसी था, तिस कारणते तुझको

इच्छा न भई, अरु शांति भी प्राप्त न भई, अरु आदि परमात्मसत्तासों जो सब पदार्थ प्रगट हुये हैं सो सुन, केवल जो आत्मसत्ता निष्किंचन पद है. सो सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, तिसविषे चेतनता संवेदन फुरती है, अहं अस्मि जो मैं हौं, इस भावनाका नाम चित्त है, तिस चेतनताने देह, इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है, तिस कल्पनाकरि विश्व चित्तविषे स्थित है, अरु चित्त आत्मासों फुरा है, प्रमादकरिकै देहादिक कोऊ कल्पा है ॥ राजोवाच ॥ हे साधो ! आत्मा तौ निष्किंचन केवल पद निर्विकार है, तिसविषे तामसी देह कहांते उपजी ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन् ! जैसे स्वप्नविषे प्रमादकरिकै तामसी वपु दृष्ट आता है, परंतु है नहीं, तैसे यह आकार भी दृष्ट आते हैं, परंतु हैं नहीं, अज्ञानकरिकै भासते हैं, ताते तुझको प्रमाद हुआ है, तब वासनाके अनुसार जन्म पाता फिरा है, इस प्रकार तेरे बहुत जन्म वीते हैं, परंतु पिछला शरीर जो तुझने भोगा है, सो महातामसी था, अर्थ यह जो तामस तामसी था, इस कारणते तुझको मोक्षकी इच्छा न भई ॥ हे राजन् ! तेरे बहुत जन्म वीते हैं, तिनको मैं जानता हौं, तू नहीं जानता ॥ राजोवाच ॥ हे निर्मल आत्मा ! तामस तामसी किसको कहते हैं ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन् ! एक सात्विक सात्विकी है, एक केवल सात्विकी है, एक राजस राजसी है, एक केवल राजसी है, एक तामस तामसी है, एक केवल तामसी है, सो भिन्न भिन्न सुन ॥ हे राजन् ! जो निर्विकल्प अचेतन चिन्मात्रसत्तासों संवित् फुरी है, तिसकी अहं-प्रतीति अधिष्ठानविषे रही है, अपर निश्चयको नहीं प्राप्त भई, अनात्म-भावको स्पर्श नहीं किया, ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं, सो सात्विक सात्विकी हैं, अरु जिनको विभूति सात्विकी पदार्थ भासने लगे हैं, अरु स्वरूपका प्रमाद है, बुद्धिसाथ स्पर्श किया भी अरु न किया भी सो केवल सात्विक है, अरु जिसकी संवित्को बुद्धिसाथ संबंध हुआ, अरु नाना-प्रकारके राजसी पदार्थविषे सत्यप्रतीति हुई है, अरु राजस कर्मविषे दृढ अभ्यास है, तिसके अनुसार शरीरको धारते चले गये स्वरूपकी ओर नहीं आये, चिरपर्यंत ऐसे रहे, सो राजस राजसी फुरणा है, अरु

जिनको बोधविषे अहंप्रतीति भई, स्वरूपका प्रमाद है, अरु जगत् सत्य भासता है, राजसी पदार्थविषे अधिक प्रतीति है, राजसी कर्मका अभ्यास है, तिसके अनुसार जन्म पाते हैं, बहुरि शीघ्रही स्वरूपकी ओर आवैं, तिनका नाम केवल राजसी है, सो राजस राजसीते श्रेष्ठ है, अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद है, अरु जगत्विषे सत् प्रतीति हुई है, तिस जगत्विषे जो तामस कर्म हैं, तिन कर्मविषे दृढ अभ्यास हुआ है, तिसकरि महामूढ जन्मको पाते चिरपर्यंत चले जाते हैं, दैवसंयोगते कभी मोक्षकी संगति आनि प्राप्त होती है, तौ भी त्यागि जाते हैं, सो तामस तामसी हैं, अरु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआ है, अरु तामसी कर्मकी रुचि है, अरु तिनकर्मके अनुसार जन्म पाते जाते हैं, पाते पाते जो हटि पडा; तामसी कर्मको त्यागिकरि मोक्षपरायण हो गया सो केवल तामसी है, तामस तामसीते श्रेष्ठ है ॥ हे राजन् ! तू तामस तामसी था, इस कारणते सरस्वतीसों तू अपनी जयही मांगता रहा, मोक्षका अभ्यास तुझने न किया ॥ राजोवाच ॥ हे निर्मलचित्त मंत्री ! मैं तामस तामसी था इस कारणते मोक्षकी इच्छा न करी, परंतु अब मुझको सोई उपाय कछु कहै जिसकरि मेरा अहंभाव निवृत्त होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन् ! निश्चयकरि जान जो कोऊ जैसे पदार्थकी इच्छा करता है; तिसको वह पदार्थ प्राप्त होता है, अरु जिसकी भावनाकरि अभ्यास करता है, वह पदार्थ निःसंदेह प्राप्त होता है, अरु जिसका दृढ अभ्यास करता है, वहीरूप हो जाता है; ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जो अभ्यासके वशते न पाइये, जो प्रथम दिनाविषे कोऊ विकर्म काहूते हुआ है, अरु अगले दिन शुभ कर्म करै, तब वह विकर्म लोप हो जाता है, शुभ कर्मही मुख्य हो जाता है, इससे जब तू आत्मपदका अभ्यास करैगा, तब तुझको आत्मपद प्राप्त होवैगा, तेरा जो तामस तामसी भाव है, सो निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन् ! जो पुरुष किसी पदार्थ पानेकी इच्छा करता है, अरु हटिकरि फिरै नहीं, तो अवश्य तिसको पाता है, देह इंद्रियोंका अभ्यास इसको दृढ हो रहा है, तिसकरि बहुरि बहुरि

देह इंद्रियोंको पाता है, जब तिनते उलटिकरि आत्माका अभ्यास करै, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, देह इंद्रियोंका वियोग हो जावेगा, ताते सदा आत्मपदका अभ्यास करहु, तिसकरि आत्मपद प्राप्त होवैगा ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! इसप्रकार तू सिद्ध राजा होवैगा अरु मंत्री तुझको उपदेश करैगा, तब तू राज्यका त्याग करैगा, अरु वनविषे जावैगा, उपदेश करनेवाला मंत्री अरु अपर मंत्री सेनायुक्त तुझको कहैंगे, कि तू राज्य कर. सब कहि रहैंगे, परंतु तेरा चित्त विरक्त होवैगा, राज्यको अंगीकार न करैगा, तिस वनविषे संतका स्थान होवैगा, तहां जायकरि तू स्थित होवैगा, परम विरागसंपन्न होवैगा तव उनका कथाप्रसंग तुझको स्पर्श करैगा, अरु संतते कछु मांगिये नहीं तौ भी अमृतरूपी वचनोंकी वर्षा करते हैं, जैसें पुष्पते सुगंधि माँगिये नहीं तौ भी प्राप्ति होती है, तैसे सज्जनते माँगेविना भी अमृत प्राप्त होता है, जब संतके अमृतवचन सुनता है, तब इसको विचार उत्पन्न होता है कि मैं कौन हौं, अरु यह जगत् क्या है, अरु जगत् किससे उपजा है, तब तू उनके हृदयको पायकरि इस प्रकार जानैगा कि, मैं अचेतन चिन्मात्रस्वरूप हौं, अरु जगत् मेरा आभास है, अरु चित्तका फुरणाही जगत्का कारण है, सो चित्तही मेरेविषे नहीं, तौ जगत् कैसे होवै, जगत् भी मेरेविषे है नहीं मैं अपनेही आपविषे स्थित हौं ॥ हे वधिक ! इसप्रकार सर्व अर्थते मनको शून्य करिकै अपने स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब परमानंद निर्वाणपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सिद्धनिर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४२ ॥

द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः २४३.

विपश्चिद्देशांतभ्रमवर्णनम् ।

मुनीश्वर उवाच ॥ हे वधिक ! इसप्रकार तेरी भावी है, सो सब मैं तुझको कही है, आगे जो भला जानता है, सो तू कर ॥ अग्निरुवाच ॥ हे

राजा विपश्चित ! इस प्रकार मुनीश्वरने वधिकको कहा तब वधिक आश्चर्यको प्राप्त हुआ, अरु वहांते उठि खडा हुआ, मुनीश्वरसहित स्नानको गये अरु दोनों तप करैं, अरु शास्त्रको विचारैं, जब केता काल व्यतीत भया, तब मुनीश्वर निर्वाण हो गया, तहां वधिकही तप करनेको समर्थ भया, कि किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट होवै ॥ हे राजा विपश्चित् ! सौ युगपर्यंत वधिकने तप किया तब ब्रह्माजी देवतोंको साथ लेकारि आया, अरु कहा कछु वर माँग, तब उस वधिकने कहा, मेरा शरीर बड़ा होवै, मैं अविद्याको देखौं ॥ हे राजन् ! वधिक जानत भया कि इस वर माँगेते मेरा भला नहीं, परंतु दृढ भावनाके बलते जानिकारि यही वर माँगा, कि मेरा शरीर बडा होवै, घड़ीघड़ीविषे योजनपर्यंत बढै, तब ब्रह्माजीने कहा ऐसेही होवैगा, इस प्रकार कहिकारि ब्रह्माजी अंतर्धान होगये, तब उसका शरीर बढने लगा , एक घड़ीमें एक योजन बढै, कल्पपर्यंत उसका शरीर बढने लगा, कई ब्रह्मांडपर्यंत चला गया, जिस ओरको देखौं, तिस ओर अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, अविद्यारूप जब थका तब फिरा, जो अविद्याका अंत तौ नहीं आता, इस शरीरको मैं कहां लग उठाये फिरौं, इसका अब त्याग करौं, तब आत्मपदको प्राप्त होऊंगा ॥ हे राजा विपश्चित् ! तब प्राणको ऊर्ध्व खैंचकारि शरीरको त्यागि दिया, वही शरीर यहां आनि पड़ा है, जिस ब्रह्मांडते यह गिरा है सो हमारे स्वप्नकी सृष्टि है, अर्थ यह कि अन्य सृष्टिका था, स्वप्नवत् इस सृष्टिविषे इसकी प्रतिमा आनि पडी है, अरु यहां जाग्रत् सृष्टिविषे आनि पड़ा है, तिसते पृथ्वी पहाड सब नाश कारिडारे हैं, अरु जहांते गिरा है, तहां आकाशविषे तरुवरेकी नांई उनको भासता था, अरु यहां इसप्रकार गिरा है, जैसे इंद्रका वज्र होता है ॥ हे विपश्चित्विषे श्रेष्ठ ! वही वधिकका महाशव था, जब उसका शरीर गिरा, तब भगवतीने उसका रक्तपान करा, तिसकारि उसका नाम रक्ता भगवती हुआ, अरु अपर जो शरीरकी सामग्री रही सो मेधा पृथ्वी भई, जब चिरकाल व्यतीत भया, तब मृत्तिका पृथ्वी हो गई, तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी पडा, अरु ब्रह्माजीने जो नूतन सृष्टि रची है, तिस पृथ्वीपर अब

कल्याण हुआ है, अब जहां तेरी इच्छा होवै, तहां तू जावै, मैं भी अब जाता हौं, इंद्रको सुवा यज्ञ करना है, तिसने मेरा आवाहन किया है, तहां मैं जाता हौं ॥ भास उवाच ॥ हे राजा दशरथ! इसप्रकार मुझको कहकरि अग्नि देवता अंतर्धान हो गया, जैसे महाश्याम मेघते सौदामिनी चमत्कार करिकै अंतर्धान हो जाती है, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तब मैं वहांते चला, एक सृष्टिविषे गया, तहां अपर प्रकारके शास्त्र अरु अपर प्रकारके प्राणी थे, बहुरि आगे अपर सृष्टिविषे गया तहाँ ऐसे प्राणी देखे, जिनकी टांगें काष्ठकी अरु आचार मनुष्यका था, आगे अपर सृष्टिविषे गया, उसके शरीर पाषाणके अरु दौड़ते हैं, व्यवहार करते हैं; तिसते परे अपर सृष्टिविषे गया, तहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्त्ति थीं, तिसते आगे गया, तहां दया देखौं, प्राणी बैठेही रहैं, बोलते वार्त्ता करते हैं, परंतु खानपान कछु नहीं करते ॥ हे राजा दशरथ! इसप्रकार मैं चिरकालपर्यंत फिरता रहा परंतु अविद्याका अंत कहूँ न आया तब मैंने विचार किया कि आत्मज्ञानी होऊं तब अंत आवैगा; अपर किसी प्रकार अंत न आवैगा, इसप्रकार विचार करिकै मैं एक वनविषे गया, अरु ज्ञानकी सिद्धताको तप करने लगा, जब केताक काल तप किया, तब चित्तविषे यह इच्छा उपजी कि, किस प्रकार संतके निकट जाऊं; तिसकी संगतिकारि मुझको शांतपद प्राप्त होवैगा ॥ हे राजन्! ऐसे विचार करि मैं वहांते चला, कल्पवृक्षके वनविषे आया, तहां एक पुरुष मुझको मिला तिसने कहा ॥ हे साधो! कहां चला है, मेरे निकट तौ आउ, तब मैंने उसको कहा, तू कौन है, तब उसने कहा मैं तेरा तप हौं, जो तैंने किया है, अब जो कछु वर तू मांग सो मैं तुझको देऊं तब मैंने कहा कि हे साधो! मेरी इच्छा यही है, कि मैं आत्मपदको प्राप्त होऊं तब उसने कहा ॥ हे साधो! अब तुझे एक जन्म अपर मृगका पाना है, वह शरीर तेरा अग्निविषे जलैगा, तब तू मनुष्यका शरीर पावैगा, अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस सभाविषे जब तू मनुष्यशरीर धारैगा, अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस तेरे तांई सब जन्मकी अरु क्रियाकी स्मृति हो आवैगी, अरु तुझको स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, तू अब मृगशरीर धारु ॥ हे राजा दशरथ! इसप्रकार जब उसने कहा तब मैंने

चिंतवना करी कि मृग होऊं, तब स्वप्नरूप प्रतिभा मेरे ताईं फुरी, मैं मृग हो गया, तुम्हारी सृष्टिविषे एक पहाडकी कंदराविषे विचरत भया अरु तिसका राजा शिकार खेलने चला, उसने मुझको देखा तब मेरे पाछे घोड़ा उडाया, तिसके आगे मैं दौडता जाऊं अरु घोडेका वेग तीक्ष्ण था, मुझको उसने पकड़ लिया, अपने गृहमें ले आया, तीन दिन राखा, परंतु बहुत सुंदर चेष्टा देखी, तिस कारणते प्रसन्नताते यहाँ ले आया॥ हे राजा दशरथ! अब मैं मृगके शरीरको त्यागिकारि मनुष्यका शरीर पाया है, जो कछु तैंने पूंछा था सो सब तुझको कहा है॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे अंग! जब इसप्रकार विपश्चित् कह रहा था, तब रामजीने विपश्चित्सों प्रश्न किया॥ राम उवाच ॥ हे विपश्चित्! वह मृग तौ अपर सृष्टिका था, यहां क्योंकरि आया ॥ भास उवाच ॥ हे रामजी! जहां वह शव पडा था, वह भी अपर सृष्टिका था, एक कालमें आकाशमार्गविषे दुर्वासा ऋषीश्वर ध्यान लगाये बैठा था, तिस मार्गकरि इंद्र पृथ्वीको आया, यज्ञके निमित्त मार्गविषे जो दुर्वासा बैठा था, तिसको शव जानकरि इंद्रने चरण लगाया, तब वह समाधिते उतरकरि इंद्रकी ओर देखत भया, अरु शाप दिया कि हे शक्र! तुझने शव जानिकरि गर्व करिकै मुझको चरण लगाया है ताते तेरे यज्ञको एक मृतक शव नाश करैगा; जिस स्थान पर वह पडैगा, सो पृथ्वी भी नाश होवैगी, जब ऐसे उस ऋषिने शाप दिया, अरु इंद्र यज्ञ करने लगा, तब अपर सृष्टिते वह शव आनि पड़ा, पृथ्वी चूर्ण हो गई, वह तौ उस प्रकार गिरा, अरु मैं तपरूपी मुनीश्वरके वर करिकै मृग होकरि तुम्हारी सभाविषे आया हौं ॥ हे रामजी! जो असत् होता तौ प्रगट न होता, अरु जो सत् होता तौ स्वप्नरूप न होता, जो स्वप्नकी सृष्टिका था ॥ हे रामजी! तुम हमारी स्वप्नसृष्टिविषे हौ, अरु हम तुम्हारी सृष्टिके स्वप्नविषे हैं, जैसे यहस्वप्नपदार्थका होना हुआ है, तैसे यह शवका होनाभी हुआ है, अरु मृगका भी हुआ है, जैसे यह सृष्टि है, तैसे वह सृष्टि भी है, जो यह सृष्टि सत् है तौ वहभी सत् है, परंतु वास्तवते न यह सत् है, न वह सत् है, यह भी भ्रममात्र है, वह भी भ्रममात्र है, सत् वस्तु वही

है, जो मनसहित षट् इंद्रियोंते अगम है, सो आत्मसत्ता है, जिसते यह सर्व है, अरु जिसविषे सर्व है, ऐसी जो परमात्मसत्ता है, सो परमसत्ता है, तिसविषे सब कछु बनता है ॥ हे रामजी ! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्य है, छाया अरु धूप एक नहीं होती, सत् अरु झूठ भी इकट्ठा नहीं होता, ज्ञान अज्ञान इकट्ठा नहीं होता, परंतु आत्माविषे इकट्ठे होते देखते हैं ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष शयन करै है, तब अनुभवरूप होता है, बहुरि स्वप्नविषे स्वप्ननगर भासि आताहै अरु छाया धूप भी भासि आता है, ज्ञान अज्ञान सत् झूठ भासि आते हैं, जैसे विरुद्ध पदार्थ आकाशविषे यह भास आते हैं, तैसे संकल्पसों संकल्प मिलि जाता है, इसविषे क्या आश्चर्य है, अरु सब जगत् आकाशवत् शून्य है, निराकार निर्विकार है, निराकारविषे आकार निर्विकारविषे विकार भासते हैं; यही आश्चर्य है, अरु जेते कछु आकार दृष्ट आते हैं, सो वही निराकाररूप हैं, ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार होकारि भासती है, जगत्को असत् कहना भी नहीं बनता, जो असत् होता तौ प्रलय होकारि पृथ्वी आप तेज वायुकारि आकाश बहुरि प्रगट न होता, प्रलय होकारि जो बहुरि उत्पन्न होते हैं, ताते असत् नहीं, चेतनरूप आत्माहीका स्वभाव है, आत्मसत्ताही इसप्रकार होकारि भासती है ॥ हे रामजी ! जब प्रलय होती है, तब सब भूत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, नष्ट होकारि जो बहुरि उत्पत्ति होती है, इसीते कहा है, कि यह सृष्टि आत्माका आभासमात्र है, अरु ब्रह्मसत्ताविषे अनंत जगत् फुरते हैं, अरु अपनी सृष्टिहीको जीव जानते हैं, यह जीव सब ब्रह्मरूपी समुद्रके कणके हैं, सो अपरकी सृष्टिको अपर नहीं जानता, जैसे सिद्धकी सृष्टि अपने अपने अनुभवविषे फुरती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, तैसे यह अपनी अपनी सृष्टि है, अरु मिल भी जाती है, आत्माविषे सब कछु बनता है, जो अनादि अरु आदि इकट्ठी नहीं होती, विधि अरु निषेध इकट्ठी नहीं होता, विकार अरु निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाशविषे अरु आत्मसत्ता स्वप्नविषे इकट्ठे दृष्ट आते हैं, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है ॥ हे रामजी !

चार सत्ता इस जगत्विषे फुरी हैं, सारथी, गोपती, समान-ब्रह्मसत्ता अरु अविद्या, तिनविषे सारथी अरु गोपतीसत्ता जिज्ञासीकी भावनाविषे भासती हैं, अरु समानसत्ता ज्ञानीको भासती है, अरु अविद्या अज्ञानीको भासती है, सो चारों भी ब्रह्मते भिन्न नहीं, ब्रह्महीके नाम हैं, ब्रह्मसत्ता स्वभाव चेतनताकरिकै ऐसेही भासती है, जैसे वायु फुरणेकरिकै चलती भासती है, अरु ठहरनेकरिकै अचल भासती है, तैसे चेतनता फुरणेकरिकै नानाप्रकारके कौतुक उठते हैं, फुरणेते रहित निर्विकल्प हो जाता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो तिसविषे सत् नहीं अरु ऐसा भी पदार्थ कोऊ नहीं, जो असत् नहीं, सब समान हैं, जैसे आकाशके फूल हैं, तैसे घटपटादिक हैं, अरु जैसे इनके उत्थानका अनुभव होता है, तैसे उनका अनुभव होता है; सब पदार्थसत्ताहीकारि सत् भासते हैं, अरु जेते कछु शब्द अर्थ फुरे हैं, सो सब मिटि जातेहैं, ताते असत् हैं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो मरिकै जन्मा नहीं तौ आनंद है, मुक्त भया, अरु जो मरिकै जन्म लेता है, तौ भी अविनाशी भया, ताते शोककरना व्यर्थ है ॥ हे रामजी ! जगत्के आदिविषे भी ब्रह्मसत्ता थी, अरु अंतविषे भी वही होवैगी, जो आदि अरु अंतविषे वही है, मध्यविषे भी वही जानिये ताते सब जगत् आत्मरूप है, जेते कछु शब्द हैं, सब अर्थसंयुक्त हैं, सो सर्व शब्द अरु अर्थाकार अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, ताते सब जगत् ब्रह्मरूप है जिसको यथार्थ अनुभव होता है, तिसको ऐसे भासता है, अरु जिसको यथार्थका अनुभव नहीं भया, तिसको नानाप्रकारका जगत् भासताहै, अरु आत्माविषे जगत् कछु बना नहीं, सब आकाशरूप है; ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अरु ब्रह्मते इतर जो कछु भासता है, सो ब्रह्ममात्र नाशरूप है, जो दृश्य पदार्थ सब नाशरूप हैं, जिसने सत् जाने हैं तिसके साथ कछु प्रयोजन नहीं, जो दूसरा कछु बना नहीं तौ मैं क्या कहौं, जिसविषे यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं, तिस अधिष्ठानको देखैं तौ सब वहीरूप भासैंगे, अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित है, तिसको यह वचन शोभावान् होते हैं, मैं अनंत सृष्टि देखी हैं, अरु भिन्न भिन्न

उनके आचार देखे हैं, दशो दिशाको मैं फिरा हौं, अरु भोग बहुत भोगे हैं, बड़ी बड़ी विभूति पाई हैं अरु देखी हैं, अनेक प्रकारकी चेष्टा करी हैं, परंतु मुझको स्वप्न प्राप्त भया, काहेते जो सब भोग पदार्थ अरु कर्म अविद्याकरिकै रचे हुये हैं, तिस अविद्याके अंत लेनेको बहुत काल फिरता रहा हौं, अनेक युगपर्यंत फिरा हौं, अंत कहूँ नहीं आया, अरु वसिष्ठजीकी कृपाकरि अब मुझको स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, अविद्या नष्ट भई है, परमानंदको प्राप्त हुआ हौं ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिद्देशांतरभ्रमवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४३ ॥

द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः २४४.

स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! जब इसप्रकार विपश्चितने कहा, तब सायंकाल हुआ सूर्य अंतर्धान हो गया, मानौ विपश्चित्के वृत्तांत देखनेको अन्य सृष्टिविषे गया है, अरु नोबत नगारे बजने लगे, मानौ राजादशरथकी जयजय करते हैं, तिस समय राजा दशरथने धनकरि अरु जवाहिरकरि भूषण वस्त्रकरि यथायोग्य राजाविपश्चित्का पूजन किया, अरु दशरथते आदि लेकरि सब राजा वसिष्ठजीको प्रणाम करत भये, अरु परस्पर प्रणाम करिकै सर्वसभासद अपनेस्थानोंको गये, स्नान किया, यथाक्रमकरिकै भोजन किया, नियम करिकै विचारसहित रात्रिको व्यतीत किया, जब सूर्यकी किरणैं उदय भईं, तब अपने अपने स्थानपर परस्पर नमस्कार करिकै आयबैठे, तब वसिष्ठजी पूर्वके प्रसंगको लेकरि बोले॥ हे रामजी! यह अविद्या अविद्यमान है अरु भासती है, यहआश्चर्यहै जो वस्तु सदा विद्यमान है सो नहीं भासती, अरु जो अविद्याहैही नहीं सो सदा भासतीहै, इसीका नाम अविद्या है ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसका अनुभव होना निश्चय हो रहा है, अरु अविद्यक जगत् जो कभी कछु हुआ नहीं सो स्पष्ट होकरि भासता है, यह अविद्या है ॥ हे रामजी ! सिद्ध

राजाके मंत्रीका उपदेश भी तुझने श्रवण किया, अरु विपश्चित्का वृत्तांत भी श्रवण किया, विपश्चित्के मुखते भी श्रवण किया, अब इस विपश्चित्की अविद्या नष्ट होती है, हमारे आशीर्वादते अरु यथार्थ वचनकरिकै अब यह जीवन्मुक्त होकारि विचरैगा, इसकी अविद्या अब नष्ट होती है, मेरे उपदेशकारि जीवन्मुक्त होकारि जहां इसकी इच्छा होवै तहां विचरै, परंतु जब आत्माकी ओर आया तब अविद्या नष्ट भई, आत्मतत्त्वको यथार्थ न जानना इसीका नाम अविद्या है, सो आत्मज्ञानकरिकै नष्ट हो जाती है, जैसे अंधकार तबलग रहता है, जबलग सूर्य उदय नहीं भया, जब सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट होता है, तैसे अविद्या तबलग अनंत है, जबलग आत्माकी ओर नहीं आया, जब आत्माका साक्षात्कार उदय हुआ, तब अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, अविद्या अविद्यमान है, असम्यक्दर्शीको सत् भासती है, जैसे मृगतृष्णाका जल अविद्यमान है, विचार कियेते अभाव हो जाता है, तैसे अविद्याका भली प्रकार विचार कियेते अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी विषकी वल्ली है, सो देखनेमात्र फूलसहित सुंदर भासती है, परंतु स्पर्श कियेते काँटे चुभते हैं, अरु फल भक्षण कियेते कष्टको प्राप्त करती है, सो फूल फल क्या हैं, जेते कछु शब्द स्पर्श रूप रस गंध इंद्रियके विषय हैं, जो देखने मात्र सुंदर भासते हैं, सो यही फूल फल हैं, जब इनको स्पर्श करता है, तब तृष्णारूपी कंटक चुभते हैं, अरु इंद्रियोंके भोगनेसों राग द्वेष कष्ट प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! आकाशविषे इंद्रधनुष नानाप्रकारके रंग धारे दृष्ट आता है, परंतु अंतरते शून्य है, अणहोता भासता है, तैसे अविद्या अणहोती भासती है, जैसे वह धनुष जलरूप मेघके आश्रय रहता है, तैसे यह अविद्या जड मूर्खके आश्रय रहती है, अरु अविद्यारूप धूड है, सो जिसको स्पर्श करती है, तिसको आवरण कारि लेती है, जबलग अर्थ नहीं जाना, तबलग भासती है, विचार कियेते कछु नहीं निकसता, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, विचार कियेते अभाव होता है, तैसे विचार कियेते अविद्या नष्ट हो जाती है, अरु

चंचल है, अरु भासती है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी नदी है, अरु तृष्णारूपी तिसविषे जल है, इंद्रियोंके अर्थरूपी घुमरघेर हैं, रागरूपी तिस विषे तँदुये हैं, जो पुरुष इस नदीके प्रवाहविषे पडा है, तिसको बडे कष्ट प्राप्त होते हैं, तृष्णारूपी प्रवाहविषे बहते जाते हैं, तिनकी अविद्यारूपी नदीका अंत नहीं आता, अरु जो किनारेके सन्मुख होकरि पारको प्राप्त हुये हैं, तिनको कोऊ कष्ट नहीं होता, वैराग्य अरु अभ्यासरूपी बेड़ीपर चढे हैं, जो अविद्यारूप हैं, तिनविषे जो भावना करते हैं सो मूर्ख हैं, यह अविद्याका विलास है, एक ऐसी सृष्टि है, जिसविषे सैकडों चंद्रमा उदय होते हैं, अरु सहस्र सूर्य उदय होते हैं, अरु कई ऐसी सृष्टि हैं, तिनविषे जीव सदा समताभावको लिये विचरते हैं, अरु सदा आनंदी रहते हैं, अरु कई ऐसी सृष्टि हैं, जो अंधकार कबहूँ नहीं होता, अरु कई ऐसी सृष्टि हैं, जहां प्रकाश अरु तप जीवके आधीन हैं; जेता कछु प्रकाश चाहै तेताही करै; कई ऐसी सृष्टि हैं, जहां जीव न मरते हैं, न बुढ्ढे होते हैं, सदा एकरस रहते हैं, प्रलयकालविषे सब इकट्ठेही मरते हैं, कहूँ ऐसी सृष्टि हैं, जहां स्त्री कोऊ नहीं, कहूँ पहाडकी नांई जीवके शरीर हैं ॥ हे रामजी ! इनते लेकरि जो अनंत ब्रह्मांड हैं, सो फुरते हैं, सो अविद्याका विलास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वायुकरि फुरते हैं, वायुविना नहीं फुरते तैसे अविद्यारूपी वायुके संयोगते परमात्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग उठते हैं, अरु मिटि भी जाते हैं ॥ हे रामजी ! बड़े बडे मणिमय अरु मोतीमय स्वर्णमय धातुमय ऐसे जो स्थान हैं, अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके तृप्तिकर्ता पदार्थ हैं, घृतरूप स्थान पदार्थ हैं, अरु गन्नेके रसके समुद्र हैं, माखन दही दूधके समुद्र हैं, अमृतके तलाव हैं, अरु बड़े बड़े कल्पवृक्ष तमालवृक्षते आदि लेकरि जो सुंदर स्थान हैं, अरु सुंदर अप्सरा हैं, अरु बडे दिव्य वस्त्र हैं, इनते आदि लेकरि जो पदार्थ हैं सो सब संकल्परूप हैं, अविद्याके रचे हुये हैं, इनकी जो तृष्णा करते हैं सो मूर्ख हैं, तिनके जीवनेको धिक्कार है ॥ हे रामजी ! यह अविद्याका विलास है, विचार कियेते कछु नहीं निकसता, जैसे मरुस्थलविषे अणहोती नदी भासती है, विचार कियेते अभाव हो जाती है, तैसे

आत्मविचार कियेते अविद्याका विलास जगत् अभाव हो जाता है, जिसको आत्माका प्रमाद है, तिसको देवता मनुष्य पशु पक्षी आदिक इष्ट अनिष्ट अनेक प्रकारके पदार्थ भासते हैं, कारणकार्यभाव करिकै जगत् स्पष्ट भासता है, अरु जिसको आत्माका अनुभव भया है, तिसको सर्व आत्मा भासता है ॥ हे रामजी ! एक सदृष्ट सृष्टि है, अरु एक अदृष्ट सृष्टि है, यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सदृष्ट सृष्टि है, अरु दृष्ट नहीं आती सो अदृष्ट सृष्टि है, सो दोनों तुल्य हैं, अरु आकाशविषे जो सृष्टिको सिद्ध रचि लेते हैं सो क्या है, संकल्पमात्र है क्योंकि उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है, अरु अनेक प्रकारकी रचना है, उनकी स्वर्णकी पृथ्वी है, रत्न अरु मणिसाथ जडी हुई है अरु इंद्रियोंके अनेक प्रकारके विषय हैं, अरु अमृतकुंड भरे हुये अरु अपने आधीन तम प्रकाश हैं, अरु अनेक प्रकारकी रचना बनी हुई है, तौ क्या है, संकल्पमात्र है, क्योंकि तिसी प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा संकल्प होता है, तैसी तैसी सृष्टि आत्माविषे हो भासती है ॥ हे रामजी ! सृष्टिरूपी अनेक रत्न आत्मरूपी डब्बेविषे हैं, जिस पुरुषको आत्मदृष्टि प्राप्त भई है, तिसको सर्व सृष्टि आत्मरूप है, अरु जिसको आत्मदृष्टि नहीं, तिसको सर्व सृष्टि जगत् भिन्न भिन्न भासता है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा पदार्थ हो भासता है, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जो तुझको ऐसा तीव्र संवेग होवै, जो आकाशविषे नगर स्थित होवै, तब वही भासने लग जावै ॥ हे रामजी ! जिस ओर यह पुरुष दृढ़ निश्चय करता है, सोई सिद्ध होता है, जो आत्माकी ओर एकत्र होता है, तब वही सिद्ध होता है, जो दोनों ओर होता तब भटकना होता है, जो जगतकी सत्यताको छांडिकरि आत्मपरायण हो रहे, तो तीव्र भावना करिकै मोक्ष प्राप्त होता है, जो संसारकी ओर भावना होती है, तो संसारकी प्राप्ति होती है, जैसे अभ्यास करता है, सोई सिद्ध होता है, अरु आदि जो सृष्टि हुई है, सो अकारण है, तिसविषे दूसरी वस्तु तौ कछु नहीं, वहीरूप हैं, बहुरि जैसी जैसी भावना होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, जिसकी भावना धर्मकी ओर होती है, अरु सकाम होता है, तिसको स्वर्गादिक सुख

भासते हैं, अरु जिसकी भावना अधर्मविषे होती है, तिसको नरकादिक दुःख पदार्थ भासते हैं, शुभ कर्मकारि शांतिकी इच्छा नहीं भासती, सो शुभ भी दो प्रकारके हैं, एकको स्वर्गसुख भासते हैं, एकको सिद्धिकी भावना करिकै सिद्धलोक भासते हैं, अरु जिसको अशुभ भावना होती है तिसको नानाप्रकारके नरक भासते हैं ॥ हे रामजी ! जब यह संवित् अनात्माविषे आत्मअभिमान करती है, तिनके कर्मविषे आपको कर्त्ता जानती है, सो पाप करिकै अनेक दुःखको प्राप्त होती है, सो दुःख कहनेविषे नहीं आते, जैसे पहाडोंविषे भी पीसनेते बड़ा कष्ट होता है, अंगारकी वर्षाकारि जैसे कष्ट होवै, अंधे कूपविषे गिरणेकारि कष्ट होता है, परंतु स्त्रीके भोगनेकारि अंगारसाथ स्पर्श करता है, अग्निसाथ तप्त लोहेसों कंठसाथ लगता है, अरु जिस स्त्रीने परपुरुषको भोगा है, सो अंधे कूपरूप उखलीविषे खड्गरूपी मूशल करिकै कटती है, अरु जो देहअभिमानी देवता पितर अतिथिके दियेविना भोजन करता है, तिसको भी यमदूत बडा कष्ट देता है, खड्ग अरु बरछीकारि मांसको काटता है, अरु प्रहार करता है; परलोकविषे क्षुधा अरु तृष्णा करिकै कष्टवान् होता है, अरु जिन नेत्रोंकारि परस्त्री देखी है, तिन नेत्रोंको छुरोंका प्रहार होता है, एक वृक्ष है तिसके पत्र लगते हैं; सो खड्गके प्रहारकी नांई लगते हैं, शूलऊपर चढावते हैं, इनते आदि लेकारि तिनको कष्ट होता है, अरु जो शुभ कर्म करते हैं, सो स्वर्गको भोगते हैं, ताते जैसा जैसा कर्म करते हैं, तिनके अनुसार जगत्को देखते हैं, जिस जिस भावको चिंतत्यागते हैं, सो तिसको प्राप्त होते हैं, केवल वासनामात्र संसार है, जैसा निश्चय होता है, तैसाही भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४४

द्विशताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः २४५.

निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो तुमने मुनीश्वर अरु वधिकका वृत्तांत कहा है, सो बड़ा आश्चर्यरूप है, यह वृत्तांत स्वाभाविक हुआ है,

अथवा किसी कारण कार्यकारि हुआ है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! समुद्रते तरंग उठते हैं, तैसे ब्रह्मविषे यह प्रतिभा स्वाभाविक उठती है, जैसे पवनविषे फुरणा स्वाभाविक होता है, सो आत्माका चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होती है, सो वहीरूप है, तिसते इतर कछु नहीं, चिन्मात्रविषे जो चेतना फुरी है सो जैसी फुरी है तैसे स्थित है, जबलग इसते इतर अपर फुरना नहीं होता, तबलग वही रहता है, जिस प्रतिभाकरिकै कार्यकारण भासता है, जैसे शुद्ध चिदाकाशविषे स्वप्नकी सृष्टिभासती है, तिसविषे साररूप वही है, वही चित्त चमत्कार करिकै फुरता है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो समुद्ररूप हैं, तिसते इतर कछु वस्तु नहीं तैसे जेता कछु शब्द अर्थ जगत् भासता है, सो वही चिन्मात्र है, इतर कछु वस्तु नहीं, जिनको ऐसे यथार्थ अनुभव हुआ है, जिनको जगत् स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरवत् भासता है, पृथ्वी आदिक पदार्थ पिंडाकार नहीं भासते, उनको सब ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! जो वस्तु व्यभिचारी नाशवंत है सो अविद्यारूप है, अरु जो अव्यभिचारी अविनाशी वस्तु है, सो ब्रह्मसत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवित्‌रूप है, अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती, अनुभवकरिकै सर्वदा काल प्रकाशती है, तिसविषे अविद्या कैसे होवै, जैसे समुद्रविषे धूडका अभाव है, तैसे आत्माविषे अविद्याका अभाव है, जेते कछु आकार दृष्ट आते हैं, सो सब चिदाकाशरूप हैं, जैसे तू मनविषे संकल्प धारिकारि इंद्र हो बैठे, अरु चेष्टा भी इंद्र जैसी करने लगे, अथवा ध्यानकारि इंद्र रचै, जैसे वह ध्यानकारि प्रतिभा सिद्ध हो आवै, तो जबलग संकल्प रहै, तबलग वही भासै, जब इंद्रका संकल्प क्षीण हो जावै, तब इंद्रभावकी चेष्टा भी निवृत्त हो जाती है सो संकल्पकारि वही चिन्मात्र इंद्ररूप हो भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिन्मात्ररूप है, संवेदनकरिकै पिंडाकार हो भासता है, जब संवेदन फुरणा निवृत्त होता है, तब सब जगत् आत्मरूप भासता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, सब जगत् तिसका चमत्कार है, अरु निराकार है, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप होते हैं, तैसे

निराकार परमात्माविषे जगत् भी आकाशरूप है, इतर कछु नहीं, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, इसका नाम परमबोध है, जब इस बोधकी दृढता होती है तब मोक्ष होता है, जिसको सम्यक् बोध होता है, तिसको जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु अपना आप भासता है, अरु जिसको सम्यक् बोध नहीं भया, तिसको नानाप्रकारका द्वैतरूप जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जिसकी बुद्धि शास्त्रकरि तीक्ष्ण भई है, अरु वैराग्य अभ्यासकरि संपन्न निर्मल भई है, तिसको आत्मपद प्राप्त होता है, अरु जिसकी बुद्धि शास्त्रके अर्थकरि निर्मल नहीं भई तिसको अज्ञानसहितजगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको आकाशविषे ही चंद्रमा भासते हैं, अरु तरुवरे भ्रमकरिकै भासते हैं, तैसे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, जेता कछु जाग्रत् जगत् है, सो स्वप्नमात्र है, जब स्वप्नविषे होता है, तब स्वप्न भी जाग्रत् भासती है, अरु जाग्रत् स्वप्नवत् हो जाती है, अरु जाग्रत्विषे स्वप्न स्वप्न हो जाता है, जाग्रत् सत् भासती है, सो अल्पकालका नाम स्वप्न है, दीर्घकालका नाम जाग्रत् है, आत्माविषे दोनोंका तुल्य भाव होता है, जैसे क्षणविषे दो भाई जोडे जन्मते हैं, सो नाममात्र दो हैं, वस्तुते एकरूप हैं, तैसे जाग्रत् स्वप्न तुल्यही है, अरु जब यह पुरुष शरीरको त्यागता है, तब परलोक इसको जाग्रत् हो जाता है, अरु यह जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे स्वप्नते जाग उठा तब स्वप्नके पदार्थोंको भ्रममात्र जानता है, अरु जागृत्को सत् जानता है, तैसे जब परलोक जाता है, तब इस जगत्को स्वप्नवत् भ्रममात्र जानता है, अरु कहता है, स्वप्न जैसा मैं देखा था, वह परलोक सत् हो भासता है, बहुरि वहांते गिरता है, इसलोकविषे आय पडता है, तब इसलोकको सत् जानता है, अरु जाग्रत् मानता है ॥ अरु वह परलोकको स्वप्नभ्रम मानता है ॥ हे रामजी ! जबलग इसको शरीरसाथ संबंध है, तबलग अनेकवार जाग्रत् देखता है, अरु अनंतही स्वप्न देखता है ॥ हे रामजी ! जैसे मृत्युपर्यंत इसको अनेक स्वप्न आते हैं, तैसे मोक्षपर्यंत इसको अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं, भ्रमांतरविषे इनकी सत्यता अरु जाग्रत्विषे स्वप्नके पदार्थ कोऊ स्मरण करता है, जैसे सिद्ध प्रबुद्ध

होकरि अपने जन्मको स्मरण करता है, अरु कहता है सब भ्रममात्र थे, तैसे यह सब जागैगा तब कहैगा, सब भ्रममात्र प्रतिभा मुझको भासी थी, न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, काहेते जो दृश्य अविद्यक बंध मोक्ष कैसा है, जब चित्तकी वृत्ति निर्विकल्प होती है, तब मोक्ष भासता है, अरु जबलग वासना विकल्प सत् है, तबलग बंध भासता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे बंध मोक्ष दोनो नहीं, बंध होवै तब मोक्ष भी होवै, बंध नहीं तौ मोक्ष कैसे होवै, बंध अरु मोक्ष दोनो चित्तसंवेदनविषे भासता है, ताते चित्तको निर्वाण करु, तब सब कल्पना मिटि जावैगी, जेते कछु पदार्थके प्रतिपादन करनेहारे शब्द हैं, तिनको त्यागिकरि निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, जो कछु खान पान बोलना चालना सब क्रियाको करु, परंतु अंतरते परम पद पानेका यत्न करु ॥ हे रामजी ! नेतिनेतिकरि सर्व शब्दका अभाव करु, बहुरि अभावका भी अभाव करु, तिसके पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मसत्ता परम निर्वाणरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जो कछु अपना आचार कर्म है, सो यथाशास्त्र करु, अरु हृदयते सर्व कल्पनाका त्याग करु, इसप्रकार आत्मसत्ताविषे स्थित होहु ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणोपदेशो नाम द्विशताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४५ ॥

द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः २४६.

अविद्यनाशोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब चिदाकाश आत्मरूप हैं, ज्ञानवान्को सदा वही भासते हैं, आत्माते इतर कछु नहीं भासता, रूप दृश्य अवलोक इंद्रियां मनस्कार फुरणा इसीका नाम संसार है, सो यहभी आत्मरूप है, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, जैसे अपनी संवित् स्वप्नविषे रूप अवलोकन मन-

स्कार हो भासती है, आत्माते इतर कछु नहीं, परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासती है, अरु जो जागा है, तिसको अपना आप भासता है, जैसे अपनी चेतनताही स्वप्नपुर होकरि भासती है, तैसे जगत्के पूर्व जो चेतनसत्ता थी, वही जगत्‌रूप होकरि भासती है, अरु जगत् आत्माते कछु भिन्न वस्तु नहीं, वही स्वरूप है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तिसकरिकै तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्माका स्वभाव चेतन है, सोई आत्मसत्ता चेतनताकरिकै जगत् आकार हो भासती है, इसप्रकार जानिकरि जो परमशांति निर्वाणपद है, तिस-विषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जगत् कछु है, अरु प्रत्यक्ष भासता है, असत्‌ही सत् होकरि भासता है, यही आश्चर्य है, जो निष्किंचन है, अरु किंचनकी नांई होकरि भासता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत अरु निर्विकार है, परंतु अज्ञानदृष्टिकरिकै नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब सर्व विकारको निषेध करि असत्‌रूप जानिये तब सर्वके अभाव हुये आत्मसत्ता शेष रहती है, जैसे शून्य स्थानविषे अनहोता वैताल भास आता है, तैसे अज्ञानीको अनहोना जगत् आत्माविषे भास आता है, अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित हुये हैं, तिनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है, जब सच्छास्त्र अरु संतकी संगति होती है, तिनके तात्पर्य अर्थविषे जब दृढ अभ्यास होता है, तब स्वभाव-सत्ताविषे स्थित होती है, अरु जिन पदार्थके पानेनिमित्त यह यत्न करता है, सो मायिक पदार्थ बिजुलीके चमत्कारवत् उदय भी होतेहैं, अरु नष्ट भी होते हैं, यह पदार्थ विचारविना सुन्दर भासते हैं, इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं, काहेते कि उनको जगत् सत् भासताहै, अरु ज्ञानवान्‌को जगत्पदार्थकी तृष्णा नहीं होती, काहेते कि वह जगत्‌को मृगतृष्णाकी नांई असत् जानता है, अरु ब्रह्मभावनाविषे दृढ है, अरु अज्ञानीको जगत्‌की भावना है, ताते ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, ज्ञानीके निश्चयको ज्ञानीही जानता है, जैसे सोयेहुये पुरुषको निद्रादोषकरिकै स्वप्न आता है, तिसविषे जगत् भासता है, अरु जागृत् पुरुष जो तिसके निकट बैठा है, उसको वह स्वप्नजगत्

नहीं भासता है, वह असत् है, तौ तिसके निश्चयको स्वप्नवाला नहीं जानता, अरु स्वप्नवालेके निश्चयको वह जागृत्वाला नहीं जानता, तैसे ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मृत्तिकाकी सेनाको बालक सेनाकरि मानता है, जो जाननेवाले बडे पुरुष हैं, तिनको सब मृत्तिकारूप भासता है, जब वह बालक भली प्रकार जानता है, तब उसको भी सेना अरु वैतालका अभाव हो जाता है, मृत्तिकारूप भासतीहै, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् ब्रह्मरूपही भासता है ॥ हे रामजी ! जब इस पुरुषको आत्माका अनुभव होता है, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं रहती, जैसे स्वप्नविषे किसीको मणि प्राप्त होती है, तब प्रीति करिके तिसको रखता है, जब जागता है तब उसको भ्रम जानिकरि तिसकी इच्छा नहीं करता, तैसे जब आमत्पदविषे जागैगा, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा न करैगा, जैसे मरुस्थलकी नदीको असत् जानता है तब उसविषे जलपानके निमित्त यत्न नहीं करता, तैसे सब जगत्को असत् जानता है, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जिस शरीरके निमित्त यत्न करता है, सो शरीर भी क्षणभंगुर है, जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूँद आनि स्थित होती हे, सो क्षणभंगुर असार है, पवन लगते क्षणविषे गिर जाती हैं, तैसे यह शरीर नाशवंत है, जैसे मृग धूपकरि तपा हुआ मरुस्थलकी नदीको सत् जानिकरि जलपान करनेनिमित्त दौडता है, सो मूर्खताकरिकै कष्ट पाता है, परंतु तृप्त नहीं, होता, तैसे मूर्ख मनुष्य विषयपदार्थको सत् जानिकरि तिनके निमित्त यत्न करते हैं, अरु कष्ट पातेहैं अरु तृप्त कदाचित् नहीं होते ॥ हे रामजी ! यह पुरुष अपना आपही मित्र है, अरु अपना आपही शत्रु है, जब सत् मार्गविषे विचरता है, अरु, अपना उद्धार करता है, तब पुरुषप्रयत्न करिकै अपना आपही मित्र होता है, अरु जो सत् मार्गविषे नहीं विचरता अरु पुरुषप्रयत्न करिकै अपना उद्धार नहीं करता, जन्म मरण संसारविषे आपको डारता है, सो अपना आपही शत्रु है, अरु जो अपने आपको यत्न करिकै उद्धार करता है, सो अपने ऊपर दया करता है ॥ हे रामजी ! इंद्रियका विषयरूपी चीकड है, जो इसविषे गिरा हुआ है, अरु अपने

ऊपर निकासनेकी दया नहीं करता, सो महा अज्ञान तमको प्राप्त होता है, जो पुरुष इंद्रियोंको जीतिकै आत्मपदविषे स्थित नहीं होता तिसको शांति नहीं प्राप्त होती, जब बालक अवस्था होती है, तब शून्यबुद्धि होती है, अरु वृद्ध अवस्थाविषे अंग क्षीण हो जाते हैं, अरु यौवन अवस्थाविषे इंद्रियोंके जीतनेको समर्थ नहीं होता, तौ कब होना है, अपर जो तिर्यक् आदिक योनि हैं, सो मृतकवत् हैं, यत्नका समय यौवन अवस्था है, काहेते कि, बालक अवस्था तौ जडगुङ्गरूप है, वृद्ध अवस्था भी महानिर्बल जैसी है, तिसविषे अपने अंगही उठावने कठिन हो जाते हैं, तौ विचारिकै क्या समर्थ होवैगा, वह तौ बालकवत् है, ताते कछु यत्न यौवन अवस्थाविषे होता है, जो इस अवस्थाविषे भी लंपट रहा, सो महा अनिष्ट नरकको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! विषयविषे प्रसन्न नहीं होना, यह शरीर नाशरूप है, तौ विषय किसको भोगने हैं, श्रुतिकारिकै भी जानाजाता है,अरु अनुभव कारिकै भी जानाजाता है कि,यह शरीर नाशरूप है,क्योंकि इस शरीरविषे सत्भावना कारिकै जो विषयके सेवनको यत्न करता है, तिसते परे मूर्ख कहूँ नहीं वही मूर्ख है, ताते जब इंद्रियोंको जीतैगा, तब जन्मजन्मांतरको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! तुम जागहु आपको अविनाशीरूप जानहु, अच्युत परमानंद जानहु, यह जगत् मिथ्यारूप भ्रम उदय हुआ है, इसको त्याग देहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशोपदेशो नाम द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४६ ॥

द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः २४७.

इंद्रियजयवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम सत् कहते हौ कि,इंद्रियके जीतेविना शांति नहीं प्राप्त होती, ताते इंद्रियोंके जीतनेका उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको बडे भोग आनि प्राप्त हुये हैं,अरु इन इंद्रियोंको जीता नहीं, तब वह शोभा नहीं पाता,जो त्रिलोकीका राज्य आनि प्राप्त होवै, अरु इंद्रियोंको जीता नहीं तिसकी उपमा भी कछु

नहीं, जो बड़ा शूरवीर है, अरु इंद्रियोंको जीता नहीं तो उसकी भी शोभा कछु नहीं, अरु बड़ी आयुर्बल है जिसकी, चिरपर्यंत जीता है, अरु इंद्रियां नहीं जीती तौ उसका जीना भी व्यर्थ है, जिस प्रकार इंद्रियां जीती जाती हैं, अरु आत्मपद प्राप्त होता है, सो प्रकार सुन ॥ हे रामजी ! इस पुरुषका स्वरूप अचिंत्य चिन्मात्र है, तिसविषे जो संवित् फुरी है तिस ज्ञान संवित्को अंतःकरण दृश्य जगत्साथ संबंध हुआ है, तिसका नाम जीव है, जहांते चित्त फुरता है, तहांही चित्तको स्थित करु, तब इंद्रिय अभाव हो जावैगा, इंद्रियोंका नायक मन है, जब मनरूपी मतवारे हस्तीको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी कुंटेसाथ वश करै, तब तेरी जय होवैगी, सब इंद्रियां रोकी जावैंगी, जैसे राजाके वश कियेते सब सेना भी उसके वश हो जाती है, तैसे मनको स्थित कियेते सब इंद्रियां वश हो जावैंगी ॥ हे रामजी ! जब इंद्रियोंको वश करैगा, तब शुद्धआत्मसत्ता तुझको भासि आवैगी, जैसे वर्षाकालके अभावते शरत्कालविषे शुद्ध निर्मल आकाश भासता हैं, कुहिड अरु बादलका अभाव हो जाता है, तैसे जब मनरूपी वर्षाकालका अभाव हो जावैगा, अरु वासनारूपी कुहिडका अभाव होजावैगा, तब पाछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता भासैगी ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ जगत्विषे दृष्ट भासते हैं, सो सब असत्रूप हैं, जैसे मरुस्थलकी नदी असत्रूप होती है, तैसे जगत्के पदार्थ असत्रूप हैं, इनविषे तृष्णा करना अज्ञान है, जो पदार्थ प्रत्यक्ष आनि प्राप्त होवैं, तिनको त्यागिकारि वृत्ति आत्माकी ओर आवै, तब जानिये कि, मुझको इंद्रका पद प्राप्त हुआ है, अरु विषयविषे आसक्त होनाही बडी कृपणता है, अरु इनते उपरत होना यही बड़ी उदारता है, ताते मनको वश कर; तब तेरी जय होवै, जैसे तप्त पृथ्वी ज्येष्ठ आषाढविषे होती है, अरु चरणविषे चरणदासी चढाई, तब इसको तप्त नहीं होती, अरु सब पृथ्वी शीतल हो जाती है, तैसे अपने मन वश कियेते जगत् आत्मरूप हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार जनैंद्रने मनको वश किया है, तैसे तू भी मनको वश करु, जिस जिस ओर मन जावै, तिस तिस ओरते रोकहु जब दृश्य जगत्की ओरते मनको रोकैगा

तब वृत्ति संवित् ज्ञानकी ओर आवैगी, जब संवित् ज्ञानकी ओर आई, तब तुझको परम उदारता प्राप्त होवैगी, अरु शुद्ध आत्मसत्ता अनुभव होवैगा, तप करिकै संवित्का अनुभव होना कठिन है, अरु तीर्थ दान करिकै भी कठिन है, परंतु मनके स्थिर करनेकरि अनुभवकी प्राप्ति सुगम होती है, सो मन स्थिर करनेका उपाय यहीहै कि, संतकी संगतीकरनी, अरु रात्रि दिन सच्छास्त्रको विचारना, सर्वदा काल इस उपायकरि मन शीघ्रही स्थिर होता है, जब मन स्थिर हुआ तब आत्मपदका अनुभव होता है, जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे डूबता नहीं, अरु चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे तृष्णारूपी जल हैं, अरु कामनारूपी लहरी हैं, जिस पुरुषने सम संतोषकरि इंद्रियां जीती हैं, सो चित्तरूप समुद्रविषे गोते न खावैगा, इंद्रियोंको जीतिकरि जिसने आत्मपद पाया है, तिसको नानात्व जगत् बहुरि नहीं भासता, जैसे मरुस्थलकी निराकार नदीविषे लहरी भासती हैं, जब भली प्रकार निकट जायकरि विचार करि देखिये, तब लहरिसंयुक्त बहती दृष्ट नहीं आती, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, जब भली प्रकार विचारि देखिये, तब नानात्व दृष्ट नहीं आता, आत्मसत्ताही किंचन करिकै जगत्रूप हो भासती है ॥ जैसे जल अपने द्रवता स्वभावकरिकै तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता चेतनताकरिकै जगत्रूप हो भासती है ॥ हे रामजी ! जब आत्मबोध होता है, तब बहुरि दृश्यभ्रम नहीं भासता, जैसे साकाररूप नदीका भाव निवृत्त हुये बहुरि बहती है, अरु जब निराकार नदीका सवद्भाव निवृत्त होता है, तब फेरि नदीका सद्भाव क्यों होता है, निराकार मृगतृष्णाकी नदी जब ज्योंकी त्यों जानी, तब फेरि सत्य नहीं होती है ॥ हे रामजी ! वास्तवते न कर्म है, न इंद्रिय है, न कर्ता है, कछु उपजा नहीं, नानाप्रकार दृष्ट आते हैं, परंतु कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी क्रिया कर्म दृष्टआते हैं, परंतु आकाशरूप हैं, कछु हुआ नहीं, तैसे यह भी जान, आकाशरूप आत्माविषे आकाशरूप जगत् स्थित है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद

नहीं, जैसे अवयव अवयवीका रूप है, तैसे जगत् आत्माका रूप है, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब अहं त्वं आदिक शब्दका अभाव हो जावैगा, अरु द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहैगा, द्वैत अद्वैत शब्द भी बालक अज्ञानीके समुझावनेनिमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं, इन शब्दनपर हाँसी करते हैं, जो अद्वैतमात्रविषे इन शब्दोंका प्रवेश कहा है, जिनको यह दशा प्राप्त भई है, तिनको न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी ! सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे कछु थोड़ा भेद है,जो सुषुप्तिविषे अज्ञान जड़ता रहती है, अरु तुरीयाविषे अज्ञान जड़ता नहीं, चेतन अनुभवसत्तारूप है, अरु स्वप्नजाग्रतविषे भी भेद नहीं, परंतु एता भेद कहता है, कि अल्पकालकी अवस्थाको स्वप्न कहते हैं, अरु चिरकालकी अवस्थाको जाग्रत कहते हैं ॥ हे रामजी ! जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति यह तीनों स्वप्न अरु सुषुप्तिरूप हैं, जाग्रत अरु स्वप्न यह उभय स्वप्नरूप हैं, अरु सुषुप्ति अज्ञानरूप है, अरु जाग्रत जो है, सो तुरीयारूप है, और जाग्रत कोऊ नहीं, जिस जागनेते बहुरि भ्रम प्राप्त होवै, तिसको जाग्रत कैसे कहिये ? उसको भ्रममात्र जानिये, अरु जिस जागनेते फेर भ्रमको न प्राप्त होवै तिसका नम जाग्रत है, स्वप्न सुषुप्ति तुरीया चारों अवस्थाविषे चेतनमात्र घनीभूत हो रहा है, सो चारोंको नहीं देखता, ज्ञानवान् जब प्राणका स्पंद रोककरि आत्माकी ओर चित्तको लगाते हैं, अरु परस्पर ज्ञानमात्रका निर्णय चर्चा करते हैं, अरु ज्ञानमात्रकी कथा कीर्त्तन करते हैं, अरु तिसकरि प्रसन्न होते हैं, ऐसे जो नित जाग्रत पुरुष हैं, अरु निरंतर प्रीतिपूर्वक आत्माको भजते हैं, तिनको आत्मविषयिणी बुद्धि आनि उदय होती है, तिसकरि शांतिको प्राप्त होते हैं, जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है, अरु अभ्यासविषे उत्तम हुये हैं, तिनको आत्मपद प्राप्त होता है, वही हाँसी करते हैं, काहेते कि, उनको शांतपद प्राप्त भया है, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागद्वेषकरि जलते हैं, अरु जिनको आत्माका दृढ अभ्यास हुआ है, तिनको अवेदनसत्ता शांति प्राप्त होती है, अरु आत्मस्थिति प्राप्त होती है, जिसके आगे इंद्रका राज्य भी सुखे तृणवत् भासता है, ऐसा परमानंद आत्मसुख है, अरु सर्व जगत् तिनको

आत्मरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे सोये हुए पुरुषको स्वप्नकी सृष्टि सत् होकरि भासती है, अरु जाग्रतके स्मरण वालेको स्वप्नकी सृष्टि भी अपना आपरूप भासती है, अरु सत्रूप भासती है, अरु ज्ञानवान्को सर्व आत्मरूप भासता है, आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता, जब आत्म अभ्यासका बल होवै, अरु अनात्माके अभावका अभ्यास दृढ होवै, तब जगत्का अभाव हो जावै अद्वैतसत्ताका भान होवै ॥ हे रामजी! मैं तुझको बहुत उपदेश किया है, जब इसका अभ्यास होवै, तब इसका फल जो ब्रह्म-बोध है, सो प्राप्त होवै, अभ्यासविना नहीं प्राप्त होता, अरु जो एक तृण लोप करना होता है, तौ भी कछु यत्न होता, है, यह तौ त्रिलोकी लोप करना है ॥ हे रामजी! जैसे बड़ा भार जिसके ऊपर पडता है, तब वह बडेही बलकारि उठावता है, विना बड़े बल नहीं उठता; तैसे इस जीवके ऊपर दृश्यरूपी बड़ा भार पड़ा है,जब बड़ा आत्मरूपी अभ्यासका बल होवै, तब इसको निवृत्त करै, नहीं तौ निवृत्त नहीं होता, अरु यह जो मैं तेरे तांई उपदेश किया है, तिसको वारंवार विचार, मैं तौ तेरे तांई बहुत प्रकार अरु बहुत बार कहा है ॥ हे रामजी! अज्ञानीको ऐसे बहुत कहनेकारि भी कछु नहीं होता, तुझको जो मैं उपदेश किया है, सो सर्व शास्त्रका सिद्धांत है, अरु वेदका सिद्धांत है, जिसप्रकार वेदको पाठ करता है, तिसप्रकार इसको पाठ करिये, अरु विचारिये अरु इनके रह-स्यको हृदयविषे धारिये, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु अपर शास्त्र भी इसके अवलोकनकारि सुगम हो जावैंगे, ताते नित्यप्रति इस शास्त्रको श्रद्धासहित सुनै अरु कहै, आदिते लेकरि अंतपर्यंत सुनै अरु कहै, तब अज्ञानी जीवको भी ज्ञानकी प्राप्ति अवश्य होवै, जिसने एक बार सुना है, अरु कहने लगा है, जो एक वार सुनि छोड़ा है, बहुरि बहुरि क्या सुनना है, तब उसकी भ्रांति निवृत्त न होवैगी, अरु जो वारंवार सुनै विचारै अरु कहै, तब उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, सब शास्त्रते मैं उत्तम युक्तिकी संहिता कही है, जो शीघ्रही मनविषे आती है, ऐसी जो संहिता कही है, अरु जो पुरुष मेरे शास्त्रको सुननेवाले हैं, अरु कह-

नेवाले हैं, तिनको बोध उदय होता है, अपर शास्त्रका जो अर्थ है, सो भी सुंदरताकरिकै खुलि आता है, जैसे लोनका अधिकारी व्यंजन पदार्थ है, तिसविषे लोन पाया स्वादिष्ट होता है, अरु प्रीतिसहित ग्रहण करता है, तैसे जो इस शास्त्रके सुनने कहनेवाले हैं, सो अपर शास्त्रका भी अर्थ सुंदर करैंगे ॥ हे रामजी ! ऐसे न करिये कि, किसी अपर पक्षको अपना मानकर इसका श्रवण भी न करिये, जैसे किसीके पिताका खारा कुँवा था, अरु तिसके निकट मिष्ट जलका कुँवा था, वह अपने पिताका कूप मानिकरि खाराही जल पीता था, निकट मिष्ट जलके कुँवेका त्याग करता था, तैसे अपना पक्ष मानिकरि मेरे शास्त्रका त्याग नहीं करना, जो ऐसे जानकरि मेरे शास्त्रको न सुनैगा, तिसको ज्ञान प्राप्त न होवैगा, जो पुरुष इस शास्त्रविषे दूषण आरोपण करैगा कि, यह सिद्धांत यथार्थ नहीं कहा, तिसको ज्ञान कदाचित् न प्राप्त होवैगा, वह आत्महंता है तिसके वाक्य श्रवण नहीं करने, अरु जो प्रीतिपूर्वक पूजा भाव करिकै श्रवण करै, विचारै, पाठ करै, तिसको निर्मल ज्ञान होवैगा, अरु क्रिया भी निर्मल होवैगी, ताते नित्यप्रति विचारने योग्य है ॥ हे रामजी ! तुझको उपदेश किया है, सो किसी अर्थके निमित्त नहीं किया, दया करिकै किया है, अरु तुम जो किसीको कहौगे, तौ भी अर्थविना दया करिकै कहना ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रियजयवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४७ ॥

द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः २४८.

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं फुरणा होता है, तब वही संवेदन फुरणा जगतरूप हो भासता है, जब अधिष्ठानकी ओर देखता है, तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप हो जाता है, अपने रूपको त्यागि देता है, अचेत चिन्मात्र होता है ॥ हे रामजी फुरणेविषे भी वही है, अरु अफुरणेविषे भी वही

है, परंतु फुरणेकरि जगत् भासता है, सो जगत् भी कछु अपर वस्तु नहीं, वहीरूप है, अरु जब संवित् संवेदक फुरणेते रहित होती है, तब अपना चिन्मात्ररूप हो जाती है, इस काणते ज्ञानवान्को जगत् आत्मरूप भासता है, ब्रह्मते इतर नहीं भासता, जैसे किसी पुरुषका मन अपर ठौर गया होता है, तिसके आगे शब्द होता है, तौ भी नहीं भासता, अरु कहता है, मैं देखा सुना कछु नहीं, जिस ओर चित्त होता है, तिसका अनुभव होता है, जैसे जिनका मन आत्माकी ओर लगता है, तिनको सब आत्माही भासता है, आत्माते इतर जगत् कछु नहीं भासता, अरु जिनको आत्मसत्ताका प्रमाद है, अरु जगत्की ओर चित्त है, तौ उनको जगत्ही भासता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्के निश्चयविषे ब्रह्मही भासता है, अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भासता है, तौ ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय एक कैसे होवै, स्वप्नविषे पुरुष है, तिसको स्वप्नका जगत् भासता है, जाग्रतको वह जगत् नहीं भासता, उनको एकही निश्चय कैसे होवै? नहीं होता, यह अर्थ है, जगतके आदि भी ब्रह्मसत्ता थी, अरु अंत भी वही रहैगी, मध्यविषे जो भासती है, सो भी वही जान आत्मसत्ताही चेतनताकारि जगतरूप हो भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है, अरु अंत भी ब्रह्मसत्ता होती है, अरु मध्य जो भासता है, सो भी वही है, आत्माते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आदि अंत मध्यविषे भी आत्माते इतर कछु नहीं, अरु ज्ञानवान्को सदा यही निश्चय है कि, जगत् कछु उपजा नहीं, न उपजैगा, आत्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व ब्रह्मही है, अहं त्वं यह सब अज्ञानकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे अहं त्वं आदिकरिकै अनुभव होता है, तौ अहं त्वं आदिक भी कछु नहीं, सब अनुभवरूप है, तैसे यह जगत् सर्व अनुभवरूप है ॥ हे रामजी! जैसे एकही रस फूल फल टास वृक्ष होकरि भासता है, परंतु रसते इतर कछु नहीं, तैसे नानास्वरूप जगत् भासता है, परंतु आत्माते इतर कछु नहीं; जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर अपने अपने अनुभवते इतर कछु नहीं निकसता, परंतु स्वरूपके विस्मरणकरिकै आकाररूप भासते हैं, तैसे यह जगत् आकार भासता है, सो ज्ञानरूपते

इतर कछु नहीं, सब जगत् आत्मरूप है, परंतु अज्ञानकरिकै भिन्न भिन्न भासता है, अरु यह जगत् सब अपना आपरूप है, इतर कछु नहीं, जो आत्मरूप है, तौ ग्राह्यग्रहण कैसे भास होवै, यह मिथ्याभ्रम है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् भ्रमरूप है, ज्ञानवान्को सदा यही निश्चय रहता है कि, अचेत चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मादिक भी कछु फुरिकारि उदय नहीं भये, ज्योंके त्यों हैं, उत्थान कछु न हुआ, अरु अज्ञानीके निश्चयमें नानाप्रकारका जगत् है, उत्पत्ति स्थिति प्रलय ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं ॥ हे रामजी ! यह कछु उपजा नहीं, कारणत्वके अभावते सदा एकरस आत्मसत्ताही है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४८ ॥

द्विशताधिकैकोनपंचाशत्तमः सर्गः २४९.

जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी जाग्रत अरु स्वप्नका निर्णय अब सुन, जब इस जगत्विषे सोय जाता है, तब स्वप्नकी सृष्टि देखता है; उसविषे जागृत होती है, जागृत होकारि भासती है, अरु जब तहां सोय जाता है, तब बहुरि यह सृष्टि देखता है, यही जागृत हो भासती है, यहां सोयकारि स्वप्नविषे जागृत होती है, वहां सोयकारि यहां जागृत होती है, तौ स्वप्न जागृत हुआ, जाग्रतका जाग्रत नहीं होता. जाग्रत जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, तिसविषे जागना सोई जाग्रतकी जाग्रत है, अपर सब स्वप्नजाग्रतहै, जब यहां शयन करता है, तब स्वप्नका जाग्रत सत् होकारि भासता है, यह असत् हो जाता है, अरु स्वप्नविषे वहांते शयन करता है, अर्थ यह कि स्वप्नते निवृत्त होता है, अरु जाग्रतविषे जागता है, तब वहां असत् हो जाता है, वह स्वप्नजाग्रतविषे स्मृतिको प्राप्त होता है, अरु जब जाग्रतविषे सोया अरु स्वप्नविषे जागा, तब जाग्रत स्वभावको प्राप्त भई, अरु जब स्वप्नते उठिकारि जाग्रतविषे आया, तब स्वप्नरूप जाग्रत स्मृति-

भावको प्राप्त भई, अरु जागृत् जागृतरूप हुई तौ हे रामजी! स्वप्न तौ कोऊ न हुआ, इसको सर्व ठौर जाग्रत् क्यों हुई, अरु जागृत् तो कोऊ न हुई काहेते कि जब जागृतते स्वप्नविषे गया, तब स्वप्न जाग्रतरूप होगया, अरु जाग्रत् स्वप्न होगई, अरु जब स्वप्नते जाग्रतविषे आया, तब जाग्रत जाग्रतरूप होगई, अरु जब स्वप्न जाग्रत स्वप्नरूप होगई, तौ क्या हुआ जाग्रत सोऊ नहीं, सब स्वप्न असतरूप है, अपने कालविषे यह जाग्रत है अरु है स्वप्नरूप, अरु जब यहांते मृतक होता है, तब यह जगत् स्वप्नरूप होता है, स्वप्नरूप परलोक जाग्रत होता है, जाग्रतस्मृति प्रत्यक्ष होजाती है, तौ उसविषे वह नहीं रहता, अरु उसविषे वह नहीं रहता, अरु जागृत स्वप्न दोनोंविषे परलोक नहीं रहता, अरु इस जाग्रतविषे देखिये तौ स्वप्न अरु परलोक दोनों नहीं भासते, अरु स्वप्नविषे इस जाग्रत् अरु परलोक दोनोंका अभाव हो जाता है, तौ क्या सिद्ध हुआ, यह सिद्ध हुआ कि सब स्वप्नमात्र है ॥ हे रामजी! चिरकालकी प्रतीतिको जाग्रत कहते हैं, अरु अल्पकालकी प्रतीतिको स्वप्न कहते हैं, जो आदि स्वप्न हुआ, अरु तिसविषे दृढ अभ्यास होगया, तिसकारि जाग्रत होभासती है, ताते जो कछु आकार तुझको सत् भासते हैं, सो सब निराकार आकाशरूप हैं, कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिलोकी जगतभ्रम उदय होता है, परंतु सब आकाशरूप होता है, तैसे यह जगत्के पदार्थ अविद्याकारि साकार भासते हैं, सो सब निराकार आकाशरूप हैं, जब अधिष्ठान आत्मतत्त्वविषे जागैगा, तब सबही आकाशरूप भासैगा, अरु अद्वैत आत्मतत्त्वविषे जो ग्राह्यग्राहकभाव भासते हैं, सो मिथ्या कल्पना है, वास्तवते कछु नहीं सब जगत् मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, तिसविषे ग्रहण क्या करिये, अरु त्याग क्या करिये, इन दोनोंकी कल्पनाको दूर करु, यह होवै, यह न होवै, यह कल्पनाको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तब सर्व शांति प्राप्त होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २४९ ॥

द्विशताधिकपंचाशत्तमः सर्गः २५०.

शिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस अर्थका जो आश्रयभूत है, सो मैं तुझको कहता हौं, इस जगत्के आदि अचेत चिन्मात्र था, तिसविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति न थी अशब्दपद था, तिसविषे जानना फुरा, तिसका आभास जगत् हुआ, तिस आभासविषे जिसके अधिष्ठानकी अहंप्रतीति रही है, तिसको जगत् आकाशरूप भासता है, वह संसारविषे डूबता नहीं, उसको अज्ञानका अभाव है, जो डूबता नहीं, तौ निकसता भी नहीं, अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका भी अभाव है, वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है, अरु जिनको प्रमाद हुआ है, तिनको दोनों अवस्था होती हैं, जो ज्ञानवान् है, तिसको जगत् आत्मरूप भासता है अरु जो ज्ञानते रहित है तिसको भिन्न भिन्न नाम रूप जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा निराख्यात है, चारों आख्याततें रहित निराभास सत्ता है, चारों आख्यात तिसविषे आभास हैं, तिनके नाम सुन एक तौ आख्यात है, एक विपर्ययाख्यात है, एक असत्याख्यात है, चौथा आत्माख्यात है, आख्यात कहिये ज्ञान, जिसको यह ज्ञान है कि, मैं आपको नहीं जानता, इसका नाम आख्यात है, अरु देह इंद्रियरूप आपआपको जानना इसका नाम विपर्ययाख्यात है, जगत् असत् जानना इसका नाम असत्याख्यात है, अरु आत्माको आत्मा जानना इसका नाम आत्माख्यात है, यह चारों ख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्वका आभास है, आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं है, हे रामजी ! जगत् भी वहीस्वरूप है अपर कछु बना नहीं, घनशिलाकी नांई अचिंत्य स्वरूप है, इसके ऊपर एक आख्यान है, सो श्रवणका भूषण है, तुझको कहता हौं, सो कैसा उपाख्यान है, जो द्वैत दृष्टिको नाश करता है, अरु ज्ञानरूपी कमलका प्रकाश होनेहारा सूर्य, अरु परम पावन है, सो तू श्रवण कर॥ हे रामजी! एक शिला बडी है, जो कोटि योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अनंत है किसी ओरते तिसका अंत नहीं आता, अरु शुद्ध है, अरु निर्मल है, अरु

निरासाधहै,अर्थ यह कि,अणुअणुकरि पुष्ट नहीं भई,अपनीसत्ताकरि परिपूर्ण है, अरु बहुत सुंदर है, जैसे शालिग्रामकी प्रतिमा होती है, तैसे सुंदर है, शालिग्रामके ऊपर शंख चक्र गदा पद्मकी रेखा होती है, तैसे उसके ऊपर रेखा हैं, अरु वहीरूप है, अरु वज्रते भी क्रूर है, शिलाकी नाईं निर्विकार है, अरु निराकार है, अचेतन है, अरु परमार्थ है, यह जो कछु चेतनसत्ता भासती है, सो उसके ऊपर रेखा हैं, अनंत कल्प बीतिगयेहैं, परंतु तिसका नाश नहीं होता, अविनाशी है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश यह सब उसके ऊपररेखा हैं, अरु आप पृथ्वी आदिक भूतते रहित है, अरु शिलावत् है,अरु इन रेखाओंको जीवितकीनांईचेततीहै ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो वह अचेतन है, अरु शिलाकी नांई निर्विकार है, तब उसविषे चेतनता कहांते आई, जिसकरि जीवितधर्मा हुई, वह तो अचेतन थी? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वह तौ न चेतन है, न जड है, शिलारूप है, पत्थरते भी उज्वल है, अरु यह चेतनता जो तुम कहते हौ, सो चेतनता स्वभावकरिकै दृष्ट आती है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तैसे चेतनताभी इसका स्वभाव है, जैसे जलते तरंग स्वाभाविक भासते हैं, तैसे इसते चेतनता स्वाभाविक भासतीहै, परंतु भिन्न कछु नहीं, सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु किसीकरि जानी नहीं जाती अबलग किसीने जानी नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! किसीने उसको देखो भी है, अथवा नहीं देखी, अरु किसी करि वह भंग भी हुई है कि नहीं हुई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं उस शिलाको देखी है, जो तुम भी उस शिलाको देखनेका अभ्यास करौगे तब तुम भी देखौगे, परम शुद्ध है; तिसको मैल कदाचित् नहीं लगती, चिह्नते रहित है, पोलते रहित है, आदि मध्य अंतते रहित है, तिसके भेदनेको न कोऊ समर्थ है, अरु न वह भेदने योग्य है, अरु तिसते कोऊ अन्य होवै तौ तिसको भेदै, यह जेते पदार्थ हैं, सो सब उसीकी रेखा हैं, सो अनेक उसकी रेखा हैं, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, आप, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य, चंद्रमा यह उसमें रेखा हैं,

उसके अंतर स्थित हैं, यह शिला महासूक्ष्म है, निराकार है, आकाशरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आदि मध्य अंतते रहित है, तब तुम कैसे देखी है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वह अपर किसीकरि जानी नहीं, जाती, अपने आप अनुभवकरि जानी जाती है, मैं जो देखी है, सो अपने स्वभावविषे स्थित होकरि देखी है, जैसे स्तंभको अणस्तंभविषे स्थित होकरि देखैं तैसे मैं तिसविषे स्थित होकरि देखी है, हम भी तिस शिलाकी रेखा हैं, ताते मैं तिसविषे स्थित होकरि देखी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वह कौन शिला है, उसके ऊपर कौन रेखा है सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमात्मारूपी शिला है, अपर कौन होवै, अरु मैं तेरे ताईं शिलारूप कहा है, इन वचन करिके शिलारूप क्यों कहा है, जो घन चेतनरूप है, उसते इतर कछु नहीं, अरु अचिन्तरूप है, तिसकेऊपर पंचतत्त्व रेखा सो रेखा भी वहीरूप हैं, एक रेखा बडी है, तिसविषे अपर रेखा रहती हैं, सो बडी रेखा आकाश है, अपर तत्त्व आकाशविषे रहते हैं, सब पदार्थ आकाशविषे हैं, सो सब वहीरूप है, तू भी वहीरूप है, मैं भी वही रूप हौं, अपर कछु हुआ नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब ब्रह्मरूप हैं, जेते कछु पदार्थ अरु कर्म भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूपी शिलाकी रेखा हैं, अपर कछु हुआ नहीं, सर्व काल विषे ब्रह्मसत्ताही स्थित है, नानाप्रकारके व्यवहार भी दृष्ट आते हैं, परंतु वहीरूप हैं, अपर कछु है नहीं, तैसे यह भी जान, घट पट पहाड कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आत्मरूप है, आत्माही फुरणेकरिके ऐसे भासता है, जैसे जलही तरंग लहरि होकरि भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होकरि भासती है, अरु जेते वह पदार्थ हैं, पवित्र अपवित्र सत्‌असत् विद्या अविद्या सब आत्म सत्ताहीके नाम हैं, इतर वस्तु कछु है नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! यह सर्वही घन ब्रह्मरूप है, अरु चिन्मात्र घनही यह सर्व व्याप रही है, सो परमार्थसत्ता घन शांतरूप है, अरु यह

भी सर्व परमार्थ घनरूप है,ताते संकल्परूपी कलनाको त्यागिकरि तिस-विषे स्थित होहु॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलोपाख्यान समाप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५० ॥

द्विशताधिकैकपंचाशत्तमः सर्गः २५१.

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष स्वभावसत्ताविषे स्थित भये हैं, तिनको जो यह चारौं आख्यात कहे हैं, इनते लेकरि जेते शब्दार्थ हैं, सो शशेके सिंगवत् असत् भासते हैं, जगत्का निश्चय तिन-विषे नहीं रहता, सर्व ब्रह्मांड तिनको आकाशवत् भासता है, आख्या-तकी कल्पना भी कछु नहीं फुरती, अरु जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो निराकार परम चिदाकाशरूप है, परम निर्वाणसत्तासों युक्त भासता है, अरु तिसविषे निर्वाण हो जाता है, ताते वही स्वरूप है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार जानिकरि तू तिस पदविषे स्थित होवैगा, तब बडे शब्दको करता भी तू निश्चयते पाषाण शिलावत् मौन रहैगा, देखैगा, खावैगा, पीवैगा, सूँघैगा, परंतु अपने निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे पाषाणकी शिलाविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, तैसें तू रहैगा, जो चरणोंकरि दौडता जावैगा, तौ भी निश्चयकरि चलायमान न होवैगा, जैसे आकाश अचल है, जैसे सुमेरु पर्वत स्थिर है, तैसे तू भी स्थित रहैगा, क्रिया तौ सब करैगा, परंतु अंतरते क्रियाका अभिमान तुझको कछु न होवैगा, स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, जैसे मूढ बालक अपने परछायेविषे वैताल कल्पता है, सो अविचारसिद्ध है, विचार कियेते कछु नहीं निकसता, तैसे मूर्ख अज्ञानी आत्माविषे मिथ्या आकार कल्पते हैं, विचार कियेते सब आकाशरूप हैं, बना कछु नहीं, जैसे मरुस्थलविषे नदी तबलग भासती है, जबलग विचारकरि नहीं देखता, विचार कियेते नदी नहीं रहती, तैसे यह जगत् विचार कियेते नहीं रहता, चैतन्यरूपी रत्नका चमत्कार है, चेतन आत्माका [illegible]चन फुरणेकरिकै जगत्‌रूप हो

भासता है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस जगत्का कारण स्मृति मैं मानता हौं, सो स्मृति अनुभवते होती है अरु स्मृतिते अनुभव होता है, स्मृति अरु अनुभव परस्पर कारणहैं, जबअनुभव होताहै, तबउसकीस्मृति भी होतीहै, वह स्मृति संस्कार बहुरि स्वप्नविषे जगत्रूप हो क्यों भासती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जगत् जो उपजा है, सो किसी संस्कारकरि नहीं उपजा, जो किसी स्मृतिका संस्कार होवै सो नहीं, तब क्या है ? काकतालीवत् अकस्मात फुरि आया है ॥ हे रामजी! यह जगत् आभासमात्र है, आभासका अभाव कदाचित् नहीं होता, काहेते कि, उसका चमत्कार है, जो इतर कछु बना होवै, तौ तिसका नाश भी होवै, सो इतर तो कछु हुआ भी नहीं, नाश कैसे होवै, यह जगत् सत् भी नहीं; अरु असत् भी नहीं, अपने स्वभावविषे आत्मसत्ता स्थित है, जगत् तिसका आभास है, ॥ हे रामजी! तू जो स्मृतिकारण कहता है, सो कारणकार्यभाव आभास तहां भासतेहैं, जहां द्वैत है, स्वरूपविषे कछु कारण कार्यभाव नहीं, जैसे स्वप्नमें मरुस्थलविषे जल भासा, तिसविषे जल मानिकारि गया तो तू देख, आगे जायकारि उसको उस जलकी स्मृति हुई, अथवा स्वप्नके व्यवहारकर्त्ताको स्वप्नांतर हुआ, तिस स्वप्नांतरविषे बहुरि जाय व्यवहार करता भया, तौ हे रामजी! तू देख कि, उसकी स्मृति भी असत् हुई, अरु जो उसने अनुभव किया सो भी असत् है तैसे यह संसार भी है, कछु भेद नहीं ॥ हे रामजी! ताते न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न कोऊ सुषुप्ति है, न तुरीया है, तौ क्या है, अद्वैतसत्ता सर्व उत्थानते रहित चिन्मात्र स्थित है, ताते जगत् भी वहीरूप है, जो क्रिया भी दृष्ट आती है, तौ भी कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ आय मिलती है, तब उसकी क्रिया तौ कछु साची नहीं, तैसे यह क्रिया भी साची नहीं, अरु जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया इन शब्दका अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुषको है, शशेके शृंग अरु आकाशके फूलवत् असत् भासते हैं, जैसे वंध्याका पुत्र अरु जैसे श्याम चंद्रमा शब्द कहनेमात्र हैं, इनका अर्थ असत् है, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे पांचो अवस्थाका होना असंभव है, अथवा सर्वदाकालविषे जाग्रत है, जाग्रत

तिसका नाम है, जहाँ कछु अनुभव होवै, सो अनुभवसत्ता सदा जाग्रत-रूप है, जैसा पदार्थ आगे आता है, तिसीका अनुभव करता है, ताते सर्वदा सर्वकाल जाग्रत है, अथवा सर्वदाकाल स्वप्न है, स्वप्न उसका नाम है, जहाँ पदार्थ विपर्यय भासै हैं,सो जेते कछु पदार्थभासते हैं सो विपर्ययही भासते हैं, विर्ययते रहित आत्मा है, तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं, सो विपर्यय हैं, ताते सर्व कालविषे स्वप्नही है,अथवा सर्वकाल सुषुप्तिही है, सुषुप्ति तिसका नाम है, जहां अज्ञानवृत्तिहोवै, सो अज्ञान कहता है मैं आपको भी नहीं जानता, न जाननेकरि सर्वदाकाल सुषुप्ति है, अथवा सर्वकाल तुरीया है, तुरीया उसका नाम है, जो साक्षीभूत सत्ता होवै, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाका जिसविषे अनुभव होता है, सो सर्वदा काल सबका अनुभव करता है, सो प्रत्यक् चेतन है, ताते सर्वदाकाल-विषे तुरीया पद है, अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीत पद है, तुरीयातीत तिसको कहते हैं, जो अद्वैतसत्ता है, जिसके पास द्वैत कछु नहीं, सो सर्वदाकाल अद्वैतसत्ता है, तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, ताते सर्वदाकालविषे तुरीयातीत पद है, अरु जो मुझते पूँछे तौ ॥ हे रामजी! मुझको तरंग बुद्बुदे झाग आवर्त्त कछु नहीं भासते, सर्वदाकाल चिद् समुद्रही भासता है, तिसते इतर कछु नहीं, उदय अस्तते रहित आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो भी कछु उपजे नहीं,आत्म-सत्ताका किंचन इसप्रकार भासता है,जैसे नखअरु केश उपजतेभीहैंअरु अभाव भी हो जाते हैं,तैसे आत्माविषेजगत् उपजताभी है, अरु लीनभी हो जाता है, जैसे नख अरु केशके उपजने काटनेविषे शरीर ज्योंका त्यों रहता है तैसे जगत्के उपजने अरु लीन होनेविषे आत्मा ज्योंका त्यों रहता है ॥ हे रामजी ! यह जगत्उपजा नहीं, तिसविषे सत् क्या कहिये अरु असत् क्या कहिये, कल्पना क्या कहिये, अरु स्मृति क्या कहिये, अंतर क्या कहिये, अरु बाहर क्या कहिये, अद्वैत सत्ताविषे कल्पना कछु नहीं बनती यह अर्थ है, अरु जो तू कहै बाह्यतेअंतर स्मृति होती है परंतु अंतरते बाहर दृष्ट आती है, तौ अंतर अनुभवकी अपेक्षा

करिकै हुई है सो भी उत्पन्न नहीं भई, अंतर अरु बाहर क्या कहौं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासि आती है, सो अपनाही अनुभव होता है, वही सृष्टिरूप हो भासंता है, वहां तो अंतर बाहर कछु है नहीं, तैसे यह जगत् भी अंतर बाहर कछु है नहीं, सब भ्रमरूप है, जिसको इच्छा कहते हैं, स्मृति कहते हैं, विद्या अविद्या इष्ट अनिष्ट जेते कछु शब्द हैं सो सब आत्माके नाम हैं, आत्माते इतर अपर पदार्थ कछु वस्तु नहीं ॥ हे रामजी । जागिकरि देख सब तेराही स्वरूप है, मिथ्याभ्रमको अंगीकार करिकै क्यों इतर कछु देखता है, जेते कछु शब्द हैं, सो अर्थविना कहूँ नहीं, अरु शब्द अर्थका विचार संकल्पकरि होता है, अरु संकल्प तब फुरता है, जब चित्तविषे अहं अभिमान होता है, सो चित्त आत्मसारविषे लीन करु, जब चित्तको निर्वाण करैगा, तब सब जगत शांत हो जावैगा; जैसे दर्पणविषे जगत्‌रूपी प्रतिबिंब होता है, सो जगत् कछु वस्तु नहीं जब चित्त निर्वाण हो जावैगा, तब द्वैत कल्पना सब मिटि जावैगी, यह जो मोक्षशास्त्र मैं तुझको कहा है, इसके अर्थको विचार, अरु संकल्पको त्यागिकरि अपने परमानंद स्वरूपविषे स्थितहोहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनं नाम द्विशताधिकैकपंचाशत्तमः सर्गः॥ २५१ ॥

द्विशताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः २५२.

सालभजनकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । यह जगत् किसी कारणकरि उत्पन्न नहीं भया, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, तैसे संवित्सत्तासों आदि सृष्टि फुरी है, जैसे जल स्वाभाविक द्रवताकरिकै तरंगरूप अपनी सत्ताकरि बढता जाता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत्‌विस्तार होता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, जब आत्मसत्ता चिन्मात्रका अभ्यास बहिर्मुख फुरता है, तब

अंतःकरण चतुष्टांग होते हैं, तिसविषे जो निश्चय होता है, तिसका नाम नेति हुआ है, प्रथम अकस्माततै स्वाभाविकही कारणविना फुरि आया है, वह आभासमात्र है, जब वह दृढ होगया, तब नेति स्थित भई, अरु वास्तवते द्वैत कछु बना नहीं, जो सम्यक्दर्शी पुरुष है, तिसको सब आत्मा दृष्ट आता है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास, सब वृक्ष ऊपर है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी। वृक्षते ज्यों फूल फल टास होतेहैं सो किस कारणकरि बुद्धिपूर्वक तौ नहीं होते, तैसे यह जगत् भी जान जो सम्यक्दर्शी है तिसको भिन्न भिन्न रूप भी पत्र टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूप भासता है, तैसे यथार्थ ज्ञानीको सर्व आत्माही भासता है, अरु मिथ्यादृष्टिको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सम्यक्दर्शीको एक वृक्षही भासता है ॥ हे रामजी। वृक्षके देखनेवाला भी अपर होता है, अरु दृष्टांतरविषे दूसरा कोऊ नहीं, चैतन्य आत्माका आभासही चैतन्य है, वही चैतन्यरूप हो भासता है, तिस चैतन्य आभासको असम्यक् दृष्टिकरिकै भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं, सम्यक्दर्शी सबको आत्मारूप देखता है, जैसे पत्र आपको भिन्न जानैं, फूल फल सब आपको भिन्न भिन्न जानैं, वृक्ष सब अपना आप जानता है, ज्ञानी अज्ञानी सब आत्मरूप हैं, जैसे कंधकेऊपर पुतलियां लिखी होती हैं, सो कंधते इतर कछु नहीं, कंधरूप हैं, तैसे स्वर्गगत आत्मरूपी कंधके चित्त हैं, सो आत्माते इतर कछु नहीं जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे फूलविषे सुगंधता है, जैसे जलविषे द्रवता है, जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे फूल अरु सुगंधविषे भेद कछु नहीं, जहां जल है तहां द्रवता भी है, जहां अग्नि है, तहां उष्णता है, जहां वायु है, तहां स्पंद भी है, तैसे जहां चिद्सत्ता है, तहां जगत् भी है, जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी। जगत् आत्माका अभ्यास है, ताते वहीरूप है, यह जगत् भी अचैत्य चिन्मात्र है, अरु जो तू कहै, अचैत्य चिन्मात्र है, तौ पृथ्वी पहाड आदिक आकार क्यों भासते हैं, तौ हे रामजी। नित्य प्रति जो तुझको स्वप्न आता है, तिस

अनुभव आकाशविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासि आते हैं, तब वही चिन्मात्रही आकार होकरि भासता है, क्योंकि, अपर कछु नहीं, तैसे यह भी जान, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब अनुभव रूप है; जैसे चिन्मात्र आत्माविषे सृष्टि आभासमात्र है, तैसे कारण कार्यभाव भी आभासमात्र है, परंतु वहीरूप है, आत्मसत्ताही इसप्रकार होकरि भासती है, अरु यह पदार्थ जो कारण कार्यकरिकै उपजे दृष्ट आते हैं, सो अभ्यासकी दृढताकरिकै भासते हैं, आदि सृष्टि कछु कारण-करिकै नहीं उपजी, पाछे कारणकरि कार्य उत्पत्ति दृष्ट आती है, यद्यपि कार्य कारण दृष्ट आते हैं, तौ भी कछु उपजा नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके कार्य कारण भासि आते हैं, परंतु कछु हुये तौ नहीं, सदा अद्वैतरूप हैं, तैसे जाग्रत्‌विषे भी जान, पदार्थकी स्मृति भी स्वप्नविषे होती है. अनुभव भी स्वप्नविषे होता है, जो स्वप्नही नहीं फुरा तौ भी मृत्यु कहां है, अरु अनुभव कहाँ है, न जगत्‌का अनुभव है, न जगत् है, अनुभवसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है, सो जाग्रत्‌रूप है, जब तिसका अनुभव होवैगा तब न स्मृति रहैगी, न जगत् रहैगा, ताते ॥ हे रामजी ! जो अनुभवरूप है तिसका अनुभव करु, यह जगत् भ्रमरूप है, जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है, अरु जो उपजा है, अरु जिसविषे भासता है, तिसको उसीका रूप जान, इतर तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासते हैं, सो उपजे नहीं, परंतु उपजे दृष्ट आते हैं, सो अनुभवविषे उपजे हैं, अनुभव स्वतःसिद्ध है, तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभवरूप हैं अनुभवही इसप्रकार हो भासता है, तैसे यह सब अनुभवरूप हैं, इतर कछु नहीं, जेता कछु जगत् है, सो आत्मरूप है, ताते हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो अकारण है, आत्माका आभास है, कारण करिकै कछु बना नहीं, अनंत ब्रह्मांड ब्रह्म-सत्ताविषे आभास फुरते हैं, अरु अज्ञानीको कार्य कारणसहित भासते हैं, तिसविषे नेति हुई है; जब जागिकरि देखैगा, तब सर्व अद्वैतरूप भासैगा, न कोऊ नेति है, न जगत् है, जबलग अज्ञाननिद्राविषे सोया हुआ है, तबलग जो पदार्थ उस सृष्टिविषे हैं, सोई भासैंगे, जैसा कर्म है

सो भासैगा, अरु यह जगत्‌रूपी स्वप्न है, तिसविषे स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं, अरु नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं, तिनके प्राप्ति होनेका साधन धर्म अधर्म है, धर्म स्वर्गसुखका साधन है, अधर्म नरकदुःखका साधन है, जबलग अविद्यारूपी निद्राविषे सोया हुआ है, तबलग इसको यथार्थ जानता है, जब जानैगा, तब सब आत्मरूप होवैगा, इष्ट अनिष्ट कोऊ न रहैगा, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब अनुभवरूप है, सो अनुभव सदा जागृत ज्योति है, तिसको जान, अरु जिन पुरुषोंने इस अनुभवको नहीं जाना, सो उन्मत्त पशु हैं, काहेते कि, वे आत्मबोधते शून्य हैं, आत्माको सदा समीप नहीं जानते, इसते उन्मत्त अपना आप भूलि जाता है, जैसे किसीको पिशाच लगता है, तब उसको अपना स्वरूप विस्मरण हो जाता है, पिशाचही देहविषे बोलता है, तैसे जिसको अज्ञानरूपी भूत लगा है, सो उन्मत्त भया है, अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानता, अरु विपर्यय बुद्धिकरिकै देहादिकको आत्मा जानता है, विपर्यय शब्द करता है, अरु जिनको स्वरूपविषे अहंप्रतीति है, तिनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जो आदि सृष्टि किसी कारणकरि बनी होती तौ इसके पीछे प्रलय आदिकविषे कछु शेष रहता सो तौ अत्यंत अभाव होता है, ताते सब जगत् अकारण है, जैसे चिंतामणिते अकारण पदार्थ दृष्ट आता है, तैसे यह अकारण है, न कहूँ संस्कार है, न स्मृति है, सब आत्माके पर्याय हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, ताते सर्व जगत् आत्मरूप जान ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो संस्कारते अनुभव नहीं होता, अरु अनुभवते स्मृति नहीं होती, तौ इसप्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्ट आते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संशय भी तेरा दूर करता हौं, जैसे हस्तीके बालक मारनेविषे सिंहको यत्न कछु नहीं होता, तैसे इस संशयके नाश करनेको मुझे यत्न कछु नहीं, जैसे सूर्यके उदय हुये तिमिरका अभाव होता है, तैसे मेरे वचनोंकरि तेरा संशय दूर हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, तिसते इतर कछु नहीं, जैसे शिल्पी स्तंभविषे पुतलियां कल्पता है, परंतु पुतलियां कछु बनी नहीं, उसके चित्तविषे

पुतलियोंका आकार हैं, तैसे आत्मरूपी स्तंभ हैं, तिसविषे चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है॥ हे रामजी! स्तंभसों पुतलियां निकासे तौ भी निकसती हैं; परंतु आत्मा तौ अद्वैत है, निराकार है; तिसविषे अपर कछु नहीं निकसता, तिसविषे वाणीकी भी गम नहीं, चेतनमात्र है, तिसविषे अहं ऐसा जो फुरणा फुरा है, तब आपको चेतन जानत भया, बहुरि आगे शब्दके अर्थ कल्पे हैं, सो शुद्ध अधिष्ठान चेतन आपको जानत भया, सोई स्वर्ग है, ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इंद्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द अरु अर्थ फुरणेहीविषे हुये हैं, जैसे एकही समुद्रविषे द्रवताकरिकै आवर्त्त तरंग फेन बुद्बुदे नाम होते हैं, सो सब ब्रह्मके नाम हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, वही फुरणेकरि जगत् आकार हो भासता है, फुरणेते रहित जगत् आकार मिटि जाता है, परंतु फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे स्पंदनिस्पंदविषे वायु ज्योंका त्यों है, तैसे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपनाही अनुभव पहाड़ वृक्ष आदिक नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, तैसे यह ब्रह्मसत्ता जागृत जगत्‌रूप हो भासती है, तिसविषे कहूँ अंतवाहक हो भासता है, कहूँ आधिभौतिक भासता है, कहूँ ईश्वर, कहूँ जीव हो भासता है, इसते आदि लेकरि शब्द अर्थसंयुक्त जीव फुरता गया है, सो ब्रह्मसत्ता इसप्रकार स्थित भई है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप होती हैं, तैसे आत्माकाश विषे जगत् आत्मस्वरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे तिसविषे जगत् आभास है, तैसे स्मृति अनुभव भी आभास है, स्मृति जो संस्कार हैं, तिनते जगत्की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न होवै, सो तौ स्मृति संस्कार भी आभास है, यह जगतका कारण कैसे होवै, स्मृति भी तब होती है, जो प्रथम जगत् होता है, सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे होवै, ताते जगत् आभासमात्र है, इसका कारण कोऊ नहीं॥ हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत्का कारण तब होवै, जो कछु जगत् आगे हुआ कहौं सो कछु न था, अरु अनुभव तिसका होता है, जो पदार्थ भासता है, सो तौ इसजगत्के

आदि कछु जगत्का अंश न था, बहुरि अनुभव कैसे कहौं, जोअनुभवही न हुआ, तौ स्मृति किसको होवै, जो स्मृतिही न हुई तौ बहुरि तिसते जगत् कैसे कहौं, ताते हे रामजी।आदि जो जगत् फुरा हैं, सो अकारण अकस्मात्ते फुरा है, जैसे रत्नकी लाट होती है तैसे जगत् है, पाछेते कारणकार्यरूप भासती है, आदि अकारणरूप है, ताते हे रामजी। जिसका कारण कोऊ न होवै, सो जानिये कि उपजी नहीं, जिसविषे भासती है वही रूप है, अधिष्ठानते इतर कछु नहीं, ताते सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, स्मृति भी भ्रमविषेआभास फुरी है, अनुभव भी आभासहै, सो ब्रह्मते इतर कछु नहीं अरु आभास भी कछु फुरा नहीं, आभासकी नांई जगत् भासता है, आत्मसत्ता अद्वैत है, जिसविषे आभास भी नहीं बनता, न स्मृति है, न अनुभव है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, यह कल्पना कछु नहीं, तौ क्या है, ब्रह्मही है, अरु फुरणा जो कछु कहते हैं, सो कछु वस्तु नहीं जैसे स्तंभविषे पुतलियां कल्पता है, तैसे स्पंद चेतना आत्मा विषे जगत् कल्पती है, अरु शिल्पी जो कल्पता है, सो आप भिन्न होकारि कल्पता है, अरु यह चित्तसत्ता ऐसी है, कि अपनेही स्वरूपविषे कल्पती है, जगत्रूपी पुतलियां देखती हैं, सो आत्मआकाशरूपीस्तंभ है, तिसविषे जगत् भी आकाशरूपी पुतलियां हैं, जैसे आकाश अपने आकाशभावविषे स्थित है, तैसे ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभावविषे स्थित है, जगत् भिन्न भी दृष्ट आता है, परंतु अचैत्य चिन्मात्रस्वरूप है, भेदभावको नहीं प्राप्त भया, विकारवान् भी दृढ आता है, परंतु विकार कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे आपही सब स्पष्ट भासता है, तैसे यह जगत् अपने आपविषे भासता है, परंतु है कछु नहीं ॥ हे रामजी। यही आश्चर्य है, जो मैं ऐसा उपदेश किया है, अपने अनुभवको प्रगट कारि कहा है, अरु जीव आप भी जानते हैं, स्वप्नविषे नित्य देखतेहैं, अरु सुनते भी हैं, परंतु निश्चयकारि जान नहीं सकते, अरु स्वप्नपदार्थको मूर्खताकारि त्यागि नहीं सकते यह आश्चर्य है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सालभजनकोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५२ ॥

द्विशताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः २५३.
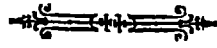
जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियके इष्ट विषयको पाय कारि सुख नहीं मानता; अरु अनिष्टविषयको पायकारि दुःख नहीं मानता इनके भ्रमते मुक्त है, जिसको बड़े भोग आनि प्राप्त हुये हैं, अरु अपने स्वरूपते चलायमान नहीं होता, तिसको जीवन्मुक्त जान ॥ हे रामजी! जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सो जिसको द्वैतरूप नहीं भासते, सो तू जीवन्मुक्त जान, जिस अविद्यारूपी जाग्रत्विषे अज्ञानी जागते हैं, तिसते ज्ञानवान् सोये रहे हैं, अरु परमार्थरूपी जाग्रत्‌ते अज्ञानी सोय रहे हैं, नहीं जानते यह अर्थ है, तिसविषे जीवन्मुक्तस्थित हैं, इस कारणते ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयको पायकारि सुखी अरु दुःखी नहीं होते तिनका चित्त सदा आत्मपदविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष सुखको पायकारि सुखी नहीं होता, अरु दुःखसाथ दुःखी नहीं होता, सो जड हुआ, चेतन तौ न हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सुखदुःख तबलग होता है, जबलग चित्तको जगत्‌का संबंध होता है, जब चित्त जगत्‌के संबंधते रहित चिन्मात्र होता है, तब औपाधिक जो हैं, सुख अरु दुःख सो नहीं रहते, जो अपने स्वभावविषे स्थित पुरुषहै, सो परम विश्रामको प्राप्त होता है, अरु वह सर्वको करता है, परंतु स्वरूपते उसको कर्तव्यका उत्थान कछु नहीं होता, निश्चय सदा अद्वैतविषेरहता है, नेत्रसाथ देखता है, परंतु द्वैतकी भावना उसको कछु नहीं फुरती जैसे अत्यंत उन्मत्त होता है, तिसको सब पदार्थ दृष्ट भी आते हैं, परंतु उसको पदार्थका ज्ञान कछु नहीं होता, तैसे जिसकी बुद्धि अद्वैतविषे घनीभूत भई है, तिसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते, जिनको द्वैत नहीं भासता, तिनको सुखदुःख कैसे भासैं, तिन पुरुषोंने तहां विश्राम किया है, जहां न शय्या है, न जागृत्‌है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है; सर्व द्वैततेरहितअद्वैत रूपी शय्याविषे विश्रामकारि रहे हैं, संसारमार्गते उल्लंघि गये हैं, अरु

आत्माके प्रमादकरि इसको कष्ट होता है, अपनी विभूति विद्याको त्यागि कारि प्रसन्न होता है, बहुरि संसारके क्रूर मार्गविषे कष्ट पाता है, वह मनुष्य नहीं मानो मृग है, संसाररूपी जंगलविषे कष्ट पाता है, जब तृषाकरि कायर होता है, तब जलकी ओर दौडता है, जहां जाता है, तहां मरुस्थलकी नदी भासती है, जल प्राप्त नहीं होता, बहुरि आगे दौडता है, तब अधिक तृषा बढ जाती है, इसप्रकार दौडता दौडता जड होजाता है, दुःखी होकारि मरि जाता है, परंतु जल प्राप्त नहीं होता, सो जल अरु दौडना अरु जड़ता अरु मरना चारों भिन्न भिन्न सुन ॥ हे रामजी! मन रूपी तौ मृग है; अरु संसाररूपी जंगलविषे आनि पडा है, अरु इंद्रियोंके विषयरूपी जलाभास हैं, तिनको सत् जानिकारि शांतिके निमित्त तृष्णारूपी मार्गकारि दौडता है, सो विषय आभासमात्र हैं, तिनविषे शांति रूपी जल है नहीं, दौडता दौडता वृद्ध अवस्थाविषे जाय पडताहै, तब जड हो जाता है, ऐसे कष्टको प्राप्त होता है, अरु शांतिरूपी जल नहीं पाता, तृप्त नहीं होता ॥ हे रामजी! यह मनुष्यही मानौ पैंडोई है, तिसके शीशपर बड़ा भार है, अरु क्रूर मार्गविषे चला जाता है, अरु मार्गविषे इसको चोरने लूटि लिया है, तिशकारि जलता है, इस पुरुषरूपी पैंडोईके शीशपर जन्मका बड़ा भार है, संशयरूपी मार्गविषे खड़ा है, कर्मइंद्रिय ज्ञानइंद्रिय तिनके जो विषय हैं, इष्ट अनिष्ट तिनके रागद्वेषरूपी तस्करने इससों विचाररूपी धन हारि लिया है, तिसकारि रागदोषतृष्णारूपी अग्निसाथ जलता है, बडा आश्चर्य है, जो ऐसे क्रूर मार्गको त्यागिकारि वह परमपदविषे विश्राम पाया है, अन्य आनंदको त्यागिकारि परमपद आनंदको प्राप्त भये हैं, तिन मुक्त पुरुषोंको संसारका दुःख सुख नहीं व्याप सकता, परम अद्वैत शुद्ध सत्ताको प्राप्त भये हैं, सबको देखते हैं, ग्रहण अरु त्यागरूपी जो अग्नि है, तिसको त्यागिकारि उन परमपदविषे विश्राम पाया है, सदा सोये रहते हैं, प्रगट सुखसाथ जो सोते हैं, सो वही सोते हैं, उनके अंतर सदा शांति रहती है, परंतु जडताते रहित हैं, आकाशते भी अधिक सूक्ष्मसत्तको प्राप्त हुये हैं, जैसे समुद्र-

विषे धूड नहीं होती,जैसे सूर्यविषे तम नहीं होता, तैसे उनविषे लोभ जो है, इंद्रियके इष्ट विषयकी तृष्णा सो नहीं होती,तिनते रहित होकरि तिन्होंने विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है, अणुते अणु होकरि अरु महत्ते महत्व होकरि केवल विश्रामवान् हुये हैं ॥ हे रामजी ! जो आत्मसत्ताकी ओरते सोये पडे हैं, तिनको दुःख होता है, अरु ज्ञानवान् द्वैत जगत्की ओर जड हुये हैं, अरु अपने स्वरूपविषे चेतनको दुःख कछु नहीं; वह जाग्रत्की ओरते सोये हैं, तिनको अविद्यक जो जगत् है, दृश्यसंबंध सो दूर होगया है, वह इस ओरते सोये हैं,उनको बहुरि दुःख कैसे होवै, वह पुरुष सदा अद्वैतरूप है,जो अनंत जगत्को करताहै,अरु आपको सदा अकर्त्ता जानता है, ऐसे आश्चर्यपदविषे तिन्होंने विश्राम पाया है, जगत्के समूहसत्ता समानविषे स्थितकरिकै विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है, अरु वह संपूर्ण क्रियाको करते हैं, परंतु सदा अक्रियपदविषे स्थित हैं, संपूर्ण पदार्थविषे स्वप्नवत् जानिकरि सुषुप्ति भये हैं, आकाशते भी अधिक सूक्ष्म हुये हैं, आत्मसत्ताविषे विश्राम पाये हैं, सो आत्मसत्ता आकाशको भी व्याप रही है, तिसको आत्मवत् जानिकरिकै स्थित भये हैं, परम स्वच्छ जो पद है, तिसविषे सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप हो जाते हैं, आकाश भी आकाश हो जाता है, तिस पदविषे विश्राम किया है सो आश्चर्य है, अरु नेत्र उसके खुले हुये हैं, अरु सुषुप्तिविषे स्थित हैं, क्या सुषुप्ति है, जो दृग अरु दृश्य भाव उनका दूर होगया है, अरु जगत्के प्रकाशते रहित हैं, अरु परम प्रकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! बाह्य जो भोगपदार्थ हैं;तिनते रहित हैं, अंतर आत्मविषे स्थित हैं, प्रगट जो सोता है,अरु सुषुप्तिविषे जागता है,अरु जाग्रतते उसको सुषुप्ति है,वह सुषुप्ति साथ सोया है,वह कर्म करता है,परंतु कर्ताकरणभावते रहित है, क्रोध भी करता है, क्रोधके फुरणेते रहितहै, सर्व ओरते प्रकाशवान् होकरि विराजते हैं, निर्भय होकरिविश्राम करते हैं, कामना करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु तृष्णाते रहित हैं, निःसंकल्प पदविषे स्थित भये हैं, यह आश्चर्य है,जिस क्रियाकी ओर देखते हैं तिसी

और तिनको शांति भासती है, काहेते कि एक मित्र तिनके साथ रहता है, तिसकरि दुःख कोऊ तिनके निकट नहीं आता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५३ ॥

द्विशताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः २५४.

जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन्! वह मित्र कौन है,ज्ञानीका कोऊ कर्म मित्र है, अथवा आत्माविषे विश्रामका नाम मित्र है, यह संक्षेपकरि मुझको कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक अकृत्रिम कर्म है, अपना सुकर्म उनका नाम है, अपनाही जो प्रयत्न है सो उनका मित्र है, सो मैं कहता हौं सो सुन, आध्यात्मिक अधिदैविक अधिभौतिक यह तीन ताप सदा अज्ञानीको जलाते हैं, सो ज्ञानीको नहीं भासते, जो बडा कष्ट आनि प्राप्त होवै सो लंघना कठिन है, बहु कोप होवै सो भी उसको स्पर्श करता नहीं, जैसे मलको जल नहीं स्पर्श करता, तैसे ज्ञानीको कष्ट नहीं स्पर्श करता,काहेते कि मित्र उसकेसाथ रहता है,जैसे बालकका मित्र बाल होता है, सो बडा भय भी उनका हेतु होता है, तैसे चिरकाल जो ज्ञानवान्ने अभ्यास किया है सो अभ्यास इसका मित्र हो रहता है,दुष्ट क्रियाकी ओर वह विचरने नहीं देता, अरु शुभकी ओर वर्तावता है, जैसे पिता पुत्रको अशुभकी ओरते वर्जिकरि शुभकी ओर लगाता है, तैसे उसको विचाररूपी मित्र तृष्णाते वर्जना करता है,अरु आत्माकी ओर स्थिर करता है, अरु रागद्वेषरूपी जो अग्नि है, तिसते निकासकरि समतारूपी जो शीतलता है, तिसको प्राप्त करता हैं, ऐसा उसका विचाररूपी मित्र है, अरु जेते दुःख क्लेश है, तिन सबते वह तराय ले जाता है, जैसे मलाह नदीते तराय ले जाता है ॥ हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुंदर है, अरु शांतरूप है, सर्व मैलको जलावनेहारी अग्नि है, जैसे स्वर्णके मैलको

अग्नि जलायकरि निर्मल करती है, तैसे विचाररूपी अग्नि रागद्वेषरूपी मलको जलाती है, अरु जब विचार रूपी मित्र आता है,तब स्वाभाविक इसकी चेष्टा निर्मल हो जाती है, वेदउक्त विचारता है, अरु सब कोऊ उसको देखकर प्रसन्न होता है,दया अरु कोमलता अमान अक्रोधआदिक गुण स्वाभाविक आनि प्राप्त होते हैं, जैसे तिलविषे तेल रहता है, जैसे फूलविषे सुगंधि रहती है, अग्निविषे उष्णता रहती है, तैसे विचारकरि ज्ञानीविषे शुभ आचार रहते हैं, अरु विचाररूपी मित्र शूरमा है, जो कोऊ शत्रु होता है, प्रथम तिसको मारता है, अज्ञानरूपी शत्रुको नाश करता है, जैसे सूर्य तमको नाश करता है, अरु दीपक प्रकाशवत् साथ होता है, विषयभोगरूपी अंधकूप जो गंदगी है, तिसविषे गिरने नहीं देता, सर्व ओरते रक्षा करता है, अरु जिस ओरते वह पुरुष जाता है, तिस ओरते सबको प्रसन्नता उपजती है ॥ हे रामजी । वचन तिसका ऐसा होता है, जो कोमल अरु मधुर अरु स्निग्ध क्षोभते रहित उदार आत्मा अरु लोकपर उपकार अरु प्रसन्नताको लिये बोलना, अरु सुहृदता शांतरूप अरु परमार्थके कारण ॥ हे रामजी । वचन तौ तिसके ऐसे होते हैं, प्रसन्नताको लिये हुये अरु आप भी सदा प्रसन्न रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्री भर्तारको सदा प्रसन्न राखती है, तैसे विचाररूपी मित्र इसको सदा प्रसन्न राखता है,सदा शुभ आचारविषे राखता है,दान तप यज्ञादिक जो शुभ क्रिया हैं, सो आपही करता है,अरु लोकोंतेभी करावता है,अरु जिसके अंतरविषे विवेकरूपी मंत्री आता है, तहां अपने परिवारको भी साथ ले आता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उसका परिवार कौन है, अरु उसका स्वरूप क्या है, अरु उनका आचार क्या है, संक्षेपते सबही कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्नान दान तपस्या ध्यान यह चारों उसके बेटे हैं, स्नान तौ यह है जो सदा पवित्र रहता है, यथायोग्य अरु यथाशक्ति दान करता है, अरु बाहरी वृत्तिको स्थिर अंतर करना,इसका नाम तप है, अरु आत्माकी वृत्तिविषे चित्तको लगावना, इसका नाम ध्यान है, यह चारौं उसके बेटे हैं, हे आत्मदर्शी, परंतु वृत्तिको सदा स्वाभाविक अंतर्मुख व्यवहार होता है, अरु मुदिता इसकी स्त्री है, सदा

प्रसन्न रहना इसका नाम मुदिता है, सो नमस्कारके योग्य है, जैसे चंद्रमा द्वितीयाकी रेखाको देखिकरि सब कोऊ प्रसन्न रहता है, अरु नमस्कार करता है, तैसे तिसको देखिकरि सब कोऊ प्रसन्न होता है, अरु नमस्कार करता है, अरु मुदितारूपी स्त्री साथ एक सहेली रहती है, करुणा अरु दया तिसका नाम है, अरु समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खड़ी रहती है, जब विवेक राजा अंतःपुरविषे आता है, तब सन्मुख होकरि सब स्थान दिखाती है, अरु सदा संगी रहती है, अरु जिस ओर राजा देखता है तिस ओर समताही दृष्ट आती है, सो आनंदको उपजानेहारी है,सो दो पुत्र साथ लेकरि पुरीविषे विचरती है, जिस ओरते राजा भेजता है, तिस ओरते धैर्य अरु धर्मको लिये फिरती है, जब राजा असवार होकरि चलता है, तब वह भी तमरूपी वाहनपर आरूढ होकरि राजाके साथ जाती है, जब राजा शत्रुसाथ लडाई करता है, सो शत्रु कौन हैं, पांचो विषय शत्रु हैं, तब धैर्य संतोष मंत्री मंत्र देता है, तब विचाररूपी बाणसाथ तिनको नष्ट करता है ॥ हे रामजी ! विचार तिसके सदा संग रहता है, अरु सब कार्यको करता है, यह स्वाभाविक चेष्टा उसते होती है, अरु आप सदा अमान रहता है, कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तिसको कोऊ नहीं फुरता, जैसे कागजके ऊपर मूर्त्ति लिखी अभिमानते रहित होती है, तैसे वह अभिमानते रहित है, अरु जो परमार्थनिरूपणते रहित निरर्थक वचन हैं,तिनके बोलनेते पत्थरकी शिला वत् गूँग है,अरु निरर्थक संबंध सुननेते बहरा है,जैसे पाषाण नहीं सुनता, अरु जो क्रिया शास्त्र लोककरि निषेध है, तिसकी ओरते शव है जैसे शवसों कछु किया नहीं होती, तैसे उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता जहां ज्ञानवान् अरु जिज्ञासीकी सभा होती है, तहां परमार्थके निरूपणको शेषनाग अरु बृहस्पतिकी नांई होता है, सविधान इत्यादिक जो शुभ क्रिया हैं, सो उससों स्वाभाविक होती है, जैसे सूर्य चंद्रमा अरु अग्निविषे प्रकाश स्वाभाविक होता है, तैसे उनविषे स्वाभाविक शुभ क्रिया होती हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिबाह्यव्यवहारवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५४ ॥

द्विशताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः २५५.

द्वैतैकताभाववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् वास्तवते ज्ञानस्वरूप है, आत्मसत्ताका चमत्कार है, अपर कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ताही फुरणेकरिकै इसप्रकार हो भासती है, अपर कारण इसका कोऊ नहीं जब महाप्रलय था, तब शब्द अर्थ द्वैत कछु न था, तिस अद्वैतसत्ताते जगत् फुरि आया है सो तिसीते भासि आया है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, सो बीज भी जगत्का कोऊ न था, तौ किस कारणते उत्पन्न हुआ, अपर तौ कारण कोऊ न था, ताते अब भी जगत्को महाप्रलयरूप जान ॥ हे रामजी! न कोऊ पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, न जगत् है न आभास है, न फुरणा है जैसे आकाशके फूलका शब्द निरर्थक है, तैसे इनका होना भी निरर्थक है, केवल ब्रह्मसत्ता स्वच्छ अपने आपविषे स्थित है, रूप इंद्रियां मन भी ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव है, नानाप्रकारका जगत् आकार अरु इंद्रिय मन होकरि भासता है, अपर तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी यहीरूप है ॥ हे रामजी ! सर्व जगत् आत्मरूप है, जैसे कारणविना आकाशहीविषे दूसरा चंद्रमा भासि आता है सो कछु हुआ नहीं, आकाशहीविषे भासि आता है, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, जिसविषे आभास फुरा सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जेते कछु पदार्थ तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मस्वरूप जान, जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है, सो अपने अनुभवविषे होती है, उसका स्वरूप अनुभवते इतर कछु नहीं तैसे सृष्टिके आदि जो अनुभव होता है, सो अनुभवरूप है, अपर कछु उपजा नहीं, वही अनुभवसत्ता इसप्रकार भासती है ॥ हे रामजी ! देशते देशांतरको संवित् प्राप्त होती है, तिसके मध्यविषे जो अनुभव है, सो तेरा स्वरूप है, अपर सब आभासमात्र है, जाग्रत् देशको त्यागिकारि स्वप्नशरीरसाथ मिली नहीं, जो जाग्रत् स्वप्नदेशका मध्य है, सो मध्यविषे ब्रह्मसत्ता तेरा स्वरूप है, स्वप्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, जाग्रत जो जगत्

भासता है, सो भी उसीका स्वभाव है, जैसे रत्नका स्वभाव चमत्कार होता है, अग्निका स्वभाव उष्णता है, जलका स्वभाव द्रवना है, पवनका स्वभाव फुरणा है, तैसे ब्रह्मका स्वभाव जगत् है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्मविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, कि अज्ञानी सत्को असत् जानते हैं, अरु असत्को सत जानते हैं, जो अनुभवसत्ता है, तिसको छिपाते हैं, अरु शशेके शृंगवत् जगत् है, तिसको प्रत्यक्ष जानते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनको क्या कहिये, सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है, जिसको तू सूर्य देखता है, सो वही परम सूर्य देव होकरि भासता है, चंद्रमा अरु अग्नि उसीके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, सबका प्रकाश तेजसत्ता वही है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे सूक्ष्म अणु होता है, तैसे आत्मसत्ताविषे सूर्यादिक भासते हैं, जिसको साकार कहते हैं, अरु निराकार कहते हैं, सो सब शशेके सिंगवत हैं, ज्ञानवान्को ऐसे भासता है, जो जगत् कछु उपजा नहीं तौ मैं क्या कहौं, जहां सब शब्दका अभाव हो जाता है, तिसके पाछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है, तहां शून्यका भी अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिनको तू जीता जानताहै, सो जीता भी कोऊ नहीं, जो जीता नहीं तौ मुआ कैसे होवै, जोकहिये जीता है, तौ जैसे जीता है, तैसे मृतक है, मृतक अरु जीतेविषे कछु भेद नहीं, ताते सर्व शब्दते रहित अरु सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, तिसविषे नानात्व भासता भी है, परंतु हुआ कछु नहीं, पर्वत जो स्थूल दृष्ट आते हैं, सो अणुमात्र भी नहीं, जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु कछु हुये नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसते जगत् भासता है, ॥ हे रामजी ! जो परमार्थसत्ताते जगत् भासि आया सो अपर तौ कोऊ न हुआ क्यों,ताते वही सत्ता जगतरूप हो भासती है, कई कहते हैं, इस आत्मविषे हैं,कईकहते हैं,इस आत्म-विषे नहीं, सो आत्माविषे कछु दोनों शब्दका अभाव है,अरु अभावका भी अभाव है, यह भी तेरे जाननेके निमित्त कहता हौं, स्वस्थ है, परम शांतरूप है, उस अरु तेरेविषे कछु भेद नहीं, परिपूर्ण अच्युत अनंत अद्वैत है, सोई जगतरूप होकरि भासता है, जैसे कोऊ पुरुष शयन

करता है, तब सुषुप्तिविषे अद्वैतरूप हो जाता है, बहुरि सुषुप्तिते स्वप्न फुरि आता है, बहुरि सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है, तौ उपजा क्या अरु लीन क्या भया, स्वप्नके आदि भी अद्वैतसत्ता थी अरु अंत भी वही रही, अरु मध्य जो कछु भासा, सो भी वहीरूप हुआ, आत्माते इतर तौ कछु न हुआ क्यों, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! हमको तौ सदा अनुभवरूप जगत् भासता है, हम ऐसे नहीं जानते कि जो अज्ञानीको क्या भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टिते जागा है, तिसको अद्वैत, अपना आप भासताहै, तैसेही तुरीयाविषे भासता है, तुरीया अरु जाग्रतविषे भेद कछु नहीं, जाग्रतही नाम तुरीयाका है जाग्रत तुरीयारूप है, यह भी क्या कहनाहै, सबही अवस्था तुरीयारूप है, तुरीया नाम है जाग्रतसत्ताका, जो अनुभव साक्षी ज्योति है, सो जाग्रतविषेभी साक्षी अनुभवरूपहै, स्वप्नविषे साक्षीरूप है; सुषुप्तिविषे भी साक्षीरूप है, ताते सब तुरीयारूप है, परंतु जिसको स्वरूपका अनुभव हुआहै, तिस ज्ञानवान्‌को ऐसेही भासताहै, अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न अवस्था भासती है, हे रामजी ! एक पदार्थका वृत्तिने त्यागकिया है, अरु दूसरे पदार्थविषे लगी नहीं, वह जो मध्यविषे अनुभवज्योति है, तिसको तू आत्मसत्ता जान, अरु तिसविषे जो बहुरि कछु भासा, सो भी वहीरूप जान, जैसे जाग्रतको त्यागिकरि स्वप्नके आदि साक्षी अनुभवमात्र होता है, तिस सत्ताविषे स्वप्नशरीर अरु पदार्थ भासतेहैं, सो भी आत्मरूप हैं, तैसै जो कछु जाग्रत शरीर अरु पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं. जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको दुःख कोऊ स्पर्श न करैगा, जैसे स्वप्नकी सृष्टिविषे अपने स्वरूपकी स्मृति आई, तब दुःख भी अदुःख होता है, बोलना चालना खाना पीना देना इनते आदि लेकरि शब्द अरु अर्थ होते हैं, अरु युद्ध कर्म द्वैतरूप होते हैं, सो सब अद्वैत अपना आप हो जाते हैं, व्यवहार भी सब करता है परंतु अपने निश्चयविषे कछु नहीं फुरता, तैसे जो पुरुष अपने स्वरूपविषे जागेहैं, तिनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है, जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक है, जैसे बरफविषे शीतलता स्वाभाविक है, तैसे ज्ञानवान्‌को

आत्मदृष्टि स्वाभाविक है, अपर लोकको यह दृष्टि यत्नकारि प्राप्त होती है, अरु ज्ञानवान्को स्वाभाविक होती है, जिसको तुम इच्छा कहते हौ, सो ज्ञानवान्को सब भ्रमरूप है, अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है, अरु ज्ञानवान्को आत्मानंद प्राप्त हुआ है, अपना जो शुभावसर है सदा तिसविषे स्थित है, अपर कल्पना उसको कोऊ नहीं उठती, वह विद्यमान् निरावरण दृष्टिको लेकारि स्थित है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकताभाववर्णनं नाम द्विशताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५५ ॥

द्विशताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः २५६.

स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, कछु हैं नहीं, तैसे पिता माता जो आदि ब्रह्माजी है, तिसको भी आकाशरूप जान, वह भी कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताते इतर कछु उसका होना नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु बुदबुदे उठते हैं, सो स्वाभाविक हैं; तरंग शब्द कहना भी उनको नहीं बनता, वह तौ जलरूप हैं, तैसे जिसको तुम ब्रह्माजी कहते हौ सो अपर कोऊ नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, ब्रह्माजी इस जगत्का विराट् है, जैसे पत्र फूल फल टास वृक्षके अंग हैं, तैसे सब भूत विराट्के अंग हैं, जो विराट् ब्रह्माही आकाशरूप है, तौ तिसके अंग जगत्की वार्त्ता क्या कहिये ॥ हे रामजी ! विराट्के न प्राण हैं, न आकार हैं, न इंद्रियां हैं, न मन है, न बुद्धि है, न इच्छा है, केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो विराट् नहीं तौ जगत् कैसे होवै, जो तू कहै, आकाशरूपके अंग कैसे भासते हैं ? तौ ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे बड़े पहाड पर्वत प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं, परंतु कछु बने नहीं, आकाशरूप हैं, तैसे आदि विराट् भी कछु बना नहीं, आकाशरूप है, तिसके अंग मैं साकारूप कैसे हौं, सब आकार संकल्पपुरकी नांई कल्पित है, एक आत्मसत्ताही सर्वदाकाल ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे स्मृति क्या कहिये,

अरु अनुभव क्या कहिये, अनुभवस्मृति भी तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग आभास होते हैं, तैसे आत्माविषे अनुभव अरु स्मृति भी आभास है, अरु स्मृति भी तिसकी होती है, जिसका प्रथम अनुभव होता है, सो अनुभव भी जगत्‌विषे होता है, जहां जगत् भी उपजा न होवै तौ अनुभव, अरु स्मृति तिसकी कैसे होवै, ताते न अनुभव है न स्मृति है, इस कल्पनाको त्यागि देहु, जहां पृथ्वी होती है, तहां धूड भी होती है, जहां पृथ्वीते रहित आकाशही होवै, तहां धूड नहीं तैसे जहां पदार्थ होते हैं, तहां स्मृति अनुभव भी होता है, जहां पदार्थही नहीं तौ यह कैसे होवै, ताते दोनोंका अभाव है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्मृतिवान्‌विषे इष्ट स्मृतिका अनुभव तौ प्रत्यक्ष होता है, प्रथम पदार्थका अनुभव होता है, पाछे उसकी स्मृति है; तिस स्मृति संस्कारते बहुरि अनुभव होता है, ऐसेही भ्रमादिकका क्यों न होवै, यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, तुम कैसे इसका अभाव कहते हौ, अरु अभावविषे विशेषता क्या है ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्मृतिते अनुभव तहां होता है, जहां कार्यकारणभाव होता है, अरु ब्रह्माते आदि लेकरि काष्ठपर्यंत जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो सब आकाशरूप है, कछु बना नहीं, अविद्यमानही भ्रमकरि विद्यमान भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है; सो अविद्यमान है, भ्रमकरि जल भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है, अरु स्मृति तिसकी होती है, जिस पदार्थका प्रथम अनुभव होता है, जो कहिये भ्रमादिक स्मृति संस्कारते उपजा है, तौ ऐसे नहीं बनता काहेते कि प्रथम तौ ज्ञानवान्‌का स्मृतिते होना नहीं होता तौ तिनका स्मृति कारण कैसे कहिये; अरु द्वितीय यह है, कि इस जगत्‌के आदि कोऊ जगत् न था, जिसकी स्मृति मानिये इस जगत्‌के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी, तिसविषे स्मृति क्या अरु अनुभव क्या, ताते ब्रह्मादिकका होना अरु जगत्‌का होना किसी कारणकार्यभावकरि नहीं अकारण है ॥ हे रामजी ! प्रथम तौ तुम यह देखो, कि ज्ञानीको जगत् नहीं भासता तौ स्मृति किसकी कहिये, उसको तौ केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है, जैसे सूर्यको रात्रिकी स्मृति नहीं होती तैसे ज्ञानीको जगत्‌की

स्मृति नहीं होती, हमारे निश्चयविषे तौ यह है, कि जगत् न हुआ हैं, न आगे होवैगा, केवल अपने आपविषे ब्रह्मसत्ता स्थित है, सो अद्वैत है, अपर सब तिसका आभास है, जो आभासको सत् जानता है, तौ स्मृतिको भी सत् जान, अरु जो आभासको असत् जानता है, तौ स्मृतिको भी असत् जान, जैसे स्वप्नविषे सृष्टिका आभास होता है, तिसविषे अनुभव भी होता है, अरु स्मृति भी होती है, जागेते सृष्टि अनुभव स्मृतिका अभाव हो जाता है, तैसे परमात्मसत्ता अद्वैतके जाग्रत्विषे अनुभव अरु स्मृतिका अभाव हैं, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं जैसे कोऊ पुरुष मरुस्थलविषे भ्रमकरि नदी देखता है, अरु सत् जानकरि उसकी स्मृति करता है, जो नहीं देखी थी सो उसके निश्चयहीविषे नहीं है, अपर कछु नदी तौ नहीं, जो नदीही असत् है, तौ स्मृति कैसे सत् होवै, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भासा है, सो जगत्ही असत् है, तिसकी स्मृति अनुभव कैसे होवे, ज्ञानवान्के निश्चयविषे ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी ! स्मृति जो होती है, सो पदार्थकी होती है, सो पदार्थ कोऊ नहीं, सर्व ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित हैं, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है तैसाही होकरि भासता है, परंतु अपर कछु वस्तु नहीं, जैसे वायु चलता भी है, अरु ठहरता भी है, सो चलने अरु ठहरनेविषे वायुको भेद कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान् को जगत्के फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्मसत्ता अभेद भासती है, कारण कार्य नहीं भासता, जैसे पत्र टास फूल फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसे जगत् आत्माके अवयव हैं, आत्माविषे प्रगट होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं, इतर कछु नहीं, जब चित्त स्वभाव फुरता है,तब जगत् होकरि भासता है, कछु आरंभ अरु परिणाम करिकै नहीं होता, आभासमात्र है, जैसै घट पट आदिक आत्माको आभास है, तैसे स्मृति भी आभास है, स्मृति भी जगत्विषे उदय भई है, जो जगत्ही असत् है, तौ स्मृति कैसे सत् होवै, अरु जो यथार्थदर्शी हैं, तिनको सब ब्रह्मरूप भासता है, हमको न कछु मोक्ष उपाय भासता है, न इसका कोऊ अधिकारी भासता है, हमारे निश्चयविषे अद्वैत ब्रह्मसत्ताही भासती है, जैसे

नट स्वांगको धारता है, सो सब स्वांगको आभासमात्र जानताहै,किसी स्वांगको सत् नहीं जानता, सबविषे स्वांगी अनागत जानता है,तिसते इतर कछु नहीं, तैसे हमको ब्रह्मते इतर कछु नहीं भासता, अरु अज्ञानीके निश्चयको हम नहीं जानते, जिसप्रकार उसको जगत्शब्द है, सो उसके निश्चयको कोऊ नहीं जानता है, हमारे निश्चयविषे सब चिन्मात्र है, अज्ञानीको जगत् द्वैतरूप भासता है, अरु विपर्यय भावना होतीहै, ज्ञानवान्को चिन्मात्रते इतर कछु नहीं भासता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने अनुभवविषे स्थित होती है, सर्वका अधिष्ठान अनुभवसत्ता है, परंतु निद्रादोषकरिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे अज्ञानीको जगत्भिन्न भिन्न भासता है,अरु जो जागे हुये ज्ञानवान् हैं,तिसको भिन्न कछु नहीं भासता, न उनको अविद्या भासती है, न मूर्खता, न मोह भासता है, सब अपना आप हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जहां कछु दूसरी वस्तु बनी नहीं, तहां स्मृति अरु अनुभव किसका कहिये यह कलना सबही मिथ्या है ॥ हे रामजी ! सर्व अर्थका जो अर्थभूत है, सो ब्रह्म है; सब पदार्थ तिसविषे कल्पित हैं, स्मृति अरु अनुभव मनविषे होता है, सो मन आत्माविषे ऐसे है, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तिसविषे स्मृति क्या कहिये, अरु अनुभव क्या कहिये, सब कल्पितहै, यह अर्थ है, अरु पृथ्वी आदिकतत्त्व आत्माविषे कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, ज्ञानवान्को सदा ऐसेही भासता है, आभास भी आत्माविषे आभास है, कारणकार्यभाव कदाचित् नहीं भासता, जैसे सूर्यको अंधकार कदाचित् नहीं भासता, तैसे ज्ञानवान्को कारणकार्यभाव दिखाई नहीं देता, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैतसत्ता होती है, तिसविषे अकारण स्वप्नकी सृष्टि फुर आती है, तैसे अद्वैतसत्ताविषे अकारण आदि सृष्टि फुरि आई है, न पृथ्वी है, न कोऊ अपर पदार्थ है, सब चिदाकाशरूप है, अपर कछु बना नहीं,आभासमात्र जगत्विषे स्मृतिकी कल्पना कैसे होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः २५६॥

द्विशताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः २५७.

ब्रह्मजगदेवकताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिसविषे सर्व अनुभव होता है, तिसके देहविषे अहंप्रत्यय किसप्रकार होती है, वह तौ सर्वात्मा है, तिस सर्वात्माको एक देहविषे अहंप्रत्यय होना यह क्योंकरि होता है, अरु काष्ठ पाषाण पर्वत अरु चेतनका अनुभव किसप्रकार हो गया है, वह तौ अद्भुत स्वरूप है, तिसविषे जड चेतन यह दोनों भेद कैसे हुये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे शरीरविषे हाथ आदिक अपने अंग हैं, तिन सर्व अंगोंविषे एक शरीर फुरणा व्यापा हुआ है, अरु जो तिन अंगोंविषे एक अंगको पकड़करि कहै, कि नाम ले कौन है ? तब वह अपनी नाम संख्या कहता है, तौ तू देख कि उस एक अंगविषे अपना आप क्यों कहा, परंतु सर्व अंगोंविषे उसकी आत्मता तौ नाश नहीं हो जाती है, तैसे आत्मा अनुभवरूप है, तौ भी एक अंगविषे उसकी आत्मता फुरती है, तिसकरि उसकी सर्वात्मता खंडन तौ नहीं हो जाती; जैसे पत्र फूल फल टास आदिक सर्व अंगविषे वृक्ष एकही व्यापा हुआ है, परंतु जो एक टास अथवा पत्रको पकड़िकरि कहता है तौ कहता है, यह वृक्ष है, है तो इसके एक अंगविषे वृक्षभावना कहना, इसविषे वृक्षका सर्वात्मभाव नष्टनहीं होता, तैसेही सर्वात्मा एक देहविषे अहंभाव सिद्ध होता है, जड़ अरु चेतन भी दोनों भाव एकहीके धारे हैं, एकहीके दोनों स्वरूप हैं, जैसे एकही शरीरविषे दोनों सिद्ध होते हैं, हाथ पाँव आदिक जड हैं, अरु नेत्र इसका द्रष्टा चेतन है, सो एकही शरीर दोनों धारे हैं, अरु दोनों एकही शरीरका स्वरूप है, तैसे एक आत्माने दोनों धारे हैं, अरु एकहीके स्वरूप हैं, जैसे वृक्ष अपने अंगको धारता है, अरु वृक्षस्वभावको भी धारता है, तैसे सर्वात्मा सर्वको धारता है, जैसे स्वप्नसृष्टि सर्वको अनुभव धारती है, अरु सर्व क्रियाको भी धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व जगत् अरु जगत्की सर्व क्रियाको धारती है, काहेते कि सर्वात्मा है, है सो क्यों न धारै, जैसे एकही समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं,

परंतु सबही समुद्रके आश्रय हैं, अरु वही रूप हैं, तैसे जेते कछु जीव हैं, सो परमात्माविषे फुरते हैं, अरु परमात्माके आश्रय हैं, अरु वहीरूप हैं, जैसे तरंग आपको जानै कि मैं जलही हौं, तब तरंगसंज्ञा उसकी जाती रहती है, जलरूपही देखता है, तैसे जीव जब परमात्मासाथ आपको अभेद जानै कि मैं आत्माही हौं, तब जीवत्वभाव उसका अभाव हो जाता है, परमात्माही देखता है ॥ हे रामजी ! जैसे जलविषे द्रवताकरिकै तरंग भासते हैं, परंतु जलते इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदनकरिकै आदि ब्रह्मा फुरा है, तिसने यह जगत् मनोराज्यकरि कल्पा है, सो आकाशरूप निराकार है, अपर कछु बना नहीं, अरु जो विराट्ही आकाशरूप हुआ तौ उसका शरीर कैसे साकार होवै, वह भी निराकार है, जैसे अपना अनुभव स्वरूपविषे पर्वत नदियां जड चेतन होकरि भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है, सो सर्व आत्मरूप है ॥ हे रामजी ! जैसे एक निद्राके दो स्वरूप हैं, स्वप्न अरु सुषुप्ति, तैसे एकही आत्माने जड अरु चेतन दो स्वरूप धारे हैं, अरु जगत् आत्माविषे कछु बना नहीं, यह आभासरूप है, आत्मसत्ताही अपने वचनद्वारा जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे आकाशविषे घन शून्यताकरि नीलता भासती है, सो अविचारसिद्ध है, नीलता कछु बनी नहीं तैसे आत्माविषे घन चेतनाकरिकै जगत् भासता है, परंतु जगत् आकार कछु बना नहीं सर्व काल आत्मा अद्वैत निराकार है, अनंत सृष्टि आत्माविषे आभास उपजिकरि लीन हो जाती हैं, आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजि लीन हो जाते हैं, परंतु जलरूप हैं, तैसे परब्रह्मविषे सृष्टि परब्रह्मरूप है ॥ हे रामजी ! यह जगत् विराट्का शरीरहै, शीश उसका महाआकाश है, दशों दिशा तिसकी भुजा हैं, अरु पृथ्वी उसके चरण हैं, पातालरूप तलियां हैं, अंतरिक्ष मध्यलोक उसका उदर है, सर्व जीव तिसकी रोमावली हैं, इनते लेकरि सर्व पदार्थ विराट्के अंग हैं, सो विराट् आकाशरूप है, जैसे विराट् ब्रह्माजी आकाशरूप हैं, तैसे तिसका जगत् भी आकाशरूप है, ताते सर्व जगत् विराट्रूप है, सो ब्रह्मही है, अपर कछु बना नहीं, चंद्रमा सूर्य

उसके नेत्र हैं, मैं अरु तू यह इनते आदि लेकारि जेते कछु शब्द हैं, तिन शब्दोंका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म मैंहौं, कैसा हौं, जिसविषे दूसरा बना कछु नहीं, सदा मैं अपनेही आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी! जेतेकछु शास्त्रके मत हैं, शून्यवादी पांचरात्रिक शैवी शाक्तते आदि लेकारि सो सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है, जैसा किसीको निश्चय होता है, तैसा उनको फल सर्वरूप होकारि देताहै, अपर कछु बना नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५७ ॥

द्विशताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः २५८.

ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस जगत्के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी, तिसविषे जो जगत् आभास फुरा है, तिसको भी तू वही स्वरूप जान, जैसे स्वप्नके आदि अनुभव आकाश होता है, तिसविषे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, सो अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्र द्रवताकारिकै तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्मचेतनता जगत्रूप हो भासती है, सो जगत् भी वहीरूप है ॥ हे रामजी! वास्तवते न कोऊ दुःख है, न कोऊ सुख है, दुःख अरु सुखअज्ञानकारि भासते हैं, जैसे एक निद्राविषे दो वृत्ति भासती हैं, एक स्वप्नवृत्ति अरु एक सुषुप्तिवृत्ति, तैसे अज्ञानीकी दो वृत्ति होती हैं, सुखकी अरु दुःखकी, अरु ज्ञानवान्को सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नतेजाग उठता है, तो उसको स्वप्नकी सृष्टि असत्रूपभासती है, तैसे ज्ञानवान्को यह सृष्टि असत् भासती है, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलका अत्यंत अभाव जिसने जाना है, सो जलपानकी इच्छा नहीं करता, तैसे सम्यक्दर्शी जगत्को असत् जानता है, ताते जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, अरु जो असम्यक्दर्शी है, तिसको जगत् सत् भासता है, सो किसी पदार्थको ग्रहण करता है, किसीको त्याग करता है ॥ हे रामजी!

ईश्वर जो परमात्मा है, तिसविषे जगत् इसप्रकार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अरु जो तू कहै अविद्याही जगत्का कारण होवै, तौ अविद्या जगत्का कारण कहाती है, जो जगत्ते प्रथम सिद्ध होती है, सो अविद्या तौ अविद्यमान है, जैसे परमात्माविषे जगत् आभासमात्र है, तैसे अविद्या भी आभासमात्र है, जो आपही आभासमात्र होवै, सो जगत्का कारण कैसे कहिये जगत्का आभास अरु अविद्याका आभास इकट्ठाही फुरा है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासि आती है, तिसविषे घटपटादिक पदार्थ भासते हैं, सो किसी कुलालने मृत्तिका लेकारि तौ नहीं बनाये, जैसे घट भासा है, तैसे कुलाल अरु मृत्तिका भी भास आये, सबका भासना इकट्ठाही होता है, तैसे जगत् अरु अविद्या इकट्ठेही फुरे हैं, अविद्या पूर्व तौ सिद्ध नहीं होती, तौ अविद्याको जगत्का कारण कैसे मानिये ॥ हे रामजी ! परमात्माते जगत्अरु अविद्या इकट्ठाही आभास फुरा है, सो आभास कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, न कहूँ अविद्या है, न जगत् है, सदा ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता स्थित है ॥ हे रामजी ! निर्विकल्पविषे जगत्का अत्यंत अभाव होता है, सो निर्विकल्प कैसे होवै, जो निर्विकल्प होता है, तब जडता आती है, अरु जब विकल्प उठता है, तब संसार उदय होताहै, अरु जब ध्यान लगाता है, तब ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी हो जाती है, इसप्रकार तौ निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती, काहेते कि निर्विकल्पविषे भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, निर्विकल्प तिसका नाम है, जहां चित्तकी वृत्ति न फुरै, तौ तब भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, काहेते कि, तहांभी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहतीहै; वह जडात्मक सुषुप्तिरूप है, अरु सविकल्प सुषुप्ति है, तिसकेविषे भी स्वरूपकी प्राप्तिनहीं होती, ताते सम्यक्बोधका नाम निर्विकल्प है, सम्यक्बोध निर्विकल्पताकरिकै जगत्का अत्यंत अभाव जिसको भया है, सो जीवन्मुक्त है, वही निर्विकल्प कहाता है; अरु वही परम जडता है, जहां जगत्का परम असंभव है ॥ हे रामजी ! यह जो निर्विकल्प अरु सविकल्प हैं, तिसकारि स्वरूपकी प्राप्ति नहीं

होती, यह दोनों मनकी वृत्ति हैं, जैसे एक निद्राको दो वृत्ति हैं, स्वप्न सुषुप्तिरूप, तैसे यह निर्विकल्प अरु सविकल्प मनकी वृत्ति हैं, निर्विकल्प सुषुप्तिरूप पत्थरवत् अरु सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप, अरु निर्विकल्प विषे भी अभाववृत्ति रहती है, तिसकरिभी मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तब होती है, जब अत्यंत अभाव दृश्यका होवै तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! आत्मअनुभव आकाशते इतर कछु उत्थान नहीं होता, तिसका नाम अत्यंत सुषुप्ति निर्विकल्पता है ॥ हे रामजी। ऐसे होकरि तू चेष्टा भी करैगा तौ भी कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तुझको न होवैगा, आत्माको अद्वैत जानना, जगत्को अत्यंत अभाव जानना, इसका नाम बोध है, इस बोधकी दृढता होवै और तिसके ध्यानकी दृढ़ता होवै, तब उसका नाम परमपद है, उसीका नाम निर्वाण है, तिसीका नाम मोक्ष है, सो कैसा पद है, किंचन भी वही है, अकिंचन भी वही है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न नानात्व कहना है, न अनाना शब्द है, न सविकल्प कहताहै, न निर्विकल्प है, न सत् है, न असत है, न एक है, न दो हैं, सर्वशब्दका अंत है, जिसविषे किसी शब्दकरिकै वाणी नहीं प्रवर्तती, तिस सत्ताको प्राप्त होनेका उपाय मैं कहता हौं ॥ हे रामजी! यह मोक्षउपाय ग्रंथ मैं तुझको कहा है. इसको विचारना, जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है, जो पद पदार्थ जाननेवाला है, अरु जिसको मोक्षकी इच्छा है, सो इस ग्रंथको विचारता है, अरु शुभ आचार करिकै बुद्धिको निर्मल करता है, अरु अशुभ क्रियाका त्याग करै, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी ॥ हे रामजी ! जो पद मोक्षउपाय शास्त्रके विचारकरि प्राप्त होता है सो तीर्थ स्नान तप दान-करि नहीं प्राप्त होता, अरु तपदानादिककरिकै स्वर्गको प्राप्त होता है, मोक्षको नहीं प्राप्त होता, मोक्षपद अध्यात्मशास्त्रके अर्थ अभ्यासकरि प्राप्त होता है, यह जगत् आभासमात्र है, वही ब्रह्मसत्ता जगतरूप होकरि भासती है, जैसे जलही तरंगरूप होकरि भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होकरि भासता है, तैसे ब्रह्म जगत्रूप होकरि भासता है, जैसे स्पंद अरु निस्पंदविषे वायु ज्योंकी त्यों है, परंतु स्पंद होती है तब

भासती है, अरु निस्पंद होती है तब नहीं भासती, तैसे ब्रह्मविषे संवेदन फुरती है, तब जगत् हो भासती है, अरु जब निर्वेदन होती है, अंतर्मुख अधिष्ठानकी ओर आती है, तब जगत् समेटा जाता है, परंतु संवेदनके फुरणेविषे भी वही है, अरु अफुरणेविषे भी वही है ॥ ताते हे रामजी ! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मते इतर कछु बना नहीं, अरु जो इतर भासता है, सो भ्रममात्रही जानना, जब आत्मपदका आभास होवै, तब भ्रांति शांत हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदके अभ्यासकरि भ्रांति निवृत्त होती है, यद्यपि नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, परंतु कछु हुई नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि दृष्ट आती है; परंतु कछु बनी नहीं, वह अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकरि भासती है, तैसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, जैसे रत्न अरु रत्नके चमत्कारविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥ हे रामजी ! तू स्वभाव निश्चय होकरि देख, जो भ्रम मिटि जावै सृष्टि स्थिति प्रलय सब तिसकी संज्ञा हैं, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५८ ॥

द्विशताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः २५९.

परमार्थगीतावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेते कछु आकार तुझको भासते हैं, सो संवेदनरूप हैं, अपर कछु बना नहीं, सृष्टिके आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अरु अंत भी वही है, मध्यविषे जो आकार भासते हैं सो भी वहीरूप जान जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि शुद्ध संवित् होती है, तिसविषे आकार भासि आता है सोभी अनुभवरूप है, अपर कछु बना नहीं आत्मसत्ताही पिंडाकार हो भासती है, अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो वही आकाशरूप आभासमात्र हैं, अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ताही सदा शुद्ध है, परंतु अज्ञानकरि अशुद्धकी नांई भासती है, विकारते रहित है,

परंतु विकारसहित भासती है, अनाना है, परंतु नानाकी नाई भासती है, आकारते रहित है, परंतु आकारसहित भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपना अनुभवस्वरूप होती है, परंतु स्वरूपके प्रमादकारि नानाप्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है, जागेते एक आत्मरूप हो जाती है, तैसे यह सृष्टिभी अज्ञानकारि नानाप्रकार भासती है, ज्ञानकारि एकरूप भासती है, विद्यमान भासती है तौ भी असत्‌ही जान, आत्मसत्ता सदा शुद्धरूप है, अरु शांत है, अनंत है, तिसविषे देश काल पदार्थ आभासमात्र हैं, जो तू कहै आभासमात्र हैं, तौ अर्थाकार क्यों होते हैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ मिलती है, तिसविषे प्रत्यक्ष राग होता है, विषयरस होता है, सो आभासमात्र है, तैसे यह जाग्रत्‌विषे अर्थाकार क्षुधाको अन्न, तृषाको जल, अपर भी सब ऐसेही होतेहैं, अरु जेते कछु पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, जो इनका कारण विचारिये तौ कारण कोऊ नहीं पायाजाता जिसका कारण कोई न पाइये, सो जानिये कि आभासमात्र है ॥ हे रामजी ! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना, आदि जो आभास फुरा है, सो बुद्धिपूर्वक है, तिसविषे जगत्‌संकल्प दृष्ट भया, तब कारणकरिकै कार्य भासने लगा, परंतु जिनको स्वरूपका प्रमाद भया, तिनको कारणकारि कार्य भासने लगे, जो आत्मस्वभावविषे स्थित भये हैं, तिनको सर्व जगत् आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! कारणकरिकै कार्य तब होवै, जो पदार्थ भी कछु वस्तु होवै, जैसे पिताकी संज्ञा तब होती है जो पुत्र होता है, अरु जो पुत्रही न होवै तब पिता कैसे कहिये तैसे कारण तब कहिये जब कार्य होवै, जो कार्य जगत्‌ही कछु नहीं तौ कारण कैसे कहिये ॥ हे रामजी ! कारण अरु कार्य अज्ञानीके निश्चयविषे होते हैं जैसे चरखेके ऊपर बालक चढता है, वह आपही भ्रमता है, तिसको सब पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, तैसे अज्ञानीको मोहदृष्टिकरि कारणकार्यभाव दृष्ट आता है, अरु ज्ञानीको कारण कार्यभाव नहीं भासता अरु स्मृति भी जगत्‌का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत्‌ते पूर्व होवै सो स्मृतिभाव अनुभव भी इस जगत्‌विषेही फुरी है, यह भी आभास-मात्र है, परंतु जिसको भासी है, तिसको तैसाही है ॥ हे रामजी ! स्मृति

अरु संस्कार अरु अनुभव यह तीनों आभासमात्र हैं जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे तीनों भासते हैं ताते इस कलनाको त्यागिकरि जगत् आभासमात्र जान, जैसे स्वप्नविषे घट भासते हैं, जो उनका कारण मृत्तिका कहिये तौ बनती नहीं. काहेते कि घट अरु मृत्तिका आभास इकट्ठाही फुरा है, सो तौ आभासमात्र हुये तिन विषे कारण किसको कहिये, अरु कार्य किसको कहिये, तैसे स्मृतिसंस्कार अरु अनुभव जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनविषे कारण किसको कहिये अरु कार्य किसको कहिये, ताते सब जगत् आभासमात्र है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो आत्मसत्ताका आभास है, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, जैसे नेत्रका खोलना अरु मूँदना होता है, तैसे परमात्माविषे जगत्कीउत्पत्ति अरु प्रलयहोती है, जब चित्त संवेदनफुरती है, तब जगत्रूप हो भासती है जब फुरणेते रहित होती है, तब जगत् आभास मिटि जाता है, उत्पत्ति अरु जगत्की प्रलयविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; जैसे खोलना अरु मून्दना, उभय नेत्रका स्वभावहै, तैसे फुरणा अरु अफुरणा उभय संवेदनके स्वभाव हैं, जैसे चलना अरु ठहरि जाना उभय वायुके स्वभाव हैं जब चलती है तब भासती है, अरु नहीं भासती तब नहीं चलती, अरु चलनेविषे वायुकी तीन संज्ञा होती हैं, एक मंद चलती है, अथवा बहुत चलती है, शीतल अरु उष्ण स्पर्श होता है, तीसरा सुगंध दुर्गंध होती है, यह तीनों संज्ञा फुरणेविषे होती है, जब फुरणे चलनेते रहित होती है, तब तीनों संज्ञा मिटि जाती हैं, जैसे एकही अनुभवविषे स्वप्न अरु सुषुप्तिकी कल्पना होती है, स्वप्नविषे जगत्होभासता है, अरु सुषुप्तिविषे नहीं भासता, परंतु दोनोंविषे अनुभव एकही है, तैसे संवित्के फुरणेकरि जगत् भासता है, अरु ठहरनेविषे अच्युतरूप हो जाती है, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूप है, ताते जो कछु जगत् भासता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, वहीरूप है, जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय तीनों आत्माका आभास है, तिसविषे आस्था नहीं करनी ॥ हे रामजी ! यह परमसिद्धांत तुझको मैं उपदेश किया है, परंतु जिनयुक्तिकरि मैंने कहा है, तिन युक्तिकरि न किसीने कहा

है, न कोऊ कहैगा, यह अज्ञानीको बडी संसाररूपी भ्रांति उदय भई है, परंतु जो मेरे शास्त्रको वारंवार विचारैगा, तब उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, दिनके दो विभाग करै, अर्ध दिनपर्यंत मेरा शास्त्र विचारै, अरु अर्ध दिन अपने आचारविषे व्यतीत करै, अरु जो अर्ध दिन शास्त्रका विचार न करि सकै तौ एक प्रहर विचारै, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार निवृत्त होता है,तैसे इसकी भ्रांति निवृत्त होजावैगी,अरु जो मेरे वचनोंको वृथा जानिकारि निंदा करैगा, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी, काहेते जो उसने शास्त्रके पैहेको नहीं जाना, ताते इस जीवको यह कर्तव्य है, कि प्रथम अपर शास्त्रको देख विचारि लेवै, पाछेते इसको विचारै, कि उसको इस शास्त्रकी महिमा भासै ॥ हे रामजी ! यह मोक्षोपाय जो शास्त्र है,सो आत्मबोध परम कारण है, अरु यह जीव पदपदार्थको जाननेवाला होवै, अरु इस शास्त्रको वारंवार विचारै,तब इसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी,जो संपूर्ण ग्रंथके आश्रयको न जान सकै, तौ थोड़ा थोड़ा बाँचै अरु विचारै,इसके तांई सब भासि आवैगी॥ हे रामजी ! कछु यह पुरुष पदार्थको जाननेवाला होवै, सो फेरि इसके विचाणे अरु पढनेकारि बुद्धिमान् अरु प्रीतिमान् कारि लेता है, इसके विचरनेवालेकी बुद्धि अपर शास्त्रकी ओर नहीं जाती, ताते यह विचारने योग्य है, अरु जो पुरुष आत्मविचारते रहित है, तिसका जीना वृथा है, अरु जिनको यह विचार है, तिनको सब पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं, जो एक श्वास भी आत्मविचारते रहित होता है, सो वृथा जाता है, एक श्वासके समान संपूर्ण पृथ्वीका धन नहीं, जो संपूर्ण पृथ्वीके रत्न न जावैं, अरु एक श्वास गया बहुरि मांगिये तौ नहीं पाता,ऐसे श्वासको जो वृथा गँमावते हैं,तिनको तू पशु जान ॥ हे रामजी ! आयुर्बल बिजुलीके चमत्कारवत् है, जैसे बिजुलीका चमत्कार होकारि मिटि जाता है,तैसे शरीर आयुर्बल होकारि नष्ट हो जाता है, ऐसे शरीरको धारिकारि जो सुखकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् आभासमात्र है, सत् भासता है, तौ भी इसको असत् जान, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे मृतक होता है, तिसके बांधव रुदन करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव होता

है, परंतु हुआ कछु नहीं, सब भ्रांतिमात्र है, तैसे यह जगत् भ्रममात्र जान ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थगीतवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ २५९ ॥

द्विशताधिकषष्टित्तमः सर्गः २६०.

ब्रह्माण्डोपाख्यानवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जगत् तौ अनेक अरु असंख्यरूप हुयेहैं, अरु आगे होवैंगे,तिन जगत्की कथा करि मेरे तांई तुमने क्यों न उपदेश करि जगाया ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! यह जो जगत्के जालसमूहहैं,तिन-विषे जो पदार्थ हैं,सो सब शब्दअर्थते रहितहैं,जो शब्दअर्थतेरहितहुये तौ कछु क्यों न हुये ताते वही व्यर्थ कहनेका प्रयोजन क्या ॥ हे रामजी ! जब तू विदितवेद निर्मल त्रिकालदर्शी होवैगा, तब इस जगत्को तू जानैगा, अरु मैं आगे भी तुझको बहुतबार कहा है, वारंवार वही वर्णन करना इसविषे पुनरुक्ति कहिये, बहुरि कहना दूषण होता है, परंतु समु-झानेके निमित्त कहा है, जैसे एक सृष्टिको जाना, तैसे संपूर्ण सृष्टिको जाना, जैसे एक मुष्टि अन्नके समूहसों भरिकै देखी तौ जानि लिया,सब ऐसेही हैं, जैसे एक सृष्टिको यथार्थ जाना तैसे अपर सृष्टिको भी जानि लिया ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो किसी कारणकरि नहीं उत्पन्न भया, कारणविना पदार्थ जिसविषे भासा सो जानिये वही रूप है, अरु सृष्टिके आदि भी वही सत्ता थी, अरु अंत भी वही होवैगी, मध्यविषे जो कछु भासा सो भी वहीरूप जानिये, जैसे स्वप्नके आदि भी अपना अनुभव निर्मल होता है, स्वप्नके निवृत्त किये भी वही रहता है, स्वप्नके मध्य जो पदार्थ भासा, ऐसा भी वही जानिये, अपर वस्तु कछु नहीं, अनुभवसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, जब तू विदितवेद होवैगा, तब सर्व जगत् तुझको अपना आप भासैग ॥ हे रामजी ! एक एक अणुविषे अनेक सृष्टि हैं, सो आकाशरूप हैं, कछु हुई नहीं,

तिसके ऊपर एक आख्यान कहता हौं, सो सुन ॥ हे रामजी ! पद्मज-ब्रह्माजीसों मैं एक काल प्रश्न किया था, ब्रह्माजी एकांत बैठा था, मैंने कहा ॥ हे भगवन् ! यह सृष्टि केतीक है, अरु किसविषे है, तब पितामहने कहा ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु जगत् हैं तिनके शब्द अर्थ हैं, सो सब ब्रह्म-रूप हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जो अज्ञानी हैं, तिनका नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनको जगत सब आत्मरूप भासता है, जिसप्रकार जगत् हुआ है, सो सुन ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके सूक्ष्म अणुविषे फुरणा हुआ जो अहम् अस्मि, तब वह अणु आपको जीव जानत भया, जैसे अपने स्वप्नविषे आपको जीव जानै, अरु होवै सर्वात्मा, तैसे चिद् अणु सर्वात्मा अहंकारको अंगीकार कारिकै आपको जीव जानने लगा, तिसविषे जो निश्चय हो गया, तिस-कारि बुद्धि भई, जैसे वायुविषे फुरणा होवै, तैसे तिसविषे संकल्पविकल्प-रूपी फुरणा हुआ, तिसका नाम मन भया, तब मनके साथ मिलिकारि वह चिद् अणु देहको चैत्यता भया, तब अपनेविषे देह अरु इंद्रियां भासने लगीं, अपने साथ शरीर देखकारि कि यह शरीर मेरा है, जैसे स्वप्नविषे अपनेसाथ शरीरको देखै, अरु बडा स्थूल दृष्ट आवै, तैसे स्थूल शरीर अपने साथ देखता भया, जैसे स्वप्नमें सूक्ष्म अनुभवसों बड़े पर्वत दृष्ट आते हैं, तैसे सूक्ष्म अणुसों स्थूल विराट् शरीर भासने लगा, बहुरि देश कालकी कल्पना करी अरु नाना-प्रकारके स्थावर जंगम प्राणी विराट् भासने लगे, जैसे स्वप्नविषे देश काल पदार्थ भासि आवैं सो कछु हैं नहीं, तैसे देश काल पदार्थ भासि आये परंतु हैं कछु नहीं, जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब अंतर्मुख होती है, तब अवाच्यरूप हो जाती है, जैसे वायु चलने ठहरनेविषे एकरूप होताहै, तैसे फुरणे अफुरणेविषे संवित् एकही अभेद है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो आकाशविषे आका-शरूप स्थित है, अपने आपविषे स्थित है, अणुअणुप्रति सर्वदाकाल सृष्टि है, परंतु रूप क्या है, आभासमात्र है, जो चैत्यसंबंधी होकारि जीव सृष्टिका अंत लेवै, तौ सृष्टि अनंत है, इनका अंत कहूँ नहीं आता, यह

सृष्टि अविद्यारूप है, सो अविद्याही चैत्य है, जब अविद्यासंबंधी होकरि जगत्‌का अंत देखैगा, तब अंत कहूँ न आवैगा, संसरणेका नाम संसार है, जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब सब जगत् ब्रह्मरूप हो जावैगा; जगत्‌की कल्पना कछु न भासैगी ॥ हे रामजी ! इस जगत्‌के आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अरु अंत भी अद्वैतसत्ता रहैगी, मध्य जो कछु भासता है, तिसको भी वही रूप जान, अपर कछुबना नहीं, यह जगत् अकारण है, अधिष्ठानसत्ताके अज्ञानकारि भासता है, इसीका नाम जगत् है, अरु इसीका नाम अविद्या है, अधिष्ठानको जानना इसीका नाम विद्या है ॥ हे रामजी ! न कोऊ अविद्या है, न जगत् है, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, कोऊ जगत् कहौ, कोऊ ब्रह्म कहौ, एकही वस्तुके नाम हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मांडोपाख्यानं नाम द्विशताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ २६० ॥

द्विशताधिकैकषष्टितमः सर्गः २६१.

ब्रह्मगीतावर्णनम्

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह मैं जाना है कि, जगत् अकारण है, जैसे संकल्पनगर स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है, जो अकारणही है तो अब यहां पदार्थ काहेको उपजते दृष्ट आते हैं, है सकारणरूप, कारणविना तौ नहीं उत्पन्न होते भासते हैं, सो यह क्या है ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सर्वात्मा है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा होकारि भासता है, सो क्या भासता है, अपना अनुभवही ऐसे होकारि भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभवही नानाप्रकारके पदार्थ होकारि भासता है, परंतु उपजा कछु नहीं, सर्व पदार्थ आकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् कछु उपजा नहीं, कारणते रहित आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी ! आदिसृष्टि अकारण हुई है, पाछेते सृष्टिविषे आभासरूप मनने जैसा जैसा निश्चय किया है, तैसाही है, काहेते जो सर्वशक्तिरूप है, अरु अदि

सृष्टि जो उपजती है, सो अकारणरूप है, पाछेते सृष्टिकालविषे कारण कार्यरूप हुये हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कारणविना होती है, पाछेते कारणकार्य भासते हैं, अरु वास्तवते न कोऊ आकाश है, न शून्य है, न अशून्य है, न सत् है, न असत् है, न असत्के सत्के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है, न परम है, न अपरम है, न शुद्ध है, न अशुद्ध है, द्वैत कछु नहीं, सब भ्रम है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को सर्व शब्द अरु अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं, हमको तौ कारणकार्यभावकी कल्पना कछु नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकारका अभाव है, तैसे ज्ञानवान्को कारणकार्यका अभाव है, जो सर्वात्माही है, तौ कारणकार्य किसको कहिये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानीकी बात पूछता हौं, उनको कारणकार्यभाव किसनिमित्त भासता है, जो कारणकार्य नहीं तौ मृत्तिका अरु कुलाल आदि करिकै घटादिक क्योंकरि उत्पन्न होते दृष्ट आते हैं, ताते तुम कहौ कि, ज्ञानवान्को अकारण कैसे भासते हैं, अरु अज्ञानीको सकारण क्योंकरि भासते हैं, यह मेरे तांई ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न कोऊ कारण है, न कार्य है, न कोऊ अज्ञानी है मैं तुझको क्या कहौं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके निश्चयविषे जगत्की कल्पना कोऊ नहीं फुरती उनके निश्चयविषे जगत् है नहीं, तौ ज्ञानी अरु अज्ञानी क्या ॥ हे रामजी ! आकाशका वृक्ष नहीं, तौ तिसका वर्णन क्या करिये, अरु जैसे हिमालय पर्वतविषे अग्निका कणका नहीं होता. तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत् नहीं होता, ज्ञानी अज्ञानी अरु कारण कार्य यह शब्द जगत्विषे होते हैं; जो जगत्ही फुरा नहीं तौ कारण कार्य ज्ञानी अज्ञानी तुझको क्या कहौं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि सुषुप्तिविषे लीन हो जाती है, तहां शब्द अरु अर्थ कोऊ नहीं फुरता, तैसे ज्ञानवान्को निश्चयविषे जगत्ही नहीं फुरता ॥ हे रामजी ! हमको तौ सर्व ब्रह्मही भासता है, मुझको कछु कहना नहीं आता, परंतु कछु कहता हौं, तुझने पूछा है, इस निमित्त अज्ञानीके निश्चयको अंगीकार करिकै कहता हौं ॥ हे रामजी ! यह जगत् अकारण है, अरु आभासमात्र है, किसी आरंभ अरु परिणामकरि नहीं भया, जब पदार्थका कारण विचारिये तब सब

अधिष्ठान ब्रह्म निकसता है, सो अद्वैत अच्युत है, अरु सर्व इच्छाते रहित है, तिसको कारण कैसे कहिये, ताते जानाजाता है, कि जगत् आभासमात्र है, अपर बस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अकारण होती है, तिसविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, तिनका कारण विचारिये तौ सबका अधिष्ठान अनुभव निकसता है, तिसविषे आरंभ अरु परिणाम कछु हुआ नहीं, सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है, जो पुरुष स्वप्नविषे है, तिसको स्वरूपके प्रमादकरि कारण कार्य जगत भासता है, पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं, तैसे जाग्रत जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! सृष्टि आदि अकारण हुई है, पाछे सृष्टिकालविषे कारण कार्यरूप हो भासते हैं, अरु जिसको अपना वास्तव स्वरूप स्मरण है, तिसको अकारण भासता है, अरु जिस अज्ञानीको अपने वास्तव स्वरूपका प्रमाद है, तिसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है ॥ हे रामजी ! वस्तु एकही अनुभव आत्मसत्ता है, परंतु जैसा जैसा अनुभवविषे संकल्प दृढ होता है, तिसहीकी सिद्धि होती है, जिसका तीव्र संवेग होता है सोई होय भासता है, इसविषे संदेह कछु नहीं, कल्पवृक्षके पदार्थ निकस आते हैं, सो क्या है, संकल्पकी तीव्रताकरिकै प्रत्यक्ष आनि होते हैं, वह किसीका कार्य कहिये, अरु जगत् किसी कारणकारि उत्पन्न होता है, तौ महाप्रलयविषे भी कछु शेष रहता, जैसे अग्निके पाछे भस्म रह जाती है, सो तौ कछु नहीं रहता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि जागे हुए कछु नहीं रहती, तैसे महाप्रलयविषे जगत्का शेष कछु नहीं रहता, ताते जानाजाता है, कि आभासमात्र है, जैसे ध्यान विषे, ध्याता पुरुष जो किसी आकारको रचता है, तिसका कारण कोऊ नहीं होता, वह तौ आकाशरूप है, अनुभवसत्ताही फुरणेकरिकै इसप्रकार हो भासती है, आकार तौ कोऊ नहीं, जैसे गंधर्वनगर कारणते रहित भासता है, तैसे यह जगत् कारणविना भासि आया है, न कोऊ पृथ्वी है, न कोऊ जल है, न तेज वायु आकाश है, सब आकाशरूप है, परंतु संकल्पकी दृढता करिकै पिंडाकार भासता है ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष मरि जाता है, तब शरीर यहांही भस्म हो जाता है, बहुरि

परलोकविषे जो शरीर अपनेको देखता है, अरु तिस शरीरसाथ स्वर्ग नरकविषे सुख दुःख भोगता है, तिसका कारण कौन है उसका कारण कोऊ नहीं पायाजाता, अपनी चेतनताविषे संकल्पकी वासना जो दृढ हुई है, तिसके अनुसार शरीर भासता है, स्वर्गनरकविषे सुख दुःख भासते हैं, अपर तौ कछु वस्तु नहीं, सब पदार्थ संकल्पके रचे हुये हैं, सो सब आत्मरूप हैं, जैसे आकाश व्योम शून्य एकही वस्तुके नाम हैं, कोऊ जगत् कहौ, कोऊ ब्रह्म कहौ, इनविषे भेद कछु नहीं, फुरणेका नाम जगत् कहाता है, अफुरणेका नाम ब्रह्म है, जैसे वायुको चलने ठहरनेविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मको फुरणे अफुरणे संवेदनका भेद कछु नहीं, जो सम्यक्दर्शी हैं, तिनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, तिस कारणते दोष किसीविषे नहीं रहता, जो बड़ा कष्ट आनि प्राप्त होता है; तौ भी खेदवान् नहीं होता, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे युद्ध करता है, अरु उसको अपना जाग्रत स्वरूप चित्तमें आया, तब स्वप्नको स्वप्न जानत भया, तब युद्ध करता है, तौ भी दुःख मिटि जाता है, तैसे जो पुरुष परमपदविषे जागा है, तिसकी सब क्रिया होती है; परंतु आपको अक्रिय जानता है ॥ हे रामजी ! सब चेष्टा उसकी होती है, परंतु उसके निश्चयविषे क्रियाका अभिमान नहीं होता, जैसे नटुवा सब स्वांग धरता है, परंतु आपको स्वांगते रहित नटुवाही जानता है, अरु स्वांगक्रियाको असत् जानता है, काहेते कि, उसको अपना स्वरूप स्मरण है, तैसे ज्ञानवान् सब क्रियाको असत् जानता है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो अजातजात हैं; उपजे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासते हैं, परंतु उपजे कछु नहीं, अपना अनुभव इसप्रकार भासता है, तैसे यह जगत्के पदार्थ भी अनुभवरूप जान ॥ हे रामजी ! बहुत शास्त्र अरु वेद मैं तुझको किसनिमित्त सुनावौं अरु किसनिमित्त पढैं, अरु जो वेदांत शास्त्र हैं, तिन सबका सिद्धांत यही है कि, वासनाते रहित होना, इसका नाम मोक्ष है अरु वासनासहित है, तिसका नाम बंध है, अरु वासना किसकी करिये, यह तौ सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है, इसविषे क्या आस्था बढाइये, यह तौ स्वप्नके पर्वत हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतावर्णनं नाम द्विशताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ २६१ ॥

द्विशताधिकद्विषष्टितमः सर्गः २६२.

इंद्राख्यानवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! सब जगत्‌विषे दो प्रकारके पदार्थ हैं, एक अप्रत्यक्ष पदार्थ एक प्रत्यक्ष पदार्थ अरु एक मध्यभावी है, जैसे वायु अप्रत्यक्ष कहिये रूपते रहित है, परंतु स्पर्श संयोगते भासती है, सो मध्य भी प्रत्यक्ष है; अप्रत्यक्ष कहिये जो किसीसाथ मिले नहीं, सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है ॥ हे मुनीश्वर! चंद्रमाके मंडलविषे यह संवेदन जाती है, अरु बहुरि गिरती है, वृत्ति चित्त करिकै चंद्रमाको देखती है, अरु बहुरि आती है, इससे जानी जाती है कि, निराकार है, जो साकार होती है, तौ चंद्रमारूप हो जाती, बहुरि संवेदन आती है, जैसे जलविषे जल डारा बहुरि नहीं निसकता, इस कारणते जानाजाता है कि, यह अप्रत्यक्ष कहिये निराकार है ॥ हे मुनीश्वर ! इस शरीरविषे जो प्राण आते हैं, जाते हैं, अज्ञानीका आशय लेकरि मैं कहता हौं, सो कैसे आते अरु जाते हैं, अरु जो तुम कहौ, संवित् जो ज्ञानशक्ति है, सो यह शरीर अरु प्राणको लिये फिरती है; जैसे पैंडोई भारको लिये फिरता है, तैसे संवित् शरीर अरु प्राणको लिये फिरती है, तौ ऐसे कहना नहीं बनता, काहेते कि, संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है, सप्रत्यक्ष साकारसाथ तौ मिलती नहीं, वह चेष्टा क्योंकरि करै अरु जो कहौ, संवित् निराकारही चेष्टा कराती है, तौ पुरुषकी संवित् चाहती है, कि पर्वत नृत्य करै, वह तौ इसका चलाया नहीं चलता, अरु साथही कहते हैं, कि, यह पदार्थ उठि आवैं, परंतु वह नहीं उठ आते, काहेते कि, पदार्थ साकाररूप हैं, अरु वृत्ति निराकार है, इसका उत्तर कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शरीरविषे एक नाडी है, जब वह अवकाशरूपी होती है, तब उसमेंसे प्राणवायु निकसता है, अरु जब संकोचरूप होती है, तब प्राणवायु अंतर आती है, जैसे लुहारकी खल होती है, तैसे इसके अंतर पुरुष बल है, तिसकरि चेष्टा होती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! लुहारकी खल भी तब हलती है, जब उसकेसाथ बलका स्पर्श होता है, अरु स्पर्श तब होता है, जो प्रत्यक्ष वस्तु

होती है, चैतन्यता सो निराकार है, तिसको स्पर्श क्योंकारि कहिये, जो तुम कहौ, उसकी इच्छाहीकारि स्पर्श होता है, तौ हे मुनीश्वर! मैं चाहता हौं कि, मेरे सन्मुख वृक्ष है, सो गिर पडे, वह तौ गिरता नहीं, काहेते कि, इच्छा निराकार है, जो साकार स्पर्श शब्द होवै, तब उसकी शक्तिकारि गिर पडे, अरु जो इच्छाहीकारि चेष्टा होती है, तौ कर्म इंद्रियां किसनिमित्त धारी हैं, इच्छाहीकारि जगत्‌की चेष्टा होवै, अरु यह भी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकारि हो जाते हैं, अरु बहुतका एक क्योंकारि हो जाता है, एक चेतन है, जब प्राण निकस जाते हैं तब जड जैसा हो जाता है, पाषाण अरु वृक्षकी नांई हो जाता है, आत्मा तौ सर्वव्यापी है, जड कैसे हो जाता है, अरु एक पाषाण वृक्षरूप जड है, एक चेतन है, यह भेद एक आत्माविषे कैसे हुयाहै? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे संशयरूपी जो वृक्ष हैं तिन सबको मैं वचनरूपी कुहाड़ेकारि काटता हौं, जिनको तू सप्रत्यक्ष साकार कहता है, सो आकार कोऊ नहीं, सब निराकार हैं, वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ता इसप्रकार हो भासती है, यह आकार कछु बने नहीं, जैसे स्वप्न नगरविषे आकार भासते हैं; सो आकाशरूप निराकार हैं, तैसे यह आकार भी तुझको दृष्ट आते हैं सो जब निराकार हैं, अरु स्वप्नविषे जो पर्वत भासते हैं सो किसके आश्रय होते हैं, अरु देहादिक भासते हैं, सो किसके आश्रय होते हैं, ताते वह कछु बने नहीं; अनुभवसत्ताही आकाररूप हो भासती है, तैसे यह भी जान. आकार कोऊ नहीं ॥ हे रामजी! जब इन पदार्थोंका कारण विचारिये तौ कारण कोऊ नहीं निकसता, इसीते जानेजाते हैं, आभासमात्र हैं, बने कछु नहीं, आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है; अरु आत्मसात्ता अद्वैत है, परमशुद्ध है, तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, मैं आकार क्या कहौं, अरु निराकार क्या कहौं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश भी द्वैत कछु नहीं, शुद्ध आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है, जैसे संकल्पकारि रचे पदार्थ होते हैं, सो अनुभवते इतर कछु नहीं होते तैसे यह सब पदार्थ अनुभवरूप हैं, अनुभवते इतर कछु नहीं, इसके ऊपर एक आख्यान कहता हौं सो

श्रवणको शोभता है ॥ हे रामजी! आगे भी मैं तुझको कहा है, अबभी कहता हौं, प्रसंगको पायकारि जो एक कालमें एक सृष्टिविषे इंद्र ब्राह्मण था, मानौ ब्रह्माजी हैं, तिसके गृहविषे दश पुत्र होत भये, मानो दशों दिशा हैं, केते कालके पश्चात् वह मृतक भया, तिसकी स्त्री पतिव्रता थी, तिसके प्राण भी ब्राह्मणके पाछे छूटि गये, जैसे दिनके पाछे संध्या जाती है, तैसे ब्राह्मणी गई, तब तिन पुत्रोंने यथाशास्त्र क्रमकारि तिनकी क्रिया करी, बहुरि एक पहाड़की कंदराविषे जाय स्थित भये, अरु विचारत भये कि, किसी प्रकार हम ऊंचे पदको पावैं ॥ हे रामजी! आगे मैं तुझको सुनाया है, जो मंडलेश्व अरु चक्रवर्ती राजा अरु इंद्रादिकके पदको विचारत भये, बहुरि बडे भाईने निर्णय करिकै यही कहा कि, सबते ऊंचा ब्रह्माजीका पद है, जिसकी यह सब सृष्टि रची हुई है, हम दशही ब्रह्मा होवैं, ऐसे विचार करिकै दशही पद्मासन करि बैठे, यह निश्चय धारा कि, हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, सब सृष्टि हमारी रची है, ऐसे हो गये, मानौ पुतलियां लिखी हुई हैं, खानपानते रहित मास युग वर्ष व्यतीत हो गये, वह ज्योंके त्यों रहे, चलायमान न भये, जैसे जल नीची ठौरको जाता है, ऊंचे नहीं फिरता, तैसे वह अपने निश्चयको न त्यागत भये, दृढ रहे, जब केताक काल व्यतीत भया, तब उनके शरीर गिर पडे उनको पक्षी खाय गये, यह जो ब्रह्माकी वासना संयुक्त संवित् थी तिस वासना करिकै दशही ब्रह्मा हो गये, अरु दशही तिसकी सृष्टि देश काल पदार्थ नेतिसहित हो गई, जैसे हमारी सृष्टि है, तैसे वह सृष्टि भई ॥ हे रामजी ! वह सृष्टि क्यारूप हुई, आत्माही वस्तु हुई, अपर तौ कछु नहीं, कछु अपर होवै तब कहौं, ताते सृष्टिका अपर रूप कछु नहीं, अपना अनुभवही सृष्टिरूप भासताहै, जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मारूप हैं ॥ हे रामजी ! जैसे हम ब्रह्माके संकल्पविषे रचे हैं, तैसे उनने भी रचि लिये, वह भी इसप्रकार स्थित हो गये, ताते सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जो कछु कारण करिकै जगत् बना होता तौ जानाजाता कि, कछु हुआ है, इसका कारण कोऊ नहीं पाते, संकल्पमात्र आभासमात्र है, ताते कहता हौं कि, ब्रह्मही है, अपर वस्तु

कछु नहीं, जो कछु पदार्थ भासते हैं, पाषाण वृक्ष जड चेतन सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, उसते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! महाभूत जो हैं अरु वृक्ष पृथ्वी आकाश पहाड यह सब चिदाकाशरूप हैं, चिदाकाशते इतर कछु नहीं, जैसे इंद्रके पुत्र एकते अनेक हो गये, तैसे यह सृष्टि भी एकते अनेक है, अरु प्रलयविषे अनेकते एक हो जाती है, जैसे एक तू स्वप्न विषे अनेक हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे अनेकते एक हो जाता है, तैसे यह जगत् है, कैसा है, अकारणरूप है, अरु जो कारण भी मानिये तौ आत्मरूपी कुलाल है, संकल्प चक्र है, अरु अनुभव चेतनरूपी घट तिसते उपजते हैं, आभास भी वही है, कछु दूसरी वस्तु नहीं, यह सब जगत् वही रूप है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रको अपने अनुभवहीते सृष्टि फुरि-आई, सो अनुभवरूपी भासने लगा, अपर सृष्टिते कछु न भई, तैसे यह सृष्टि भी जान ॥ हे रामजी ! घट भी चैतन्य है, वृक्ष भी चैतन्य है, पृथ्वी भी चैतन्य है, जल अग्नि वायु सब चैतन्यरूप हैं, चैतन्यते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभवही घट पहाड नदियां पदार्थ हो भासते हैं, अनुभवते इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवते इतर नहीं, ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है, अब एक अनेकका उत्तर सुन ॥ हे रामजी ! जैसे मनोराज्यविषे एकते अनेक हो जाता है, अरु अनेकते एक हो जाता है, चैतन्यते जड़ हो जाता है, सो जड़ कोऊ पदार्थ नहीं भासता, पदार्थ चैतन्यरूप हैं, जहां अंतःकरण प्रगट पाता है, सो चेतन भासता है, जहां अंतःकरण नहीं पाता, सो जड़ भासता है, चैतन्यका आभास अंतःकरणविषे पाता है, जब पुर्यष्टका निकस जाती है, तब जड भासता है, यह अज्ञानीकी दृष्टि कही है, अरु मुझको पूछै तौ जिसको जड कहते हैं, अरु जिसको चेतन कहते हैं, पहाड वृक्ष पृथ्वी कहते हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे कई जड भासते हैं, कई चेतन भासते हैं, नानाप्रकारके पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् सब आत्मरूप है, इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप है, सब नामरूप आत्माके

हैं, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, शून्य अशून्य सत् असत् सब आत्माके नाम हैं, आत्माते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जिसको मूर्ख जड कहते हैं, सो जड नहीं, सब चैतन्यरूप हैं, अरु सृष्टिकालविषे जडही है, वह संवेदनविषे जडीरूप होकरि रचित हुए हैं, वह चैतन्यही रचे हैं, जिनको अपने वास्तवस्वरूपका प्रमाद है, तिनको जड चेतन भिन्न भिन्न भासते हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको एक ब्रह्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको उपदेश किया है, सो वारं-वार विचारने योग्य है, जो कोऊ इसको नित्य विचारता रहैगा तिसके दोष घटते जावैंगे, अरु हृदय शुद्ध होवैगा, अरु जो ब्रह्मविद्याको त्यागिकरि जगत्की ओर चित्त लगावैगा, तिसके दोष बढते जावैंगे॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों इस जीवको ब्रह्मविचार उदय होता जावैगा, त्यों त्यों दुःख नाश होते जावैंगे, ज्यों ज्यों दिन होता है, त्यों त्यों तम नष्ट हो जाता है, विचारके त्यागे दुःख बढते जाते हैं, जो महापापी हैं तिनके पाप मेरे शास्त्रका संग न करने देवैंगे, तिनको यह जगत् वज्रसारकी नांई दृष्ट रहता है, संसारभ्रम निवृत्त कदाचित् नहीं होता, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप है, मैं तू अरु भाव अभाव आदिक जेते कछु शब्द हैं, सो सब ब्रह्मसत्ताके नाम हैं, सो कैसी सत्ता है, परम शुद्ध है, अरु निरामय है, अरु अद्वैत है, सदा अपनेही आपविषे स्थित है, अरु तिसविषे जेते पदार्थ भासतेहैं, सो ऐसे हैं, जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, सो शिल्पीके चित्तविषे होती हैं, तैसे जगत्के पदार्थकी प्रतिभा सब मनविषे है, सो क्या रूप है, उसीका किंचनरूप है, सो किंचन कछु भिन्न वस्तु नहीं, जो सदा अपने आपविषे स्थित है, परम मौनरूप है, तिसविषे विकल्प कोऊ नहीं प्रवेश करि सकता इति ॥ श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्राख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ २६२ ॥

द्विशताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः २६३.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व लोक चिन्मात्र इसीते शांतरूप हैं, अरु अद्वैतरूप हैं, अज्ञानीको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, ज्ञानीको सब निराकार आकाशरूप हैं, आकार कछु बने नहीं, आत्मसत्ता निराकार है, वही परम शुद्ध सत्ता इसप्रकार भासती है, सो शांतरूप है, अनंत है, चिन्मात्र है, इंद्रियां भी ज्ञानरूप हैं, हाड मांस रुधिर हाथ पैर शिर आदिक संपूर्ण शरीर ज्ञानमात्र है, ज्ञानते इतर कछु नहीं, चिन्मात्रही इसप्रकार भासता है, जैसे स्वप्नविषे शरीरादिक अरु पहाड नदियां वृक्ष भासते हैं, सो अपनाही अनुभवरूप है, अपर कछु बना नहीं, तैसे यह जगत् सब अनुभवरूप हैं, कारणरहित कार्य भासता है, तू अपने अनुभवविषे जागिकरि देख कि, सब अनुभवरूप है, आकाशविषे आकाश भी आकाशरूप हैं, सत्‌विषे सत् है, भावविषे भाव है, अभावविषे अभाव है, सर्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, अरु जो तू कहै वस्तु कारणहीते उत्पत्ति होती है, सो सत् होती है, परंतु जगत्का कारण कहूं नहीं पायाजाता ताते यह मिथ्या है, कारणभी इसका तब कहिये जब यह कछु वस्तु होवै; अरु कार्य भी तब कहिये जब इसका कारण सत् होवे ॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता तौ न किसीका समवायि कारण है, न किसीका निमित्तकारण है, अच्युत है, इसीते समवायिकारण नहीं अरु अद्वैत है, ताते निमित्तकारण भी नहीं, सर्व इच्छाते रहित है, तिनको कारण किसका कहिये, जो कारण नहीं, तौ कार्य किसका होवै, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो आभासमात्र है, उसी ब्रह्मसत्ताका नाम जगत् है, जैसे निद्रा एक है, तिसके दो स्वरूप हैं, एक स्वप्न, एक सुषुप्ति रूप है, फुरणेरूपका नाम स्वप्न है, अफुरणेरूपका नाम सुषुप्ति है, तैसे दो स्वरूप चेतनके हैं, फुरणेरूप चेतनका नाम जगत्, अफुरणेरूपका नाम ब्रह्म है, जैसे एकही वायुके चलना ठहरना दो पर्याय हैं, जब चलती है तब लखनेविषे आती है, अरु ठहरती है तब अलक्ष

हो जाती है, शब्दका विषय नहीं होती, तैसे ब्रह्मसत्ता अफुरणेविषे शब्दकी प्रवृत्ति नहीं होती, जब फुरती है, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी रूप हो भासती है, एकते अनेकरूप हो भासती है, अनेकते एकरूप है, जैसे एकही जल नदी नाला तलाब आदिक भिन्न भिन्न संज्ञाको पाते हैं, अरु जब समुद्रविषे मिलते हैं, तब एकरूप हो भासते हैं, जैसे एकही कालके बहुत नाम होते हैं, दिन मास वर्ष युग कल्प घटी मुहूर्त आदिक नामको पाता है, परंतु काल तौ एकही है, जैसे मृत्तिकाकी सेना हस्ती घोडे आदिक बहुत नाम होते हैं, परंतु मृत्तिका तौ एकही है, जैसे फूल फल टास पत्र भिन्न भिन्न नाम होते हैं, परंतु वृक्ष तौ एकहीरूप है, जैसे तरंग बुद्बुदे आवृत फेन आदिक नाम होते हैं, परंतु जल एकही है, तैसे परमात्माविषे जगत् अनेकरूप नामको प्राप्त होता है, परंतु सदा एकही रसरूप है, जैसे स्वप्नविषे एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है, अरु भिन्न भिन्न नामरूप हो भासती हैं, जब जागता है, तब अद्वैतरूप होता है, तैसे यह जगत् भी भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है, परंतु आत्मसत्ता एकहीरूप है ॥ हे रामजी ! जब तू तिसविषे जागैगा, तब तुझको सब अपनेआप अनुभवही भासैगा, सो अनुभव कैसा है, केवल आत्मत्वमात्र है, अनन्य अनुभवरूप है, सो आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी जलके कणके हैं, जैसे आकाशविषे नक्षत्र फुरते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् फुरते हैं, आकाशते तारे भिन्न हैं, परंतु आत्माते जगत् भिन्न नहीं, जलते बुन्द अभिन्न हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ २६३ ॥

द्विशताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः २६४.

ब्रह्मगीतागौरीबागवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! अंधकारविषे जो पदार्थ होता है, सो ज्योंका त्यों नहीं भासता अरु सूर्यका प्रकाश होता है, तब ज्योंका त्यों

भासता है, यह निमित्त कहता हौं जो संशयरूपी तमकरिकै जगत् ज्योंका त्यों नहीं भासता, तुम्हारे वचनरूपी सूर्यके प्रकाशकरिकै जो पदार्थ वस्तु है, तिसको सम्यक् ज्ञानकरि जानौंगा ॥ हे भगवन्! पूर्व एक इतिहास हुआ है, तिसविषे मुझको संशय है, सो दूर करहु ॥ हे प्रभो! एककालमें अध्ययन शालाविषे विपश्चित् पंडितसों अध्ययन करता था, अरु बहुत ब्राह्मण बैठे थे, तब एक ब्राह्मण विदितवेद अरु बहुत सुंदर अरु वेदांत सांख्यशास्त्रके अर्थकरि संपन्न जो सबही उसके कंठविषे था अरु बडा तपस्वी ब्रह्मलक्ष्मी करिकै तेजवान् मनौ दुर्वासा ब्राह्मण है, ऐसा ब्राह्मण सभाविषे अया, परस्पर नमस्कार करिकै आसनपर स्थित भया, हम सबने उसको प्रणाम किया और पण्डित परस्परवेदांत सांख्य पातंजलादिक शास्त्रोंकी चर्चा करते थे सो सब तूष्णीं हो गये, अरु मैं तिससों बोला कि हे ब्राह्मण! तुम बडे मार्ग करिकै अयेहो तुम्हारा पैंडा करणा किसपरमार्थनिमित्त होता है, तुम मार्ग संगकरि कहांते आयेहौ सो कहौ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तांत है सो मैं कहता हौं ॥ हे रामजी! विदेह नगरका मैं ब्रह्मण हौं, तहां मैं जन्म लिया था, अरु कुंद एक बूंटा होताहै, तिसका फूल श्वेत है, तिस जैसे मेरे दंतहैं, इस कारणते मेरा नाम पितामाताने कुंददंत रक्खा है, विदेह राजा जनकका जो नगर है तहाँसों आया हौं सो कैसा नगर है, आकाशविषे जो स्वर्ग है तिसका मानौ प्रतिबिंब है अरु सबही शांतिवान् अरु निर्मल तहांके रहने वालेहैं, तहां मैं विद्या पढने लगा तिसकरि मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूरबंधन है, किसप्रकार इस बंधनते छूटौं ॥ हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ कि, किसप्रकार शांतिमान् होऊं, तब वहांते मैं निकसा, जो जो शुभ स्थान थे, तहां विचरने लगा, संतऋषिनके स्थान अरु ठाकुरद्वारे तिर्थ इनते आदि लेकरि जो पवित्र स्थान हैं, तिनका दर्शन किया, तहांते आते एक पर्वत था, तिस ऊपर मैं गया, तहां जायकरि तप करने लगा, चिरपर्यंत मैं तप किया, बहुरि वहांते एकांतके निमित्त आगे चला, तहां एक आश्चर्य देखा, सो कहता हौं ॥ हे रामजी! मैं वहांते चला आता था, जो बडा वन है, अरु बहुत श्याम है, मानौ आकाशकी मूर्त्ति है,

शून्य अरु तमरूप है, तिस वनविषे एक कोमल वृक्ष मुझको दृष्ट आया, जिसके पत्र हैं, अरु सुंदर टास हैं, तिसके साथ एक पुरुष लटकता है, पांवविषे मुंजका रस्सा है, वृक्षसाथ बांधा हुआ है, शीश नीचे अरु चरण ऊपरको दोनों हाथ छातीपर जुडे हुये, अरु लटकता है, तब मैंने विचार किया कि, यह मृतक न होवै, इसको देखौं, जब मैं निकट गया, तब उसके श्वास आते जाते देखे, अरु शरीर युवा अवस्था कांतिवारी हुई; अरु अंतरते सबका ज्ञाता शीत उष्ण अरु अंधेरी मेघको सह रहाहै, जानता सबको है, परंतु सहि रहा है ॥ हे रामजी ! तब मैं जानत भया कि, यह तपस्वी है, इसकी बडी शूरवीरता है, तब मैं उसके निकट बैठि गया, अरु उसके चरण जो बांधे हुये थे, तिनको कछु ढीला किया, बहुरि उससे मैंने कहा ॥ हे साधो ! ऐसी क्रूर तपस्या तू किसनिमित्त करता है, अपना वृत्तांत मुझको कहु ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार मैंने कहा तब वह नेत्रको खोलिकै कहत भया ॥ हे साधो ! यह तप मैं किसी अपनी कामनाके अर्थ करता हौं, सो ऐसी कामना है, जो तुम सुनौगे तब हांसी करौगे ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने कहा, तब मैंने कहा ॥ हे साधो ! कछु हांसी न करौंगा तू अपना वृत्तांत कहु, अरु जो तेरा कछु कार्य होवैगा, अरु मुझसों होवैगा सो मैं करौंगा, जब मैंने इसप्रकार वारंवार कहा, तब उसने कहा, मनको उद्वेगते रहित करिकै सुन, मैं कहता हौं ॥ हे साधो ! मैं ब्राह्मण हौं, अरु मथुराविषे मेरा जन्म है, तहां जब बाल अवस्था मेरी व्यतीत भई, अरु यौवन अवस्थाका आदि हुआ, तब वेद अरु शास्त्रको मैं भली प्रकार जाना, तब एक वासना आनि उदय भई कि, सबते बडा सुख राजा पता और भोगता है, ताते मैं राजा होऊं, अरु सुख भोगौं कि, क्या सुख है, अपर सुख मैंने भोगे हैं, बहुरि विचार किया कि, राज्यका सुख तब भोगौं, जब राजा होऊं, सो राजा क्योंकरि होऊं, राज्य तब होता है, जब तप करता है, ताते मैं तप करा ॥ हे साधो ! ऐसे विचार कर मैं तप करने लगा हौं, द्वादश वर्ष व्यतीत भये हैं, अरु आगे भी करौंगा, जबलग सप्तद्वीपका राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता, तबलग तप करौंगा, यही निश्चय मैंने धारा है, मेरा शरीरही नष्ट हो गया,

अथवा सप्त द्वीपका राज्य मुझको प्राप्त भया, यह मेरा निश्चय है, सो मैंने तुझको कहा है, अब जहां जानेकी तुझको इच्छा होय तहां जावहु॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकर उस तपस्वीने बहुरि नेत्र मूंदिकरि चित्त स्थिर करनेको समाधानकरि इंद्रियकरि विषयका त्याग करि मन निश्चल किया, तब मैंने उससे कहा ॥ हे मुनीश्वर! मैं भी तेरे पास बैठा हौं, जबलग तेरे तांई वरकी प्राप्ति नहीं होती, तबलग मैं तेरी टहल करौंगा, मेरे तांई तेरे ऊपर दया आई है ॥ हे रामजी! इसप्रकार मैं उससे कहकरि षट्मासपर्यंत मैं उसकेपास बैठा रहा, उसकी रक्षा करत रहा, जब धूप आवै तब छाया करौं, आंधी मेघविषे अपने शरीरको कष्ट देके रक्षा करौं, उद्वेगते रहित षट्मास जब बीते, तब सूर्यके मंडलतें एक पुरुष निकसा, बडा प्रकाशवान् जैसे विष्णु भगवान्का तेज है, तैसे तेजवान् भासिकरि हमारे निकट आया, तिसको देखकर मैंने मन वाणी शरीर तीनोकरि पूजा करी, तब इस पुरुषने कहा ॥ हे तपस्वी! अब इस तपको त्याग, अरु जो कछु इच्छा है सो मांग, तेरी इच्छा तौ यही है, कि मैं सप्तद्वीपका राजा होऊं, सो तू सप्तद्वीप पृथ्वीका राजा होवैगा, अरु सप्तसहस्र वर्षपर्यंत राज्य करैगा, परंतु अपर शरीरसाथ होवैगा॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिकरि वह पुरुष सूर्यके मंडलविषे अंतर्धान हो गया, जैसे समुद्रते तरंग निकसकर लय हो जावैं, तैसे लीन भया, तब उसको मैंने कहा॥ हे ब्राह्मण! अब क्यों तू संकट लेता है, जिस निमित्त तू तप करता था सो वर तो तुझको प्राप्त भया, अब क्यों संकट करता है ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार मैंने कहा, जो सूर्यके मंडलते एक पुरुष बडा तेजवान् निकसकर तुझको वर दे गया है, तब नेत्र खोले, अरु मैं उसके चरणोंसों रसड़ी खोली, तब उसका तेज बडा हो गया, उसके शरीरकी कांति प्रकाशवान् भई, तब निकट एक जलते रहित तालावथा उसके पुण्यकरि वह भी जलसों पूर्ण हो गया तिसविषे हम दोनोंने स्नान किया बहुरि मंत्रपाठ किया, अरु संध्याकरि बहुरि हम दोनों वृक्षके नीचे आये, जो वृक्ष फलते रहित था, सो फलकरि पूर्ण हो गया उसकी पुण्यवासनाकरिकै उन फलनका भक्षण किया, तीन दिनपर्यंत वहां रहा

बहुरि चला अरु कहत भया ॥ हे साधो ! हम देशको चले हैं, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी हैं, आगे एक वन आया बहुत सुंदर फूल फल बूँटे सले हुए हैं, भँवरे विचरते हैं, जलके प्रवाह चलते हैं, कोयल अरु तोते अरु बगले इनते आदि लेकरि पक्षी पशु वृक्ष हम देखत भये, आगे ताल वृक्ष बहुत देखे, बहुरि आगे कंदराके स्थानआये ऐसे स्थान हम लंघते गये ॥ हे रामजी ! राजसी तामसी सात्त्विकी तीनों गुणके रचे स्थानको लंघते मथुरा नगरके मार्ग आये; जो सीधा मार्ग था, तिसको छांडिकरि वह टेढे मार्ग चला, तब मैंने कहा ॥ हे साधो ! सूधे मार्गको छांडिकरि तू टेढा क्यों चलता है, तब उसने कहा ॥ हे साधो ! तू चला आऊ, इस मार्गमें गौरी भगवतीका स्थान है, तिनका दर्शन करते जावैं, अरु मेरे अपर सप्त भाई गौरीके स्थानपर इसी कामनाको लेकरि तप करते थे, तिनकी भी सुधि ले आवैं ॥ हे रामजी ! जब हम उस मार्गके सन्मुख चले तब आगे एक महाशून्य वन था, मानौ शून्य आकाश है, महातमरूपहै, तहां कोऊ वृक्ष दृष्ट न आवै, अपर पशु पक्षी मनुष्य कोऊ दृष्ट न आवैं, तिस वनविषे उसने मुझेको कहा॥हेब्राह्मण ! इस स्थानविषे मैं आगे षट्मास रहा हौं, अरु मेरे सप्त भाई अपर थे उन्होंने भी यह कामना धरिकारि देवीका तप आरंभ किया था, चलौ देखिये, महापवित्र स्थान है, जिसके दर्शन कियेते संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, तब मैंने कहा चलिये, पवित्र स्थानको देखा चाहिये॥हे रामजी ! ऐसे विचार करि चले जावैं, जाते मरुस्थलकी तपी हुई पृथ्वीपर जाय निकसो, वह ब्राह्मण देखकर गिर पडा, अरु कहत भया ॥ हा कष्ट ! हा कष्ट हम कहां आनि पड़े, मुझको भी भ्रम उदय हुआ कि, यह क्या भया बहुरि उठा, उठिकरि आगे गये, तब एक वृक्ष हमको दृष्ट पडा, तिसके नीचे एक तपस्वी बैठा है, ध्यानविषे स्थित देखकरि हम तिसके निकट गये जायकरि कहा ॥ हे मुनीश्वर ! जाग जाग, जब हम बहुतवार कहा, तब उसने नेत्र खोलिकरि हमको देखा, अरु कहा कौन हौ तुम कौन हौ, ऐसे कहकरि कहा, बहुत आश्चर्य है, यहां गौरीका स्थान था, वह कहां गया, वृक्ष बावलियां कमल थे, वह कहां गये, बडे सुंदर

स्थान थे सो कहां गये, अरु बडे ऋषीश्वर मुनीश्वरके स्थान थे सो कहां गये? हे साधो! यह क्या आश्चर्य हुआ, सो तुम कहौ, तब हमने कहा ॥ हे मुनीश्वर! हम नहीं जानते, हम तौ अब आये हैं, इसको तुमहीं जानहु, तब कहत भया, बडा आश्चर्य है ॥ हे रामजी! ऐसे कह-कर बहुरि ध्यानविषे स्थित हो गया, अरु व्यतीत वृत्तांतका ध्यान कारि देखत भया, एक मुहूर्तपर्यंत देखकारि बहुरि नेत्र खोलकारि कहा, बडा आश्चर्य होय बीता है, तब हमने कहा ॥ हे भगवन्! जो कछु वृत्तांत हुआ हो सो कृपा करिकै हमको कहौ, तब तपस्वीने कहा ॥ हे साधो! वहां एक समय वागीश्वरी भवानी इस वनविषे आती भई, तिसने एक हरनेका स्थान बनाया, तिसविषे शिवकी अर्ध शरीर गौरी रहत भई, अरु उस स्थानके निकट बहुत सुंदर वृक्ष लगाये, कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदंब वृक्ष इत्यादिक बहुत लगाये, अरु कमल फूल आदि लेकारि सर्व ऋतुक फूल लगाये, बावलियां, बगीचे रमणीय रचे, अरु कोयल भँवरे तोते मोर बगले इनते आदि लेकारि जो पक्षी हैं, सो विश्राम करैं, अरु शब्द करैं अरु निकट ऋषीश्वर मुनीश्वर तपस्वीकी कुटिया मानौ इंद्रका नंदनवन है, अरु निकट गांवकी वस्ती बहुत आनि हुई ॥ हे साधो! यहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आये थे, षट्मास यहां रह गये हैं, बहुत सुंदर स्थान है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतागौरीवागवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः ॥ २६४ ॥

द्विशताधिकपंचषष्टितमः सर्गः २६५.

ब्राह्मणकथावर्णनम्।

कदंब उवाच ॥ हे साधो! मुझ सों पूछा तौ अपना वृत्तांत मैं कहता हौं, मैं मालव देशका राजा था, अरु चिरपर्यंत खेदते रहित मैं विषयभोग भोगे हैं, बहुरि मुझको यह विचार आनि उपजा कि. यह संसार स्वप्नमात्र है, इसको सत् जान स्थित होना मूर्खता है, एती आयुर्बल मेरी बीति

गई, मैं सुकृत कछु न किया यह विषयभोग आपातरमणीय नाशवंत हैं, इनको मैं चिरपर्यंत भोगता रहा हौं अरु मुझको शांति न प्राप्त भई, तृष्णा बढ़ती गई, ताते वही उपाय करौं जिसकरि मुझको शांति प्राप्त होवै, बहुरि दुःखी कदाचित् न होऊं ॥ हे साधो ! यह विचार मुझको आनि उदय भया, तब मैं वैराग्य करिकै राज्यकी लक्ष्मी त्याग करी, ऋषि अरु मुनिके स्थान देखता इस कदंब वृक्षके नीचे आनि स्थित भया, अरु ब्राह्मण आठ भाई आये थे, सो एक तौ यह इसी पर्वतके ऊपर तप करने जाय लगा था, अरु एक स्वामी कर्तिकके पर्वत ऊपर तप करने लगा था, एक बनारसविषे तप करने लगा, एक हिमालयके ऊपर तप करने लगा, चार भाई तौ इसप्रकार चारों स्थानोंको गये, अरु अपर चार भाई यहां तप करने लगे, अरु कामना आठौं की है कि, हम सप्तद्वीपपृथ्वीके राजा होवैं ॥ हे साधो ! इसको तो सूर्यने वर दिया है, अरु अपर जो सात थे, तिनने वागीश्वरी भवानीको इष्ट करिकै तप किया, जब वह प्रसन्न भई, अरु कहा, वर मांगहु, तब उन्होंने कहा, हम सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा होवैं, सातने एकै वर मांगा, तिनको वर देकरि परमेश्वरी अंतर्धान हो गई, अरु यह भी वर मांगा जो यहांके वासी हैं, तिनका स्थान भी हमारे पास होवै ॥ हे साधो ! इस वरको पाइकरि वहांते चले, अपने गृह गये, अरु वह सदाशिवकी अर्धशरीर बारह वर्षपर्यन्त रही, बहुरि उनकी मर्यादा थापनेनिमित्त वहांते अंतर्धान हो गई, यहांके वासी भी सब जाते रहे, वागीश्वरीके जानेकरि यह स्थान शून्य हो गया, एक यह कदंब वृक्षही बचा है, एक मैं ध्यानविषे स्थित रहा हौं, यह वृक्ष भी रहा है, जो वागीश्वरीने अपने हाथकरि लगाया है, इस कारणते यह नष्ट नहीं भया, अरु जर्जरीभाव भी नहीं भया ॥ हे साधो इसके पास जो वस्तीवाले मनुष्य थे सो भी जाते रहे ॥ भगवती अंतर्धान हो गई, मैं ध्याननिष्ठ हो रहा, अपर जीव यहां आयकरि अदृष्ट हो गये, इसकारण सब शुभ आचार रहे अरु उन आठों भाईविषे एक यह बैठा है, इसको भी घर जाना है, सात आगे गये हैं, वहां सब एकट्ठे जाय होवैंगे; जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरीविषे एकत्र होवैं तैसे एकत्र होवैंगे ॥ हे साधो ! जब गृहते तप करने

निमित्त निकसे थे, इनकी स्त्रियोंने विचार किया कि, हमारे भर्ता तौ तप करने गये हैं, हम भी जाय तप करैं, तिन आठने तप आरंभ किया, सो सौ चांद्रायण व्रत तिनने करे, महाकृश जैसे शरीर हो गये, जैसे वसंत ऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे कृश हो जाती है, तैसे वह हो गईं, एक भर्ताका वियोग दूसरा तपकरि कृश हो गईं, तब पार्वती वागीश्वरी प्रसन्न भई अरु कहा कछु वर मांगहु, जैसे मेघको देखिकरि मोर प्रसन्न होकरि बोलता है, तैसे वह प्रसन्न होके बोलीं ॥ हे देवतोंकी ईश्वरी ! हम यह वर मांगती हैं, कि हमारे भर्ता अमर होवैं, जैसे तेरा अरु शिवका संयोग है, तैसे हमारा भी होवै, तब भवानिने कहा ॥ हे सुभद्रे ! इस शरीरकरि तो अमर किसीने नहीं रहना, आदि जो सृष्टि हुई है, तिसविषे नीति हुई है, जो शरीरकरि किसीने नहीं रहना, जेता कछु जगत् देखाजाता है, सो सब नाशरूप है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, अपर कछु वर मांगौ, तब उन ब्राह्मणियोंने कहा ॥ हे देवी ! भला जो जो हमारे भर्ता मरैं तौ इनके जीव हमारे गृहविषे रहैं इनकी संवित् बाहर न जावैं तब वागीश्वरीने कहा, ऐसेही होवैगा, उनके जीव तुम्हारेही घरविषे रहैंगे अरु उनको जो लोकांतर भासैगा, तिससाथही तुम भी उनकी स्त्री होकरि स्थित होवोगी, ऐसे कहकरि अंतर्धान हो गई ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, बहुरि मैंने कहा ॥ हे मुनीश्व ! तुझने आश्चर्यकथा सुनाई है कि, आठौं भाईने एकही वर पाया; सप्तद्वीप पृथ्वीका एकही पृथ्वीविषे तिन सबको राज्य क्योंकरि प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार उसको मैंने कहा, तब कदंबतपा कहत भया ॥ हे साधो ! यह क्या आश्चर्य है, अपर आश्चर्य सुन ॥ हे ब्राह्मण ! जब यह आठौं भई तपके निमित्त घरते निकसे थे, तब इनके जो पिता माता थे, तिनने विचार किया कि, हमारे पुत्र तप करने गये हैं, हम भी उनके निमित्त जाय तप करैं, उनकी स्त्रियां साथ लेकरि तीर्थ अरु ठाकुरद्वारे दिखावते फिरे, दिखाइके उन्होंने एकांत बैठि करि तप किया, तब कृच्छ्र-चांद्रायण करिकै देवीको प्रसन्न कीनी, अरु वर लेकरि अपने घरको आने लगे, तब एक स्थानविषे दुर्वासा ऋषीश्वर

बैठा था, जैसा दुर्बल जैसे अंग तिसके अरु विभूति लगाई हुई, अरु बडी जटा खुली हुई, तिसको देखिकरि पासतेही लंघकरि चले गये, तिसको नमस्कार न किया, तब उसने कहा ॥ हे ब्राह्मण ! तू क्यों दुष्ट स्वभाव करिकै हमारे पाससे चला गया; हमको नमस्कार भी न किया अब तेरे वर निवृत्त होवैंगे, जो तुमको प्राप्त हुआ है; सो न होवैगा, विपरीत हो जावैगा, तब उनने कहा ॥ हे मुनीश्वर ! यह बचन कैसे कहते हौ, हमारे ऊपर क्षमा करो, यह ऐसेही कहते रहे कि वह अंतर्धान हो गया, तब ऐसे सुनकरि यह अपने गृहविषे शोकवान् होकरि आय स्थित भये ॥ तौ हे ब्राह्मण ! तू देख कि, जबलग आत्मबोधते शून्य है, तबलग अनेक दुःख उपजैंगे, कई प्रकारके आश्चर्य भासैंगे, संदेह दूर न होवैगा अरु जब आत्मबोध हुआ तब कोऊ संशय आश्चर्य न भासैगा ॥ हे ब्राह्मण ! यह सब चिदाकाशविषे मायामात्रही रचना बनती ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणकथावर्णनं नाम द्विशताधिकपंचषष्टितमः सर्गः ॥ २६५ ॥

द्विशताधिकषट्षष्टितमः सर्गः २६६.
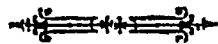
ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनम् ।

कुंददंत उवाच ॥ हे भगवन् ! मैं यह सुनिकरि आश्चर्यवान् हुआ हौं, अरु एक संशय उत्पन्न हुआ है, सो निवृत्त करौ, तुमने कहा, इकट्ठे एक द्वीपविषे आठौ सप्त द्वीपके राजे होवैंगे, द्वीप तौ सप्त एकही अरु राज्य करनेवाले आठ, यह कैसे राज्य करैंगे, अरु इनने वर भी पाया, अरु शाप भी पाया, यह इकट्ठे क्योंकरि होवैंगे, जैसे धूप अरु छाया इकट्ठी होनी आश्चर्य है, जैसे दिन अरु रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं, तैसे वर अरु शाप एक होने कठिन हैं ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! जो कछु इनकी भविष्यत् होनी है, सो मैं कहता हौं, जब केताक काल गृहस्थविषे व्यतीत होवैगा, तब इनके शरीर छूटते जावैंगे, क्रमकरिकै आठके शरीर छूटैंगे, इनको कुटुंबी जलावैंगे, इनकी पुर्यष्टका अनुभवसाथ मिली हुई एक

मुहूर्तपर्यंत जडीभूत सुषुप्त होवैगी, तिसके अनंतर चेतनता फुरि आवैगी शंख चक्र गदा पद्म चतुर्भुज विष्णुका रूप धारिके वर आवैंगे अरु त्रिनेत्र हाथविषे त्रिशूल भृकुटी चढाय क्रोधवान् सदाशिवका रूप धारि करि शाप आवैंगे, दोनों इकट्ठे आनि होवैंगे, तब वर कहैंगे ॥ हे शाप! तुम क्यों आये हौ ? अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके समय दूसरी नहीं आती, तैसे तुम न आवहु, तब शाप कहैंगे ॥ हे वरो! तुम क्यों आये हौ, अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके होते दूसरीका आना नहीं बनता, तैसे तुम्हारा आना नहीं बनता, तब वर कहैंगे ॥ हे शाप! तुम्हारा कर्त्ता ऋषि मनुष्य है, अरु हमारा कर्त्ता देवता है, मनुष्यकरि देवता पूजने योग्य हैं, काहेते कि बड़े हैं, ताते तुम जावहु, जब इसप्रकार वर कहैंगे, तब शाप क्रोधवान् होवैंगे, अरु मारणेके निमित्त त्रिशूल हाथविषे उठावैंगे तब वर कहैंगे ॥ हे शापो! तुम अरु हम लडैंगे, तब पाछे किसी बडे न्यायकर्त्ताके पास जावैंगे, तब हमारा युद्ध निवृत्त करैगा, सो प्रथम क्यों न किसी बडेके पास जावैं, जो कछु हमारे तांई कहैं, सो अंगीकार करना, ताते अबहीं चलौ, तब शाप कहैंगे॥ हे वरो! कोऊ युक्तिसहित वचन कहता है, तिसको सब कोऊ मानता है, तुमने भला कहा है, चलिये, ऐसे चर्चा करिके दोनों ब्रह्मपुरीविषे जावैंगे, जायकरि ब्रह्माजीको प्रणाम करैंगे ॥ हे देव ! यह हमारा न्याय करौ, जो प्रथम वृत्तांत कहिकरि वर उनको स्पर्श करै हैं, अथवा शाप स्पर्श करै हैं, तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे साधो! जो जिनका अभ्यास उनके अंतर दृढ होवै सो प्रवेश करौ, तब वरके स्थान शाप जायकरि ढूंढैंगे, अरु शापके स्थान वर जाय ढूंढैंगे ढूंढिकरि शाप आय कहैंगे ॥ हे स्वामी! हमारी हानि हुई है; अरु वरकी जय हुई है, काहेते कि, उनके अंतर वरही स्थित हैं, जिसका अभ्यास अंतर स्थित है, तिसीकी जय होती है, सो तौ इनके अंतर वज्रसारकी नांई वर स्थित हैं ॥ हे स्वामी! हमारा आधिभौतिक शरीर कोऊ नहीं, हम संकल्परूप हैं, तिस संकल्पकी दृढता होती है, सोई आनि उदय होता है, वरका कर्त्ता भी ज्ञानमात्र होता है, वरको लेता भी वही ज्ञानरूप है, वरको ग्रहण करता जानता जो यह हमारा स्वामी है, तिस

संकल्पकरि वरका कर्ता देवता है, जो मैं वर दिया है, अरु ग्रहण करने वाला जानता है कि, मैंने वर लिया है ॥ हे ईश्वर । उसका जो वररूप संकल्प है, उसके निश्चयविषे दृढ होता जाता है, जिस संकल्पकी संवित् साथ एकता होती है, बहुरि वही प्रगट होता है, इसीप्रकार शाप भी है तो क्या है, न कोऊ वर है, न शाप है, दोनों संकल्परूप हैं, जैसा संकल्प अनुभव आकाशविषे दृढ होता है, सोई भासता है, वर देनेवाला भी अनुभव सत्ता है, अरु लेनेवाला भी आत्मसत्ता है वही सत्ता वररूप होकरि स्थित होती है वही सत्ता शापरूप होकरि स्थित होती है, जिस संकल्पकी दृढता होती है, तिसीका अनुभव होता है ॥ हे स्वामी।यह तुमसों सुनाहुआ हम कहते हैं, कि बाह्य कर्म कोऊ इसको फलदायक नहीं होता, जो कछु उसके अंतर सार होता है, सोई फल होता है, इनके अंतर तौ वरका संकल्प दृढ़ है, हमारा है नहीं, ताते हमारा तुमको नमस्कार है, अब हम जाते हैं ॥ हे कुंददंत । इसप्रकार करिकै शाप आधिभौतिकशरीर त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ अंतर्धान हो जावैंगे, जैसे आकाशविषे भ्रमकरिकै तरवरे भासैं, अरु सम्यक् ज्ञानकरि अंतर्धान हो जावैं, तैसे शाप अंतर्धान हो जावैंगे तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे वरो । तुम शीघ्रही उन पास जावहु, तब वह वर बहुरि पूछैगा, अरु दूसरा वर जो उनकी स्त्रियोंने लिया था, जो उनकी पुर्यष्टका अंतःपुरविषे रहै, ताते ॥ हे भगवन् । हमको क्या आज्ञा है, हमको तौ उनको उसी मंदिरविषे रखना है, अरु उनको सप्तद्वीप पृथ्वीका राज्यभी भोगना है, अरु दिग्विजय करना है, यह कैसे होवैगा, तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे साधो । यह क्या है, जो सप्तद्वीपकी पृथ्वीका राज्य करना है, उनका तुम्हारेसाथ विरोध कछु नहीं, तुमको उसी मंदिरविषे उनकी पुर्यष्टका रखनी है, अरु वहांही राज्य भुगावना अपना जो कछु तुम्हारा स्वभाव है सो करना ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे भगवन् । इसकरि तौ हमको बडा संशय उत्पन्न हुआ है, उसी मंदिर विषे आठौं भाई सप्तद्वीप पृथ्वीका राज्य कैसे करैंगे, एती पृथ्वी उस मंदिरविषे क्योंकरि समावैगी, यह आश्चर्य है, जैसे कमलफूलकी डोडी विषे कोऊ कहै, हस्ती शयन करै, अरु हस्तीकी पंक्ति उसीविषे है, सो

आश्चर्य है, तैसे यह आश्चर्य है ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ हे साधो ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके अणुका जो सूक्ष्म अणु है, तिसविषे जो स्वप्न फुरा है सो हमारा जगत् है, तिस स्वप्नविषे यह सृष्टि समाय रही है सो मंदिरविषे समावना क्या आश्चर्य है ॥ हे साधो ! यह जगत् सब स्वप्नमात्र है, अहं त्वंआदिक जगत सब स्वप्ननिद्राविषे फुरती हैं, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है, परमशांत अरु अनंत है, तिसविषे जगत् आभासमात्र है, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभव सूक्ष्मते सूक्ष्म होता है, तिसविषे त्रिलोकी भासि आती है, जो सूक्ष्मसंवित्‌विषे त्रिलोकी भासि आती है, तौ मंदिरविषे भासना क्या आश्चर्य है ॥ हे साधो ! जब यह पुरुष मरि जाता है, तब इसकी सूक्ष्म पुर्यष्टका जड हो जाती है, तिसविषे बहुरि त्रिलोकी फुरि आती है, सो तुम देखहु, सूक्ष्महीविषे भासि आई, क्योंकि जो परमसूक्ष्मविषे सृष्टि बन जाती है, तौ मंदिरविषे होनेका क्या आश्चर्य है ॥ हे साधो ! जेता कछु जगत् भासता है सो सब आत्माविषे स्थित है, तिसका किंचन इसप्रकार हो भासता है, ताते तुम जावहु, उनको राज्य भोगावहु ॥ हे कुंददंत ! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेगा, तब वर नमस्कार करिकै आधिभौतिक शरीरको त्यागि देवैंगे, अंतवाहक शरीर साथ उनके हृदयविषे आनि स्थित होवैंगे, जैसे एक शत्रुको दूर करि दूसरा आनि स्थित होवै, तैसे शापको दूर करिकै उनके हृदयविषे वर आनि स्थित भये, तिनको त्रिलोकी भासने लगी, अरु पुर्यष्टकाको अंतःपुरविषे वरने रोकि छोडा, जैसे जल बनको रोकता है, तैसे उनकी पुर्यष्टकाको रोकि छोडा ॥ हे कुंददंत ! इसप्रकार उनको अपने अंतःपुरविषे सृष्टि भासी अरु जानत भये, हम सप्तद्वीपके राजा हुये हैं, इसप्रकार आठही उस अंतःपुरविषे सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा हुये, परंतु उसको वह न जानैं, परस्पर अज्ञात सृष्टिके एक राजा सप्तद्वीपका भया, अरु रहनेका स्थान जंबूद्वीपविषे जो उज्जयिनी है, तिसविषे उसकी राजधानी हुई, अरु एक कुशद्वीपविषे रहने लगा, एक राजा क्रौंचद्वीपविषे रहने लगा, अरु एक शाकद्वीपविषे रहै, जो तिसको हरकारे आनि कहैंगे, पातालके नाग बडे दुष्ट हैं, तिनको किसी प्रकार जीतौ, तब वह

समुद्रके मार्ग पातालविषे नागको जीतने जावैगा, अरु चौथा एक द्वीप विषे अपनी स्त्रीसाथ शांत हो जावैगा, अरु एक राजा शाल्मलिद्वीपविषे स्थित होवैगा, तहां स्वर्णकी पृथ्वी है, बड़ी प्रकाशसंयुक्त है, तिस द्वीपविषे एक पर्वत होवैगा, तिसके ऊपर एक ताल होवैगा, तिस तालविषे विद्याधरीसाथ लीला करता फिरैगा, अरु पंचम एक क्रौंचद्वीपविषे राजा होवैगा, दिग्विजय करिकै आवैगा, तिसकी जो प्रजा होवैगी सो बड़ी धर्मात्मा मानसी पीडाते रहित होवैगी, अरु एक गोमेदक नाम द्वीपविषे होवैगा, तिसका युद्ध पुष्करद्वीपवालेके साथ होवैगा, अरु एक पुष्करद्वीपका राजा होवैगा, सो गोमेदकवाले राजासाथ युद्ध करैगा ॥ हे कुंददंत ! इसप्रकार वह सृष्टि अपने अंतःपुरविषे देखैंगे; अरु राज्य भोगैंगे परम्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होवैगी, अरु राजधानी भी सबकी मैं तेरे तांई कही, एककी जंबूद्वीप उज्जयिनीविषे, एककी शाकद्वीपविषे, एककी कुशद्वीपविषे, एककी क्रौंचद्वीपविषे; एककी पुष्करद्वीपविषे, एककी गोमेदकद्वीपविषे, एक लोकालोक पर्वत स्वर्ण पृथ्वीविषे ॥ हे साधो ! इसप्रकार उनकी भविष्यत् होनी है, सो मैं सब तुझको कही है, अरु जैसा इसके अंतर निश्चय होता है तैसाही इसको फल होता है, बाह्य यह कैसीही क्रिया करै, अरु अंतर इसके सत्ता नहीं होती; तब वह फलदायक नहीं होती, जैसे नट स्वांग बनाय करि चेष्टा करता है,परंतु उसके अंतर उसका सद्भाव नहीं होता, इसकारि वह फलदायक नहीं होती, अरु पुत्रविषे अंतर उनकी ओर चित्त लगा रहताहै तौ अंतभावनाकारि वह परे पुष्ट होते हैं ॥ हे साधो ! जैसा इसके अंतर निश्चय होता है सोई वरदायक होता है, ताते निश्चय परमार्थका कारण योग्य है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्षष्टितमः सर्गः ॥ २६६ ॥

द्विशताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः २६७.

कुन्ददन्तोपदेशवर्णनम् ।

॥ कुंददंत उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! मुझको संशय बडा प्राप्त हुआ है, जो उसी अंतःपुरविषे अपने अपने सब द्वीपका राज्य करैंगे सो कैसे होवैगा ? ॥ ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! जेते कछु जगत् तुझको दृष्ट आता है, सो कछु बना नहीं, शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आपविषे स्थित है,उनको जो अंतःपुरविषे अपनी अपनी सृष्टि भासैगी सो क्या रूप है, उनका जो अपना अनुभव है सोई सृष्टिरूप हो भासैगा, आपही सृष्टिरूप अरु आपही राजा होवैंगे, यह जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो भी परब्रह्म है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, सो जलहीरूप हैं; अरु लीन होते हैं; सो जलहीरूप हैं, जलते इतर कछु नहीं, न कछु उपजा है, न मिटता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् उपजता अरु लीन होता है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ताते वह ब्राह्मण भी अजरूप है, अपने आपको फुरणेकरिकै जगत्‌रूप देखैंगे ॥ ॥ हे साधो ! जब सुषुप्ति होती है, तब अद्वैत अपनाही अनुभव होता है, बहुरि तिसविषे स्वप्नकी सृष्टि फुर आती हैं, सो क्यारूप है, वही सुषुप्तिरूप है, तैसे परम सुषुप्तिरूप जो आत्मा है, जहां सुषुप्ति भी लीन हो जाती है, तिसविषे यह जगत् फुरता है, सो वहीरूप है, आधार आधेयते रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ हे साधो ! जैसे एकही मंदिरविषे बहुत पुरुष शयन करैं, उनको अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है, तौ कछु आश्चर्य नहीं, तैसे उनको अपनी अपनी सृष्टि भासैगी, इसविषे क्या आश्चर्य है, जो कछु जगत् भासता है, सो ब्रह्मविषे है, अरु ब्रह्मरूपही अपने आपविषे स्थित है ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे भगवन् ! आत्मसत्ता तौ एक है, अरु केवल है, जिसविषे एक कहना भी नहीं, परम शांतरूप शिवपद है, अरु अद्वैतरूप है, तौ नानाप्रकार क्यों भासती है, यह तौ स्वभावसिद्ध है, सो नानात्व होकारि वास्तव क्यों भासती है ! ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! सर्व शांतरूप है, अरु चैतन्य

आकाश है, नानाप्रकार जो भासती है, सो अपर कोऊ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है सो बनी कछु नहीं, अपना अनुभवही सृष्टिरूप हो भासता है, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है ॥ हे साधो! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे जो जगत् भास आया सो भी तू वहीरूप जानहु, जैसे समुद्रही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है, जैसे पुरुष स्तंभते रहित स्थानविषे सोया है, तिसको बहुत स्तंभसंयुक्त मंदिर भास आया तौ वहां बना तौ कछु नहीं, अनुभव आकाशही स्तंभरूप हो भासताहै, तैसे जो कछु जगत् तुमको भासता है, सो अपने अनुभवरूप जानहु, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, जैसे बर्फविषे शीतलता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, कोऊ जगत् कहौ, कोऊ ब्रह्म कहौ, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे वृक्ष अरु तरु एकही वस्तु हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके दो नाम हैं, इस जगत् अरु इंद्रियां मनते अतीत आत्माको जानहु, अरु जो इन तीनका विषय है, सो भी आत्माको जानहु, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, अरु नानारूप जो दृष्ट आता है सो नानात्व नहीं भया, दूसरा नहीं भासता है, जैसे स्वप्नविषे बडे आरंभ दृष्ट आते, सैना अरु नानाप्रकारके पदार्थ भासतेहैं, परंतु कछु हुई नहीं, तैसे वही जगत् नानाप्रकार भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, सर्व चिदाकाशरूप है, जैसे एक निद्राकी दो वृत्ति हैं, एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप, स्वप्नविषे नानात्व भासती है, अरु सुषुप्तिविषे एकसत्ता होती है, तैसे चित्तसंवित्के फुरणेविषे नानात्व भासता है, अरु अफुरणेविषे एक है ॥ हे साधो! सर्वदा कालविषे एकरूप है, परंतु प्रमादकरिके भेद भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपनाही अनुभवरूप है, परंतु प्रमादकरिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे यह जगत् है, हमको तौ सर्वदा काल वही भासताहै, जैसे पत्र फूल फल टास एकही वृक्षके नाम हैं, जो वृक्षका ज्ञाता है, तिसको सब वृक्षरूप भासता है, तैसे सर्व नामरूपकरि हमको आत्माही भासता है, आत्माते इतर कछु नहीं भासता, आदि फुरणेविषे जैसे निश्चय हुआ है, सो अपर निश्चयपर्यंत तैसेही रहता है, यह सब विश्व संकल्परूप है, संकल्पका

अधिष्ठान ब्रह्म है, ब्रह्मही संकल्परूप होकारि भासता है, ताते जेता कछु संकल्परूप जगत् भासता है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, एकही वस्तुके दो नाम हैं, जैसे वृक्ष अरु तरु दोनों एक वस्तुके नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् दोनों एक चेतनके नाम हैं ॥ हे साधो ! जो शब्द वाणीते अगोचर है, तिसको ब्रह्म जान, अरु जो शब्द वाणीविषे आता है, तिसको भी तू ब्रह्म जान, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जो ज्ञानवान् हैं, तिसको सब ब्रह्मही भासता है, अज्ञानीको नानात्व भासता है, जब अध्यात्म अभ्यास करैगा तब सब जगतरूपही भासैगा, इसका नाम बोध है ॥ हे साधो ! नानाप्रकार होकारि जगत् देखाई देता तौ भी नानात्व कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै नानाप्रकारके तरंग बुदबुदे चक्र दृष्टि आते हैं, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थ दृष्ट आते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, जेते कछु जीव बोलते दृष्ट आते हैं, सो भी महा-मौनरूप हैं, अपर कछु बना नहीं, चित्तके फुरणेकरिकै नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, परंतु आत्माते इतर कछु नहीं, वही चिदाकाश ज्योंका त्यों स्थित है, अपर कछु बना नहीं, जो कछु आत्माते इतर विद्यमान भासता है, तिसको अविद्यमान जान, ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकार जेता जगत् भासता है, सो सब स्वप्नविलास है, जैसे नेत्रदूषणकरिकै आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरिकै आत्माविषे जगत् भासता है, बना कछु नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे पुरुष सोया है, तिसको फुरणा नहीं फुरता, बहुरि तिसी सुषुप्तिसों स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, सो बनी कछु नहीं, वही सुषुप्तिरूप है, अरु स्वप्नविषे स्थित पुरुष है, तिसको सत् भासता है, अरु जो अनुभवविषे जागा है, तिसको सुषुप्तिरूप है, तैसे यह जगत् जान, आत्माते इतर कछु नहीं, जब जागकारि देखैगा, तब सब चिन्मात्रही भासैगा, शांतरूप है, अनंत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जो जगत् भासता है, सो सत भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, सत् इस कारणते नहीं कि, आभासमात्र है, अरु नाशवंत है, अरु असत् इस कारणते नहीं कि प्रगट भासता है वास्तवते आत्मसत्तासों भिन्न नहीं, भाव अभाव सुख दुःख उदय अस्त वही आत्मसत्ता इसप्रकार हो भासती

है, जैसे एकही निद्राके दो पर्याय हैं, स्वप्न भी अरु सुषुप्ति भी, तैसे जगत् अरु आत्मा दोनों एकही सत्ताके पर्याय हैं, जैसे एकही वायु स्पंद अरु निस्पंद दो रूप होती है, तैसे आत्मसत्ताके दोनों रूप हैं, जब संवेदन जो है जानना सो नहीं फुरता, तब अग्निवाची रूप होती है, अरु जब अहं इस भावको लेकरि फुरती है, तब संकल्परूपी सृष्टि बन जाती है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी तत्त्व भास आते हैं, नक्षत्रचक्र देवता मनुष्य पशु पक्षी जलका नीचे चलना, अग्निका ऊर्ध्व चलना, तारागण प्रकाशवान्, पृथ्वी स्थिरीभूत इनते आदि लेकरि जो स्थावरजंगम रूप सृष्टि है सो अपने स्वभावसहित भासती आती है, शुभ अशुभ कर्म होते हैं, तिसविषे सुख दुःख फलकी नेति होती है, सो क्या है, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, जैसे तू मनोराज्यकरिकै स्वप्ननगर कल्प लेवै, तिसविषे अनेक प्रकारकी चेष्टा होवै, सो जबलग संकल्प होवै तबलग वही सृष्टि स्थित होती है, जब संकल्प मिटि गया, तब सृष्टि लय हो जाती है, तौ वस्तु कछु न भई, तेरा अनुभवही सृष्टिरूप होकरि स्थित भया, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है, अपर कछु नहीं ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे रामजी ! संकल्प जो फुरता है, सो पूर्व स्मृतिको लेकरि फुरता है, ब्रह्मविषे जो मनोराज्य संकल्पकी सृष्टि उत्पन्न होती है, सो किसी संसारको लेकरि फुरती है, यह संशय मेरा निवृत्त करौ ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! यह संपूर्ण सृष्टि किसी संस्कारते नहीं उत्पन्न भई, भ्रमकरिकै भासती है, जैसे स्वप्नविषे आपको मृतक हुआ जानता है, सो उसको पूर्वले संस्कारकी स्मृति तौ नहीं होती, अपूर्वही भास आती है, तैसे यह पदार्थ जो तुझको भासते हैं, सो अपूर्व हैं, किसी स्मृतिकरि नहीं भये, स्मृति अनुभव तौ जगतहीविषे उत्पन्न भये हैं, जब जगत्का फुरणा न फुरा था तब स्मृति अनुभव भी न थे, जब जगत् फुरा तब यह भी फुरा है, ताते संपूर्ण जगत् अपूर्व है, भ्रमकरिकै भासता है, जैसे स्वप्नविषे मुआ किसी कुलविषे अपना जन्म देखै, अरु उसका कुल चिरकालका चला आता है, ऐसे भासै अरु जब जागि उठा, तब पूर्व किसको कहै, स्मृति किसकी करै,

न कहूँ जन्म रहता है, न कुल रहता है, तैसे ज्ञानवान्को यह जगत् आकाशरूप भासता है, तौ मैं तुझको पूर्वको स्मृति क्या कहौं ॥ हे ब्राह्मण ! अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थित है, जिसते यह सर्व जगत् हुआ है, अरु जिसविषे यह सर्व है, जो सर्व है सो सर्वात्मा है, जो वही है तौ दूसरा किसको कहौं, ताते ऐसे जानिकारि तुम विचारौ तब तुम्हारे दुःख नष्ट होवैंगे ॥ हे साधो ! छः जो कारक हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, यह छः ब्रह्मरूप हैं, कर्त्ता कहिये कर्मके करनेहारा, अरु कर्म कहिये जो कर्म करना होवै, कारण कहिये क्रियाका साधक, अरु संप्रदान कहिये जिस निमित्त होवै, अपादान कहिये जिसते ले करिये, अरु अधिकरण कहिये जिसविषे करिये ॥ हे साधो ! यह छः कारक ब्रह्मरूप हैं, इसविषे विश्वका कर्त्ता भी ब्रह्म है, विश्वकर्माभी ब्रह्म है, विश्वका साधकभी ब्रह्म है, जिस विषे निमित्त यह विश्व है, सो भी ब्रह्म है, जिसविषे यह विश्व होता है, सो भी ब्रह्म है ॥ हे साधो ! ऐसा जो सर्वात्मा है, तिसको नमस्कार है ॥ हे साधो ! तिस सर्वात्माको ऐसे जानना, यही उसकी परम पूजा है, ऐसेही तुम पूजन करहु ॥ हे साधो ! अब तुम जावहु, अपना जो कछु वांछित है, तिसविषे विचरहु अरु तुमको अपने बांधव चितवते होवैंगे तिनके पास जावहु, जैसे कमलपास भँवरे जाते हैं, अरु हम भी समाधि विषे स्थित होते हैं, जो कछु गुह्य बात है, सो भी मैं कहता हौं, जिसते कोऊ सुख पाता है, सोऊ करता है, मुझको जगत् दुःखदायक दृष्ट आया है, इस कारणते समाधिविषे जुडता हौं ॥ हे साधो ! यद्यपि मेरे तांई सब अवस्था तुल्य हैं, भेद कछु नहीं, तौ भी चित्तकी वृत्ति जो संसारके कष्टते दुःखित होकारि आत्मपदविषे स्थित हुई है, तिस स्थितका जो कोऊ सुख है, तिसके संस्कारकारि बहुरि तिसी ओर धावता है, ताते तुम जावहु, मैं समाधिविषे स्थित होता हौं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुंददंतोपदेशो नाम द्विशताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः ॥ २६७ ॥

द्विशताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः २६८.
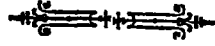
कुंददंतविश्रामप्राप्तितर्णनम् ।

॥ कुंददंत उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि वह बहुरि समाधिविषे जुडिगया, इंद्रियां अरु मनकी क्रियाते रहित हुआ, मानौ कागज के ऊपर मूर्त्ति लिख छोडी है, ऐसे हो गया, तब हम बहुरि जगाय रहे, बडे शब्द करि रहे, परंतु वह न जागा, तब हम वहांते चले, ब्राह्मणके घर आये, उनके घरविषे बडा उत्साह हुआ, बहुरि समय पाय क्रमकरिके सातौ भाई मर गये, अरु अष्टम मेरा मित्र जीता रहा, बहुरि वह भी मृतक हो गया, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ, मेरा प्रीतम भी मर गया, अब में क्या करौं ॥ हे रामजी ! मैंने विचार किया कि बहुरि कदंबतपापास जाऊं, जो मेरा दुःख नष्ट होवैगा, तब मैं गया, जायकरि तीन मासपर्यंत उसके पास रहा, उसको मैं जगाय रहा, परंतु वह न जागा, तीन मास हो चुके, तब वह जागा, मैं उसको प्रणाम करिकै कहा ॥ हे मुनीश्वर ! वह तौ अपने अपने राज्यको भोगने लगे हैं, अरु मैं एकला कष्टवान् हुआ हौं, ताते मेरा दुःख तुम नष्ट करौ, में तुम्हारी शरण आया हौं ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! मैं तुझको उपदेश करौं, परंतु तुझको स्वरूपका साक्षात्कार न होवैगा, काहेते कि अभ्यास तुझसों न होवैगा, अरु अभ्यासविना साक्षात्कार स्वरूपका नहीं होता, मेरा कहना भी व्यर्थ होवैगा, ताते मैं दुःख नष्ट होनेका उपाय तुझको कहता हौं, तिसकरि तू मेरे समान होवैगा, दुःखते रहित अनंत आत्मा होवैगा ॥ हे साधो ! अयोध्या नगरी है, तिसका राजा दशरथ है, तिसके गृहविषे रामजी पुत्र है, तिस रामजीको वसिष्ठजी मोक्षउपाय उपदेश करैगा, बडी सभाविषे कहैगा, तहां तू जा, तुझको भी स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, संशय मत कर ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार उस तपस्वीने मुझको कहा, तब वहांते चला, मैं तुम्हारे पास आया हौं, जो कछु तू पूछता था, सो सब वृत्तांत कहा है, जो कछु देखा सुना है, सोई कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे वसिष्ठ ! वह वृत्तांत मैं उसका सुना था, सो प्रभुके आगे कहा है; अरु कुंददंत भी

तुम्हारे पास यह बैठा है, अब इसते पूछिये कि स्वरूपकी प्राप्ति हुई है अथवा नहीं हुई, तुम इसकी अवस्था पूछहु ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब वसिष्ठजी मुनिविषे शार्दूल हैं, सो तिसकी ओर कृपादृष्टि करिकै बोलत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह मोक्षउपाय जो मैं संपूर्ण कहा है, तिसको सुनकारि तू क्या जानत भया है ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे सर्वसंशयके छेदनेहारे ! जो कछु मुझको संशयरूपी तम आवरण था, सो सब नष्ट होगया है, तुम्हारे वचनरूपी प्रकाशकरि अज्ञानरूपी अंधकारका नाश भया है, अरु जो कछु जाननेयोग्य पद है, सो मैंने जाना है, जो कछु पानेयोग्य था, सो मैं पाया है, अब मैं अपने स्वभावविषे स्थित भया हौं, अब मुझको कल्पना कोई नहीं रही, मैं अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अच्युत हौं, परमानंदस्वरूप हौं, सर्व जगत् हमाराही स्वरूप है ॥ हे भगवन् ! अंतःपुरीविषे जो एती सृष्टि समानेका संशय था, सो तुम्हारे वचनकरि दूर भया है, अरु एक एक राईविषे मुझको ब्रह्मांड भासते हैं, अरु आत्मत्वभावकरिकै दिखाई देते हैं, जैसे अनेक दर्पणविषे अपना मुखही भासता है, तैसे मुझको सर्व ओरते अपना आपविषे भासता है ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे वचन मैं आदिते लेकरि अंतपर्यंत संपूर्ण श्रवण किये हैं, कैसे वचन तुमने कहे हैं, परम पावन हैं, अरु सारते परम सार हैं, आत्मबोधका कारण हैं, तिनके विचारे मेरी भ्रांति निवृत्त हो गई है, अरु अपने आपविषे स्थित भया हौ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुंददंतविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ २६८ ॥

द्विशताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः २६९.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार कुंददंतने कहा, तब वसिष्ठजी मुनिकरि परम उचित वचन परम पद पानेका कारण बहुरि कहत भये ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । अब कुंददंत आत्मानुभवविषे विश्राम पाया है, इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासता है, आत्माही निद्रास्वरूप होकरि भासता है, अरु आत्माही द्रष्टारूप है, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं, अपना अनुभव जगत्‌रूप हो भासता है, सो अनुभव आकाश कैसा है, सम शांतरूप है, अनंत है, अखंड है, सदा ज्योंका त्यों है ॥ हे साधो । नानारूप भासता है, परंतु अनाना है, सदा ज्योंका त्यों अचैत्य चिन्मात्र परम शून्य है, जिसविषे शून्य भी शून्य हो जाती है, चैत्य दृश्यरूप जो फुरणा है, तिसते रहित है, इसीकारणते परम शून्य है, बोलता दृष्ट आता है तौ भी परम मौन है ॥ हे रामजी । तिसविषे जगत् कछु बना नहीं, जैसे स्वप्नविषे पहाड दृष्ट आते हैं, सो न सत् हैं, न असत् हैं, तैसे यह जगत् सत्‌असत्‌ते विलक्षण है. काहेते कि कछु बना नहीं, जो कछु भासता है, सो आत्मा है, जैसे रत्नका प्रकाश चमत्कार होता है, तैसे आत्माका प्रकाश जगत् है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्म संवेदनकरिकै जगत्‌रूप हो भासता है, अरु आदि स्पंद फुरि आये हैं, सो जगत्‌रूप होकरि स्थित भया है, सो जैसे हुआ, तैसे हुआ, सो कार्यकारणभावते रहित है, जिसको प्रमाद है, तिसको यह कारणभाव भासता है, उसको तैसाही है, जब सत् जानिकरि पाप करता है, सो बडे पाप आनि उदय होते हैं, तब स्थावररूप होता है, बहुरि स्थावरको त्यागिकै जंगम मनुष्य होता है ॥ हे रामजी । इसप्रकार यह ज्ञानसंवित् चैत्यसंबंधी होकरि नानाप्रकारके रूप धारती है, अरु प्रमादकरिकै भिन्न भिन्न भासती है, परंतु स्वरूपते कछु अपर नहीं होती, सदा अखंडरूप है, जबलग प्रमाद होता है, तबलग जगत्‌का आदि अरु अंत नहीं भासता, जब प्रमादते जागता है, तब सर्व कल्पना मिटि जाती हैं ॥ हे रामजी । जेता कछु जगत् भासता है, सो कछु बना नहीं, वही ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब जाग्रत अवस्थाका अभाव होता है अरु सुषुप्ति आती है, तिसविषे न शुभकी कल्पना रहती है, न अशुभकी कल्पना रहती है, उदयअस्तकी कल्पनाते रहित अद्वैत सत्ता रहती है, जब बहुरि तिसविषे

चेतनता फुरती है, तब बहुरि स्वप्नकी सृष्टि भासती है, कहूं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है, जिनविषे संवेदन फुरती भासती है, सो जंगम कहाता है, अरु जिनविषे संवेदन फुरणा नहीं भासता, सो स्थावर कहाता है, परंतु अपर कछु नहीं, वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जंगम-रूप हो भासती है, तैसे आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है ॥ हे रामजी ! सृष्टिके आदि परम सुषुप्ति सत्ता थी, तिसविषे संवेदनफुरणे-करिकै जगत् भासि आया, सो वही संवेदनरूप जगत् है, जिस आत्म-सत्ताविषे फुरी है, वही रूप है, इतर कछु नहीं, जैसे शरीरके अंग हस्त पाद नख केशादिक सब शरीररूप हैं, तैसे परमात्माके अंग हस्त पादा-दिक जंगम सृष्टि अरु नखकेशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मारूप है, अपर दूसरी वस्तु कछु नहीं बनी, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है, जैसे संकल्पपुर रची सृष्टि संकल्परूप होती है, तैसे यह सृष्टि अनुभव-रूप है, यह किसी कारणकरि नहीं उपजा; ताते ब्रह्महीरूप है, ब्रह्मके सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि फुरी है, सो क्या रूप है, ब्रह्मही सृष्टि है, अरु सृष्टिही ब्रह्म है, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, परंतु अज्ञाननिद्रा-करिकै भिन्न भिन्न भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! निद्राका केताक प्रमाण है, अरु केते कालपर्यंत रहती है, अरु सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि कैसे फुरी है, अरु कैसे स्थित है, अरुअणु किसकरि उसकी संज्ञा है, अरु अनंत क्योंकरि है, अरु जो देवता असुरादिक रूपको चित्त प्राप्त हुआ है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञाननिद्रा अपने कालविषे तौ अनादि है, जानी नहीं जाती कि, कबकी भई है, अरु अंत भी नहीं जाना जाता कि, कबलग रहैगी; अज्ञानकालविषे तौ इसका आदि अंत परिमाण कछु नहीं भासता, अरु बोधमें इसका अत्यंताभाव देखा-जाता है, अरु चित्तसत्ताकी जो अनंतता पूछे सो हे रामजी ! अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है, तिसविषे सूक्ष्मभाव अहम् अस्मि जो संवित् फुरती है, तिसका नाम चित्त है, तिस चित्तविषे आगे जगत् होता है, शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदन चित्त फुरता है, तिसविषे जगत् है, वही चित्त देवता असुर अरु जंगमरूप हो भासती हैं, नाग- पिशाच कीटादिक

स्थावर जंगमरूप होय भासती है, अरु वस्तुते चेतनसत्ताही है तिसते इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, फुरणेकरि नानाप्रकार है ॥ हे रामजी । परम शुद्ध चिद् अणुसाथ मिलिकरि चित्त अनेक ब्रह्मांडको धारता है, तिस सूक्ष्म अणुविषे अनंत ब्रह्मांड फुरते हैं, परंतु तिसते भिन्न नहीं, जैसे एक पुरुष शयन करता है, तिसको स्वप्नविषे अनेक जीव भास आते हैं, तिन जीवविषे अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि फुरती है, सो अनेक सृष्टि हो जाती है, तैसे सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि फुरती है, परंतु कछु आत्मसत्ताते इतर नहीं बना, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे अनंत त्रसरेणु होती हैं, सो सूक्ष्म होती हैं, तैसे परमात्मा सूर्यके चिद् अणु सूक्ष्म हैं, इन त्रसरेणुते भी सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि अपनी अपनी फुरती हैं ॥ हे रामजी । जबलग चित्त फुरता रहता है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं आता, असंख्य जगद्भ्रम इस आगे देखे हैं, अरु असंख्यही आगे देखैगा, जब चित्त फुरणेते रहित होता है, तब जगत्कलना मिटि जाती है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बडे व्यवहार होते हैं, जब जाग उठता है, तब स्वप्नसृष्टि व्यवहारकी कल्पना मिटि जाती है, अद्वैत अपना आपही भासता है, तैसे चित्तके ठहरनेते सब भ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी । सूक्ष्म चिद् अणु भी इसकी संज्ञा तब हुई है, जब इसको चित्तका संबंध हुआ है, जब चित्तको अपने स्वभावविषे स्थित करैगा, तब द्वैतकल्पना सूक्ष्म स्थूल भाव मिटि जावैगा, अरु सूक्ष्म जो इसकी संज्ञा है, सो अविद्यकभावकरिकै है, जो इंद्रियका विषय नहीं, इसकरि अणुता है, अरु सूक्ष्म अणुविषे व्यापा हुआ है, इसकरि सूक्ष्म अणु कहता है, अरु अनंतता इसकरिकै जो सबको धारि रहा है, अरु यह जगत् क्या है ॥ हे रामजी । यह जगत् अभावमात्र है, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, यह जगत् हैही नहीं, तौ इसका कारण कौन कहिये, आदि सृष्टि अकारण फुरी है, बहुरि इसविषे कारणकाय भासन लगे, सो आभासकी दृढता हो गई है, जैसे स्वप्नविषे आदि सृष्टि अकारण बीजवृक्ष कुलाल माटी घट इकट्ठे फुरि आते हैं, जब उस स्वप्नकी दृढता हो जाती है, तब कारण

कार्य भासते हैं, परंतु जो सोया पडा है, तिसको दृढ भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् कार्यकारण दृढ भासता है, ज्ञानवान्‌को सब अपना आपही भासता है, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नसृष्टि अपना आपही भासती है कि, मैंही था, अपर कछु न था, तैसे ज्ञानवान्‌को सब जगत् आकाशरूप भासता है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर, जंगम जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है संवेदनके फुरणेकरि दृष्ट भासते हैं, वास्तवते इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! यह जगत् चित्तविषे स्थित है, जैसे किसी पुरुषने स्तंभविषे पुतलियां कल्पी सो पुतलीके दो रूप होते हैं, जो शिल्पीको चित्तविषे फुरती हैं, सो आकाशरूप हैं, अरु जो स्तंभविषे कल्पी हैं, सो स्तंभरूप हैं, स्तंभविषे स्थित रूप हैं, अरु शिल्पीके चित्तविषे नृत्य करती हैं ॥ हे रामजी ! अपर तौ कछु नहीं, स्तंभरूप हैं, सो शिल्पीके चित्तविषे कल्पनामात्र हैं, तैसे चित्तरूपी शिल्पीकी जगत्‌रूपी पुतलियां कल्पनामात्र हैं, आत्मरूपी स्तंभ ज्योंका त्यों है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे पटके ऊपर मूर्ति लिखी होवै, सो मूर्तिका रूप पटही है, पटते इतर कछु नहीं, वह पटही मूर्तिरूप भासता है, तैसे यह जगत् आत्माते इतर कछु नहीं, आत्माही जगत्‌रूप हो भासता है, आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, तैसेही जगत् आकाशरूप है, जगत्‌रूप आधार है, ब्रह्म तिसविषे वसनेहारा है अरु ब्रह्मरूप आधारहै, जगत् तिसविषे वसनेहारा है ॥ हे रामजी ! जैसे समूह है, जगत् विषे विद्या अरु अविद्यारूप सो सब संकल्पकरि रचित है, अरु वास्तवते सब आत्मस्वरूप है, समता सत्यता निर्विकारता इनते आदिलेकरि अरु इनते विपरीत अविद्यारूप सो सब एकही रूप हैं, एकहीविषे फुरते हैं, अरु एकही रूप हैं, जैसे स्वप्न जगत् अनुभवरूप अनुभवविषे स्थित होता है, सो सर्व आत्मरूप होता है, तैसे यह जगत् सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर न कछु वरकी कल्पना है, न शापकी कल्पना है, ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे न कारण है, न कार्य है, जैसे ताल नदी मेघ एकही जल होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है ॥

राम उवाच ॥ हे भगवन्! वर अरु शापके कर्त्ता तौ परिच्छिन्न पाते हैं, कारणविना तौ कार्य नहीं पाता, तुम कैसे कहते हौ कि, कारण कार्य कोऊ नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ताका किंचन जगत् होता है,जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं,तैसे आत्मसत्ताविषे जगत् फुरता है, जैसे तरंग जलरूप होते हैं, तैसे जगत् आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, जैसे आदि परमात्माते सृष्टिका फुरणा हुआहै, तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, सब जगत् संकल्परूप है, अनेक प्रकारकी वासना संवेदनविषे फुरती हैं,जिनको स्वरूपका विस्मरणभया है, तिनको यह जगत् सत्‌रूप भासता है, जो उनको विचार उत्पन्नहोवै, तौ वही काल है, जिस कालविषे विचार उत्पन्न होता है, तिसी कालविषे अज्ञान निद्राका अभाव होता है ॥ हे रामजी! जब विचार अभ्यासकारिकै मन तद्रूप होता है, तब इसको यथाभूत दर्शन होता है, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपना आपही भासता है, काहेते कि, अपने आपविषे स्थितहै, जो सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है,तिसविषे इसको अहंप्रतीति होतीहै, इस कारणते अपने आपविषे सृष्टि भासती हैं, जैसे स्पंद फुरते हैं, तैसेही उसका सिद्ध होता है, निरावरण दृष्ट होता है, निरावरण दृष्ट करिकै सर्व संकल्प सिद्ध होता है, काहेते कि, यह जगत् सब आत्माविषे संकल्पका रचा हुआ है,तिसविषे इसको अहंप्रत्यय हुई है ॥ हे रामजी! जो संकल्प उसको उठता है कि,यह कार्य ऐसे होवै,सो तैसेही होता है ॥ हे रामजी! शुद्ध संवेदनविषे संकल्प होता है, सोई हो भासता है, सो संकल्पहीरूप है, संकल्पते इतर नहीं, इस कारणते वर अरु शापका अपर कारण कोऊ नहीं, वर अरु शाप भी संकल्परूपहैं,अरु तिसकारि जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है, सो किसी कारण समवायकरि तौ नहीं उत्पन्न हुआ, संकल्पहीकारि क्यों हुआ, ताते सब अकारणरूप हैं, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रके तरंग उठते हैं, अपर कारण अरु कार्य मैं तुझको क्या कहौं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, अपर द्वैत अरु एककी कल्पना कछु नहीं ॥ हे रामजी! हमको सदा ब्रह्मसत्ताही भासती है,कार्य कारण कोऊ नहीं भासता,जैसे स्वप्नविषे किसीके घरमें पुत्र भया, बडे उत्साहको प्राप्त हुआ, जब जाग्रतका संस्कार चित्त

आया तब उसका पिताही उपजा नहीं तौ पुत्र कैसे कहिये, सब अपना आपही हो जाता है, न कोऊ कारण भासता है, न कार्य भासता है, अरु जो स्वप्नविषे सोया है, तिसको जैसे भासता है, तैसेही भासता है, जैसे वर अरु शापका आश्रय संकल्प है; संकल्पही वर शाप हो भासताहै, कारण भी होता है, अरु जिसको शुद्ध संवेदनसाथ एकता भई है सो निरावरण है, तिसविषे जैसे फुरणा आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होताहै ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! एक ऐसे हैं, जिनको आवरण है, अरु उनका संकल्प जैसे फुरता है, वर देवै अथवा शाप देवै, तैसेही हो जाता है, अरु स्वरूपका साक्षात्कार उनको नहीं भया, अरु शुभ कर्म उनविषे प्रत्यक्ष पाते हैं, तौ शुद्ध कर्मही कारण भये, वर शापके तुम कैसे कहते हौ, जो निरावरण पुरुषका संकल्प सिद्ध होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है सोई चित्तधातु कहाती है, तिस चित्तधातुविषे जो आभास फुरणा है, जो संवेदन कहाती है, सो संवेदन जब फुरती है तब जानाजाता है कि, मैं ब्रह्म हौं, तौ संवेदनही आपको जगत्का पितामह जानत भई क्यों ? तिसीने आगे मनोराज्य कल्पा, तब पंचभूतके जानना हुआ, जो शून्यरूप आकाश हुआ. स्पंदरूप वायु है, उष्णरूप अग्नि है, द्रवतारूप जल है, कठोररूप पृथ्वी है, बहुरि देश अरु कालकी कल्पना भई, स्थावर जंगम पदार्थकी कल्पनाकरि वेद शास्त्र धर्म अधर्मका फुरणा हुआ, तिसविषे यह निश्चय हुआ कि, यह तपस्वी है, इसने तप किया है, इसके कहेते वर होवै, अरु जो कछु कहै सो होवै, स्वरूपके साक्षात्कारते रहित है, तौ भी इसका कहा होवै, यह तपका फल है, आदि संकल्प ऐसे हुआ है, तौ वर शापका कर्त्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है, जिसते आदि संकल्प फुरा है ॥ हे रामजी ! वर अरु शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदन ते फुरा है, संवेदन आत्माका आभास है, तौ मैं कारण अरु कार्य क्या कहौं, अरु जगत् क्या कहौं, आत्माका आभास संवेदन ब्रह्मा है, तिसने आगे संकल्पपूर सृष्टि रची है, हम तुम आदिक सब उसके संकल्पविषे हैं, सो ब्रह्माजी कैसा है, निराकार अरु निराधार है, निरालंब स्थित है, कछु आकारको नहीं

प्राप्त भया, ताते उसकी विश्व भी वहीरूप जान ॥ हे रामजी ! जैसे उसका स्पंद हुआ है, तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, वही विपर्यय करै तौ होवै, अपरसों नहीं होता, अग्निविषे उष्णता, वायुविषे स्पंदता इत्यादिक जो पदार्थ हैं, सो अपने अपने स्वभावविषे स्थित हैं, अरु हमको सब ब्रह्मरूप हैं, जैसे शरीरविषे हाड मांसते इतर नहीं होता, तैसे हमको ब्रह्मते इतर नहीं भासता, जैसे घटविषे मृत्तिकाके इतर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठते इतर नहीं होती, तैसे जगत् ब्रह्मते इतर नहीं होता ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो ब्रह्महीहै, ब्रह्मही फुरनेकरि नानाप्रकार जगत् हो भासता है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुदे फेन हो भासते हैं, तैसे ब्रह्मसंवेदनकरि जगत्रूप हो भासता है, परब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे पर्वतते जल गिरता है, सो कणके जल भासता है, जल गिरिकरि ठहरि जाता है, तब समुद्ररूप होता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं होता, तैसे जब चित्त फुरता है, तब नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, जब चित्त ठहरि जाता है, तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है, परब्रह्मते इतर कछु नहीं होता, ब्रह्मही स्थावर जंगमरूप हो भासता है, जहां पुर्यष्टकाका संबंध नहीं भासता सो अजंगम कहाता है, जहां पुर्यष्टकाका संबंध होता है तहां जंगमरूप भासता है, परंतु आत्माविषे उभय तुल्य है, जैसे एकही हाथकी अंगुली है, जिसको उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है, सो फुरणे लगती है, जिसको शीतल उष्णका संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती, तैसे जिस आकारको पुर्यष्टका संयोग है, सो फुरता है, चेतनता भासती है, अरु जिसको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं, तिसविषे जड़ता भासती है, सो जड भी आगे दो प्रकारका है, एकको पुर्यष्टकाका संयोग है, अरु जड है, एकको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं, अरु जड है, वृक्ष पर्वतको पुर्यष्टकाका संयोग है, परंतु घन सुषुप्ति जडताविषे स्थित भई है, तिस कारणते जड भासते हैं, अरु मृत्तिका पुर्यष्टकाते रहित है, इस कारण है तौ जड रंतु वास्तवते स्थावर जंगम इष्ट अनिष्ट वर शाप देश काल पदार्थ

सबही ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मसत्ताही ऐसे स्थित भई है, जैसे अपने अनुभवविषे संकल्पनगर नानाप्रकारका भासता है, परंतु संकल्परूप है, संकल्पते इतर कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सेना अनेक प्रकारकी होती है, परंतु मृत्तिकारूप है, मृत्तिकाते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वके अर्थको धारणेहारी चेतनधातु नानाप्रकारके आकारको प्राप्त होती है, परंतु चेतनताते इतर कछु नहीं होती ॥ हे रामजी ! धातु उसको कहते हैं, जो अर्थको धारै, सो जेते पदार्थ तेरे ताईं भासते हैं, सब अर्थरूप हैं, अरु वस्तुरूप हैं, जो धातु है सो आत्मसत्ता है, तिसने दो अर्थ धारे हैं, एक स्वप्नअर्थ, एक बोधअर्थ, स्वप्नअर्थविषे तौ नानात्व भासती है, बोधअर्थविषे एक अद्वैतसत्ता भासती है, जैसे एकही धातु मिलने अरु विछुरने दो अर्थको धारती है, सो कैसे अर्थ हैं, सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं, परंतु एकहीने धारे हैं, तैसे स्वप्नका अर्थ अरु बोध अर्थ इन दोनोंको आत्मसत्ताने धारे हैं, जैसे तरंग बुद्बुदे जलरूप हैं, तैसे जगत् ब्रह्मरूप है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सब ब्रह्मरूप भासता है, अज्ञानीको नानात्व भासता है, ताते तू स्वभावनिश्चय होकरि देखु, सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं, ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ २६९ ॥

द्विशताधिकसप्ततितमः सर्गः २७०.

जीवसंसारवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो सर्व ब्रह्मही है तो नेति क्या है, अरु नानाप्रकारके पदार्थ क्यों भासते हैं, तिसविषे तुम कहते हौ कि जगत् संकल्पकारि रचित है, तौ हे भगवन् ! यह जो पदार्थ असंख्य रूप हैं, तिनकी संज्ञा करी नहीं जाती, अरु इन पदार्थका स्वभाव एक एकका अचलरूप होकरि कैसे स्थित हैं, यह कृपा करिकै कहौ, अरु सर्व देवताविषे सूर्यका प्रकाश अधिक क्यों है, अरु एकही सूर्यविषे दिन छोटे बडे क्यों होते हैं, अरु रात्रि छोटी बड़ी क्यों होती है, यह

विचित्रता क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रसत्ताविषे अकस्मात्ते आभास फुरा है, तिस आभासका नाम नेति है, अरु सृष्टि भी आभासमात्र है, किसी कारणकरिकै नहीं उपजी, जिसके आश्रय आभास फुरता है सो वही वस्तु अधिष्ठानही होता है, ताते जगत् सब ब्रह्मरूप है, चिन्मात्र सत्ता अपने आपविषे स्थित है, न उदय होती है, न अस्त होती है, परिणामते रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है, तिसविषे न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, तीनों अवस्था आभासमात्र हैं, चेतनविषे इनकरि द्वैत नहीं बना, यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूप है, इसते इतर कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु निस्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे कपूर अरु सुगंधिविषे भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रत् आदिक जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चित्तभाव हुआ है, तिसविषे चेतन आभास फुरा है, तिसविषे जैसा संकल्प फुरा है,तैसे स्थित भया है, यह इसप्रकार होवै, अरु एताकाल रहै, उस संकल्प निश्चयका नाम नेति है, जैसे आदिसंकल्प दृढ भया है, तैसेही अबलग पदार्थ स्थित हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश अपने अपने भावविषे स्थित हैं, अपने स्वभावको त्यागते नहीं जबलग उनकी नेति है, तबलग तैसेही जगत् सत्ताविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी ! इसका नाम नेति है, जो जैसे आदि संकल्प धारा तैसे स्थित हैं, अरु वस्तुते क्या है, आभासरूप है,अकस्मात्ते आभास फुरा है, सो आभास किसी सूक्ष्म अणुविषे फुरा है, जैसे समुद्रके किसी स्थानविषे तरंग बुद्बुदे फुरते हैं,संपूर्ण समुद्रविषे नहीं फुरते तैसे जहां संवेदनविषे जैसा फुरणा होता है,तैसे स्थित होता है, सो नेति है, जैसे तरंग बुद्बुदे समुद्रते भिन्न नहीं तैसे नेति आत्माते भिन्न नहीं,जैसे द्रवताकरिकै समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे संवेदनकरिकै नेति अरु जगत् फुरते हैं, सो वही रूप हैं, आत्माते भिन्न कछु नहीं जैसे किसीने कहा, चंद्रमाका प्रकाश है, सो चंद्रमा अरु प्रकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, यह विश्व आत्माका स्वभाव है,

जैसे एकही कालकी बहुत संज्ञा होती हैं, दिन पक्ष वार मास वर्ष युग कल्प इत्यादिक बहुत नाम हैं, परंतु काल एकही है, तैसे भिन्न भिन्न जगत्के नाम हैं, सो सब ब्रह्महीं है ॥ हे रामजी ! सब संवेदन चित्तके सन्मुख होती है, तब प्रथम शब्दतन्मात्र फुरती है, तिसते आकाश उपजता है, सो आकाशका शून्यता स्वभाव है, जब फिरि स्पर्शतन्मात्राको चेता, तिसते वायु फुरा है, वायुका स्पंद स्वभाव है, बहुरि रूपतन्मात्राको चेता तब तिसते अग्नि प्रगट हुई, अग्निका उष्ण स्वभाव है, बहुरि रसतन्मात्राको चेता तब तिसते जल प्रगट भया, जलका द्रवस्वभाव है, बहुरि गंधतन्मात्राको चेता तब तिसते पृथ्वी भई, पृथ्वीका स्थिर स्वभाव है, इसप्रकार पंचभूत फुरि आये ॥ हे रामजी ! आदि जो शब्दतन्मात्रा फुरी है, सो जेती कछु शब्दसमूह वाणी है, सो वृक्ष हुआ, तिसका बीज है, सब तिसीते उत्पन्न हुये हैं, पदार्थ वाक्य वेद शास्त्र पुराण सब तिसीते फुरे हैं, इसी प्रकार पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इनका जो कार्य स्वभाव है, सो सबका बीज आदि इनकी तन्मात्रा है, तिस तन्मात्राका बीज वह संवित्सत्ता है ॥ हे रामजी ! अब इन तत्त्वकी खान सुन, पृथ्वीते अणु भी होती है, अरु एक दला भी होती, सो पृथ्वी तौ एक है, अणु भी वही है, तैसे सर्व तत्त्वको समुझि देखना, पृथ्वीकी खाण भूपीठ है, सो संपूर्ण भूतजातको धारती है, अरु जलकी खाण समुद्र है, जो सर्व पदार्थविषे रसरूप होकरि स्थित है, अग्निका जो तेज प्रकाश है, तिसकी समष्टिता सूर्य है, अरु सर्व स्पंदकी समष्टिता पवन है, अरु संपूर्ण शून्य पदार्थकी खाण आकाश है, इसप्रकार यह पांचौ तत्त्व संकल्पते उपजे हैं, जैसे बीजते अंकुर उपजता है, तैसे यह भूत संकल्पते उपजे हैं, संकल्प संवेदनते फुरा है, अरु संवेदन आत्माका आभास है, सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, निर्विकल्प है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संवेदन आभास फुरा है, बहुरि संवेदनते संकल्प फुरा है, संकल्पकरि जगत् बन गया है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरता अरु लीन होता है, तैसे संकल्पविषे जगत् उपजता है, बहुरि संकल्पहीविषे लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश सब चेतनरूप हैं, जेते

कछु पदार्थ देखनेसुननेविषे आते हैं, अरु नहीं आते हैं,सो सब चेतनरूप हैं, आत्माते इतर कछु नहीं, वही आत्मा इसप्रकार होता है, स्वप्नविषे अपना अनुभवही पदार्थ हो भासताहै, परंतु कछु बना नहीं, नानाप्रकार भासताहै, तौ भी अनानाहै, तैसे जगत् नानाप्रकार भासताहै, तौ भी कछु बना नहीं, जैसे एक निद्राके दोरूप हैं,एक स्वप्न, एक सुषुप्ति रूप है, जब फुरणा होताहै, तब स्वप्नसृष्टि भासतीहै,जब फुरणा निवृत्त होजाताहै,तब सुषुप्ति होती है, जैसे एक वायुके दो रूप हैं, स्पंद होती है, तब भासती है, निस्पंद होती है, तब नहीं भासती, तैसे जब संवेदन फुरती है, तब जगत् भासता है, जब नहीं फुरती, तब जगत् नहीं भासता, इसीका नाम महाप्रलय है, सो दोनों आत्माका आभास हैं ॥ हे रामजी ! संकल्परूप जो है ब्रह्माजी बालक, तिसने आत्माविषे आकाश रचाहै,पृथ्वी रचीहै, आकाशविषे नक्षत्रचक्र रचे हैं, अपर संपूर्ण क्रम रचा है, जैसे बालक अपनेविषे संकल्प रचै, तैसे ब्रह्माने रचा है, एक भूगोल रचा है, तिसके ऊपर नक्षत्रचक्र रचे हैं, तिस चक्रके दो भाग हैं, सो अन्योन्य सन्मुख स्थित हैं, तिसते सूर्य होता है, सात घटी दिन अरु रात्रिका प्रमाण है, जब सूर्य नक्षत्रचक्रके ऊर्ध्व ओर उदय होता है, तब दिन बडे होते हैं, जब अध ओर उदय होता है, तब दिन छोटे हो जाते हैं, ज्यों ज्यों सूर्य क्रम-करिकै ऊर्ध्वते अधकी ओर उदय होताहै, त्यों त्यों दिन छोटे होतेजाते हैं, रात्रि बढती जाती है, बहुरि षट् मासते उपरांत पोष त्रयोदशीतेकरि सूर्य क्रम करिकै ज्यों ज्यों ऊर्ध्वको उदय होता है, त्यों त्यों दिन बढता जाता है, आषढकी द्वादशीते लेकरि पोष त्रयोदशीपर्यंत रात्रि बढती जाती है, बहुरि रात्रि घटती है, दिन बढता जाता है, जब सूर्य मध्य चक्रके उदय होता है, तब दिन रात्रि समान हो जाता है, सो क्या है, संवेदनरूप जो ब्रह्मा है, तिसीका संकल्प विलास है, जैसे शिल्पी शिलाविषे पुतलियां कल्पता है,अरु चेष्टा करता है,सो बना कछु नहीं, शिलाही अपने घन स्वभावविषे स्थित होती है, तैसे चित्तरूपी शिल्पी आत्मारूपी शिलाविषे जगतरूपी पुतलियां कल्पता है,परंतु कछु बना नहीं, ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, जब संवेदन चेतती

है, जब रूप देखनेकी इच्छा होती है, तब चक्षु इंद्रिय बन जाती है, वह रूपको ग्रहण करती है, जब स्पर्शकी इच्छा होती है, तब त्वचा इंद्रिय बन जाती है, वह स्पर्शको ग्रहण करती है, जब गंधकी इच्छा होती है तब घ्राण इंद्रिय बनिकरि गंधको ग्रहण करती है, जब शब्द सुननेकी इच्छा होती है तब श्रवण इंद्रिय बनि जाती है, वह शब्दविषयको ग्रहण करती है, जब रसकी इच्छा होती है तब रसना इंद्रिय प्रगट होकरि स्वादको ग्रहण करती है, जब अपने उर वायुको देखनेकी ओर चेतती है तब अपने साथ वायुको देखती है, तिस वायुविषे प्राण फुरती देखती है॥ हे रामजी! देखना, सुनना, रस लेना, स्पर्शकरना, बोलना, गंधलेना, जहां जहां इंद्रियां विषयको ग्रहण करत भई, सो देश है, अरु जिस विषयको ग्रहण करने लगीं सो पदार्थ है, अरु जिस समय ग्रहण करने लगीं सो काल है, इसप्रकार देश काल पदार्थ हुये हैं, बहुरि यह शुभ है, यह अशुभ है, इस क्रमकरिकै कर्म भासने लगे॥ हे रामजी! इसप्रकार संवेदन फुरकरि जगत्को रचा है, शरीरको रचकरि इष्टअनिष्टको ग्रहण करती है, तू कहै, इंद्रियां तौ भिन्न भिन्न हैं, अरु अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, सर्व इंद्रियके इष्ट अनिष्ट इस जीवको कैसे होते हैं, तब इसका दृष्टांत सुन॥ हे रामजी! जैसे तंतु एक होता है, अरु मणके बहुत होते हैं, सो सर्वका आश्रय सूत्र होता है, तैसे अहंकाररूपी सूत्र है, अरु सर्व इंद्रियरूपी मणके हैं, यह कारणते अहंकार जीव आश्रयभूत इंद्रियके सुखसाथ सुखी होता है, अरु इंद्रियके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इंद्रियां आपहीते कार्य कारण करनेको समर्थ नहीं होतीं, अहंकार जीवकी सत्ताकरिकै चेष्टा करती हैं, जैसे शंखको आपते बाजनेकी समर्थता नहीं, जब पुरुष बजाता है, आप शब्द करता है, तब शंख बाजता है, तैसे इंद्रियकी चेष्टा अहंकार अरु जीवकरिकै होती है॥ हे रामजी! वास्तवते न कोऊ इंद्रिय हैं, न इनके विषय हैं, न मनका फुरणा है, सब आभासमात्र है, जब संवेदन फुरती है, तब एती संज्ञाको धारती है, जब संवेदन निर्वाण होती है, तब सर्व कल्पना मिटि जाती है॥ इति श्रीयोग० निर्वा० जीवसंसारवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्त०सर्गः॥२७०॥

द्विशताधिकैकसप्ततितमः सर्गः २७१.

सर्वप्रतिपादनम्

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संपूर्ण कल्पनाका क्रम मैं तुझको कहा है, जेता कछु जगत् देखाजाता है सो संवेदनरूप है, शुद्ध चिन्मात्र सत्ताका जो आदि आभास चेतनताका लक्षण चित्त अहम् अस्मि तिसका नाम संवेदन है, तिसके एते पर्याय हुये हैं, कई ब्रह्मा कहते हैं, कई विष्णु कहते हैं, कई प्रजापति कहते हैं, कई शिव कहते हैं, इनते आदि लेकारि पर्याय हुये हैं, तिस संवेदन आगे संकल्प फुर विश्वको रचा है, सो कैसा विश्व है, कि अकारण है, किसी कारणकारि नहीं बना, काकतालीवत् अकस्मात् आभास फुरा है,आकारसहित दृष्ट आता है, परंतु अंतवाहक है, व्यवहारसहित दृष्ट आता है, परंतु अव्यवहार है ॥ हे रामजी! संवेदन जो अंतवाहकरूप है,तिसने आगे विश्व रचा है,सो भी अंतवाहकरूपहै, परंतु अज्ञानीको संकल्पकी दृढताकारिकै आधिभौतिकरूप हो भासती है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर अरु संकल्पते इतर कछु नहीं, संकल्पकी दृढताकारिकै साकाररूप पहाड़ नदियां घट पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, परंतु बने तौ कछु नहीं, शून्यरूप हैं, तैसे यह जगत् निराकार शून्यरूप है ॥ हे रामजी! आदि जो अंतवाहकरूप संवेदन फुरी है सो बहिर्मुख फुरणेकरिकै देश काल पदार्थरूप हो स्थित भई है, जब बहिर्मुख फुरणा मिटि जाता है, तब जगत् आभास भी मिटि जाता है, जैसेस्वप्न आभास जगत् तबलग भासता है, जबलग निद्राविषे सोया होता है, जब जागना है, तब स्वप्नजगत् मिटि जाता है, एक अद्वैतरूप अपना आपही भासता है, तैसे यह जगत् अज्ञानके निवृत्त हुये लीन हो जाता है, सब जगत् निराकार है,संकल्पकी दृढताकारिकै आकार भासते हैं॥हे रामजी! संवेदनविषे जो संकल्प फुरता है, वही अंतःकरण चतुष्टय हो भासता है. पदार्थके चिंतवनेकारि इसका नाम चित्त होता है, संकल्प विकल्पके संसरणेकारि इसका नाम मन होता है, अरु ज्यों त्यों निश्चय करणेकारि

इसका नाम बुद्धि होता है, वासनाके समूह मिलनेकरि पुर्यष्टका कहाती है, सो सब संकल्पमात्र हैं, तिनते जगत् उपजा, सो भी संकल्परूप है, जैसे इंद्रजाल बाजी अरु स्वप्ननगर संकल्पकी दृढ़ता करिकै पिंडाकार भासते हैं, परंतु सब आकाशरूप हैं,तैसे यह जगत् आकाशरूप है, आत्माते इतर कछु है नहीं, अरु जो तू कहै भासता क्यों है तौ जिसविषे भासता है, सो वहीरूप जान, अरु देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जो स्थावर जंगमरूप जगत्भासता है,सो सब ब्रह्मरूप है, वेद शास्त्र जगत् कर्म स्वर्ग तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, वही निराकार अद्वैतब्रह्मसत्ता संवेदन करिकै जगत्रूप हो भासती है, जैसे स्वप्नविषे अपनाही अनुभव सृष्टिरूपभासता है, तैसे अपनाही अनुभव यह जगत् हो भासता है, ताते सब ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग हो भासताहै, अरु जलही जल है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदनकरिकै जगत् आभास फुरता है, सो ब्रह्महीब्रह्म है इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! जो कछु तुझको भासता है, सो सब अच्युत अनंतरूप अपने आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमः सर्गः ॥२७१॥

द्विशताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः २७२.

विद्यावादबोधोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब द्रष्टा दृश्यरूपको चेतता है, तब विश्व होता है, सो विश्व सब अंतवाहकरूप है, अंतवाहक कहिये निराकार संकल्परूप है, जब दृश्यविषे अहंभावकरिकै चेतता रहता है, तब अंतवाहकते आधिभौतिक शरीर हो जाता है, आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरा है, सो अंतवाहक शरीर हुआ है, जब वारंवार अपने शरीरको देखता भया, तब वह भी चतुर्मुख आधिभौतिक हो गया, ओंकारका उच्चारण करिकै वेद अरु वेदके क्रमकोरचता भया अरु संकल्पकरिकै विश्वरचता भया, जैसे कोऊ बालक मनोराज्यकरिकै बगीचा रचै,तिसविषे नाना

प्रकारके वृक्ष अरु फूल फल टास पत्र रचै, तैसे ब्रह्माजी रचत भया, सो अंतवाहक जीव उपजाये, जब जीवको शरीरविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब अंतवाहकते आधिभौतिक हो गये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तौ निराकार थी, तिसको शरीरका संयोग कैसे भया है, तिसते आधिभौतिकता कैसी हो गई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! न कोऊ शरीर है, न किसीको शरीरका संयोग भया है, केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे चेतन संवेदन फुरी है, वह संवेदन दृश्यको चेतती रहती है, सोई जगत्‌रूप होकरि स्थित भई है, जब संकल्पकी दृढता हो गई, तब अपने साथ शरीर भासने लगा, अरु अपर आकार भासने लगे, सो आकार कैसे हैं, आकशहीरूप हैं, कछु बने नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि उपजी कहिये, सो उपजी कछु नहीं, अरु तिसका कारण भी कोऊ नहीं, केवल आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं, परंतु स्वरूपके विस्मरण करिकै आकार भासते हैं, तैसे यह शरीर अरु जगत् जो भासता है, सो केवल आभासमात्र है, असंभावनाकी दृढताकरिकै प्रत्यक्ष भासताहै, जब स्वरूपका विचार करि देखैगा, तब शांत हो जावैगा ॥ हे रामजी! अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नका पदार्थ अविद्यमान होता है, अरु विद्यमान भासता है, जब जागता है, तब अविद्यमान हो जाता है, तैसे यह जगत् विचारसिद्ध है, विचार कियेते शांत हो जाता है, जब विचार करि देखैगा तब सर्वात्माही भासैगा॥ हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारीहै, अर्थ यह कि जो सत्तामात्र है, इसका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु अच्युत है, सदा ज्योंकी त्यों है, अपने भावको त्यागती कदाजित् नहीं, इसते इतर भासै सो भ्रममात्र जान॥ हे रामजी! विचार करिकै जब दृश्यभ्रमशांत होता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है, आत्मसत्ता ज्ञानरूप है, अरु निराकारहै, सदा अपने आपविषे स्थित है, जब सम्यक् ज्ञानका बोध होता है, तब जगत्‌भ्रम नष्ट होताहै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! सम्यक्‌ज्ञान किसको कहते हैं, अरु बोध किसको कहते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केवल जो बोधमात्र है, सो बोध कहाता है, तिसको ज्योंका त्यों जानना, इसका नाम सम्यक्‌ज्ञान है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! केवलबोध

किसको कहते हैं, अरु केवलज्ञान किसको कहते हैं॥वसिष्ठ उवाच॥ हे राघव! चैत्य जो है दृश्य, तिसते रहित जो चिन्मात्र है, तिसको तू केवलबोध जान, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ताको ज्योंका त्यों जानना सोई केवल ज्ञान है ॥ हे भगवन्! केवलबोध अचेत चिन्मात्र है तौ चैत्य जो है दृश्य जगत्भ्रम, सो तिस-विषे क्यों भासता है॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है, तिसविषे संवेदन जो है जानना, सोई चैतता कहिये, जब चैतता फुरती है, तब वही चैतता चैत्यरूप दृश्य हो भासती है, जैसे स्पंदते रहित वायु निर्लक्षणरूप होती है, अरु जब फुरती है, स्पंदरूप होती है, तब स्पर्शक-रिकै भासती है, तैसे संवेदनकरिकै दृश्य भासती है, सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है, तौ दृश्य बाह्य क्यों भासता है॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी कारण भ्रम कहा है, जो है अपने अंतर अरु बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपनेही अंतर होती है, वास्तवते न अंतर है, न बाहर है, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तैसे अब भी ज्योंकी त्यों स्थित है, अंतर अरु बाह्य भ्रमकरिकै भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु दृश्यभ्रमकरि भासती है, तौ शशेके शृंग भी भ्रममात्र हैं, वह क्यों नहीं भासते, अहं अरु त्वं क्यों भासते हैं, भूतकी चेष्टा प्रत्यक्ष भासती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अहं त्वं आदिक जगत् भी कल्पनामात्र है, जैसे शशेके सिंग कल्पनामात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत् भी भ्रम-मात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु संकल्पनगर भ्रममात्र है, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है, किसी कारणकरि नहीं उपजा, जैसे स्वप्नविषे शशेके शृंग नहीं भासते, अपर जगत् भासता है, तैसे यह भ्रम है ॥ राम उवाच॥ हे मुनीश्वर! भूत भविष्य वर्त्तमान तीनकालविषे जगत् स्मृति अनुभवकरि जानता है, अरु कारण कार्यभाव पाता है, तुम भ्रममात्र कैसे कहते हौ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं कहता हौं कि कारण करिकै कार्य होता है, सो तो सत् होता है, ताते तू कहु जगत्का कारण क्या है, जैसे बीजते

वट होता है, तैसे इसका कारण कौन है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जगत् सूक्ष्म अणुते उपजाता है,अरु लीन भी तत्त्वके अणुविषे होताहै॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सूक्ष्म अणु किसविषे रहते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! महाप्रलयविषे शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है,तिसविषे अणु रहते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाप्रलय किसको कहतेहैं, जहां सर्व शब्द अर्थका अभाव है, तिसका नाम महाप्रलय है, तहां शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, तौ सूक्ष्म अणु कैसे होवै, अरु कारण कार्यभाव कैसे होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसविषे जगत् कैसे निकसि आता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! विश्व कछु उपजी होवै तौ मैं तुझको कहौं, जो इसप्रकार जगत्की उत्पत्ति होती है, जो जगत् कछु उपजा नहीं, तौ इसकी उत्पत्ति कैसे कहौं, जब चिन्मात्रविषे चैतता फुरती है, तब जगत् अहं त्वं आदिक भासता है, सो फुरणाहीरूप है,अपर कछु उपजा नहीं, वहीरूप है ॥ हे रामजी ! ज्ञानका जो दृश्यभ्रमसाथ मिलाप है,सो बंधनका कारण है, तिसका अभाव होना मोक्ष है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानके भये जगत्का अभाव कैसे होता है, यह तौ दृढ होरहा है, इसकी शांति कैसे होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सम्यक्ज्ञान कारि जो बोध होता है, तिस बोधकारिकै दृश्यका संबंध निवृत्त होता है, सो बोध कैसा है, निराकार निज शीतलरूप है,तिसकारि मोक्षविषे प्रवर्त्तता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बोध तौ केवलरूप है, सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं, जिसकारि यह जीव बंधनते मुक्त होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिसज्ञानकारि ज्ञेय दृश्यका संयोग नहीं, तिसको केवलज्ञानी अविनाशीरूप कहते हैं, जब ज्ञेयका अभाव होता है, तब सम्यक्ज्ञान कहाता है,जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानसों ज्ञेय भिन्न है, अथवा अभिन्न है, अरु ज्ञान उत्पत्ति कारण कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधमात्रका नाम ज्ञान है, तिसते ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं, जैसे वायुते वायुका फुरणा भिन्न नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे त्रिकालज्ञ ! भूत भविष्य वर्त्तमानके जाननेहारे !

जो शशेके शृंगकी नाईं ज्ञेय असत् है, तौ भिन्न होकरि क्यों भासते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रांतिकरिकै भासता है, तिसका सद्भाव नहीं, न अंतर जगत् है, न बाहर जगत् है, अर्थते रहित भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक प्रत्यक्ष भासते हैं अर्थसहित अनुभव होता है, तुम कैसे अभाव कहते हौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत् विराट् पुरुषका वपु है, सो आदि विराट भी उपजा कछु नहीं, तौ अपरकी उत्पत्ति कैसे कहिये ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तीनों कालविषे जगत्का सद्भाव पाता है, तुम कहते हौ उपजा नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, अरु कछु उपजा नहीं, जैसे मृगतृष्णाका जल, आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा, संकल्पनगर भ्रमकरि भासते हैं, तैसे अहं त्वं आदिकजगत् भ्रमकरि भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जगत् दृढ भासता है तौ कैसे जानिये, जो उपजा नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पदार्थ कारणते उपजा है, सो निश्चयकरि सत्य जानाजाता है, जब महाप्रलकय होती है, तब कारण कार्य कछु नहीं रहता, सब शांतरूप होता है, बहुरि तिस महाप्रलयसों जगत् फुरि आता है, इसते जानाजाता है, कि सब आभासमात्र है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब महाप्रलय होता है, तब अज अविनाशी सत्ता शेष रहती है, ताते जानाजाता है कि, वही जगत्का कारण है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसा कारण होता है, तैसाही तिसका कार्य होता है, तिसते विपर्यय नहीं होता, जो आत्मसत्ता अद्वैत आकाशरूप है, तौ जगत् भी वहीरूप है, घटते पटकी नाईं अपर तौ कछु नहीं उपजता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब महाप्रलय होता है, तब जगत् सूक्ष्मरूप होकरि स्थित होता है, तिसते बहुरि प्रवृत्ति होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निष्पाप रामजी ! महाप्रलयविषे जो तुझने सृष्टिका अनुभव किया सो क्या रूप होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञप्तिरूप सत्ताही तहां स्थित होती है, तुमसारखेने अनुभव किया है, सो आकाशरूप है, सत् अरु असत् शब्दकारि नहीं कही जाती ॥ वसिष्ठ

उवाच ॥ हे महाबाहो ! जो ऐसे हुआ तौ भी जगत् तौ ज्ञप्तिरूप हुआ क्यों, ताते जन्ममरणते रहित शुद्ध ज्ञानरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो कि जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, भ्रममात्र है, सो भ्रम कहांते आया है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरणेकरि भासता है, जैसे जैसे चित्त फुरणा करता है, तैसे तैसे भासता है, इसका अपर कारण कोऊ नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो चित्तके फुरणेकरि भासता है तौ परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं, अग्निको जल नष्ट करता है, जलको अग्नि नष्ट करती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! द्रष्टा जो पुरुष सो दृश्यभावको नहीं प्राप्त होता, अरु ऐसी कछु वस्तु नहीं, भानरूप आत्माही चेतनघन सर्व रूप हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! चिन्मात्रतत्त्व आदि अंतते रहित है, जब जगत्को चेतता है, तब होता है, तौ भी तौ कछु हुआ, क्योंकि जगत् चैत्यका असंभव कैसे कहिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसका कारण कोऊ नहीं, ताते चैत्यका असंभव है, चेतन सदा मुक्त अरु अवाच्य पद है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो इस प्रकार है, तौ जगत्का अरु तत्त्वका फुरणा कैसे होता है, अहं त्वं आदिक द्वैत कहांते आया है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कारणके अभावते यह जगत् कछु आदिते उपजा नहीं, सर्व शांतरूप है, अरु नाना भासता है, सो भ्रममात्र है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! प्रकाशरूप सर्वदा जो निर्मल तत्त्व है, सो निरुल्लेख अचलरूप है, तिसविषे भ्रांति कैसे है, अरु किसको है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी, कारणके अभावते निश्चयकरि जान कि भ्रांति कछु वस्तु नहीं, अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामयसत्ता स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! मैं भ्रमकी नांई प्राप्त हुआ हौं, इसते अधिक पूछना नहीं जानता, अरु अत्यंत प्रबुद्ध भी नहीं, अब क्या पूछौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रश्न कर कि, कारणविना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है, जब विचार करिकै कारणका अभाव जानैगा, तब परम स्वभाव अशब्द पदविषे विश्रांतिको पावैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मैं यह जानता हौं कि, कारणके अभावते जगत्

कछु उपजा नहीं, परंतु चैत्यका फुरणा भ्रम कैसे हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कारणके अभावते सर्वत्र शांतिरूप है, भ्रम भी कछु अपर वस्तु नहीं, जबलग आत्मपदविषे अभ्यास नहीं, तबलग भ्रम भासता है, अरु शांति नहीं प्राप्त होती, अभ्यास करिकै केवल तत्त्वविषे विश्रांति पावैगा, तब भ्रम मिटि जावैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अभ्यास कैसे होता है अरु अनभ्यास कैसे होता है, एक अद्वैतविषे अभ्यास, अनभ्यास कैसे भ्रांति होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अनंत तत्त्वविषे शांति भी कछु नहीं, जो आभास शांति भासता है, सो महाचिद्घन अविनाशरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! उपदेश अरु उपदेशके अधिकारी यह जो भिन्न भिन्न शब्द हैं, सो सर्व आत्माविषे कैसे भासते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उपदेश अरु उपदेशके योग्य यह शब्द भी ब्रह्महीविषे स्थित हैं, शुद्ध बोधविषे बंध मोक्ष दोनोंका अभाव है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो आदि उत्पत्ति कछु हुआ नहीं तौ देश काल क्रिया द्रव्य इनके भेद कैसे भासते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देश काल, क्रिया, द्रव्य, यह जो भेद, हैं सो संवेदन दृश्यविषे हैं, सो अज्ञानमात्र भासते हैं, अज्ञानमात्रते इतर कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बोधको दृश्यकी प्राप्ति कैसे हुई, जहां द्वैत एकता कारणका अभाव है, तहां दृश्य भ्रम कैसे है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधको दृश्यप्राप्ति अरु द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषय है, हमसारखेका विषय नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो अंततत्त्व केवल बोधरूप है, तौ अहं त्वं हमारेविषे कैसे होता है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्धबोधसत्ताविषे जो बोधका जानना है, सो अहं त्वं करि कहता है, जैसेपवनविषे फुरणा है, तैसे तिसविषे चेतता फुरती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे निर्मल अचल समुद्रविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलते इतर कछु नहीं तैसे बोधविषे बोधसत्ताते इतर कछु नहीं, अपने आपविषे स्थित हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो ऐसे हैं, तौ किसका किसको दुःख होवै, एक अनंततत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अरु पूर्ण है ॥ राम

उवाच ॥ हे भगवन् ! जो एक है तौ अहं त्वं आदिक कलना कहांते आई है, भोक्ताकी नांई भोक्ता है, जो निर्मल है, तौ यह कैसे दृढता हुई है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञेय जो है दृश्यसत्ता, तिसका जानना तिसको बंधन नहीं, काहेते कि ज्ञानही सर्व अर्थरूप होकरि स्थित भया; तौ बंध अरु मोक्ष किसको होवे ? ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञप्ति जो बाह्य अर्थको देखती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु स्वप्नविषे पदार्थ सो असतरूप सत् हो भासते हैं, तैसे यह बाह्य अर्थ असतही सत् हो भासते हैं ।। वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कारणते रहित जो बाह्य अर्थ सत् भी भासते हैं,सो भ्रममात्र हैं, इतर कछु नहीं ॥राम उवाच॥हे भगवन् ! स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थका दुःख होता है, सत् होवै, अथवा असत् होवै, तैसे यह जगत्विषे सत् असत्का दुःख होता है, परंतु इसके निवृत्तिका उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो इसप्रकार है, जगत् स्वप्नकी नांई तौ जो कछु पिंडाकार भासता है, सो सब भ्रममात्र करिकै भासता है, सर्व अर्थ शांतरूप है, नानात्व कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्न अरु जाग्रतविषे पिंडाकार पर अपर रूप है, कैसे उत्पन्न होता है, अरु कैसे शांत होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व अपरका विचार करिये, जो जगत् आदिविषे क्या रूप था,अरु अंतविषे क्या रूप होता है, जब ऐसे विचार होवैगा, तब शांति हो जावैगी, जैसे स्वप्नविषे स्थूल पदार्थ पिंडरूप भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, तैसे जाग्रत पदार्थ भी आकाशरूप हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! भिन्न भावकी भावना प्राप्त होती है, तब जगत्को कैसे देखता है, अरु संस्कार कुहिड भ्रम शांत कैसे होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो निर्वासी पुरुष है, तिसको जगत्का भाव सदैव उठि जाता है, जैसे संकल्पनगर, जैसे कागजकी मूर्ति असत् भासते हैं, तैसे उसको जगत् असत् भासता है ॥राम उवाच॥ हे भगवन् ! वासनाते रहित पिंडभाव शांत हुये जगत्को स्वप्नवत् जानता है, तिसते उपरांत क्या अवस्था होती है॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जगत्को जब संकल्परूप जानता है, तब वासना निर्वाण होती है, पंचतत्त्वका क्रम उपजना विनशना लीन हो जाता है, परमतत्त्व

भासता है, सब आकाशरूप हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अनेक जन्मकी जो वासना दृढ हो रही है, अरु अनेक शाखाकारि पसरी है, संसारका कारण घोर वासना है, सो कैसे शांत होती है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसको यथाभूतार्थ ज्ञान होता है, तब भ्रांतिरूप जगत् स्थित हुआ, आत्माविषे शांत होता है, जब पिंडाकार अर्थ पदार्थ सो जाता है, तब कर्मरूप दृश्यचक्र शांत हो जाता है, जैसे स्वप्न पदार्थ जाग्रत्विषे नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मतत्त्वके बोधकारि सब वासना नष्ट हो जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जब पिंड ग्रहण निवृत्त हुआ अरु कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ, तब बहुरि क्या प्राप्त होता है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पिंडग्रहणभ्रम शांत होता है, तब संकुचन अरु क्षोभते रहित होता है, जगत् आस्था दृश्यकी शांति हो जाती है, अरु चित्त परमात्मतत्त्वको प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह बालकके संकल्पवत् कैसे स्थित है, जो संकल्परूप है, तौ इसके जो जड-विषे पदार्थ हैं, तिनके नष्ट हुये इसको दुःख क्यों प्राप्त होता है? इस जगत्की आस्था शांत कैसे होती है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पदार्थ संकल्पकारि उत्पन्न हुआ है, तिसके नष्टविषे दुःख नहीं होता, जो पूर्व अपर विचार करिकै चित्तते रचा जानिये तौ भ्रम शांत हो जाता है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चित्त कैसा है, तिसकारि रचा कैसे विचारिये?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरतीहै, तिसको संकल्परूप चित्त कहते हैं, तिसते रहित विचारणेसों वासना शांत हो जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! चैत्यते रहित चित्त कैसे होता है, अरु चित्तकारि उदय हुआ चैत्य जगत् निर्वाण कैसे होता है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्त कछु उत्पन्न नहीं भया, अन होता द्वैत भासता है, कछु है नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जगत् प्रत्यक्ष भासता है, जो उपजा नहीं तौ इसका अनुभव कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानीको जैसे जगत् भासता है, सो सत् नहीं, अरु जो ज्ञानवान्को भासता है, सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञानीको तीनों जगत् कैसे भासते हैं, जो सत् नहीं, ज्ञानवान्को कैसे

भासते हैं जो कहनेविषे नहीं आता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञानीको द्वैत सघन दृढ भासता है, अरु ज्ञानवान्को सघन द्वैत नहीं भासता, काहेते कि, आदि तौ उपजा नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्य भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो आदिते उपजा न होवै तौ अनुभव भी न होवै यह तौ अनुभव प्रत्यक्ष होताहै, असत् कैसे कहिये ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असत्ही सत्की नांई हो भासती है, यह कारणते रहित भासती है; जैसे स्वप्नविषे पदार्थका अनुभव होता है, परंतु वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह असत्ही अनुभव होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्नविषे असंकल्पविषे जो दृश्यशंका अनुभव होता है, सो जाग्रतके संस्कारते होता है, अपर कछु नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्वप्न अरु संकल्प तिसके संस्कारते होते हैं, सो जाग्रतके संस्कार कैसे होते हैं, वहीरूप अथवा जाग्रतते अन्य हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! स्वप्नके पदार्थ अरु मनोराज्य सो जाग्रतके संस्कारते जाग्रतकी नांई भासता है, सो भ्रमविषे भासते हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो स्वप्नविषे जाग्रतके संस्कारकरिकै जगत् जाग्रत्की नांई भासता है; जो स्वप्नविषे किसीका घर लूटि गया, अथवा जलके प्रवाहविषे बह गया, तौ जाग्रत्विषे तौ कछु हुआ नहीं, प्रातःकालको उठिकरि देखता है, तब ज्योंका त्यों भासता है, तौ संस्कार भी कछु न हुआ सब कल्पनामात्र जानना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अब मैं जाना है, कि यह सर्व ब्रह्मही है, न कोऊ देह है, न जगत् है, न उदय है, न अस्त है, सर्वदाकाल सर्व प्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसते इतर जो कछु भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, अरु भ्रम भी कछु वस्तु नहीं, सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्महीका प्रकाश है, वही अपने आपविषे प्रकाशता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्गके आदि देहचित्तादिक कैसे फुरि आये हैं, अरु कैसे आत्मा प्रकाशरूप जगत् है, प्रकाशभी तिसका होता है, जो साकाररूप होता है, ब्रह्म तौ निराकार है, दीपक आदिकवत् आकारते रहित है, तिसका प्रकाश कैसे कहिये ? ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व ब्रह्मरूप है, प्रकाश अरु प्रकाशकका भेदभी कछु नहीं, दूसरी वस्तु भी कछु नहीं, वही अपने आपविषेस्थित है, ताते स्वप्रकाश कहा है, सूर्य आदिकका प्रकाश त्रिपुटीकरि भासता है, सो भी तिसके आश्रय होकरि प्रकाशता है, तिसके प्रकाशका आधारभूत कहाता है, तिसके आश्रय होकरि सूर्य जगत्को प्रकाशता है, अरु आत्मसत्ता अद्वैतसत्ता है, अरु विज्ञानघन है, तिसविषे चित्त संवेदन फुरी है, वही जगत्रूप होकरि स्थित भई है, आत्मसत्ता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, वही इस प्रकार एकही नाई स्थित भया है ॥ हे रामजी ! निराकार स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! इस जगत्के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी, तिसीसों जो नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आया, तौ वहीरूप हुआ क्यौं ? अपर कारण तौ कोऊ नहीं, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैतसत्ता निराकार है, तिसको सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं, सो भी वहीरूप हुये ॥ क्यौं ? प्रगट भासते भी हैं, तैसे यह जगत् भी अकारण अरु निराकार जान॥ हे रामजी ! न कोऊ जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, सब आभासमात्र है, यही आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, हमको तौ वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासती है, जैसे दर्पणविषे अपना मुख भासता है, तैसे हमको अपना आप भासता है, अरु अज्ञानीको भ्रांतिरूप जगत् भासता है, जैसे वृक्षके कुंडविषे पुरुष भासता है, दूरते भ्रांतिकरिकै, तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! न कोऊ द्रष्टा है, न दृश्य है, द्रष्टा तब कहिये जो दृश्य होवै, अरु दृश्य तब कहिये जो द्रष्टा होवै, जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा किसका, अरु जो द्रष्टाही नहीं तो दृश्य किसका, ताते निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो आकारभी भासते हैं, तौ भी निराकार है, आत्मसत्ताही संवेदनकरिकै आकाररूप हो भासती है, जैसे स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है, कि एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, तो उसको प्रत्यक्ष खोदेविनाही भासती हैं, तैसे खोदेविना ब्रह्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी

चितेरा यह पुतलियां देखता है, सो हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! इन मेरे वचनोंको तू स्वप्न अरु संकल्प दृष्टांतकरिकै देखु, जो अनुभवरूपही आकार हो भासता है, अनुभवते इतर कछु नहीं, इस मेरे वचनरूपी उपदेशको हृदयविषे धारहु, अरुअज्ञानीके वचनको छर्दिकी नाईं त्यागहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः ॥ २७२ ॥

द्विशताधिकत्रिसप्ततितमः सर्गः २७३.

रामविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है, कि हम अज्ञानकरिकै जगत्को देखते भये, जगत् तौ कछु वस्तु नहीं, सर्व ब्रह्मही है, अरु अपने आपविषे स्थित है, जगत् भ्रमकरि भासता है, अब मैं जाना है, कि यह जगत् भ्रममात्र था, वस्तुते न यह पीछे था, न होना है, न आगे होवैगा, सर्व शांत निरालंब विज्ञानघनसत्ता है, अरु भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थितहै, सो कैसा है, निर्विकारहै, शांतरूप है, जैसे सर्गके आदि अरु परलोकके आदि स्वप्नके आदि सकल पुरके आदि इन स्थानोंविषे अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसकी आभास संवेदन स्पंद फुरती है, तब अनेक पदार्थसहित जगत् भासि आता है, सो अनुभवरूप होता है, इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवरूपहै ॥ हे प्रभो ! अब मैं तुम्हारी कृपाते ऐसे निश्चय किया है, कि जगत् अविचारसिद्ध है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे शशेके सिंग अरु आकाशके फूल असत् होते हैं, तैसे जगत् असत् है, बडा आश्चर्यहै जो असत्रूप अविद्याने मोहित किया था, अब मैंने जाना है, कि अविद्या कछु वस्तु नहीं, अपनी कल्पनाही आपको बंधन करती है, जैसे अपने परछाईंविषे बालक भूत कल्पता है, अरु आपही भय पाता है, तैसे अपनी कल्पनाही अविद्यारूप भासती है, जबलग विचार प्राप्त नहीं भया तबलग भासती है, विचार कियेते अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जेवरीके जाननेसे सर्पका अत्यंत अभाव हो

जाता है, जैसे स्थाणुविषे भ्रमकरिकै पुरुष भासता है, तैसे आत्माविषे अविद्यारूप जगत् भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशके फूल अरु शशेके शृंग कछु वस्तु नहीं, तैसे अविद्या भी कछु नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र भासै तौभी भ्रममात्र जनाता है,जैसे स्वप्नविषे अपने मरणेका अनुभव होवै तौभी भ्रममात्र है,तैसे अविद्यारूप जगत् भासता है तौ भी असत् है, प्रमाणरूप नहीं, प्रमाण कहिये जो यथार्थ ज्ञानका साधक होवै सो यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है सो यथार्थ करता नहीं;काहेते जो वस्तुरूप आत्मा है,सो ज्योंका त्यों नहीं भासता, विपर्यय जगत्रूप भासताहै, सीपविषे रौप्यवत्, ताते यह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है, तौ भी असत्रूप है, प्रमाण क्यों करि जानना॥हे भगवन्! यह जगत् अपर कछु वस्तु नहीं,केवल कल्पनामात्र है,जैसे जैसे आत्माविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे तैसे जगत् भासता है अरु जो कोऊ पुरुष स्वर्गविषे बैठा होवे, तिसके हृदयविषे कोऊ चिंता उपजी तब उसको स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, काहेते कि, भावना नरककी हो जाती है ॥ हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है; आत्माविषे जगत् कछु आरंभ परिणामकरिकै बना नहीं, यह जगत् चित्तविषे है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, सो जैसी कल्पते तैसे ही भासता है, शिलाते इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे चित्तने जगत् पदार्थ रचे हैं, जैसे जैसे भावना करता है, तैसे तैसे यह भासता है, अरु आत्माविषे जगत् न कछु हुआ है, न आगे होनाहै, केवल अपने आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, स्वच्छ है, अद्वैत अरु परम मौनरूप है, द्वैत एक कल्पनाते रहित है, परम मुनीश्वर करिकै सेवने योग्य है, ऐसा जो पद है, सो मैं पाया हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, सर्व दुःखते रहित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ २७३ ॥

द्विशताधिकचतुःसप्ततितमः सर्गः २७४.

रामविश्रांतिवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो आदि अंत मध्यते रहित पद है अरु मुनिकारि जानना भी कठिन है, सो पद मैं पाया हौं; एक अरु द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र वेदकरि कही है, सो मेरी मिटि गई है, अब मैं परम शांतिको प्राप्त भया, अरु निःशंक हुआ हौं, कोऊ दुःख मुझको नहीं रहा, सब जगत् मुझको आत्मरूपही भासता है ॥ हे भगवन्! अब मैंने जाना है कि, न कोऊ अविद्या है, न विद्या है, न सुख है, न दुःख है, सर्वदा अपने आत्मपदविषे स्थित हौं, पाने योग्य पद सो मैंने पाया है, जो आगेही प्राप्त था, जो कहते हैं हम तिस पदको नहीं जानते तिनकोभी प्राप्तरूप है, परंतु अज्ञानकरिकै नहीं जानते, सो पद अपर किसीकारि नहीं जानाजाता, अपने आपकारि जानाजाता है, अरु ऐसे भी नहीं, जो किसीकारि जनावे, अरु जानने योग्य अपर होवै, आपही बोधरूप है, सदा अपना आपही है, अपर न कोऊ भ्रांति है, न जगत् है, सर्व आत्माही है ॥ हे मुनीश्वर! अज्ञान अरु ज्ञान भी ऐसे हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि भासै, तिसविषे अंधकार भासै, सो अंधकार तब नाश होवै, जब सूर्य उदय होवै, अरु जब स्वप्नते जागि उठै, तब न अंधकार रहता है, न प्रकाशही रहता है, तैसे आत्मपदविषे जागेते ज्ञान अज्ञान दोनोंका अभाव हो जाता है, द्वितीय कल्पना मिटि जाती है, जब संवेदन फुरती है, तब जगत् भासता है, परंतु जगत् आत्मसत्ताते भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे शिलाका अंतर जडीभूत होता है, तैसे आत्माका रूप जगत् है, जैसे जलरूप तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत् अभेदरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको ऐसे आत्माविषे अहं प्रतीति भई है, सो कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, तौ भी अंतरते निश्चयकारि कछु नहीं करता, अशांतरूप दृष्ट आताहै, तौ भी सदा शांतरूप है ॥ हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी

मध्याह्नका सूर्य है, अरु जगत्‌की सत्यता रूपी दिन है, जगत्‌के भावअभाव पदार्थरूपी तिसका प्रकाश है, अरु तृष्णा रूपी मरुस्थल है, तिसविषे अज्ञानी जीवरूपी मार्गपंथी हैं, तिनको दिन अरु मार्गनिवृत्त नहीं होता, अरु जो ज्ञानवान् स्वभावविषे स्थितहैं; तिनको न संसारकी सत्यतारूपी दिन भासता है, न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है, वह संसारकी ओरते सोइ रहे हैं, ऐसी अद्वैतसत्ता तिनको प्राप्त भई है, जहां सत् असत् दोनों नहीं, तिस कारणते जगत्‌कलना नहीं भासती ॥ हे मुनीश्वर ! अब मैं जागा हौं, सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्ट आता है, मैं निर्वाणरूप निराकार हौं, निरिच्छितरूप हौं, परंतु मैं स्वभावसत्तारूप हौं, अब कोऊ दुःख मुझको नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! तिस पदको मैं पाया हौं, जिसके पानेकरि तृष्णा कदाचित् नहीं उपजै, जैसे पाषाणकी शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, तैसे मुझविषे तृष्णा नहीं फुरती, सर्व आत्मरूपही मुझको भासता है, अरु यह जो जीव है, तिसविषे जीवत्व कछु नहीं जीवत्व भ्रांतिसिद्ध है, सब आत्मस्वरूप है, मुझको तौ निरालंबसत्ता अपना आपही भासतीहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ २७४ ॥

द्विशताधिकपंचसप्ततितमः सर्गः २७५.

रामविश्रांतिर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! आत्माविषे अनंत सृष्टि फुरती हैं, जैसे मेघकी बूंदका अंत गनतीते कछु नहीं होता, तैसे परमात्माविषे सृष्टिका अंत गनतीते नहीं होता, जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणैं होतीहैं, तैसे परमात्माविषे असंख्य सृष्टि हैं, कई परस्पर मिलती हैं, कई नहीं मिलती, परंतु स्वरूपते एकरूप हैं, जैसे एक समुद्रमें लहरियां उठती हैं, कई नूतन भिन्न भिन्न अपरही प्रकारकी उठती हैं, एक तौ परस्पर ज्ञान होती हैं, एक नहीं होती हैं, अरु जैसे एकही ज्वालाके बहुत दीपक होते हैं, कई अन्योन्य

होते हैं, कोऊ परस्पर मिलते हैं, स्वरूपते एकरूप हैं, तैसे आत्माविषे अनंत जगत् फुरते हैं, परस्परते एकरूप हैं,जो नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आया, तिसविषे तौ वही रूप हुआ क्यों, अपर कारण तौ कोऊ नहीं, जैसे शून्यके आदि निराकारसत्ता होती है, तिसीसों सूर्यादिक पदार्थ भास आते हैं, सो भी वही रूप हुये, प्रगट भासते भी हैं, परंतु निराकार होते हैं, जैसे यह जगत् भी अकारण निराकार है ॥ हे मुनीश्वर ! अब मैं ज्योंका त्यों जाना है, जैसे स्वप्नविषे मुये हुये बोलते दृष्ट आते हैं, अरु जीवते हुये मृतक दृष्ट आते हैं, स्वप्नकालविषे पदार्थ विपर्यय भासते हैं, परंतु जब जागि उठैं, तब ज्योंके त्यों भासते हैं, तैसे मैं जाग उठा हौं, मुझको विपर्यय नहीं भासता, यथाभुतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो परम समाधिविषे स्थित हैं, तिनको उत्थान कदाचित् नहीं होता, अर्थ यह कि, स्वरूपते इतर नहीं भासता, व्यवहार करते दृष्ट आते हैं,परंतु व्यवहारते रहित हैं, काहेते कि, अभिलाषा कछु नहीं रहती, विना अभिलाषा चेष्टा करतेहैं,अंतरते कछु कर्तृत्वका अभिमान नहीं फुरता, इसीका नाम परम समाधि है, जब बोधकी प्राप्ति होती है, तब तृष्णा कोऊ नहीं रहती, सब पदार्थ विरस हो जाते हैं, काहेते कि,आत्मपद जो परमानंदरूप है, जो तृष्णाते रहित है, तिसीका नाम मोक्ष है, अरु तिसीका नाम निर्वाण है, जिसविषे उत्थान कोऊ नहीं॥ हे मुनीश्वर ! आत्मानंद ऐसा पद है,जिस पदके आनंदको ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक ज्ञानवान्की वृत्ति सदा दौड़ती है,संसारके पदार्थकी ओर नहीं धावती, अरु जिस पुरुषको शीतल स्थान प्राप्त भयाहै, सो बहुरि ज्येष्ठ आषाढकी धूपको नहीं चाहता, जो मरुस्थलको दौडै, तैसे ज्ञानवान्की वृत्ति आनंदकी ओर नहीं धावती ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने निश्चय किया है कि,तृष्णा जैसा पाप कोऊ नहीं, अतृष्णा जैसी शांति कोऊ नहीं जो पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त है,अरु अंतर तृष्णा जलावती है, सो कृपण दारिद्री है, अरु आपदाका स्थान है, अरु जो निर्धन दृष्ट आता है, परंतु अंतर तृष्णा कोऊ नहीं, सो परम ऐश्वर्यकरि संपन्न है, अरु परम संपदाकी मूर्त्ति है, अरु जो बड़ा पंडित है परंतु तृष्णासहित

है, सो परम मूर्ख जानिये, तिसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहीं होती, जैसे मूर्तिकी अग्नि शीतको निर्वाण नहीं करती, तैसे उसकी मूर्खताको पंडित निर्वाण न करैगा ॥ हे मुनीश्वर! सहस्रके सहस्रविषे कहूं पुरुष तृष्णाविरहित होता है, जैसे सिंह पिंजरेविषे पडा पिंजरेको तोड निकसे, तैसे कहूं विरला तृष्णाके जालको तोड निकसता है, जो पंडित स्वरूपको विचारिके वितृष्ण नहीं होता, अरु अतीत होकरि वितृष्ण नहीं होता, तौ पंडित अरु अतीत दोनों मूर्ख हैं, जेता जेता तृष्णाके घटावैगा त्यों त्यों जाग्रत् बोध उदय होवैगा, ज्यों ज्यों रात्रिकी क्षीणता होती है, त्यों त्यों दिनका प्रकाश होता है, अरु ज्यो ज्यों रात्रिकी वृद्धि होती है, त्यों त्यों दिनकी क्षीणता हीती है, तैसे ज्यों ज्यों तृष्णा बढती जावैगी, त्यों त्यों बोधकी प्राप्ति कठिन होवैगी, अरु ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावैगी, त्यों त्यों बोधकी प्राप्ति सुगम होवैगी ॥ हे मुनीश्वर! अब मैं तिस पदको प्राप्त हुआ हौं, अच्युत निराकार पद है, अरु द्वैत एक कलनाते रहित है, तिस पदको मैं आत्माकरि जाना है, अब मैं निःशंक हुआ हौं, अरु जिस पदको पायेते इच्छा कोऊ नहीं रही, सो परमानंद आत्मपद है ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिक पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ २७५ ॥

द्विशताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः २७६.

रामविश्रांतिवर्णनम् ।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बडा कल्याण हुआ है, जो तू जागा है ॥ हे रामजी! यह परम पावन वचन तुझने कहे हैं, जिनके सुनेते पापका नाश होता है, बहुरि कैसे वचन तुझने कहे हैं, जो अज्ञानरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य है, अरु मन तनके तापको नाशकर्त्ता चंद्रमाकी किरणें हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष अपने स्वभावविषे स्थित हैं, तिनको व्यवहार अरु समाधिविषे एकही दशा है, अनेक प्रकारके चेष्टा

करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु उनके निश्चयविषे कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं फुरता, सदा परम ध्यानविषे स्थित हैं, जैसे पत्थरकी शिला होती है, तिसविषे स्पंद कछु नहीं फुरता, तैसे उनको कछु कर्तृत्वबुद्धि नहीं फुरती. काहेते कि, दृश्यविषे उनका अहंकार देहाभिमान निवृत्त भया है, स्वस्वरूप चिन्मात्रविषे स्थिति पाई है, सो कैसा आत्मपद है, परम शांतरूप है, द्वैतकलनाते रहित एक है, ऐसा जो पद है, सो ज्ञानवान् आत्मताकरिकै जानता है, तिसको निर्वाण कहते हैं, तिसको मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा जो पद है, तिसविषे हम सदा स्थित हैं, अरु ब्रह्मा विष्णुते आदि लेकरि जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो तिसी पदविषे स्थित हैं, नानाप्रकारके चेष्टा करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु सदा शांतरूप हैं, तिनको क्रिया अरु समाधिविषे एकही आत्मनिश्चय रहता है, जैसे वायु स्पंदविषे एकही है, तरंग अरु ठहरायेविषे जल यही है, तैसे ज्ञानी दोनों विषे सम है, जैसे आकाशरूप अरु शून्यताविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम्हारी कृपाते मुझको कलना कोऊ नहीं फुरती, ब्रह्मा विष्णु रुद्रते आदि लेकरि जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप मुझको भासता है, सर्वदा काल सर्व प्रकार मैं अपने आपविषे स्थित हौं, अच्युत अरु अद्वैत रूप हौं, मेरेविषे जगत्‌की कलना कोऊ नहीं, चित्त संवेदनद्वारा मैंही जगत्‌रूप हो भासता हौं, अरु स्वरूपते कदाचित् चलायमान नहीं भया, अचेत चिन्मात्र स्वरूप हौं, अपने आपते इतर मुझको कछु नहीं भासता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं जानता हौं कि, तू जागा है; परंतु अपने दृढ बोधके निमित्त मुझसों बहुरि प्रश्न करु कि, यह जगत् है नहीं, तौ भासता क्यों है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मैं तुमसों तब पूछौं, जो जगत् आकार मुझको भासता होवै, सो मुझको जगत् कछु भासता नहीं, जैसे संकल्पके अभाव हुये संकल्पकी चेष्टा नहीं भासती, जैसे बाजीगरकी मायाका अभाव हुये बाजी नहीं भासती, जैसे स्वप्नके अभाव हुये स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, जैसे भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते तैसे मुझको जगत् नहीं भासता, बहुरि संशय किसका उठावौं, आदि जो चित्तसंवेदन फुरी है, सो विराट्पुरु

होकरि स्थित भया है,तिसने आगे देश काल पदार्थ रचे हैं, अरु स्थावर जंगम जगत्को रचा है, तिसके समष्टि वपुका नाम विराट् है, जैसे स्वप्नका पर्वत होवे, तैसे यह विराट् पुरुष है, बहुरि कैसा विराट् है, जो आप आकाशरूप है, जो आपही आकाश रूप है, तिसका रचा जगत् मैं क्यों पूछौं, जैसे स्वप्नकी मृत्तिकाही आकाशरूप है, अर्थ यह जो उपजी अनउपजी है, तिसके पात्रका मैं क्यों पूछौं, ताते न कोऊ विराट् है, न तिसका जगत् है, मिथ्याही विराट् है, मिथ्याही तिसकी चेष्टा है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थितहै, न कोऊ जगत् है, न कोऊ तिसका विराट् है, जैसे स्वप्नका पर्वत आभासमात्र होता है, तैसे यह जगत् आकार भासता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है, तैसे ब्रह्मते जगत् प्रगट हुआ है, यह भी कैसे कहिये, बीज साकार होता है, तिसविषे वृक्षका सद्भाव रहता है, वही परिणामी करिकै वृक्ष होता है, आत्मा ऐसे कैसे होवै, आत्मा तौ निराकार है, तिसविषे जगत्का होना नहीं. काहेते कि, जो निर्विकार है, अरु अद्वैत है, निर्वेद है, तिसको जगत्का कारण कैसे कहिये, न कोऊ जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह अवस्था भी आकाशमात्र है, परिणामभावको नहीं प्राप्त भया, सदा अपने आपविषे स्थित है॥ हे मुनीश्वर! मैं तू भी आकाशरूप हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूप हैं, अब सर्व आत्माही मुझको भासता है॥ हे मुनीश्वर! एक सविकल्प ज्ञान है, एक निर्विकल्प ज्ञानहै, सो आकाशवत् अचैत्य चिन्मात्र है, चैत्य जो दृश्य है, तिसके संबंधते रहितहै,सो आकाशवत् निर्मल जान, सो निर्विकल्पज्ञान है, जिनको यह ज्ञान प्राप्त भया है, सो महापुरुष है, तिसको मेरा नमस्कार है, अरु जिसको दृश्यका संयोग है. सो सविकल्प ज्ञान जीवको होता है, संसारी है, तिसको भिन्न भिन्न जगत् विषमता सहित भासता है, परंतु वही भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं तौ भी जलस्वरूप हैं, तैसे भिन्न भिन्न जीव अरु तिनका ज्ञान है, तौ भी मुझको अपना आपही भासता है, जैसे अवयवीको सब अंग अपनेही भासते हैं, तैसे

सर्व जगत् अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है, जगत्की कलना कोऊ नहीं फुरती, जैसे स्वप्नते जागेको स्वप्नसृष्टि नहीं फुरती, कल्पनाते रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसे मुझको जगत् कल्पनाते रहित अपना आपही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! आगमते लेकरि जो शास्त्र हैं, तिनते उल्लंघि वचन मैं कहे हैं, परंतु जो मेरे हृदयविषे हैं, सोई कहे हैं, जो कछु अंतर होता है, सोई बाह्य प्रगट वाणीकरि कहता है, जैसे जो बीज बोता है, सोई अंकुर निकसता है, बीजविना अंकुर नहीं निकसता, तैसे जो कछु मेरे हृदयविषे है, सोई वाणीकरि कहता है, अरु यह विद्या सर्व प्रमाणकरि सिद्ध है ॥ हे मुनीश्वर ! जिसको यह दशा प्राप्त है, सोई जानता है, अपर कोऊ नहीं जान सकता, अरु जिसने मद्य पान किया है, सोई उन्मत्तताको जानता है, अपर कोऊ नहीं जान सकता, तैसे जो ज्ञानवान् है, सोई आत्मरसको जानता है; अपर कोऊ नहीं जानता, सो कैसा आत्मरस है, जिसके पियेते बहुरि कोई कल्पना नहीं रहती ॥ हे मुनीश्वर! मैं आत्मा अजन्मा अविनाशी अरु परम शांतरूप हौं, उभय एककी कल्पनाते रहित अचेत चिन्मात्र हौं, अरु जगत्‌रूप हुएकी नांई भी मैं भासता हौं, अरु निराभास हौं, मेरेविषे आभास भी कोऊ वस्तु नहीं, काहेते कि निराकार हौं इसप्रकार मैं अपने आपको यथार्थ चिन्मात्र जाना है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः ॥ २७६ ॥

द्विशताधिकसप्तसप्ततितमः सर्गः २७७.

चिंतामणिप्राप्तिवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! इसप्रकार रामजी कहिकरि एक मुहूर्तपर्यंत तूष्णीं होगया. अर्थ यह कि परमात्मापदविषे विश्रांतिको

पावत भया, इंद्रिय अरु मनकी वृत्ति जो है, सो आत्मपदविषे उपशम भई, तिसते उपरांत जानकरि भी कमलनयन रामजी लीलाके निमित्त प्रश्न करत भया ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी मेघके नाशकर्ता शरत्काल! मुझको एक संशय कोमल जैसा भया तिसको दूर करहु ॥ हे मुनीश्वर! आत्मपद अव्यक्त है, अरु अचिंत्य है, अर्थ यह कि,इंद्रिय अरु मनका विषय नहीं, इंद्रियोंकरि ग्रहण नहीं होता, अरु मनकी चिंतवनाविषे भी नहीं आता, जो बडे महापुरुष हैं, तिनके कहनेविषे भी नहीं आता, ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है, सो शास्त्रकरि कैसे जाना जाता है, शास्त्र तौ अविच्छेद प्रतियोगीकरि कहते हैं, सो सविकल्प है, सविकल्पकरिकै निर्विकल्पपद कैसे जाना जाता है, गुरु अरु शास्त्रकरिकै जानिये, अरु विकल्परूप जो शास्त्र, तिनविषे भी सार अर्थ पायाजाता है, परंतु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो तिससाथ हैं, तिनकरिकै सर्वात्मा क्योंकरि जानिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! गुरु अरु शास्त्रकरि नहीं जानाजाता, अरु गुरु शास्त्रविना भी नहीं जानाजाता ॥ हे रामजी! नानाप्रकार जो विकल्परूप शास्त्र हैं, तिनकरिकै निर्विकल्परूप कैसे जानजाता है, परंतु जिसप्रकार इनकरि जाना है, सो भी सुन ॥ हे रामजी! एक व्यवधान देशके कीटक थे, सो गृहस्थविषे रहते थे, तिनको आपदा आनि प्राप्त हुई; वह चिंताकरि दुर्बल होते जावैं, अरु भोजन भी न जुड जावै, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि सूख जाती है, जैसे कमल जलते निकसा सूखजाता है, तैसे संपदारूपी जलते निकसकरि कीटक आपदारूपी धूपकरि सूख गये, तब उनने विचार किया कि, किसीप्रकार हमारी उदरपूर्तता चले ताते हम वनविषे जायकरि लकडी चुन लेवैं, जो हमारा कष्ट दूर होवै ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके वह वनविषे गये वनविषे जायकरि लकडियां ले आये इसीप्रकार लकडियाँ वाले आवैं जब एक वनते अपर वनविषे देखैं, तब वहांते ले आवैं, बजारविषे वेचिकरि उदरपूर्ति करैं, जब केताक काल व्यतीत भया, तब कोऊ चंदनकी लकडीको पिछानै सो उनते विशेष मोल पावै, एकको ढूढते ढूंढते रत्न प्राप्त भये तिनको

विशेष ऐश्वर्य प्राप्त भया, सो लकडी उठावनेके यत्नते रहित भये, बहुरि अपरस्थान ढूंढने लगे, जो रत्नते भी विशेष कछु पाइये, सो वनकी पृथ्वीको खोदते खोदते कोई चिंतामणिको प्राप्त भये, वह बडे ऐश्वर्यको प्राप्त भये, जैसे ब्रह्मा इंद्रादिक हैं, तैसे होत भये ॥ हे रामजी ! जिनने उद्यम-करिकै वनकी सेवना करी तिनको बडा सुख प्राप्त भया, जो लकडियां उठावते रहे, तिनकी उदरपूर्तिही भई, अरु दुःख निवृत्त न भया, अरु जिनको चंदनकी लकडियां प्राप्त भई, तिनके उदर पूर्णताते अपर भी संताप मिटे, अरु जिनको चिंतामणि प्राप्त भई, तिनके सर्वसंताप मिटि गये, वह परम ऐश्वर्यवान् भये, परंतु सबको वनसों प्राप्त भया, अरु जो वनके निकट उद्यमकारि न गये, घरही बैठे रहे, सो दुःखित होकारि प्राणोंको त्यागते भये, परंतु सुख न पाया॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण-प्रकरणे चिंतामणिप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकसप्तसप्ततितमः सर्गः ॥२७७॥

द्विशताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः २७८.

गुरुशास्त्रोपमावर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो तुम कीटकका वृत्तांत कहा सो इसका तात्पर्य मैं कछु न जाना, वह कीट कौन थे, अरु बन क्या था, अरु आपदा क्या थी सो कृपाकारि प्रगट कहौ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! जेते कछु जीव देखता है सो सब कीट हैं, तिनको अज्ञानरूपी आपदा लगी हैं, आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक जो तीनों ताप हैं, आध्या-त्मिक कामक्रोधादिक मानसी दुःख हैं, आधिभौतिक देहके वात पित्त कफ आदिक दुःख हैं, अरु आधिदैविक जो गृहतेदुःख अनिच्छित आनि प्राप्त होता है, तीन तापकी चिंताकारि जलते हैं ॥ हे रामजी ! तिनविषे प्रयत्न करिकै शास्त्ररूपी वनविषे गये हैं, सो सुखी भये हैं, जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वनको सेवते भये, तिनको सत्धर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त भई तिन कारि जो नरकरूपी उदरपूर्तिका दुःख था सो निवृत्त भया, अरु स्वर्गरूपी सुख पाते भये, बहुरि शास्त्ररूपी वनको सेवतेसेवते उपासनारूपी चंदन वृक्ष

जिनको प्राप्त भया, तिसकरि अवर दुःख भी निवृत्त भये, अरु विशेष सुखको पावते भये सो जब अपने इष्ट देवको सेवता है, तब स्वर्गादिक विशेष सुखको पावता है, अपने स्थानको प्राप्त होता है, बहुरि शास्त्ररूपी वनको ढूँढता है, तब विचाररूपी रत्नविशेष सुखको पावता है, जब सत् असत्का विचार इसको प्राप्त होता है, तब सर्व दुःख इसके नष्ट हो जाते हैं, अरु यह जो सुख प्राप्त होता है, सो शास्त्रकरिके होता है क्यों ? जैसे अवर पदार्थ चंदन लकडियां वनविषे प्रगट थे चिंतामणि गुप्त थी, तैसे अपर शास्त्रविषे धर्म अर्थ काम प्रगट हैं, अरु ज्ञानरूपी चिंतामणि गुप्त है, जब शास्त्ररूपी वन पृथ्वीको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी यत्नकरि खोजै, तब आत्मरूपी चिंतामणिको पावता है ॥ हे रामजी ! वनविषे उन चिंतामणि तब पाई क्यौं, जो उहां चिंतामणिका वन था, परंतु जब अभ्यास किया तब पाई, परंतु उसी वनविषे पाई; तैसे गुरु शास्त्र भी माटीके खोदनेवत् हैं, जब भला अभ्यास करता है, तब आपही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश आता है, जैसे माटीके खोदनेकरि चिंतामणिका प्रकाश उपजता नहीं, काहेते जो चिंतामणि आगेही प्रकाशरूप है, खोदनेकरि आवरण दूर किया, तब आपही भासि आया, तैसे गुरु शास्त्रके वचन तिनके अभ्यासकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाशि आती है, सो गुरु अरु शास्त्र हृदयकी मलिनता दूर करते हैं, जब मलिनता दूर होती है, तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है, ताते गुरु शास्त्रकरि मलिनता दूर होती है, परंतु इनकी कल्पना भी द्वैतविषे होती है, सो कल्पना द्वैत संसारको नाश करने वाली है, परमार्थकी अपेक्षा करिके शास्त्र गुरु भी द्वैत कल्पना है, अरु अज्ञानीकी अपेक्षाकरि गुरु शास्त्र कृतार्थ करते हैं, इनके अभ्यासकरि आत्मपद पाता है, प्रथम अज्ञानी शास्त्रको भोगके निमित्त सेवते हैं, अरु शास्त्रविषे भोगका अर्थ जानते हैं, जैसे लकडियोंके निमित्त वनको सेवते थे, अरु शास्त्रविषे सब कछु है, जैसे किसीको रुचिकरि अभ्यास होता है, तैसे पदार्थ तिसको प्राप्त होता है, शास्त्र एकही है, परंतु पदार्थविषे भेद है, जैसे गन्नेकी रस एक है, तिसते गुड शक्कर खंड

मिश्री होती है, तिनविषे भेद है, तैसे शास्त्र एक है, तिनविषे पदार्थ भिन्न भिन्न हैं, जिस जिस अर्थ पावनेके निमित्त यह यत्न करैगा, तिसीको पावैगा, शास्त्रविषे भोग भी है, अरु मोक्ष भी है, अज्ञानी भोगके निमित्त यह यत्न करते हैं, परंतु वह भी धन्य हैं, काहेते जो शास्त्रको सेवने तो लगे हैं क्यों? सेवते सेवते कबहूँ किसी कालविषे आत्मपदरूपी चिंतामणि भी प्राप्त होवैगी परंतु आत्मपद पावनेनिमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है, सुनि सुनिकारि अभ्यासद्वारा आत्मपद प्राप्त होवैगा, तब सर्व ओरते समभाव होवैगा, जैसे सूर्यके उदय हुये सर्व ओरते प्रकाश पसारि जाता है, तैसे सर्व ओर समता प्रकाशैगी, तब सुषुप्तिकी नांई स्थिति होवैगी, अर्थ यह जो द्वैत अरु एक कलना भी शांत होजावैगी, अनुभव अद्वैतविषे जाग्रत् होवैगी, परंतु किसकारि होवैगी, संतके संग अरु शास्त्रके विचार अभ्यासद्वारा होवैगी, सो संतजन कवने हैं, जो परोपकारी संसारसमुद्रते पार करनेवाले होवैं, सो संतजन हैं, तिनके संगकारि आत्मपद प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! गुरु शास्त्र नेति नेतिकारि जतावते हैं, अर्थ यह जो अनात्मधर्मको निषेधकारि आत्मतत्त्व शेष रखते हैं, जब अनात्मधर्मको त्याग करेगा, तब आत्मतत्त्व शेष रहैगा, तिसको जानि लेवैगा, तिसके जानेते अवर कछु जानना नहीं रहता, तिसके जाननेविषे यत्न भी कछु नहीं, आवरण दूर करनेनिमित्त यत्न है, जैसे सूर्य आगे बादल आता है, तिसकारि सूर्य नहीं भासता, सो बादलोंके दूर करनेको यत्न चाहता है, सूर्यको प्रकाशनिमित्त यत्न नहीं चाहता, जब बादल दूर हुये, तब स्वाभाविकही सूर्य प्रकाशता है, तैसे गुरु शास्त्रके यत्न कारि अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं, तब आत्मा स्वप्रकाश भासि आता है, सात्त्विक गुण जो हैं, गुरु अरु शास्त्र, तिनकारि रज तम गुणोंका अभाव होता है, तब परम अनुभव ज्योतिकारि आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है, जब प्रकाश भया, तब उसविषे उन्मत्त हो जाता है, द्वैतरूपी संसारकी कल्पना नहीं रहती जैसे सुंदर स्त्रीको देखिकारि कामी पुरुष उन्मत्त हो जाता है, अरु संसारकी ओरते सुरति भूलि जाती है, तैसे ज्ञानी आत्मपदको पायकारि उन्मत्त होता है, अरु संसारकी ओरते

सुरति भूलिजाते हैं, परमऐश्वर्यवान् होता है, सो तिसका साधन शास्त्रका विचार है, वनके सेवनेते चिंतामणि पावनेका दृष्टांत कहा है सो जानि लेना

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे गुरुशास्त्रोपमावर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ २७८ ॥

द्विशताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः २७९.

विश्रामप्रकटीकरणम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु सिद्धांत संपूर्ण है, सो मैं तुझको विस्तारकरिके कहा है, तिसके श्रवणकरि अरु वारंवार विचारनेकरि मूढ भी निरावरण होवैंगे, तौ उत्तम पुरुषको निरावरण होनेविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! यह मैं भी जानता हौं, जो तू विदितवेदभयाहै, प्रथम उत्पत्ति प्रकरण तेरे तांई कहा है, जो जगत्की उत्पत्ति इसप्रकार हुई है, बहुरि स्थितिप्रकरण कहा है, जो जगत्की स्थिति इसप्रकार हुई है, उत्पत्ति कहिये जो चित्त संवेदनके फुरणेकरि जगत् उपजा है, अरु संवेदन फुरणेकी दृढताकरि जगत् स्थित भया है, तिसते उपरांत उपशमप्रकरण कहा है, जो मन इसप्रकार अफुर होता है, जब चित्त उपशम भया, तब परम कल्याण हुआ, मनके फुरणेका नाम संसार है, जब मन उपशम हो जाता है, तब संसारकलपना मिटि जांती है, यह संपूर्ण विस्तारकरिकै कहा है, परंतु अब जानता हौं, जो तू बोधवान् भया है ॥ हे रामजी ! मैं तुझको आत्मज्ञानका उपाय कहा है, अरु जिनको ज्ञान प्राप्त भया, तिनके लक्षण भी कहे हैं, सो अब भी संक्षेपते कहता हौं ॥ हे रामजी ! प्रथम बालक अवस्थाविषे इसको यह बनता है, जो संतजनका संग करना; अरु सच्छास्त्रकाँ विचारना, इस शुभ आचारकरि अभ्यासद्वारा इसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब समता आनि प्राप्त होती है, अरु सर्वसाथ सुहृद् हो जाता है, सो माता सुहृदता कैसी है, परमानंदरूप जो है मुदिता, तिसकी जननी है, सो सदा इसके संग रहती है, जैसे सुंदर पुरुषको देखिकरि तिसकी स्त्री प्रसन्न

होती है, उसके प्राणका त्यागना अंगीकार करती है, परंतु इस पुरुषको नहीं त्यागती, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मलक्ष्मीकरि सुंदर-कांति है, तिसको समता मुदिता सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती, सदा इसके हृदयरूपी कंठमें लगी रहती है, वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है ॥ हे रामजी ! जिसको देवताका राज्य प्राप्त होता है, वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं रहता, अरु जिसको सुंदर स्त्रियां प्राप्त होवैं, वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्नहोता है ॥ हेरामजी ! समता कैसी है, जो द्विधा-रूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य है, अरु तीन तापरूपी उष्णताके नाश करनेको पूर्णमासीका चंद्रमा है, बहुरि कैसी है, सुहृदता अरु समता जो सौभाग्यरूपी जलका नीचा स्थान है, जैसे जल नीचे स्थानमें स्वाभाविक चला जाता है, तैसे सुहृदताविषे सौभाग्यता स्वाभाविक होती है, जैसे चंद्रमाकी किरणोंके अमृतकरि चकोर तृप्तिवान् होते हैं, तैसे आत्मरूपी चंद्रमाकी समता सुहृदतारूपी किरणोंको पायकरि ब्रह्मादिक चकोर तृप्त होकरि आनंदवान् होते हैं, अरु जीते हैं ॥ हे रामजी ! वह ज्ञानवान् ऐसी कांतिकरि पूर्ण है, जो कदाचित् भी क्षीण नहीं होती, जैसे पूर्णमा-सीके चंद्रमाविषे भी उपाधि दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानवान्के मुखविषे तैसे भी उपाधि नहीं, जैसे उत्तम चिंतामणिकी कांति होती है, तैसे ज्ञानवान्की कांति है, राग द्वेष करिकै क्षीण कदाचित् नहीं होती, सदा प्रसन्न रहती है ॥ हे रामजी ! समता वही मानो सौभाग्यकमलकी खानि है, ऐसे आनंदको लिये जगत्विषे विचरता है, जो प्रकृत आचारको करता है, जो कछु कार्य करता है, अरु भोजन करता है, जो कछु ग्रहण करता है, जो कछु देता है, सो सब लोक उसके कर्तृत्वकी स्तुति करते ह ॥ हे रामजी ! ऐसा जो पुरुष है, सो ब्रह्मादिकोंकरि भी पूजनेयोग्य है, सर्वेही उसीका मान करते हैं, अरु सर्व उसके दर्शनकी इच्छा करते हैं, दर्शनकरिकै प्रसन्न होता है, जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, सर्व हुलासको प्राप्त होते हैं, तैसे उसका दर्शन देखिकरि सर्व हुलासको प्राप्त होते हैं, अरु जो कछु वह करते हैं, सो शुभआचारही करते हैं, अरु जो कछु अपर भी करि बैठते हैं, तौ भी उसकी निंदा

लोक नहीं करते, काहेते कि, जानते हैं,यह समदर्शी है, समताकरिकै वह सर्वका सुहृद होता है, शत्रु भी उनके मित्र हो जाते हैं, जिनको समताभाव उदय हुआ है, तिनको अग्नि जलाय नहीं सकता, अरु जल डुबाइ नहीं सकता, वायु तिसको सुखाय नहीं सकता, अरु जैसी इच्छा करै तैसी सिद्धि होती है ॥ हे रामजी ! जिसको समता प्राप्त हुई है, सो पुरुष अतोल हो जाता है, संसारकी उपमा उसको कोऊ दे नहीं सकता, अरु जिसको समता नहीं प्राप्त भई, सो सर्व संग सुहृदताका अभ्यास करै, तब जो उसको शत्रु होवै सो भी मित्र हो जाता है, काहेते जो अभ्यासकी दृढताकरिकै इसको शत्रु भी मित्र भासने लगते हैं, जो सर्वविषे समताका अभ्यास करता है, सोई दृढ होता है, तब समताभावते कदाचित् चलायमान नहीं होता ॥ हेरामजी ! एक राजा था, तिसने अपने शरीरका मांस काटि क्षुधार्थीको दिया, परंतु समताते चलायमान न भया, ज्योंका त्यों रहा, अरु एक पुरुषको पुत्री अति प्यारी थी, तिसने किसीको दीनी, सो तिसने अपर शत्रुको दीनी, परंतु वह ज्योंका त्यों रहा, एक अपर राजा था, उसको स्त्री अति प्यारी थी, उसका कछु व्यभिचार श्रवण किया, तिसको मार डारी, परंतु समतारूप धर्मको न त्यागत भया ॥ हे रामजी ! जब राजाके गृहविषे मंगल होता है, तब अपने नगरको भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सुंदर करता है, अरु प्रसन्न होता है, सो अवस्था राजा जनककी देखी थी, अरु एक समय सर्व स्थान अति सुंदर अग्निकरि जलते देखे, तौ अपने समताभावते चलायमान न भया, अरु एक अपर राजा था, उसने राज्य भी अपरको देदिया, आप राज्यबिना विचरता भया परंतु समताभावते चलायमान न भया ॥ हे रामजी ! एक दैत्य था, उसको देवताका राज्य प्राप्त भया, बहुरि राज्य नष्ट हो गया, परंतु दोनों भावोंविषे समही रहा, एक बालक था, उसने चंद्रमाको मोदक लड्डू जानेकरि फुंक मारी, परंतु वह ज्योंका त्यों रहा ॥ हे रामजी ! इत्यादिक मैं अनेक देखे हैं, जिनको आत्मज्ञान सम्यक् प्राप्त भया है, सो सुखदुःखकरि चलायमान नहीं भये ॥ हे रामजी ! प्रारब्ध ज्ञानीको भोगणीको भोगणी तुल्य है, परंतु रागद्वेषकरि अज्ञानी तपायमान

होता है, अरु दृढ समझके वशते ज्ञानी तपायमान नहीं होता है, सर्व अवस्थाविषे उसको समताभाव होता है, सो आत्मपदके साक्षात्कारि समताभाव होता है, सो आत्मपद तपकरिकै भी नहीं प्राप्त होता, न तीर्थोंकरि, न दानकरि, न यज्ञकरि प्राप्त होता है, जब अपना विचार उत्पन्न होता है, तब सर्व भ्रांति निवृत्त होजातीहै, अरु सर्व जगत् आत्मरूपही भासता है, इसी दृष्टिको लिये प्राकृत आचारविषे विचरते हैं, परंतु निश्चयते सदा निर्गुण हैं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसी अद्वैतदृष्टि निष्ठा जिनको प्राप्त भई है, तिनको कर्मोंके करनेसाथ क्या प्रयोजन है, वह त्याग क्यों नहीं करते ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं, तिनको त्यागग्रहणकी भ्रांति चलती जाती है, तिस भ्रमते रहित होकरि प्रारब्धके अनुसार चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी ! जो कछु स्वाभाविक क्रिया उनकी बनी पडी है, तिसका त्याग नहीं करते, तिसविषे उनको ज्ञान प्राप्त भया है, सो आचार करते हैं, अपरको ग्रहण नहीं करते, अरु उसका त्याग नहीं करते ॥ हे रामजी ! जिनको गृहस्थहीविषे ज्ञान प्राप्त भया है, सो गृहस्थहीविषे विचरते हैं, त्याग नहीं करते, जैसे हम स्थित हैं, अरु जिनको राज्यविषे ज्ञान प्राप्त भया है, सो राज्यहीविषे रहे हैं, जैसे तुम हौ, जो ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त भया है, सो ब्राह्मणहीके कर्मोंविषे रहे हैं, इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्र जिस स्थानविषे किसीको ज्ञान प्राप्त भया है, सोई कर्म करता है ॥ हे रामजी ! कई ज्ञानवान् गृहस्थहीविषे रहे हैं, कई राज्यही करते हैं, कई संन्यासी हो रहे हैं, कई वनविषे विचरते फिरते हैं, कई पर्वतकंदराविषे ध्यानस्थित हो रहे हैं, कई नगरविषे रहते हैं, कई ज्ञानवान् मथुराविषे, कई केदारनाथविषे कई प्रयागविषे, कई जगन्नाथविषे रहते हैं, कई देवताका पूजन करते हैं, कर्म करते हैं, कई तीर्थ अग्निहोत्र करते हैं, हमारी नाई कई जप करते हैं, कई अस्ताचल पर्वतमें कई उदयाचल पर्वतमें, कई मंदराचल हिमालय पर्वतविषे इत्यादिक स्थानमें विचरते हैं कई शास्त्रविहित कर्म करते हैं, कई अवधूत हो रहे हैं, कई भिक्षा मांग मांग भोजन करते हैं, कई कठिन वचन बोलते हैं, कई अज्ञानी हुये विचरते हैं, कई विद्याध्ययन करते हैं, इत्या-

दिक नानाप्रकारकी चेष्टा ज्ञानवान्‌भी करते हैं,काहेते कि उनको स्वाभाविक आनि प्राप्त भई है, यत्नकरि कछु नहीं करते ॥ हे रामजी ! शुभ कर्म करै अथवा अशुभ कर्म करै, कोऊ क्रिया उनको बंधन नहीं करती, अरु जो अज्ञानी हैं, सो जैसे कर्म करैंगे, तैसेही फलको भोगैंगे, पुण्य कर्म करैगा, तब स्वर्गसुख भोगैगा, पापकरि नरकदुःख भोगैगा, अरु जो शुभ कर्म कामनाते रहित करैगा, तब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, संतके संग अरु सच्छास्त्रकरि शुद्धताको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जो अर्धप्रबुद्ध है, अरु पाप करने लग जावै, अरु आत्मअभ्यास त्यागि देवै सो दोनों मार्गते भ्रष्ट है, स्वर्गको नहीं प्राप्त होता अनात्मपदको प्राप्त होता है, अरु तप दान तीर्थादिक सेवनेकरि भी आत्मपद प्राप्त नहीं होता, जब विचार उपजता है, अरु आत्मपदका अभ्यास करता है, तब आत्मपद पाता है, जब आत्मपद प्राप्त भया, तब निःशंक हो जाता है, चेष्टा व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरते उसका चित्त शांत हो जाता है, जैसे लोहेका तष्ट होवै, जब उसको पारसका स्पर्श करिये तब वह स्वर्ण हो जाता है, सो आकार उसका तष्टही रहता है, परंतु लोहा भावका अभाव हो जाता है, तैसे जब चित्तको आत्मपदका स्पर्श होता है, तब चित्त शांत हो जाता है, परंतु चेष्टा उसीप्रकार होती है, अरु जगत्‌की सत्यता नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! अब तुम जागे हौ अरु निःशंक भये हौ, रागद्वेषरूपी तुम्हारा दोष नष्ट हो गया है, अरु तुम निर्विकार आत्मपदको प्राप्त भये हौ, जन्म मृत्यु बढना घटना युवा वृद्ध होना इन सर्व विकारोंते रहित आत्मपदको तुम पाये हौ, सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चेतन है, सो तुमको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जो कछु मुझे कहना था, सो कहा है, अरु सारका सार आत्मपद कहा है, अरु जो कछु जानने योग्य था, सो तुमने जाना है, इसते उपरांत न कछु कहना रहा है, न कछु जानना रहा है, एतेपर्यंत कहना अरु जानना है, अब तुम निःशंक होकरि विचरौ, तुमको संशय कोऊ नहीं रहा, क्षय अरु अतिशयरहित पद तुम पाये हौ, अर्थ यह कि अविनाशी अरु सर्वते उत्तम पदको पाये हौ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! जब इसप्रकार

वसिष्ठजी मुनियोंविषे शार्दूल कहिकरि तूष्णीं हो रहा, तब जेती कछु सभा वैठी थी, सो सर्वेही परम निर्विकल्पपदविषे स्थित हो गई, जैसे वायुते रहित कमल फूलपर भँवरे अचल होते हैं, तैसे चित्तरूपी भँवरे आत्मपदकमलके रसको लेते हुये स्थित हो रहे, ब्रह्मको जानिकारि ब्रह्म-रूप हुये ब्रह्मविषे स्थित भये, जेते कछु निकट मृग थे, सो तृण भक्षणको त्यागिकारि अचल हो गये, अपर पशु पक्षी थे, सो सुनिकारि निस्पंद हो रहे, अरु स्त्रियां बालकन संयुक्त चपल थीं, सो सुनिकारि जडवत् हो गईं, पूर्व जो मुक्तिमान् मोक्ष उपायके श्रवणको सिद्धोंके गण आते थे, तिनने भी वडे फूलनकी वर्षा करी, तमाल कदंब पारिजात कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षोंके जो फूल हैं, तिनकी देवता अरु सिद्धोंने वर्षा करी. नगारे, भेरी, शंख बजावने लगे, अरु वसिष्ठजीकी स्तुति करने लगे, बडे शब्द भये, तिनकरिकै दशों दिशा पूर्ण भई-ऊपरते देवता सिद्धोंके नगारेके शब्द हुये, तिनकरि पर्वतोंविषे शब्दभाँव उठे, अरु दिव्य फूलोंकी सुगंधि पसरी, मानो पवन भी रंगित भया है, तव सिद्ध कहत भये ॥ हे वसिष्ठजी ! हमने भी अनेक मोक्षउपाय श्रवण किये हैं, अरु उच्चार किये कहे हैं, परंतु जैसा तुमने कहा है, तैसा न आगे श्रवण कियाहै, न गाया है, न कहा है, तुम्हारे मुखारविंदते जो श्रवण किया है, तिसकरि हम परम सिद्धांतको जानत भये हैं, इसके श्रवणकारि पशु पक्षी मृग भी कृतार्थ भये हैं, अपर मनुष्योंकी वार्ता क्या कहिये वह तौ कृतार्थही भये हैं, निष्पाप ज्ञानको पायकरि मुक्तहोवैंगे ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे साधो ! ऐसे कहिकरि वहुरि फूलोंकी वर्षा करी, अरु चंदनका लेप वसिष्ठजीको करे, जब इसप्रकार पूजा करि चुके, अरु कह रहे, तव अपर जो निकट बैठे थे, सो परम विस्मयको प्राप्त भये जो ऐसा परम उपदेश वसिष्ठजीने किया है, तब राजा दशरथ उठि ठाढा भया, हस्त जोडिकरि वसिष्ठजीको नमस्कार किया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन् ! षट् ऐश्वर्यसों संपन्न तुम्हारी कृपाकरि हम पूर्ण भये हैं, कैसे हम पूर्ण भये हैं ॥ हे भगवन् ! तुमने संपूर्ण शास्त्र श्रवण कराया है, तिसको सुनकरि हम पूजन करने योग्य हैं, सो हे देव ! तुम्हारा पूजन किससाथ करैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोऊ नहीं,

अरु आकाशलोक देवताविषे भी कोऊ नहीं, जो तुम्हारी पूजाको योग्य होवै, सर्व पदार्थ कल्पित हैं, अरु जो सत् पदार्थसाथ पूजा करैं, तौ सत् तुमहीते पाया है, ताते ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो तुम्हारी पूजायोग्य होवै, तथापि अपनी अपनी शक्त्यनुसार पूजन करते हैं, परंतु तुम क्रोधवान् नहीं होना, अरु हांसी भी नहीं करनी ॥ हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ अरु संपूर्ण मेरे अंतःपुरकी स्त्रियां अरु चतुष्टय पुत्र राज्य संपूर्ण पृजासहित, अरु जो कछु लोकविषे यश किया, अरु जो कछु परलोकके निमित्त पुण्य किये हैं, सो सर्व तुम्हारे चरणोंके आगे निवेदन हैं ॥ हे साधो! इसप्रकार कहिकरि राजा दशरथ वसिष्ठजीके चरणोंपरि गिरा, तब वसिष्ठजी बोले ॥ हे राजन्! तू धन्य है, जिनकी ऐसी श्रद्धा है, परंतु हम तौ ब्राह्मण हैं, हमारे राज्य क्या करना है, अरु राज्यका व्यवहार क्या जानैं, अरु कबहूँ ब्राह्मणने राज्य किया है, राजा क्षत्रिय होते हैं, ताते तुझहीसों राज्य होवैगा, अरु यह जो तेरा शरीर है, सो मैं अपनाही जानता हौं, अरु यह चतुष्टय पुत्र तेरे मैं आगेते अपने जानता हौं, हम तौ तेरे परिणामकरिकैही तुष्ट हौं, यह राज्यका प्रसाद हमने तुझकोही दिया है ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब राजा दशरथ बहुरि कहत भया कि हे स्वामी! तुम्हारे लायक कोऊ पदार्थ नहीं, तुम ब्रह्मांडोंके ईश्वर हौ, ऐसे वचन तुमप्रति कहनेविषे भी हमको लज्जा आती है, परंतु योगके निमित्त तुम्हारे आगे विनती करी है, जो मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है, अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करैं, तब वसिष्ठजीने कहा बैठो, तब राजा बैठि गया, बहुरि रामजी निरभिमान होकरि कहत भये ॥ हे संशयरूपी तिमिरके नाशकर्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससाथ करैं, जो पदार्थ गृहविषे अपना होवै, सो हे गुरुजी! मेरे पास अपर तौ कछु नहीं एक नमस्कारही है, ऐसे कहि चरणोंपर गिरा नेत्रोंते जल चला जावै, वारंवार उठै बहुरि आत्मानंदप्राप्तिके उत्साह करिकै चरणोंपर गिर पड़े, जब वसिष्ठजीने कहा बैठे जावहु, वह रामजी बैठि गये, बहुरि लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न अर्घ्यपाद्यकरि पूजने लगे, राजर्षि ब्रह्मर्षि

सर्व पूजने लगे, फूलोंकी वर्षा बडी चढि गई, वसिष्ठजीका शरीर भी ढांका गया, जब वसिष्ठजीने भुजासाथ फूल दूर किये, तब मुख दृष्ट आने लगा, जैसे बादलोंके दूर भये चंद्रमा दृष्ट आता है, तैसे मुख भासा तब वसिष्ठजीने कहा ॥ हे ऋषीश्वरो ! व्यास वामदेव विश्वामित्र नारद भृगु अत्रि इत्यादिकते लेकरि जो बैठे थे, तिनप्रति कहा ॥ हे साधो ! जो कछु मैंने सिद्धांतके वचन कहे हैं इनते घट अथवा बढ होवै सो तुम अब कहो, जैसा जैसा स्वर्ण होता है, तैसा तैसा अग्नि बीच दिखाई देता है, तैसे तुम कहो, तब सबने कहा ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम परम सार वचन कहे हैं, जो जो तुम्हारे वचनोंको घट बढ जानिकरि तिनकी निंदा करैगा, सो महापतित होवैगा यह वचन परमपद पानेका कारण है ॥ हे मुनीश्वर ! हमारे अंतर भी जो कछु जन्मजन्मांतरका मल था, सो नष्ट भया है, हम तौ पूर्ण ज्ञानवान् थे, परंतु पूर्व जन्म जो धारे हैं, तिनकी स्मृति हमारे चित्तविषे थी, जो अमुक जन्म हम इसप्रकार पाया था, अरु अमुक जन्म इसप्रकार पाया था, सो सब स्मृति अब नष्ट भई है, जैसे स्वर्ण अग्निविषे डारा शुद्ध होता है, तैसे तुम्हारे वचनोंकरि स्मृतिरूप मल हमारा नष्ट भया है, अब हम जान गये हैं, कि न कोऊ हमारे जन्म था, न हम कोऊ जन्म पाया है हम अपनेही आपविषे स्थित हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम कैसे हौ जो संपूर्ण विश्वके गुरु हौ, अरु ज्ञान-अवतार हौ ऐसे तुमको हमारा नमस्कार है, राजा दशरथ भी धन्य है, जिसके संयोगकरि हम मोक्षउपाय श्रवण किया है, अरु यह रामजी विष्णु भगवान् हैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसीप्रकार ऋषीश्वर मुनीश्वर वसिष्ठजीको परम गुरु जानिकरि स्तुति करने लगे, अरु रामजीको विष्णु भगवान् जानिकरि स्तुति करने लगे, अरु राजा दशरथकी स्तुति करत भये, जिसके गृहविषे विष्णु भगवान्‌ने अवतार लिया है स्तुति करिकै वसिष्ठजीको अर्घ्यपाद्यकरि पूजने लगे, बहुरि आकाशके सिद्ध बोले ॥ हे वसिष्ठजी ! तुमको हमारा नमस्कार है, तुम गुरुके भी गुरु हौ ॥ प्रभो ! जो कछु तुमने उपदेश किया है, अरु जो कछु तिसविषे युक्तियां कही हैं, ऐसे वचन वागीश्वरी जो है सरस्वती, सो भी कहै, अथवा न

कहै, तुमको वारंवार नमस्कार है, अरु राजा दशरथ चतुर द्वीपका राजा तिसको भी नमस्कार है, जिसके प्रसंगकरि हम ज्ञान अरु युक्तियां श्रवण किया हैं, अरु यह रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं, चारों आत्मा हैं, इनको हमारा प्रणाम है, यह जो चारौं भाई हैं, सो ईश्वर देवता हैं, विष्णु भगवान् जाके ऊपर कृपा करता है, राजकुमार जीवन्मुक्त अवस्थाको धारि करि वैठे हैं; अरु वसिष्ठजी परम गुरु हैं अरु विश्वामित्र तपकी मूर्ति हैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब सिद्ध कह रहे तब फूलकी वर्षा करने लगे, जैसे हिमालय पर्वतपर वर्फकी वर्षा होती है, अरु वर्फकरि पूर्ण हो जाता है, तैसे वसिष्ठजी पुष्पकरि पूर्ण भये, आकाशचारी जो ब्रह्मलोकविषे वासी थे, तिनने भी पुष्पकी वर्षा करी, अपर जो सभाविषे वैठे थे, तिनने भी पूजन किया अरु अपर जो सभाविषे, ब्रह्मर्षि वैठे थे तिनका भी यथायोग्य पूजन किया, इसप्रकार जब सिद्ध पूजन करि चुके, तब कई ध्याननिष्ठ हो रहे, सबके चित्त शरत्कालके आकाशवत् निर्मल हो गये, अपने स्वभावविषे स्थित भये, जैसे स्वप्नकी सृष्टिका कौतुक देखिकरि कोऊ जागि उठै, अरु हँसै, तैसे वह हँसने लगे, तब वसिष्ठजी रामजीको कहत भये ॥ हे रघुवंशकुलरूपी आकाशके चंद्रमा! तू अब किस दशाविषे स्थित हौ, अरु क्या जानते हौ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र! तुम्हारी कृपाते मैं अब अपने आपविषे स्थित हौं, अरु कोऊ कल्पना नहीं रही, परम शांतिमान भया हौं, मुझको शेष विशेष कोऊ नहीं भासता, केवल अपना आपही पूर्ण भासता है, अब मुझको संशय कोऊ नहीं रही, अरु इच्छा भी कछु नहीं रही मैं परम निर्विकल्प पद पाया हौं, कोऊ कल्पना मुझको नहीं फुरती, जैसे नीलपीतादिक उपाधिते रहित स्फटिक प्रकाशती है, तैसे मैं निरुपाधि स्थित हौं, संकल्प विकल्प उपाधिक अभाव हो गया है, परम शुद्धताको प्राप्त भया हौं, चित्त मेरा शांत हो गया है, चेष्टा मेरी पूर्ववत् होवैगी, अरु निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, मुझको द्वैत कल्पना कछु नहीं फुरती ॥ हे मुनीश्वर! अब मुझको सब आकाशरूप भासता है मैं शांत

रूप होकरि परम निर्वाण हौं, भिन्न भाव जगत् मुझको कछु नहीं भासता, सर्व अपना आपही भासता है, अब जो कछु तुम कहौ सोई करौं, अब मुझको शोक कोऊ नहीं रहा, जैसा राज्य करणा भोजन छादन बैठना चलना पान करना जैसे तुम कहहु तैसेही करौं, तुम्हारे प्रसादकरि मुझको सर्व समान है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामप्रकटीकरणं नाम द्विशताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ २७९ ॥

द्विशताधिकाशीतितमः सर्गः २८०.

निर्वाणवर्णनम् ।

वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब ऐसे रामजीने कहा, तब वसिष्ठजी कहत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बडा कल्याण हुआ, जो अपने आपविषे स्थित भया, अब तुझने यथार्थ जाना है, अब जो कछु सुननेकी इच्छा है सो कहौ ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य ! अरु संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्त्ता कुठार ! अब तुम्हारे प्रसाद करिकै मैं परम विश्रांतिको प्राप्त भया हौं, अरु जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिकी कलनाते रहित हौं, जाग्रत जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है, श्रवण करनेकी इच्छा भी नहीं रही, अब परम ध्यान मुझको प्राप्त भया है, अर्थ यह जो आत्माते इतर कछु वस्तु नहीं भासती, मैं आत्मा हौं, अज अविनाशी हौं, शांतरूप हौं, अनंत हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है, प्रलयकालका पवन चलै, अरु समुद्र उछलै इत्यादिक अपर क्षोभ होवै, तौ भी मेरा चित्त स्वरूपते चलायमान न होवैगा अरु जो त्रिलोकीका राज्य मुझको प्राप्त होवै, तौ मेरे चित्तविषे हर्ष न उपजैगा, मैं सत्तासमानविषे स्थित हौं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब मध्याह्नका सूर्य शिरके ऊपर उदय भया, राजा जो बैठे थे, रत्न मणिके भूषणकरि भूषित तिन मणिनकी कांति किरणोंकरि अति विशेष हुई, सूर्यसाथही एक हो गई, मानों ऐसे वचन सुनिकारि नृत्य करती है, तब वासि-

ष्ठजीने कहा ॥ हे रामजी ! अब हम गमन करते हैं, मध्याह्नकी उपासनाका समय है, जो कछु पूछना होवै सो बहुरि काल पूछना, तब राजा दशरथ उठ खडा हुआ, पुत्रसहित वसिष्ठजीका बहुत पूजन किया, अपर जो ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्राह्मण थे, तिनका यथायोग्य पूजन किया, मोती हीराकी माला अरु मुहर रुपये घोडे गौ वस्त्र भूषण इनते आदिलेकरि जो ऐश्वर्यकी सामग्री है, तिसकरि यथायोग्य पूजन किया, जो विरक्त संन्यासी थे, तिनको प्रणाम करि प्रसन्न किये अपर जो राजर्षि थे, तिनका भी पूजन किया, तब वसिष्ठजी उठ खडे हुये, परस्पर नमस्कार किया, मध्याह्नके नौबत नगारे बाजने लगे, सब श्रोता उठिकरि अपने आपसाथ विचारने लगे, चले जावैं, अरु शीश हिलावैं, हाथकी अंगुली हिलावैं, नेत्रकी भावा हिलावैं, परस्पर चर्चा करते जावैं, सब अपने स्थानोंको गये, वसिष्ठजी संध्या उपासना करने लगे, अरु जेते श्रोता थे, सो विचारपूर्वक रात्रिको व्यतीत करत भये,सूर्यकी किरणोंसाथ बहुरि आये गगनचारी सप्त लोकके रहनेवाले ऋषि देवता आये, सर्व श्रोता भूमिवासी राजर्षि ब्रह्मर्षि अपर जो श्रोता थे, सो सब आयकरि अपने स्थानपर बैठि गये, परस्पर नमस्कार किया, तब रामजी हाथ जोडिकरि उठि खड़ा हुआ, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! अब जो कछु मुझको श्रवण करना, अरु जानना रहता है सो तुमही कृपा करिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु सुनने योग्य था, सो तुझने सुनाहै, अब तू कृतकृत्य भया है, जो कछु रघुवंशीका कुल है, सो सबही तुझने तारा है, अरु जो आगे हुये हैं, अरु जो अब हैं, अरु जो आगे होवैंगे, सो सब तुझने कृतकृत्य किये हैं, अब तू परमपदको प्राप्त भया है, अपर जो कछु तुझको पूछनेकी इच्छा है सो पूछ ले, अरु हे रामजी ! जो सत्तासमानविषे स्थित भया है तौ विश्वामित्रकेसाथ जायकरि इसका कार्य करु, अरु कछु पूछनेकी इच्छा है सो पूछि ले ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! आगे जो मैं आपको देखता था, सो इस देहसंयुक्त परिच्छिन्नरूप देखता था अरु अब आपको देखता हौं, जो आपते इतर मुझको कछु नहीं भासता, सब अपना आपही भासता है॥ हे मुनीश्वर ! अब इस शरीरसाथ भी मुझको प्रयोजन कछु नहीं रहा,

जैसे फूलनसों सुगंधि लेकरि पवन है अपने स्थानको चला जाता है, अरु फूलनसाथ तिसका प्रयोजन नहीं रहता, तैसे इस देहविषे जो कछु सार था, सो मैं पायकरि अपने आपविषे स्थित हौं, शरीरसाथ भी मुझको प्रयोजन नहीं रहा, अब राज्य भोगनेकरि कछु सुखदुःख नहीं, इंद्रियके इष्ट अनिष्टविषे मुझको हर्ष शोक कोऊ नहीं, मैं अब सर्वते उत्तम पदको प्राप्त भया हौं, सर्व कलनाते रहित हौं, अविनाशी अव्यक्तरूप सर्वते निरंतर सदा अपने आपविषे स्थित हौं, निराकार निर्विकार हौं, जो कछु पाने योग्य था, सो पाया है, जो कछु सुनने योग्य था, सो सुना है, जो कछु तुम्हारे कहना था, सो कहा है, अब तुम्हारी वाणी सफल भई है, जैसे कोऊ रोगीको औषध देता है, तिस औषधसाथ उसका रोग जाता है, अरु उसका कल्याण होता है, तैसे तुम्हारी वाणीकरि मेरा संशयरूप रोग गया है, अरु अपने आपकरि तृप्त भया हौं, अब मैं निःशंक होकरि अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकाशीतितमः सर्गः ॥ २८० ॥

द्विशताधिकैकाशीतितमः सर्गः २८१.

चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी ! तू मेरे परम वचन सुन, दृढ अभ्यासके निमित्त कहता हौं, जैसे आदर्शको ज्यों ज्यों मार्जन करता है, त्यों त्यों उज्ज्वल होता है, तैसे वारंवार श्रवणकरि अभ्यास दृढ होता है, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिदानंदस्वरूप है, भासती भी सोई वस्तु है, जो आगे भानरूप होती है सो भानरूप चेतन है, ताते जो पदार्थ भासते हैं, सो सब चेतनरूप हैं, अरु जो भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सो द्वैतकी कल्पनाते भासते हैं, वास्तवते भानरूप चेतन है, जैसे जो उच्चार करता है, सो सब शब्द हैं, शब्दरूप एक है, अरु अर्थकरि भिन्न भिन्न भासते हैं, जब अर्थकी कल्पना त्यागि दीजै, तब यही शब्द है, अरु

जो अर्थ करिये, यह जल है, यह पृथ्वी है, यह अग्नि है, इनते आदि लेकरि अनेक शब्द अरु अर्थ होते हैं, अर्थते रहित शब्द एकही है, तैसे यह सब चेतन है, चित्तकी कल्पनाकरि भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, अपर वस्तु कछु नहीं, अपर भासता है, सो तिसीका आभास है ॥ हे रामजी ! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है, परंतु ज्ञानविषे भेद होता है, सो ज्ञानविषे भी भेद नहीं, वृत्तिविषे भेद है, जिसविषे अर्थ भासते हैं, अरु ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है, तिसविषे जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होती है, तिसको जानता है, जैसे जेवरी एक पड़ी होती है, तिसविषे सर्पका अर्थ वृत्ति न ग्रहण करै तौ सर्प तौ कछु नहीं वह जेवरीही है, तैसे अर्थ भेद ग्रहण करिये नहीं तौ ज्ञानही है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब ज्ञानरूपही हैं, अपर कछु बना नहीं ॥ हे रामजी ! स्वप्नके दृष्टांत मैं तुझको जतावनेके निमित्त कहे हैं, वास्तवते स्वप्न भी कोऊ नहीं अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे समुद्र सदा जलरूप है, द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुदे भासते हैं सो नानारूप नहीं, अरु नाना हो भासता है, तैसे सर्व जगत् अनानारूप है, अरु नाना हो भासता है, तू अपने स्वप्नकी स्मृतिको विचारि देख, जो तेरा अनुभवही नानाप्रकार हो भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी तेरा अपना आप है, अपर दूसरा कछु नहीं, सदा निराकार निर्विकार आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो अद्वैतसत्ता निराकार निर्विकार सदा अपने आप विषे स्थित है, तौ पृथ्वी कहांते उपजी है ? ॥ जल कैसे उपजा है ? अग्नि, वायु आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशविषे कैसे उपजे हैं ? मेरे दृढ बोधके निमित्त कहहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तू कहु कि, स्वप्नविषे जो पृथ्वी उपजी होती है, सो कहांते उपजी है, अरु जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य कहांते उपजे हैं, देश काल पदार्थ कहांते उपजे हैं ? राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! स्वप्नविषे जो पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश देश काल पदार्थ भासते हैं, सो सब आत्मरूप होते हैं, आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों होती है, सो तत्त्ववेत्ताको ज्योंकी त्यों भासती है, अरु जो असम्यक्दर्शी हैं, तिनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते

हैं, भासना तुमको तुल्य होता है, परंतु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण करती है, तिसको ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता भासती है, अरु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण नहीं करती, तिसको वही वस्तु अपर रूप हो भासती है ॥ हे मुनीश्वर ! अपर जगत् कछु बना नहीं, वही आत्मसत्ता स्थित है, जब कठोररूपकी संवेदन फुरती है, तब पृथ्वी पहाड़रूप हो भासती है, अरु द्रवताका स्पंद फुरता है, तब जलरूप हो भासता है, अरु उष्णरूपकी संवेदन फुरती है, तब अग्नि भासती है, इसी प्रकार वायु आकाशादिक पदार्थ जैसे फुरणा होता है, तैसे हो भासता है, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं, जलही-रूप है, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, वहीरूप है, अपर जगत् कछु वस्तु नहीं, यह गुण क्रिया सब आकाशविषे हैं, वास्तव कछु नहीं काहेते जो कारणते रहित है, सब असत्‌रूप है, अहं त्वंते आदि-लेकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप है, कछु बना नहीं, अपने आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, न कोऊ आधार है, अद्वैत-सत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु नानारूप हो भासती है, जब चित्तसंवेदन फुरती है, तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, काल हो भासता है, कहूं सर्व आत्माका ज्ञान फुरता है, कहूं परिच्छिन्नता भासती है, परंतु वास्तवते कछु बना नहीं, वही वस्तु है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है, तैसा हो भासता है, अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है, जिसविषे आकाश भी आकाशरूप है॥इति श्रीयो० निर्वाणप्र० चिदाकाश-जगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकाशीतितमः सर्गः ॥ २८१ ॥

द्विशताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः १८२.

जगदाभासवर्णनम् ।

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह प्रश्न है, जो जाग्रत् अरु स्वप्नविषे कछु भेद नहीं, अरु परम आकाशरूप है, तौ तिस सत्ताको जाग्रत अरु स्वप्न-शरीरसाथ कैसे संयोग है, वह तौ निरवयव निराकार है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! जेते कछु आकार तुझको भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, आकाशविषे आकाश स्थित है, स्वर्गके आदि आकारका अभाव था सो अवहीं जान, जो उपजा कोऊ नहीं, परम आकाशसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब तिस अद्वैतसत्ता चिन्मात्रविषे चित्त किंचन होता है, तब वही सत्ता आकारकी नाईं भासती है, परंतु कछु हुआ नहीं, आकाशरूपही है, जैसे स्वप्नविषे शरीरोंका अनुभव करता है सो कछु आकार तौ नहीं होते, आकाशरूप होते हैं, तैसे यह जगत् भी निराकार है, परंतु फुरणेकरि आकार हो भासता है, जिन तत्त्वते शरीर होता है, सो तत्त्वही उपजे नहीं तौ शरीरकी उत्पत्ति कैसे कहौं ॥ हे रामजी! अपर जगत् कछु उपजा नहीं, ब्रह्मही किंचनकरि जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, संवेदन करिकै अर्थसंकेत है, जब संवेदन न फुरै, तब अर्थसंकेत न होवै, भिन्न भिन्न वस्तुते एकही सत्ताके नाम हैं, भिन्न नाम तब भासते हैं, जब वेदना फुरती है, नहीं तौ शब्द जलरवके तुल्य हैं, वस्तुते भेद नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं; परंतु स्पंदरूप हो भासती है, निस्पंद नहीं भासती, परंतु दोनों रूप वायुके हैं, तैसे स्पंदकरि ब्रह्मविषे किंचन जगत् भासता है, जब संवेदन नहीं फुरती, तब जगत् नहीं भासता, परंतु दोनों रूप ब्रह्महीं हैं, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न अरु दूसरी सुषुप्ति, परंतु दोनों एक निद्राके पर्याय हैं, तैसे जगत्‌का होना अरु न भासना एक ब्रह्मकी दोनों संज्ञा हैं, कोऊ ब्रह्म कहौ, कोऊ जगत् कहौ ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्मही जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे निर्मल अनुभवसों स्वप्नविषे शिला भासि आती है, सो शिला तौ कछु स्वप्नविषे उपजी नहीं, अपना अनुभवही शिलारूप हो भासता है, तैसे जेते कछु आकार अब भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, आत्मसत्ताही आकाशरूप जगत् हो भासती है, अपर जगत् कछु उपजा नहीं होता, न सत् है, न असत् है, न आता है, न जाता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! आगे तुम मुझको

अनेक सृष्टि कही हैं, कई जलविषे, कई अग्निविषे, कई पृथ्वीविषे, कई वायुविषे, आकाशविषे, पत्थरविषे, पक्षीवत् उडती फिरती हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि तुमने कही हैं, अब यह प्रश्न है कि, हमारी सृष्टि किसते उत्पन्न भई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रश्न वही करता है जो अपूर्व होता है, जो आगे देखा अरु सुना न होवै, अरु जगत्कारि जाना भी न होवै, इस जगत्की उत्पत्ति वेद पुराण कहते हैं, अरु लोकाविषे भी प्रसिद्ध है, जो ब्रह्मकरिकै हुई है, अरु वस्तुते चिदाकाशरूप है, कछु उपजी नहीं, यह दोनों प्रकार मैं तेरे ताईं कहे हैं, तिनको तू जानिकारि भी प्रश्न करता है सो तेरा प्रश्नही नहीं बनता ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह सृष्टि कितनीक हैं, अरु कहांलग चली जाती हैं, अरु केते कालपर्यंत रहैगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु सृष्टि तू जानता है सो सृष्टि कोऊ नहीं, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, अरु सृष्टि बहुत हैं, परंतु वस्तुते कछु हुई नहीं, आदि अंत मध्यते रहित है, सो ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अरु यह जेती कछु सृष्टि है सो आभासमात्र है, ब्रह्म जो आदि अंत मध्यते रहित है, तिसका आभास भी तैसाही है, जेता वृक्ष होता है तेतीही छाया होती है, तस ब्रह्मका आभास सृष्टि है, अरु वास्तवते पूछे तौ आभास भी कोऊ नहीं, ब्रह्मही अपने आपविषे स्थित है, वही जगत्रूप आपको देखता है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदी आयुध नाना प्रकारके व्यवहारके रूप धारिकारि आत्मसत्ता स्थित होती है, सो कछु बना नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है, तैसे यह जगत् भी जान, अपर कछु बना नहीं, आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है, जो जगत् किसी कारणकारि उपजा होता तौ सत् होता, इसका कारण कोऊ नहीं पाता, तात असत् है, न कोऊ निमित्तकारण पाता है, न समवायिकारण पाता है ॥ हे रामजी ! जो कारणते उपजा न होवै, अरु भासै, तिसको आकाशमात्र स्वप्नपुरवत् जान, अरु जिसविषे आभास भासता है, सो अधिष्ठान सत्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो सर्प कछु नहीं, जेवरीही सत् होती है, तैसे जगत् अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, सोई सत् है,

शुद्ध निर्दुःख है, अच्युत है, विज्ञान है, सदा अपने आपविषे स्थित है, वही सत्ता जगतरूप हो भासती है, जैसे जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्मही जगतरूप हो भसता है ॥ हे रामजी ! यह जगत् ब्रह्मका हृदय है, अर्थ यह जो अपना स्वभाव है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं ज्ञानीको सर्वदा ऐसेही भासता है, जैसे स्वप्नते जागै, तब अपना आपही भासता है, तैसे यह जगत् अपना आप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदाभासवर्णनं नाम द्विशताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः ॥ २८२ ॥

द्विशताधिकत्र्यशीतितमः सर्गः २८३.

राजप्रश्नवर्णनम् ।
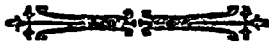
वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस जगत्का कारण कोऊ नहीं, जो जगत्ही नहीं तौ कारण कैसे होवै, अरु कारण नहीं तौ जगत् कैसे होवै, ताते सर्व ब्रह्मही है, इसके ऊपर एक उपाख्यान है, सो सुन ॥ हे रामजी ! कुशद्वीपविषे पूर्व अरु पश्चिम दिशाके मध्यविषे जो ऐलवती नगरी है, सो कैसी नगरी है, स्वर्णकी अरु महाउज्ज्वलरूप है, तिसविषे बड़े स्तंभ ऊर्ध्वको गये हैं, मानौ पृथ्वी अरु आकाशको इननेही पूर्ण किया है, ऐसे वहां स्वर्णके स्तंभ थे, तिस नगरीका एक प्रागपति राजा है, एक कालमें आकाशते शीघ्र वेगकरि उसके गृहविषे मैं आया, इसने भलीप्रकार अर्घ्य पाद्य साथ प्रीतिकरि मेरा पूजन किया, अरु सिंहासनके ऊपर बैठाया, बैठायकरि उसने मुझसों महाप्रश्न किया, जिन प्रश्नते उपरांत कोऊ प्रश्न नहीं ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! संशयरूपी तमके नाशकर्ता तुम सूर्य हौ, मुझको संशय है, सो दूर करहु ॥ हे मुनीश्वर ! जब महाप्रलय होती है, तब कार्य कारण सर्व शब्दकी कल्पना अभाव हो जाती है, तिसके पाछे महाआकाशसत्ता शेष रहती है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, अवाच्यपद है, तिसते बहुरि सृष्टि कैसे उत्पत्ति होती है, वहां उपादानकारण अरु निमित्तकारण तौ कोऊ न था, सृष्टि कैसे

हुई, श्रुति अरु पुराणकरि सुनाजाता है, कि महाप्रलयसों बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई है, अरु दूसरा प्रश्न यह है, जंबूद्वीपविषे कोऊ मृतक भया अथवा कहूँ अपर ठौर गया हुआ मृतक भया, तौ उसका वह शरीर तौ वहां भस्म हो गया, अरु परलोकविषे पुण्यपापका फल दुःख भोगता है, जिस शरीरकरि भोगता है, तिस शरीरका कारण कोऊ नहीं, जो तुम कहौ पुण्य अरु पाप शरीरका कारण है, तौ पुण्यपाप आपही निराकार हैं, तिनते साररूप शरीर कैसे उपजै, अरु जो तुम कहौ, परलोक कोऊ नहीं, पुण्यपाप भी कोऊ नहीं, तौ श्रुति अरु पुराणके वचनों साथ विरोध होता है, सबही वर्णन करते हैं, जो मरिकरि परलोक जाता है, जैसे कर्म किये हैं, तैसे भोगता है, अरु जिस शरीर साथ भोगता है, तिसका कारण कोऊ नहीं, न कोऊ पिता है, न माता है, सो शरीर कैसे उत्पन्न भया अरु तीसरा प्रश्न यह है, कि यह परलोकविषे जाता है, इसके निमित्त दान पुण्य करते हैं, उनका फल इसको कैसे प्राप्त होता है, अरु चतुर्थ प्रश्न यह जो महाप्रलयते ब्रह्मा उत्पन्न भया है, उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ है, जो महाप्रलयते न उपजा होवे, अरु अपना आपहीते उपजा होवे, इस कारणते स्वयंभू कहाता है, अरु महाप्रलयविषे शेष अद्वैत रहा था, तिसते उत्पन्न भया है, तौ भी स्वयंभू कैसे कहिये, जो कहौ, स्वयंभू अपने आपते उपजता है, अपना आप आत्मा है, सो सबका अपना आप है, अब क्यों नहीं, तिसते स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न होता, अरु पंचम प्रश्न यह है, जो एक पुरुष था, तिसका एक मित्र था, एक शत्रु था, तिन दोनोंने प्रयागविषे जाइकरि करवत लिया, जो इसका मित्र था, तिसने वांछा करी कि मेरा मित्र चिरकाल जीवता रहै, चिरंजीव होवै, दूसरेने यह संकल्प धारा कि मेरा शत्रु इसी कालविषे मरि जावै ॥ हे मुनीश्वर । एकही कालविषे दो अवस्था कैसे होवैंगी, अरु षष्ठ प्रश्न यह है, जो सहस्रही मनुष्य ध्यान लगाइ बैठे हैं, हम इसी आकाशके चंद्रमा होवैं, सो एकही आकाशविषे सहस्र चंद्रमा कैसे होवैंगे, अरु सप्तम प्रश्न यह है, कि सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं, एक सुंदर स्त्री बैठी थी तिसके

निमित्त कि हमारे ताईं वह प्राप्त होवै, सब तिसकी वांछा करते हैं हम भर्त्ता होवैं, अरु एकका निश्चय यही है, अरु वह स्त्री पतिव्रता है, तिसके सहस्र भर्त्ता एक कालविषे कैसे होवैंगे, अरु अष्टम प्रश्न यह है, कि एक पुरुष था, तिसको किसीने वर दिया कि तू जायकरि मृतक होय सप्त-द्वीपका राज्य करु, अपर किसीने शाप दिया कि तेरा जीव अपनेही गृहविषे रहैगा, मृतक होय बाहिर न जावैगा, यह दोनों एकही कालविषे कैसे होवैंगे, अरु नवम प्रश्न यह है, कि एक काष्ठका स्तंभ था, तिसको एकने कहा, स्वर्णका होजावैगा, वह स्वर्णका होगया, सो स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया, तिसका कारण कोऊ न था, कारणविना कार्य कैसे उत्पन्न भया ? जैसा अन्नका बीज होता है, तैसाही अन्नकार्य उत्पन्न होता है अपर नहीं उगता, तौ काष्ठते स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया, अरु जो कहौ, संकल्पकरि उपजा तौ हम भी संकल्प करते हैं, हमका कार्य ऐसे होवै, वह क्यों नहीं होता, ताते जानाजाता है, कि संकल्पते भी उत्पन्न नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! जिसप्रकार यह वृत्तांत है सो कहौ, अरु एक कहते हैं, कि आगे असतही था तौ असतते जगत्की उत्पत्ति कैसे भई, यह मुझको संशय है, तिसको दूर करहु, जो कोऊ संतके निकट आनिप्राप्त होता है, सो निष्फल नहीं जाता ताते कृपा करि कहौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजप्रश्नवर्णनं नाम द्विशताधिकत्र्य-शीतितमः सर्गः ॥ २८३ ॥

द्विशताधिकचतुरशीतितमः सर्गः २८४.

प्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने मुझको संश-यका समूह कहा, तब मैं उसको कहत भया कि ॥ हे राजन् ! जेते कछु तुझको संशय हैं सो मैं सब दूर करूंगा, जैसे संपूर्ण अंधकारको सूर्य नाश करता है, तैसे मैं संशय नाश करौंगा ॥ हे राजन् ! जेता

कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, जब तिसविषे चित्त ऐसे फुरता है, तब वही चित्त संवेदन जगद्रूप हो भासता है, ताते जो कछु आकार भासते हैं, सो सब चिन्मात्र रूप हैं, न कोऊ कार्य न कारण है अरु जो तू प्रत्यक्षप्रमाणकरि संशय करै कि जो सब चिन्मात्ररूप हैं, तो यह शरीर जब मृतक हो जाता है, तब चेतता क्यों नहीं चाहिये, जो तिस कालमें भी इसविषे जानना होवे, तौ ॥ हे राजन् ! जब जाग्रत्का अंत होता अरु स्वप्न आया नहीं, तब शुद्ध चिन्मात्र रहता है, जब तिसविषे स्वप्नसृष्टि भासि आती है, तिस सृष्टिविषे कई चेतन भासते हैं, कई मृतक, कई जड भासते हैं, स्थावर जंगम नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, परंतु अपर तौ कछु नहीं, वही चिन्मात्रस्वरूप है, वही अनुभवरूप हो भासती है, कहूँ चेतन बोलते चालते भासते हैं, परंतु वही है, जो चेतनता न होती तौ भासते कैसे जाते, भासते हैं, ताते सब चेतन हैं, तैसे इस जगत्विषे कहूँ बोलते चालते भासते हैं, कहूँ शव भासते हैं, परंतु वही चिन्मात्रसत्ता है, जैसा जैसा संकल्प तिसविषे फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे राजन् ! जैसे प्रथम प्रलयते सृष्टि उत्पन्न भई थी, तैसे उत्पत्ति होती है, यह सृष्टि किसीका कार्य नहीं, अरु किसीका कारण भी नहीं, विनाकारण उपजी भासती है ॥ हे राजन् ! जो महाप्रलयविषे शेष रहता था सो चिन्मात्र है, तिस चिन्मात्रसत्तासों जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मा विराट्-रूप होकारि स्थित भई, तिसने जगत्कल्पना करी है, तिसविषे नेति रची है, कि यह पदार्थ इसप्रकार है, तैसे चित् संवेदनविषे दृढ होकारि भासा है, तिसका नाम जगत् है, वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकारि जगत्रूप हो भासती है ॥ हे राजन् ! जैसे तेरे संकल्पकी आदि अरु स्वप्नसृष्टिकी आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी, वही फुरणेकारिके पदार्थरूप हो भासती है, तैसे यह जान, पर न कोऊ कार्य है, न कोऊ कारण है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण होती है, तैसे यह जगत् अकारण है, जो आदि अंतते विचारके रहित है, अरु वर्त्तमान प्रत्यक्षप्रमाणको मानते

हैं तिनको कार्यकारण प्रत्यक्ष भासते हैं; तिनके वचन भी निरर्थकहैं, जैसे अंधकूपके दर्दुर शब्द करते हैं, तैसे वह भी निरर्थक प्रत्यक्षप्रमाणकरि कार्यकारणके वाद करते हैं, तिनको हमारे वचन सुननेका अधिकार नहीं, अरु हमको भी तिनके वचन सुनने योग्य नहीं ॥ हे राजन्! जिस शास्त्रके श्रवणकरि अरु जिस गुरुके मिलनेकरि संपूर्ण संशय निवृत्त न होवैं, तिसशास्त्र अरु गुरुका कहना भी अंधकूपते दर्दुरवत व्यर्थ है, जो परमार्थ सत्ताते विमुख हुये हैं, तिनको यह भ्रम अपनेविषे भासता है, शरीरके मृतक हुये आपको मरता जानते हैं, कि मैं मुआ हौं, बहुरि वासना अनुसार शरीर उपजता जीता है, तब मानता है, कि अब मैं उपजा हौं, बहुरि अपने पुण्य पाप कर्मका अनुभव करता है, जैसे स्वप्नविषे अपनेसाथ शरीर देखता है, तैसे परलोकविषे अपनेसाथ शरीर भासि आता है, तैसे यह शरीर भी भासि आया है; न कोऊ उसका कारण है, न पांचभौतिक है, न इसका शरीर है न किसी कारणते भूत उपजे हैं, अपनी कल्पना आकाररूप होकरि भासती है, अपर आकार कोऊ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; जैसा संकल्प तिसविषे दृढ होता है, तैसा पदार्थ भासि आता है ॥ हे राजन्! तू इस जगत्को सत् मानता है, तो सब कछु सिद्ध होता है, शरीर भी है, परलोक भी है, नरक स्वर्ग भी हैं, जैसा यह लोक है, तैसा परलोक है, जो यह लोक निश्चयविषे सत् है, तौ वह लोकभी सत्ही भासैगा, जैसा कर्म करैगा, तैसा फल भोगैगा॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोतरवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुरशीतितमः सर्गः ॥ २८४ ॥

द्विशताधिकपंचाशीतितमः सर्गः २८५.

द्वितीयप्रश्नोतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजन्! जेता कछु जगत् तुझको भासताहै सो सब संकल्पमात्र है, जैसे कोऊ बालक अपनेमनविषे वृक्षकोरचै, तिसविषे फूल

फल टास कल्पै सो संकल्पमात्र हैं,तैसे यह जगत् संवेदनरूपब्रह्माने कल्पा है, तिनके मनविषे फुरता है, सो संकल्परूप है, जैसे उसने संकल्प किया है तैसेही स्थित है, जैसे तिसविषे क्रम रचा है, जो इसप्रकार यह पदार्थ होवैगा, सो तैसेही स्थित भया है, देश काल पदार्थ तैसेही स्थित हैं, इसका नाम नेति है ॥ हे राजन्! तुझने प्रश्न किया कि पुरुष अरूप है, अरु दूर है, तिसके अर्थ किसीने दिया, तिसको कैसे पहुँचता है, अरु स्वरूप अरूपका कैसे संयोग है, जो कोऊ शुद्ध संवेदन पुरुष हैं, तिनको सब पदार्थ निकट भासते हैं, अरु जो कोऊ पुरुष मनोराज्य कल्पता है, तिसविषे बडा देश रचै सो दूरते दूर मार्ग हैं, तौ जो उस देशके वासी हैं, तिनको देशकी अपेक्षाकारि दूसरा देश दूरते दूर है, परंतु जिसका मनोराज्य है, तिसको तौ सब निकट है, अपना आपही है, तिसप्रकार जो शुद्ध संवेदनरूप है, तिसके अर्थ जो कोऊ ईश्वर अर्थ अथवा देवताके अर्थ देता है, तिसको निकटते निकट सब अपनेविषे भासता है, आदि नेति इसीप्रकार हुई है, जो शुद्ध संवेदनको सबअपने निकटते निकटही भासै, काहेते कि सब संकल्प है, जैसी रचना संकल्पविषे रचती है, तैसे होती है, संकल्पविषे क्या नहीं होता, अरु स्तंभका प्रश्न जो तुझने किया है, काष्ठका स्वर्ण कैसे होता है, सुन ॥ हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है, तिसने अपने मनोराज्यविषे नेति करी है, जो तपादिककरिकै इसका वर अरु शाप सिद्ध होता है, उसके कहेते, जो काष्ठका स्तंभ स्वर्ण हो गया,तौ तू, विचारकरि देख कि इस कारणते काष्ठका स्वर्ण भया है, सो संकल्पमात्र है, जो संकल्पते इतर भी कछु होता तौ काष्ठका स्वर्ण न होता, अरु यह सर्व विश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा हो भासता है, जैसे तू अपने मनोराज्यविषे संकल्प करै है कि यह ऐसे रहै, अरु जो इसते अपर प्रकार करै तौ अपर हो जावै सो होता है क्यों, तैसे वर अरु शाप भी अपर प्रकार हो जाते हैं, न अपर कोऊ जगत् है, न कार्य है, न कारण है, वही आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, जैसे संकल्प जिसविषे फुरता है तैसे

हो भासता है, अरु तू पूछता है असत्‌ते बहुरि जगत् कैसे उत्पन्न होता है, जो आपही न होवै, तिसते जगत् कैसे प्रगटै ॥ हे राजन्! असत् इसीका नाम है, जो जगत असत् था, तिस श्रुतिने असत् कहा, जो आदि असत् था सो असत्‌ता जगत्‌की कही है, आत्मा तौअसत नहीं होता, सबका शेषभूत आत्मा है, जब तिसविषे संवेदन फुरती है, तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप हो जाता है, परंतु तिस संवेदनके फुरणे अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, तिसका अभाव नहीं होता, जलविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, परंतु तिनके उपजने मिटनेविषे जल ज्योंका त्यों है, तरंग तिसका आभास फुरते हैं, जैसे तू मनोराज्यकारि एक नगर कल्पै, बहुरि संकल्प छांडि देवै, तब संकल्परूप नगरका अभाव हो जाता है, परंतु सदा अविनाशी रहता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि उपजती भी है, अरु लीन भी हो जाती है परंतु अधिष्ठान ज्योंका त्यों है ॥ हे राजन्! जैसे रत्नका प्रकाश किरण उठती है, अरु लीन भी हो जाती हैं, परंतु रत्न ज्योंका त्यों होताहै, तैसे आत्मा विश्वके भाव अभावविषे ज्योंका त्यों होता है, तिसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है, उपजता है, तब उत्पत्ति भासती है, मिटता है तब प्रलय हो जाती है, परंतु उभय आभास हैं, जैसे वायु फुरती है, तब भासती है, ठहरि जाती है तब नहीं भासती, परंतु वायु एक है, तैसे आत्मा एकही है, फुरणेका नाम उत्पत्ति है, अफुरणेका नाम जगत्‌की प्रलय है, सो सर्व किंचनरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोत्तरद्वितीयो नाम द्विशताधिकपंचाशीतितमः सर्गः ॥ २८५ ॥

द्विशताधिकषडशीतितमः सर्गः २८६.

राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजन्! तुझने प्रयागके दो पुरुषका प्रश्न किया है, तिसका उत्तर सुन, जो उसका शत्रु बन गया है सो उसका पाप था, अरु

जो उसका मित्र बन गया था, सो उसका पुण्य था, प्रयाग तीर्थ धर्मक्षेत्र था ॥ हे राजन् ! पापरूप वासनाके अनुसार तिसको मृत्यु भासती है, अरु पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुको रोकता है, पुण्यरूपी तीर्थके बल करिके हृदयसों अल्परूपी पाप बेगिकरि भासता है, अरु जब उसको मृत्यु आती है, तब आपको मरता जानता है कि मैं मुआ हौं, भाई जन कुटुंबी रुदन करते हैं, जब अपनी ओर देखता है, तब जानता है कि मैं तौ मुआ नहीं, जब मृतक स्वर्गकी ओर देखता है, तब आपको मुआ जानता है, भाई जन रुदन करते हैं इसप्रकार उसको मरणा भासता है, भाई-जन जलावने चले हैं, अग्निविषे जलता देखता है, कि अग्निविषे इनने मुझको पाया है, मैं जलता हौं, जब बहुरि पुण्यकी ओर देखता है, तब जानता है कि मैं मुआ नहीं, जीता हौं, जब बहुरि पापकी ओर देखता है, तब जानता है कि मैं मुआ हौं, मुझको यमदूत ले चले हैं, यह परलोक यह इहां सुख दुःख भोगता हैं, जब बहुरि पुण्यकी ओर देखै तब जानै कि मैं मुआ नहीं जीता हौं, यह मेरे भाई जन बैठे हैं, यहां मेरा व्यवहार चेष्टा होता है इसप्रकार उभय अवस्थाको एक पुरुष देखता है, जैसे संकल्प-पुरविषे उभय अवस्था देखै जैसे स्वप्ननगरविषे उभय अवस्था देखै, एकही पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा देखता है, कहूँ जीता देखता है, कहूँ मृतक देखता है, कहूँ व्यवहार, कहूं निर्व्यापार देखता है, इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा एकही पुरुषविषे होती है; तैसे एकही पुरुषको पुण्यपापकी वासना-करि जीना मरणा भासता है ॥ हे राजन् ! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा रूप हो भासता है, परलोक जाना भी अपने वासनाके अनुसार भासता है, अरु जो कछु उसके निमित्त बांधव पुत्र देते हैं, सो पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासनाकरि स्थित भये हैं, जो कछु इसके निमित्त करते हैं, तिनकरि यह सुख दुःख नरक स्वर्ग भोगते हैं, अपर कोऊ बांधव पुत्र नहीं, उसकी वासनाही नानाप्रकारके आकारको धारिकरि स्थित भई है ॥ हे राजन् ! सहस्रही चंद्रमाका

तुझने प्रश्न किया है, तिसका उत्तर सुन, सहस्र इसी आकाशविषे होतेहैं, अपनी अपनी वासनाकारि कलासंयुक्त चंद्रमा हो विराजतेहैं, परंतु एकको दूसरा नहीं जानता, परस्पर अज्ञात हैं, जो अंतवाहक दृष्टिकारि देखै, तिसको भासते हैं॥ हे राजन्! जो कोऊ ऐसे भावना करै, कि मैं उसके मंडलको प्राप्त होऊं तौ तत्कालही जाय प्राप्त होता है, जैसे एकही मंदिर-विषे बहुत मनुष्य सोयेहैं, तिनको अपने अपने स्वप्नकी सृष्टि भासती है, सो अन्योन्य विलक्षण हैं, एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता, तैसे एक आकाशविषे सहस्र चंद्रमा बनते हैं, जैसे इंद्र ब्राह्मणके दश पुत्र दश ब्रह्मा हो बैठे, तैसे जिसकी तीव्र भावना कोऊ करता है, सोई हो जाता है, जो कोऊ भावना करै, हम इसी मंदिरविषे सप्तद्वीपका राज्य करैं, तब हो जाता है, काहेते कि अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसी तीव्र भावना तिसविषे होती है, तैसी हो भासतीहै, वरके वशते उस पुरुषको सप्तद्वीपका राज्य प्राप्त भया, अरु शापके वशते उसका जीव उसी मंदिरविषे रहा, तिस मंदिरही-विषे द्वीपका राज्य करत भया, जैसे स्वप्नविषे राज्य करैहै, तैसे अपने मंदिर विषे अपनी संवेदनही सृष्टिरूप होभासती है, इसप्रकार जो एक स्त्रीकी भावना करिकै सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं, कि हम तिसके भर्त्ता होवैं, सो भी हो जाते हैं॥ हे राजन्! उनकी जो तीव्र भावना है, वही स्त्रीका रूप धारिकारि उनको प्राप्त होवैगी, वह जानैंगे कि वही स्त्री हमको प्राप्त भई है, यह जगत् केवल संकल्पमात्र है, संकल्पते इतर कछु वस्तु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अपने अनुभवकारि प्रकाशता है, जैसे तिसविषे संकल्प फुरता है, तैसे हो भासता है, पृथ्वी, जल, तेज, आदिक तत्त्व कोऊ नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकार स्थित है, सो परम शांत है, निराकार निर्विकार अद्वैत एकरूप है॥ राजोवाच॥ हे मुनीश्वर! जगतके आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देहविषे स्थित थी, देह विना तौ स्थित नहीं होती, जैसे आधारविना दीपक नहीं रहता, आधार होता है, तब तिसविषे जागता है, तैसे आत्मसत्ता किसविषे स्थित थी॥ वसिष्ठ

उवाच ॥ हे राजन् । जेते कछु आकार तुझको भासते हैं, जिनको देखि-कारि तुझने प्रश्न उठाया है, सो हैं, नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जिन भूतोंकारि देह बना भासता है, सो भूत भी मृगतृष्णाके जलवत् हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र है, जैसे सीपीविषे रूपा, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र है, अत्यंत अभाव है, तैसे यह भूताकार ब्रह्मविषे भ्रमकारि भासते हैं, अत्यंताभाव है, कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अरु तुझने पूछा था कि ज्यों स्वयंभू अपने आपते उपजतेहैं, तौं अब क्यों नहीं होता ॥ सो हे राजन् । कई इसके सदृश पडे उत्पन्न होते हैं, अनेक जो सृष्टि हैं, वास्तवते कछु उमजी नहीं, कबहूँ कछु नानाप्रकार भासता है, परंतु नानाप्रकार नहीं भया; जैसे स्वप्नविषे सदा तू देखता है, जो अद्वैत अपना आपही नानारूप हो भासता है, पर्वत ऊपर दौडता फिरता है, सो किसी शरीरकारि दौडता है, अरु क्या रूप होता है, जैसे वह पर्वत भी आकाशरूप है, शरीर भी आकाशरूप होता है, भ्रमकारि पिंडाकार भासता है, तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है, भ्रमकारि पिंडाकार भासता है ॥ हे राजन् । तू अपने स्वभावविषे स्थित होकारि देख यह जगत् सब तेरा अनुभव आकाश है, स्वप्नका दृष्टांत भी मैं तेरे जतावनेनिमित्त कहा है, स्वप्न भी कछु हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब तिसविषे आभास संवेदन फुरती हैं, तब वही जगत्रूप हो भासती है, जब आभास संकल्प मिटि जाता है, तब प्रलयकाल भासता है, वास्तव न कोऊ उत्पत्ति होती है, न प्रलय भइ है, ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता स्थित है, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न, दूसरा सुषुप्ति, जो जाग्रत्विषे दोनों आकाशमात्र होती हैं, तैसे आभासकी दो संज्ञा होती हैं, एक जगत् अरु दूसरी महाप्रलय, आत्मरूपी जाग्रत्विषे दोनोंका अभाव हो जाता है ॥ जो हे राजन् । तू स्वरूपविषे जागिकारि देखु, जेती कछु कलना है, तिसको त्यागिकारि देखु, सब आत्मरूप है, अपर कछु नहीं ॥ हे रामजी । इसप्रकार मैं राजाको कहकारि उठि खडा

हुआ, उसने भली प्रकार प्रीतिसंयुक्त पूजन किया, जब पूजन करिचुका, तब मैं जिस कार्य लिये आया था, सो कार्य करि स्वर्गको चला गया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनंनामद्विशताधिकषडशीतितमः सर्गः ॥ २८६ ॥

द्विशताधिकसप्ताशीतितमः सर्गः २८७.

पूर्वरामकथावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब चिदाकाशरूप है, अपर द्वितीय कछु बना नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हो, सब चिदाकाश है, बना कछु नहीं, यह तौ सिद्ध साध्य विद्याधर लोकपाल देवता इत्यादिक लोक भासते हैं,लोकअरु लोकपाल कछु बने क्यों नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो सिद्ध साध्य विद्याधर देवता इनते लेकरि जो लोक अरु लोकपाल हैं, सो वस्तुते कछु उपजे नहीं ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, अरु यह जो प्रत्यक्ष भासते हैं, शुद्ध संकल्पकारि रचे हुये हैं, परंतु वस्तुते कछु बने नहीं, भ्रमकरि इनकी सत्यता भासती है,जैसे मृगतृष्णाकी नदी, जैसे जेवरीविषे सर्प जैसे सीपीविषे रूपा जैसे संकल्पनगर,तैसे आत्माविषे यह जगत्है ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी रचना भासती है, परंतु कछु हुआ नहीं, तैसे यह जगत् है, जो पुरुष इसको देखिकरि सत् मानता है, वह सम्यग्दर्शी नहीं, जो आत्माको देखता है, सोई सम्यग्दर्शी है ॥ हे रामजी ! यह लोक अरु लोकपाल जगत्सत्ताविषे ज्योंके त्यों हैं, जैसे स्थित हैं, तैसेही हैं, अरु परमार्थते कछु उपजे नहीं, अनुभवसत्ताही संवेदनकरि दृश्यरूप हो भासती है, द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है, परंतु स्वरूपते इतर कछु न हुआ, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद

नहीं ॥ हे रामजी! अब तू एक अपरवृत्तांत सुन, स्वप्नविषे जैसे अब हम हैं, तैसे एक आगे भी चित्तप्रतिमा हुई थी, पूर्व एक कल्पविषे तुम अरु हम हुये थे, तू मेरा शिष्य था, अरु मैं तेरा गुरु था, एक बनविषे तैंने मुझको प्रश्न किया ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन्! एक मुझको संशय है, सो नाश करौ, जो महाप्रलयविषे नाश क्या होता है, अरु अविनाशी क्या रहता है ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! जेता कछु शेष विशेषरूप जगत् है, सो सब नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नका नगर सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है, तैसे सब जगत् लीन होजाता है निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, अपर क्रिया काल कर्म सब नाश हो जाते हैं, आकाश भी नाश हो जाता है, पृथ्वी आप तेज वायु पहाड नदियां इनतेकारि जो जगत् है, क्रिया काल द्रव्यसंयुक्त सो सब नाश हो जाता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र यह जो कार्यके कारण हैं, तिनका नाम भी नहीं रहता, संवेदनशक्ति जो है, चेतनका लक्षणरूप सो भी नहीं रहती, अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाशही शेष रहता है ॥ शिष्य उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत् होती है, तिसका नाश नहीं होता अरु जो असत् होती है, सो आभासरूप है, यह जगत् तौ विद्यमान भासता है, सो महाप्रलयविषे कहा जावैगा ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! जो सत् है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो असत्है, तिसका भाव नहीं सो जेता कछु जगत् तुझको भासताहै, सोसब भ्रममात्र है इसविषे कोऊ वस्तु सत् नहीं भासती है, परंतु स्थित नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाका जल स्थित नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे तरुवरे भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्षभी भासता है, परंतु भ्रममात्र है, तैसे यह जगत् भ्रमरूप जान ॥ हे तात! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव होता है, अरु जाग्रतविषे स्वप्नका अभाव होता है, सो सृष्टि कहां जाती है, जैसे जाग्रतविषे स्वप्नसृष्टिका अभाव हो जाता है, तैसे महाप्रलयविषे इसका अभाव हो जाता है ॥ शिष्य

उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो भासता है सो क्या है, अरु जो नहीं भासता सो क्या है, अरु इसका रूप क्या है, अरु चिदाकाशते कैसे हुआ है ॥ गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाशविषे किंचन संवेदन फुरती है, तब जगत्रूप हो भासती है, ताते इसका रूप भी चिदाकाशही है, चिदाकाशते इतर कछु नहीं, सृष्टि अरु प्रलय दोनों उसीके रूप हैं, जब संवेदन फुरती है, अरु जब संवेदन अफुर होती है, तब प्रलयरूप हो भासती है, सो दोनों उसके रूप हैं, जैसे एकही वपुविषे दोस्वरूपहैं, दंत-करिकै शुक्ल लगता है, अरु केशकरि कृष्णलगता है, तैसे आत्माविषे सर्ग अरु प्रलय दो रूप होते हैं, सो दोनों आत्मरूप हैं, जैसे एकही निद्राकी दोअवस्था होती हैं, एक स्वप्न, अरु दूसरी सुषुप्ति, अरु जागृतविषे उभय नहीं, तैसे निद्रारूप संवेदनविषे सर्ग अरु प्रलय भासते हैं, अरु जागृत्-रूप आत्माविषे दोनोंका अभाव है ॥ हे तात! जो कछु तुझको भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अपर कछु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपने आप-विषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे अपना अनुभवही जगत्रूप हो भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन्! जो इसी-प्रकार है, जो द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है, तौ अपर जगत् तौ कछु न हुआ क्यों, सर्व वही है ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! इसीप्रकार है, अपर जगत् वस्तु कछु नहीं, चिदाकाश जगत्रूप हो भासता है, आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है, अपर कछु नहीं, काहेते जो सब उसीका किंचन है, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार सृष्टि होकरि फुरती है, अरु किसीविषे किसी काल किसीप्रकार कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जो कछु जगत् भासता है, सो वहीरूप जान, जिसको तू सर्ग कहता है, जिसको तू प्रलय कहता है, सो सब आत्मसत्ताके नाम हैं, वही सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार स्थित है, एकही जो परमदेव है, सोई घटपटरूप हुआ है, पर्वतरूप, पटरूप, जल, तृण, अग्नि, पृथ्वी, आकाश स्थावर, जंगम, असत्, नासत्, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्त्ति अमूर्त्ति, बंध, मोक्ष इनते आदि लेकरि जेते कछु शब्द अर्थ करिकै पदार्थ

सिद्ध होते हैं, सो सर्व आत्मरूप हैं, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्माही है, अरु जिसविषे सर्वदाकाल सर्वप्रकार नहीं, सो भी आत्माही है, सदा ज्योंका त्योंही है, जैसे स्वप्नविषे सब कछु भासता है, सो सब कछु आत्मसत्ताही है, अरु दूसरा कछु बना नहीं ॥ हे तात ! तृणही कर्त्ता है, तृणही भोक्ता है, तृणही सर्वेश्वर है, घट कर्त्ता है, घट भोक्ता है, घटही सर्वका ईश्वरहै, पट कर्त्ता है, पट भोक्ता है, पटही परम ईश्वर है, नर कर्त्ता है, नर भोक्ता है, नरही सर्वका ईश्वर है, इसी प्रकार एक एक वस्तुके नाम करिकै जो वस्तु है, सो कर्त्ता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्माते लेकरि तृण-पर्यंत जो कछु जगत् भासता है, सो सर्व आत्मरूप है, क्षय अरु उदय अंतर बाहर कर्त्ता भोक्ता सब ईश्वर है, सो विज्ञानमात्र है, कर्त्ता भोक्ता वही है, अरु न कर्त्ता है, नभोक्ता है, विधिमुख करिकै भी वही है, अरु निषेध भी वही है, शुद्ध दृष्टि करिकै सब चिदात्माही भासता है, अरु सर्व दुःखते रहित है, अरु जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त भई, तिनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, सो कैसा जगत् है, सो अनुभवते इतर कछु नहीं, ऐसे जानिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इसप्र-कार मैं पूर्व तुझको कहा था, परंतु तिसकरि तू बोधको न प्राप्त भया, सो अभ्यासकी ऊनताकरिकै वही संस्कार अब तुझको आनि प्राप्त भया, तिस कारणते अब तू जागा है ॥ हे रामजी ! अब तू अपने स्वरूपविषे स्थित भया है, ताते कृत्यकृत्य हुआ है, अपनी राज्यलक्ष्मीको भोगु, अरु प्रजाकी पालना करु, अरु अंतरते आकाशवत् निर्लेप रहहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वरामकथावर्णनं नाम द्विशताधिकसप्ता-शीतितमः सर्गः ॥ २८७ ॥

द्विशताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः २८८.

उत्साहवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब वसिष्ठजी इसप्रकार रामजीको कहि रहे तब आकाशविषे जो सिद्ध देवता स्थित थे, सो बडे फूलकी

वर्षा करने लगे, मानौ मेघ बरफकी वर्षा करते हैं, मानौ आकाश कंपायमान हुआ है, तिसते तारे गिरते हैं, जब पुष्पकी वर्षा कर चुके तब राजा दशरथ उठिखड़ा हुआ, अर्घ्य पाद्यकरिके पूजनकिया अरु हाथ जोडिकरि कहने लगा ॥ राजा दशरथ उवाच ॥ बडा कल्याण हुआ, बडा हर्ष हुआ ॥ हे मुनीश्वर ! तेरे प्रसादकरि हम आत्मपदको प्राप्त हुये हैं, अब कृतकृत्य हुये हैं, अब चित्तका वियोग हुआ है, तिसकरि दृश्य फुरणेका भी अभाव भया है, हम अचेत चिन्मात्र हैं, परमपदको प्राप्त भये हैं, सब संताप मिटि गये हैं, जो संसाररूपी अंधमार्ग था, तिसते थके हुये अब विश्रांतिको प्राप्त भये हैं, अब मैं पहाडकी नांई अचल हुआ हौं, सब आपदाको तरि गया हूं, जो कछु जानना था सो जान गया हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम बहुत युक्ति दृष्टांतकरिकै जगाया है, शून्यके दृष्टांत, अरु सीपीविषे रूपा, मृगतृष्णाका जल, जेवरीविषे सर्प, आकाशविषेदूसरा चंद्रमा अरु बेडीकरिके नदी किनारे चलते भासते हैं, जलविषे तरंग, स्वर्णविषे भूषण, वायुका फुरणा, गंधर्वनगर, संकल्पपुर इनते आदिलेकरि दृष्टांत कहे हैं, तिन करिकै हम जाना है कि, आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं तुम्हारी कृपाते ऐसे जाना है ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ जब इसप्रकार दशरथनें कहा, तब रामजी उठा, इसप्रकार हाथ जोडिकरि कहने लगा ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारी कृपाकरि मेरा मोह नष्ट भया है, अब मैं परमपदको प्राप्त हुआ हौं, किसीविषे मुझको न राग है, न दोष है, परमशांतिको प्राप्त भया हौं, न अब मेरे तांई किसी करणेकरि अर्थ है, न अकरणेविषे कछु अनर्थ है, मैं परम शांतपदको प्राप्त हुआ हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तेरे वचनका मैं स्मरण करिकै आश्चर्यको प्राप्त होता हौं, अरु हर्षित होता हौं, संदेह नष्ट हो गये हैं, अब मुझको अपर नहीं भासता सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ हे भगवन् ! मैं सन्तोके वचन इकट्ठे करतारहाथा, अरु संपूर्ण जो मेरेपुण्य थे, सोसब इकट्ठेभयेथे, सबका फल सब फला है, उदय हुआ है, सर्व संशयरहित परमपदको प्राप्त भया हौं तुम्हारी कृपाके जे कोऊ वचन हैं, सो चंद्रमाकी किरणवत् शीतल हैं

तिसते भी अधिक हैं, तिसकरिकै मैं परमशांति पाई है, दुःख संताप सर्व नष्ट भये हैं ॥ शत्रुघ्न उवाच ॥ हे मुनीश्वर। जरा अरु मृत्युका जो कोऊ भय था, सो तुमने दूर किया है, अपने अमृतरूपी वचनोंका सुधापान कराया है, अब हमारे संशय सब नष्ट भये हैं, हम आत्मपदको प्राप्त भये हैं, हमारे जो कोऊ चिरकालके पुण्य थे, तिनका फल आज पाया है॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे मुनीश्वर। सर्व तीर्थके स्नान कियेते ऐसा पवित्र नहीं होता, अपरकर्म कारि भी ऐसा पवित्र नहीं होता, जैसे तुम्हारे वचनोंकरिके पवित्र हुये हैं, आज हमारे श्रवण पवित्र हुये हैं ॥ नारद उवाच॥ हे मुनीश्वर। ऐसा मोक्षउपाय मैं देवतोंकेविषे श्रवण नहीं किया, न सिद्धोंके स्थानविषे सुना है, न ब्रह्माके मुखते सुना है॥ हे मुनीश्वर। तुमने पूर्ण उपदेश किया है, इसके श्रवण कियेते बहुरि संशय नहीं रहता ॥ दशरथ उवाच ॥ हे मुनीश्वर। आत्मज्ञान जैसी संपदा कोऊ नहीं, ताते तुम परम संपदा हमको दी है, जिसके पायेते बहुरि किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रही, अब तौ हम अपने स्वभावविषे स्थित भये हैं, संपूर्ण कर्म हमको छांडि गये हैं, अरु यह जो तुम्हारे वचन सुने हैं, सो हमारे बहुत जन्मके जो कोऊ पुण्य थे, सो इकट्ठे आनि हुये थे, तिनका यह फल अब आनि लगा है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर। बड़ा हर्ष हुआ कि, सर्व संपदाका अधिष्ठान है, सो प्राप्त हुआ है, अरु सर्व आपदाका अंत भया है,अरु ज्ञानते रहित अज्ञानी हैं,सो बडे अभागी हैं, जो आत्मपदको त्यागिकारि अनात्मपदार्थकी ओर धावते हैं, सो भी यत्नकारि प्राप्त होते हैं, तिनते विमुख होवैं, तब आत्मपद प्राप्त होवै, सो आत्मपदको पायकारि मैं शांतिवान् हुआ हौं, हर्षशोकते रहित हुआ हौं, अचलपद पाया है, अरु अचिंत अविनाशी हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, तुम्हारी कृपाकारि आपको ऐसा जानत भया हौं ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ हे मुनीश्वर। सहस्र सूर्य एकत्र उदय होवैं, तौ भी हृदयके तमको दूर नहीं करते सो तम तुमने दूर कियां है, अरु सहस्र चंद्रमा इकट्ठे उदय होवैं, तौ अंतरकी तप्तको निवृत्त नहीं करि सकते, तुमने संपूर्ण तप्त निवृत्त

करी है, हम निःसंताप पदको प्राप्त भये हैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे साधो ! जब इसप्रकार सब कह रहे, तब वसिष्ठजी कहत भये ॥ हे रामजी ! इस मोक्षउपाय कथाको सुनिकारि जेते कछु ब्राह्मण हैं, तिनको यथायोग्य पूजन करहु, अरु दान करहु, जो इतर जीव हैं, सो भी यथायोग्य यथा शक्ति पूजन करते हैं, तुम तौ राजा हौ, जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथने उठिकारि दश सहस्र ब्राह्मण मथुरावासी विद्यावानोंको भोजन कराया, दक्षिणा वस्त्र भूषण घोडे गांव आदिक दिये, यथायोग्य पूजन किया, बडा उत्साह हुआ, अंगना नृत्य करने लगीं, नगारे सहनाई बाजित्र बाजे हैं, चक्रवर्ती राजा होकारि उत्साह करत भया, अबलग त्रिलोकका राजा है, इसप्रकार सप्त दिनपर्यंत ब्राह्मण अतिथि निर्धन सर्वको द्रव्यकारि पूजन किया, अन्न अरु वस्त्र आदिककारि सबको प्रसन्न किया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्साहवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ २८८ ॥

द्विशताधिकैकोननवतितमः सर्गः २८९.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! इसप्रकार वसिष्ठमुनिके वचन सुनिकारि रघुवंशी कृतकृत्य हुये, जैसे रामजी सुनिकारि संशयते रहित जीवन्मुक्त हुये विचरे हैं, तैसे तुम भी विचरौ, यह मोक्षउपाय ऐसा है, जो अज्ञानी श्रवण करै सो भी परमपदको प्राप्त होवै, तुम्हारी क्याबात है, तुम तौ आगे भी बुद्धिमान् हौ, अरु जिसप्रकार मुझको ब्रह्माजीने कहा था, सो मैंने तुमको सुनाया है, जैसे रामजी आदिक कुमार अरु दशरथ आदिक राजे जीवन्मुक्त होकारि विचरे हैं, तैसे तुम भी विचरौ, उनविषे मोह भी दृष्ट आया है, परंतु स्वरूपते चलायमान नहीं, भये, तैसेही विचरौ, अरु ज्ञान जैसा सुख अपर कोऊ नहीं अरु अज्ञान जैसा दुःख कोऊ नहीं, इसते अधिक कैसे कहिये

यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुझको कहा है, सो परम पावन हैं, अरु संसारसमुद्रते पार कररनेहारा है, दुःखरूपी अंधकारको नाशकर्त्ता सूर्य रूप है, सुखरूपी कमलकी खानका ताल है, जो पुरुष इसका वारंवार विचार करै, सो तौ महामूर्ख होवै तौ भी शांतपदको प्राप्त होवै, जो कोऊ इस मोक्ष उपायको पढैगा, कथा करैगा, अरु सुनैगा, अरु लिखैगा, अरु लिखकारि पुस्तक देवैगा, जो हृदयविषे कामना होवैगी, तौ ब्रह्म लोकको प्राप्त होवैगा, सो राजसूययज्ञके फलको पावैगा, अरु बहुरि विचारकारि ज्ञानको पावैगा, अरु मुक्त होवैगा ॥ हे अंग ! यह जो मोक्ष उपाय है, सो बडा शास्त्र है, इसविषे बडी कथा है, नानाप्रकारकी युक्तियां हैं, तिन कथा अरु युक्तिकारिकै वसिष्ठजीने रामजीको जगाया है, सो मैं तुझको सुनया है, अपने उपदेशकारि तिसको जीवन्मुक्त किया अरु कहत भया कि तुम राज्यलक्ष्मी भोगहु, सोई मैं तुझको कहता हौं, जो जीवन्मुक्त होकारि अपने तप कर्मविषे सावधान होवहु, अरु निश्चय आत्मसत्ताविषे रखना, इस उपदेशकारिकै रघुवंशी कृत्यकृत्य भये हैं, सो मैं तुझको ज्योंका त्यों कहा है, इस निश्चयको धारिकारि कृत्यकृत्य होहु, जितने इतिहास कथा हैं, तिनके भिन्न भिन्न नाम सुनहु, वैराग्य प्रकरणविषे संपूर्ण रामजीके प्रश्न हैं ॥ १ ॥ अरु मुमुक्षुप्रकरणविषे शुक-निर्वाणही कहा है॥ अरु उत्पत्तिप्रकरणविषे यह अष्ट आख्यान कहे हैं ॥ एक आकाशजका १, दूसरा लीलाका २, तीसरा सूचीका ३, चतुर्थ इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका ४, पंचम कृत्रिम इंद्र अरु अहल्याका ५, षष्ठ चित्तो पाख्यान ६, सप्तम वाल्मीकिकी कथा ७, अष्टम सांबरका आख्यान ८॥ स्थिति प्रकरणविषे चार आख्यान कहे हैं ॥ एक भृगुके सुतका १, दूसरा दाम व्याल कटका २, तीसरा भीम भास दटका ३, चतुर्थ दासुरका ४, उपशमप्रकरणविषे एकादश आख्यान कहे हैं ॥ एक जनककी सिद्धगीता १, दूसरा जो है पुण्यपावनका २, तीसरा बलको विज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तांत ३, चतुर्थ प्रह्लादविश्रांति ४, पंचम गाधिका वृत्तांत ५, षष्ठ उद्दालक निर्वाण ६, सप्तम सुरगनिश्चय ७, अष्टम परघनिश्चय ८, नवम भासका ९, दशम विलाससंवादका १०, एकादश वीतवका ११॥ निर्वाणप्रकरणविषे

सप्तविंशति आख्यान कहे हैं ॥ भुशुण्डिवसिष्ठका १, महेशवसिष्ठका २, शिलाकोश ३, अर्जुनका उपदेश ४, स्वप्नवत् रुद्रका ५, वैतालका ६, अरु भागीरथका ७, अरु गंगाअवतारका ८, शिखरध्वजका ९, बृहस्पति कचप्रबोध १०, मिथ्यापुरुषका ११, भृंगीगणका १२, इक्ष्वाकुनिर्वाणका १३, मृगव्याधि दृष्टांतका १४, बलिबृहस्पतिका १५, मंकी निर्वाणका १६, विद्याधरका १७, हरिणोपाख्यान १८, आख्यानोपाख्यान १९, विपश्चितका २०, शिवका २१, शिलाका २२, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका २३, कुंददंतका २४, महाप्रश्नोत्तरवाक्य २५, शिष्यगुरुका २६, महोत्सवग्रंथप्रशंसाफल २७, चतुष्टयप्रकरणविषे पंचाश आख्यान वर्णन भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वसिष्ठरामचंद्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोननवतितमः सर्गः ॥ २८९ ॥

योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धं समाप्तम् ।
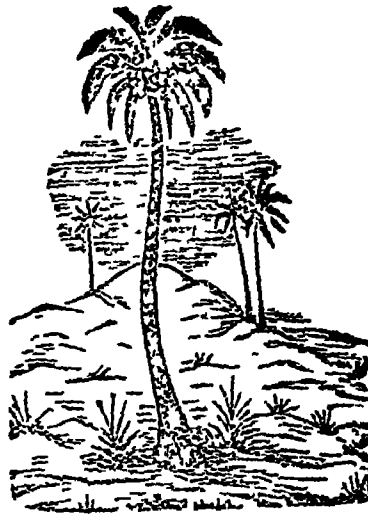
पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्, प्रेस–बंबई.

विक्रय वेदान्तग्रन्थ-भाषा
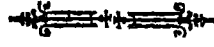
नामपुस्तक.	की. रु आ.
अनुभवप्रकाश-- (वेदांत) योगेश्वर श्री १०८ वनानाथजी-कृत मारवाडी भाषा। इसमें-गुरुकी महिमा, योगीकी प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनको चेतावनी, वेदान्तोंके पद तत्त्वमस्यादि वाक्योंका सार, आसावरी, सोरठ वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें वर्णन किया है. ...	०--८
अभिलाखसागर--भाषामें स्वामी अभिलाखदास उदासी कृत। इसमें--वन्दनविचार, ग्रन्थविचार, मार्गविचार, भजनविचार, जडब्रह्मविचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकारब्रह्मविचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमान ब्रह्मविचारादि विषय अच्छीरीतिसे वर्णितहैं	१--८
अध्यात्मप्रकाश--श्रीशुकदेवजीप्रणीत-कवित्त, दोहे, सोरठे, छन्द, चौपाई इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है. ...	०-३
अमृतधारा--वेदान्त भाषाछन्दोंमें भगवानदास निरंजनीकृत-वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखीगई है.	०--१०
आत्मपुराण-भाषामें दशोपनिषदोंका भावार्थ श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य चिद्घनानन्द स्वामीकृत.	१२-०
आनन्दामृतवर्षिणी-आनन्दगिरि स्वामिकृत-गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन अर्थात् यह वेदान्तका मूल है. ...	०-१२
एकादशस्कन्ध-भाषामें चतुरदासजी कृत भागवतके एकादशस्कन्धकी वेदान्त रसमय कथा सुगम रीतिसे वर्णित है.	०-१२
गर्भगीताभाषा-श्रीकृष्णार्जुनसंवाद अत्यन्त स्पष्टरीतिसे लिखा गयाहै.	०-१
गुप्तनादभाषा-मिसेस एनीविसेण्टकृत-क्रिमेशन थियोसोफी भैरवी इत्यादिका सार.	०-१॥

नामपुस्तक	की. रु. आ.
चन्द्रावलीज्ञानोपमहासिन्धु--इस ग्रन्थमें वेदवेदान्तका सार मुमुक्षुओंके ज्ञानार्थ--राग रागिनियोंमें अच्छीप्रकार वर्णितहै.	०--६
जीवब्रह्मशतसागर--भाषा--इसमें--ज्ञानकी अत्यन्त रोचक अनेक बातें हैं.	०--३
तत्त्वानुसन्धान--भाषामें स्वामी चिद्धनानन्दकृत अर्थात् "अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ" यह ग्रन्थ आदिसे अन्ततक देखनेसे भलीप्रकार वेदान्तके छोटे बडे ग्रन्थ आपही आप विचार सक्ते हैं	२--०
दशोपनिषद्--भाषामें । स्वामी अच्युतानन्दगिरिकृत दशोपनिषद्का सरलभाषामें मूल २ का उल्था कियागयाहै, मुमुक्षुओंको पढनेसे शीघ्र अध्यात्मबोध होता है	२--०
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश--(कामलीवाले बाबाजी कृत) इसमें--चारवेद, षट्शास्त्रोंका सार और अठारहों पुराणोंकी कथा आदिका अध्यात्म विद्यापर अर्थ लिखागयाहै । आत्मज्ञानियोंको अत्यन्त दुर्लभहै	२--८
प्रबोधचन्द्रोदयनाटक--(वेदान्त) भाषा गुलाबसिंहकृत--अतीवरोचक है.	१--०
प्रत्येकानुभवशतक--भाषा--यह छोटासा ग्रन्थ पढनेसे वेदान्तमें अच्छा अनुभव सिद्ध होताहै.	०--४
ब्रह्मनिरूपण --ज्ञानांकुश--अथवा रामअयन रामायणभक्तोंका सुगम मोक्षोपाय.	१--४
ब्रह्मज्ञानदर्पण--(अर्थात् ज्ञानकी आरसी.)...	०--२
भावार्थसिन्धु--भाषावेदान्त--यह ग्रंथ आत्मज्ञानप्राप्त करनेमें बहुतही उपयोगी होनेसे मुमुक्षुओंको अवश्य संग्रहणीयहै,...	०--८

नामपुस्तक.	की. रु. आ.
मोक्षगीता--सवालक्ष श्रीरामनाम लिखागयाहै भजनानुरागियोंको अवश्य संग्रह करना चाहिये...	०--१४
मोक्षगीता तथा विवेकवीर विजय--श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी लक्षानन्दजीकृत–यह दोनो ग्रंथ वेदान्तियोको परमोपयोगी हैं	०–२
मोक्षपन्थ--(गुलाबरायजीकृत)	१–०
योगवासिष्ठ बडा--भाषा--छः प्रकरणोमें श्री गुरु वसिष्ठजी और श्रीरामचन्द्रजीका संवादोक्त अपूर्व ग्रन्थहै (खुलापत्रा)	९--०
योगवासिष्ठ बडा--भाषा--छः प्रकरणोंमें उपरोक्त सर्वालंकारोंसे युक्त २ जिल्दोंमें	९–०
योगवासिष्ठ–भाषामें वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण बडा अक्षर ग्लेज कागज	०–१०
योगवासिष्ठ–भाषामें वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण छोटा गुटका पाकिट बुक अतिउत्तम संग्रह करने योग्य है.	०–४
योगवासिष्ठ–सार- संपूर्ण योगवासिष्ठका सार भाषामें वर्णितहै.	२–०
विचारसागर–सटिक स्वामी निश्चलदासजी कृत सर्वोत्तम संग्राह्य है.	१–८
विचारसागर–सटीक–पीताम्बरदासकृत भाषाटीकासहित,	४–०
विचारमाला–सटीक–स्वामी श्रीगोविन्ददास कृत सरल भाषाटीकासहित.	०–१२
विचारचन्द्रोदय–सटिप्पण पं० पीताम्बरदासकृत बालबोधिनी टीका समेत.	१–८
विज्ञानगीता–कविवर श्रीकेवशदासकृत अपूर्व वेदान्त है ...	०–१०
वृत्तिप्रभाकर–स्वामी श्रीनिश्चलदासजीकृत षट्शास्त्रके मतसे भलीप्रकार वेदान्तमत प्रतिपादन किया है.	२–८
श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर–अर्थात् द्वैत वेदान्तका सार भाषामें अनेकानेक श्रुतिस्मृतिकी टिप्पणियोंसे विभूषितहै ...	१–८

नामपुस्तक	की रु. आ
सन्तप्रभाव–साधु श्रीमाणिकदासजीकृत। यह ग्रन्थ सत्संगादि विषयमें अद्वितीय है अवश्य संग्रह करिये	०–६
सन्तोषसुरतरु–साधु श्रीमाणिकदासजी कृत। इस ग्रन्थके पढनेसे डाकिनीरूप तृष्णाका अवश्य नाश होताहै. ...	०–६
स्वरूपानुसन्धान–वेदान्तियोंको अवश्य देखने तथा लेने योग्यहैं	२–०
सारुक्तावली–भाषा हरदयालकृत.	०–३
स्वानुभवप्रकाश–हनुमद्व्यासविरचित.	०–१॥
सुन्दरविलास–(ज्ञानसमुद्र ज्ञानविलास सुन्दराष्टकादिसहित) सटिप्पण आदिसे अन्ततक पढनेसे अवश्य ब्रह्मविचार होगा. ग्लेज कागज	१–०
सूक्तावलीसहिता–सारुक्तावली भाषाटीकासहित	०–४
ज्ञानवैराग्यप्रकाश--(भाषा वार्त्तिक) इस उपन्यासरूप वेदान्तग्रन्थके देखनेसे विषयीपुरुषोंका भी चित्त संसारसे उपरामको प्राप्त हो जाताहै, फिर विरक्तोंकी कौन कथा है	०–१२
कपिलगीता–भाषाटीकासहित। श्रीमद्भागवतान्तर्गत श्रीभगवान् कपिलदेवजीने अपनी माता देवहूतीको संपूर्ण ज्ञानोपदेश किया है.	०–६
गोरखपद्धति–भाषाटीकासहित। इस ग्रन्थमें योगाभ्यासका फल सुगम रीतिसे वर्णित है	०–१०
घेरण्डसंहिता–भाषाटीकासहित । इसमें-अष्टाङ्गयोगवर्णन भलीभांति लिखागयाहै.	०--१०
पातञ्जलयोगदर्शन--अत्युत्तम भाषाटीकासमेत इसमें-अष्टाङ्गयोगनिरूपण बहुतही सरल और सुगम लिखागयाहै	०–१२
भक्तिसागरादि (१७) ग्रन्थ–श्रीस्वामी चरणदासजीकृत। जिस्में–ब्रजचरित्र,अमरलोक, धर्मजहाज,श्रीअष्टाङ्गयोग, षट्कर्महठयोग, योगसन्देहसागर, ज्ञानस्वरोदय, पञ्च-	

नामपुस्तक. की. रु. आ.

उपनिषद्, द्वितीय--सर्वोपनिषद्, तृतीय-तत्त्वयोगोपनिषद्, चतुर्थ-योगशिखोपनिषद्, पञ्चम-तेजविंशतोपनिषद्, भक्तिपदार्थ, मनविकृतकरण, श्रीब्रह्मज्ञानसागर, शब्दवर्णन और भक्तिसागर ये हैं, ग्लेज १-१२
तथा रफ १-८

योगतत्त्वप्रकाश--भाषामें अत्युत्तम योगमार्ग वर्णित है ... ०-२

योगमार्गप्रकाशिका--अर्थात् योगरहस्य भाषाटीका सहित ०-८

योगवित्--भाषाटीकासमेत ०-४

योगकल्पद्रुम--भाषाटीका सहित १-०

योगसमाचारसंग्रह--डाक्टर गोविन्दप्रसाद भार्गवनिर्मित। इसमें-राजयोग, हठयोग, स्वरोदयसार, स्वास्थ्यरक्षाके सम्पूर्ण नियम, ब्रह्मज्ञानसाधन विधिसहित उक्त सभी विषय हैं ०-८

वैशेषिकदर्शन--(कणादमुनिप्रणीत) तथा भाषाटीकासहित. ०-८

शिवसंहिता--भाषाटीकासहित। इसमें-शिवजीसे कहाहुआ योगोपदेश, ब्रह्मज्ञान, हठयोगक्रिया तथा राजयोगादिका वर्णनहै. १-०

शिवस्वरोदय--भाषाटीकासहित। इसमें-स्वरोंका और इडा, पिंगला, सुषुम्णा नाडियोंसे प्रश्नादि और राजयोग, हठयोग, प्राणायामादि पंचतत्त्वोंके जाननेकी विधि भलीप्रकार वर्णित है, ... ०-८

षट्चक्रनिरूपण--संस्कृत-- ०-८

(संपूर्ण पुस्तकोंका बडा सूचीपत्र अलग है)॥ भेजकर मँगाओ.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस--बम्बई.